णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्री अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

मूल, संस्कृत-छाया, पदार्थ, मूलार्थ एवं
निर्वाण-पथ-प्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सहित

व्याख्याकार
जैनधर्म-दिवाकर जैनागम-रत्नाकर साहित्य-रत्न
आचार्यप्रवर स्वर्गीय श्री आत्माराम जी महाराज

सम्पादक
पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

प्रकाशक
आचार्य श्री आत्मा राम जैन प्रकाशन समिति
जैन स्थानक, लुधियाना

ग्रन्थ	श्री अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र
	*
प्रकाशन संख्या	एक हज़ार
	*
व्याख्याकार	जैनधर्म-दिवाकर, जैनागम-रत्नाकर, साहित्य-रत्न स्वर्गीय आचार्य-प्रवर श्री आत्माराम जी महाराज
	*
संशोधक	मुनिवर श्री फूलचन्द जी 'श्रमण'
सम्पादक	पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज
	*
प्रकाशक	आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, जैन स्थानक लुधियाना
	*
मुद्रक	आत्मजैन प्रिंटिंग प्रेस ३५० इण्डस्ट्रियल एरिया-ए, लुधियाना
	*
प्रकाशन तिथि	वीर-निर्वाण संवत् २४९६ सम्वत् २०२७ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

मूल्य

बीस रुपए

*

प्रास्ताविकम्

●

अनादि काल से आत्मा कर्मों के कारण अपने वास्तविक रूप को भूलकर अज्ञानवश नाना प्रकार के कष्टो का अनुभव कर रहा है और फिर उन्ही कर्मो के निमित्तो से नूतन कर्मों का सचय कर रहा है, किन्तु सम्यगक्षयोपशम के न होने के कारण से ही औदयिक भाव की प्रकृतियो मे निमग्न हो रहा है, अत काल-लब्धि के परिपक्व होने पर ही इस को विकास-मार्ग की ओर गमन करने का समय प्राप्त हो सकता है। जब अनादि सान्त कर्मो की प्रकृतिवाला आत्मा शुद्ध क्षयोपशम के होने पर मनुष्य-योनि मे आता है, तब वह शुभ निमित्तो के मिल जाने पर धर्म-क्रियाओ की ओर झुकने लगता है।

धर्म-विषय

अपरञ्च यह भी ध्यान मे रहे कि धर्म-क्रियाओ के स्थान पर भी बहुत सी आत्माए अधर्म क्रियाओ के करने मे प्रयत्नशील बन जाती हैं, इसका मुख्य कारण सम्यग्-दर्शन का न होना ही है, क्योकि धार्मिक क्रियाओ के निर्णय करने मे सम्यग्दर्शन और सम्यग्-ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है, वास्तव मे सम्यग्दर्शन और सम्यग्-ज्ञान के होने पर ही—सम्यक्-चारित्र की उपलब्धि हो सकती है, अन्यथा नही।

सम्यक् चारित्र

जब तक उक्त तीन रत्नो की परस्पर एकरूपता नही होती तब तक मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति नही हो सकती। इसी कारण से आचार्य श्रीउमास्वाति जी 'तत्त्वार्थसूत्र' के प्रथमाध्याय के प्रथम ही सूत्र मे कहते हैं कि—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग"

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये ही तीनो मोक्ष के मार्ग हैं। सो इन तीनो के एक साथ मिल जाने पर आत्मा स्व-कल्याण कर सकता है तथा उसे निर्वाण-पद की प्राप्ति सुगमतया हो सकती है, किन्तु यह विषय उन्ही आत्माओ के लिये है जो अनादि-सान्त कर्मोंवाले हैं।

इस स्थान पर यह शका उत्पन्न होनी भी स्वाभाविक है कि जब कर्मों को अनादि माना गया है तो फिर कर्मों मे सान्तता किस प्रकार आ सकती है? इस शका के समाधान मे कहा जाता है कि—कर्मों का क्रम (प्रवाह) अनादि है, कर्म अनादि नहीं हैं। कारण कि अनादि आत्मा अनादि काल से कर्म करने और भोगने के चक्र मे फसा हुआ है, किन्तु जब इसने नूतन कर्मों के सचार का निरोध कर दिया तब

फिर यह पूर्व कर्मों का तप आदि द्वारा क्षय कर सकता है। इसी कारण से भव्य आत्माओ के कर्मों की सत्ता अनादि-सान्त मानी गई है।

किन्तु जब आत्मा कर्मों से सर्वथा विमुक्त हो जाता है तब उसे निर्वाण-पद की प्राप्ति हो जाती है। जैनागम कर्मो का फल मोक्ष नहीं मानता, यहा कर्म-क्षय को ही मोक्ष माना जाता है।

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र मे इस प्रकार के भव्य जीवो की दशा का वर्णन किया गया है जो अन्तिम श्वासोच्छ्वास मे निर्वाण-पद प्राप्त कर सके हैं, किन्तु आयुष्य-कर्म के शेष न होने से केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन से देखे हुए पदार्थों को प्रदर्शित नही कर सके, इसी कारण से उन्हे 'अन्तकृत् केवली' कहा गया है।

प्रस्तुत शास्त्र बारह अगशास्त्रो मे से आठवा अग शास्त्र है, इसका अर्थ अर्हत्-प्रणीत और सूत्र गणधर प्रणीत हैं। इसके आठ वर्ग हैं और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन है। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग मे दस-दस अध्ययन रखे गए हैं, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन है, चतुर्थ और पचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन हैं, छठ वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवें वर्ग के दस अध्ययन है, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात मे इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वणन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?' इस प्रकार की शका के समाधान मे श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अत यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र मे भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय मे होनेवाले जीवो की सक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया हैं, तथापि अन्य तीर्थङ्करो के शासन मे होनेवाले अन्तकृत केवलियो की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—**द्वादशाङ्गीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।**

यह शास्त्र भव्य प्राणियो के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अत इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-सख्या मे तथा पद-सख्या मे अल्प-सा रह गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी की वाचना का यह आठवा अग है। भव्य जीवो के बोध के लिये ही इसमे कतिपय जीवो की सक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन

जैन-शासन-प्रभाविका स्वर्गीया श्री चन्दा जी महाराज की अन्तेवासिनी
महासती परमार्थिका श्री सौभाग्यवती जी महाराज
जिनकी दिव्य प्रेरणा से श्रीमती विद्यावती जी जैन ने इस शास्त्र के लिये
कागज की व्यवस्था करके पुण्य-लाभ प्राप्त किया।

वैरागन शिमलाकुमारी जैन
सुपुत्री--श्री लब्भूरामजी जैन, (मामाना)
आजकल आप महासती
श्री सावित्रीदेवी जी के नेश्राय मे
साध्वी श्री उमेशकुमारी जी के
नाम से साधना-संलग्न है।

वैरागन वीनाकुमारी जैन
सुपुत्री--श्री जगन्नाथजी जैन (लुधियाना)
आजकल आप आर्या
श्री उमेशकुमारी जी महाराज के
नेश्राय मे साध्वी-जीवन व्यतीत
कर रही है।

कराया गया है, किन्तु समवायाङ्ग-शास्त्र मे सविस्तर तथा नन्दीशास्त्र मे सक्षिप्तता से अन्तकृद्दशाङ्ग के विषयो का वर्णन किया गया है। इस विषय मे निम्न प्रकार से उल्लेख प्राप्त होता है—

नन्दी सूत्र मे द्वादशाङ्गी वाणी के विषय का वर्णन करते हुए आठवे अग का विषय निम्न प्रकार से लिखा है—

> से कि त अन्तगडदसाओ ? अन्तगडदसासु ण अन्तगडाण नगराइ, उज्जाणाइ, चेइयाइ, वणसडाइ, समोसरणाइ, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइ, सलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइ, पाओवगमणाइ, अन्तकिरियाओ, आघविज्जन्ति। अन्तगडदसासु ण परित्ता वायणा, सखिज्जा अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, सखेज्जाओ सगहणीओ, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ। से ण अगट्ठयाए अट्ठमे अगे, एगे सुयक्खधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला। सखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेण, सखेज्जा अक्खरा, अणन्ता गमा, अणन्ता पज्जवा, परित्ता तसा, अणन्ता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जन्ति, पण्णविज्जन्ति परूविज्जन्ति दसिज्जन्ति, निदसिज्जन्ति, उवदसिज्जन्ति। से एव आया, एव नाया, एव विण्णाया। एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्त अन्तगडदसाओ ॥सू० ५२॥

भगवती सूत्र (व्याख्या-प्रज्ञप्ति) के शतक २५, उद्देशक ३, सूत्र ५२ मे लिखा है कि—

> कइविहे ण भते! गणिपिडए पण्णत्ते ? गोयमा! दुवालसगे गणिपिडए पण्णत्ते, त जहा—आयारो जाव विट्ठिवाओ। से कि त आयारो ? आयारे ण समणाण निग्गथाण आयारगोयर० एव अगपरूवणा भाणियव्वा, जहा नदीए जाव—
>
> सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
> तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगो ॥

इस कथन से श्री नन्दी सूत्रोक्त अन्तकृत् सूत्र का विषय व्याख्या-प्रज्ञप्ति मे भी स्वीकार किया गया है, किन्तु उक्त दोनो प्रमाणो से यह सिद्ध हुए विना नही रह सकता कि अन्तगड सूत्र शास्त्र है और उसका विषय भी अपौरुषेय है, इस प्रकार जिस तीर्थङ्कर का समय आता है उनके मुख्य गणधर शिष्य उस मार्ग पर चलनेवाले व्यक्तियो के नाम देकर उनके आदर्श जीवन जनता के सन्मुख रखते हैं, जिससे अन्य आत्माए भी उनका अनुकरण करती हुई सफल मनोरथ हो जाती हैं।

नन्दीसूत्र के "सखेज्जा अक्खरा" "अनन्ता गमा" यह दोनो पद बडे ही विस्तृत अर्थ के देनेवाले हैं, क्योकि इनमे लिखा है कि अन्तगडसूत्र के अक्षर तो सख्यात हैं, किन्तु गमा—अर्थ अनन्त हैं, इस तरह यह सूत्र अनन्तज्ञान से परिपूर्ण है, अत यह अगशास्त्र प्राणीमात्र के अध्ययन करने योग्य है। इसका अध्ययन योग्यतापूर्वक ही होना चाहिए। यद्यपि 'व्यवहार सूत्र' के दशवें उद्देशक मे पाठ्यक्रम नियत किया गया है और साथ ही काल-सख्या भी नियत की गई है, परन्तु यह अगशास्त्र उस पाठ्य-क्रम मे नही ग्रहण किया गया, कारण कि यह गद्यमय शास्त्र चरित-विषय का प्रदर्शक होने से सदैव काल स्वाध्याय करने योग्य है।

पाठ्य-क्रम मे १२ अग-शास्त्रो मे केवल पहले पाच ही अग-शास्त्र ग्रहण किये गए हैं। तथा च पाठ —

> **तिवास-परियागस्स समणस्स णिग्गथस्स कप्पइ आयारकप्प नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२१॥ चउवास-परियागस्स समणस्स निग्गथस्स कप्पइ सुयगडे नाम अगे उद्दिसित्तए ॥२२॥ पचवास परियागस्स समणस्स निग्गथस्स कप्पइ दसाकप्पववहाराओ उद्दिसित्तए ॥२३॥ दसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गथस्स कप्पइ विवाहे नाम अग उद्दिसित्तए ॥२४॥ एक्कारसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गथस्स कप्पइ खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती, अगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२५॥ बारसवास-परियागस्स कप्पइ गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलधरोववाए नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२६॥ तेरस वास-परियागस्स कप्पइ उट्ठाणपरियावणिए, समुट्ठाणसुए, देविंदोववाए, णागपरियावणिए नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२७॥ चउद्दसवास-परियागस्स कप्पइ सुमिणभावणा नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२८॥ पण्णरसवास-परियागस्स कप्पइ चारणभावणा नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२९॥ सोलसवास-परियागस्स कप्पइ तेयणिसग्गे नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३०॥ सत्तरसवास परियागस्स कप्पइ आसीविसभावणा नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३१॥ अट्ठारसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गथस्स कप्पइ दिट्ठीविसभावणा नाम अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३२॥ एगूण वीसवास-परियागस्स समणे णिग्गथे सव्वसुयाणुवाई भवइ ॥३३॥ वीसवास परियागस्स समणे णिग्गथे सव्वसुयाणुवाई भवइ ॥**
>
> *(व्यवहारसूत्र, उद्दे० १०)*

उक्त पाठ्यक्रम मे 'ज्ञाता-धर्म-कथाङ्ग सूत्र' से लेकर 'विपाक सूत्र' पर्यन्त ६ अगशास्त्र नही ग्रहण किये गए हैं, न ही चार मूल सूत्रो का ही ग्रहण है, इतना ही नही, अपितु यहा उपाङ्ग शास्त्रो मे से भी किसी का नाम उपलब्ध नहीं होता, किन्तु

खेद के साथ लिखना पडता है कि यहा जिन सूत्रो के नाम लिखे गये हैं उनमे से अधिकाश सूत्र अनुपलब्ध हैं।

कथन करने का साराश इतना ही है कि प्रस्तुत शास्त्र योग्यतापूर्वक अस्वाध्याय के काल को छोडकर प्रत्येक व्यक्ति के लिये प्रत्येक समय मे स्वाध्याय करने योग्य है।

वाचनादि स्वाध्याय अक्षरात्मक होने से उसकी भाषा सज्ञा बन जाती है। सभी जैनागम अर्द्धमागधी भाषा मे ही लिखे गये हैं। यह भाषा अत्यन्त मधुर अनन्त अर्थों की व्यञ्जिका है। प्राकृत भाषा से इसका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, कुछ ही नियमो मे विशेषता है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र से पता चलता है कि देव भी इसी भाषा मे सभाषणादि कर विशेषतया प्रसन्न होते हैं। तथा च पाठ —

> **देवा ण भते! कयराए भासाए भासति? कयराए वा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ? गोयमा! देवा ण अद्धमागहाए भासाए भासति, सावि य ण अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ॥**
>
> *व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक ५, उद्देशक ४, सूत्र १६१।*

> **अभयदेवसूरिवृत्ति —देवा ण इत्यादि—'विसिस्सइ' त्ति विशिष्यते विशिष्टो भवतीत्यर्थ, 'अद्धमागहाए' त्ति—भाषा किल षड्विधा. भवति, यदाह—**
>
> **प्राकृत-सस्कृत-मागध-पिशाच-भाषा च शौरसेनी च।**
> **षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंश ॥**
>
> **तत्र मागधभाषा-लक्षण किञ्चित्-किञ्चिच्च प्राकृतभाषालक्षण यस्यामस्ति सार्द्ध मागधी इति व्युत्पत्त्याऽर्द्धमागधीति।**

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि षड्भाषा होने पर भी देव अर्द्धमागधीभाषा मे ही सभाषण कर विशेषतया प्रसन्न होते हैं। अत इसका नाम "देववाणी" भी है तथा तीनो कालो के तीर्थङ्करदेव इसी भाषा मे व्याख्यानादि देते हैं, उनके अतिशय के माहात्म्य से यह भाषा सर्वभाषाओ मे परिणत हो जाती है, या यो कहिये कि तीर्थङ्कर देव सर्वज्ञ होने के कारण इसी भाषा का अनुवाद सर्वभाषा मे कर देते हैं। परिणत होने का यही तात्पर्य है कि उसका अनुवाद प्रत्येक भाषा मे हो जाता है।

समवायाङ्ग सूत्र के ३४ वें समवाय मे ३४ बुद्धातिशयो का वर्णन किया गया है, जिनमे २२वा और २३वा अतिशय भाषा से सम्बन्ध रखता है, तथा च पाठ —

> **भगव च ण अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ, सावि य ण अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाण, दुप्पय चउप्पअ-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाण अप्पणो हिय-सिव-सुहय-भासत्ताए परिणमइ।**

इस सूत्र की व्याख्या मे वृत्तिकार अभयदेवसूरि लिखते हैं कि—

> **"अद्धमागहीए" त्ति प्राकृतादीना षण्णा भाषा विशेषाणा मध्ये या मागधी नाम भाषा 'रसोर्लसौमागध्या' मित्यादि लक्षणवन्ती, सा असमाश्रितस्वकीयसमग्रलक्षणाऽर्द्धमागधीत्युच्यते, तया धर्ममाख्याति । तस्या एवातिकोमलत्वादिति द्वाविंश । "भासिज्जमाणी" त्ति भगवताऽभिधीयमाना "आरियमणारियाण" त्ति आर्यानार्यदेशोत्पन्नाना द्विपदा—मनुष्याश्चतुष्पदा —गवादय , "मृगा " आटव्या , "पशवो" ग्राम्या , पक्षिण प्रतीता , सरीसृपा —उर परिसर्पा , भुजपरिसर्पाश्चेति, तेषां किम् ? आत्मन आत्मन —आत्मीयया आत्मीययेत्यर्थ भाषातया —भाषा भावेन परिणमतीति—सम्बन्ध , किम्भूताऽसौ भाषा ? इत्याह—हितम्—अभ्युदय , शिव—मोक्ष , सुख—श्रवणकालोद्भवमानन्द ददातीति हित-शिवसुखदेति ।।२३।।**

उक्त दोनो अतिशयो मे अर्द्धमागधी भाषा विषय जो लिखा गया है वह अतिशयोक्ति नही है, किन्तु अर्द्धमागधी भाषा पठन करने से जो आनन्द आता है, वह अनुभवरूप ही होता है, किन्तु इन अतिशयो से साथ मे यह भी शिक्षा उपलब्ध होती है कि जिस प्रकार भगवद्-वाणी जो जिसकी भाषा हो उसी मे अनुवाद रूप मे परिणत हो जाती है। इसी प्रकार वर्तमान मे भी जो जिसकी भाषा है श्री भगवद्-वाणी का उसी भाषा मे अनुवाद कर उनको शिक्षित किया जाए तो शीघ्र ही भगवान् के सदुपदेशो का प्रचार हो सकता है तथा जैन-धर्म का प्रचार विश्वव्यापी भाषाओ मे होने से विश्व भर मे हो सकता है। प्रत्येक भगवद्-वाणी-प्रेमी को इस विषय मे विचार करना चाहिए।

"प्रज्ञापणा"—"पण्णवणा" सूत्र के प्रथम पद मे आर्यता का वर्णन करते हुए भाषार्य-विषय निम्न प्रकार से दिया गया है , तथा च पाठ —

> **से किं त भासारिया ? भासारिया जे ण अद्धमागहाए भासाए भासति । जत्थ वि य ण बभी लिवी पवत्तइ, बभीए ण लिवीए अट्ठारसविहे लेक्ख विहाणे पण्णत्ते, त जहा—बभी, जवणाणिया, दोसापुरिया, खरोट्ठी, पुक्खरसारिया, भोगवइया, पहराइया, अतक्खरिया, अक्खरपुट्ठिया, वेणइया, णिण्हइया, अकलिवी, गणियलिवी, गधव्वलिवी, आयसलिवी, माहेसरी, दोमिलिवी, पोलिंदी ।**

इस कथन से भी सिद्ध हो जाता है कि भाषार्य उन्ही का नाम है जो अर्द्ध-मागधी भाषा भाषण करते हैं तथा ब्राह्मी लिपि के अठारह भेद जहा पर प्रचलित हो उन्ही को भाषार्य कहा जाता है, अत उक्त प्रमाणो से यह भलीभाति सिद्ध हो जाता है कि अर्द्धमागधी भाषा भगवद्-भाषा भी है, देव-भाषा भी है और आर्य-भाषा भी है, अत जैनागम इसी भाषा मे निर्मित है।

इस शास्त्र की अर्द्धमागधी भाषा साहित्यिक दृष्टि से बडे ही महत्त्व की है और भाषा छटादार होने से अति मधुर है तथा अलकारादि से युक्त होने के कारण अत्यन्त मनोहर है।

व्याख्या का नाम

इस शास्त्र मे उन्ही जीवो की सक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है जो उसी भव मे निर्वाण-पद प्राप्त कर सके, इसी कारण से इस व्याख्या का नाम भी **"निर्वाण-पथ-प्रकाशिका"** रक्खा गया है। जिस से पाठकजनो को इसके अध्ययन और मनन से निर्वाण-पद विषय का विशेष बोध हो सकता है।

सहायक ग्रन्थ

इस ग्रन्थ की व्याख्या लिखते समय मेरे पास तीन प्रतिया थी, एक तो आगमोदय समिति की ओर से मुद्रित हुई और दो प्रतिया हस्तलिखित टब्बेवाली, किन्तु मैंने आगमोदय समिति की ओर से जो मुद्रित पाठ है उसी को लिया है क्योकि टब्बेवाली प्रतिया प्राय अशुद्धियो से युक्त थी, जहा पर आवश्यकता प्रतीत हुई है, वहा पर पाठ-भेद भी दिखला दिया गया है।

शिक्षाए

इस सूत्र के अध्ययन से मुमुक्षुजनो को ऐसी अनेक अमूल्य शिक्षाओ का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है। जैसे—

धैर्य और दृढ विश्वास गजसुकुमार की तरह होना चाहिए।

सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए।

श्रावक लोगो को सुदर्शन श्रमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए, जिसका आत्म-तेज देव भी सहन नही कर सका।

धर्मविश्वास कृष्ण वासुदेव की भाति होना चाहिए।

प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्त कुमार के समान होनी चाहिए।

त्यागवृत्ति कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियो की भाति होनी चाहिए।

तपश्चर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियो की भाति होनी चाहिए, जो आठवें वर्ग मे सविस्तार वर्णित है। इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओ से अलकृत हो रहा है। जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओ को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता मे आदर्श रूप बन जाता है।

उपकार

यद्यपि इस शास्त्र की समुचित व्याख्या करने मे मैं सर्वथा असमर्थ था, तथापि परम पूज्य आचार्यवर्य श्री श्री १००८ पूज्य मोतीराम जी महाराज, उनके

शिष्य गणावच्छेदक स्थविर-पद-विभूषित श्री श्री १००८ गणपतिराय जी महाराज, उनके शिष्य गणावच्छेदक स्थविर-पद-विभूषित श्री श्री १००८ बाबा जयरामदास जी महाराज, तथा उनके शिष्य प्रवर्त्तक-पद-विभूषित व ज्योतिर्विद मेरे परम पूज्य गुरु श्री श्री १००८ शालिग्राम जी महाराज जी की महती कृपा से इस अनुवाद को मैं पूर्ण कर सका हू ।

मेरे श्रुताचार्य श्री श्री १००८ पूज्य मोतीराम जी महाराज हैं, आपकी शान्त मुद्रा, ज्ञान-दान की निरन्तर वर्षा, वात्सल्य भावादि आपके सद्गुण जब मेरी स्मृति मे आते है तब आपके ही गुणो मे लीन होने की भावना उत्पन्न हो जाती है, अत यह उनकी कृपा का ही सुफल है, जो मै इस टीका को पूर्ण कर सका हू ।

निवेदन

यदि मैंने प्रमादवश या स्खलित स्वभाव होने के कारण कुछ शास्त्र-विरुद्ध लिख दिया हो तो विद्वज्जन मुझ पर क्षमा की दृष्टि रखते हुए उस विषय का सशोधन कर मुझे सूचित करने की कृपा करे, जिससे आगामी आवृत्ति मे उस विषय का सशोधन किया जा सके ।

वीर निर्वाण सम्वत् २४६३,
विक्रम सवत् १९९४,
वैशाख शुक्ला ३, बुधवार
जैन स्थानक, जीरा, पजाब

चतुर्विध श्रीसंघ-सेवक
मुनि
आत्माराम

इन ग्यारह गणधरो मे से पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने जम्बू नामक जिज्ञासु शिष्य को इन्हे सुनाया। प्रस्तुत अन्तकृद्दशाङ्ग आठवा अग है जिसे जम्बू-स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी जी से सुना और फिर अनेक शताब्दियो के बाद श्री जम्बूस्वामी की शिष्यपरम्परा द्वारा इसे लिपिबद्ध रूप दे दिया गया।

आगमो के तीन रूप माने गए हैं—१ आत्मागम, २ अनन्तरागम और ३ परम्परागम।

आत्मागम—तीर्थङ्कर भगवान् जिस अर्थ की प्ररूपणा करते हैं उसे आत्मागम कहा जाता है। गणधरो द्वारा रचित सूत्रो को भी आत्मागम कहा जाता है, क्योकि आत्म-ग्रहीत अर्थ को ही वे सूत्र का रूप प्रदान करते है।

अनन्तरागम—गृहीत अर्थ को जब गणधर अध्ययन करवाते हैं उस समय उनकी वाणी के रूप मे प्रकट होनेवाली ज्ञानराशि अनन्तरागम कहलाती है।

परम्परागम—गणधरो के अनन्तर शिष्य-प्रशिष्यो द्वारा निरूपित ज्ञान-धारा परम्परागम कहलाती है।

प्रस्तुत सूत्र को आत्मागम और अनन्तरागम परम्परागम तीनो श्रेणियो मे समाविष्ट किया जा सकता है।

नामकरण

अन्तकृत्—प्रस्तुत अङ्ग का नाम 'अन्तकृत्+दशा+अङ्ग+सूत्र है, क्योकि प्रस्तुत ग्रन्थ मे उन नव्वे महापुरुषो का जीवनवृत्त सग्रहीत किया गया है, जिन्होने सयम-साधना एव तप-साधना द्वारा आठ प्रकार के कर्मों पर विजय प्राप्त करके एव चौरासी लाख जीव-योनियो मे आवागमन से मुक्ति पाकर जीवन के अन्तिम क्षणो मे मोक्ष-पद की प्राप्ति की। इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र का अन्त कर देने वाले महापुरुषो के जीवनवृत्त के वर्णन को ही प्रधानता देने के कारण इस शास्त्र के नाम का प्रथम अवयव "अन्तकृत्" है।

दशा—नाम का दूसरा अवयव 'दशा' शब्द है। जैन सस्कृति मे दशा शब्द के दो रूढ अर्थ हैं —

१ जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन 'दशा' कहलाता है, दूसरे शब्दो मे शुद्ध अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति ही "दशा" है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रत्येक अन्तकृत् साधक निरन्तर शुद्धावस्था की ओर गमन करता है, अत इस ग्रन्थ मे अन्तकृत् साधको की दशा के वर्णन को ही प्रधानता होने से "अन्तकृत् दशा" कहा गया है।

२ जिस आगम मे दस अध्ययन हो उस आगम को भी 'दशा' कहा जाता है। प्रस्तुत आगम मे आठ वर्ग हैं। इनमे से प्रथम (आदि) चतुर्थ, पञ्चम (मध्य) और आठवें वर्ग (अन्त) मे दस-दस अध्ययन हैं। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त मे दस-दस अध्ययन होने के कारण भी प्रस्तुत आगम को "अन्तकृत् दशा" नाम दिया गया है।

अङ्ग—तीर्थङ्करो ने जो उपदेश दिए हैं उनके दो अग थे शब्द और अर्थ। तीर्थङ्करो के पट्टशिष्य उन दो अङ्गो मे से एक अङ्ग अर्थ को ही ग्रहण कर पाते हैं, अत भगवान् की वाणी का अङ्ग होने से आगमो को अग भी कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी भगवान् महावीर की वाणी का अर्थत अङ्ग है, अत इसके नाम का तीसरा भाग "अङ्ग" है।

सूत्र—क्योकि समस्त जैनागम शब्द की अपेक्षा अल्प और अर्थ की अपेक्षा विशाल हैं,* अत समस्त आगमो को सूत्र कहा गया है। इसीलिये प्रस्तुत आगम के नाम-करण का चौथा अवयव 'सूत्र' के रूप मे रखा गया है।

इस प्रकार चार अवयवो को मिलाकर प्रस्तुत शास्त्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशाङ्गसूत्र' किया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा

श्री भगवान् महावीर से पूर्व का उपलब्ध जैन-साहित्य प्राय सस्कृत मे ही था, क्योकि उस समय के जैन-विद्वानो को वैदिक सस्कृति के अनुगामी सस्कृत के विद्वानो मे ज्ञान का आदान-प्रदान करना पडता था, दार्शनिक वाद-विवाद करने होते थे, अत जैन भावधारा को सस्कृत भाषा का ही रूप देना पडा। यही कारण है कि दार्शनिक विषय-प्रधान पूर्व ग्रन्थो का सस्कृत मे होना स्वाभाविक है, परन्तु लोगो का उद्धार करने के महान् लक्ष्य को लेकर भगवान् महावीर ने जो प्रवचन किये वे तत्कालीन लोकभाषा अर्धमागधी मे ही किए। भगवान् के गणधर शिष्य भी इसी लोक-पावन लक्ष्य को लेकर आगमो के प्रणयन मे प्रवृत्त हुए, अत उन्होने भगवान् से प्राप्त ज्ञान-राशि को अर्धमागधी भाषा मे ही व्यक्त किया। यही कारण है कि आगमो का विषय दार्शनिक एव धर्मतत्त्व प्रतिपादक रहा, परन्तु उसकी शैली पूर्णतया जनपदीय है—लोक-साहित्य की है, क्योकि सामान्य जनता को उसीकी बोलचाल की शैली मे ही समझाया जा सकता था।

मागधी मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमे कुछ विशेष शब्दो का एव प्रान्तीय बोलियो का मिश्रण भी हो गया, अत आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थङ्करो, गणधरो और देवो की प्रिय भाषा है, हो भी क्यो न? लोक भाषा की सर्वप्रियता

---

* अल्पाक्षरपठितत्वे सति बह्वर्थबोधकत्व सूत्रत्वम्।

सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली मे की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली मे 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली मे **"तेण कालेण तेण समएण"** इस शब्दावली से कथा का आरम्भ किया जाता है। आगमो मे ज्ञाता धर्मकथा, उपासकदशाङ्ग, अनुत्तरौपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र का इसी शैली मे निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा मे शब्दो के दो रूप उपलब्ध होते ह—**परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए।** इस आगम मे प्राय स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को ही अपनाया गया है।

आगमो मे प्राय. सक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त मे बिन्दुयोजना द्वारा अथवा अक योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को व्यक्त करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र' मे इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषि जी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र' मे पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना मे अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य मे रखते हुए मूल पाठ को पूर्ण रूपेण न्यस्त करने की शैली हमे भी अपनानी पडी है।

इस सूत्र मे यथास्थान अनेक तपो का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग मे विशेष रूप से तपो के स्वरूप एव पद्धतियो का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपो के अनेक विध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते है। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रो को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

व्याख्या-शैली

उच्चारण की शुद्धता, शब्दार्थ का ज्ञान और व्याख्येय विषय का विशद विवेचन यह भारतीय साहित्य की सबसे बडी विशेषता है। वैदिक साहित्य मे मूलपाठ, पदच्छेद (पद, क्रम, जटा घन आदि) पदार्थ-विज्ञान, वाच्यार्थज्ञान, तात्पर्यार्थ-विवेचन आदि की शैली प्रचलित है जिसे निरुक्त कहा जाता है। इसी प्रकार जैनागमो मे भी अपनी निजी व्याख्या पद्धति है, जिसे 'अनुगम' कहा जाता है। अनुयोगद्वार सूत्र मे (सूत्र १५५) अनुगम के छ प्रकार बताये गए है, जिनमे दो सूत्रस्पर्शी है और शेष चार अर्थस्पर्शी है। मूलपाठ, पद, पदार्थ, पदविग्रह, चालना और प्रत्यवस्थान के रूप मे यह अनुगमात्मक व्याख्यापद्धति से ही आज तक

सूत्रो की व्याख्याए होती रही हैं, परन्तु अब युग परिवर्तित हो गया है, अब नई व्याख्या-पद्धति की आवश्यकता को अस्वीकृत नही किया जा सकता। आचार्यश्री ने नवीन और प्राचीन का समन्वय करके इस सूत्र को सर्वपाठ्य बनाने के उद्देश्य से जो नवीन पद्धति प्रदान की है उसके अनुसार मूल पाठ, मूलपाठ की संस्कृत छाया, पदार्थ, मूलार्थ और विस्तृत व्याख्या के रूप मे प्रस्तुत आगम को प्रस्तुत किया है। यह शैली सुबोधता के लिये उपयोगी सिद्ध होगी यह मेरा दृढतम विश्वास है।

अन्तकृत्-केवली एक विहगम दृष्टि

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र की कुछ विशेषताए—

अध्ययन

इस शास्त्र के तीसरे वर्ग मे तेरह अध्ययन है। गजसुकुमार के अतिरिक्त शेष बारह अध्ययनो मे जितने चरितनायक हैं, वे सब चौदह पूर्वों के ज्ञानी होकर केवल्य को पानेवाले हुए हैं।

चौथे वर्ग के सभी चरितनायक द्वादशाङ्गी वाणी का अध्ययन करके अन्तकृत् हुए हैं।

गजसुकुमार अनगार किसी भी शास्त्र का अध्ययन किए बिना ही अतकृत् हुए है। शेष सभी ग्यारह अगो का अध्ययन करके अतकृत् हुए।

दीक्षा

दीर्घकालिक दीक्षा पर्यायवाले एक अतिमुक्त कुमार हुए हैं, जोकि अन्य चरितनायको की अपेक्षा अधिक काल तक सयम पाल कर अतकृत् हुए हैं।

अतिमुक्तकुमार ही ऐसे चरित नायक हुए हैं जिन्होने यौवनकाल से पूर्व ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

गजसुकुमार एक ऐसे चरित-नायक हैं जो प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर कुछ घटो मे ही कर्म-क्षय कर अतकृत् हुए हैं। अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु मे अतकृत् नही हो पाया।

छ मास की दीक्षा पर्याय और पद्रह दिनो का सथारा अर्जुन अनगार को प्राप्त हुआ, शेष सभी चरितनायक वर्षों की दीक्षा पर्याय और मासिक सथारेवाले हुए हैं।

जीवन

दो चरितनायक आबाल ब्रह्मचारी हुए हैं, शेष सभी चरितनायक भोग से निवृत्ति पाकर योगवृत्ति ग्रहण करके अतकृत् हुए हैं।

दो नरेश अन्तकृत् हुए हैं, शेष सभी राजकुमार युवराज तथा महारानिया अन्तकृत् हुए हैं।

गजसुकुमार और अर्जुन अनगार को परिषह सहने का काम पडा, अन्य अनगारो को नही।

एक अर्जुन अनगार के अतिरिक्त शेष सभी चरित-नायक राजकुल और श्रेष्ठी कुल मे उत्पन्न अन्तकृत् हुए हैं।

स्थान

अनगारो मे एक गजसुकुमार का निर्वाण श्मशान भूमि मे हुआ है शेप सभी अनगार शत्रुंजय और विपुलगिरि पर सथारे के साथ निर्वाण प्राप्त करते है।

सभी साध्विया उपाश्रय मे ही अन्तकृत् हुईं।

नर—नारी

पाचवे, सातवें और आठवे मे तेतीस राजरानियो के जीवन-चरित है जो कि अतकृत् हैं शेष सभी पुरुष अन्तकृत् हुए हैं।

शासन

अरिष्टनेमि भगवान के शासन मे तेंतीस अनगार अन्तकृत् केवली हुए और महावीर भगवान के शासन मे सोलह अनगार अन्तकृत् केवली हुए।

भगवान अरिष्टनेमि के शासन मे दस महारानिया दीक्षित होकर अतकृत् हुईं और भगवान महावीर के शासन मे तेंतीस महारानिया दीक्षित होकर अतकृत् हुईं।

भगवान अरिष्टनेमि के शासन मे यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तनी हुई और भगवान महावीर के शासन मे आर्या चन्दबाला प्रवर्तिनी साध्वी थी।

पर्युषण के दिनों मे ही क्यो ?

अध्ययन के लिये मन एव मस्तिष्क का स्वस्थ एव शान्त होना आवश्यक होता है, मानसिक एव बौद्धिक स्वस्थता के लिये वातावरण की शान्ति अनिवार्य है। इसी तथ्य को लक्ष्य मे रखते हुए शास्त्रकारो ने स्वाध्याय के समय की कुछ सीमाए निर्धारित की हैं, किन्तु अन्तगडसूत्र के लिये कोई सीमा निर्धारित नही की गई, अत इसकी पृष्ठभूमि मे कोई विशेष कारण अवश्य रहा होगा।

श्री सुधर्मा स्वामी ने महाराज कोणिक के शासन-काल मे चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान मे जब जम्बू स्वामी को अन्तगडसूत्र का अध्ययन कराया था, वह काल पर्युषण काल न था और शास्त्रो मे कही पर भी पर्युषण-काल मे ही अन्तगडसूत्र की वाचना का विधान प्राप्त नही होता, परन्तु पर्युषणो मे ही अन्तगडसूत्र के अध्ययन एव श्रवण की प्राचीन परम्परा विद्यमान है। तब प्रश्न होता है कि इस परम्परा के प्रवर्तन का क्या कारण हो सकता है ?

अमृत-पान का कोई समय नहीं होता, वह जब भी पिया जाय तभी लाभ कारी होता है। कथा-साहित्य के द्वारा प्राप्त होनेवाले उपदेशामृत को भी सर्वदा पिया जा सकता है, अत इस कथात्मक शास्त्र के स्वाध्याय का कोई विशेष समय निर्धारित नहीं किया गया।

इतना अवश्य है कि इस सूत्र के अन्त मे इस शास्त्र के स्वाध्याय एव वाचना को आठ दिन मे पूर्ण करने का आदेश दिया गया है। मननशील मुनियो ने विचार किया होगा कि तपस्या-प्रधान पर्युषण के आठ दिनो से उत्तम और कौन से आठ दिन होगे, अत इन्ही दिनो मे इसके पाठ की परम्परा को प्रचलित कर दिया गया होगा। यह भी हो सकता है कि इस सूत्र के अष्टाह्निक पाठ के आधार पर ही पर्युषण को भी अष्टाह्निक पर्व के रूप मे प्रचलित कर दिया गया हो।

चतुर्विध श्रीसघ पर्युषण के दिनो मे तपस्या को ही प्रधानता देता है। प्रस्तुत सूत्र मे तपस्या-प्रधान जीवन-चरित ही वर्णित किए गए हैं। इन चरितो से तपस्या की सम्यक् प्रेरणा का प्राप्त होना स्वाभाविक है, इसी प्रेरणा-प्राप्ति के लिये पर्युषण और अन्तगडसूत्र का सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया होगा।

प्रकाशन कार्य

प्रस्तुत सूत्र का व्याख्या-समन्वित यह रूप आचार्यप्रवर श्री पूज्य आत्माराम जी महाराज ने स० १९९४ मे ही प्रस्तुत कर दिया था, किन्तु इसके प्रकाशन की व्यवस्था उस समय न हो सकी। आचार्यश्री के इस ग्रन्थ के सम्पादन के कार्य का दायित्व आचार्यश्री के सुयोग्य शिष्य श्री ज्ञान मुनि जी ने स्वीकार किया और उन्होने स० २०२३ मे खरड नगर मे इसे पूर्ण कर दिया, परन्तु प्रकाशन-व्यवस्था के अभाव मे यह शास्त्र पुन अप्रकाशित अवस्था मे ही पडा रहा। इस बार चातुर्मास के लिये मेरे लुधियाना आने पर "आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति" ने इसके प्रकाशन की व्यवस्था की और इस प्रकार मेरे सान्निध्य ने इसके प्रकाशन का श्रेय प्राप्त किया।

इस शास्त्र को प्रकाशकीय सुन्दर रूप देने तथा मुद्रण-सम्बन्धी सभी प्रकार की त्रुटियो को दूर करने के लिये पण्डित-रत्न सेवा-भावी श्री रतन मुनि जी ने जो समर्थ एव सक्रिय योगदान दिया है, उसी का फल है इस शास्त्र का सुन्दर प्रकाशन।

प्रस्तुत सूत्र के सशोधन कार्य मे श्री तिलकधर जी शास्त्री का भी विशेष योगदान रहा है। इस प्रकार एक विशाल प्रयास की सफलता के रूप मे प्रकाशित यह अन्त-कृद्दशाङ्ग सूत्र मैं आचार्य श्री की अनुपम कृति उन्ही को समर्पित करता हू।

त्वदीय वस्तु हे देव ! तुभ्यमेव समर्पये।

वीर सम्वत् २४९६
आश्विन शुक्ला प्रतिपदा
स० २०२७
जैन स्थानक, लुधियाना

मुनि फूलचन्द्र 'श्रमण'

निवेदनीय मन्तव्य

जैनधर्मदिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागम-रत्नाकर, साहित्य-महारथी, महामहिम आचार्यवर्य परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज श्रीवर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसघ के जाने-माने मनोनीत प्रधानाचार्य थे। आपश्री आचार-विचार-गत समुच्चता के जीवित प्रतीक थे, करुणा, दया, सहिष्णुता, प्रेम, जप, तप, क्षमा, सत्य, सयम, त्याग वैराग्य, उदारता, चारित्रनिष्ठा, साहित्य-सेवा तथा समाज-सेवा के चलते-फिरते आदर्श अक्षय भण्डार थे। आपके जीवन का कण-कण सद्-ज्ञान, सद्-विचार, सद्-आचार एव अन्य अनेकविध आत्मगुणो के सौरभ से महक रहा था, आपकी जीवन सम्बन्धी नानाविध गुणसम्पदाओ की ओर जब दृष्टि पात करते है तब निस्सकोच कहा जा सकता है कि अध्यात्म-जगत् मे आप एक क्रान्तिकारी युगस्रष्टा महापुरुष थे।

वैसे तो हमारे परमाराध्य आचार्यदेव श्री के सभी गुण विलक्षण थे, परन्तु जैनागमो के चिन्तन, मनन, निदिध्यासन एव अन्वेषण विषयक आपका अनथक प्रयास अनुपमेय था। आपने जीवन के सर्वाधिक क्षण आगमो के परिशीलन एव पठन पाठन मे ही व्यतीत किए थे। आगमो के विचार एव प्रसार मे आपका जो भागीरथ प्रयास रहा है, पञ्चनदीय स्थानकवासी समाज के निकटवर्ती इतिहास मे वह किसी अन्य श्रमण का नही रहा।

स्थानकवासी समाज मे एक ऐसा भी युग था जब कि मुनिराजो का सस्कृत, प्राकृत व्याकरण पढने की ओर किसी भी प्रकार का कोई लगाव नही था। सभी इसे त्याज्य एव हेय मानते थे, परन्तु श्रद्धेयास्पद वन्दनीय आचार्यदेव ने इस दिशा मे महान क्रान्तिकारी पग उठाए। सर्वप्रथम स्वय व्याकरण पढा, तदनन्तर श्रमणो एव श्रमणियो मे व्याकरण-शास्त्र के अध्ययन एव अध्यापन का श्रीगणेश किया।

आचार्य देव प्राकृत-भाषा मे छिपे ज्ञान-रत्नो को प्रकाश मे लाना चाहते थे, उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनागमो के ज्ञान-दीप सर्वत्र जगमगाने चाहिए और जिनेन्द्र-वाणी के ज्ञानालोक से जन-जन के अन्तर्जगत् को आलोकित करके जिनवाणी मे अवस्थित विश्वकल्याण की क्षमता को ससार के सामने रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आप श्री की भावना केवल भावना ही नही रही उसे आपने साकार रूप दिया। बडे-बडे विशाल काय जैनागमो का आपने हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया। मूल पाठ के अनन्तर सस्कृत-छाया, पदार्थ, मूलार्थ, तत्पश्चात् उस पर विस्तृत व्याख्याए लिखकर जैनागमो को हिंदी-साहित्य का एक अनुपम अङ्ग बनाकर साहित्य-जगत् पर महान उपकार किया।

वैसे आचार्य देव ने ६० के लगभग ग्रन्थो का निर्माण किया है, परन्तु इनमे १८ जैनागमो का विस्तृत भाषानुवाद है। इनमे से अनुत्तरौपपातिकदशाग, दशाश्रुत-स्कन्ध, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुयोगद्वार आदि आगम तो आचार्यश्री के जीवन-काल में ही मुद्रित हो गए थे। उनके दिवगत हो जाने पर आचाराग, उपासक-दशाङ्ग तथा नन्दीसूत्र इन तीन आगमो का प्रकाशन हुआ और इस समय श्री अन्त-गडसूत्र स्वाध्यायशील सज्जनो के हाथो मे है।

अन्तगडसूत्र को लिखे हुए वर्षों हो चुके है, साधनाभाव से यह मुद्रित नही हो सका। सौभाग्य की बात समझिए कि श्रद्धेय आचार्य भगवान की पुण्यस्मृति मे सस्थापित आगम-साहित्य प्रसारक सस्था "आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति" अब इसका प्रकाशन करवा रही है। श्रद्धेय पण्डित श्री हेम चन्द्र जी महाराज तथा श्रद्धेय पण्डित श्री फूलचन्द जी महाराज "श्रमण" की आज्ञा से अन्तगडसूत्र के सम्पादन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मानता हूँ कि मैं कोई लेखक नही हू और यह भी जानता हू कि जैनागमो के अथाह सागर की गभीरता से मैं अभी परिचित भी नही हू, तथापि गुरुदेव की कृपा ही समझिए कि इस सत्कार्य को सम्पन्न करने का प्रयत्न हो गया है। इस प्रयत्न मे मुझे कहा तक सफलता मिली है? इसका उत्तर सहृदय पाठक ही दे सकेंगे। मैं तो इतना ही निवेदन किए देता हू कि भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से जहा तक मुझ से हो सका है इसे सुन्दर बनाने का यथामति पूरा-पूरा प्रयत्न किया है।

अन्तगडसूत्र के सम्पादन मे आचार्य अभयदेवसूरि द्वारा रचित सस्कृत टीका के अतिरिक्त आचार्य पण्डितप्रवर पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज द्वारा कृत अन्तगडसूत्रीय सस्कृत टीका का मैंने यथेच्छ प्रयोग किया है। जिस समय जैन धर्म-दिवाकर गुरुदेव आचार्यप्रवर पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने अन्तगडसूत्रीय भाषानुवाद किया था, उस समय पूज्य श्री घासी लाल जी महाराज की सस्कृत टीका प्रकाशित नही हुई थी, परन्तु सम्पादन-काल मे यह टीका प्रकाशित हो चुकी थी। मैं मानता हूँ कि सम्पादन मे इस टीका का जहा-जहाँ प्रयोग किया गया है वह सब टिप्पणी मे होना चाहिए था, परन्तु मैने तो टिप्पणी के अलावा इस टीका का उपयोग हिन्दी विवेचन मे भी किया है। इसके पीछे मेरी भावना यही रही है कि अर्थविबोध सुगमतापूर्वक हो सके और सुविधापूर्वक प्रतिपाद्य विषय को समझाया जा सके। इसी दृष्टि से कही-कही शास्त्रीय भावों को स्पष्ट करने के लिए शका समाधान की पद्धति अपना कर ऊहापोह भी किया गया है।

एक बात विशेष रूप से मनीषी पाठको की सेवा मे निवेदन करना चाहता हू कि अन्तगडसूत्र का सम्पादन स्वनामधन्य, महामना आचार्यदेव के दिवगत हो जाने के अनन्तर किया गया है, अत सम्पादित पक्तिया गुरुदेव आचार्य देव की सेवा में नही रखी जा सकीं। फलत सम्पादित पक्तियो मे जहा भी सैद्धान्तिक या भाषा-सम्बन्धी

कोई भूल दृष्टिगोचर हो तो उसका दायित्व मेरे पर आ जाता है। मूल लेखक पूज्य श्री के साथ उसका कोई सम्बन्ध नही समझना चाहिए। पाठको से सानुरोध एव सादर निवेदन करूगा कि सम्पादन-कार्य मे जहा-जहा कोई स्खलना, भ्रान्ति या अशुद्धि देखने मे आए तो उसकी सूचना मुझे देने का कष्ट करें ताकि भविष्य मे उसका परिमार्जन कर दिया जाए। कष्ट के लिए धन्यवाद।

अन्तगडसूत्र के सम्पादन का सशोधन श्रद्धेय पण्डित श्री फूल चन्द जी महाराज "श्रमण" ने करने की कृपा की है। श्रद्धेय श्रमण जी महाराज पूज्यपाद आचार्य भगवान द्वारा अनुवादित श्री स्थानाङ्ग सूत्र का सम्पादन कर रहे थे, परिणाम स्वरूप व्यस्तता अधिक थी, तथापि इन्होने सशोधन के लिए जो समय दिया है, इस उदारता तथा कृपालुता के लिए इनका हृदय से धन्यवादी हू।

अन्त मे श्रद्धास्पद पण्डित श्री हेमचन्द जी महाराज, सम्मान्य भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराजी तथा सेवाभावी पण्डित रत्न श्री रतनमुनि जी का अत्यन्त आभारी हू। अन्तगडसूत्र के सम्पादन का सर्वाधिक श्रेय इन महापुरुषो की सत्प्रेरणा को ही है।

निवेदक—
ज्ञान मुनि

जैन स्थानक लुधियाना
फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी
वि० २०२४

वर्ग-वर्गीकरण

श्री भगवान् अरिष्टनेमि के शासन मे

प्रथम वर्ग—१ से ६६ तक

द्वितीय वर्ग—७० से ७२ तक

तृतीय वर्ग—७३ से २०७ तक

श्री भगवान् महावीर के शासन मे

षष्ठ वर्ग—२७५ से ३८० तक

१६ अध्ययन

सप्तम वर्ग—३८१ से ३८६ तक

१३ अध्ययन

अष्टम वर्ग—३८७ से ४८८ तक

१० अध्ययन

वैरागन शिक्षा देवी जैन
सुपुत्री—श्री कपूरचन्द जी जैन (मोगा)
आजकल आप सतीसाध्वी बाल-
ब्रह्मचारिणी श्री सुन्दरी जी महाराज
के नेश्राय मे साध्वी बनकर आत्मा-
मोक्ष-पथ प्रशस्त कर रही हैं।

वैरागन कुसुम कुमारी जैन (मोगा)
आजकल आप आर्यिका
श्री आज्ञावती जी महाराज के
सानिध्य मे साध्वी जीवन व्यतीत
कर रही है।

वैरागन सन्तोषकुमारी जैन
सुपुत्री—श्री पन्नालाल जी जैन (कान्ही)
आज कल आप महासती परमविदुषी
श्री जगदीशमती जी महाराज की
शिष्या के रूप मे साधनालीन है।

स्वर्गीय श्रीमती भागवन्ती जी
धर्मपत्नी श्री मुन्शीराम जी जैन
अर्जीनवीस (जीरा)
परम विदुषी महासती श्री अभयकुमारी जी
महाराज एवं श्री सावित्रीदेवी जी महाराज
को जन्म देने का श्रेय इन्हे ही प्राप्त है।

स्वर्गीय रमेशचन्द्र जैन (सुपुत्र श्री बोगामल जैन) जोरा

जिनके हृदय मे जैन-सस्कृति के लिये अगाध श्रद्धा थी जो युवावस्था मे ही स्वर्ग सिधार गये ।

श्रीमती यशोदा बाई जैन
धर्मपत्नी श्री सेठ कुन्दनलाल जैन
लुधियाना रोलिंग मिल्स लुधियाना
जिनके सास्कृतिक अनुराग ने
समस्त परिवार को धार्मिकता
प्रदान की है ।

परिवार मे रहते हुए भी साध्वियो-
सा जीवन व्यतीत करती हुई एव
शिक्षा-प्रसार के लिये यत्नशील
श्रीमती सुशीला देवी जैन
धर्मपत्नी स्व० श्री रमेशचन्द्र
जैन (जीरा), सुपुत्री श्री सेठ
कुन्दनलाल जी जैन लोटिया

श्राविका श्रीमती सुखदेवी जैन
धर्मपत्नी—श्री केदारनाथ जी जैन
सरजीवन हौजरी,
पुराना बाजार, लुधियाना
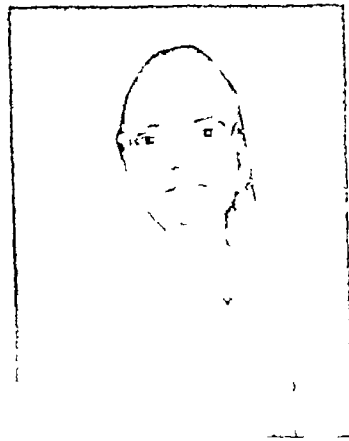
जैन संस्कृति की साधिका
श्रीमती सावित्रीदेवी जैन
धर्मपत्नी—श्री मोहन लाल जी जैन लोटिया
सिविल लाइन, लुधियाना
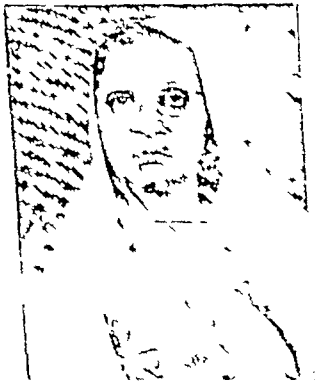
धर्म-ध्यान मे सलीन
श्रीमती तोतीबाई जैन
धमपत्नी—श्री मेहरचन्द जी जैन वकील
गुडगाव (हरियाणा)
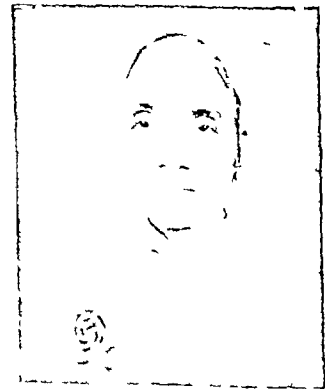
परम श्रद्धामयी देवी
श्रीमती चन्द्रवती जैन
माता श्री निहालचन्द जैन सुराणा
सब्जी मण्डी, दिल्ली

(नीचे)
एस० एस० जैन बिरादरी के
सक्रिय कार्यकर्ता स्वाध्याय-
शील एव दानवीर
श्री कीमतराय जैन
जैन साइकिल कम्पनी
लुधियाना ।

(बाएं)
स्वर्गीय श्री ज्ञानचन्द जैन
फर्म—ज्ञानचन्द सुशील कुमार
चौक हजूरी रोड,
लुधियाना ।
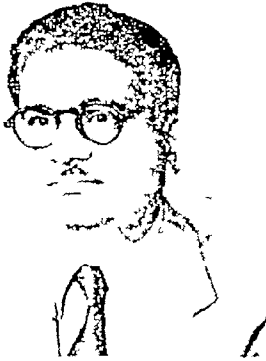
(दाहिनी ओर)
श्री अमरचन्द जैन
सुपुत्र—श्री मोहनलाल जैन
प्रधान जैन सभा (भीखी)
शास्त्रमाला एव आत्म-रश्मि
के आजीवन सदस्य ।

(ऊपर)
श्री तिलकचन्द जी जैन
सुपुत्र—श्री खजाचीलाल जैन
जैन ज्यूलर्स, चादनी चौक, दिल्ली
श्री जगदीश कुमार जैन की ओर से
स्वर्गीय भ्राता की स्मृति मे
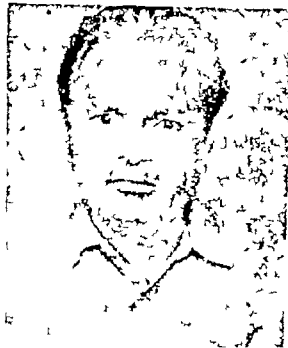
स्वर्गीय श्री सरदारी लाल जैन
लुधियाना
जिनका समस्त जीवन धार्मिक
कृत्यो मे ही व्यतीत हुआ।

श्री हंसराज जी जैन (मूनक)
गवर्नमेंट कन्ट्रैक्टर
आजकल आप लुधियाना मे रहकर
जैन-संस्कृति की सेवा मे लीन है।

स्वर्गीय श्री ऋषिराम जी जैन
सुपुत्र श्री बेलीराम जैन
अमृतसर
जैन मित्र मण्डल के सक्रिय
कार्यकर्ता एव जैन कन्या पाठ-
शाला के सचालक

श्री शोरीलाल जैन
सुपुत्र साई टेकचन्द जी जैन
(स्यालकोट वाले)
धर्मध्यान ही जिनका लक्ष्य है
और प्रत्येक कार्य मे जिनका
योगदान रहता है।
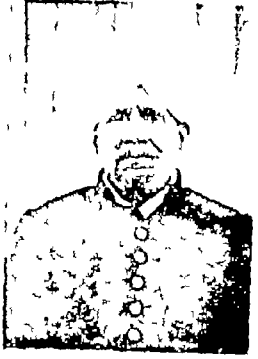
जैनागमो के परम प्रेमी
श्री शादीलाल जी जैन
फर्म- शादीराम बनारसीदास, माहोलीवाले
अहमदगढ मण्डी, लुधियाना।

श्री पन्नालाल जी जैन (सिघाणा)
जिन्होने जीवन भर तन, मन धन
से जैन-सस्कृति के प्रचार
प्रसार मे योग दिया।

जैन-सस्कृति के अमर सस्कारो से युक्त
सुकुमार वीरेन्द्र जैन
सुपुत्र—दानवीर सेठ गुज्जरमल जी जैन
नवा शहर (पजाब)

स्वाध्याय-प्रेमी समाज-हितैषी
स्वर्गीय श्री मानकचन्द जैन जौहरी
दिल्ली।

शास्त्रमाला के स्थायी सदस्य

१ चौधरी श्री सन्तलालजी जैन, लुधियाना
२ श्री सोहनलालजी जैन, ,,
३ श्री बख्शीराम चमनलाल जैन ,,
४ श्री नन्दलालजी जैन ,,
५ श्री हुकमचन्दजी जैन ,,
६ श्री सावनमल जी नाहर ,,
७ श्री हंसराजजी जैन लोहटिया ,,
८ श्री मुन्शीरामजी जैन ,,
९ श्री बालकराम जी जैन ,,
१० श्री प्यारेलालजी जैन सराफ ,,
११ श्री बाकेरायजी जैन ,,
१२ श्री हरिरामजी थापर ,,
१३ श्री नौहरियामल रामप्रसाद जैन ,,
१४ श्री तेलूरामजी जैन ,,
१५ श्री अमरनाथजी जैन ,,
१६ श्री ज्ञानचन्दजी जैन ,,
१७ श्री कुलयशरायजी जैन ,,
१८ श्री खैरायतीलालजी जैन ,,
१९ श्री बहिन देवकीदेवी जैन ,,
२० श्रीमती भाग्यवती जैन ,,
२१ श्रीमती बहिन सुशीलादेवी जैन ,,
२२ बहिन पद्मावतीजी जैन ,,
२३ श्री यशोदाबाई जैन ,,
२४ श्री सरदारीलालजी जैन ,,
२५ श्री शोरीलालजी जैन ,,
२६ श्री ज्ञानचन्दजी जैन ,,
२७ श्री हुक्मचन्दजी लोहटिया ,,
२८ श्री कमलेश कुमारी जैन ,,
२९ श्रीमती सावित्री देवी जैन ,,
३० श्री बनारसीदासजी जैन ,,
३१ श्री कीमतरायजी जैन जैन साइकिल क० ,,
३२ सुश्री वैरागन वीना कुमारी-जैन लुधियाना
३३ श्रीमती सुखदेवी जैन ,,
३४ श्री चौधरी विद्यासागरजी जैन ,,
३५ श्री कीमतरायजी जैन गीदडवाहा
३६ श्री सत्यप्रकाशजी फगवाडा
३७ श्री बनारसीदासजी जैन कपूरथला
३८ श्रीमती द्रौपदीदेवी जैन ,,
३९ श्री चुन्नीलालजी जैन ,,
४० श्री धनीरामजी जैन, सुलतानपुर
४१ श्री देशराजजी जैन सुलतानपुर
४२ श्री घूमीरामजी जैन जालन्धर छावनी
४३ श्री तेलूरामजी जैन ,, ,,
४४ श्री सन्तरामजी जैन अमृतसर
४५ श्री ऋषिराम जैन ,,
४६ वैष्णवदासजी जैन ,,
४७ श्री गोपीरामजी जैन होशियारपुर
४८ श्रीमती फूलवन्ती जैन ,,
४९ श्री हंसराजजी जैन ,,
५० श्री शालिग्रामजी जैन जम्मू
५१ श्रीमती उत्तमीदेवी जैन ,,
५२ श्री कर्मचन्द कस्तूरीलाल जैन ,,
५३ श्रीमती सुमित्रादेवीजी ,,
५४ बहिन सावित्रीदेवीजी जैन जीरा
५५ स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्रजी जैन ,,
५६ श्रीमती भागवन्ती जी जैन ,,
५७ श्री मुन्शीरामजी जैन फरीदकोट
५८ श्रीमती हुक्मीदेवी जैन ,,
५९ श्रीमती विष्णादेवी जैन जैतोमंडी
६० श्री कुन्दनलालजी जैन रामामंडी
६१ श्री रोशनलालजी जैन भटिंडा
६२ श्री रामजीदासजी जैन, मालेरकोटला

मे पधारे। उनके आगमन का समाचार सुनकर नगर-निवासी धर्मोपदेश सुनने आए और उपदेश सुन कर वापिस चले गए। लोगो के चले जाने के बाद आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू स्वामी उनकी पर्युपासना–सेवा करते हुए इस प्रकार बोले—

हिन्दी विवेचन—जैन वाङ्मय मे आगमो का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योकि आगम, तीर्थंकरोपदिष्ट हैं। महामहिम, सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी तीर्थकर भगवान् तीर्थ की स्थापना करते हैं और सब जीवो की रक्षा एव दया के लिए वे धर्मोपदेश देते हैं*। उनके अर्थ रूप प्रवचन को गणधर सूत्र रूप मे ग्रथित करते है और वह बारह भागो मे विभक्त होता है, जिसे आगमिक भाषा मे द्वादशागी कहते हैं।

भगवान का उपदेश चार अनुयोगो—शैलियो मे विभक्त है—१ द्रव्यानुयोग, २ गणितानुयोग, ३. चारित्रानुयोग और ४ धर्मकथानुयोग। कभी भगवान जीव, अजीव आदि द्रव्यो का विश्लेषण करके भव्य जीवो को मोक्ष का मार्ग बताते हैं। कभी गणित के आधार पर उपदेश देते हैं। कभी साध्वाचार--चारित्र का यथार्थ रूप बताकर सयम पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते है। कभी धर्म-कथाओ के सहारे भव्य जीवो को त्याग का मार्ग दिखाते हैं। स्थानाङ्ग आदि आगमो मे द्रव्यानुयोग का वर्णन मिलता है। भगवती सूत्र आदि आगमो मे गणितानुयोग का दर्शन होता है। आचाराङ्गादि आगमो मे साध्वाचार—चारित्र का निरूपण किया गया है। ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग आदि आगम धर्मकथा की शैली पर रचे गए है। कहने का तात्पर्य यह है कि द्वादशाङ्गी का निर्माण चार अनुयोगो मे किया गया है और उनका एक मात्र उद्देश्य है—भव्य आत्माओ को निर्वाण का पथ दिखलाना।

जैनागमो के अनुसार तीर्थकर भगवान द्वादशाङ्गी का उपदेश देते है। १ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरौपपातिक, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाक सूत्र और १२ दृष्टिवाद। यही द्वादशागी वाणी है। वर्तमान मे दृष्टिवाद का विच्छेद हो चुका है। अत इस समय एकादश अङ्ग सूत्र ही विद्यमान हैं। उनमे अन्तकृत् दशा सूत्र आठवा अग है। इसके पहले सात अग-शास्त्र है। उपासकदशाङ्ग सूत्र के बाद प्रस्तुत आगम का वर्णन आता है। उपासकदशाङ्ग सूत्र की तरह इसका भी धर्म-कथा की शैली मे वर्णन किया गया है।

आगम मे प्रतिपाद्य विषय मे प्रविष्ट होने के लिए उपोद्घात—भूमिका अत्यावश्यक है। प्रस्तुत आगम मे भी सूत्रकार ने सर्वप्रथम उपोद्घात—भूमिका का निर्माण किया है। **तेण कालेण तेण समएण** आदि प्रस्तुत पाठ भूमिका रूप से ही हैं। इसमे मुख्य रूप से पाच विषयो का निरूपण किया गया है।—१ वर्णनक्षेत्र, २ उस समय की परिस्थिति, ३ आगम के प्रतिपादक, ४ प्रतिपादक की योग्यता और ५ प्रश्न कर्त्ता। इनके अतिरिक्त इसमे अन्य विषयो का भी जो उल्लेख किया गया है, प्रस्तुत आगम के अनुशीलन एव परिशीलन से यथास्थान उसका बोध प्राप्त हो जायगा।

*सव्व-जग-जीव-रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय—प्रश्नव्याकरण सूत्र।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकर्ता ने वर्णन क्षेत्र एव वर्णन कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है। वर्णन स्थान एव वर्णन कर्ता के पूरे परिचय को जानने के लिए अन्य आगमो को देखने का सकेत कर दिया है। प्रस्तुत मे उल्लिखित **वण्णओ** और **जाव** ये दो पद इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि उस काल और उस समय मे स्थित चपा नगरी एव उसमे रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एव उसमे पधारे हुए आर्य सुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिषद् के आवागमन तक का वर्णन औपपातिक आदि आगमो से जानना चाहिए। औपपातिक सूत्र मे चपा नामक नगरी, पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से परिचय दिया गया है। अत उसका पुन उल्लेख नही करके सकेत मात्र कर दिया है और सुधर्मा स्वामी के जीवन से सवद्ध वर्णन ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र के अनुसार समझना चाहिए। वहा उनके जीवन का पूरा परिचय दिया गया है। इसी प्रकार प्रश्न कर्ता आर्य जम्बू स्वामी के जीवन का परिचय भी ज्ञाता सूत्र मे मिलता है। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र छठा अङ्ग है और प्रस्तुत आगम आठवा अग है। अत पूर्व सूत्र मे वर्णित विषय को यहाँ पुन नही दोहराया गया।

प्रस्तुत पाठ मे पहले आगम-रचना के समय का वर्णन करके फिर स्थान का वर्णन किया गया है। इस मे बताया गया है कि "उस काल और उस समय" मे चपा नाम की एक नगरी थी और उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। जहा पर आर्य सुधर्मास्वामी ने अपने प्रिय शिष्य आर्य जम्बू को प्रस्तुत आगम का वोध कराया था। प्रस्तुत मे उल्लिखित "काल और समय" दोनो शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं, फिर दो शब्दो का प्रयोग क्यो किया गया? इस प्रश्न का होना स्वाभाविक है, साधारणत समय को काल का पर्यायवाची मान लेते है। परन्तु वास्तव मे देखा जाए तो ये दोनो शब्द भिन्नार्थक हैं। काल शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप काल चक्र का बोधक है और समय शब्द उस कालचक्र मे हुए व्यक्ति के समय का बोधक है। तब "उस काल" का यह अर्थ हुआ कि अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे मे इस आगम की वाचना दी गई थी। परन्तु इससे यह स्पष्ट नही कि चतुर्थ आरे मे किस समय वाचना दी गई थी? क्योकि चतुर्थ आरा ४२ हज़ार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। अत इस बात को **तेण समएण** ये पद देकर स्पष्ट किया है। उस समय का यह अर्थ है कि जिस समय आर्य सुधर्मा स्वामी विचरण करते हुए चपा नगरी मे पधारे, उस समय उन्होने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी। इससे यह ध्वनित होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान महावीर के निर्वाण के बाद दी गई थी।

इसके पश्चात् यह बताया गया है कि उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य मे ठहरे। उनकी शरीर-सपदा, उनके कुल एव उनके गुणो का वर्णन प्रस्तुत आगम मे नही किया गया है, क्योकि ज्ञाताधर्मकथा सूत्र मे इसका विस्तार से वर्णन किया जा चुका है और नागरिको के आने एव धर्मोपदेश सुनने का वर्णन भी औपपातिक सूत्र मे किया गया है, अत उसका भी यहा केवलसकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान महावीर के पञ्चम गणधर एव प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे और उनके सुशिष्य आर्य जम्बू स्वामी प्रश्न-कर्ता थे।

पाठको के मन मे यह प्रश्न हो सकता है कि इस उपोद्घात का कर्ता कौन है ? इसका समाधान यह है कि जैसे सुधर्मा स्वामी ने गौतमादि गणधरो का उल्लेख किया है, उसी तरह आर्य जम्बू स्वामी के बाद होने वाले प्रभवादि आचार्यों ने इस उपोद्घात मे आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन कर रखा है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि प्रस्तुत उपोद्घात के कर्त्ता प्रभवादि आचार्य ही थे।

व्याकरण सबधी विचार—

प्राय आर्ष प्राकृत मे अधिकरण—सप्तमी के स्थान मे करण—तृतीया का प्रयोग किया जाता है परन्तु, उसका अर्थ सप्तमी का किया जाता है। अत **तेण** तृतीया विभक्ति का होने पर भी उसका अर्थ सप्तमी का होगा। और यदि उसमे प्रयुक्त **ण** को वाक्यालकार के रूप मे समझ लिया जाए तो अर्द्धमागधी भाषा मे **ते** सप्तमी के अर्थ मे प्रयुक्त होता ही है। और यदि **तेण** शब्द को तृतीयान्त के अर्थ मे माना जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरक लक्षण से और तद्विशेष समय विभाग से चपा नामक नगरी थी। परन्तु, भाषा विज्ञान की दृष्टि से सप्तमी के अर्थ मे ही उसका अर्थ स्पष्ट हो सकता है। अत आर्ष प्राकृत के अनुसार इस का अर्थ सप्तमी का ही करना चाहिए।

प्राकृत भाषा मे **होत्था** क्रियापद अभवत्, अभूत् और बभूव अर्थात् लड्, लुड् और लिट् इन तीनो लकारो के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। अत **होत्था** शब्द का प्रसग के अनुसार अर्थ करना चाहिए। प्रस्तुत मे **होत्था** अभवत् के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अत यहा पर अर्थ होगा कि उस काल और उस समय मे चपा नामक नगरी थी, और यह अर्थ सगत भी है, क्योकि भगवान महावीर के समय मे चपा नगरी जिस रूप मे थी, सुधर्मा स्वामी के शासन काल मे उस रूप मे नही रही। अवसर्पिणी काल होने के कारण वह हीन दशा को प्राप्त होती रही। इस कारण सुधर्मा स्वामी के शासन काल मे चपा नगरी के विद्यमान होने पर भी उसकी पर्यायो मे परिवर्तन आजाने के कारण उसके लिए भूतकाल का प्रयोग किया गया है।

इस तरह प्रस्तुत पाठ का यह अर्थ हुआ कि चतुर्थ आरक के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक यक्षमन्दिर मे ठहरे। उनके आगमन का शुभ सदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापिस चले गए। उस समय उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी विनय-भक्ति एव श्रद्धा पूर्वक उनके चरणो मे उपस्थित होकर विनम्र शब्दो मे बोले। क्या बोले ? इस सबध मे सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे प्रकाश डालेगे।

वण्णओ यह पद वर्णक का बोधक है। वर्णक पद की व्याख्या करते हुए सस्कृत के एक विद्वान लिखते है—

वर्ण्यते, प्रकाश्यते अर्थो येन स वर्ण , वर्ण एव वर्णक वर्णनप्रकरणम् । वर्णयतीति वा वर्णक ।

अर्थात् जिस के द्वारा अर्थ प्रकट होता है, उस पर प्रकाश पड़ता है, उस स्थल को वर्णक

करते हैं। वर्णन करने वाला प्रकरण भी वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है। प्रस्तुत मे वर्णक पद सूत्रकार ने **पुण्णभद्द** चेइए के आगे दिया है, यहाँ वणक पद देकर सूत्रकार औपपातिक सूत्र मे वर्णित पूर्णभद्र उद्यान की ओर सकेत करा रहे है। जिस तरह औपपातिक सूत्र मे पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन किया है, उसी तरह यहाँ पर भी पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन समझ लेना चाहिए। इस तथ्य को व्यक्त करने के लिए सूत्रकार ने उद्यान के आगे वर्णक पद का उल्लेख किया है। आगे जहाँ-जहाँ जिस पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ पर उस पद से ससूचित पदार्थ का वर्णन करने वाले पाठ की ओर सकेत कराना ही सूत्रकार को इष्ट है, यह समझना चाहिए।

वण्णओ पद से औपपातिक सूत्र मे दिए गए जिन पदो की ओर सूत्रकार सकेत कराना चाहते हैं, वे पद निम्नोक्त हैं—

"—चिराईए, पुव्वपुरिसपण्णत्ते, पोराणे, सद्दिए, वित्तिए, कित्तिए, णाए, सच्छत्ते, सज्झए, सघण्टे, सपडागे, पडागाइपडागमडिए, सलोमहत्थे, कमवेयद्दिए, लाउल्लोइयमहिए-गोसीस,सरस-रत्त-चदण-दद्दर-दिण्ण-पचगुलितले, उवचिय-चदणकलसे, चदणघड-सुकय-तोरण-पडिदुवार-देसभाए, आसत्तो-सत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदामकलावे, पचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फ-पुजोवयार-कलिए,कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघत-गधुद्धुयाभिरामे,सुगधवर-गध-गधिए,गन्धवट्टिभूए,णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय- वेलबग-पवग-कहग- लासग-आइक्खग- लख-मख-तूणइल्ल-तुब-वीणिय-भुयग-मागह-परिगए, बहुजण-जाणवयस्स विस्सुयकित्तिए, बहु-जणस्स आहुस्स आहुणिज्जे, पाहुणिज्जे, अच्चणिज्जे, वदणिज्जे, नमसणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणिज्जे, कल्लाण, मगल, देवय, चेइय, विणएण पज्जुवासणिज्जे, दिव्वे, सच्चे, सच्चोवाए, सण्णिहियपाडिहेरे, जाग-सहस्स-भागपडिच्छए, बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्द चेइय। **औपपातिक सूत्र, २**

अर्थात्—पूर्णभद्र चैत्य चिरादि था, उस की रचना बहुत पुरानी थी, उसकी उपादेयता का वर्णन पूर्व पुरुषो ने कर रखा था, वह पुरातन था, वह शब्दित—बडी प्रसिद्धि वाला था, ख्याति वाला था, आश्रित लोगो की आजीविका का साधन था, कीर्तित था, उस की कीर्ति हो रही थी, न्याय था—वहाँ न्याय प्राप्त होता था अथवा ज्ञात था, उसके सामर्थ्य को लोगो ने जान लिया था, सच्छत्र—छत्र वाला था, ध्वज तथा घण्टा से युक्त था पताका—लघु ध्वज और पताकातिपताक—छोटी-छोटी झण्डियो से सुशोभित था, लोममय प्रमार्जन—झाडू से युक्त था, वहा वेदिका बनी हुई थी, गोबर से लीपा हुआ था, खडिया माटी से पोता हुआ था। वहाँ ताज़े घिसे हुए मलयागिरि (मलयागिरि पर्वत पर उत्पन्न होने वाला चदन) और लाल चन्दन से पाच अगुलियो का हाथ (थापा) बनाया हुआ था, वहाँ मागलिक घट स्थापित कर रखे थे। अच्छे-अच्छे तोरण (बाहरी फाटक या सजावट के लिए लटकाई जाने वाली मालाएँ, पत्तियाँ आदि वदनवार) बनाए हुए थे। वहा भूमि को और ऊपरी भाग को छूती हुई, विपुल विस्तार वाली गोल और लम्बी-लम्बी मालाएँ थी, पाँच वर्ण वाले सुगन्धित पुष्पो द्वारा उसकी पूजा की जाती थी। कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दरुक और तुरुक्क इन सब की मघ-मघ करती हुई धूप की सुगध से वह बडा अभिराम बन रहा था। अच्छे-अच्छे सुगन्धित

पदार्थों की गन्ध से युक्त था। सुगन्ध की अतिशयता के कारण मानो वह गन्ध द्रव्यो की गुटिका (गोली) ही बन गया था। नट–नाटक करने वाले, नर्तक–नाचने वाले, जल्ल–रस्से पर खेल करने वाले, मल्ल–मल्लयुद्ध करने वाले, मुष्टि-युद्ध करने वाले, वेलम्वक–विदूपक (मसखरे), कथक–कथाएँ कहने वाले, प्लवक–तैरने वाले, रास गाने वाले, शुभाशुभ वतलाने वाले, लख–विशालबास के अग्रभाग पर खेल करने वाले, मख–चित्र दिखा कर भिक्षा मागने वाले, तूण नाम बाजा बजाने वाले, वीणा वजाने वाले, भोजक–पूजा या सेवा करने वाले, मागध–भाट, स्तुति करने वाले,इन सब से चैत्य युक्त था। नगर तथा देश के लोगो मे उस की ख्याति थी। अनेक लोग मन्त्रोच्चारण करके आहूति देते और आराधन करते थे। चन्दनगन्ध आदि से वह चैत्य अर्चनीय था, स्तवनीय (स्तुतियोग्य) था, नमस्करणीय था, पुष्पादि से पूजनीय था, वस्त्रादि से सत्कारयोग्य था, वहुमान के योग्य था, कल्याण–प्रयोजन सिद्ध करने वाला था, मगल–अनर्थों को दूर करने वाला था, दैवत–देवस्वरूप था, चैत्य–मन को आह्लादित करने वाला था, विनयपूर्वक उपासना करने योग्य था, दिव्य–प्रधान था, सत्यस्वरूप था, सत्य प्रभाव वाला था, अधिष्ठायक देवो ने इसकी महिमा वढा रखी थी, हजारो यज्ञो का भाग उसे प्राप्त होता था, वहुत लोग उस की पूजा करते थे। ऐसा वह पूर्णभद्र नामक यक्ष का मन्दिर था।

"**परिसा निग्गया जाव पडिगया**" यहाँ 'जाव' पद "**धम्म सोच्चा, निसम्म जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस**" इन पदो का परिचायक है । इन का भाव है–जनता धर्म-देशना सुन कर, हृदय मे धारण कर जिस दिशा (ओर) से आई थी, उसी दिशा को चली गई

"**जबू जाव पज्जुवासमाणे**" यहा पठित **जाव** पद भी वण्णओ की भाति अन्य शास्त्रो मे पठित तत्सम्वधी विस्तृत पाठ की ओर सकेत करता है। यदि किसी आगम मे किसी वात का वर्णन विस्तारपूर्वक कर दिया गया है तो सूत्रकार उस विस्तृत वर्णन का पुन उल्लेख न करके उसे **वण्णओ, जाव** पदो से व्यक्त कर देते है। इस शैली को समस्त आगमो मे अपनाया गया है । इसी शैली के आधार पर अन्तगड सूत्र मे विस्तृत पाठ को सूचित करने के लिए सूत्रकार ने कही **वण्णओ** और कही **जाव** इस पद का उल्लेख किया है। प्रस्तुत प्रकरण मे '**जाव**' पद दिया गया है। यह निम्नोक्त पदो का अभिव्यञ्जक है—

***णाम अणगारे कासवगोत्तेण, सत्तुस्सेहे, समचउरस-सठाण-सठिए, वज्जरिसह-नाराय-सघयणे, कणग-पुलग-निघस-पम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोर-बभचेरवासी, ऊच्छूढसरीरे, सखित्त-विउल-तेउलेसे, चोद्दसपुव्वी, चउणाणोवगए, सव्वक्खरसन्निवाई, अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामन्ते उड्ढ जाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए, सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। तते ण अज्ज-जबू णाम अणगारे जायसड्ढे, जायससए, जायकोउहल्ले, सजायसड्ढे, सजायससए, सजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नससए उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्न-ससए**

*ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र ५

समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छइ,उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति, करित्ता वन्दति, नमसति, वदित्ता नमसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे, णमसमाणे अभिमुहे पजलिउडे विणएण ।

इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी के पास सयम और तप से आत्मा को भावित (युक्त) करते हुए विहरण कर रहे थे। आर्य जम्बू काश्यप गोत्रवाले थे,इन का शरीर सात हाथ प्रमाण का था, पालथी मार कर बैठने पर शरीर की ऊचाई और चौडाई बराबर हो, ऐसे सस्थान वाले थे, इन का ‡वज्रऋषभनाराच सहनन था, सोने की रेखा के समान और पद्मराग (कमलरज) के समान वर्ण वाले थे, उग्र (साधारण मनुष्य की कल्पना मे न आनेवाला) तप करने वाले थे, दीप्ततपस्वी थे—कर्म रूपी गहन वन को भस्म करने मे समर्थ तप करने वाले थे, तप्ततपस्वी थे—कर्मसन्ताप का विनाशक तप करने वाले थे, महातपस्वी थे—स्वर्गादि की प्राप्ति की इच्छा विना तप करने वाले थे, उदार—प्रधान थे, आत्म शत्रुओ को विनष्ट करने मे निर्भीक थे, दूसरो के द्वारा दुष्प्राप्य गुणो को धारण करने वाले थे, घोर—विशिष्ट तपस्वी थे, दारुण—भीषण ब्रह्मचर्य व्रत के पालक थे, शरीर पर ममत्व नही रख रहे थे, तेजोलेश्या—विशिष्ट तपोजन्य लब्धि विशेष को सक्षिप्त किए हुए थे, चौदह पूर्वो के ज्ञाता थे, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यव ज्ञान इन चारो ज्ञानो के धारक थे, इन को समस्त अक्षरसयोग का ज्ञान था, इन्होने उत्कुटुक नामक आसन लगा रखा था, ये अधोमुख थे—नीचे को मुख किए हुए थे, धर्म तथा शुक्ल ध्यान रूप कोष्ठक मे प्रवेश किए हुए थे, अर्थात् जिस प्रकार कोष्ठक मे धान्य सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार ध्यान रूप कोष्ठक मे प्रविष्ट हुए आत्मवृत्तियो को सुरक्षित रखे हुए थे।

तत्पश्चात् आर्य जम्बू स्वामी के हृदय मे अन्तगड मे वर्णित तत्त्वो को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई, साथ मे यह *सशय भी उत्पन्न हुआ कि उपासकदशाग सूत्र मे जिस प्रकार श्रावको के जीवनवृत्त वर्णित हुए हैं, क्या उसी तरह ही अन्तगड सूत्र मे श्रावको के जीवनो का उपन्यास किया है या उस मे किसी भिन्न पद्धति का आश्रयण किया है? तथा उन्हे यह उत्सुकता भी हुई कि जब उपासकदशाग सूत्र मे श्रावको के जीवनवृत्तान्त प्रस्तावित हो चुके हैं, उन्ही से अनगारवर्ग के त्याग-प्रधान जीवनो की कल्पना की जा सकती है, तो फिर देखें श्रद्धेय गुरुदेव अन्तगड सूत्र मे अनगार-जीवन को लेकर क्या फरमाते हैं?

प्रस्तुत मे जो जात, सजात, उत्पन्न तथा समुत्पन्न ये चार पद दिए हैं। इन मे प्रथम जात

---

‡सहनन छः होते हैं। यह सहनन सब से अधिक बलवान होता है।

* जम्बू स्वामी को क्या सशय उत्पन्न हुआ था? इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नही मिलता, टीकाकार भी यहा मौन हैं, तथापि ज्ञाता-धर्मकथाग सूत्र के प्रथम अध्ययन मे उल्लिखित सशय की भाँति प्रस्तुत मे कल्पना की गई है।

—सम्पादक

शब्द साधारण तथा सजात शब्द विशेष, इसी भांति उत्पन्न शब्द भी सामान्य और समुत्पन्न शब्द विशेष का बोध कराता है। जात और उत्पन्न शब्दो मे इतना ही भेद है कि उत्पन्न शब्द उत्पत्ति का और जात शब्द उस की प्रवृत्ति का ससूचक है। भाव यह है कि पहले श्रद्धा, सशय और कौतूहल पैदा हुआ, तत्पश्चात् इनमे प्रवृत्ति हुई।

जातश्रद्ध, जातसशय,जातकौतूहल, सजातश्रद्ध, सजातसशय, सजातकौतूहल, उत्पन्न-श्रद्ध,उत्पन्न सशय, उत्पन्नकौतूहल, समुत्पन्नश्रद्ध समुत्पन्नसशय और समुत्पन्नकौतूहल श्री जम्बू स्वामी अपने स्थान से उठकर खडे होते हैं,खडे होकर जहा श्रीसुधर्मा स्थविर विराजमान थे,वहा पर आते हैं,आकर उन्होने श्री सुधर्मा स्वामी को दक्षिण ओर से तीन वार प्रदक्षिणा (परिक्रमा) दी, प्रदक्षिणा करके स्तुति और नमस्कार किया,स्तुति नमस्कार करके वे आर्यसुधर्मा स्वामी के थोडी सी दूरी पर,सेवा और नमस्कार करते हुए सामने बैठे और हाथो को जोड कर विनय-पूर्वक उनकी भक्ति करने लगे।

अगो मे उपागो का उद्धरण क्यो ?

जैन वाड्मय अग, उपाग, मूल और छेद इन चार विभागो मे विभक्त है। उन मे आचाराग सूत्रकृताग आदि ११ अग हैं। औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय आदि १२ उपाग हैं। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि चार मूल सूत्र हैं, दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प आदि चार छेद सूत्र है। ये सव मिल कर ३१ होते है, आवश्यक सूत्र के जुड जाने से आगमो की सख्या ३२ हो जाती है। इन मे अगसूत्र गणधरकृत हैं। गणधर देवो ने अगसूत्रो की रचना की है। कालदोषकृत बुद्धिबल और आयु की कमी को देख कर सर्वसाधारण के हित के लिए अगो मे से भिन्न-भिन्न विषयो पर गणधरो के पश्चाद्वर्ती श्रुतकेवली या पूर्वधर आचार्यों ने जो शास्त्र रचे हैं, वे उपाग कहलाते है। इस वर्णन से हम यह प्रकट करना चाहते हैं कि आगमो मे अगसूत्रो का स्थान सर्वोपरि है, सर्वोच्च है, उन अग सूत्रो के आधार पर ही अन्यान्य समर्थ आचार्यों ने उपाग सूत्र बनाए है।

अन्तगड सूत्र अग सूत्र है, और औपपातिक उपाग सूत्र है। अन्तगड मे पठित "**वण्णओ**" पद औपपातिक सूत्र मे वर्णित पूर्णभद्र चैत्य के वर्णन की ओर सकेत करता है। इस तरह अग सूत्र अन्तगड मे उपांग सूत्र औपपातिक का उद्धरण स्पष्ट उपलब्ध हो रहा है। सूत्रो के क्रमानुसार अगसूत्र मे उपाग का उद्धरण नही होना चाहिए, उपाग सूत्रो मे अगसूत्रो का निर्देश हो तो यह तर्कसगत ठहरता है, पर अगसूत्रो मे उपांग सूत्रो का उद्धरण बुद्धिसगत प्रतीत नही होता। अत यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा क्यो किया गया ? अगसूत्र मे उपांगसूत्र का उद्धरण देने का क्या कारण है ?

अगसूत्रो का स्थान सर्वोच्च है, इन्ही के आधार पर उपांगसूत्र बनाए गए है। यह सैद्धान्तिक सत्य है। इस से किसी को कोई मतभेद नही है। फिर भी अगसूत्रो मे उपागसूत्रो का जो निर्देश है, इस का एक कारण है, वह कारण यह है कि आगमो को लिपिवद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नही रखा गया। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, आचाराग सूत्र, स्थानाग सूत्र, इन मे किसी सूत्र का उद्धरण नही दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिवद्ध पहले कर

लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिवद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तारपूर्वक एक सूत्र मे कर दिया गया, उस का पौन-पुन्येन वर्णन करना उचित नही समझा गया, परिणामस्वरूप जिस सूत्र मे जिस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन हो चुका था, उस का उद्धरण देकर पाठ को सक्षिप्त कर दिया गया। अन्तगड मे औपपातिक सूत्र का जो निर्देश है, इस से सिद्ध होता है कि औपपातिक सूत्र अन्तगड सूत्र से पहले लिपिवद्ध किया जा चुका था।

भगवती सूत्र मे नन्दी, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यकसूत्र आदि सूत्रो के उद्धरण मिलते हैं, इस से भी यह प्रमाणित होता है कि भगवती सूत्र को वहुत पीछे लिपिबद्ध किया गया है और उसमे उद्धृत आगमो को उस से पहले लिपिवद्ध कर लिया गया था। **रहस्य तु केवलिगम्यम्।**

'अज्जसुहम्मे' इस मे आर्य और सुधर्मा ये दो पद हैं। आर्य शब्द की व्याख्या करते हुए सस्कृत के एक विद्वान लिखते है—

"अर्यते भविभिर्गम्यते कल्याणप्राप्तये य स आर्य । अथवा हेयधर्माद् आरात् यायते—दूरेण स्थीयते येन स आर्य । अथवा कर्मरूप-काष्ठुच्छेदेकत्वाद्रत्नत्रयरूपमारम्, तद् याति—प्राप्नोति य स आर्य ।"

अर्थात्—भव्य प्राणी अपने कल्याण के लिए जिन की सेवा करते हैं, अथवा हेय, त्याज्य पदार्थो से जो दूर रहते है। अथवा कर्मरूप काष्ठ का छेदन करने के लिए रत्नत्रय रूप आरा जिन्होने प्राप्त कर लिया है, उन को *आर्य कहते है।

आध्यात्मिक जगत मे आर्य शब्द का वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर्य शब्द ही एक ऐसा शब्द है, जिसमे सब गुणो का समावेश हो जाता है। आर्य शब्द की इसी महानता के कारण इसे श्री सुधर्मा स्वामी का विशेषण वनाया गया है। यह विशेषण देकर सूत्रकार सुधर्मा स्वामी में अहिंसा, सत्य, क्षमा, निर्लोभता आदि सभी सद्गुणो का अस्तित्व प्रकट करना चाहते हैं।

सुधर्मा भगवान महावीर स्वामी के प्रथम पट्टधर हैं, भगवान महावीर की वश परपरा को आगे चलाने वाले सर्वप्रथम महापुरुष श्री सुधर्मा स्वामी हैं। सु—प्रशस्त धर्म—ज्ञान चारित्र वाले, तथा प्रशान्त स्वभाव होने के कारण ही इनको सुधर्मा यह अन्वर्थ नाम दिया गया है।

पाठ भेद क्यो ?—

अन्तगड की तीन प्रतिया हमारे सामने हैं, तीनो मे पाठ भेद मिलता है। पाठको की जानकारी के लिये उसे यहाँ दिया जा रहा है। एक प्रति मे लिखा है—

तेण कालेण तेण समएण चपानाम नगरी, पुन्नभद्दे चेतिए। वन्नओ। तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव पडिगया। तेण कालेण तेण समएण

*अज्जइ भविहिं आरा जाइज्जइ हेयधम्मओ जो वा।
रयणत्तयरूव वा, आर जाइत्ति अज्ज इय वुत्तो॥

अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्जजबू जाव पज्जुवासति एव वदासि ।

यह पाठ आगमोदयसमिति द्वारा प्रकाशित प्रति का पाठ है। श्रद्धेय पूज्य श्री घासी लाल जी महाराज द्वारा अनुवादित प्रति मे निम्नोक्त पाठ उपलब्ध होता है—

तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नगरी होत्था, वण्णओ। तत्थ ण चपाए नगरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ ण पुण्णभद्दे णाम चेइए होत्था। वणसडे वण्णओ। तीसे ण चपाए णयरीए कोणिए नाम राया होत्था, महया हिमवत० वण्णओ०। सू० १।

तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मे थेरे जाव पचहि अणगारसएहि सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेण विहरमाणे जेणेव चपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइये तेणेव समोसरिए। परिसा निग्गया जाव परिसा पडिगया। तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्जजबू जाव पज्जुवासमाणे एव वयासी।

प्रोफेसर M C MODI M A L L B पूना द्वारा सम्पादित अन्तगड सूत्र मे लिखा है—

तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी। पुण्णभद्दे चेइए वणसडे। (वण्णओ) तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया। [जाव] पडिगया। तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्ज जबू [जाव] पज्जुवासइ। एव वयासी।

इन पाठान्तरो से सुस्पष्ट हो जाता है कि आगमीय पाठ मे एकता नही है। आगमज्ञ मनीषी विद्वानो को इस दिशा मे अवश्य ध्यान देना चाहिए। पाठगत एकता सर्वथा सुरक्षित रहनी चाहिए।
(सम्पादक)

श्रद्धेय जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी की सेवा मे उपस्थित हो कर जो निवेदन करते हैं, सूत्रकार अगले सूत्र मे उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—जइ णं भते ! समणेणं आदिकरेणं जाव सम्पत्तेण, सत्तमस्स अगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भते ! अंगस्स अतगडदसाणं समणेण० के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जबू ! समणेण जाव सम्पत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाण अट्ठवग्गा पण्णत्ता।

छाया—**यदि भदन्त ! श्रमणेन आदिकरेण** यावत् सम्प्राप्तेन सप्तमस्य **अङ्गस्य** उपासकदशानाम-**यमर्थ प्रज्ञप्त, अष्टमस्य भदन्त ! अङ्गस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेण कोऽर्थ प्रज्ञप्त ? एव खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमाङ्गस्य अन्तकृद्दशानामष्टवर्गा प्रज्ञप्ता।**

पदार्थ—**ण**—वाक्य* सौन्दर्यार्थ मे है **भते** ! हे भगवन् ! पूज्य गुरुदेव ! **जइ**—यदि **आदिकरेण**—श्रुतधर्म की आदि करने वाले **जाव**—यावत् **सपत्तेण**—मोक्ष को प्राप्त **समणेण**—श्रमण भगवान महावीर ने **सत्तमस्स**—सातवे **अगस्स**—अग **उवासगदसाण**—उपासकदशाङ्ग सूत्र का **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादन किया है। **भते** ! हे भगवन् ! **समणेण**—श्रमण भगवान महावीर ने **अट्ठमस्स**

*सर्वत्र यही जानना चाहिये।

अगस्स—आठवे अग **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र का के **अट्ठे**—क्या अर्थ **पण्णत्ते**?—प्रतिपादन किया है? **जबू**!—हे जम्बू! **जाव सम्पत्तेण**—यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त **समणेण**—श्रमण भगवान महावीर ने **एव खलु**—निश्चय ही इस प्रकार **अट्ठमस्स**—अष्टम **अगस्स**—अग **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र के **अट्ठवग्गा**—आठ वर्ग **पण्णत्ता**—कहे है।

मूलार्थ—हे भगवन्! श्रुतधर्म की आदि करने वाले यावत् निर्वाण पद को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सप्तम अग उपासकदशाङ्ग सूत्र का यह अर्थ प्रतिपादन किया है जिस को अभी मैंने आप श्री के मुखारविद से सुना है। हे भगवन्! अब यह बतलाने की कृपा करे कि श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र का क्या अर्थ बताया है?

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए है।

हिन्दी विवेचन—आगमो के पर्यालोचन से यह भली भाति स्पष्ट हो जाता है कि आगम श्री जम्बू और आर्य सुधर्मा स्वामी इन महापुरुषो के प्रश्नोत्तररूप हैं। श्री जम्बू प्रश्न करते है और उनके श्रद्धेय गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी उस का उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमो के रूप मे दिखाई देते हैं। प्रस्तुत वर्णन इस तथ्य को पूर्णतया स्पष्ट कर रहा है। यहा लिखा है कि जम्बू स्वामी अपने पूज्य गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से विनय-पूर्वक पूछते हैं कि भन्ते! अहिंसा, सत्य के अमर सन्देशवाहक भगवान महावीर ने उपासकदशाग सूत्र का जो वर्णन किया है उसका मैंने श्रवण कर लिया है। अब मेरी इच्छा है कि मैं आठवे अग श्री अन्तकृद्दशाग का वर्णन सुनू। मैं जानना चाहता हू कि इस आगम मे भगवान ने किन-किन महापुरुषो के जीवनवृत्त प्रस्तुत किए हैं? अपने प्रिय शिष्य श्री जम्बू अनगार की विनयभरी प्रार्थना सुनकर परमदयालु गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—जम्बू! अन्तकृद्दशाग सूत्र के आठ वर्ग है, यह आगम आठ विभागो मे विभक्त है। यह प्रस्तुत सूत्र का सक्षिप्त साराश है। इस मे गुरुशिष्य के प्रश्नोत्तर की रूपरेखा स्पष्ट रूप मे परिलक्षित हो रही है।

प्रस्तुत सूत्र मे गुरुशिष्य के प्रश्नोत्तर की मर्यादा, एव अगसूत्रो के क्रमश अध्ययन करने की विधि का बडे सुदर ढग से वर्णन उपलब्ध होता है। इस मे प्राचीन युग की वर्णन शैली का भी परिज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन युग मे अर्थ स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान रहता था, उसे अधिक से अधिक सुबोध बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता था। भाषा की कठिनता, दुरूहता, प्राञ्जलता इतनी अपेक्षित नही थी, जितनी कि अर्थस्पष्टता। वस्तुत सुबोध, सरल और रुचिपूर्ण शैली द्वारा पाठको के हृदयो तक अपने भाव पहुचा देना और उन के प्रति उन्हे आकर्षित कर लेने मे ही वक्ता या लेखक की विशेषता, बुद्धिमत्ता और लोकप्रियता सन्निहित रहती है। यही कारण है

कि आगमकार श्रद्धेय महापुरुषो ने भापा के काठिन्य-जाल से अपने को सर्वथा उन्मुक्त रखा है और सर्वथा सरल, अथच स्पष्ट पद्धति का ही आश्रयण किया।

आगमो के ३ प्रकार–

जैनाचार्यों ने तीन प्रकार के आगम बताए हैं। वे इस प्रकार है–

१–आत्मागम–गुरुजनो के उपदेश विना स्वयमेव आगमो का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर भगवान के लिए अर्थागम आत्मागम रूप है और गणधरो के लिए सूत्रागम* आत्मागम रूप है।

२–अनन्तरागम–स्वय आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान के लिए अर्थागम अनन्तरागमरूप है। तथा जम्बू स्वामी आदि गणधरशिष्यो के लिए सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

३–परम्परागम–आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न हो कर जो आगम ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जम्बू स्वामी आदि गणधरशिष्यो के लिए अर्थागम परम्परागमरूप है। तथा इन के वाद के सभी साधको के लिए सूत्र एव अर्थ दोनो प्रकार का आगम परम्परागम‡ है।

ऊपर की पक्तियो से हम यह ध्वनित करना चाहते हैं कि अन्तकृद्दशाग सूत्र अर्थकी दृष्टि से तीर्थंकर भगवान के लिए आत्मागम है, गणधरो के लिए अनन्तरागम है और गणधरशिष्यो के लिए परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरो के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यो के लिए अनन्तरागम, और गणधरप्रशिष्यो के लिए परम्परागम है।

आगमो के आदि काल की ओर दृष्टिपात करते है तो पता चलता है कि अर्थरूप से आगमो का प्रतिपादन तीर्थंकर भगवान करते हैं, तीर्थंकर भगवान के प्रतिपादन किए हुए अर्थों को ही उन के गणधर सूत्ररूप मे परिवर्तित करते है, अर्थ का सूत्ररूप मे निर्माण करके जनता मे प्रचार करते हैं। वस्तुत गणधर भगवान, तीर्थंकर भगवान से प्राप्त किए हुए पदार्थ के केवल प्रचारक है, स्वय उसके द्रष्टा या स्रष्टा नही हैं। धर्म-अधर्म आदि द्रव्यो के स्वरूप को आमूलचूल सोचने समझने और जानने मे छद्मस्थ आत्माए समर्थ भी नही है। अत सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान द्वारा फरमाए हुए पदार्थो का विवेचन ही गणधर देव करते है। प्रस्तुत सूत्र के **"एव खलु जम्बू ! समणेण जाव**

---

*मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम, सूत्र तथा अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते है।

‡आगमे तिविहे पण्णत्ते, तजहा–अत्तागमे, अणतरागमे, परपरागमे, । तित्थगराण अत्थस्स अत्तागमे, गणहराण सुत्तस्स अत्तागम, अत्थस्स अणतरागमे, गणहरसीसाण सुत्तस्स अणतरागम अत्थस्स परपरागमे, तेण पर सुत्तस्स वि अत्थस्स वि णो अणतरागमे, परपरागमे ।

अनुयोगद्वार, प्रमाणविषय–सू० १४७

सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अन्तगडदसाण अट्ठ वग्गा पण्णत्ता" ये शब्द स्पष्ट रूप से उक्त तथ्य का समर्थन कर रहे हैं।

"समणेण आदिकरेण जाव सपत्तेण" यहा पठित जाव-यावत् पद निम्नोक्त पदो का ससूचक है-

"तित्थगरेण, सयसबुद्धेण, पुरिसुत्तमेण, पुरिस-सीहेण, पुरिस-वर-पुण्डरीएण, पुरिसवरगन्ध-हत्थिएण, लोगुत्तमेण, लोग-नाहेण, लोगहिएण, लोगपईवेण, लोगपज्जोयगरेण, अभयदएण, चक्खुदएण,-मग्गदएण, सरणदएण, जीवदएण, बोहिदएण, धम्मदएण, धम्मदेसएण, धम्मनायगेण, धम्मसारहिणा, धम्म-वर-चउरत-चक्कवट्टिणा, दीवो ताण, सरण, गई, पइट्ठा, अप्पडिहय-वर-नाण-दसणधरेण, वियट्ट-छउ-मेण, जिणेण, जावएण, तिण्णेण, तारएण, बुद्धण, बोहएण, मुत्तेण, मोयएण, सव्वण्णुणा, सव्वदरिसिणा, सिवमयलमरुअमणतमक्खयमव्वावाहमपुणरावित्ति-सिद्धि-गइ-नामधेय ठाण—" श्रमण आदि पदो का अर्थ निम्नोक्त है—

श्रमण—तपस्वी, अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय-समान व्यवहार करने वाले श्रमण कहलाते हैं।

आदिकर—आचाराग आदि बारह अगग्रन्थ श्रुतधर्म कहे गए हैं। श्रुतधर्म के आदिकर्ता, आद्य उपदेशक होने के कारण भगवान को आदिकर कहा गया है।

तीर्थंकर—जिस के द्वारा ससार-रूपी मोह-माया का नद सुविधापूर्वक तिरा जा सकता है, उसे तीर्थ कहते हैं, वह तीर्थ धर्म है, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर हैं।

स्वयसम्बुद्ध—अपने आप प्रबुद्ध होने वाला, क्या ज्ञेय है? क्या उपादेय है? और क्या उपेक्षणीय है? यह ज्ञान जिन्हे स्वत ही प्राप्त हुआ है, उन्हे स्वयसम्बुद्ध कहते हैं।

पुरुषोत्तम—जो पुरुषो मे उत्तम हो, श्रेष्ठ हो, वे पुरुषोत्तम है। भगवान के क्या बाह्य क्या आभ्यन्तर, दोनो ही गुण अलौकिक होते हैं, असाधारण होते हैं, इसलिए वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

पुरुषसिंह—पुरुषो में सिंह के समान। जिस प्रकार मृगराज अपने बल और पराक्रम के कारण निर्भय रहता है, कोई भी अन्य पशु वीरता मे उसकी समानता नही कर सकता, उसी प्रकार भगवान भी निर्भय रहते थे और कोई भी ससारी प्राणी उनके आत्मबल, तप, त्याग सम्बन्धी वीरता की बराबरी नही कर सकता था।

पुरुष-वर-पुण्डरीक—पुण्डरीक श्वेत कमल का नाम है। अन्य कमलो की अपेक्षा श्वेत कमल सौन्दर्य एव सुगध मे अत्यन्त उत्कृष्ट होता है, हजारो कमल भी उसकी सुगन्धि की बराबरी नही कर सकते। भगवान महावीर पुरुषो मे श्वेत कमल के समान थे, उनके आध्यात्मिक जीवन की सुगन्ध अनन्त थी, उसकी कोई बराबरी नही कर सकता था।

पुरुष-वर-गन्धहस्ती—भगवान पुरुषो मे गन्धहस्ती के समान थे। गन्धहस्ती एक विलक्षण हाथी होता है, उसमे ऐसी सुगन्ध होती है कि सामान्य हाथी उसकी सुगन्ध पाते ही त्रस्त हो

भागने लगते है, वे उसके पास नही ठहर सकते। भगवान महावीर को गन्धहस्ती के समान कहने का अभिप्राय है—जहा भगवान विराजमान होते थे, वहा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कोई भी उपद्रव नही होने पाता था।

लोकोत्तम—लोक शब्द से स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक इन तीनो का ग्रहण होता है। तीन लोक मे जो ज्ञान आदि गुणो की अपेक्षा सब से प्रधान हो, वह लोकोत्तम कहलाता है।

लोकनाथ—नाथ शब्द का अर्थ है—योग (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की सकट के समय पर रक्षा करना) करने वाला। लोक का नाथ लोकनाथ है। सम्यग्दर्शन आदि सद्गुणो की प्राप्ति कराने के कारण तथा उनसे स्खलित होने वाले मेघकुमार आदि को स्थिर करने के कारण भगवान को लोकनाथ कहा गया है।

लोकहित—लोक का हित करने वाले को लोकहित कहते है। भगवान मोहनिद्रा मे प्रसुप्त विश्व को जगा कर आध्यात्मिकता एव सच्चरित्रता की पुण्य विभूति से मालामाल कर उसका हित सम्पादित करते थे।

लोकप्रदीप—लोक को दीपक की भाति प्रकाश देने वाला। भगवान लोक को यथावस्थित वस्तु-स्वरूप दिखलाते है, इसलिए इन्हे लोक—प्रदीप कहा गया है।

लोकप्रद्योतकर—प्रद्योतकर सूर्य का नाम है। जो लोक मे सूर्य के समान हो, उसे लोक-प्रद्योतकर कहते है। भगवान महावीर लोक के सूर्य थे। अपने केवल ज्ञान के प्रकाश को विश्व मे फैला कर उन्होने उस के मिथ्यात्व-अन्धकार को नष्ट किया था।

अभयदय—अभय-निर्भयता के दाता महापुरुष अभयदय कहलाते है। भगवान महावीर अभयदय थे। विरोधी से विरोधी के प्रति भी उन के हृदय मे करुणा की धारा बहा करती थी।

चक्षुर्दय—आखो के देने वाले। जब मानवी जगत के ज्ञानरूप नेत्रो के सामने अज्ञान का जाला आ जाता है, उसे सत्यासत्य का कुछ विवेक नही रहता, तब भगवान ससार को ज्ञान नेत्र देते है, अज्ञान का जाला साफ करते हैं। इसी लिए भगवान को चक्षुर्दय कहा गया है।

मार्गदय—मार्ग के देने वाले—बताने वाले को मार्गदय कहते हैं। सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। भगवान महावीर ने इस का वास्तविक स्वरूप ससार के सामने रखा था, अतएव उन को मार्गदय कहा गया है।

शरणदय—शरण-त्राण देने वाले महापुरुष शरणदय कहलाते है। भगवान की शरण मे आने पर किसी को किसी प्रकार का कष्ट नही रहने पाता था।

जीवदय—सयम जीवन के देने वाले जीवदय कहे गए है। भगवान की पवित्र सेवा मे आने वाले अनेक साधको ने सयम का आराधन करके परम साध्य निर्वाणपद को पाया था।

बोधिदय—बोधि सम्यक्त्व को कहते हैं। सम्यक्त्व को प्राप्त करवाने वाले महापुरुष बोधिदय कहलाते हैं।

धर्मदय—धर्म के दाता धर्मदय है। भगवान महावीर ने अहिंसा, सयम और तपरूप धर्म का ससार को परम पावन अनुपम सदेश दिया था।

धर्मदेशक—धर्मोपदेष्टा को धर्मदेशक कहते है। भगवान श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का मर्म बतलाते हैं, इसलिए इन्हे धर्मदेशक कहा गया है।

धर्मनायक—धर्म के नेता धर्मनायक कहलाते हैं। भगवान धर्ममूलक सदनुष्ठानो का तथा धर्म सेवी व्यक्तियो का नेतृत्व किया करते थे।

धर्मसारथि—रथ को निरूपद्रवरूप से चलाता हुआ जो उस की रक्षा करता है, रथ मे जुते हुए बैल आदि प्राणियो का सरक्षण करता है उसे सारथि कहते है, भगवान धर्मरूपी रथ के सारथि हैं। भगवान धर्मरथ मे बैठने वालो के सारथि बनकर उन्हे निरुपद्रव स्थान—मोक्ष मे पहुचाते है।

धर्मवर-चतुरन्त-चक्रवर्ती—पूर्व, पश्चिम और दक्षिण—इन तीन दिशाओ मे समुद्रपर्यन्त और उत्तरदिशा मे चुल्लहिमवन्त पर्वत पर्यन्त के भूमि भाग का जो अन्त करता है अर्थात् इतने विशाल भूखण्ड पर जो विजय करता है, इतने मे जिस की अखण्ड और अप्रतिहत आज्ञा चलती है, उसे चतुरन्त-चक्रवर्ती, चक्रवर्तियो में प्रधान चक्रवर्ती को वर-चतुरन्त-चक्रवर्ती कहते हैं। धर्म का वरचतुरन्त चक्रवर्ती धर्म-वर-चतुरन्त-चक्रवर्ती कहा जाता है। भगवान महावीर स्वामी नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारो गतियो का अन्त कर सम्पूर्ण विश्व पर अपनी अहिंसा और सत्य का धर्मराज्य स्थापित करते हैं। अथवा दान, शील, तप और भाव रूप चतर्विध धर्म की साधना स्वय अन्तिम कोटि तक करते हैं और जनता को भी इस धर्म का उपदेश देते हैं, अत वे धर्म के वरचतुरन्त-चक्रवर्ती कहलाते हैं। अथवा जिस प्रकार सब चक्रवर्ती के अधीन होते हैं, चक्रवर्ती के ही विशाल राज्य मे सब राजाओ का राज्य अन्तर्गत हो जाता है। उसी प्रकार ससार के समस्त धर्मतत्त्व भगवान के अनेकान्त तत्त्व के नीचे आ गए है। भगवान का अनेकान्त तत्त्व चक्रवर्ती के विशाल राज्य के समान है और अन्य धर्मप्ररूपको के तत्त्व एकान्त रूप होने के कारण अन्य राजाओ के समान हैं। सभी एकान्तरूप धर्मतत्त्व अनेकान्त तत्त्व के अन्तर्गत हो जाते है। इसीलिए भगवान को धर्म का श्रेष्ठ चक्रवर्ती कहा गया है।

द्वीप, त्राण, शरण, गति, प्रतिष्ठा—द्वीप टापू को कहते है। ससार सागर मे नानाविध दु खो की विशाल लहरो के अभिघात से व्याकुल प्राणियो को भगवान सान्त्वना प्रदान करने के कारण द्वीप कहे गए हैं। अनर्थो—दु खो के नाशक होने के कारण प्रभु को त्राण, धर्म और मोक्ष रूप अर्थ का सम्पादन करने के कारण भगवान को शरण कहा गया है। सुख की प्राप्ति के लिए दुखी व्यक्तियो द्वारा जिस का आश्रय लिया जाए उसे गति कहते हैं। प्रतिष्ठा शब्द "ससार रूप गर्त में पतित प्राणियो के लिए जो आधार रूप है", इस अर्थ का परिचायक है। दु खियो को आश्रय देने के कारण गति और उन का आधार होने से भगवान को प्रतिष्ठा कहा गया है।

मूल सूत्र में '**समणेण**' इत्यादि पद तृतीयान्त प्रस्तुत हुए हैं, जबकि "**दीवो**" इत्यादि पद प्रथमान्त। ऐसा क्यो है ? यह प्रश्न उत्पन्न होना अस्वाभाविक नही है। परन्तु औपपातिक सूत्र

मे वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने **"नमोत्थुण अरिहताण भगवताण"** इत्यादि षष्ठ्यन्त पदो मे पढे गए **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा"** इन प्रथमान्त पदो की व्याख्या मे **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा इत्यत्र जे तेसिं नमोत्थु णमित्येव गमनिका कार्ये ति"** इस प्रकार लिखा है। अर्थात् वृत्तिकार के मतानुसार **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा"** ऐसा ही पाठ स्वीकार किया गया है। और उसके अर्थ-सकलन में **"जे तेसिं णमोत्थु ण"** जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप है, उन को नमस्कार हो, ऐसा अध्याहारमूलक अन्वय किया है। प्रस्तुत मे जो प्रश्न उपस्थित हो रहा है, वह भी वृत्तिकार की मान्यतानुसार **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा, इत्यत्र जो तेणत्ति"** (जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप है, उसने) इस पद्धति से समाहित हो जाता है।

अप्रतिहत-ज्ञान-दर्शन-धर—अप्रतिहत का अर्थ है—किसी से बाधित न होने वाला, किसी से न रुकने वाला। ज्ञान, दर्शन के धारक को ज्ञानदर्शनधर कहते है। तब भगवान महावीर स्वामी अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले थे। यह अर्थ फलित हुआ।

व्यावृत्तछद्म—छद्म शब्द के—१—आवरण, २—छल, ये दो अर्थ होते हैं। ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्म आत्मा की ज्ञान, दर्शन आदि शक्तियो को ढके हुए रहते हैं, इसलिए वे छद्म कहलाते हैं। जो छद्म-ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्मों से तथा छल से अलग हो गया है, उसे व्यावृत्त-छद्म कहते हैं। भगवान महावीर छद्म से रहित थे।

जिन—राग-द्वेष आदि आत्मशत्रुओ को पराजित करने वाला जिन कहलाता है।

जापक—का अर्थ है—जिताने वाला, अर्थात् भगवान महावीर स्वय भी राग, द्वेषादि को जीतने वाले थे और दूसरो को भी जिताने वाले थे।

तीर्ण—जो स्वय ससार सागर से तर गए हैं, वे तीर्ण कहलाते हैं।

तारक—जो दूसरो को ससार-सागर से तारने वाले हैं,उन्हे तारक कहते है। भगवान महावीर स्वामी ने अर्जुन-माली आदि अनेको भव्य पुरुषो को ससार सागर से पार लगाया था।

बुद्ध—जो सम्पूर्ण तत्त्वो के बोध को प्राप्त कर रहे हो। भाव यह है कि भगवान महावीर राग द्वेषादि विकारो के स्वरूप को जानने वाले थे। इसलिए उन्हे बुद्ध कहते है।

बोधक—जो दूसरो को जीव, अजीव, आदि तत्त्वो का बोध देने वाला हो, उसे बोधक कहते हैं। जीव आदि तत्त्वो का बोध देने के कारण भगवान को बोधक कहा गया है।

मुक्त—जो स्वय कर्मों से मुक्त है, अथवा आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियो-गाठो से रहित है, उसे मुक्त कहते है। भगवान महावीर स्वामी आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियो से मुक्त थे।

मोचक—जो दूसरो को कर्म-बन्धनो से मुक्त करवाता है, उसे मोचक कहते है।

सर्वज्ञ—चर और अचर सभी पदार्थो का ज्ञान रखने वाला और जिसमे अज्ञान का सर्वथा अभाव हो, वह सर्वज्ञ कहलाता है। भगवान घट-पट के ज्ञाता होने के कारण सर्वज्ञ कहे गए हैं।

सर्वदर्शी—चर और अचर सभी पदार्थों का द्रष्टा सर्वदर्शी कहा जाता है। भगवान महावीर सर्वदर्शी थे।

शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति, सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त— अर्थात् शिव आदि पद सिद्धगति* के विशेषण है। शिव आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

शिव—कल्याणरूप को कहते हैं। अथवा जो बाधा, पीडा और दुःख से रहित हो, वह शिव कहलाता है। सिद्धगति मे किसी प्रकार की बाधा, पीडा नही होती, अत उसे शिव कहते हैं।

अचल—चलरहित, स्थिर को कहते है। चलन दो प्रकार का होता है। एक स्वाभाविक दूसरा प्रायोगिक। दूसरे की प्रेरणा बिना अथवा अपने पुरुषार्थ के बिना मात्र स्वभाव से ही जो चलन होता है, वह स्वाभाविक चलन होता है। जैसे जल मे स्वभाव से चचलता रहती है, इसी प्रकार बैठा मनुष्य भले ही स्थिर दिखाई देता है किन्तु योगापेक्षया उस मे भी चचलता है, इसे ही स्वाभाविक चलन कहते हैं। वायु आदि बाह्य निमित्तो से जो चचलता उत्पन्न होती है, वह प्रायोगिक चलन कहलाता है। मुक्तात्माओ में न स्वभाव से ही चलन होता है और न प्रयोग से ही। मुक्तात्माओ मे गति का अभाव है, इस लिए भी वे अचल हैं।

अरुज—रोगरहित को अरुज कहते है। शरीर-रहित होने के कारण मुक्तात्मा को वात, पित्त और कफजन्य शारीरिक रोग नही होने पाते और कर्मरहित होने से रागद्वेषादि भी नही होते।

अनन्त—अन्त-रहित को अनन्त कहते हैं। सिद्धगति को प्राप्त करने की आदि तो है, परन्तु उस का अन्त नही, इसलिए उनको अनन्त कहते हैं। अथवा, मुक्तात्माओ का ज्ञान, दर्शन अनन्त होता है और अनन्त पदार्थों को जानता, देखता है, अत गुणापेक्षया वे अनन्त हैं। अथवा अन्तररहित का नाम अनन्त है। सभी मुक्तात्माए गुणापेक्षया समान होती हैं।

अक्षय—क्षयरहित का नाम है। मुक्तात्माओ की ज्ञानादि आत्मविभूति मे किसी प्रकार की क्षीणता नही आने पाती, इसलिए से अक्षय कहते हैं।

अव्याबाध—पीडारहित को अव्याबाध कहते हैं। मुक्तात्माओ को सिद्धगति मे किसी प्रकार का शोक नही होता और न वे किसी दूसरे को पीडा पहुचाते हैं।

अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित का नाम है। अर्थात् जो जन्म तथा मरण से रहित हो कर एक बार सिद्धगति मे पहुच जाता है, वह फिर लौट कर कभी ससार में नही आता।

उवासगदसाण—इस पद द्वारा सूत्रकार ने उपासकदशाग सूत्र का स्मरण कराया है। उपासकदशा सातवा अगसूत्र हैं। इस में उपासक और दशा ये दो पद हैं। साधु-साध्वियो की उपासना करने वाले उपासक कहे जाते हैं। दशा शब्द अध्ययन अथवा चर्या का बोधक है। इस सूत्र में दस श्रावकों के दस अध्ययन होने से या दस श्रावको की जीवन–चर्या होने से यह उपासकदशा कहा गया

*जिस के सब काम सिद्ध हों, पूर्ण हो, उसे सिद्ध कहते हैं, सिद्ध भगवान् जहाँ विराजमान हो, वह स्थान सिद्धगति कहलाता है।

मे वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने **"नमोत्थुण अरिहंताण भगवंताण"** इत्यादि पाठ्यन्त पदो मे पढे गए **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा"** इन प्रथमान्त पदो की व्याख्या मे **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा इत्यत्र जे तेसि नमोत्थु णमित्येव गमनिका कार्येति"** इस प्रकार लिखा है। अर्थात् वृत्तिकार के मतानुसार **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा"** ऐसा ही पाठ स्वीकार किया गया है। और उसके अर्थ-सकलन मे **"जे तेसि णमोत्थु ण"** जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप है, उन को नमस्कार हो, ऐसा अध्याहारमूलक अन्वय किया है। प्रस्तुत मे जो प्रश्न उपस्थित हो रहा है, वह भी वृत्तिकार की मान्यतानुसार **"दीवो ताण सरण गई पइट्ठा, इत्यत्र जो तेणत्ति"** (जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप है, उसने) इस पद्धति से समाहित हो जाता है।

अप्रतिहत–ज्ञान–दर्शन–धर—अप्रतिहत का अर्थ है—किसी से बाधित न होने वाला, किसी से न रुकने वाला। ज्ञान, दर्शन के धारक को ज्ञानदर्शनधर कहते है। तब भगवान महावीर स्वामी अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले थे। यह अर्थ फलित हुआ।

व्यावृत्तछद्म—छद्म शब्द के—१–आवरण, २–छल, ये दो अर्थ होते है। ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्म आत्मा की ज्ञान, दर्शन आदि शक्तियो को ढके हुए रहते है, इसलिए वे छद्म कहलाते हैं। जो छद्म–ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्मों से तथा छल से अलग हो गया है, उसे व्यावृत्त-छद्म कहते हैं। भगवान महावीर छद्म से रहित थे।

जिन—राग–द्वेष आदि आत्मशत्रुओ को पराजित करने वाला जिन कहलाता है।

जापक—का अर्थ है—जिताने वाला, अर्थात् भगवान महावीर स्वय भी राग, द्वेषादि को जीतने वाले थे और दूसरो को भी जिताने वाले थे।

तीर्ण—जो स्वय ससार सागर से तर गए हैं, वे तीर्ण कहलाते है।

तारक—जो दूसरो को ससार-सागर से तारने वाले हैं,उन्हे तारक कहते है। भगवान महावीर स्वामी ने अर्जुन-माली आदि अनेको भव्य पुरुषो को ससार सागर से पार लगाया था।

बुद्ध—जो सम्पूर्ण तत्त्वो के बोध को प्राप्त कर रहे हो। भाव यह है कि भगवान महावीर राग द्वेषादि विकारो के स्वरूप को जानने वाले थे। इसलिए उन्हे बुद्ध कहते हैं।

बोधक—जो दूसरो को जीव, अजीव, आदि तत्त्वो का बोध देने वाला हो, उसे बोधक कहते है। जीव आदि तत्त्वो का बोध देने के कारण भगवान को बोधक कहा गया है।

मुक्त—जो स्वय कर्मों से मुक्त है, अथवा आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियो–गाठो से रहित है, उसे मुक्त कहते है। भगवान महावीर स्वामी आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियो से मुक्त थे।

मोचक—जो दूसरो को कर्म-बन्धनो से मुक्त करवाता है, उसे मोचक कहते हैं।

सर्वज्ञ—चर और अचर सभी पदार्थों का ज्ञान रखने वाला और जिसमे अज्ञान का सर्वथा अभाव हो, वह सर्वज्ञ कहलाता है। भगवान घट-घट के ज्ञाता होने के कारण सर्वज्ञ कहे गए हैं।

सर्वदर्शी—चर और अचर सभी पदार्थों का द्रष्टा सर्वदर्शी कहा जाता है। भगवान महावीर सर्वदर्शी थे।

शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति, सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त— अर्थात् शिव आदि पद सिद्धगति* के विशेषण हैं। शिव आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

शिव—कल्याणरूप को कहते है। अथवा जो बाधा, पीडा और दुःख से रहित हो, वह शिव कहलाता है। सिद्धगति मे किसी प्रकार की बाधा, पीडा नही होती, अतः उसे शिव कहते है।

अचल—चलरहित, स्थिर को कहते है। चलन दो प्रकार का होता है। एक स्वाभाविक दूसरा प्रायोगिक। दूसरे की प्रेरणा विना अथवा अपने पुरुषार्थ के विना मात्र स्वभाव से ही जो चलन होता है, वह स्वाभाविक चलन होता है। जैसे जल मे स्वभाव से चचलता रहती है, इसी प्रकार बैठा मनुष्य भले ही स्थिर दिखाई देता है किन्तु योगापेक्षया उस मे भी चचलता है, इसे ही स्वाभाविक चलन कहते हैं। वायु आदि बाह्य निमित्तो से जो चचलता उत्पन्न होती है, वह प्रायोगिक चलन कहलाता है। मुक्तात्माओ मे न स्वभाव से ही चलन होता है और न प्रयोग से ही। मुक्तात्माओ मे गति का अभाव है, इस लिए भी वे अचल हैं।

अरुज—रोगरहित को अरुज कहते हैं। शरीर-रहित होने के कारण मुक्तात्मा को वात, पित्त और कफजन्य शारीरिक रोग नही होने पाते और कर्मरहित होने से रागद्वेषादि भी नही होते।

अनन्त—अन्त-रहित को अनन्त कहते हैं। सिद्धगति को प्राप्त करने की आदि तो है, परन्तु उस का अन्त नही, इसलिए उनको अनन्त कहते हैं। अथवा, मुक्तात्माओ का ज्ञान, दर्शन अनन्त होता है और अनन्त पदार्थों को जानता, देखता है, अतः गुणापेक्षया वे अनन्त हैं। अथवा अन्तररहित का नाम अनन्त है। सभी मुक्तात्माए गुणापेक्षया समान होती है।

अक्षय—क्षयरहित का नाम है। मुक्तात्माओ की ज्ञानादि आत्मविभूति मे किसी प्रकार की क्षीणता नही आने पाती, इसलिए से अक्षय कहते हैं।

अव्याबाध—पीडारहित को अव्याबाध कहते हैं। मुक्तात्माओ को सिद्धगति मे किसी प्रकार का शोक नही होता और न वे किसी दूसरे को पीडा पहुचाते हैं।

अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित का नाम है। अर्थात् जो जन्म तथा मरण से रहित हो कर एक वार सिद्धगति में पहुच जाता है, वह फिर लौट कर कभी ससार में नही आता।

उवासगदसाण—इस पद द्वारा सूत्रकार ने उपासकदशाग सूत्र का स्मरण कराया है। उपासकदशा सातवा अगसूत्र है। इस मे उपासक और दशा ये दो पद हैं। साधु-साध्वियो की उपासना करने वाले उपासक कहे जाते हैं। दशा शब्द अध्ययन अथवा चर्या का बोधक है। इस सूत्र में दस श्रावको के दस अध्ययन होने से या दस श्रावको की जीवन-चर्या होने से यह उपासकदशा कहा गया

*जिस के सब काम सिद्ध हो, पूर्ण हो, उसे सिद्ध कहते हैं, सिद्ध भगवान् जहाँ विराजमान हो, वह स्थान सिद्धगति कहलाता है।

है। इस के प्रत्येक अध्ययन मे एक-एक श्रावक का वर्णन है। प्राचीन श्रावक जगत मे आनन्द, कामदेव आदि दस श्रावक वहुत प्रसिद्ध हैं। इन्ही श्रावको के जीवनवृत्त इस मे प्रस्तुत किए गए हैं।

अंतगडदसाण—यह अन्तकृद्दशा का बोधक है। इस की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि लिखते है—

तत्रान्तो—भवान्त कृतो—विहितो यैस्तेऽन्तकृतास्तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा —दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृद्दशा।

आठ कर्मों का नाश कर के ससार रूपी समुद्र से पार उतरने वाले अथवा जीवन के अन्तिम समय मे केवल ज्ञान और केवल दर्शन उपार्जन कर मोक्ष जाने वाले जीव अन्तकृत् कहलाते हैं। इन जीवो की दशा-अवस्था का इस सूत्र मे वर्णन किया गया है, इस लिए इस सूत्र को अन्तकृद्दशा कहते है। इसे अन्तगड भी कहते है। इस मे एक ही श्रुतस्कध है। आठ वर्ग है। नब्वे अध्ययन है। इन मे गौतमादि महर्षि तथा पद्मावती आदि साध्वियो के जीवन चरित्र वर्णित है।

"**समणेण०**" यहा का बिन्दु तथा "**समणेण जाव सपत्तेण**" यहा पठित 'जाव' पद "**भगवया महावीरेण आदिकरेण नामधेय ठाण**" इन पदो का परिचायक है। श्रमण तथा आदिकर आदि पदो का अर्थ पीछे पृष्ठ पर लिखा जा चुका है। भगवान और महावीर इन दोनो पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१—भगवान—जो ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं, पूज्य है।

२—महावीर—जो अपने आतरिक वैरियो का नाश कर डालता है, उस शक्तिशाली पुरुष को वीर कहते है। वीरो में जो महान प्रधान वीर है, वह महावीर है। प्रस्तुत मे यह भगवान वर्धमान का नाम है। यह नाम उन के देवकृत सकटो मे सुमेरु की तरह अचल रहने तथा घोर परीषहो, उपसर्गों के आने पर भी क्षमा का त्याग न करने के कारण देवताओ ने रखा था।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जम्बू अनगार से कहा—जम्बू! भगवान महावीर ने अन्तगड मे आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं। तत्पश्चात् जम्बू स्वामी ने अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे जो निवेदन किया, अब सूत्रकार उस का वर्णन करते है—

मूल—**जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठवग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाण समणेण जाव सम्पत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता? एवं खलु जंबू! समणेणं जाव सम्पत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—**

गोयम-समुद्द-सागर-गमीरे चेव होइ थिमिए य।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू॥

छाया—**यदि भदन्त! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामष्ट वर्गा,**

प्रज्ञप्ता । प्रथमस्य भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ? एव खलु जबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशाना प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

गौतम-समुद्र-सागर-गभीरश्चैव भवति स्तिमितश्च ।
अचल काम्पिल्य खलु अक्षोभ प्रसेनजित् विष्णु. ॥

पदार्थ—ण—यह पद सर्वत्र वाक्यालकारार्थक है भते !— हे भगवन् ! जइ—यदि समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्ष सप्राप्त महावीर ने अट्ठमस्स—आठवें अगस्स—अग अतगड-दसाण—अन्तकृद्दशा के अट्ठवग्गा—आठ वर्ग पण्णत्ता—कथन किए है, तो भते !—हे भगवन् ! अतगडदसाण—अन्तकृद्दशा के पढमस्स—प्रथम वग्गस्स—वर्ग के समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्षमप्राप्त महावीर ने कइ अज्झयणा—कितने अध्ययन पण्णत्ता?—कथन किए हैं ? जबू ! हे जम्बू ! खलु—निश्चय ही एव—इस प्रकार समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अट्ठमस्स—आठवें अगस्स—अग अतगडदसाण—अन्तकृद्दशा के पढमस्स—प्रथम वग्गस्स—वर्ग के दस—दस अज्झयणा—अध्ययन पण्णत्ता—कथन किए है तजहा—जैसे कि गोयम—गौतम कुमार समुद्द—समुद्र कुमार सागर—सागर कुमार च—और एव—निश्चयार्थक अव्यय है गभीरे—गभीर कुमार य—और थिमिए—स्तिमित कुमार होइ—है अयले—अचलकुमार खलु—निश्चयार्थक है कपिल्ले—काम्पिल्यकुमार अक्खोभ—अक्षोभ कुमार पसेणइ—प्रसेनजित् कुमार विण्हू—विष्णु कुमार ।

मूलार्थ—आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किए है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किए है ?

जम्बू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किए है। जैसे कि—

१—गौतम, २—समुद्र, ३—सागर, ४—गभीर, ५—स्तिमित, ६—अचल, ७—काम्पिल्य, ८—अक्षोभ, ९—प्रसेनजित् और १०—विष्णुकुमार ।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का तथा उन के श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी द्वारा किए गए समाधान का उल्लेख किया है। कहा जा चुका है कि आर्य सुधर्मा स्वामी ने अन्तगड सूत्र का परिचय कराते हुए जम्बू स्वामी को उस के आठ वर्ग बताए थे। प्रस्तुत सूत्र मे जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा है कि अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग मे

है। इस के प्रत्येक अध्ययन मे एक-एक श्रावक का वर्णन है। प्राचीन श्रावक जगत मे आनन्द, कामदेव आदि दस श्रावक बहुत प्रसिद्ध है। इन्ही श्रावको के जीवनवृत्त इस मे प्रस्तुत किए गए है।

अंतगडदसाण—यह अन्तकृद्दशा का बोधक है। इस की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि लिखते है—

तत्रान्तो—भवान्त कृतो—विहितो यैस्तेऽन्तकृतास्तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा —दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृद्दशा ।

आठ कर्मो का नाश कर के ससार रूपी समुद्र से पार उतरने वाले अथवा जीवन के अन्तिम समय मे केवल ज्ञान और केवल दर्शन उपार्जन कर मोक्ष जाने वाले जीव अन्तकृत् कहलाते हैं। इन जीवो की दशा-अवस्था का इस सूत्र मे वर्णन किया गया है, इस लिए इस सूत्र को अन्तकृद्दशा कहते है। इसे अन्तगड भी कहते है। इस मे एक ही श्रुतस्कध है। आठ वर्ग है। नव्वे अध्ययन हैं। इन मे गौतमादि महर्षि तथा पद्मावती आदि साध्वियो के जीवन चरित्र वर्णित है।

"समणेण०" यहा का विन्दु तथा **"समणेण जाव सपत्तेण"** यहा पठित 'जाव' पद **"भगवया महावीरेण आदिकरेण नामधेय ठाण"** इन पदो का परिचायक है। श्रमण तथा आदिकर आदि पदो का अर्थ पीछे पृष्ठ पर लिखा जा चुका है। भगवान और महावीर इन दोनो पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१—भगवान—जो ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं, पूज्य हैं।

२—महावीर—जो अपने आतरिक वैरियो का नाश कर डालता है, उस शक्तिशाली पुरुष को वीर कहते है। वीरो मे जो महान प्रधान वीर है, वह महावीर है। प्रस्तुत मे यह भगवान वर्धमान का नाम है। यह नाम उन के देवकृत सकटो मे सुमेरु की तरह अचल रहने तथा घोर परीषहो, उपसर्गो के आने पर भी क्षमा का त्याग न करने के कारण देवताओ ने रखा था।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जम्बू अनगार से कहा—जम्बू ! भगवान महावीर ने अन्तगड में आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं। तत्पश्चात् जम्बू स्वामी ने अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे जो निवेदन किया, अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हैं—

मूल—**जइ णं भंते ! समणेणं जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाण अट्ठवग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भते ! वग्गस्स अतगडदसाण समणेणं जाव सम्पत्तेण कइ अज्झयणा पण्णत्ता ? एव खलु जबू ! समणेण जाव सम्पत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—**

गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चेव होइ थिमिए य ।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू ॥

छाया—**यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशानामष्ट वर्गा,**

प्रज्ञप्ता । प्रथमस्य भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ? एव खलु जबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशाना प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

गौतम-समुद्र-सागर-गभीरश्चैव भवति स्तिमितश्च ।
अचल काम्पिल्य खलु अक्षोभ प्रसेनजित् विष्णु ॥

पदार्थ—ण—यह पद सर्वत्र वाक्यालकारार्थक है भते !—हे भगवन् ! जइ—यदि समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्ष सप्राप्त महावीर ने अट्ठमस्स—आठवे अगस्स—अग अतगड-दसाण—अन्तकृद्दशा के अट्ठवग्गा—आठ वर्ग पण्णत्ता—कथन किए है, तो भते !—हे भगवन् ! अतगडदसाण—अन्तकृद्दशा के पढमस्स—प्रथम वग्गस्स—वर्ग के समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्षसप्राप्त महावीर ने कइ अज्झयणा—कितने अध्ययन पण्णत्ता?—कथन किए हैं ? जबू ! हे जम्बू ! खलु—निश्चय ही एव—इस प्रकार समणेण—श्रमण जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अट्ठमस्स—आठवें अगस्स—अग अतगडदसाण—अन्तकृद्दशा के पढमस्स-प्रथम वग्गस्स—वर्ग के दस—दस अज्झयणा—अध्ययन पण्णत्ता—कथन किए हैं तजहा—जैसे कि गोयम—गौतम कुमार समुद्द—समुद्र कुमार सागर—सागर कुमार च—और एव—निश्चयार्थक अव्यय है गभीरे—गभीर कुमार य—और थिमिए—स्तिमित कुमार होइ—है अयले—अचलकुमार खलु—निश्चयार्थक है कपिल्ले—काम्पिल्यकुमार अक्खोभ—अक्षोभ कुमार पसेणइ—प्रसेनजित् कुमार विण्हू—विष्णु कुमार ।

मूलार्थ—आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किए है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किए है ?

जम्बू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किए हैं। जैसे कि—

१—गौतम, २—समुद्र, ३—सागर, ४—गभीर, ५—स्तिमित, ६—अचल, ७—काम्पिल्य, ८—अक्षोभ, ९—प्रसेनजित् और १०—विष्णुकुमार ।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का तथा उन के श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी द्वारा किए गए समाधान का उल्लेख किया है। कहा जा चुका है कि आर्य सुधर्मा स्वामी ने अन्तगड सूत्र का परिचय कराते हुए जम्बू स्वामी को उस के आठ वर्ग बताए थे। प्रस्तुत सूत्र मे जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा है कि अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग मे

कितने अध्ययन कथन किए हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ! अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग मे—गौतम, समुद्र आदि दश अध्ययनो का विवेचन किया गया है। अथवा अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन हैं, उनमे गौतम कुमार, समुद्र कुमार आदि दस राजकुमारो के जीवन वृत्तो का उल्लेख कर रखा है ।

वग्गा—शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है—शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनो का समूह । सूत्र के अवान्तर विभाग को या ग्रन्थ के एक अश को अध्ययन कहते हैं। अध्ययन शब्द की व्याख्या करते हुए एक आचार्य लिखते है—

अज्झप्पस्साणयण, कम्माण अवचओ उवचियाण ।
अणुवचओ य नवाण, तम्हा अज्झयणमिच्छति* ॥

अर्थात्—जिससे अध्यात्म—हृदय को शुभध्यान मे स्थित किया जाता है, जिसके द्वारा पूर्वसचित कर्मों का नाश होता है और नवीन कर्मो का वन्धन रुकता है, उस का नाम अध्ययन है ।

"समणेण जाव सपत्तेण" इन पदो का प्रस्तुत सूत्र मे तीन बार प्रयोग हुआ है। वहा पठित जाव-यावत् पद अन्य सूत्रो मे पठित **"भगवया महावीरेण"** आदि पदो का ससूचक है । इन पदो का निर्देश और इन का भावार्थ पीछे पृष्ठ पर दिया जा चुका है ।

"गोयम समुद्द" इस गाथा मे दस अध्ययनो के नाम हैं। गौतम प्रथम वर्ग का पहला अध्ययन है। इस मे राजकुमार गौतम का वर्णन किया गया है। इसी कारण इस अध्ययन का नाम "गौतम" रखा गया है। समुद्र आदि अध्ययनो के नामकरण के सम्बन्ध मे भी यही दृष्टि प्रतीत होती है।

गौतम कुमार, समुद्र कुमार आदि राजकुमारो का सक्षेप मे परिचय इस प्रकार है—

१—गौतम कुमार—द्वारिका नगरी मे महाराज अन्धक वृष्णि राज्य किया करते थे। धारिणी उनकी रानी थी, इन के बडे पुत्र का नाम गौतम कुमार था। अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के गौतम कुमार यही गौतम कुमार हैं। आठ राजकन्याओ के साथ इन का विवाह किया गया था। परन्तु अहिंसा, सत्य के अमर सन्देश-वाहक भगवान अरिष्टनेमि का चरण-सान्निध्य पाकर ये मोह-माया के विकराल वन्धनो को तोडकर अनगार बन गए थे, भगवान के पास दीक्षित हो गए थे। इन्होने लगातार वारह वर्ष तक सयम् व्रत का आराधन किया। अन्तिम समय मे केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर के मोक्ष मे जा विराजे।

२—समुद्रकुमार, ३—सागर कुमार, ४—गभीर कुमार, ५—स्तिमित कुमार, ६—अचल कुमार, ७—काम्पिल्य कुमार§ ८—अक्षोभ कुमार, ९—प्रसेनजित् कुमार, १०—विष्णु कुमार।

ये सभी राजकुमार गौतम कुमार के मा जाये भाई थे। इन सभी के पिता महाराजा अन्धक वृष्णि

---

* अध्यात्ममानयत कर्मणामपचय उपचितानाम ।
अनुपचयश्च नवानां, तस्मात् अध्ययनमिच्छन्ति ॥

§ कहीं कपिल नाम भी मिलता है।

थे तथा माता—महारानी धारिणी थी। सभी ने भगवान अरिष्टनेमि के पावन चरणो मे दीक्षा लेकर, बारह वर्ष तक कठोर सयम का पालन करके अन्तिम समय केवल ज्ञान,केवल दर्शन को प्राप्त किया था तथा तत्पश्चात् ही मोक्ष मे पधार गए थे।

कहा जा चुका है कि अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग मे दश अध्ययन हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रथम अध्ययन मे क्या वर्णन किया गया है ?जम्बू स्वामी के इसी प्रश्न की चर्चा करते हुए सूत्रकार कहते हैं--

मूल—जइ ण भंते ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स अन्तगडदसाण समणेण जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

छाया—यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशाना प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थ प्रज्ञप्त ?

पदार्थ—ण—वाक्यालकारार्थक है। **जइ**—यदि **भते** ! हे भगवन् ! **समणेण**—श्रमण **जाव**—यावत् **सपत्तेण**—मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने **अट्ठमस्स**—आठवे **अगस्स**—अग **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र के **पढमस्स**—प्रथम **वग्गस्स**-वर्ग के **दस**—दस **अज्झयणा**—अध्ययन **पण्णत्ता**—कथन किए हैं **भते** ! हे भगवन् ! **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र के **पढमस्स**—प्रथम **अज्झयणस्स**—अध्ययन का **समणेण**—श्रमण **जाव**—यावत् **सपत्तेण**—मोक्षसप्राप्त महावीर स्वामी ने **के**—क्या **अट्ठे**—अर्थ **पण्णत्ते**—कथन किया है ?

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर ने आठवे अग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किए हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष-प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने आर्य जम्बू स्वामी के प्रश्न का उल्लेख किया है। अपने परम आराध्य गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे श्री जम्बू स्वामी ने निवेदन किया—

गुरुदेव ! यह सत्य है, पतितपावन भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के आठ वर्ग कथन किए हैं और उन मे से प्रथम वर्ग के दश अध्ययन फरमाए है। भगवन् ! कृपा करो, अब यह बताने की दया करो कि भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन मे क्या वर्णन किया है ? किस महापुरुष के जीवन-वृत्त का निर्देश किया है ?

'समणेण जाव सपत्तेण' यहा **जाव** पद भगवान के अन्य विशेषणो का परिचायक है। इससे

ससूचित पदो का निर्देश पीछे पृष्ठ पर कर दिया गया है ।

श्री जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे आर्य सुधर्मा स्वामी ने जो कुछ फरमाया, अब सूत्रकार उस का वर्णन करने लगे है । उस का आदिम सूत्र इस प्रकार है—

मूल—एव खलु जबू ! तेण कालेण, तेण समएण बारवती णाम नगरी होत्था । दुवालसजोयणायामा, नव-जोअण-विच्छिण्णा, धणवइमतिनिम्माया, चामीकरपागारा, नानामणिपंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया, सुरम्मा, अलकापुरिसकासा, पमुदितपक्कीलिया, पच्चक्ख देवलोगभूया पासादीया ४ । तीसे ण बारवती नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे एत्थ णं रेवतते नाम पव्वते होत्था । तत्थ ण रेवतते पव्वते नदणवणे नाम उज्जाणे होत्था । वण्णओ । सुरप्पिए नाम जक्खायतणे होत्था, पोराणे० से ण एगेण वणसडेण०, असोगवरपायवे० ।

छाया—एव खलु जबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नाम्नी नगरी अभूत्, द्वादश योजनायामा, नव-योजन-विस्तीर्णा, धनपति-मति-निर्मिता, चामीकरप्राकारा, नाना-मणि-पञ्चवर्ण-कपिशीर्षक-मण्डिता, सुरम्या, अलकापुरी-सकाशा, प्रमुदित-प्रक्रीडिता, प्रत्यक्ष देवलोक-भूता, प्रासादीया ४ । तस्या द्वारवतीनगर्या बहि उत्तरपौरस्त्ये-दिग्भागे, अत्र रैवतको नाम पर्वतोऽभूत् । तत्र रैवतक-पर्वते नन्दनवननाम उद्यानमभवत् । वर्णक । सुरप्रिय नाम यक्षायतनमभूत्, पुराणम्, तदेकेन वनषण्डेन० अशोकवरपादप ० ।

पदार्थ—**एव**—इस प्रकार **जम्बू** ! हे जम्बू ! **खलु**—निश्चयार्थक है, **तेण**—उस **कालेण**—काल मे **तेण**—उस **समएण**—समय मे **बारवती णाम**—द्वारवती, (द्वारिका) नाम वाली **नगरी**—नगरी **होत्था**—थी, जोकि **दुवालसजोयणायामा**—बारह योजन लम्बी थी **नवजोयणविच्छिण्णा**—नव योजन चौडी थी, **धणवइ-मति-निम्माया**—उस का निर्माण धनपति वैश्रमण देव की बुद्धि से किया गया था । **चामीकर-पागारा**—उस के प्राकार—कोट सोने के थे । **नाना**—नानाविध **मणि**—इन्द्रनील, वैदूर्य आदि मणियो के कारण **पचवण्ण**—पाच वर्ण वाले **कविसीसग**- कपिशीर्षक—कगूरो से, **मडिया**—सुसज्जित थी **सुरम्मा**—अति रमणीय थी **अलकापुरिसकासा**—अलकापुरी कुबेर की नगरी के समान थी **पमुदितपक्कीलिया**—जो प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, **पच्चक्ख**—साक्षात् **देवलोगभूया**—स्वर्ग लोक के स्वरूप जैसी प्रतीत होती थी, **पासादीया**—देखने योग्य थी, चित्त को प्रसन्न करने वाली थी । ४—दर्शनीय थी, अभिरूप थी प्रतिरूप थी । **तीसे**—उस **बारवतीनयरीए**—द्वारिका नगरी के **बहिया**—बाहिर **उत्तरपुरच्छिमे**—ईशानकोण के **दिसीभागे**—दिशाविभाग मे **एत्थ णं**—वहा पर **रेवतते**—रैवतक **नाम**—नाम का **पव्वते**—एक पवत **होत्था**—था **तत्थ**—वहा **रेवतते**—रैवतक **पव्वते**—पर्वत पर **नदणवणे**—नन्दन वन **नाम**—नाम का **उज्जाणे**—उद्यान—बाग **होत्था**—था **वण्णओ**—वर्णन प्रकरण समझ लेना **सुरप्पिए**—वहा पर सुरप्रिय **नाम**—नामक यक्ष का **जक्खा-**

यतणे—यक्षायतन—मन्दिर **होत्था**—था **पोराणे**—बहुत प्राचीन था **से**—वह मन्दिर **एगेण**—एक **वणसडेण०**—वनषण्ड—अनेकविध वृक्षो के समूह से घिरा हुआ था, उसके मध्य मे **असोगवरपायवे०**—अशोक वृक्ष नामक एक प्रधान वृक्ष था।

मूलार्थ—जम्बू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! उस काल, उस समय मे द्वारिका नाम की एक नगरी थी। यह नगरी बारह योजन लबी, नौ योजन चौडी थी, वैश्रमणदेव कुबेर की विलक्षण बुद्धि से उसकी रचना की गई थी, उस का कोट सोने का बना हुआ था। इन्द्रनील, वैदूर्य आदि मणियो का प्रयोग होने के कारण उस के कगूरे पाच वर्ण वाले दिखाई दे रहे थे, वह रमणीय थी, कुबेर नगरी के समान प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान बन रही थी, साक्षात् देवलोक जैसी मनोहर लग रही थी, देखने योग्य थी, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

द्वारिका नगरी के बाहिर ईशाण कोण मे रैवतक नाम का एक पर्वत था। उस पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उद्यान वर्णनीय था। वहा सुरप्रिय नामक यक्ष का एक मन्दिर था, बहुत प्राचीन था, और एक वनषण्ड [अनेकविध वृक्षो का समुदाय] से घिरा हुआ था। उस वनषण्ड के मध्य मे एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।

हिन्दी विवेचन—अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे क्या वर्णन किया गया है ? जम्बू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी फरमाने लगे—

बाईसवे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का युग था, भगवान उस समय जन-कल्याण के लिए स्थान २ पर भ्रमण कर रहे थे, जनता को अहिंसा सत्य का अमृत बाँट रहे थे। उसी युग मे द्वारिका नाम की एक नगरी थी। नगरी अपनी अनेकानेक विशेषताओ के कारण ससार मे प्रख्यात हो रही थी। उस की लम्बाई बारह योजन और चौडाई नौ योजन थी। उस की रचना स्वय कुबेर ने की थी। उस का कण-कण कुबेर के बुद्धिवैलक्षण्य का परिचय करवा रहा था।

द्वारिका नगरी के चारो ओर सोने का कोट बना हुआ था। उस मे पाच वर्ण वाले अनेको कगूरे-बुर्ज बने हुए थे, जिनका निर्माण इन्द्रनील, वैदूर्य, पद्मराग आदि मणियो के द्वारा किया गया था। वही रमणीक थी। कुबेर-पुरी की तरह वह सुन्दर लग रही थी, प्रमोद और क्रीडा करने वाले लोग उस मे निवास करते थे। द्वारिका नगरी के सौन्दर्य की अधिक क्या चर्चा की जाय ? यदि सक्षेप से कहे तो, द्वारिका नगरी साक्षात् देवलोक की तरह प्रतीत होती थी।

द्वारिका नगरी की रचना ऐसे विचित्र ढग से की गई थी, कि उस को देखकर मन हर्षित होता

था, उसे बार-बार देखने पर भी आखे थकावट अनुभव नही करती थी, उसे एक बार देख लेने पर भी पुन देखने की लालसा बनी रहती थी, उसे जब भी देखा जाता था तब भी वहां कुछ नवीनता ही प्रतीत होती थी ।

आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को फिर कहने लगे—जम्बू ! द्वारिका नगरी के बाहिर ईशाणकोण मे एक विशाल पर्वत था । उस का नाम था—रैवतक, रैवतक पर्वत पर नन्दन वन नाम का एक उद्यान था। उद्यान बडा सुन्दर था, उद्यानयोग्य उस मे सभी विशेषताए थी । उस मे सुरप्रिय नामक यक्ष का एक मन्दिर था । मन्दिर बहुत प्राचीन था। नागरिको के हृदयो मे उसके लिए बडा आदर था । वह मन्दिर वृक्ष समुदाय से घिरा हुआ था । उस नदन वन के मध्य मे एक वृक्ष था,द्वारिका के लोग उसे अशोक कहा करते थे । वृक्ष जगत मे इस का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऊपर की पक्तियो मे प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ लिखा गया है । अब प्रस्तुत सूत्र मे पठित समस्त तथा कठिन पदो की अर्थ सम्बन्धी विचारणा करेंगे ।

"तेण कालेण तेण समएण" यहा पठित काल और समय की अर्थगत भिन्नता को लेकर पीछे पृष्ठ पर प्रकाश डाला जा चुका है । जिज्ञासु पाठक वह स्थल देख ले ।

बारवती—इस पद का सस्कृतरूप द्वारवती होता है । यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है । जैनेतर ससार, वैदिक परम्परा मे यही नगरी द्वारिका नाम से प्रसिद्ध है । इस तरह द्वारवती तथा द्वारिका ये दोनो शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं ।

दुवालसजोयणायामा—द्वादश योजनानि आयामो—दैर्घ्यं यस्या सा । जो नगरी बारह योजन लम्बी हो, उसे द्वादशयोजनायामा कहते हैं ।

प्रस्तुत मे योजन का अर्थ मान **आत्मांगुल*** से करना है । जिस काल मे जो मनुष्य होते हैं, उन के अपने अगुल को आत्मागुल कहते है । ९६ अगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषो का एक कोस,तथा चार कोस का एक योजन होता है । इस तरह द्वारिका नगरी की लम्बाई ४८ कोस थी । ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र मे द्वारिका नगरी को बसाया गया था ।

नव-जोअण-वित्थिण्णा—नव-योजनानि विस्तीर्णा—विस्तृता । अर्थात्—जो नगरी नव-योजन चौडी हो, विस्तार वाली हो, उसे नव-योजन-विस्तीर्णा कहते हैं ।

धणवइ-मति-निम्माया§—धनपति कुबेर तस्य मति , तया निर्मिता—रचिता । अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ,उसे धनपति निर्मिता कहते हैं ।

त्रिखण्डाधिपति कृष्णचन्द्र महाराज की जीवनी की घटना है कि जब यादव जरासध प्रतिवासुदेव के आतक से आतकित हो गए और शौर्यपुर को छोडकर समुद्र के समीप **सौराष्ट्र** मे

* अगुल आत्मागुल, उत्सेध आगुल और प्रमाणागुल इस तरह तीन प्रकार के होते हैं । अथ के लिए देखो "जैनसिद्धान्त बोल सग्रह" प्रथम भाग पृष्ठ ८३ ।

§ धणवइ-मति-निम्माया— द्वारिकावर्णनप्रकरण ।

पहुचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहा तेला किया, धनपति वैश्रमण देव का आराधन किया। आराधना से प्रसन्न हुए वैश्रमण देव प्रकट हो गए। तब कृष्ण महाराज ने उन को नगरी बसाने के लिए निवेदन किया। तदनन्तर धनपति देव ने आभियोगिक देवो द्वारा दिव्य योजनानुसार शीघ्र ही वहा नगरी बसा दी। नगरी के द्वार बहुत बडे बडे थे, इस कारण इस का नाम द्वारवती रखा गया। आगे चलकर यही द्वारवती द्वारिका कहलाने लगी।

धनपति को कुबेर भी कहते है। यह उत्तर दिशा के एक अधिष्ठाता देव है, धन, समृद्धि के स्वामी माने जाते है। इन्होने स्वय द्वारिका नगरी का निर्माण कराया था, इसलिए सूत्रकार ने द्वारिका नगरी को धनपति-मति-निर्मिता यह विशेषण दिया है।

चामीकर-पागारा—चामीकरस्य प्राकारो यस्याम्, चामीकरनिर्मित प्राकारो यस्यां सा सुवर्णमयप्राकारवती । अर्थात्—जिस का प्राकार कोट सोने का बना हुआ हो, उस नगरी को चामीकर-प्राकारा कहते हैं।

नानामणि-पचवण्ण-कविसीसग-मडिया—नानामणिभि, इन्द्रनील-वैडूर्य-पद्मरागादिकै मणिभि, पञ्चवर्णा कपिशीर्षका तै मण्डिता, शोभिता। अर्थात्—अनेकविध इन्द्रनील, वैडूर्य पद्मराग आदि मणियो के द्वारा बनाए गए पाच वर्ण वाले कपिशीर्षको से मण्डित—शोभित नगरी को नानामणि-पचवर्ण कपिशीर्षक-मण्डिता कहते हैं। कपिशीर्षक शब्द के कोषो मे अनेको अर्थ लिखे हैं—सचित्र अर्धमागधि कोषकार कपिशीर्षक का अर्थ करते है—

गढ से बाहिर देखने के लिए उस मे रखे हुए बदर के सिर के आकार के छेद।

"प्राकृत शब्द महार्णव" मे कपिशीर्षक को "प्राकार का अग्रभाग" लिखा है।

कपिशीर्षक का कगूरा यह अर्थ भी लिखा है। वृहत हिन्दीकोषकार कगूरा का गुँबद बुर्ज, यह अर्थ करते है।

सुरम्मा—अतिशय रमणीया। अत्यधिक रमणीय, रुचिर, सुन्दर नगरी सुरम्या कही जाती है।

अलकापुरी सकासा—वैश्रमणयक्षपुरी तत्सदृशी। अर्थात्—अलकापुरी वैश्रमणयक्ष की नगरी का नाम है। वैश्रमणयक्ष को कुबेर भी कह देते हैं, इसलिए अलकापुरी को कुबेरपुरी भी कह दिया जाता है। कुबेर पुरी का सौन्दर्य अद्वितीय है उस सौन्दर्य के समान जिस नगरी का सौन्दर्य है, उस नगरी को अलकापुरीसकाशा कहते हैं।

द्वारिका नगरी का निर्माण कुबेर ने स्वय करवाया था अथवा यू कहे, द्वारिका* की रचना धनपति-वैश्रमण की बुद्धि द्वारा की गई थी। ऐसी दशा मे उसे कुबेरनगरी से उपमित करना, उस के तुल्य बतलाना उचित ही है। कारण स्पष्ट है। कुबेर अपनी नगरी की सभी विशेषताओ को द्वारिका मे ले आए थे, उस मे उन्होने कोई न्यूनता नही रहने दी थी। इस दृष्टि से द्वारिका अलकापुरी के बिल्कुल समान प्रतीत होती थी, यदि द्वारिका को देख लिया जाए तो मानो अलकापुरी देख ली गई।

---

* धणवई-मति-निम्माया— द्वारिकावणनप्रकरण।

इस के अलावा, द्वारिका को अलकापुरी के समान वतलाने का यह भी कारण हो सकता है कि लौकिक साहित्य मे किसी नगरी के वैशिष्ट्य का वर्णन करना हो तो अलकापुरी को ही सर्वोत्कृष्ट उपमान स्वीकार किया गया है। तात्पर्य यह है कि नगरियो मे अलकापुरी सर्वोत्तम नगरी मानी जाती है। यदि किसी नगरी की उत्तमता का वर्णन करना इष्ट हो तो सूत्रकार उसे अलकापुरी-सकाशा यह विशेषण दे डालते हैं।

पमुदितपक्कीलिया—प्रमुदित प्रक्रीडिता, प्रमुदितयोगात् प्रमुदिता, प्रक्रीडितयोगात् प्रक्रीडिता, प्रमुदिता चासौ प्रक्रीडिता प्रमुदितप्रक्रीडिता तन्निवासिजनाना प्रमुदितत्वप्रक्रीडितत्वाभ्यामिति। अर्थात् जिस नगरी के निवासी प्रमुदित—प्रसन्न रहने वाले तथा प्रक्रीडित—क्रीडा प्रिय हो, उस नगरी को प्रमुदित-प्रक्रीडिता कहते हैं। द्वारिका नगरी का यह विशेषण उस के अपार वैभव और ऐश्वर्य का परिचायक है। जिन लोगो को पारिवारिक और सामाजिक किसी प्रकार का कोई भी सक्लेश नही होता जो प्रत्येक दृष्टि से सुखी और सम्पन्न होते हैं, वे ही प्रमुदित रह सकते हैं और वे ही नानाविध मनोरजक क्रीडाओ के लिए समय निकाल सकते हैं। उक्त विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है।

"पच्चक्खं देवलोगभूया" प्रत्यक्ष देवलोकभूता—साक्षाद् देव-लोकसमाना। अर्थात्—जो नगरी साक्षात् देवलोक जैसी हो, देव लोक जैसी जिस मे सुख सुविधाए हो, वह नगरी प्रत्यक्षरूपेण देवलोक-भूता कहलाती है। प्रश्न हो सकता है कि मर्त्यलोक की कोई नगरी साक्षात् देवलोक स्वरूप कैसे हो सकती है? मर्त्यलोक मर्त्यलोक है, और देवलोक देवलोक। फिर मर्त्यलोक के एक भाग को साक्षात् देवलोक जैसा कैसे कहा व माना जा सकता है? यह सत्य है, देवलोक के क्षेत्र को मर्त्यलोक का क्षेत्र नही कहा जा सकता, और मर्त्यलोक के क्षेत्र को देवलोक का क्षेत्र नही माना जा सकता। तथापि सूत्रकार ने द्वारिका नगरी को जो साक्षात् देवलोक जैसी नगरी कहा है, इस का इतना ही उद्देश्य है कि यह नगरी ऐश्वर्य, सौन्दर्य मे बढी चढी हुई थी, इस की समता करने वाली उस समय कोई दूसरी नगरी नही थी। तथा देवनिर्मित होने के कारण देवलोक जैसी रमणीयता उस मे विद्यमान थी, इसी समानता के कारण उसे देवलोक जैसी वतलाया गया है।

"पासादीया ४" यहाँ दिए गए ४ के अक से—**दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा,** इन तीन पदो का ग्रहण करना इष्ट है। इन सभी पदो का अर्थ इस प्रकार है—

प्रासादीया—प्रसादो मन. प्रमोद· प्रयोजन यस्या सा, द्रष्टृणा मन· प्रमोदजनिका, मन प्रसन्नतोत्पादिका। अर्थात्—हृदय मे प्रमोद प्रसन्नता पैदा करने वाली नगरी प्रासादीया कहलाती है।

दरिसणिज्जा, दर्शनीया, यस्या दर्शने चक्षुषो श्रान्तिर्न भवति। अर्थात्—जिस नगरी को देख देख कर आखें श्रान्ति—थकावट अनुभव न करें, निरन्तर देखने की ही उन मे लालसा वनी रहे, उसे दर्शनीया कहते हैं।

'अभिरूवा—अभिरूपा, अभिमाभिमुख्येन सर्वदाऽवस्थितानि रूपाणि-राजहस-चक्रवाक-सारसादीनि करि-महिष-मृगकुलादीनि, जलान्तर्गतानि मकरादीनि वा यत्र सा, अथवा यस्या दर्शन पुन· पुनरभिलषित

भवति सा ।

अर्थात्—जिस नगरी की दीवारो पर राजहस, चक्रवाक, सारस, हाथी, महिप, मृग आदि के तथा जल मे स्थित (विहार करते हुए) मगरमच्छ आदि जलीय प्राणियो के सुन्दर चित्र बने हुए थे। अथवा जिस नगरी को एक वार देख लेने पर भी, उसे पुन देखने के लिए दर्शक की इच्छा बनी रहती हो, उस नगरी को अभिरूपा कहते हैं।

'पडिरूवा—नव नवमिव दृश्यमान रूप यस्या सा, रमणीयेत्यर्थ । क्षण-क्षण यन्नवतामुपैति, तदेव रूप रमणीयताया ' ।

अर्थात्—जिस नगरी को जब भी देखो तब ही उस मे देखने वाले को कुछ नवीनता प्रतिभासित हो, उस नगरी को प्रतिरूपा कहते हैं।

'उत्तरपुरच्छिमे' का अर्थ होता है–ईशानकोण। उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य के प्रदेश का नाम ईशानकोण है।

'वण्णओ' यह पद नन्दनवन उद्यान मे सम्बन्धित अन्य वर्णक पदो की ओर सकेत करा रहा है। वे वर्णक पद ये हैं–

"सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे, रम्मे नदणवणप्पगासे पासाइए दसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। इन पदो का अर्थ इस प्रकार है–

१—**सर्वर्तुक-पुष्प-फलसमृद्ध**—सब ऋतुओ मे होने वाले पुष्पो और फलो से परिपूर्ण एव समृद्ध।

२—**रम्य**—रमणीय, सुन्दर।

३—**नन्दनवनप्रकाश**—मेरुपर्वत पर स्थित नन्दनवन की तरह शोभा को प्राप्त करने वाला।

४—**प्रासादीय**—मन को हर्षित करने वाला।

५—**दर्शनीय**—जिसे देखकर आखे थकावट अनुभव न करें, जिस को देखने की लालसा बनी ही रहे।

६—**अभिरूप**—जिसे एक वार देख लेने पर भी पुन देखने की लालसा बनी रहे।

७—**प्रतिरूप**—जिसे जब भी देखा जाए तब भी वहाँ नवीनता ही प्रतीत हो।

"सुरप्पिए" की सस्कृत छाया सुरप्रिय और सुराप्रिय ये दो होती है। वैसे यह एक यक्ष का नाम है। शाब्दिक रचना के आधार पर इस के दो अर्थ हो सकते हैं–१—सुरो—देवो को प्रिय—प्यारा। २—सुराप्रिय, सुरा मदिरा का नाम है। मदिरा को प्रिय मानने वाला, सुराप्रिय कहलाता है।

"पोराणे०" यहा दिया गया विन्दु ० **चिराईए पुव्वपरिस-पण्णत्ते** .... आदि पदो का ससूचक

है। इन सब पदो का अर्थ पीछे पृष्ठ पर दिया जा चुका है। अन्तर केवल इतना है कि वहा पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन है जबकि प्रस्तुत मे नन्दनवन का। नामगत भिन्नता के अतिरिक्त अन्य कोई भिन्नता नही है।

"**वणसडेण०**" यहाँ दिए बिन्दु ० से औपपातिक सूत्रगत निम्नोक्त पदो का ग्रहण करना चाहिये—

"सव्वओ समता सपरिक्खित्ते, से ण वणसडे किण्हे किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए घण-कडिअ-कडिच्छाए, रम्मे महामेहणिकुरवभूए।

ते ण पायवा मूलमतो कदमतो खधमतो तयामतो सालमतो पवालमतो पत्तमतो पुप्फमतो फलमतो बीयमतो अणुपुव्व-सुजाय-रुइल-वट्टभावपरिणया एक्कखधा अणेगसाला, अणेग-साहप्प-साह-विडिमा अणेग-नर-वामसुप्पसारिअ-अगेज्झ-घण-विउलवद्धखधा अच्छिद्दपत्ता अविरलपत्ता अवाईण-पत्ता अणईअपत्ता निध्दूयजरढपडुपत्ता, णवहरियभिसतपत्तभारधकार-गभीरदरिसणिज्जा, उवणिग्गय णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलतकिसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरकुरग्गसिहरा, णिच्च कुसुमिया णिच्च माइया, णिच्च लवइया, णिच्च थवइया, णिच्च गुलइया, णिच्च गोच्छिया, णिच्च जमलिया, णिच्च जुवलिया, णिच्च विणमिया, णिच्च पणमिया, णिच्च कुसुमिय-माइय-लवइय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-पिंड-मजरिवडिसयधरा, सुय-बरहिण-मयणसाल-कोइल-कोहगक-भिगारक-कोडलक-जीवजीवग-णदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारड-चक्कवाय- कलहस-सारस-अणेग-सउण-गण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय-महुरसरणाइए सुरम्मे, सपिंडिय-दरिय-भमर-महुकरि-पतकर-परिलिन्त-मत्त-छप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर - गुमगुमत-गुजत-देसभागे, अब्भतर-पुप्फफले, बाहिर-पत्तोच्छण्णे, पत्तेहि य पुप्फेहि य उच्छण्ण-पडिवलिच्छण्णे, साउफले, निरोयए, अकटए, णाणाविह गुच्छ-गुम्म-मडवग- रम्मसोहिए, विचित्तसुहकेउभूए, वावी-पुक्खरिणी-दीहियासु य सुनिवेसिय-रम्मजाल-हरए, पिंडिमणीहारिम-सुगधि-सुहसुरभि-मणहर च महया गधद्धणि मुयता, णाणाविह-गुच्छ-गुम्ममडवक-घरक-सुह-सेउ-केउबहुला, अणेगरह-जाण-जुग्ग-सिवियपविमोयणा, सुरम्मा, पासादिया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा। तस्स णं वणसडस्स बहुमज्झ-देसभाए एत्थ ण मह एक्के—"

अर्थात्—सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन एक विस्तृत वनखण्ड द्वारा समस्त* दिशाओ एव विदिशाओ मे घिरा हुआ था। वह वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाला, कृष्ण आभा वाला था, नील वर्ण वाला, नील आभा वाला था। हरे वर्ण वाला, हरे वर्ण की आभा वाला था, शीत स्पर्श वाला, शीत स्पर्श की प्रतीति कराने वाला था, स्निग्ध था, स्निग्धता की प्रतीति कराने वाला था वर्णादि की प्रकर्षता वाला, वर्णादि क प्रकर्षता की द्योतक था।

वह वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाला, कृष्ण वर्ण की छाया वाला था। नील वर्ण वाला, नील वर्ण की छाया वाला था। हरित वर्ण वाला, हरित वर्ण की छाया वाला था। शीत था, शीत स्पर्श

* यहाँ से प्रस्तुत पाठ का अर्थ लागू होता है।

वाली छाया वाला था। स्निग्ध था, स्निग्ध छाया वाला था। वर्णादि की प्रकर्षता से युक्त था तथा वर्णादि की प्रकर्षता से युक्त छाया वाला था। परस्पर शाखाओ के मिलने से सघन छाया वाला था। अत्यन्त रमणीक महान मेघो के विशाल समुदाय के समान था।

उस वनखण्ड के वृक्ष बडी-बडी जडो वाले थे (भूमि के भीतर गहरी फैली हुई होने के कारण उन वृक्षो की जडे बहुत विशाल थी) विशाल कन्द (मूल के ऊपर की गाँठ) वाले थे। विशाल स्कन्ध वाले थे, विशाल त्वचा वाले थे, विशाल शाखाओ वाले थे। विशाल कोपलो वाले थे विशिष्ट फूलो वाले थे, बीजो से परिपूर्ण थे।

उस वनखण्ड के वृक्ष अनुक्रम से उत्पन्न हुए थे। छत्र के समान रमणीय गोल आकार वाले थे। एक-एक स्कन्ध वाले थे, अनेक शाखाओ प्रशाखाओ एव विडिमाओ (ऊपर की ओर गई हुई शाखाओ) वाले थे। अनेक पुरुषो द्वारा अच्छी तरह पसारी गई भुजाओ से भी उन वृक्षो के सघन विपुल वर्तुलाकार स्कन्ध का ग्रहण नही हो सकता था। उन वृक्षो के अनेक पत्र छिद्ररहित थे, वे पत्र अविरल थे—बहुत अधिक थे। अधोमुख—नतमुख थे, ईतियो—विपत्तियो से रहित थे। पुराने, पीले और सडे हुए नही थे। नवीन, हरित थे, चमकीले थे। पत्रो की अधिकता से वहाँ अधकार व्याप्त हो रहा था, अत एव वे गभीर और दर्शनीय थे। नवीन निकलने के कारण वे पत्र और पल्लव नूतन तरुणता से सम्पन्न थे—मुरझाए हुए नही थे, पत्रो पर जो कोपलें थी, वे कोमल थी, उज्जवल थी, मृदु पवन के झोको से हिलती रहती थी। उनके प्रवाल भी बहुत कोमल थे। इस प्रकार पत्रो, पल्लवो, कोपलो तथा प्रवालो से इन के उत्पन्न हुए अकुर शोभित होरहे थे। इन अकुरो से उन वृक्षो का अग्रभाग लहलहा रहा था। ये वृक्ष सदा सर्व ऋतु के फूलो से फूले रहते थे।

वनखण्ड के वृक्षो पर सदा मोर रहते थे। ये वृक्ष नित्य पल्लवित रहते थे, सदा गुच्छो से युक्त रहते थे, इन पर सदा नवमल्लिका आदि लताए लिपटी रहती थी। ये सदा फूलो, फलो के गुच्छो से युक्त रहते थे। ये सदा समश्रेणिरूप से स्थित रहते थे, ये सदा युगलरूप से स्थित रहते थे। ये सदा ही फल पुष्पादि के भार से झुके रहते थे, वे सदा अत्यन्त झुके रहते थे। इस प्रकार ये सब के सब कुसुमित, मयूरित, पल्लवित, स्तवकित, गुल्मित, गुच्छित, यमलित, युगलित, विनमित, प्रणमित वृक्ष पृथक्-पृथक् घनीभूत मजरीरूप शिरोभूषणो से सदा युक्त रहते थे।

ये वृक्ष शुक, मयूर मदनशाल (मैना), कोकिल, कोभगक (पक्षिविशेष), भृंगारक (पक्षिविशेष), कोडलक (पक्षिविशेष), जीवजीवक (चकोर), नन्दीमुख (पक्षिविशेष), कपिल (तीतर), पिंगलाक्षक (बटेर), कारण्ड (पक्षिविशेष), चक्रवाक (चकवा), कलहस (हसविशेष), सारस इत्यादि अनेक पक्षियो के जोडो की उन्नत एव मधुर स्वर वाली ध्वनियो से युक्त थे। ये बडे ही सुरम्य—आनन्दप्रद थे। मद से उन्मत्त भ्रमर और भ्रमरियो के समुदाय जो पुष्पो के रसपान से उन्मत बने हुए थे, अथवा पुष्पो के रस का पान करने के लिए लालायित हो रहे थे, के "गुम् गुम्" इस प्रकार के अव्यक्त नाद से

गूजते रहते थे। आभ्यन्तर मे पुष्पो एव फलो से तथा वाहिर मे पत्तो से ये वृक्ष व्याप्त हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि ये पत्रो और पुष्पो से आच्छादित हो रहे हैं।

ये वृक्ष मीठे फलो वाले थे, निरोग—रोगरहित थे, कण्टकरहित थे, अनेक प्रकार के गुच्छगुल्मो (पुष्प स्तवको) से मण्डित तथा लतामण्डपो से युक्त होने के कारण रम्य एव सुशोभित थे। ये विचित्र सुखो के केन्द्र बने हुए थे। उस वनखण्ड मे जितनी भी वापी (चार कोणो काली वावडियाँ), पुष्करिणी (गोलाकार तथा कमलिनियो से यक्त वावडियाँ) तथा दीर्घकाए (लम्बे आकार वाली वावडिया) थी, उन सब पर वृक्षो के यथायोग्य सन्निवेश से स्थान-स्थान पर सुन्दर जाली-झरोखे बने हुए थे।

वनखण्ड के वृक्ष शुभ पुद्गलो के समूह से दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्धि वाली, अपने शुभ सौरभ से मन को आनदित करने वाली विशिष्ट सुगन्ध की परम्परा को छोडते रहते थे। ये वृक्ष नाना प्रकार के गुच्छो, गुल्मो से बने हुए अनेक मण्डप, घर, सुन्दर मार्ग और पताकाओ से सदा सुशोभित रहते थे। वहा पर अनेक रथ, यान, युग्य (तागा) और पालकी आदि सवारियो के साधन रखे जाते थे। ये बडे सुरम्य—अत्यन्त रमणीय, आल्हादकारक, दर्शनीय, सुन्दर आकृति वाले, अभिमत्त रूप वाले, लोगो के हृदयो को आकर्षित करने वाले थे। इस वनखण्ड के प्राय मध्य मे एक विस्तृत अशोक नामक श्रेष्ठ वृक्ष था।

"**असोगवरपायवे०**" यहा दिए गए बिन्दु से सूत्रकार को निम्नलिखित पाठ का ग्रहण करना इष्ट है—

"**पण्णत्ते कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूले, मूलमते, कदमते जाव पविमोयणे, सुरम्मे पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।**"

से ण असोगवरपायवे अण्णेहिं, बहूहिं, तिलएहिं, लउएहिं, छत्तोवेहिं, सिरीसेहिं, सत्तवण्णेहिं, दहिवण्णेहिं, लोद्धेहिं, धवेहिं, चदणेहिं, अज्जुणेहिं, णीवेहिं, कुडएहिं, सव्वेहिं फणसेहिं, दाडिमेहिं, सालेहिं तालेहिं, तमालेहिं, पिएहिं, पियगूहिं, पुरोवगेहिं, कायरुक्खेहिं, णदिरुक्खेहिं सव्वओ समता सपरिक्खित्ते। तेण तिलया लवइया जाव णदिरुक्खा कुस-विकुस विसुद्धरुक्खमूला मूलमतो कदमतो, एएसिं वण्णओ भाणियव्वो, जाव सिविय पविमोयणा सुरम्मा, पासदीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा।

ते ण तिलया जाव णदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउमलयाहिं, णागलयाहिं असोअलयाहिं, चपगलयाहिं, चूयलयाहिं, वणलयाहिं, वासतियलयाहिं, अइमुत्तयलयाहिं, कुदलयाहिं, सामलयाहिं, सव्वओ समता सपरिक्खित्ता। ताओ ण पउमलयाओ णिच्च कुसुमियाओ जाव वडिसयधरीओ पासादीयाओ, दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ, पडिरूवाओ।

तस्स ण असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिं खधसमल्लीणे एत्थ ण महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते, विक्खभायामउस्सेह सुप्पमाणे किण्हे अजण-घण-किवाण-कुवलय-हलधर-कोसेज्जागास-केस-कज्जलगी-खजण-सिंग-भेदरिट्ठय - जबूफल-असण-कसण-बधण-णीलुप्पल-पत्तनिकर-अयसि-कुसुमप्पगासे, मरकत-मसारकलित्तणयणकीयरासि-वण्णे, णिद्धघणे, अट्ठसिरे, आयमयतलोवमे सुरम्मे, ईहामिय-

उसभ-तुरग-नर-मगर-विहगवालग-किण्णर-रुरुसरभ-चमर-कुजर - वणलय-पउमलय-भित्तिचित्ते, आईणगरूय-बूर-णवणीय-तूलफरिसे सीहासणसठिए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।
—औपपातिक सूत्र ५

अर्थात्—अशोकवृक्ष का मूलभाग—अधोभाग कुश, एव विकुश आदि तिनको से रहित था। वह विशुद्ध मूल वाला, कद वाला यावत् रथादि सवारिया उस के नीचे रखी जाती थी। वह अत्यन्त रमणीय, आल्हादकारक, दर्शनीय, अभिरूप—सुन्दर आकृति वाला तथा सबके मन को आकर्षित करने वाला था।

वह सुन्दर अशोक वृक्ष अन्य अनेक तिलक वृक्ष, लकुच वृक्ष, छत्रोप—वृक्षविशेष, शिरीष, सप्तपर्ण, दीर्घ वर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज, सव्य, पणस, दाडिम—अनार का वृक्ष, शाल, ताल, तमाल, पिय-प्रियगू, पुरोपग, राजवृक्ष (पीपल) और नन्दिवृक्ष इन से सर्वदिशाओ और विदिशाओ मे घिरा हुआ था। वे तिलक, लकुच यावत् नन्दिवृक्ष वृक्षसमुदाय कुश, विकुश आदि तिनको से रहित मूल भाग वाला था। यह वृक्षसमुदाय विशुद्ध मूल वाला, विशुद्ध कद वाला था। इन वृक्षो का वर्णन पहले की भान्ति जानना।

अशोक वृक्ष के समान ही उस वृक्षसमुदाय के नीचे शिविका आदि सवारिया रखी जाती थी। वृक्षसमुदाय रमणीय चित्ताल्हादक, दर्शनीय आकृति वाला तथा सब के मन को आकर्षित करने वाला था। तिलक से लेकर नन्दिवृक्ष तक सभी वृक्ष अन्य अनेक प्रकार की पद्मलताओ से, चम्पक लताओ से, आम्र लताओ से, वन लताओ से, वासन्ती लताओ से, कुन्द लताओ से और श्याम लताओ से समस्त दिशाओ और विदिशाओ मे चारो ओर से घिरे हुए थे।

वे पद्मलता आदिक लताए नित्य ही पुष्पो से युक्त रहती थी। यावत् वे ऐसी ज्ञात होती थी मानो इन्हो ने शिरोभूषण धारण कर रखे हैं। वे लताए चित्ताल्हादकारक थी, दर्शनीय थी, सुन्दराकृति वाली थी, तथा सब को आकर्षित करने वाली थी।

उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे स्कन्ध से कुछ दूरी पर एक विशाल शिलापट्ट था। वह चौडाई, लम्बाई एव ऊचाई मे उचित प्रमाण वाला था। वह कृष्ण वर्ण वाला था। उस शिलापट्ट का अजनवृक्ष, नीलमेघ, कृपाण—तलवार, नीलकमल, हलधर, कौशेय—बलदेव का नीलवस्त्र, आकाश, केश—कलिवर्ण के बाल, काजल रखने की डिबिया, खजन—पक्षिविशेष, शृङ्ग-भेद, भैस आदि के सीग का खण्ड, रीठा, जामुन, अशणक—नील वर्ण का वृक्षविशेष, सनबन्ध—सन के फूल की डोडी, नीलोत्पल—नीलकमल के पत्तो का समूह, अलसी का फूल इन के प्रकाश जैसा प्रकाश था। मरकत-मणि—पत्थर को चिकना करने वाला पत्थर या कसौटी, कृष्ण—चमडे की बनी हुई वस्तु विशेष, नेत्र की कनीनिका, इन के समुदाय जैसा उस शिलापट्ट का वर्ण था। वह शिलापट्ट सजल मेघ के समान श्याम वर्ण वाला था। इस के आठ कोने थे। इस का तलभाग आदर्श—दर्पण जैसा चमकीला था। वह अत्यन्त रमणीय था। वह शिलापट्ट ईहामृग—मृगविशेष, वृषभ, घोडा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी व्यालक—सर्प, किन्नर—व्यन्तरदेवविशेष, रुरु—काला मृग, सरभ, अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता एव

पद्मलता इन सब के चित्रों से अलकृत था। आजिनक—चर्ममय वस्त्र, रुत—रूई, बूर—वृक्षविशेष, नवनीत—माखन, तूल—आक की रूई, इन सब के समान उस का स्पर्श था। उस का आकार सिंहासन जैसा था। वह शिलापट्ट हृदय को हर्ष देने वाला था। देखने योग्य था। सुन्दर आकृति वाला था। सब को अपनी ओर आकर्षित करने वाला था।

प्रस्तुत सूत्र मे द्वारिका नगरी तथा उसके बाहिर स्थित यक्षायतन आदि का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार अगले सूत्र मे द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तत्थ णं बारवती नयरीए कण्हे णाम वासुदेवे राया परिवसइ। महया रायवण्णतो। से ण तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाण दसण्ह दसाराण, बलदेवपामोक्खाण पचण्ह महावीराण, पज्जुन्नपामोक्खाण अद्धुट्ठाण कुमारकोडीण, सबपामोक्खाण सट्ठीए दुदन्त साहस्सीण, महासेणपामोक्खाण छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीण, वीरसेणपामोक्खाण एगवीसाते वीरसाहस्सीण, उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्हं रायसाहस्सोण, रुप्पिणीपामोक्खाण सोलसण्ह देविसाहस्सीण, अणगसेना-पामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण, अन्नेसिं च बहूण ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवतीए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स आहेवच्च जाव विहरति।

छाया—तत्र द्वारवतीनगर्या कृष्णनामा वासुदेवो राजा परिवसति। महता राजवर्णक। स तत्र समुद्रविजयप्रमुखाना दशाना दशार्हाणा बलदेव प्रमुखाना पचाना महावीराण, प्रद्युम्नप्रमुखानामर्द्ध-चतुष्काणा कुमारकोटीना, शाम्बप्रमुखाना षष्ठ्य दुर्दान्तसाहस्रीणा, महासेनप्रमुखानाँ षट्पचाशत् बलवर्गसाहस्रीणा, वीरसेनप्रमुखानामेकविंशतिवीरसाहस्रीणाम्, उग्रसेन प्रमुखाना षोडशाना राज-साहस्रीणा, रुक्मिणीप्रमुखाना षोडशाना देवीसाहस्रीणाम्, अनगसेन प्रमुखानामनेकाना गणिका-साहस्रीणामन्येषा च बहूनामीश्वरयावत् सार्थवाहाना द्वारावत्या नगर्या अर्द्धभारतस्य च समस्तस्याधिपत्य यावत् विहरति।

पदार्थ—ण—वाक्यालकार मे ग्रहण किया जाता है, तत्थ—वहा, बारवतीनयरीए—द्वारिका नगरी मे, कण्हे णाम—कृष्ण नाम का, वासुदेवे राया—वासुदेव राजा, परिवसति—निवास करता है, महया—जो कि महान है, रायवण्णतो—राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र की तरह जानना, से—वह कृष्ण वासुदेव, तत्थ—वहाँ पर, समुद्दविजयपामोक्खाण—समुद्रविजय प्रमुख—अर्थात् जिनमे समुद्रविजय प्रधान है ऐसे, दसण्ह—दश, दसाराण—दशार्हो, दस पूज्य जनो का, बलदेवपामोक्खाण—बलदेव की प्रधानता वाले, पचण्ह—पाच, महावीराण—महावीरो के, पज्जुन्न पामोक्खाण—प्रद्युम्न की प्रधानता वाले, अद्धुट्ठाण—साढे तीन, कुमारकोडीण—करोड कुमारो के, सबपामोक्खाण—शाम्ब की प्रधानता वाले, सट्ठीए—६०, दुद्दतसाहस्सीण—हजार दुर्दान्त मनुष्यो के, महासेनपामोक्खाण—महासेन की प्रधानता वाले,

छप्पण्णाए—छप्पन, **बलवग्गसाहस्सीण**—हजार बलवर्ग—सैन्यसमूह के, **वीरसेनपामोक्खाण**—वीरसेन की प्रधानता वाले, **एगवीसाते**—इक्कीस, **वीरसाहस्सीण**—हजार वीर योद्धाओ के **उग्गसेणपामोक्खाण**—उग्रसेन की प्रधानता वाले, **सोलसण्ह**—सोलह, **रायसाहस्सीण**—हजार राजाओ के, **रुप्पिणीपामोक्खाण**—रुक्मिणी की प्रधानता वाली, **सोलसण्ह**—सोलह, **देवीसाहस्सीण**—हजार देवियो रानियो के, **अणगसेणापामोक्खाण**—अनगसेना की प्रधानता वाली, **अणेगाण**—अनेक **गणियासाहस्सीण**—हजार गणिकाओ के, **अण्णेसि च**—और दूसरे, **बहूण**—अनेको, **ईसर**—ईश्वर-ऐश्वर्यशाली, **जाव**—यावत् **सत्थवाहाण**—सार्थवाहो—सेठो के **बारवतीए नयरीए य**—द्वारिका नगरी के तथा,, **समत्थस्स**—समस्त **अद्धभरहस्स**—अर्द्धभारत के **आहेवच्च**—आधिपत्य-शासन को धारण करता हुआ, **जाव**—यावत **विहरति**—विहरण करता है।

मूलार्थ—द्वारिका नगरी मे कृष्ण नाम के वासुदेव राजा राज्य करते थे, ये महान थे। (इनका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिये।)

द्वारिका नगरी मे कृष्ण महाराज, समुद्रविजय की प्रधानतावाले दश दशार्ह, दस पूज्यजन, बलदेव की प्रधानतावाले पाच महावीर, प्रद्युम्न की प्रधानतावाले साढे तीन करोड राजकुमार, शाम्ब की प्रधानतावाले ६० हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन की प्रधानतावाले ५६ हजार सैनिक, वीरसेन की प्रधानता वाले २१ हजार वीर, उग्रसेन की प्रधानता वाले १६ हजार राजा, रुक्मिणी की प्रधानतावाली १६ हजार देविया—रानिया, अनंगसेना की प्रधानतावाली हजारो गणिकाए, तथा और भी अनेको ऐश्वर्यशाली यावत् सेठ, इन सब पर तथा द्वारिका एव आधे भारत के समस्त जनों पर शासन कर रहे थे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण के राज्यवैभव का वर्णन किया गया है। सूत्र का अर्थ मूलार्थ में लिखा जा चुका है। इस वर्णन से यह ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुए उपलब्ध थी और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था, उस में किसी भी प्रकार की न्यूनता नही थी। कृष्ण महाराज का पुण्यदिवाकर पूरे यौवन मे था और उसका प्रखर तेज सब के लिये असह्य बन रहा था।

'रायवण्णतो'—पद से सूत्रकार ने निम्नोक्त पदों की ओर सकेत किया है—

"हिमवत-महत-मलयमदर-महिंदसारे, अच्चत-विसुद्ध दीहराय-कुलवससुप्पसूए, निरतरं रायलक्खण विराइअगमगे, बहुजनबहुमाणे, पूजिए, सव्वगुणसमिद्धे, खत्तिए, मुइए, मुद्धाहिसित्ते माउपिउ-सुजाए दयपत्ते, सीमकरे सीमधरे, खेमकरे खेमधरे, मणुस्सिन्दे, जणवयपिया, जणवयपाले, जणवयपुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, णरपवरे, पुरिसवरे, पुरिससीहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुण्डरीए, पुरिसवरगन्धहत्थी, अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णे-

पद्मलता इन सब के चित्रो से अलकृत था। आजिनक—चर्ममय वस्त्र, रुत—रुई, वूर—वृक्षविशेष, नवनीत—माखन, तूल—आक की रुई, इन सब के समान उस का स्पर्श था। उस का आकार सिंहासन जैसा था। वह शिलापट्ट हृदय को हर्ष देने वाला था। देखने योग्य था। सुन्दर आकृति वाला था। सब को अपनी ओर आकर्षित करने वाला था।

प्रस्तुत सूत्र मे द्वारिका नगरी तथा उसके वाहिर स्थित यक्षायतन आदि का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार अगले सूत्र मे द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—तत्थ ण बारवती नयरीए कण्हे णाम वासुदेवे राया परिवसइ। महया रायवण्णतो। से ण तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाण दसण्हं दसाराण, बलदेवपामोक्खाण पचण्ह महावीराणं, पज्जुन्नपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडोणं, सबपामोक्खाणं सट्ठीए दुदन्त साहस्सीण, महासेणपामोक्खाण छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाण एगवीसाते वीरसाहस्सीण, उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्ह रायसाहस्सोणं, रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्ह देविसाहस्सीणं, अणंगसेना-पामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण, अन्नेसिं च बहूण ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवतीए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स आहेवच्च जाव विहरति।

छाया—तत्र द्वारवतीनगर्या कृष्णनामा वासुदेवो राजा परिवसति। महता राजवर्णक। स तत्र समुद्रविजयप्रमुखाना दशाना दशार्हाणा बलदेव प्रमुखानां पचाना महावीराण, प्रद्युम्नप्रमुखानामर्द्ध-चतुष्काणा कुमारकोटीना, शाम्बप्रमुखाना षष्ठ्य दुर्दान्तसाहस्रीणा, महासेनप्रमुखानां षट्पचाशत् बलवर्गसाहस्रीणा, वोरसेनप्रमुखानामेकविंशतिवीरसाहस्रीणाम्, उग्रसेन प्रमुखाना षोडशाना राज-साहस्रीणा, रुक्मिणोप्रमुखानां षोडशाना देवीसाहस्रीणाम्, अनगसेन प्रमुखानामनेकाना गणिका-साहस्रीणामन्येषा च बहूनामीश्वरयावत् सार्थवाहाना द्वारावत्या नगर्या अर्द्धभारतस्य च समस्तस्याधिपत्य यावत् विहरति।

पदार्थ—ण—वाक्यालकार मे ग्रहण किया जाता है, तत्थ—वहा, **वारवतीनयरीए**—द्वारिका नगरी मे, **कण्हे णाम**—कृष्ण नाम का, **वासुदेवे राया**—वासुदेव राजा, **परिवसति**—निवास करता है, **महया**—जो कि महान है, **रायवण्णतो**—राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र की तरह जानना, **से**—वह कृष्ण वासुदेव, **तत्थ**—वहाँ पर, **समुद्दविजयपामोक्खाण**—समुद्रविजय प्रमुख—अर्थात् जिनमे समुद्रविजय प्रधान है ऐसे, **दसण्ह**—दश, **दसाराण**—दशार्हों, दस पूज्य जनो का, **बलदेवपामोक्खाण**—बलदेव की प्रधानता वाले, **पचण्ह**—पाच, **महावीराण**—महावीरो के, **पज्जुन्न पामोक्खाण**—प्रद्युम्न की प्रधानता वाले, **अद्धुट्ठाण**—साढे तीन, **कुमारकोडीण**—करोड कुमारो के, **सबपामोक्खाण**—शाम्ब की प्रधानता वाले, **सट्ठीए**—६०, **दुद्दतसाहस्सीण**—हजार दुर्दान्त योद्धाओं के, **महासेनपामोक्खाण**—महासेन की प्रधानता वाले,

छप्पण्णाए—छप्पन, बलवग्गसाहस्सीण—हजार बलवर्ग—सैन्यसमूह के, वीरसेनपामोक्खाण—वीरसेन की प्रधानता वाले, एगवीसाते—इक्कीस, वीरसाहस्सीण—हजार वीर योद्धाओ के उग्गसेणपामोक्खाण—उग्रसेन की प्रधानता वाले, सोलसण्ह—सोलह, रायसाहस्सीण—हजार राजाओ के, रुप्पिणीपामोक्खाण—रुक्मिणी की प्रधानता वाली, सोलसण्ह—सोलह, देवीसाहस्सीण—हजार देवियो रानियो के, अणगसेणापामोक्खाण—अनगसेना की प्रधानता वाली, अणेगाण—अनेक गणियासाहस्सीण—हजार गणिकाओ के, अण्णेसि च—और दूसरे, बहूण—अनेको, ईसर—ईश्वर-ऐश्वर्यशाली, जाव—यावत् सत्थवाहाण—सार्थवाहो—सेठो के बारवतीए नयरीए य—द्वारिका नगरी के तथा,, समत्यस्स—समस्त अद्धभरहस्स—अर्द्धभारत के आहेवच्च—आधिपत्य-शासन को धारण करता हुआ, जाव—यावत् विहरति—विहरण करता है।

मूलार्थ—द्वारिका नगरी मे कृष्ण नाम के वासुदेव राजा राज्य करते थे, वे महान थे। (इनका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिये।)

द्वारिका नगरी मे कृष्ण महाराज, समुद्रविजय की प्रधानतावाले दश दशार्ह, दस पूज्यजन, बलदेव की प्रधानतावाले पाच महावीर, प्रद्युम्न की प्रधानतावाले साढे तीन करोड राजकुमार, शाम्ब की प्रधानतावाले ६० हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन की प्रधानतावाले ५६ हजार सैनिक, वीरसेन की प्रधानता वाले २१ हजार वीर, उग्रसेन की प्रधानता वाले १६ हजार राजा, रुक्मिणी की प्रधानतावाली १६ हजार देविया—रानिया, अनंगसेना की प्रधानतावाली हजारो गणिकाए, तथा और भी अनेको ऐश्वर्यशाली यावत् सेठ, इन सब पर तथा द्वारिका एव आधे भारत के समस्त जनों पर शासन कर रहे थे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण के राज्यवैभव का वर्णन किया गया है। सूत्र का अर्थ मूलार्थ में लिखा जा चुका है। इस वर्णन से यह ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुए उपलब्ध थीं और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था, उस में किसी भी प्रकार की न्यूनता नही थी। कृष्ण महाराज का पुण्यदिवाकर पूरे यौवन मे था और उसका प्रखर तेज सब के लिये असह्य बन रहा था।

'रायवण्णतो'—पद से सूत्रकार ने निम्नोक्त पदों की ओर सकेत किया है—

"हिमवत-महत-मलयमदर-महिंदसारे, अच्चत-विसुद्ध दीहराय-कुलवससुप्पसूए, निरतरं रायलक्खण विराइअगमगे, बहुजनबहुमाणे, पूजिए,सव्वगुणसमिद्धे, खत्तिए, मुइए, मुद्धाहिसित्ते माउपिउ-सुजाए दयपत्ते, सीमकरे सीमधरे, खेमकरे खेमधरे, मणुस्सिन्दे, जणवयपिया, जणवयपाले, जणवयपुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, णरपवरे, पुरिसवरे, पुरिससीहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुण्डरीए,पुरिसवरगन्धहत्थी, अड्ढे वित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णे-

बहुधण-बहुजायरूवरयते, आओग-पओग-सपउत्ते विच्छड्डियभत्तपउर-भत्तपाणे बहुदासदासी-गोमहिस-गवेलग-प्पभूते, पडिपुण्ण जत-कोसकोट्ठागराउधागारे, बलव, दुब्बलपच्चामित्ते ओहयकण्टय, निहयकटय, मलियकटय, उद्धियकटय, अकटय, ओहयसत्तु, निहयसत्तु, मलियसत्तु, उद्धियसत्तु, निज्जियसत्तु, पराइअसत्तु, ववगयदुब्भिक्ख, मारिभयविप्पमुक्क, खेम, सिव, सुभिक्ख, पसन्त-डिम्बडमर रज्ज पसासेमाणे विहरइ ।

इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

महाराज कृष्ण महाहिमवान—हिमालय के समान महान थे । जैसे समस्त पर्वतो मे हिमालय पर्वतमहान माना जाता है, उसी प्रकार शेप राजाओ की अपेक्षा कृष्ण महाराज महान थे। मलय—पर्वतविशेष, मन्दर—मेरुपर्वत, महेन्द्र—पर्वतविशेष अथवा महाराज इन्द्र के समान वे प्रधान थे। ये अत्यन्त विशुद्ध, निर्दोष तथा चिर–दीर्घकालीन राजाओ के वश मे उत्पन्न हुए थे। उन का प्रत्येक अग राजलक्षणो—स्वस्तिक आदि चिन्हो से निरन्तर (बिना अन्तर के) सुशोभित था। वह अनेक जनसमूहो से सम्मानित थे, पूजित थे, वे सर्वगुणसम्पन्न थे, वे क्षत्रिय जाति के थे, वे मुदित–प्रसन्न रहनेवाले थे। मूर्धन्य व्यक्तियो ने उनका राज्याभिषेक किया था। वे माता पिता के विनीत पुत्र होने के कारण सुपुत्र कहलाते थे। वे दयालु थे। वे विधान आदि की मर्यादा के निर्माता और अपनी मर्यादाओ का पालन करनेवाले थे। वे उपद्रव करनेवाले नही थे, और न ही वे उपद्रव होने देते थे। वे मनुष्यो मे इन्द्र के समान थे, तथा उनके स्वामी थे । देश के हितकारी होने के कारण वे देश के पिता समझे जाते थे। वे देश के रक्षक थे। शान्ति-कारक होने से वे देश के पुरोहित माने जाते थे। वे देश के मार्ग-दर्शक थे। वे देश के अद्भुत कार्य करनेवाले थे। श्रेष्ठ मनुष्यो वाले थे और वे स्वय मनुष्यो मे उत्तम थे। वे पुरुषो मे वीर होने के कारण सिंह के समान थे। वे रोष पूर्ण हुए मनुष्यो मे व्याघ्र-बाघ के समान प्रतीत होते थे। अपने क्रोध को सफल करने मे समर्थ होने के कारण वे पुरुपो मे आशीविप—सर्प विशेष के समान थे । अर्थी रूपी भ्रमरो के लिये वे श्वेत कमल के समान थे। गजरूपी शत्रु राजाओ को पराजित करने मे समर्थ होने के कारण वे पुरुषो मे श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान थे। वे आढय–समृद्ध थे, वे आत्मगौरव वाले थे। उन का यश बहुत विस्तृत हो रहा था, उनके विशाल तथा बहुसख्यक सम्पन्न भवन, शयन-शय्या, आसन, यान, वाहन, रथ तथा घोडे आदि से भरे पडे थे। उनके पास बहुत सा धन तथा बहुत सा चाँदी सोना था। वे सदा अर्थलाभ–आमदनी के उपायो मे लगे रहते थे। वे बहुत से अन्न, पानी का दान किया करते थे। उनके पास बहुत सी दासिया, दास, गौए, भैसें तथा भेडें थी। उन के पास पत्थर फेंकने वाले यत्र, कोष, भण्डार, कोष्ठागार–धान्यगृह तथा आयुधागार—शस्त्रशाला, ये सब परिपूर्ण थे। अर्थात् यत्र पर्याप्त मात्रा मे थे और उन से कोषादि भरे हुए रहते थे। उनके पास विशाल सेना थी। उनके पडोसी राजा निर्बल थे अर्थात् वे बहुत बलवान न थे। उन्होने स्पर्धा रखनेवाले समानगोत्रीय व्यक्तियो का विनाश कर डाला था, उनकी सम्पत्ति छीन ली थी उन का मान भग कर डाला था तथा उन्हें देश से निकाल दिया था।

महाराज कृष्ण ने शत्रुओ को जीत लिया था, उन्हे पराजित कर डाला था, अर्थात् पुन राज्य प्राप्त करने की सभावना भी उनकी समाप्त कर दी थी। वे ऐसे राज्य के शासन का पालन

करते हुए शासन कर रहे थे जिसमे दुर्भिक्ष–अकाल नही था, जो महामारी–प्लेग के भय से रहित था, क्षेमरूप था, अर्थात् जहाँ लोग कुशलतापूर्वक रहते थे। जो शिवरूप था, सुखरूप था, जिसमे भिक्षा सुलभ थी, जिसमे डिम्बो–विघ्नो और डमरो–विद्रोहो का अभाव था।

"दसण्ह दसाराण" इन पदों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं—

दसण्ह दसाराण'त्ति तत्रैते दश—

समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्तिमित सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरण पूरणस्तथा॥ १॥
अभीचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्,
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्री च विश्रुते॥ २॥

'दश च तेऽर्हाश्च-पूज्या इति दशार्हा।'

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दस भाई थे—१—समुद्रविजय, २—अक्षोभ्य, ३—स्तिमित, ४—सागर, ५—हिमवान, ६—अचल, ७—धरण, ८—पूरण, ९—अभिचन्द्र, १०—वसुदेव। ये दसों बडे बली थे। समुद्रविजय सब से बडे थे और वसुदेव सब से छोटे। इन के कुन्ती और माद्री ये दो बहिने थी।

'समुद्दविजय पामोक्खाण—समुद्रविजय-प्रमुखानाम्, समुद्रविजय प्रमुखो मुख्य येषु ते, तेषामिति।' अर्थात् समुद्रविजय सब मे मुख्य थे, प्रधान थे। कृष्ण महाराज के लिये दसो पूज्य थे, आदरास्पद तथा सम्मानास्पद थे, इसलिये इन दसो को दशार्ह शब्द से सूत्रकार ने अभिव्यक्त किया है। दशार्ह शब्द प्राकृत मे दशार का रूप ले लेता है। इसलिये इन्हें दस दशार कहा जाता है।——

महावीराण—महावीराणाम्, विशेषेण ईरयन्ति कम्पन्ते शत्रून् ये ते वीरा, महान्तश्च ते वीराश्चेति महावीरा, तेषामिति। अतिशूराणामित्यर्थ। अर्थात्—शत्रुओ के हृदयो को कम्पित कर देनेवाले बलवान् व्यक्ति वीर कहलाते हैं। वीरो मे भी जो महान वीर हो, उन्हे महावीर कहते हैं। महाबली, अतिशूर, महावीर ये समस्त शब्द समानार्थक हैं।

'पज्जुण्णपामोक्खाण अद्धुट्ठाण कुमार-कोडीणं—प्रद्युम्न प्रमुखो मुख्यो येषा ते प्रद्युम्नप्रमुखा, तेषामिति, अद्धुट्ठाणां अर्धचतुष्काणां, सार्धत्रिकसख्यकानामित्यर्थ, कुमारकोडीण कुमारकोटीनाम्, कुमाराणां कोटयस्तासामिति। अर्थात्—साढे तीन करोड कुमार थे और इन मे प्रद्युम्न मुख्य थे। प्रद्युम्न इन कुमारो के नेता थे।

यहा प्रश्न हो सकता है कि कुमारो की इतनी बडी सख्या द्वारिका नगरी मे ही विद्यमान थी? या कुछ राजकुमार द्वारिका मे और कुछ द्वारिका से बाहिर रहते थे? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारो की जो सख्या बतलाई है, वह केवल द्वारिकानिवासी राजकुमारो की नहीं, प्रत्युत ये सभी राजकुमारो की है। महाराज कृष्ण के समस्त राज्य मे इनका निवास था। उस समय महाराज कृष्ण का राज्य वैताढ्य पर्वत तक फैला हुआ था, अत कुमारो की उक्त सख्या भारत वर्ष के तीनो खण्डो मे निवास करती थी।

सूत्रकार ने आगे चल कर **"उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्ह रायसाहस्सीण"** ये पद दिये हैं। इन का अर्थ है—सोलह हजार राजा थे, इन के मुखिया महाराज उग्रसेन थे। ये सोलह हजार राजा भी द्वारिका नगरी मे नही रहते थे। इन राजाओ का राज्य तीनो खण्डो मे था और तीनो खण्डो मे इन का निवास था।

सूत्रकार ने कुमारो की, राजाओ की तथा अन्य लोगो की सख्या का जो निर्देश किया है, इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य मे ये सब लोग रहते थे और इन सब पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे। जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की सख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियो की जाति, धर्म और भाषा का बोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वासुदेव कृष्ण के राज्य मे कितने कुमार थे ? कितने राजा थे ? कितना सैनिक दल था ? कितनी रानिया थी ? कितनी गणिकाए थी ? आदि सभी बातो का सूत्रकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है। इस का यह अर्थ नही समझना चाहिये कि सूत्रकार ने जिन लोगों का परिचय कराया है, वे सब द्वारिका मे ही रहा करते थे। सूत्रकार ने सूत्र के अन्त मे **"आहेवच्चं"** यह पद दे कर इस तथ्य को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है। **आहेवच्च** का अर्थ है—शासन। भाव यह है कि द्वारिका मे रहते हुए कृष्ण महाराज सब के ऊपर अपना शासन चला रहे थे।

कुमारों की संख्या तथा अन्य लोगों की सख्या का वर्णन जिस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में किया गया है, ठीक इस से मिलता-जुलता वर्णन श्री ज्ञातासूत्र के पांचवें अध्ययन में तथा सोलहवें अध्ययन में मिलता है। इस प्रकार का वर्णन प्रश्नव्याकरण के चतुर्थ अध्ययन मे भी आता है।

"दुद्दन्तसाहस्सीण" दुर्दान्तसाहस्रीणाम्, दुर्दान्तानां परैर्दमितुमशक्यानां साहस्र्यस्तासां शत्रुभिरदम्यानामिति। अर्थात्—शत्रुओं द्वारा जिनका दमन न किया जा सके, जिन्हें पराजित न किया जा सके, उन्हें दुर्दान्त कहते हैं। महाराज कृष्ण के राज्य में ऐसे ६० हज़ार दुर्दान्त वीर थे। और उनमे शाम्ब कुमार मुखिया थे।

"बलवग्गसाहस्सीण" बलवर्गसाहस्रीणाम् बलवर्गाणां सैन्यसमूहानां साहस्र्यस्तासामिति। अर्थात्—बल का अर्थ है सैनिक। समूह को भी बल कहते हैं। दोनो को मिलाकर अर्थ होगा—सैनिक समूह। भाव यह है कि वासुदेव कृष्ण के पास ५६ हजार सैन्यसमूह था। महासेन उस सैन्य-समूह का नायक अर्थात् मुखिया था।

वासुदेव कृष्ण का राज्य तीन खण्डो मे था। इतने बडे प्रदेश मे ५६ हजार सैनिक क्या महत्व रखते है ? कृष्णराज्य की अपेक्षा भारत छोटा सा देश है, आज इस के पास लाखो सैनिक है। तीन खण्डो की सुरक्षार्थ तो करोडो सैनिक अपेक्षित है। फिर सूत्रकार ने जो ५६ हजार सैनिक लिखे हैं ? इस का क्या कारण है ? इस प्रश्न का होना स्वाभाविक है। इस का समाधान इस प्रकार है। बलवग्ग शब्द सैन्यसमूह का बोधक है। सैन्यसमूह का अर्थ है—सैनिको का समुदाय, अत सूत्रकार ने जो बलवर्ग शब्द दिया है वह सैनिकदलो—सैनिक टुकडियो का परिचायक है। फिर एक सैनिक दल मे भले ही हजारो सैनिको की सख्या हो। कहने का भाव यह है कि महाराज कृष्ण के

पास ५६ हजार सैनिक-समुदाय था। केवल ५६ हजार सैनिक थे, यह अर्थ नही समझना चाहिए। "रहस्य तु केवलिगम्यम् ।"

"अणगसेणापामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण" यहा पठित **'अणेगाण'** यह पद अनेक का बोधक है। इस का भाव यह है कि जिस प्रकार कुमारो की, सैन्यदल की और रानियो की सख्या निश्चित थी, परन्तु महाराज कृष्ण के राज्य मे रहनेवाली गणिकाओ की सख्या निश्चित नहीं थी, इसीलिये सामान्य रूप से प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने हजारो गणिकाओ का उल्लेख कर दिया है। अनगसेना का सब गणिकाओ मे प्रधान स्थान था।

गणिका शब्द के दो अर्थ उपलब्ध होते हैं—१—नृत्य तथा गायन द्वारा जीविका चलानेवाली स्त्री। २—पैसे लेकर कामियो की कामवासना पूर्ण करनेवाली नारी। प्रस्तुत मे गणिका शब्द का प्रथम अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये।

"ईसर जाव सत्थवाहाण" यहाँ पठित **जाव**—यावत् पद से **"तलवर-माडबिय-कोडुबिय—"** इन पदो का ग्रहण करना चाहिए। इन का अर्थ इस प्रकार है—

'ईश्वर—युवराज का नाम है। **तलवर**—राजा के कृपापात्र को अथवा जिन्होने राजा की ओर से उच्च आसन (पदवी विशेष) प्राप्त करलिया है, ऐसे नागरिको को तलवर कहते हैं। जिस के निकट दो-दो योजन तक कोई ग्राम न हो उस प्रदेश को **मडम्ब** कहते है, मडम्ब के अधिनायक को **माँडबिक** कहा गया है। कुटुम्बो के स्वामी को सेठ कौटुम्बिक तथा सार्थ अर्थात् व्यापारी मुसाफिरो के समूह के नायक को **सार्थवाह** कहते हैं।

"अड्ढभरहस्स" इस में दो पद हैं—एक अर्द्ध और दूसरा भरत। अर्द्ध आधे को कहते हैं। भरत का अर्थ है—भारतवर्ष। भरतक्षेत्र का अर्धचन्द्र जैसा आकार है। तीन ओर लवणसमुद्र और उत्तर में चुल्लहिमवत पर्वत है। अर्थात् लवणसमुद्र और चुल्लहिमवन्त पर्वत से उस की सीमा बधी हुई है। भारत के मध्य मे वैताढ्य पर्वत है। इस से भरत के दो भाग हो जाते हैं। वैताढ्य की दक्षिण ओर का दक्षिणार्ध भरत और उत्तर की ओर का उत्तरार्ध भरत है। चुल्लहिमवन्त पर्वत के ऊपर से निकलनेवाली गगा और सिन्धु नदियां वैताढ्य की गुफाओ से निकल कर लवणसमुद्र मे मिलती हैं। इस से भरत के छ विभाग हो जाते हैं। इन्हीं छह विभागो को छह खण्ड कहते हैं। चक्रवर्ती का राज्य इन ६ खण्डो मे होता है। और वासुदेव* का राज्य तीन खण्डो में अर्थात् अर्धभरत में होता है। महाराज कृष्ण वासुदेव थे, इसीलिये प्रस्तुत सूत्र मे कहते हैं कि महाराज कृष्ण अर्ध भरत का शासन कर रहे थे।

"आहेवच्च जाव विहरति" यहा पठित **जाव**—यावत् पद से सूत्रकार को जो पद अभीष्ट हैं, वे इस प्रकार है—

"आहेवच्च" त्ति—आधिपत्यम्—अधिपतिकर्म, इह यावत्करणादिद दृश्यम्—**"पोरेवच्च"**—पुरोवर्तित्वमग्रेसरत्वमित्यर्थ, "भट्टित्त"—भर्तृत्व पोषकत्वम्, सामित्त—स्वामित्व, महत्तरगत्त—महत्तरकत्व शेषजनापेक्षया महत्तमताम्, आणाइसरसेणावच्च—आज्ञेश्वर—आज्ञाप्रधानो य सेनापति,

* चक्रवर्ती से आधे वैभव को धारण करनेवाले तीन खण्डो के अधिनायक युगपुरुष।

सैन्यनायकस्तस्य भाव कर्म वा आज्ञेश्वरसेनापत्यम्। 'करेमाणे' कारयन् परैः, पालेमाणे "पालयन् स्वयमिति" इस का अर्थ इस प्रकार है—

१—आधिपत्य—अधिपति राजा का नाम है। उसका कर्म आधिपत्य कहलाता है, अर्थात् राजा लोगो के प्रभुत्व को आधिपत्य कहते हैं।

२—पुरोवर्तित्व—आगे चलनेवाले का नाम पुरोर्वति है। पुरोवर्ती—मुख्य का कर्म पुरोवर्तित्व है। मुख्यत्व और पुरोवर्तित्व दोनो समानार्थक हैं।

३—स्वामित्व—स्वामी नेता का नाम है। उस का कर्म स्वामित्व कहलाता है।

४—भर्तृत्व—पालन-पोपण करनेवाले का नाम भर्ता है। उस का कर्म भर्तृत्व है।

५—महत्तरकत्व—उत्तम या श्रेष्ठ का नाम महत्तरक है। उस का कर्म महत्तरकत्व है।

६—आज्ञेश्वर-सैनापत्य—जो स्वय ही आज्ञेश्वर (राजा) है, स्वय ही सेनापति है, उसे आज्ञेश्वर सेनापति कहते हैं। उस का भाव अथवा कर्म आज्ञेश्वर सैनापत्य कहलाता है।

करेमाणे, पालेमाणे का अर्थ है—दूसरो द्वारा कराते हुए तथा स्वय पालन करते हुए।

प्रस्तुत सूत्र मे महाराज कृष्ण के आधिपत्य का जो वर्णन किया गया है, उस से यह भली भाति स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण का पुण्यदिवाकर अपने शिखर पर आसीन था। उसके प्रखर तेज के सामने कोई ठहर नही सकता था। सिर पर माता, पिता पितामह आदि सभी पूज्य पुरुषो की विद्यमानता भी पुण्योत्कर्ष का एक ज्वलन्त प्रतीक है। महाराज कृष्ण को इस का भी सौभाग्य प्राप्त था।

श्री स्थानाग सूत्र मे वासुदेव कृष्ण का 'कर्म-उत्तम-पुरुष' के रूप मे वर्णन किया गया है। कम उत्तम पुरुष का अर्थ है—जो राजनीति मे पूर्णतया कुशल हो, शत्रुओ के लिये सिंह के समान हो, मित्रो के लिये कल्पवृक्ष के तुल्य हो तथा क्षत्रियजनोचित सभी गुणो से अलकृत हो। स्थानागसूत्र द्वारा कृष्ण महाराज को जो कर्म-उत्तमपुरुष कहा गया है, इससे भी कृष्ण महाराज के पुण्य की उत्कृष्टता ही प्रकट होती है।

प्रस्तुत सूत्र मे महाराज कृष्ण के आधिपत्य का वर्णन किया गया है। अब अगले सूत्र मे सूत्रकार अपने प्रतिपाद्य विषय का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—**तत्थ णं बारवतीए नयरीए अधगवण्ही णाम राया परिवसइ। महता हिमवन्त वण्णओ। तस्स ण अधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नाम देवी होत्था। वण्णओ। तते णं सा धारिणी देवी अण्णया कदाइ तसि तारिसगसि सयणिज्जसि एवं जहा महब्बले—**

सुमिण दसणकहणा, जम्म बालत्तणं कलातो य।
जोव्वणपाणिग्गहण, कता वासा य भोगा य॥ १॥

नवर गोयमे अट्ठण्ह रायवरकण्णाणं एगदिवसेण पाणि गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ।

छाया—तत्र द्वारावत्यां नगर्याम्, अन्धकवृष्णिर्नाम राजा परिवसति। महता हिमवद्० वर्णक। तस्य अन्धकवृष्णे राज्ञ धारिणी नाम्नी देव्यभूत्। वर्णक। तत सा धारिणी देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशके शयनीये एव यथा महाबल —

स्वप्नदर्शनकथना जन्म, बालत्व कलाश्च।
यौवनपाणिग्रहण, कान्ताप्रासादभोगाश्च ॥ १ ॥

नवर, गौतमो अष्टाना राजवरकन्यकानामेकदिवसे पाणि ग्राहयन्ति, अष्टौ-अष्टौ दाया।

पदार्थ—ण—वाक्यालकारार्थक है। तत्थ—उस, बारवतीए नयरीए—द्वारिका नगरी में, अधगवण्ही—अन्धकवृष्णि, नाम—नामक, राया—राजा, परिवसइ—रहता था, महता—महान था, हिमवत—हिमालय जैसा बडा था, वण्णओ—विशेष वर्णन जान लेना, तस्स—उस, अधगवण्हिस्स—अधिकवृष्णि, रण्णो—राजा के, धारिणी—धारिणी, नाम—नामवाली, देवी—रानी, होत्था—थी, वण्णओ—विशेष वर्णन जान लेना, तते—तदनन्तर, सा—वह, धारिणी देवी—धारिणी रानी, अण्णदा—कभी, कदाइ—किसी समय, तसि—उस। तारिसगसि—तत्समान—उसके योग्य, सयणिज्जसि—शय्या, एव—इस प्रकार। जहा—जैसे, महब्बले—महावल कुमार का वर्णन है, सुमिणदसणकहणा—स्वप्नदर्शन का कथन करना, बालत्तण—बालावस्था का वर्णन करना, जम्म—जन्म का वर्णन करना, य—और, कलातो—कलाओ का वर्णन करना। जोव्वण—यौवनावस्था, पाणिग्गहण—विवाह, कांता—स्त्रिया, पसाया—महल, य—और भोगा—भोग, सब का वर्णन करना, नवर—इतना विशेष है, गोयम नामेण—लडके का नाम गौतम था उसका, अट्ठण्ह—आठ, रायवरकन्नाण—श्रेष्ठ राजाओ की कन्याओ के साथ एगदिवसेण—एक दिन मे, पाणि गेण्हावेन्ति—विवाह करवा देते हैं, अट्ठट्ठओ—आठ-आठ, दाओ—दातें दी गईं।

मूलार्थ—उस द्वारिका नारी मे अन्धकवृष्णि नाम का राजा राज्य करता था। पर्वतो मे जैसे हिमवान पर्वत महान है, ऐसे ही वह राजा अन्य राजाओ से महान था। उसकी ऋद्धि-समृद्धि का विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र मे किया गया है। उस राजा की रानी का नाम धारिणी था।

किसी समय महारानी धारिणी एक उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी। उसने एक स्वप्न देखा, उस स्वप्न को उसने अपने पति को बतलाया। बालक का जन्म, बालक का बालभाव, उस द्वारा कलाओ का सीखना, युवावस्था की प्राप्ति, कान्ताओ—राजकुमारियो के साथ विवाह, प्रासादो—महलो का निर्माण और काम-भोगो का उपभोग आदि सभी बातें भगवती सूत्र मे वर्णित महाबल की भाति जान लेनी चाहियें। इतना अन्तर अवश्य है कि राजकुमार का नाम गौतम रखा गया था और उसका एक ही

दिन मे आठ श्रेष्ठ राजकुमारियो के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज मे आठ-आठ प्रकार की वस्तुए दी गईं।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे राजकुमार गौतम के माता-पिता तथा विवाह तक की एव उसके जीवन सम्बन्धी अन्य घटनाओ का उल्लेख किया गया है।

गौतम के पिता महाराज अन्धकवृष्णि थे, माता महारानी धारिणी थी। गौतम जब माता धारिणी के गर्भ मे आए थे, उस समय माता को स्वप्न मे सिंह के दर्शन हुए थे। माता धारिणी ने स्वप्न दर्शन की बात महाराज अन्धकवृष्णि के सामने रखी। उन्होने उसे स्वप्न की महत्ता समझाते हुये कहा—देवानुप्रिये! स्वप्न उत्तम है, लाभप्रद है, हमारे घर मे सिंह जैसे पराक्रमवाला एक बालक जन्म लेगा। पुत्रजन्म की बात सुन कर महारानी धारिणी को असीम आनन्द प्राप्त हुआ।

गौतम का जन्म, उस का बाल-भाव, पुरुषोचित कलाओं का सीखना, पाणिग्रहण—विवाह, प्रासादों का निर्माण तथा भोगो उपभोग आदि सभी बातें महाबल कुमार के समान जान लेनी चाहिए। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार भगवती सूत्र में राजकुमार महाबल के जन्म से लेकर विवाह तक के जीवनवृत्तो का उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार गौतम कुमार के जीवन वृत्तो को भी समझ लेना चाहिये। अन्तर केवल नाम का है। भगवती सूत्र मे यह वर्णन महाबल कुमार के नाम से किया गया है, जबकि प्रस्तुत सूत्र मे यह वर्णन गौतम कुमार के नाम से है। नामगत भिन्नता के अतिरिक्त दोनो के जीवनवृत्तो में कोई अन्तर नहीं है। जहां अन्तर है, वहाँ सूत्रकार ने स्वय **"नवरं गोयमो नामेण"**—इन शब्दो द्वारा प्रकट कर दिया है। इसका भाव यह है कि गौतम कुमार का एक दिन मे आठ राजकन्याओ के साथ विवाह कराया गया और उन्हें आठ-आठ प्रकार का दहेज मिला।

"महता हिमवन्त० वण्णओ" यहाँ दिया गया बिन्दु तथा **"वण्णओ"** पद औपपातिक सूत्र मे किए गए राजा कोणिक के वर्णन की ओर सकेत कर रहा है। सूत्रकार का आशय यह है कि चम्पा-नरेश कोणिक के ऐश्वर्य के समान महाराज अधकवृष्णि का ऐश्वर्य था। औपपातिक सूत्र के राज-वर्णन का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

"वण्णओ" इस का सम्बन्ध रानी धारिणी से है। यह पद रानी का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर सकेत करा रहा है। रानी सम्बन्धी पाठ इस प्रकार है—

सुकुमाल पाणिपाया, अहीणपडिपुण्ण-पचिंदिय-सरीरा, लक्खणवजण-गुणोववेया, माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वगसुदरगी, ससिसोमाकारकतपियदसणा—सुरूवा, करयल-परिमिअ-पसत्थ-तिवलियमज्झा, कडलुल्लिहिअगडलेहा, कोमुइ-रयणियर-विमलपडिपुण्ण-सोमवयणा, सिंगारागार-चारुवेसा, सगयगयहसिअ भणिअ विहिअविलास-सललिअ-सलाव-णिउण जुत्तोवयार कुसला, पासादिआ, दरिसणिज्जा अभिरूवा, पडिरूवा, अजगवण्हिणा रण्णा सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता, इट्ठे-सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे पचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरति।

इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

महारानी धारिणी के हाथ पैर बडे ही कोमल थे। उसमे स्त्रियोचित लक्षणो की हीनता न थी, उसके अग स्वरूप की अपेक्षा परिपूर्ण (न अधिक छोटे, न अधिक मोटे और न अधिक कृश) अर्थात् अपने अपने प्रमाण से युक्त पाँचो इन्द्रियो से उसका शरीर सुशोभित था, उसका शरीर लक्षणो* तथा व्यजनो† से युक्त था। मान‡ उन्मान◇ प्रमाण × के अनुसार उसके सब अग बने थे, इसलिये वह अद्भुत सुन्दरी थी। चन्द्रमा जैसे सौम्य गौर मनोहर अग होने से, देखनेवालो को उसका रूप बडा प्यारा लगता था। उस की बीच मे रही हुई त्रिवलियुक्त कमर मुट्ठी मे आ जाती थी, केश-कुण्डलो के पुन पुन स्पर्श होने के कारण उस के गालो पर निशान बन गए थे, उसका मुख कार्तिक मे उदय होनेवाले स्वच्छ चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान था, उस का रूप शृ गार रस का स्थान सा बन गया था, या उस का आकार शृगार के सहित और वेष सुन्दर था।

महारानी धारिणी का चलना, हसना, चेष्टाये और कटाक्ष विलक्षण थे। वह प्रसन्नतापूर्वक भाषण करने मे कुशल तथा लोकव्यवहार मे चतुर थी। देखनेवालो का चित्त उसे देखते ही प्रसन्न हो जाता था, वह दर्शनीय थी—मनोहर थी। देखनेवालो को उसका नवीन-नवीन रूप मालूम होता था। महाराज अन्धकवृष्णि मे वह अनुरक्त थी—उस का शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श प्रिय था। वह मनुष्यो के पाच प्रकार के कामभोगो को भोगती हुई रहती थी।

"एव जहा महाबले" इन पदो से सूत्रकार ने गौतम कुमार के जीवन को महाबल कुमार के समान प्रकट किया है। गौतम कुमार और महाबलकुमार की जहाँ-जहा जीवन सम्बन्धी समानता है, उस का भी सूत्रकार ने—**"सुमिणदसण कहणा—"** आदि पदो द्वारा सर्वथा स्पष्टीकरण कर दिया है। महाबल के जीवन का भगवती सूत्र मे वर्णन किया गया है। प्रसगानुकूल कुछ अश इस प्रकार है—

हस्तिनापुर नगर के राजा बल की प्रभावती नाम की एक रानी थी। किसी समय उसने रात्रि के समय अर्द्धजागृत अवस्था के स्वप्न मे आकाश से उतर कर मुख मे प्रवेश करते हुए एक सिह को देखा। जागने पर वह उक्त स्वप्न का फल पूछने के लिये अपने शयनागार से उठी, समीप के शयनागार मे सोए हुए महाराज के पास आई, उनको जगाया और अपना स्वप्न उन्हें सुनाया। स्वप्न को सुन कर नरेश बडे प्रसन्न हुए और कहने लगे—'प्रिये! स्वप्न बडा उत्तम है, इसके फलस्वरूप तुम्हारे गर्भ से एक बडा प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न होना चाहिये।' महारानी प्रभावती स्वप्न के इस फल को सुनकर मन ही मन प्रसन्न होती हुई पतिदेव को प्रणाम करके वापिस अपने शयनभवन

---

* साथिया, चक्र, शख आदि चिन्ह।

† मसा, तिल आदि।

‡ एक पुरुष प्रमाण जल का कुण्ड भर दिया जाए, उस में उसी पुरुष को बैठाने से यदि एक द्रोण (३२ सेर) प्रमाण पानी कुण्ड से बाहिर निकल जाए, उसे मान कहते हैं।

◇ मनुष्य को तराजू पर बैठाने से जो आधा भार-परिमाण विशेष होता है उसे उन्मान कहते हैं।

× अपने अगुलो से जो १०८ अगुल हो, वह प्रमाणप्राप्त कहलाता है।

मे आ गई। अनिष्टोत्पादक कोई स्वप्न न आ जाए, इस विचार से शेष रात्रि उसने धर्म-जागरण मे ही व्यतीत की।

स्नानादि की आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त हो कर महाराज बल ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो एवं राजपुरुषो को बुलवाया, उन से कहा—'स्वप्नशास्त्रियो को बुला कर लाओ।' राजकर्मचारियो ने राजाज्ञानुसार स्वप्नशास्त्रियो को बुलाया। तदनन्तर राजा ने उन के सामने महारानी प्रभावती का पूर्वोक्त स्वप्न सुना कर उस का फल पूछा। स्वप्नशास्त्रियो ने भी कहा कि—"आप के घर मे एक सर्वांगपूर्ण पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। यह पुत्र महान प्रतापी राजा होगा, या अखण्ड ब्रह्मचारी मुनीश्वर होगा।" राजा ने ज्योतिषियो को यथोचित पारितोषिक देकर विदा किया।

लगभग नवमास के परिपूर्ण होने पर महारानी ने एक सर्वांगसुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजदम्पति ने बडे आनन्द मगल के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया तथा बडे समारोह के साथ उस का नामकरण सस्कार किया और महाबल यह नाम रखा। पाच धाय माताओ के सरक्षण मे महाबल का लालन-पालन होने लगा। तत्पश्चात् कुमार के माता पिता ने क्रम से स्थितिपतित (पुत्र जन्म का उत्सव विशेष) चन्द्रसूर्यदर्शन, रात्रि-जागरण, नामकरण आदि सभी कार्य सानन्दपूर्ण किये।

आठ वर्ष और कुछ दिन बीतने पर कुमार को कलाचार्य को सौप दिया गया। कलाचार्य ने भी महाबल को लिखना, गणित से लेकर पक्षी आदि के बोलने का शकुनज्ञान तक ७२ कलाए सिखाई। तदनन्तर कलाचार्य ने कुमार को उसके माता-पिता के पास छोड दिया। सर्वथा योग्य तथा युवावस्था सम्पन्न कुमार को देख कर महाराज बल ने महाबल के लिये विशाल और उत्तम आठ सुन्दर महल बनवाए और उनके मध्य मे एक विशाल भवन तैय्यार कराया। तदनन्तर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त मे सुयोग्य आठ राज-कन्याओ के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह के उपलक्ष्य मे राजा बल ने आठ करोड हिरण्य, आठ करोड सुवर्ण, आठ सामान्य मुकुट, आठ सामान्य कुण्डलो के जोडे इस प्रकार की अनेक विध उपभोग्य सामग्री देकर श्री महाबल कुमार को महलो मे रहने का आदेश दिया और महाबल कुमार भी प्राप्त हुई दहेज की सामग्री को आठो रानियो मे विभक्त कर उन महलो मे उनके साथ निवास करते हुए, विषयभोगो का सुख भोगने लगा।*

गौतम कुमार के जीवन की समानता बतलाने के लिए सूत्रकार ने **"एव जहा महाबले"** आदि पदो का उल्लेख किया है। इनका भाव स्पष्ट है कि कला-शिक्षण आदि मे गौतम और महाबल दोनो राजकुमारो का जीवन एक जैसा है।

"नवर" यह एक अव्ययपद है इस का अर्थ है—इतना विशेष है। भाव यह है कि जहां एक व्यक्ति के जीवन के साथ अन्य व्यक्ति के जीवन की समानता की गई हो, यदि वहा कुछ भिन्नता भी कहनी इष्ट हो, तब वहा **"नवर"** इस अव्ययपद का प्रयोग किया जाता है।

---

* विस्तृत कथानक के लिये देखिए भगवती सूत्र शतक ११, उद्देश्य ११।

"**अट्ठट्ठओ दाओ**" का अर्थ है, आठ-आठ पकार का दहेज। आठो राजकुमारियो को आठ आठ वस्तुए दी गई। वे वस्तुए कौन-कौन सी थी ? उस की सूची भगवती सूत्रके अनुसार इस प्रकार है—

आठ **हिरण्यकोटि** आभूपणो के रूप मे परिणत आठ करोड रुपये का सोना अथवा (आठ करोड चादी के सिक्के), आठ **सुवर्णकोटि** (आभूपण के रूप मे परिवर्तित सोना जिस का मूल्य आठ करोड हो), आठ उत्तम **मुकुट**, आठ उत्तम **कुण्डलो** के जोडे, आठ उत्तम हार, आठ उत्तम **अर्द्धहार**, आठ उत्तम **एकावली हार**, आठ उत्तम **मुक्तावली हार**, आठ उत्तम **कनकावली हार**, आठ उत्तम **रत्नावली हार**। आठ उत्तम **कडो के जोडे**, आठ उत्तम **भुजबन्धो** के जोडे, आठ उत्तम **रेशमी वस्त्रो** के जोडे, आठ उत्तम **वटर**—टसर के जोडे, आठ उत्तम **पट्टसूत्र के जोडे**, आठ दुकूल नाम वृक्ष की त्वचा से बने वस्त्रो के जोडे। आठ **श्रीदेवी** की पतिमाए, आठ **ह्री देवी** की प्रतिमाए, आठ **धृति देवी** की प्रतिमाए, आठ **लक्ष्मी देवी** की प्रतिमाए। आठ **नन्द**—मागलिक वस्तुए अथवा आठ **लोहासन**, आठ **भद्र**—मागलिक वस्तुए, अथवा आठ **शरासन**, आठ उत्तम रत्नमय **तालवृक्ष**—अपने-अपने भवनो के चिन्ह-स्वरूप, आठ उत्तम **ध्वजा**, दस हजार गौओ का एक गोकुल होता है, ऐसे आठ उत्तम **गोकुल**, एक नाटक मे ३२ पात्र काम करते हैं, ऐसे आठ उत्तम **नाटक**, रत्न-जटित एव बहुमूल्य आठ उत्तम **अश्व**-प्रतिमाए और आठ सुवर्ण निर्मित एव रत्न जटित हस्ति प्रतिमाए, उत्तम **हाथी**, आठ उत्तम **यान**—गाडी आदि, आठ उत्तम **युग्य**—एक प्रकार का वाहन जिसे गोल्लदेश मे जम्पान कहते हैं, आठ उत्तम **शिविकाए**—पालकिए, आठ उत्तम **स्यन्दमानिका**—पालकी विशेष, इसी प्रकार आठ उत्तम **गिल्लिएं** (हाथी के ऊपर की अम्बारी—जिस पर सवार बैठते हे, उसे गिल्ली कहते है), आठ उत्तम **थिल्लिया** (घोडे की काठी का नाम थिल्ली है), आठ उत्तम **विकट यान**—बिना छत की सवारी। आठ **पारियानिक**—क्रीडादि के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले रथ, आठ **साग्रामिक रथ**, आठ उत्तम **घोडे**, आठ उत्तम **हाथी**, दस हजार कुल (परिवार) जिस मे रहते है, उसे ग्राम कहते है, ऐसे आठ उत्तम **गाव**, आठ उत्तम **दास**, आठ उत्तम **दासियाँ**, आठ उत्तम **किंकर**—नौकर (पूछ कर काम करनेवाले), आठ **कचुकी**—अन्त पुर के प्रतिहारी, आठ **वर्षधर**—वे नपुंसक जो अन्त पुर मे काम करते हैं, आठ **महत्तर**—अन्त पुर मे काम करने वाले। शृङ्खला—साकल वाले आठ **सोने** के दीपक, साकलवाले आठ **चादी** के दीपक, साकलवाले आठ **सोने और चादी**—दोनो से निर्मित दीपक, ऊचे दण्डवाले आठ सोने के दीपक, ऊचे दण्डवाले आठ चादी के दीप, ऊचे दण्ड वाले आठ सोने और चादी के दीपक, **पजर**—फानूस वाले (एकदण्ड मे लगे हुए शीशे के कमल या गिलास आदि जिन मे वत्तियाँ जलाई जाती है) आठ सोने के दीप, **पजरवाले** आठ चादी के दीप, **पजरवाले** आठ सोने और चादी के दीप। आठ सोने के **थाल**, आठ चादी के थाल, आठ सोने और चादी के थाल, आठ सोने की **कटोरिया**, आठ चादी की **कटोरियाँ** आठ सोने और चादी की **कटोरियाँ**, आठ सुवर्णमय **दर्पण** के आकार वाले पात्रविशेप, आठ **रजतमय** दर्पण के आकार वाले पात्रविशेप, आठ सुवर्णमय और **रजतमय** दर्पण के आकार वाले पात्रविशेप, आठ सुवर्णमय **मल्लक**—पात्र (कटोरा) आठ रजतमय **मल्लक**, आठ सुवर्णमय और रजतमय मल्लक, आठ सुवर्ण की **तलिका** (पात्री विशेप,) आठ रजत की तलिका, आठ सुवर्ण और रजत की तलिका, आठ सुवर्ण की **कलाचिका** (चमचे), आठ रजत की कलाचिका, आठ सुवर्ण और रजत की कलाचिका, आठ सुवर्ण के

तापिकाहस्त (पात्रविशेष), आठ रजत के तापिकाहस्त, आठ स्वर्ण और रजत के तापिकाहस्त, आठ सोने के अवपावय तवे, आठ रजत के तवे, आठ सुवर्ण और रजत के तवे। आठ सोने के पादपीठ—(पाव रखने के आसन), आठ रजत के पादपीठ, आठ सुवर्ण और रजत के पादपीठ, आठ सुवर्ण की भिसिका, (आसनविशेष), आठ रजत की भिसिका आठ सुवर्ण और रजत की भिसिका, आठ सुवर्ण के करोटिका, (कुण्डे अथवा बडे मुंह वाले पात्रविशेष), आठ रजत की करोटिका, आठ सुवर्ण और रजत की करोटिका, आठ सुवर्ण के पलग, आठ रजत के पलग, आठ सुवर्ण और रजत के पलग, आठ रजत को प्रतिशय्या (उत्तर शय्या अर्थात् छोटे पलग), आठ रजत की प्रतिशय्या, आठ सुवर्ण और रजत की प्रतिशय्या आठ हसासन, हस के चिन्हवाले आसनविशेष, आठ क्रौंचासन—क्रौंच पक्षी के आकार वाले आसनविशेष, आठ गरुडासन—गरुड के आकारवाले आसनविशेष, आठ उन्नत—ऊचे आसन, आठ प्रणत—नीचे आसन, आठ दीर्घ—लम्बे आसन, आठ भद्रासन—आसनविशेष, आठ पक्ष्मासन—आसनविशेष, जिन के नीचे पक्षियो के अनेकविध चित्र हो, आठ मकरासन—मकर के चिन्हवाले आसन, आठ पद्मासन—आसनविशेष, आठ दिशासोवस्तिकासन—दक्षिणावर्त (स्वस्तिक) के आकारवाले आसन, आठ तैलसमुद्र—तैल के तवे।

इनके अतिरिक्त औपपातिक सूत्र नामक शास्त्र मे किये गए वर्णन के अनुसार आठ पारिसी—पारसदेशोत्पन्न दासिया, आठ छात्र—आठ छत्र धारण करनेवाली दासिया, आठ चवर, आठ चवर धारण करनेवाली दासिया, आठ पखे—आठ पखे झुलानेवाली दासियाँ, आठ पानदान (वे डब्बे जिन मे पान और इस के लगाने की सामग्री रखी जाती है—पनडब्बा) आठ पानदान को धारण करनेवाली दासियाँ, आठ क्षीरधात्रियाँ—बालको को दूध पिलानेवाली धायमाताए, आठ बालको को गोद मे लेनेवाली धायमाताए, आठ अगमर्दन करनेवाली स्त्रियाँ, आठ उन्मर्दिका—विशेष रूप मे अग मर्दन करनेवाली दासिया, आठ स्नान करानेवाली दासिया, आठ शृङ्गार करनेवाली दासिया, आठ चदन पीसनेवाली दासियाँ, आठ चूर्ण (पान का मसाला) अथवा सुगन्धित द्रव्य पीसनेवाली दासिया, आठ क्रीडाकरानेवाली दासिया, आठ परिहास—मनोरजन करनेवाली दासिया, आठ राजसभा के समय साथ रहनेवाली दासिया, आठ नाटक करनेवाली दासियाँ, आठ साथ चलनेवाली दासियाँ, आठ रसोई बनानेवाली दासिया, आठ भाण्डागार—भण्डार की देखभाल करनेवाली दासिया, आठ मालिने, आठ पुष्प धारण करनेवाली दासिए, आठ पानी लाने वाली दासिया, आठ बलिकर्म—शरीर की स्फूर्ति के लिये तैलादि मदन करनेवाली दासिया, आठ शय्या बिछानेवाली दासिया, आठ अन्त पुर का पहरा देनेवाली दासियाँ, आठ बाहिर का पहरा देनेवाली दासिया, आठ माला गूँथनेवाली दासिया, आठ आटा आदि पीसनेवाली अथवा सन्देश वहन करनेवाली दासिया, और बहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य-कासी, वस्त्र, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती शख, मूंगा, रक्तरत्न, उत्तमोत्तम वस्तुए स्वापतेय—रुपया पैसा आदि इतना द्रव्य दिया जो कि सात पीढी तक चाहे इच्छापूर्वक दान दिया जाए, स्वय उसका उपभोग कर लिया जाए या खूब उसे बाटा जाए तो भी वह समाप्त नही हो सकता था।

प्रस्तुत सूत्र मे गौतम कुमार का जीवन सम्बन्धी वर्णन किया गया है और गर्भ मे आने से लेकर विवाह तक के उन के जीवन को महाबल के समान बताकर सक्षेप मे उसका परिचय करा दिया गया है। ध्यान से पढने या गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेको शिक्षाए इस सदर्भ मे प्राप्त की जा सकती हैं। कुछ शिक्षाए इस प्रकार हैं—

१—जब पति-पत्नी दोनो सुयोग्य हो दोनो के द्वारा गृहस्थजीवन की समस्त मर्यादाओ का ठीक पालन होता हो, दोनो सदाचारी हो तथा दोनो मे सात्विक तथा पूर्ण स्नेहभाव हो तो उनके जो सन्तान होती है, वह भी प्राय सुशील, सयत और सर्वगुणसम्पन्न होती है। माता-पिता की सुशीलता तथा सच्चरित्रता का सन्तति पर अवश्य प्रभाव पडता है। इसलिये सन्तति के भविष्य को उज्ज्वल देखने की कामना रखनेवाले प्रत्येक माता पिता का अपना जीवन सदाचारी, विवेकी और धर्म-प्रिय बनाना चाहिये।

२—जीव जिन शुभ-अशुभ कर्मों को लेकर माता के गर्भ मे आता है, उन की प्रतीति माता को दिखाई देनेवाले स्वप्नो से तथा माता को उत्पन्न होनेवाले दोहदो से भलीभाति हो जाती है। यदि माता को शुभ स्वप्न आते हैं तो उनसे गर्भगत जीव की पुण्यसम्पत्ति का बोध होता है, यदि माता अशुभ स्वप्न देखती है, तो वे अशुभ स्वप्न गर्भ मे आनेवाले जीव की भाग्यहीनता के प्रतीक होते हैं। यही स्थिति दोहदो की होती है। शुभ दोहद (गर्भिणी स्त्री को उत्पन्न होनेवाला एक विशेष प्रकार का सकल्प) जीव के सौभाग्य का और अशुभ दोहद जीव के दुर्भाग्य का परिचायक होता है।

महारानी धारिणी को स्वप्न आया। उस ने देखा कि मानो सिंह मेरे मुख मे प्रवेश कर रहा है। यह स्वप्न कितना महान है, शुभ है ? मगलफल सूचक है ? इस की चर्चा पीछे की जा चुकी है। भाव यह है कि शुभ स्वप्नो से जीव के पुण्य आदि का अनुमान किया जा सकता है।

३—जन्म के बाद, नामकरण, चूडाकर्म आदि कार्य हो जाने पर विद्यारभ करवाया जाता है। विद्या के क्षेत्र मे सर्वथा निष्णात हो जाने पर बालक के विवाह सस्कार का समय आता है। शास्त्रो मे जहा कही पर भी किसी के विवाह का उल्लेख आया है, वहा पर युवावस्था मे ही विवाह का होना पाया जाता है। इस से बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह दोनो का निषेध स्पष्ट हो जाता है तथा इस से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करनेवाला व्यक्ति युवा होना चाहिए। शास्त्रो के परिशीलन से पता चलता है कि विवाह-सस्कार का समय नव अगो की जागृत दशा मे ही होता है। दो कान, दो आख, दो नासिका, जिव्हा, शरीर और मन ये नौ अग जिस समय पूर्ण विकसित, पूर्ण बलवान हो जाते हैं, वह समय विवाह का है और वही समय युवावस्था है। बाल्यकाल मे ये नौ अग विकसित नही होते हैं। वृद्धावस्था आने पर इन की शक्ति क्षीण हो जाती है, अग निबल हो जाते हैं। इसलिये ये दोनो अवस्थाए विवाह के योग्य नही मानी जाती हैं। इस विचारणा से युवावस्था ही विवाह का समय सिद्ध होता है।

४—एक दिन मे आठ राजकुमारियो के साथ विवाह करने का अर्थ है—समय और धन का दुरुपयोग न होने देना। जिस तरह आजकल विवाह मे अधिक व्यय होता है और समय का दुरुपयोग होता है उस युग मे ऐसी बात नही थी।

५—विवाह मे जिस प्रकार वर्तमान मे नवग्रह पूजनादि की रीति प्रचलित है, उस समय यह रीति प्रचलित नही थी। महाबल कुमार के वर्णनीय प्रकरण मे उसके विवाह का जो वर्णन आता है उसमे देवो की पूजा का कोई उल्लेख नही मिलता।

सूत्रकार ने महाबलकुमार की विवाह सम्बन्धी समानता अभिव्यक्त करते हुए गौतम कुमार के आठ राजकुमारियो के साथ विवाहित होने का जो उल्लेख किया है, उसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि शास्त्रकार बहु विवाह प्रथा का समर्थन या विधान करते है, परन्तु यहा तो तात्कालिक घटनावृत्तो का केवल परिज्ञान कराना ही सूत्रकार को इष्ट है।

शास्त्रो के परिशीलन करने से पता चलता है कि विशाल साम्राज्य के उपभोक्ता नरेश अधिकाधिक विवाह होने मे अपना गौरव मानते थे। अपने को वे प्रतिष्ठित अनुभव किया करते थे। राजकुमार गौतम के एक साथ आठ विवाहो से यही भाव व्यक्त होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे गौतम कुमार के गर्भ मे आने से लेकर उस के विवाह तथा विषयभोगो के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अगिम सूत्र मे परमाराध्य भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुँचकर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते है—

मूल—तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमी आदिकरे जाव विहरइ, चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। ततेणं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्म सोच्चा ज नवर देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाण० एव जहा मेहे जाव अणगारे जाते जाए इणमेव णिग्गथ पावयण पुरओ काउ विहरइ।

सस्कृतच्छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हा अरिष्टनेमि आदिकरो यावत् विहरति। चतुर्विधा देवा आगता। कृष्णोऽपि निर्गत। तत स गौतम कुमारो यथा मेघ तथा निर्गत। धर्म श्रुत्वा यद् नवर देवानुप्रिय! अम्बापितरौ आपृच्छामि, देवानुप्रियाणामेव यथा मेघ यावत् अनगारो जात। यावत् इदमेव नैर्ग्रन्थ्य प्रवचन पुरत कृत्वा विहरति।

पदार्थ—**तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), **आदिकरे**—श्रुतधर्म की आदि करनेवाले, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—विहरण कर रहे थे, **चउव्विहा**—चार प्रकार के, **देवा**—देव, **आगया**—आए, **कण्हे वि**—कृष्ण महाराज भी, **णिग्गए**-नगर से निकले, **तते**—तत्पश्चात्, **से**—वह, **गोयमे कुमारे**—गौतम कुमार, **जहा**—जैसे, **मेहे**—मेघकुमार दर्शनार्थ गया था, **तहा**—उसी प्रकार, **णिग्गते**—नगर से निकला, **धम्म**—धर्म, **सोच्चा**—सुनकर, **ज**—जो, **नवर**—इतना विशेष, **देवाणुपिया**—हे देवानुप्रिय! हे भगवन्!, **अम्मापियरो**—माता-पिता को, **आपुच्छामि**—पूछता हू (पूछ कर), **देवाणुप्पियण**—देवानुप्रिय—आपके पास, **एव**—इस प्रकार, **जहा**—जैसे, **मेहे**—मेघ कुमार की दीक्षा हुई थी, **जाव**—यावत्-साधु वृत्ति का पालन करता हुआ, **इणमेव**—इस, **निग्गथ पावयण**—निर्ग्रन्थ प्रवचन को, **पुरओ**—आगे, **काउ**—करके, **विहरइ**—विचरने लगा।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय श्रुत-धर्म का आरम्भ करनेवाले, धर्म के प्रवर्तक अरिहन्त अरिष्टनेमि-नेमिनाथ भगवान विहरण कर रहे थे। जब वे द्वारिका नगरी के बाहर उद्यान मे विराजमान हुए, तब उनके समवसरण मे चार प्रकार के देव उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी वहा आये। तदनन्तर उनके दर्शन करने को गौतम कुमार भी तैयार हुए। जैसे मेघ कुमार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास गए थे वैसे ही गौतम कुमार भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे गए। धर्म का श्रवण करके उस पर विचार करते हुए कहने लगे—

भगवन्! मैं अपने माता-पिता को पूछ कर आपके पास दीक्षा ग्रहण करूगा।

जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास मेघकुमार दीक्षित हुए थे ठीक उसी प्रकार भगवान नेमिनाथ के पास गौतमकुमार दीक्षित हो गये। तदनन्तर मुनि गौतमकुमार निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुसार मुनि-वृत्ति का पालन करने लगे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ का द्वारिका नगरी के बाहर रैवताचल पर्वत के नन्दन वन नामक उद्यान मे पधारना, उनके समवसरण मे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतषी और वैमानिक इन चतुर्विध देवो का आगमन, कृष्ण वासुदेव का पधारना, मेघकुमार की भाति गौतम कुमार का आना तथा मेघकुमार की भाँति धर्मदेशना से प्रभावित होकर अन्त मे गौतमकुमार का भगवान् के पास दीक्षित हो जाना आदि बातो का सकेत रूप मे वर्णन किया गया है। साथ मे यह सूचना भी दे दी गई है कि गौतमकुमार के विषय मे ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र में वर्णित हुए मेघकमार के सम्पूर्ण वर्णन की तरह सब कुछ जान लेना चाहिये। भाव यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित होकर मेघ कुमार ने जिस प्रकार सयम ग्रहण किया था उसी तरह गौतम कुमार ने भगवान् नेमिनाथ के चरणो मे सयम अगीकार किया।

"आदि करे जाव विहरति" यहा पठित 'जाव' पद से निम्नलिखित पदो का ग्रहण होता है—

तित्थगरे, सयसबुद्धे, सिव-मयल-मरुय-मणत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्तिअसिद्धिगइनामधेय ठाण सपाविउकामे, अरहा जिणे केवली सत्तहत्थूस्सेहे सम-चउरस सठाणसठिए, वज्जरिसहनाराय-सघयणे, अणुलोमवाउवेगे ककग्गहणी कवोयपरिणामे, सउणि-पोसपिट्ठत-रोरुपरिणए, पउमुप्पल-गध-सरिस० निस्सास-सुरभिवयणे, छवी निरायक-उत्तम-पसत्थ-अइसेय-निरुवमपले-जल्ल-मल्ल-कलक-सेयर-य द सवज्जिय, सरीर निरुवलेवे, छाया-उज्जोइ-अगमगे, घणनिचिय-सुबद्ध-लवखणुण्णय-कूडागार-निभ-पिडिअग्गसिरए, सामलि-वोड-घण-निचिय-छोडिय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुमलक्खण-सुगध सुन्दर-भुअमोयग-भिगनेलकज्जल-पहिट्ठभमर-गण-णिद्धनिकुरबनिचिय-कुचिय-पयाहिणावत्त-मुद्धसिरए, दालिम-पुप्फप्पगास-तवणिज्जसरिस निम्मलसुणिद्ध-केसत-केसभूमी घण-(निचय)-छत्तागारुत्तमगदेसे णिव्वण-

१

समलट्ठ-मट्ठ-चंदद्धसमणिडाले, उडुवइ-पडिपुण्णसोमवयणे, आलीण-पमाण जुत्त-सवणे, सुस्सवणे पीणमसल-कवोलदेसभाए आणामिय-चावरुइल-किण्हब्भराइतणकसिणणिद्ध भमुहे, अवदालिअ-पुंडरीयणयणे, कोआसिय धवलपत्तलच्छे, गरुलायतउज्जुतुंगणासे, उवचिय-सिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्ठे, पंडुर-ससि-सकल विमल-णिम्मल-संख-गोक्खीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिआ धवलदंत सेढी अखंडदंते अप्फुडियदंते अविरलदंते सुणिद्धदंते सुजायदंते एगदंतसेढीविव अणेगदंते, हुयवहणिद्धंत-धोयतत्तनवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अवट्ठिय-सुविभत्तचित्तमंसू, मंसलसंठिय-पसत्थ सद्दूलविउलहणूए, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवे, वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूलउसभ-नाग-वरपडिपुण्ण-विउल-क्खंधे, जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिर-सुबद्ध संधिपुरवर-फलिह-वट्टियभुए, भुयईसर-विउलभोग-आदाण-पलिह-उच्छूढ-दीहबाहू रत्ततलोवइय मउअ मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्दजालपाणी, पीवर-कोमल वरंगुली, आयंबतंब-तलिण-सुइ-रुइल-णिद्धणक्खे। चंद-पाणिलेहे सूरपाणिलेहे संखपाणिलेहे चक्कपाणिलेहे, दिसासोत्थियपाणिलेहे चंद-सूर-संख-चक्क-दिसासो-त्थिय-पाणि-लेहे, कणगसिलातलुज्जल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्णपिहुलवच्छे, सिरिवच्छंकियवच्छे अकरंडुय-कणग-रुयय निम्मल-सुजाय-निरुवहयदेहधारी, अट्ठसहस्स-पडिपुण्ण-वर-पुरिसलक्खणधरे सण्णयपासे, संगयपासे, सुन्दरपासे सुजायपासे मियमाइय-पीणरइयपासे, उज्जुअ-समसहिय जच्च तणु-कसिण णिद्ध-आइज्ज-लडह-रमणिज्जरोमराई, झसविहग-सुजाय-पीण-कुच्छी, झसोदरे सुइकरणे, पउमवियडणाभे, गंगावत्तक-पयाहिणावत्ततरंग-भंगुर-रविकिरणतरुणबोहिय-अकोसायंत-पउम-गंभीर-वियडनाभे, साहयसोणंद-मुसल-दप्पणणिकरिय-वरकणगच्छरु-सरिसवर वइर-वलिअमज्झे, पमुइय-वरतुरग-सीह-वर-वट्टियकडी, वरतुरग-सुजाय-सुगुज्झदेसे, आइण्णहउव्वणिरुवलेवे वरवारण-तुल्ल-विक्कम-विलसियगई, गयससण-सुजायसन्निभोरुसमुग्ग-णिमग्ग-गूढजाणू, एणीकुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंघे, संठिय-सुसिलिट्ठ-गूढगुप्फे, सुप्पइट्ठिय-कुम्म-चारुचलणे, अणुपुव्वसुसंहयंगुलीए, उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खे, रत्तुप्पल-पत्त-मउअ-सुकुमाल-कोमलतले, अट्ठ-सहस्स-वर-पुरिस-लक्खण-धरे, नग नगर-मगर-सागर-चक्कंक-वरंक-मंगलंकियचलणे, विसिट्ठ-रूवे, हुयवह-निद्धूम-जलिय-तडितडिय-तरुणरवि-किरणसरिसतेए, अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नसोए निरुवलेवे, ववगयपेमराग-दोसमोहे, निग्गंथस्स पवयणस्स देसए, सत्थनायगे, पइट्ठावए समणगपई, समणगविंदपरिअट्टए, चउत्तीस-बुद्धवय-णातिसेसपत्ते, पणतीस-सच्चवयणातिसेस पत्ते, आगासगएण, चक्केण आगासएण छत्तेण आगासियाहिं चामराहिं, आगास-फलिआमएण सपायवीढेण सीहासणेण धम्मज्झएण पुरओ पकड्ढिज्जमाणेण सद्धिं सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहंसुहेण विहरमाणे बारवतीए नयरीए नवणवणे उज्जाणे वण्णओ, पुढविसिलापट्टए वण्णओ, तहेव—" इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

भगवान् अरिष्टनेमि श्रुतधर्म का आरम्भ करनेवाले, चार संघों की स्थापना करनेवाले स्वयं सम्बुद्ध, निरुपद्रव, निश्चल, नीरोग, अनन्त, अक्षय, निर्बाध जिस में वापिस न आवे ऐसी सिद्ध गति को प्राप्त होनेवाले, इन्द्रों से पूज्य, जिन-केवली, सात हाथ लम्बे,* समचतुरस्र संस्थानवाले, वज्र ऋषभ नाराच संहनन वाले, शरीर के अन्दर की अनुकूल वायु के वेग से युक्त कंकपक्षी की भांति

* यह भगवान महावीर की अवगाहना है, भगवान अरिष्टनेमि की अवगाहना १० धनुष थी।

नीरोग गुदावाले, कबूतर की तरह तीव्र जठराग्निवाले, शकुनि पक्षी की तरह निर्लेप अपान देश वाले, पसवाडे और जाघो की दृष्टि से विशेष सुन्दर आकारवाले थे ।

भगवान् का मुख पद्म और नीले कमल के समान सुगन्ध-युक्त निश्वासवाला था । उनके शरीर की छवि अत्यन्त निराली थी, त्वचा अति कोमल थी । उनका मास नीरोग, उत्तम, सफेद और निरुपम था । उनका शरीर मैल, अशुभ-तिल आदि चिह्नों, पसीना और धूल आदि की मलिनता से रहित अत्यन्त निर्मल था । उनके अगोपांग कान्ति से चमकते थे । उनके स्नायु-बधन शुभ लक्षणवाले और इतने मजबूत थे जैसे लोहे का घन ।

उनका सिर ऐसे प्रतीत होता था जैसे पर्वत के शिखर का चिकना पाषाण-खण्ड । उनके सिर के बाल सेमल की रुई की तरह नरम, स्वच्छ, शुभ, चिकने और शुभ लक्षणो से युक्त थे । सुगन्धवाले सुन्दर भुजमोचक रतन जैसे और नीलम एव कज्जल के समान एव मदोन्मत्त चमकीले भौंरो की तरह काले, दक्षिण की ओर घूमे हुए, घने और घूघरवाले थे । उनके मस्तक की त्वचा अनार के फूल या तपे हुए सोने के समान लाल, निर्मल और चिकनी थी । उनका मस्तक खुले हुए छत्र के समान उन्नत था । ललाट घाव आदि से रहित, समान, मनोज्ञ और दीप्त होने से अर्ध-चन्द्र-सा प्रतीत होता था । मुख पूर्ण चन्द्र-सा सौम्य था । कान सटे हुए और छोटे-बडे न होने से प्रमाण-युक्त अतएव अत्यन्त सुन्दर थे । उनके गाल स्थूल और मासल थे । भौंहे थोडे नमे हुए धनुष के समान मनोज्ञ या काले बादल की रेखा की तरह काली और स्निग्ध थी । नेत्र खिले हुए, श्वेत कमल जैसे थे, अत उनके कोये एव पलक विकसित कमल के समान उज्ज्वल थे । नाक गरुड की तरह सीधी और ऊची थी । नीचे का ओठ प्रवाल और बिम्बफल सा रक्तिम था । दातो की पक्ति स्वच्छ चन्द्र के टुकडे-सी निर्मल, शख-सी, गोदुग्ध के फेन-सी, कुन्द पुष्प सी जल की बूद और कमल-नाल के समान श्वेत थी । उनके दात टूटे हुए एव छिदरे न थे, अतिशय स्निग्ध, मनोहर और पक्तिबद्ध थे । घने होने से एक दूसरे से अलग मालूम न पडते थे तालु और जिह्वा, अग्नि से निर्मल हुए, पानी से धोए तथा फिर अग्नि मे तपाये हुए सोने की तरह लाल थी । दाढी और मूछ के बाल बढ़नेवाले न थे, दाढी भरी हुई सुन्दर, शुभ लक्षणयुक्त विस्तीर्ण और व्याघ्र की दाढी की तरह थी । ग्रीवा चार अगुल की और उत्तम शख जैसी थी ।

भगवान् के कन्धे महिष, सिह, शार्दूल, व्याघ्र, बैल और गजेन्द्र के कधो से सुपुष्ट थे तथा यूप (यज्ञ के खभे) के समान लम्बे, चौडे, मोटे और मनोहर थे । उनकी कलाई भी स्थूल, सुन्दर आकारवाली, सुसगत, उत्तम, पुष्ट स्थिर और मजबूत जोडवाली थी । नगर-द्वार की अर्गला जैसी भुजाए ऐसी मालूम होती थी मानो इष्ट पदार्थ को ग्रहण करने के लिये जाते हुए किसी नागराज का लम्बा शरीर हो । हाथ कोमल, मासल सुन्दर और सामुद्रिक शास्त्र के शुभ चिह्नो से युक्त थे । अगुलियो के बीच छेद नही पडते थे । अगुलिया स्थूल, कोमल और सुन्दर थी । अगुलियो के नख ताम्बे की तरह कुछ लाल, पतले पवित्र चमकीले और चिकने थे । हाथ की रेखाए चन्द्र, सूर्य, शख, चक्र और स्वस्तिक के चिह्नो से युक्त थी ।

वक्षस्थल सोने की शिला के समान उज्ज्वल, शुभ, समतल, मासल विस्तीर्ण और अत्यन्त विशाल था, श्रीवत्स के चिह्न से शोभित था।

उनका सारा शरीर ही सोने सी कान्तिवाला मासल (अत पीठ की हड्डी दिखाई न देती थी) सुन्दर और रोगो से रहित था। महापुरुष के सम्पूर्ण १००८ लक्षणो से युक्त था।

पसवाडे क्रमश पतले होते गये थे। शरीर के प्रमाण के अनुसार ही पसवाडे थे, इसीलिये वे सुन्दर और मनोहर थे तथा अच्छे परिमाणवाले मोटे और सुन्दर थे। रोमराजि, सीधी विषमता से रहित घनी, पतली, काली, स्निग्ध, दर्शनीय, लावण्ययुक्त और रमणीय थी। कुक्षि मछली और पक्षी की तरह सुन्दर भरी पूरी थी। पेट मच्छ की तरह था। पाचो इन्द्रिया समर्थ थी। नाभि कमल की तरह विकसित, गगा के भवर के समान घुमावदार तथा विकसित कमल के समान गभीर और विशाल थी। उनकी कटि त्रिकाष्ठिका (तिपाई), मूसल, दर्पण की मूठ तथा शुद्ध किये हुए सोने की तलवार की मूठ की तरह पतली थी और उत्तम वज्र के मध्य भाग की तरह पुष्ट थी। नीरोग घोडे और बब्बर शेर की कमर के समान गोल थी। गुह्य देश घोडे के गुह्य देश की तरह सुजात था। जात्यश्व (उत्तम अश्व) की तरह उनका शरीर मलमूत्र आदि से रहित था। गजराज की तरह मस्ती से युक्त और विलासपूर्ण गमन था। जाघे हाथी की सूण्ड की तरह पुष्ट थी। घुटने मास से भरे हुए होने के कारण ऐसे मिले हुये थे जैसे अनाज भरने की कोठी और उसका ढक्कन आपस मे मिला रहता है। पिंडली हरिणी की पिंडली और कुरुविन्द (तृणविशेष) की तरह नीचे-नीचे क्रम से पतली होती गई थी। घुटिकाए सुन्दर आकारवाली उत्तम और मासल होने से गूढ थी। चरण सुन्दर और कछुवे के समान उन्नत थे। अगुलिया यथायोग्य छोटी बडी और एक दूसरे से मिली हुई थी। पैर के नख उन्नत पतले ताम्रवर्ण और चिकने थे, तलवे लाल कमल के पत्ते के समान कोमल और सुन्दर थे। चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर, रथ, चक्र और इनके अतिरिक्त श्रेष्ठ मागलिक चिह्नो से अकित थे।

इस प्रकार भगवान् विशिष्ट रूपवाले थे। उनका तेज धूए से रहित अग्नि, बिजली और दोपहर के सूर्य के समान दीप्त था। उनके कर्मों का आस्रव नही होता था। वे ममता-हीन परिग्रह-मुक्त और शोक-शून्य थे। प्रेम, राग, द्वेष और मोह से रहित थे। निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेशक थे। उपदेशको के नायक और उनकी स्थापना करनेवाले थे। साधु-सघ के अधिपति और साधु-वृत्ति के सवर्धक थे। तीर्थंकरो के वचनादि चौंतीस अतिशयो से और पैंतीस सत्य वचन के अतिशयो से युक्त थे।

भगवान् के आगे-आगे धर्म-चक्र आकाश में चलता था। तीन छत्र आकाश मे भगवान के ऊपर रहते थे। आकाश मे ही बढिया श्वेत चामर ढुलते थे। वे आकाश की तरह स्वच्छ स्फटिक के सिंहासन पर बैठे हुए थे। धर्म-ध्वजा (इन्द्रध्वजा) को देवता लोग आगे-आगे ले जा रहे थे। इन सबसे युक्त भगवान् क्रमश ग्रामानुग्राम जाते हुए सुख पूर्वक विहार करते हुए द्वारिका नगरी के नन्दन वन मे पधारे।

"जहा मेहे णिग्गते" इसका अर्थ है—जैसे मेघकुमार निकला। भाव यह है कि जैसे मेघकुमार भगवान् के दर्शनो के लिये गये वैसे ही गौतम कुमार भी भगवान् के चरणो मे गये। मेघकुमार की दर्शन-यात्रा का वर्णन 'श्री ज्ञाता धर्म कथाग सूत्र' मे विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे 'मेहे जाव' आदि पद से मेघकुमार के जीवन-वृत्त की ओर सकेत किया गया है। मेघकुमार की कुछ जीवन-वृत्त रेखाए इस प्रकार हैं—

भगवान् महावीर की आध्यात्मिक वाणी से मेघकुमार वडा प्रभावित हुआ। उपदेशामृत का पान करने से उसके हृदय-सरोवर मे वैराग्य की तरग उठने लगी। उसके मन पर से वासनाओ का आवरण इस तरह उतर गया, जैसे साप के शरीर से केंचुली उतर जाया करती है। मेघकुमार के हृदय पर वैराग्य का अमिट रग चढ गया। उसका विषयानुरागी मन अब वैराग्यानुरागी होकर ससार को त्याज्य मानने लगा।

सबके चले जाने पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी से मेघकुमार ने विनीत वाणी मे निवेदन किया—'भगवन्! आप श्री का प्रवचन अत्यन्त प्रिय और यथार्थ है, मैं आपके श्रीचरणो के पास ही रहू और सयम व्रत ग्रहण कर लूं—यही मेरी इच्छा है। केवल माता तथा पिता से पूछना शेष है, अत उनसे पूछकर मैं अभी उपस्थित होता हू।

इसके उत्तर मे श्री भगवान् ने इतना ही कहा—'जैसे तुम्हे सुख हो, पर तुम्हे प्रमाद से सावधान रहना चाहिए।'

मेघकुमार रथ पर सवार हो घर पहुचा। माता-पिता को प्रणाम करके वह कहने लगा—'मैंने आज भगवान् महावीर स्वामी से उपदेशामृत का पान किया है, उससे मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, वह कहा नही जा सकता। उपदेश तो अनेको वार सुने, पर कभी हृदय इतना प्रभावित नही हुआ था, जितना आज हुआ है। उनके उपदेश से मेरे हृदय पर जो चित्र अकित हुआ है उसे मैं ही देख सकता हूँ, दूसरे को दिखलाना मेरे लिये अशक्य है।

पुत्र के इन वचनो को सुनकर महारानी धारिणी बोली—'पुत्र! तू वडा भाग्यशाली है। धर्माचार्यों के चरणो में बैठकर धर्म का श्रवण कर उसे जीवन मे उतारने का प्रयत्न कोई पुण्यशील ही कर सकता है। भाग्यहीन एव पुण्यहीन व्यक्ति ऐसे पुनीत अवसर प्राप्त नही कर सकते। पुत्र! तेरे भाग्य की क्या सराहना करू? सचमुच आज मेरे किसी महान् पुण्य का उदय हुआ है।'

माता की पावन वाणी सुनकर मेघकुमार बोले—'मा! मेरी इच्छा है कि मैं भगवान् के चरणो मे उपस्थित होकर दीक्षा ले लू। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपने इष्ट कार्य मे शीघ्र लग जाऊ।'

अपने प्रिय पुत्र मेघकुमार की यह बात सुन कर महारानी धारिणी अवाक् सी रह गई। उसे क्या खबर थी कि उसके पुत्र के हृदय को भगवान् महावीर की धर्म-देशना ने वैराग्यमय कर

दिया है और वह राग एव सासारिक आसक्ति से सर्वथा मुक्त हो चुका है। पुत्र-वियोग की कल्पना से वह सहम गई।

माता-पिता विवाह के योग्य पुत्री का विवाह अपनी इच्छा से करते है, तब भी वियोग-वेला उन्हे व्यथित कर ही देती है। मेघकुमार की धर्मपरायणा माता धारिणी वैराग्यमयी दीक्षा को सर्वश्रेष्ठ मानती हुई भी, साधु-जनो की सगति और सयम को आदर्श समझती हुई भी वह इतनी विह्वल हो उठी कि बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पडी। जब दास-दासियो के उपचार से वह कुछ सचेत हुई तो स्नेहपूर्ण हृदय से मेघकुमार को सम्बोधित करती हुई बोली—

'पुत्र! तूने यह क्या कहा? मैं तो तुम्हारा मुख देखकर ही जी रही हूँ, मेरे स्नेह का एकमात्र केन्द्र तू ही है। मैंने तुम्हे प्राणो से भी अधिक सभाल कर रखा है, मैं तो तुम्हारे आते का मुख और जाने की पीठ देखने के लिये ही खडी रहती हूँ। ऐसी दशा मे तुम्हारे दीक्षित हो जाने पर मेरी जो अवस्था होगी, उस पर तुम्हे गम्भीरता से विचार करना चाहिये। माता का भी पुत्र पर कोई अधिकार होता है। इसलिये अधिक नही तो मेरे जीने तक तो तू इस दीक्षा के विचार को अपने हृदय से निकाल दे। अभी तेरा यौवन है, यौवनोपयोगी सभी भोग यहा विद्यमान हैं। यह सारा वैभव तेरे ही लिये है, फिर तू इसका यथेच्छ उपभोग न करके अभी से दीक्षित होने का निश्चय क्यो कर रहा है?'

'तू अभी बच्चा है, सयम के पालने मे कितनी कठिनाइयां झेलनी पडती हैं, इसका तुझे अभी अनुभव नही है। सयम-व्रत का ग्रहण करना कोई साधारण बात नही है। इसके लिये बड़े दृढ मनोबल की आवश्यकता होती है। तेरा कोमल शरीर, सुकुमार अवस्था और देव-दुर्लभ राज्य-वैभव की सम्प्राप्ति आदि के साथ दीक्षा जैसे कठोर व्रत की तुलना करते हुए मुझे तो तू उसके योग्य प्रतीत नही होता है। इस पर भी यदि तेरा दीक्षा लेने के लिये ही विशेष आग्रह है तो मेरे मरने के बाद दीक्षा ले लेना।

इसी समय महाराज श्रेणिक भी वहां आ पहुचे और अश्रुपूर्णनेत्रा अपनी पत्नी से पुत्र के दीक्षा-सम्बन्धी निश्चय को सुनकर वे भी विचलित हो गये और पुत्र को दीक्षा से उदासीन करने का यत्न करने लगे। मा की ममता और पिता के स्नेह-बन्धनो को तोडते हुए दृढ निश्चयी मेघकुमार बोले—

'आज तक आपकी पुनीत गोद मे बैठकर मैंने तो यही सीखा है कि जिस काम से अपना और ससार का कल्याण हो, उस काम के करने मे विलम्ब नही करना चाहिये, न जाने फिर आज आप मुझे विलम्ब की शिक्षा क्यो दे रहे हैं? फिर यह भी तो निश्चित नही है कि मैं आपसे अधिक आयु प्राप्त करके ही आया हू। क्या माता-पिता की उपस्थिति मे पुत्र या पुत्री की मृत्यु नही हो सकती?'

मेघकुमार के उत्तर से एक बार तो महारानी और महाराज अवाक् रह गये, परन्तु कुछ सोच कर बोले—'बेटा! यदि तुमको हमारा ध्यान नही है, तो अपनी नवपरिणीता वधुओ का तो

ख्याल करो। अभी तुम इन्हे व्याह कर लाये हो, इन बेचारियो ने तो अभी तक तुम्हारा कुछ भी सुख नही देखा। तुम यदि इन्हे इस अवस्था मे छोडकर चले गये तो इनका क्या बनेगा ? इनकी रक्षा करना, तुम्हारा प्रधान दायित्व है। इनके विकसित हुये यौवन-पुष्प का विनाश कर दीक्षा के लिये उद्यत होना कोई बुद्धिमत्ता नही है। वश-वृद्धि के पवित्र दायित्व को पूर्ण करना भी तो तुम्हारा कर्तव्य है और कर्तव्य से विमुख होना पाप है।'

मेघकुमार ने विनीत शब्दो मे उत्तर दिया—'यह काम-भोग तो जीवन को पतित कर देने वाले हैं, स्वय मलिन हैं और उपभोक्ता को भी मलिन बना देते है। यह जो रूप, लावण्य और शारीरिक सौन्दर्य है, वह भी चिरस्थायी नही है और यह शरीर जिसे अक्षय सौन्दर्य-सागर समझा जाता है, वस्तुत मलमूत्र और अशुचि पदार्थों का घर है। ऐसे अपवित्र शरीर पर आसक्ति रखना मूर्खता के अतिरिक्त क्या हो सकता है। शरीर, वैभव और सम्बन्धी कोई भी इस जीव के साथ मे जानेवाला नही है। समय आने पर ये सब साथ छोडकर अलग हो जाते हैं। फिर इन पर मोह करना या विश्वास रखना कैसे उचित हो सकता है ? इस अस्थिर सासारिक सम्बन्ध के व्यामोह मे पडकर आप मुझे अपने कर्तव्य-पालन से विचलित करने का यत्न न करें। सच्चे माता-पिता वही होते हैं जो पुत्र के वास्तविक हित की ओर ध्यान देते है। मेरा हित इसी मे है कि एक वीर क्षत्रिय के नाते कर्मरूप आत्म-शत्रुओ को पराजित करके आत्म-स्वराज्य को प्राप्त करू। इसके लिये साधन है—सयम-व्रत का सतत पालन। अत सयम-पालन की आज्ञा देकर मुझे अनुग्रहीत कीजिये, मुझे आत्म-शत्रुओ पर विजयी होने का आशीर्वाद दीजिये, मेरी सयम-व्रत की सफलता के लिये मगल-कामना कीजिये। मुझे आज्ञा दो मा ! मुझ आज्ञा दीजिए ! आज्ञा दीजिये पितृदेव ! मुझे भगवान् की शरण मे पहुचने की आज्ञा दीजिये।'

मेघकुमार के इस आग्रह की उपेक्षा करके सयम-मार्ग की कठिनाइयो का वर्णन करते हुए उसकी माता ने पुन कहा—

'कुमार ! सयमव्रत लेने की तेरे मन मे जो लालसा है, वह तो प्रशसनीय है, पर सयम-दीक्षा का ले लेना यद्यपि आसान कार्य है, परन्तु स्वीकृत दीक्षा के नियमो का पालन करना अत्यन्त कठिन है, क्योकि सयम लेने का अर्थ है—उस्तरे की धार को चाटना और जिह्वा को कटने न देना, या नदी के प्रबल वेग के प्रतिकूल गमन करना या महान समुद्र को भुजाओ से पार करने की बात सोचना। बेटा ! पवत को सिर पर उठाकर चलना आसान है, परन्तु सयम-व्रत का पालन करना कठिन है। भली प्रकार से सोच समझ कर तुम्हे इस मार्ग पर पैर बढाना चाहिये। कही ऐसा न हो कि इधर सासारिक वैभव से भी हाथ धो बैठो और उधर सयम का पालन भी न कर सको। सयम-व्रत मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि उसमे भोजन की व्यवस्था बडी अटपटी होती है। कच्चा पानी इसमें त्याज्य है, ससार भर के मधुर से मधुर एव स्वादिष्ट से स्वादिष्ट फल-फूल और पक्वान्न इसमे त्याज्य हैं। भोजन के ग्रहण मे भी बडी सावधानी रखनी पडती है, भिक्षा से जीवन-निर्वाह करना होता है। तेरे जैसे राजसी ठाठ मे पले हुए सुकुमार युवक के लिये भिक्षा मागना बडा कठिन

कार्य है। नीरस भोजन, पृथ्वी पर शयन और शीतातप की बाधाओं को सहना आदि अत्यन्त कष्ट-साध्य कार्य है, जिनके पालन की तेरे जैसे राजकुमार द्वारा कभी कल्पना भी नही हो सकती है। ऐसे मार्ग मे गमन करने से पहले अपने आत्म-बल को भी परख लो। कही इस नवीन वैराग्य की बाढ मे तैरने के बदले अपने आपको डुबो देने की भूल न कर बैठना। तेरी बाल-बुद्धि अभी दूरगामिनी नही है। प्रत्येक कार्य मे उसके आरम्भ से पहले उससे निष्पन्न होनेवाले हानि-लाभ का विचार करना नितान्त आवश्यक होता है, इसलिये मेरी तो इस समय तेरे लिये यही सम्मति है कि अभी तू दीक्षा के विचार को स्थगित कर दे।'

मा के इस उपदेश का भी मेघकुमार के हृदय पर कोई प्रभाव नही पडा, बल्कि वह सयम-पथ की कठिनाइयो को सुनकर कुछ उत्तेजित सा होकर बोला—

'मा ! सयम महान् कठिन है, यह मैं जानता हूँ और मैं यह भी जानता हू कि इसके धारक वीर पुरुष ही हो सकते है। यह काम कमजोरो और कायरो का नही है। वे तो इस दिशा मे आरम्भ मे ही विफल हो जाते हैं, परन्तु मैं तो एक वीर क्षत्रियाणी का वीर-पुत्र हू और क्षात्र-धर्म का जीता-जागता प्रतीक हूँ। वीरागना के पुत्रो मे दुर्बलता की शका करना अनुचित है। मा ! एक वीर माता अपने पुत्र को सग्राम से पीछे हटने का उपदेश दे, यह देख मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। एक क्षत्रिय-कुमार होता हुआ मैं सयम की कठिनता से भयभीत हो जाऊ ? यह तो आपको स्वप्न मे भी सोचना नहीं चाहिये। मा !

"तेजस्विन क्षणमसूनपि सत्यजन्ति।
सत्यव्रतप्रणयिनो न पुन प्रतिज्ञाम् ॥"

तेजस्वी, धीर और वीर पुरुष अपने प्राणो का त्याग कर देते हैं, परन्तु ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को भग नही होने देते।

'भला मा ! यह तो बतलाओ कि ससार मे ऐसा कोई काम भी है जिसमे किसी न किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पडे ? फिर तपोमार्ग के कष्टो से ही भयभीत किस लिये हुआ जाय ? इसलिये आप मुझे सयम की कठिनाइयो से भयभीत करके सयम से विमुख करने का विफल प्रयास न करे। मैं तो—

"कार्यं वा साधयामि, देह वा पातयामि"

इस प्रतिज्ञा का पालन करनेवाला हूँ, इसलिये मुझे सयम मे उपस्थित होनेवाली कठि-नाइयो का कोई भय नही है। आप इस विषय मे सर्वथा निश्चिन्त रहे। आपकी निर्मल कीर्ति मे किसी भी प्रकार का लाछन नही लगने दूगा, अत मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान कीजिये।

माता के चुप रहने पर वह फिर बोला—

'वीरमाता अपने पुत्र को रणक्षेत्र मे जाने के लिये स्वय सजा कर भेजती है, परन्तु आज न जाने उसे क्या हो गया है ? मा ! मै तो कर्मरूपी शत्रुओ के महान् दल को विध्वस करने जा रहा हू। मुझे उसके लिये स्वय तैयार करो। योग्य माताओ के आदर्श को अपना कर अपने इस वीर

बालक को सयम-यात्रा की आज्ञा प्रदान करो। अब तो सौभाग्यवश मुझे श्रमण भगवान् महावीर जैसे महापुरुष मिल गये है। मैं उनके शासन मे अवश्य विजय प्राप्त करूगा। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसलिये माँ ! उठो, तुम स्वय चलकर मुझे भगवान् के चरणो मे जाकर अर्पित कर दो।'

मेघकुमार के पिता महाराज श्रेणिक बडे नीतिज्ञ थे। उन्होने सोचा कि कभी-कभी अनेक युवक भावुकता के प्रवाह मे बहते हुए स्थायी और दृढ सकल्पो के अभाव मे भी स्थायी प्रभाव रखने वाले कार्यों मे जुट जाते है। उसका फल यह होता है कि तीर तो हाथ से छुट जाता है, केवल पश्चात्ताप पल्ले रह जाता है। यद्यपि मेघकुमार बुद्धिमान् और सुशील है, तथापि युवक ही तो है, अस्तु इसकी दृढता की प्रथम जाच करनी चाहिये। यह सोच महाराज श्रेणिक मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए बोले—

'पुत्र ! तू वीर है, ससार मे वीरता का आदर्श उपस्थित कर ! तू साधु बनकर ससार से क्यो भाग रहा है? ससार का कल्याण जितना तलवार से हो सकता है, उतना साधुवृत्ति से नही हो सकता। अपने ऊपर आये हुए गृहस्थी के भार से भयभीत होकर भागना कायरो का काम है। यदि तू ससार का कल्याण चाहता है तो अपने हाथ मे शासन की बागडोर ले और प्रजा का नीति-पूर्वक पालन कर। ऐसा करने से तेरा और जगत दोनो का ही कल्याण होगा।'

पिता की यह बात सुनकर मेघकुमार बोला—'पिता जी ! यह आप ने क्या कहा? क्या सयम धारण करना कायरो का काम है? नही, नही ! उसके धारण करने के लिये तो बडी वीरता की आवश्यकता होती है। तलवार चलाने मे वह वीरता नही जो सयम के ग्रहण करने मे है। तलवार के बल से तो जनता के मन को भयभीत किया जा सकता है, उसे व्यथित एव सन्त्रस्त करके कुछ काल के लिये वश मे किया जा सकता है, पर तलवार का प्रभाव स्थायी नही हो सकता है।'

'राम अकेले थे, निस्सहाय थे, वन विहारी थे और इसके विपरीत रावण लकेश था, तलवारवाला था, परन्तु प्रजा ने किसका साथ दिया? राम का न कि रावण का। साराश यह है कि तलवार चलाने मे वीरता नही, वीरता तो उस काम मे है जिससे अपना और दूसरो का हित सम्पन्न हो, कल्याण हो।'

दूसरी बात, यदि बाहरी शत्रुओ को जीता तो क्या जीता? इसमे तो कोई असाधारण वीरता नही है। वीरता तो आन्तरिक शत्रुओ की विजय मे है। उनका दमन करनेवाला ही सच्चा वीर है। काम, क्रोध आदि जितने भी भयकर एव अदम्य आन्तरिक शत्रु हैं उनका दमन करनेवाला ही सच्चा वीर है। काम, क्रोध आदि जितने भी आन्तरिक शत्रु हैं, वे तलवार से कभी जीते नही जा सकते। इन पर तलवार का कोई असर नही होता। इनके जीतने का तो एक मात्र साधन सयम है। सयम की तलवार मे जितना बल है, उससे तो शताश या सहस्राश भी इस बाहिर की चमकने वाली लोहे की जड तलवार मे नही है। सयम की तलवार जहा अन्दर के काम, क्रोध आदि शत्रुओ को मार भगाने मे शक्तिशाली है, वहा बाहर के शत्रुओ को पराजित करने में भी सिद्धहस्त है। मैं तो इसी उद्देश्य से इन्ही अन्तरग शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के लिये अपने आपको सयम की

तलवार से सन्नद्ध कर रहा हू, परन्तु आप उससे ना रहे हैं, क्या आपके हृदय मे मेरी इस आदर्श वीरोचित तैयारी के लिये प्रोत्साहन देने की भावना जागृत नही होती ? क्या ही अच्छा हो, यदि आप अपने हाथ से मेरा निष्क्रमणाभिषेक करावे और प्रसन्न चित्त हो मुझे भगवान महावीर के चरणो मे समर्पित करे।'

मेघकुमार के इस उत्तर ने महाराज श्रेणिक को भी मौन करा दिया और माता ने भी समझ लिया कि मेघकुमार अब रुक नही सकेगा, तब इससे तो यही अच्छा है कि इसके श्रेयसाधक कार्य मे हम बाधाकारी न ही बने। यही विचार कर उसने कुमार से कहा—

'अच्छा बेटा ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जाओ धर्म-साधना के द्वारा अन्त शत्रुओ पर विजय प्राप्त करते हुए अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करो। कुमार ! धर्म-साधना मे प्रमाद न करना, जाओ कुमार ! तुम्हारा सयम-पथ निर्विघ्न एव कल्याणकारी हो। पर मेरी एक कामना है, तुम केवल एक दिन के लिये राज-सिंहासन पर अवश्य बैठ जाओ !' मेघकुमार ने स्वीकृति देदी।

मा धारिणी कुमार को एक दिन के लिये राजा बना कर उसकी परीक्षा लेना चाहती थी कि वैभव के आकर्षण उसे अपनी ओर खीचने मे समर्थ तो नही हैं और वह यह भी जानती थी कि राज्य को त्याग कर लिये गये सयम का महत्त्व भी अधिक हो जायेगा और ससार को त्याग के महत्त्व का ज्ञान भी हो सकेगा।

मेघकुमार भी माता के अभिप्राय को समझ गया कि जैसे सोने की परीक्षा अग्नि में तपाकर ही होती है, वैसे मुझे भी अपनी दृढता की परीक्षा राज्य लेकर देनी होगी।

दूसरे दिन मेघकुमार का बडे समारोह के साथ राज्याभिषेक करके उसे राजा बना दिया गया। मेघकुमार राज्य सिंहासन पर बैठा, उसके ऊपर छत्र और चमर दोनो ढुलाये जाने लगे। राज्य-सत्ता मेघकुमार को अर्पित कर दी गई। महाराजा श्रेणिक और महारानी धारिणी अपने पुत्र को राज-गृह नरेश के रूप मे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सप्रेम कहने लगे कि 'पुत्र ! किसी वस्तु की इच्छा है ?'

तब मेघ नरेश ने उत्तर दिया—'हा, मा ! अपने हाथो से रजोहरण और भिक्षा-पात्र दीजिये और स्वय चल कर भगवान् महावीर के चरणो मे मुझे समर्पित कीजिये।'

महाराजा श्रेणिक तथा महारानी धारिणी ने जब यह देखा कि मेघकुमार अपनी परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गया है और अब उसे किसी भी ढग से आपातरमणीय सासारिक काम-भोगो मे फसाया नही जा सकता और अब यह प्रभु वीर के चरणो मे दीक्षित होकर अपना आत्मश्रेय साधने मे अत्यधिक उत्सुक एव उसके लिये सन्नद्ध हो ही रहा है तब उन्होने अपने राजकर्मचारी पुरुषो को बुलाकर कहा कि—'भद्रपुरुषो ! राज्य के कोष मे से तीन लाख मोहरें निकाल लो। उनमें से दो लाख मोहरो द्वारा रजोहरण और पात्र ले आओ, एक लाख मोहरें नाई को दे डालो, जो दीक्षित होने से पूर्व कुमार का शिरो-मुण्डन करेगा।

दीक्षा-महोत्सव की तैयारी होने लगी। सब से प्रथम मेघकुमार को एक पट्टासन पर बैठा कर सोने और चादी के कलशो से स्नान कराया गया, शरीर को पोंछ कर सुन्दर से सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाए गए, शरीर पर सुगन्धित द्रव्यो का लेपन किया गया, सेवको को पालकी लाने की आज्ञा दी गई और आज्ञा मिलते ही सेवकवृन्द एक सुन्दर सुसज्जित एवं एक हजार आदमियो द्वारा उठाई जानेवाली पालकी ले आए। उस पालकी मे पूर्व की ओर मेघकुमार बैठ गए। उन के पास महारानी धारिणी भी अच्छे-अच्छे वस्त्रालङ्कार पहन कर बैठ गई। मेघकुमार के बाईं ओर उनकी धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर बैठी। एक तरुण महिला छत्र लेकर उसके पीछे खडी हो गई, दो युवतिए हाथो मे चवर लेकर वहा आईं और मेघकुमार को चवर ढुलाने लगी। एक और तरुण सुन्दरी पखा लेकर पालकी मे आई और मेघकुमार के उष्णताजन्य सताप को दूर करने का प्रयत्न करने लगी। एक स्त्री झारी लेकर पूर्व दक्षिण दिशा की ओर पालकी मे खडी हो गई। पालकी की तैयारी होने पर महाराज श्रेणिक ने समान रग, समान आयु और समान वस्त्रवाले एक हजार पुरुषो को बुलवाया। आज्ञा मिलने पर वे पुरुष स्नानादि से निवृत्त हो, वस्त्राभूषण पहन कर वहा उपस्थित हो गये। महाराज श्रेणिक द्वारा पालकी उठाने की आज्ञा मिलने पर उन्होने पालकी को अपने कन्धो पर उठा लिया और राजगृह के बाजार की ओर चलने लगे।

एक राजा अपने राज्य को त्याग कर दीक्षा ले रहा है, ऐसी सूचना मिलने पर कौन ऐसा भाग्यहीन आदमी होगा जो इस पावन दीक्षा-महोत्सव मे सम्मिलित न हुआ होगा। सारे नागरिक दीक्षा-महोत्सव को देखने के लिये जल-प्रवाह की भाति उमड पडे। राज्य की समस्त सेना भी उपस्थित हुई। सब लोग जय-जयकार से आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए दीक्षायात्रा की शोभा मे वृद्धि करने लगे।

मेघकुमार की सहस्रवाहिनी पालकी बडे वैभवपूर्ण समारोह के साथ नगर के बीच मे से होकर चली। सबसे आगे सेना थी। महाराज श्रेणिक उसी के साथ थे। सेना के पीछे मगलद्रव्य थे और उनके पीछे मेघकुमार की पालकी। पालकी के पीछे जनता थी। इस प्रकार धूमधाम से मेघकुमार की पालकी महामहिम, करुणा-सागर, पतितपावन, श्रमण भगवान महावीर स्वामी की ओर गुणशिलक उद्यान की ओर चल पडी। वहा पहुचने पर पालकी नीचे रखी गई। मेघकुमार तथा उसकी माता आदि सब उसमे से नीचे उतरे। मेघकुमार को आगे करके महाराज श्रेणिक और महारानी धारिणी जहा भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे वहा पहुचे। सब ने विधिपूर्वक भगवान को वन्दन किया। तदनन्तर मेघकुमार की ओर सकेत करके महारानी धारिणी तथा महाराज श्रेणिक ने बडे विनम्र भाव से भगवान को सम्बोधित करते हुए कहा—

'भगवन्! हम आपको एक शिष्य की भिक्षा देना चाहते है, आप इसे स्वीकार करने की कृपा करे। यह मेघकुमार मेरा इकलौता बेटा है, यह हमे प्राणो से भी अधिक प्रिय है, परन्तु इसकी भावना आपके श्रीचरणो मे दीक्षित हो आत्म-कल्याण करने की है। यद्यपि यह राज्य-वैभव के अनुपम काम-भोगो मे पला है, तथापि कीच मे पैदा होकर कीच से अलिप्त रहनेवाले कमल की भाति यह काम-भोगों में आसक्त नही हुआ है। जिन दु खो को इसने अतीत जन्मो मे अनेक वार सहा है,

उनसे यह विशेष भयभीत है, "भविष्य मे अतीत के समान दु खो को न पाऊँ" इस भावना से यह आपके श्रीचरणो मे उपस्थित हो रहा है। अत इसकी इस पुनीत भावना को पूर्ण करने की अवश्य कृपा करें। माता-पिता के इस निवेदन के अनन्तर भगवान महावीर स्वामी की ओर से दीक्षा की स्वीकृति मिलने पर मेघकुमार भगवान महावीर के पास से उठकर ईशानकोण मे चले गये। वहा जाकर उन्होने शरीर के सारे बहुमूल्य वस्त्रो-आभूषणो को उतार दिया और उन्हे माता के सुपुर्द कर दिया। माता धारिणी ने भी उन्हे सुरक्षित रख लिया। तदनन्तर माता और पिता मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए बोले—

'पुत्र ! हमारी आन्तरिक इच्छा न होने पर भी हम विवश होकर तुम्हे आज्ञा दे रहे है, किन्तु तुम्हे इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य के लिये तुमने राज्य-सिहासन को ठुकराया है, उसे सफल करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना। तुम क्षत्रिय कुमार हो, इसलिये सयमव्रत के सम्यक् अनुष्ठान के द्वारा तथा सचित आत्म-शक्ति के द्वारा कर्म-शत्रुओ पर विजय प्राप्त करते हुए अपने कर्तव्य-पालन मे प्रमाद को कभी स्थान न देना।

तेरी वैराग्य-निष्ठा ने हमारे हृदयो मे तेरा ही अनुकरण करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न कर दी है, अत हम भी शीघ्र ही प्रभु-चरणो मे उपस्थित होकर कषायो पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।'

इसके अनन्तर महाराज और महारानी भगवान को वन्दना कर राजधानी की ओर चले गये।

माता-पिता के चले जाने के बाद मेघकुमार ने पच-मुष्टि लोच करके भगवान के पास आकर विधिपूर्वक वन्दन किया और हाथ जोडकर प्रार्थना की—

'प्रभो ! यह ससार जरा-मरण रूपी अग्नि से जल रहा है। जिस प्रकार जलते हुए घर मे से सर्वप्रथम बहुमूल्य पदार्थो को निकालने का प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ रत्न आत्मा को ससार की अग्नि से निकालने के लिये मै अपने आपको आपके श्रीचरणो मे समर्पित कर दीक्षित होना चाहता हूँ। कृपया मेरी कामना को पूर्ण कीजिये।'

भगवान ने मेघकुमार को मुनि-धर्म की दीक्षा दी और मुनि-धर्मोचित शिक्षाएँ देकर उसे मुनि-धर्म की सारी चर्या समझा दी। मेघकुमार भी भगवान वीर के आदेशानुसार सयम-व्रत का यथाविधि पालन करते हुए कषाय-विजय का प्रयास करने लगा।

उपर्युक्त कथानक को लक्ष्य मे रखकर कहा गया है कि जिस तरह मेघकुमार के हृदय मे दीक्षा लेने के भाव उत्पन्न हुए थे और जैसे उसने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और माता-पिता ने परीक्षा लेने के अनन्तर कुमार को सहर्ष आज्ञा प्रदान करके अपने ही हाथो से समारोह-पूर्वक निष्क्रमणाभिषेक करके उसे भगवान को समर्पित किया था, ठीक उसी प्रकार श्री गौतम कुमार ने भी भगवान नेमिनाथ के चरणो मे अपने आपको माता-पिता की आज्ञा से समर्पित किया और दीक्षा ग्रहण की।

यहा एक प्रश्न हो सकता है कि मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समय मे हुए और द्वारकाधीश अन्धकवृष्णि के सुपुत्र राजकुमार गौतम २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समय

मे हुए। पहले गौतमकुमार हुए तदनन्तर मेघकुमार ऐसी स्थिति मे गौतम कुमार के लिये मेघकुमार का उदाहरण किस प्रकार सगत हो सकता है ? यदि मेघकुमार के लिये गौतम कुमार का उदाहरण दिया जाता तब तो यह सगत और उचित हो सकता था ?

उत्तर मे कहा जा सकता है कि यहा पर जो उदाहरण दिया गया है, वह समय की अपेक्षा से नही, किन्तु वर्णन की अपेक्षा से दिया गया है। अग सूत्रो मे भगवती सूत्र का पाचवा और 'ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र' का छठा स्थान है। 'अन्तगडसूत्र' आठवा अग शास्त्र हे। उक्त दोनो अग-शास्त्रो का इससे पहला स्थान है। अगसूत्रो मे वर्णनक्रम का पौर्वापर्य है, उसकी अपेक्षा से ही यहा पर मेघकुमार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

किसी-किसी हस्तलिखित प्रति मे कुछ अधिक पाठ भी देखने मे आता है, परन्तु यह पाठ-भेद नही है, 'ज्ञाताधर्म कथाग सूत्र' के पथम अध्ययन के पाठ के उद्धरण मात्र हैं।

किसी प्रति मे सक्षिप्त शब्दो मे ज्ञातासूत्रीय पाठ का सकेत किया गया है। किसी मे अधिक शब्दो मे।

उपर्युक्त वर्णन से यह तथ्य सामने आते हैं कि—

(क) तीर्थंकर भगवान के समवसरण [जहा बैठकर तीर्थंकर भगवान उपदेश करते है] मे धर्म-देशना के समय साधारण व्यक्तियो के साथ साथ बडे-बडे राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव भी उपस्थित हुआ करते थे, अत मनुष्य को भी सासारिक कार्यों मे से कुछ न कुछ समय निकाल कर धर्मोपदेश सुनने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म-श्रवण के द्वारा मनुष्य का आचार, विचार, आहार और व्यवहार प्रशस्त बनता है।

(ख) धर्म को सुनने के अनन्तर विचारपूर्वक यथाशक्ति उसको आचरण मे लाने का प्रयास करना चाहिये। कानो मे पडे हुए धार्मिक वचन आचरण का स्थान लेकर जीवन के लिये वरदान बन जाया करते है।

(ग) सयम ग्रहण करके मोक्ष-मार्ग के प्रदर्शक निर्ग्रन्थ प्रवचन पर साधक को अधिकाधिक श्रद्धान रखना चाहिये, धर्म-कार्यों मे उत्साह दिखलाना चाहिये तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुकूल अपने जीवन को ढालने का यत्न करना चाहिये।

सूत्रकार के "निग्गथ पावयण पुरओ काउ विहरइ"—'निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे रख कर विहरण करता है'—ये शब्द महत्वपूर्ण है। यदि निर्ग्रन्थ प्रवचन को अधिक महत्व देना सूत्रकार को इष्ट न होता तो सूत्रकार उक्त पाठ के स्थान मे "अरहा अरिट्ठनेमि पुरओ काउ विहरइ" यह पाठ देते। इस समस्त विवेचन का सार यह है कि प्रत्येक साधक को निर्ग्रन्थ प्रवचन पर पूरा-पूरा विश्वास रखना चाहिए और उसी के नेतृत्व मे अपनी जीवन-यात्रा को गतिशील बनाना चाहिये।

दीक्षित होने के अनन्तर गौतम कुमार ने क्या कुछ किया ? अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे उसी का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

उनसे यह विशेष भयभीत है, "भविष्य मे अतीत के समान दु खो को न पाऊँ" इस भावना से यह आपके श्रीचरणो मे उपस्थित हो रहा है। अत इसकी इस पुनीत भावना को पूर्ण करने की अवश्य कृपा करें। माता-पिता के इस निवेदन के अनन्तर भगवान महावीर स्वामी की ओर से दीक्षा की स्वीकृति मिलने पर मेघकुमार भगवान महावीर के पास से उठकर ईशानकोण मे चले गये। वहा जाकर उन्होने शरीर के सारे बहुमूल्य वस्त्रो-आभूषणो को उतार दिया और उन्हे माता के सुपुर्द कर दिया। माता धारिणी ने भी उन्हे सुरक्षित रख लिया। तदनन्तर माता और पिता मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए बोले—

'पुत्र ! हमारी आन्तरिक इच्छा न होने पर भी हम विवश होकर तुम्हे आज्ञा दे रहे हैं, किन्तु तुम्हे इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य के लिये तुमने राज्य-सिंहासन को ठुकराया है, उसे सफल करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना। तुम क्षत्रिय कुमार हो, इसलिये सयमव्रत के सम्यक् अनुष्ठान के द्वारा तथा सचित आत्म-शक्ति के द्वारा कर्म-शत्रुओ पर विजय प्राप्त करते हुए अपने कर्तव्य-पालन मे प्रमाद को कभी स्थान न देना।

तेरी वैराग्य-निष्ठा ने हमारे हृदयो मे तेरा ही अनुकरण करने की प्रवल इच्छा उत्पन्न कर दी है, अत हम भी शीघ्र ही प्रभु-चरणो मे उपस्थित होकर कषायो पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।'

इसके अनन्तर महाराज और महारानी भगवान को वन्दना कर राजधानी की ओर चले गये।

माता-पिता के चले जाने के बाद मेघकुमार ने पच-मुष्टि लोच करके भगवान के पास आकर विधिपूर्वक वन्दन किया और हाथ जोडकर प्रार्थना की—

'प्रभो ! यह ससार जरा-मरण रूपी अग्नि से जल रहा है। जिस प्रकार जलते हुए घर में से सर्वप्रथम बहुमूल्य पदार्थों को निकालने का प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ रत्न आत्मा को ससार की अग्नि से निकालने के लिये मैं अपने आपको आपके श्रीचरणो मे समर्पित कर दीक्षित होना चाहता हूँ। कृपया मेरी कामना को पूर्ण कीजिये।'

भगवान ने मेघकुमार को मुनि-धर्म की दीक्षा दी और मुनि-धर्मोचित शिक्षाएँ देकर उसे मुनि-धर्म की सारी चर्या समझा दी। मेघकुमार भी भगवान वीर के आदेशानुसार सयम-व्रत का यथाविधि पालन करते हुए कषाय-विजय का प्रयास करने लगा।

उपर्युक्त कथानक को लक्ष्य मे रखकर कहा गया है कि जिस तरह मेघकुमार के हृदय मे दीक्षा लेने के भाव उत्पन्न हुए थे और जैसे उसने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और माता-पिता ने परीक्षा लेने के अनन्तर कुमार को सहर्ष आज्ञा प्रदान करके अपने ही हाथो से समारोह-पूर्वक निष्क्रमणाभिषेक करके उसे भगवान को समर्पित किया था, ठीक उसी प्रकार श्री गौतम कुमार ने भी भगवान नेमिनाथ के चरणो मे अपने आपको माता-पिता की आज्ञा से समर्पित किया और दीक्षा ग्रहण की।

यहा एक प्रश्न हो सकता है कि मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समय मे हुए और द्वारकाधीश अन्धकवृष्णि के सुपुत्र राजकुमार गौतम २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समय

मे हुए। पहले गौतमकुमार हुए तदनन्तर मेघकुमार ऐसी स्थिति मे गौतम कुमार के लिये मेघकुमार का उदाहरण किस प्रकार सगत हो सकता है ? यदि मेघकुमार के लिये गौतम कुमार का उदाहरण दिया जाता तब तो यह सगत और उचित हो सकता था ?

उत्तर मे कहा जा सकता है कि यहा पर जो उदाहरण दिया गया है, वह समय की अपेक्षा से नही, किन्तु वर्णन की अपेक्षा से दिया गया है। अग सूत्रो मे भगवती सूत्र का पाचवा और 'ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र' का छठा स्थान है। अन्तगडसूत्र' आठवा अग शास्त्र है। उक्त दोनो अग-शास्त्रो का इससे पहला स्थान है। अगसूत्रो मे वर्णनक्रम का पौर्वापर्य है, उसकी अपेक्षा से ही यहा पर मेघकुमार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

किसी-किसी हस्तलिखित प्रति मे कुछ अधिक पाठ भी देखने मे आता है, परन्तु यह पाठ-भेद नही है, 'ज्ञाताधर्म कथाग सूत्र' के प्रथम अध्ययन के पाठ के उद्धरण मात्र हैं।

किसी प्रति मे सक्षिप्त शब्दो मे ज्ञातासूत्रीय पाठ का सकेत किया गया है। किसी मे अधिक शब्दो मे।

उपर्युक्त वर्णन से यह तथ्य सामने आते हैं कि—

(क) तीर्थंकर भगवान के समवसरण [जहा बैठकर तीर्थंकर भगवान उपदेश करते है] मे धर्म-देशना के समय साधारण व्यक्तियो के साथ साथ बडे-बडे राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव भी उपस्थित हुआ करते थे, अत मनुष्य को भी सासारिक कार्यों मे से कुछ न कुछ समय निकाल कर धर्मोपदेश सुनने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म-श्रवण के द्वारा मनुष्य का आचार, विचार, आहार और व्यवहार प्रशस्त बनता है।

(ख) धर्म को सुनने के अनन्तर विचारपूर्वक यथाशक्ति उसको आचरण मे लाने का प्रयास करना चाहिये। कानो मे पडे हुए धार्मिक वचन आचरण का स्थान लेकर जीवन के लिये वरदान बन जाया करते है।

(ग) सयम ग्रहण करके मोक्ष-मार्ग के प्रदर्शक निर्ग्रन्थ प्रवचन पर साधक को अधिकाधिक श्रद्धान रखना चाहिये, धर्म-कार्यों मे उत्साह दिखलाना चाहिये तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुकूल अपने जीवन को ढालने का यत्न करना चाहिये।

सूत्रकार के "निग्गथ पावयण पुरओ काउ विहरइ"—'निग्रन्थ प्रवचन को आगे रख कर विहरण करता है'—ये शब्द महत्वपूर्ण है। यदि निर्ग्रन्थ प्रवचन को अधिक महत्व देना सूत्रकार को इष्ट न होता तो सूत्रकार उक्त पाठ के स्थान मे "अरहा अरिट्ठनेमि पुरओ काउ विहरइ" यह पाठ देते। इस समस्त विवेचन का सार यह है कि प्रत्येक साधक को निर्ग्रन्थ प्रवचन पर पूरा-पूरा विश्वास रखना चाहिए और उसी के नेतृत्व मे अपनी जीवन-यात्रा को गतिशील बनाना चाहिये।

दीक्षित होने के अनन्तर गौतम कुमार ने क्या कुछ किया ? अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे उसी का वर्णन प्रस्तुत करते है—

मूल—तते ण से गोयमे अणगारे अन्नदा कयाइ अरहतो अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाण थेराणं अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिजित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाण भावेमाणे विहरइ। ते अरिहा अरिट्ठनेमि अन्नदा कदाइ बारवतीओ नदनवणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णदा कदाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताण विहरित्तए, एव जहा खदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता गुणरयण पि तवोकम्म तहेव फासेइ निरवसेस जहा खदओ तहा चितइ, तहा आपुच्छइ तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंज दुरूहइ, मासियाए सलेहणाए बारसवरिसाइ परियाए जाव सिद्धे—५।

छाया—तत स गौतमो अनगारोऽन्यदा कदाचिद् अर्हतोऽरिष्टनेमेस्तथरूपाणा स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते, अधीत्य बहुभि चतुर्थ यावद् आत्मान भावयन् विहरति। सोऽर्हन् अरिष्टनेमि अन्यदा कदाचित् द्वारवत्या नन्दनवनत प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य बहि जनपद-विहार विहरति।

तत स गौतमोऽनगारोऽन्यदा कदाचिद् यत्रैव अर्हं अरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्व आदक्षिणा प्रदक्षिणा करोति, कृत्वा वन्दति, नमस्यति, वदित्वा, नमस्यित्वा-वावीत्—'इच्छामि भदन्त! युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् मासिकीं भिक्षुप्रतिमामुपसम्पद्य विहर्तुम्। एव यथा स्कन्धक तथा द्वादशभिक्षुप्रतिमा स्पृशति, स्पृष्ट्वा गुणरत्नमपि तप कर्म तथैव स्पृशति निर्विशेष यथा स्कन्धक तथा चिन्तयति तथा स्थविरै सार्द्ध शत्रुञ्जय पर्वतमारोहयति आरुह्य मासिक्या सलेखनया द्वादशवर्षाणि यावत् सिद्ध—५॥

पदार्थ—ण—वाक्यसौन्दर्य प्रयोग मे लाया जाता है, तते—इसके पश्चात्, से गोयमे—वह गौतम! अणगारे—अनगार-साधु, अन्नया कदाइ—किसी अन्य समय, अरहतो—अरिहन्त, अरिट्ठनेमिस्स—अरिष्टनेमि के, तहारूवाण—तथारूप (उस प्रकार के), थेराणं—स्थविरों के, अतिए समीप, सामाइयमाइयाइ—सामायिक आदि, एक्कारस—ग्यारह, अगाइ—अगो का, अहिज्जइ—अध्ययन करता है, अहिजित्ता—अध्ययन करके, बहूहिं—बहुत, चउत्थ—उपवास, जाव—यावत्, भावेमाणे—करते हुए, विहरइ—विहरण करता है, ते—वे, अरिहा—अरिहन्त, अरिट्ठनेमि—नेमिनाथ, अन्नया कयाइ—किसी अन्य समय, बारवतीये—द्वारिका नगरी के, नदनवणतो—नन्दनवन से, पडिनिक्खमइ—निकलते हैं, पडिनिक्खमित्ता—निकल कर, बहिया—बाहिर, जणवयविहार—अनेक जनपदो मे विहरइ—विहरण करते हैं।

तते—तदनन्तर, से—वह, **गोयमे**—गौतम कुमार, **अणगारे**—अनगार, **अन्नया कदाइ**—किसी अन्य समय, **जेणेव**—जहा, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—नेमिनाथ थे, **तेणेव**—वही पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि को, **तिक्खुत्तो**—तीन वार, **आयाहिण**—दक्षिण की ओर से घूमते हुए, **पयाहिण**—प्रदक्षिणा दे कर, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहनेलगी, **भते !**—हे भगवन् ! **इच्छामि**—मैं चाहता हूँ, **तुब्भेहि**—आप श्री द्वारा, **अब्भणुण्णाते समाणे**—आज्ञा प्राप्त अनुमत मे, **मासिय**—प्रत्येक मासकी, **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा को, **उवसपज्जित्ताण**—ग्रहण कर के, **विहरित्तए**—विचरू, **एव**—इस तरह, **जहा**—जैसे, **खधओ**—स्कन्धक कुमार, **तहा**—जैसे, **बारस**—बारह, **भिक्खुपडिमाओ**—भिक्षु प्रतिमाओ का, **फासेति**—स्पर्श करता है, **गुणरयण पि**—गुण रतन नामक, **तवोकम्म**—तप कर्म का भी, **तहेव**—उसी प्रकार, **फासेति**—स्पर्श करता है, **निरवसेस**—सम्पूर्ण, **जहा**—जैसे, **खधओ**—स्कन्धककुमार का अधिकार है, **चिन्तेति**—चिन्तन करता है, **तहा**—उसी प्रकार, **आपुच्छइ**—भगवान को पूछता है, (और पूछकर), **तहा**—उसी प्रकार, **थेरेहि**—स्थविरो के, **सद्धि**—साथ, **सेत्तुज्ज**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **दुरूहइ**—चढता है और चढ कर, **मासियाए**—एक मास की, **सलेहणाए**—सलेखना-सथारे से, **बारसवरिसाइ**—बारह वर्ष की, **परियाए**—पर्याय-दीक्षा पालता है, पाल कर, **जाव**—यावत्, **सिद्धे**—सिद्ध हो जाता है ।

मूलार्थ—साधु बन जाने के अनन्तर अनगार गौतम ने भगवान अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे रहनेवाले आचार, विचार की उच्चता को पूर्णतया प्राप्त स्थविरो के पास सामायिक आचाराग आदि ११ अगो का अध्ययन करते हुए व्रत बेला आदि अनेक विध तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करना आरम्भ कर दिया ।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि ने अब द्वारिका नगरी के नन्दनवन से विहार कर दिया और वे अन्य जनपदो मे विचरण करने लगे ।

तपस्या और शास्त्रस्वाध्याय मे तत्पर अनगार गौतम अवसर पा कर भगवान अरिष्टनेमि की सेवा मे उपस्थित हुए विधिपूर्वक वन्दना, नमस्कार करने के अनन्तर इन्होने भगवान से निवेदन किया—

'भगवन् ! मेरी इच्छा है यदि आपश्री आज्ञा दे तो मै मासिकी भिक्षु-प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) की आराधना करू ।' भगवान से आज्ञा पाकर वे साधना मे लीन हो गए ।

भगवती सूत्र मे स्कन्धक मुनि का वर्णन आता है, जैसे उन्होने भिक्षु की बारह प्रतिमाओ तथा गुणरत्न तप का आराधन किया था, वैसे ही मुनिराज गौतम ने

भिक्षु की बारह प्रतिमाओ तथा गुणरत्न तप का आराधन किया, मनन किया, चिन्तन किया और अध्ययन किया। स्थविर मुनिराजो के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर जा कर मासिकी सलेहणा (सथारे) द्वारा बारह वर्ष तक दीक्षा की प्रतिपालना करते हुए अन्त मे सिद्धत्व को प्राप्त किया।

टीका—अब प्रस्तुत सूत्र द्वारा ससूचित कुछ विशेष तथ्यो पर विचार किया जाता है—

सूत्रकार ने जिस पद्धति से गौतम मुनि के विद्यार्थी जीवन का शब्दचित्र उपस्थित किया है, उससे यह भली भान्ति सिद्ध होता है कि आगमो का अध्ययन स्थविरो एव गुरुजनो से ही करना चाहिए, क्योकि तपोनिष्ठ एव सतत स्वाध्याय मे लीन गुरुजनो के द्वारा जो सत्यानुभूति व्यक्त की जा सकती है, वह सामान्य व्यक्ति द्वारा और केवल स्वानुभूति के आधार पर किसी भी प्रकार प्राप्त नही की जा सकती।

साधक को सर्वप्रथम श्रुत का अध्ययन करना चाहिए और फिर उस पर श्रद्धा करना चाहिए। तदनन्तर अहिंसा सयम, तप के अनुष्ठान द्वारा कर्म-मल को जला कर आत्मा को विशुद्ध बनाना चाहिए। आत्म-विशुद्धि कर लेने के पश्चात् साधक को सलेखना के द्वारा निर्वाण पद को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। ये तथ्य भी गौतम कुमार के सयमी जीवन द्वारा सूत्रकार ने ध्वनित किये है।

"तहारूवाण थेराण" के रूप मे यहा 'तथारूप' और 'स्थविर' इन दो पदो का ग्रहण किया गया है। तथारूप का अर्थ है—शास्त्र मे वर्णन किए गए आचार का पालन करनेवाले और स्थविर का अर्थ है वृद्ध साधु। स्थानाग सूत्र मे इस के तीन भेद बताए गए हैं—१—वय-स्थविर, २—सूत्र-स्थविर और ३—प्रव्रज्या-स्थविर। साठ वर्ष की आयु के वय-स्थविर, स्थानाग और समवायाग सूत्र के ज्ञाता साधु सूत्र-स्थविर तथा २० वर्ष की दीक्षा पर्यायवाले साधु प्रव्रज्या-स्थविर कहलाते है।

"सामाइयमाइयाइ" का अर्थ है—सामायिक आदि।

अर्द्ध मागधी (गुजराती, पृष्ठ ७६७) नामक कोष मे सामायिक शब्द के निम्नोक्त अर्थ किए गए हैं—

१—सामायिक चारित्र का अर्थ है सर्वसावद्य योगो से निवृत्ति। २—श्रावक का नवम व्रत, देश विरतिरूप सामायिक चारित्र। ३—सामायिक श्रुत, आचाराग आदि। ४—आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन। ५—द्रव्य लेश्या से उत्पन्न होनेवाला परिणाम अध्यवसाय।

प्रस्तुत प्रकरण मे सामायिक शब्द से आचाराग सूत्र का ही ग्रहण करना उचित है। "सामाइय माइयाइ" मे आदि शब्द शेष अगशास्त्रो का बोधक है। अगशास्त्रो का परिचय पीछे कराया जा चुका है।

प्रश्न—ग्यारह अगो मे अन्तकृद्दशाग सूत्र का भी निर्देश किया गया है । इसके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्याय मे श्रीगौतमकुमार का जीवन प्रस्तावित हुआ है। तो क्या वह गौतमकुमार यही था या अन्य ? यदि यही था तो उसने अन्तकृद्दशांग का अध्ययन कैसे किया ? जिस का निर्माण ही बाद मे हुआ है, उसका अध्ययन पहले कैसे सम्भव हो सकता है ?

उत्तर—अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे जिस गौतम कुमार का वर्णन किया गया है वे यही हमारे द्वारकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के सुपुत्र है। अब रही बात पढ़ने की। इस का समाधान यह है कि भगवान अरिष्टनेमि के १८ गणधर थे। ये सभी अनुपम ज्ञानादि गुणों के धारक थे। उनकी अनेको वाचनाए थी, जोकि इन्ही पूर्वोक्त अगो उपागो के नाम से प्रसिद्ध थी। प्रत्येक मे विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न ही होता था। वर्तमान काल मे जो वाचना उपलब्ध हो रही है, वह भगवान महावीर के पट्टधर श्रद्धेय श्री सुधर्मा स्वामी की है। श्री गौतम कुमार ने जो एकादश अग पढे थे वे तत्कालीन किसी गणधर की वाचना के ११ अग थे। वर्तमान मे उपलब्ध अगशास्त्रो का उन्होने अध्ययन नही किया, यह वाचना तो उस समय थी ही नही, अत इस वाचना (आगमसमुदाय) के पढने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता।

आचार्यप्रवर अभयदेव सूरि ने भगवती सूत्र की व्याख्या मे स्कन्धक कुमार के प्रसग को ले कर ऐसी ही आशका उठा कर उस का जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह मननीय एव प्रस्तुत प्रकरण मे उत्पन्न शका के उपयोगी समाधान के लिये पठनीय है।

"एक्कारस अगाइ अहिज्जइ"—इह कश्चिदाह—नन्वनेन स्कन्धकचरितात् प्रागेवैकादशांग-निष्पत्तिरवसीयते, पचमांगान्तर्भूत च स्कन्धकचरितमुपलभ्यते, इति कथ न विरोध ? उच्यते—श्रीमन्महावीर-तीर्थे किल् नव वाचना। तत्र च सर्व-वाचनासु स्कन्धक चरितात् पूर्वकाले ये स्कन्धक-चरिताभिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यते स्कन्धकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मास्वामिना जम्बू-नामान स्वशिष्यमगीकृत्याधिकृतवाचनायामस्या स्कन्धकचरितमेवाश्रित्य तदर्थ प्ररूपणा कृतेति न विरोध । अथवा सातिशायित्वाद् गणधराणामनागतकाल-भाविचरित-निबन्धनमदुष्टमिति । भाविशिष्य-सन्तानापेक्षया अतीतकाल निर्देशोऽप्यदुष्ट इति ।

—भगवती सूत्र श० २, उ० १ सू० ९३ ।

अर्थात्—प्रस्तुत मे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्कन्धक चरित से पहले ही ११ अगो का निर्माण हो चुका था। स्कन्धक चरित पचम अग (भगवती सूत्र) मे उपलब्ध होता है। तब स्कन्धक ने ११ अग पढे, इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या उसने अपना ही जीवन पढा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—

भगवान महावीर के तीर्थ-शासन में नौ वाचनाए थी। प्रत्येक वाचना में स्कन्धक के जीवन का अर्थ (शिक्षारूप प्रयोजन) समान रूप से अवस्थित रहता था। अन्तर केवल इतना होता था कि जीवन के नायक तथा नायक के सभी साथी भिन्न-भिन्न होते थे। भाव यह है कि जो शिक्षा स्कन्धक

के जीवन से मिलती है उसी शिक्षा को देनेवाले अन्य जीवन-चरितो का सकलन तत्कालीन वाचनाओ मे मिलता था। सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी को लक्ष्य बनाकर अपनी इस वाचना मे स्कन्धक के जीवन-चरित से ही उस अर्थ की प्ररूपणा कर डाली, जो अर्थ अन्य वाचनाओ मे गर्भित था, अत यह स्पष्ट है कि स्कन्धक ने जो अगादि शास्त्र पढे थे, वे सुधर्मास्वामी की वाचना के नहीं थे।

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गणधर महाराज अतिशय (ज्ञानविशेष) के धारक होते थे, इसलिये उन्होने भविष्य मे होनेवाले चरित्रों का भी सकलन कर दिया। इसके अतिरिक्त भावी शिष्यवर्ग की अपेक्षा से अतीतकाल का निर्देश भी दोषयुक्त नही कहा जा सकता।

"चउत्थ जाव भावेमाणे" यहा पठित चतुर्थ शब्द व्रत उपवास का बोधक है तथा **जाव**-यावत् पद बेले, तेले, चौले आदि तपो का ससूचक है। **भावेमाणे** का अर्थ है—भावयन्—वासयन्—अर्थात् अपने जीवन मे उसका प्रयोग करता हुआ।

"मासियं भिक्खुपडिम" का अर्थ है—मासिकी भिक्षुप्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा। भिक्षु की प्रतिज्ञा को भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। ये प्रतिमाए बारह होती है। इनका विस्तृत विवेचन दशाश्रुत स्कध सूत्र मे किया गया है। इसका विशेष विवेचन हमने इस सूत्र की **"गणपतिगुण प्रकाशिका"** नामक भाषा टीका मे विस्तार से किया है।

इस प्रतिमा का धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति* लेता है। जहा एक व्यक्ति के लिये भोजन बना है, वहा से भोजन लेता है, गर्भवती या छोटे बच्चे की मा के लिये बनाया गया भोजन वह नही लेता। दुग्धपान छुडवा कर भिक्षा देनेवाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देनेवाली आसन्नप्रसवा स्त्री से भोजन नही लेता। जिसके दोनो पैर देहली के भीतर हो या बाहिर हो उससे आहार नही लेता। दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागो मे से एक भाग मे वह भिक्षा को जाता है। परिचित स्थान पर वह एक रात रहता है, अपरिचित स्थान पर एक या दो राते ठहर जाता है। वह याचनीय आहार की याचना करनी २-पृच्छनी-मार्ग पूछना, ३—अनुज्ञापनी—स्थान आदि के लिये आज्ञा लेना, ४—प्रश्नो का उत्तर देने वाली ये चार भाषाएं बोलता है। वह अध-आराम-गृह—जिसके चारो ओर बाग हो, २—अधोविकटगृह—चारो ओर से खुला हो, ऊपर से ढका हो, ३—अध वृक्ष मूलगृह—वृक्ष का मूल या वहा पर बना स्थान इन स्थानो पर मालिक की आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इन स्थानो मे कोई आग लगा दे तो यह मुनि जीवन की सुरक्षा के लिये स्वय स्थान से बाहिर नही निकलता। बिहारी जीवन मे यदि पाव मे कांटा लग जाए तो उसे नही निकालता, आखो मे धूल पड जाए तो उसको भी दूर नही करता। जहां सूर्य अस्त हो जाए वहीं ठहर जाता है। शरीर-शुद्धि को छोडकर जल का प्रयोग नही करता। विहारी जीवन में यदि सामने कोई हिंसक जीव आए तो डरकर पीछे नही जाता। यदि कोई जीव उसे देखकर डरता हो तो वह एक ओर हो जाता है। शीत-निवारण के लिये घाम का सेवन नहीं करता। गरमी का परिहार करने के लिये शीत स्थान में नहीं जाता। इस विधि से मासिकी प्रतिमा का पालन होता है। इसका समय एक महीना है।

* दाता द्वारा दिए जानेवाले अन्न और पानी की अखण्ड धारा 'दत्ति' कहलाती है।

"एव जहा खदग्रो तहा" का भाव यह है कि गौतम कुमार का चरित मुनिवर स्कन्धक के ही समान था। भगवती सूत्र मे वर्णित स्कन्धक मुनि ने भिक्षु की वारह प्रतिमाग्रो का ग्राराधन किया था। सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार भगवती सूत्र के स्कन्धक कुमार ने भिक्षु-प्रतिमाग्रो की ग्राराधना की थी, इसी प्रकार गौतम मुनि ने भी वारह भिक्षु-प्रतिमाग्रो का परिपालन किया था।

पहले कहा जा चुका है कि साधु के ग्रभिग्रह विशेष का नाम भिक्षु-प्रतिमा है। एक से लेकर सात प्रतिमाग्रो का समय एक एक मास का है। पहली मासिकी, दूसरी द्वैमासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चातुर्मासिकी, पाचवी पाञ्चमासिकी, छठी षाण्मासिकी ग्रौर सातवी साप्तमासिकी कहलाती है। पहली प्रतिमा मे ग्रन्न-पानी की एक दत्ति, दूसरी मे दो, तीसरी मे ३, चौथी मे ४, पाचवी मे ५, छठी मे ६, सातवी मे ७, दत्तिया ली जाती हैं। ग्राठवी प्रतिमा का समय सात दिन-रात है, नवमी का समय भी सात दिन-रात है। ग्राठवी मे चौविहार उपवास करना होता है। नवमी मे चौविहार वेले-वेले पारणा किया जाता है। दसवी का समय भी सात दिन-रात है। इसमे चौविहार तेले-तेले पारणा करना होता है। ग्यारहवी प्रतिमा का समय एक दिन रात है। चौविहार बेला करके इसका ग्राराधन किया जाता है। वारहवी का समय केवल एक रात है। इसका ग्राराधन चौविहार तेला करके करना होता है। इन सभी प्रतिमाग्रो का ग्राराधन श्रीगौतम मुनि जी ने किया था।

"गुणरयण पि तवोकम्म" का ग्रर्थ है— गुणरत्न-तप-कर्म। तपो के नाना प्रकारो मे गुणरत्न भी एक प्रकार का तप है। इसे 'गुण-रत्न-सम्वत्सर तप' भी कहते हैं। यह तप सोलह महीनो मे सम्पन्न होता है। इस मे तप के ४०७ दिन ग्रौर पारणा के ७३ दिन होते हैं। पहले महीने एकान्तर उपवास किया जाता है, दूसरे महीने मे वेले-वेले पारणा करनी होती है, तीसरे महीने में तेले-तेले पारणा करनी पडती है। इसी प्रकार वढाते हुए सोलहवें महीने मे सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप मे दिन को उत्कुटुक ग्रासन से बैठकर सूर्य की ग्रातापना ली जाती है ग्रौर रात्रि को वस्त्ररहित वीरासन से बैठकर ध्यान लगाना होता है। शास्त्रो मे 'गुणरत्न सम्वत्सर तप का एक यत्र भी देखने मे ग्राता है। जो इस प्रकार है—

गुण-रत्न-संवत्सर-तप

मास	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	योग
तपो दिन	१५	२०	२४	२४	२५	२४	२१	२४	२७	३०	३३	२४	२६	२८	३०	३२	४०७
पारणा दिन	१५	१०	८	६	५	४	३	३	३	३	३	२	२	२	२	२	७३

"जहा खदग्रो तहा चिंतेति"—का ग्रर्थ है, जिस प्रकार स्कधककुमार ने चिन्तन किया था उसी प्रकार गौतम मुनि ने भी चिन्तन किया। भगवती सूत्र मे वर्णित स्कधककुमार प्रतिमाग्रो तथा तप का

आराधन करते हुए जब दुर्बल हो गये तब उन्होने सोचा कि अब जीवन की विशेष स्थिति प्रतीत नही होती, अत जितना समय शेष है उसे अनशन में लगा देना चाहिए।

जिस प्रकार की बाते स्कन्धककुमार जी ने विचारी थी, उसी प्रकार गौतम मुनि भी जब अपने को कृश अनुभव करने लगे तो उन्होने भी स्कन्धक मुनि की भाति ही चिन्तन किया। उनके चिन्तन की समस्त रूपरेखा भगवती सूत्र मे दी गई है।

प्रस्तुत प्रकरण मे "जहा खदग्रो" पद के द्वारा सूत्रकार स्कन्धक मुनि के चिन्तन की ओर सकेत करके श्रीगौतममुनि के चिन्तन का परिचय करवाते है।

'थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंज दुरोहति" का अर्थ है, गौतम मुनि स्थविर मुनियो के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर चले जाते है। शत्रुञ्जय पर्वत पर गौतम मुनि केवल जीवन के शेष दिनो को व्यतीत करने के लिये गए थे। यह तो स्पष्ट ही है, पर यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि उनके साथ स्थविर मुनियो के जाने का क्या उद्देश्य है? यदि कहा जाए कि वे स्थविर मुनि गौतम मुनि की सेवा-सुश्रूषा के लिये साथ गये थे तो यह उत्तर ठीक नही प्रतीत होता, क्योकि जो मुनि स्वय स्थविर हैं—वृद्ध हैं, वे दूसरे की सेवा क्या करेंगे? सेवा करने के लिये तो युवक मुनियो की अपेक्षा हो सकती है, वृद्धो की नही।

समाधान के रूप मे कहा जा सकता है कि स्थविर का अर्थ केवल वयोवृद्ध ही नही होता। स्थविर ज्ञानवृद्ध, दीक्षावृद्ध और वयोवृद्ध तीनो को कहते हैं।' अत शत्रुञ्जय पर्वत पर जानेवाले स्थविर मुनि वयोवृद्ध ही थे ऐसा कोई शास्त्रीय उल्लेख नही है।

दूसरी बात—भगवती सूत्र मे—**"कडाइ थेरेहिं सद्धिं"*** ऐसा पाठ आता है। इस मे पठित 'कडाइ' शब्द का अर्थ होता है-सेवा करने की क्षमतावाले अर्थात् उक्त पाठ से सूत्रकार ने सूचित किया है कि जो स्थविर सेवा करने मे निपुण थे उनके साथ ही श्री गौतम मुनि ने शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण किया था।

"सलेहणाए" के रूप मे पठित सलेखना शब्द का अर्थ है-अन्तिम समय मे किया गया शरीर और कषाय आदि को कृश करनेवाला तप-विशेष। सलेखना से पहले सूत्रकार ने **"समासियाए"** यह पद दिया है। इसका अर्थ है-एक मास की।

"सिद्धे ५" के रूप मे दिया गया ५ का अक शेष—बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वात, सर्वदुखप्रहीण, इन चार विशेषणो का बोधक है। जो आत्मा कृतकृत्य हो चुकी है, उसे सिद्ध कहा जाता है, लोक-अलोक समस्त पदार्थों का ज्ञाता आत्मा बुद्ध, समस्त कर्मों का आत्यन्तिक नाश करनेवाला आत्मा मुक्त, कर्मों से उत्पन्न विकारो को सर्वथा नष्ट करनेवाला आत्मा परिनिर्वात और शारीरिक एव मानसिक सभी दुखो से छुटकारा प्राप्त करनेवाला आत्मा सर्व-दुख-प्रहीण कहलाता है। गौतमकुमार भी बुद्ध, मुक्त परिनिर्वात, सर्वदुख-प्रहीण एव सिद्ध हो गये।

* कृतयोग्यादिभि स्थविरै सार्द्धम्।

गौतम कुमार के जीवन से ग्रहण करने योग्य भाव यही है, कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये ससार की ममता का त्याग करना ही पडता है। मोह-ममता का परित्याग किये बिना जीवन के भविष्य को समुज्ज्वल नही बनाया जा सकता, अत मोक्षाभिलाषी साधक को वैभव का परित्याग करके मोहमाया के बन्धनो को तोड कर सयम ग्रहण करना आवश्यक है। छह काया के जीवो की सर्वतोभावेन रक्षा करना, सयम की आराधना के साथ-साथ ज्ञान की आराधना करना और तपोऽनुष्ठान के द्वारा आत्म-शुद्धि मे प्रवृत्त होना सयम के लिये अत्यावश्यक है। जीवन के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने का यही सर्वोत्तम साधन है।

गौतम कुमार के जीवन-वृत्तो का वर्णन करने के अनन्तर अब सूत्रकार अन्य राजकुमारो के जीवन-वृत्तो का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं पढम-वग्ग-पढम-अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। एव जहा गोयमे तहा सेसा वण्हिपिया धारिणी माता समुद्दे, सागरे, गभीरे, थिमिए, अयले, कपिल्ले, अक्खोभे, पसेणति, विण्हुए, ए ए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।

छाया—एव खलु जबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्याङ्गस्य अन्तकृद्दशानां प्रथम-वर्ग-प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त। एव यथा गौतम तथा शेषा, वृष्णि पिता, धारिणी माता। समुद्र, सागर, स्तिमित, अचल, काम्पिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित्, विष्णु। एते एकगमा। प्रथमो वर्ग, दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।

पदार्थ—**जबू**—हे जम्बू !, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय अर्थ मे है, **समणेण**—श्रमण, **जाव**—यावत्, **सपत्तेण**—मोक्ष को प्राप्त महावीर स्वामी ने, **अट्ठमस्स**—आठवें, **अगस्स**—अग, **अतगडदसाण**—अन्तगड दशा के, **पढम वग्ग**—प्रथम वर्ग के, **पढमअज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का, **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णत्ते**—कथन किया है, **एव**—इसी प्रकार, **जहा**—जैसे, **गोयमे**—गौतम मुनि का वर्णन है, **तहा**—वैसे ही, **सेसा**—शेष राजकुमारो का वर्णन जानना चाहिये, **वण्हि पिया**—उन सब राजकुमारो के पिता वृष्णि थे, **धारिणी माता**—धारिणी माता थी।

कुमारो के नाम ये हैं—

समुद्दे—समुद्र कुमार, **सागरे**—सागरकुमार, **गभीरे**—गभीर कुमार, **थिमिए**—स्तिमित कुमार, **अयले**—अचल कुमार, **कपिल्ले**—कम्पिल्य कुमार, **अक्खोभे**—अक्षोभ कुमार, **पसेणती**—

प्रसेनजित कुमार, **विण्हुए**—विष्णु कुमार, **ए ए**—ये सब राजकुमार, **एगगमा**—समान वर्णनवाले (गौतम कुमार के अनुगामी) बने। इस प्रकार—**पढमो**—प्रथम, **वग्गो**—वर्ग के, **दस**—दश, **अज्झयणा**—अध्ययन, **पण्णत्ता**—कथन किए गए है।

मूलार्थ—सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू से कहने लगे कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त भगवान महावीर तक तीर्थंकरो ने आठवे अ ग अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कथन किया है।

जिस प्रकार गौतमकुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, काम्पिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु इन नव अध्ययनो का अर्थ भी समझ लेना चाहिये। सबके पिता महाराज वृष्णि थे। माता धारिणी थी। सब का वर्णन एक जैसा है। इस प्रकार दस अध्ययनो के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे दो बातो का वर्णन किया गया है। एक है अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का उपसहार। इसी उपसहार को सूत्रकार ने **"एव खलु जम्बू !"** आदि पदो द्वारा प्रकट किया है।

"समणेण जाव सपत्तेण" यहा पठित जाव—यावत् पद से ससूचित पदो का विवरण पीछे किया जा चुका है।

प्रस्तुत सूत्र मे दूसरी बात है—समुद्र आदि नव राजकुमारो के जीवन चरित। इन कुमारो के जीवन-चरितो का वर्णन भी सूत्रकार ने **"एव जहा गोयमे तहा—"** के रूप मे साकेतिक शैली मे कर दिया है।

गौतम कुमार द्वारिकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारिणी था। इनके समुद्र कुमार, सागर कुमार, गम्भीर कुमार, स्तिमित कुमार, अचल कुमार, काम्पिल्य कुमार, अक्षोभ कुमार, प्रसेनजित् कुमार और विष्णु कुमार ये नौ भाई और थे। ये दसो ही सहोदर भाई थे। जिस प्रकार श्री गौतम कुमार ने भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षा ली, तप किया, अनशन अदि द्वारा मोक्ष प्राप्त किया, ठीक इसी प्रकार इन नौ भाइयो ने भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे मोहमाया के बन्धनो को तोडकर दीक्षा अगीकार की थी। गौतम के ही समान इन्होने भी तथारूप स्थविरो के पास ११ अगो का अध्ययन किया था और भिक्षुप्रतिमाओ का आचरण तथा गुणरत्नसम्वत्सर तप का अनुष्ठान करने के अनन्तर शत्रुञ्जय पर्वत पर चढकर अनशन करके मोक्ष गति को प्राप्त किया था।

इन सबके जीवन भी मेघकुमार, महाबल एव स्कन्धक मुनि के ही समान त्याग और सयम से सम्पन्न एव तपोमय थे।

गौतमकुमार अन्तकृत केवली हुए है। इन्होने जीवन के अन्तिम भाग मे केवल ज्ञान को प्राप्त किया और तदनन्तर ये मुक्ति मे विराजमान हो गए। इनकी तरह ही समुद्रकुमार आदि शेष राजकुमार भी अन्तकृत केवली हुए है। सभी ने अन्तिम अवस्था मे कैवल्य-विभूति से विभूषित होकर निर्वाण पद प्राप्त किया है।

"पढमो वग्गो दस अज्झयणा पण्णत्ता" इन शब्दो के द्वारा सूत्रकार ने अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग का तथा प्रथम वर्ग के दस अध्ययनो का उपसहार कर दिया है। इसका भाव है—सुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामी से कहते है कि 'हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड-सूत्र के प्रथम वग मे वर्णित दस अध्ययनो का विवेचन किया है।

अन्य सूत्रो के परिशीलन से पता चलता है कि अध्ययन की समाप्ति पर सूत्रकार ने उस समाप्ति को **"त्ति बेमि"** इन पदो द्वारा प्रकट किया है। इसका अर्थ है—'जम्बू! मैं इस प्रकार कहता हूँ भगवान से जो मैने सुना है उसका ही विवेचन मैने किया है। अपनी ओर से मैंने कुछ नही कहा है। प्रस्तुत सूत्र मे **"त्ति बेमि"** ये पद न देकर सूत्रकार ने **"पढमो वग्गो"**—इन पदो द्वारा प्रथम वर्ग और उसके दस अध्ययनो को समाप्त कर दिया है। यह सूत्रकार की नवीन शैली मात्र है, वस्तुत इसे भी श्रीसुधर्मा स्वामी ने उसी रूप मे कहा था जैसा कि उन्होने भगवान महावीर से सुना था।

समाप्त प्रथमो वर्ग

द्वितीय वर्ग

महाराज अन्धक वृष्णि की पत्नी देवी धारिणी के आठ पुत्रों द्वारा मुनि-दीक्षा ग्रहण करने के वृत्तान्त को उपस्थित करते हुए सूत्रकार कहते हैं —

मूल—जइ ण दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ । तेण कालेणं तेण समएणं बारवतीए णगरीए वण्हिपिया धारिणी माया—

अक्खोभसागरे खलु समुद्द हिमवंत अचलनामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचन्दे चेव अट्ठमते ॥ १ ॥

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्म सोलसवासाइ परिआओ । सेत्तुंजे मासियाए सलेहणाए सिद्धी ॥ २ ॥

छाया—यदि द्वितीयस्य वर्गस्य उत्क्षेपक (उत्क्षेप) । तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां वृष्णि पिता धारिणी माता—

अक्षोभ सागर खलु समुद्रहैमवन्त अचलनामा च ।
धरणश्च पूरणोऽपि च अभिचन्द्रश्चैवाऽष्टम ॥ १ ॥

यथा प्रथमो वर्ग तथा सर्वाणि अष्टाध्ययनानि, गुणरत्नतप कर्म षोडशवर्षाणि पर्याय । शत्रुञ्जये मासिक्या संलेखनया सिद्धि ॥

पदार्थ—**जइ**—यदि, **ण**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थ है, **दोच्चस्स**—द्वितीय, **वग्गस्स**—वर्ग का, **उक्खेवओ**—उत्क्षेप जानना, **तेण कालेण**—उस काल तथा, **तेण समएण**—उस समय, **बारवतीए**—द्वारिका, **नगरीए**—नगरी मे, **वण्हिपिया**—वृष्णि पिता, **धारिणी माया**—धारिणी माता, **अक्खोभ**—अक्षोभकुमार, **सागरे**—सागरकुमार, **खलु**—निश्चय ही, **समुद्द**—समुद्र कुमार, **हिमवन्त**—हैमवन्तकुमार, **य**—और; **अचलनामे**—अचल नामक कुमार, **य**—और, **धरणे**—धरण कुमार, **य**—तथा, **पूरणे वि**—पूर्ण कुमार भी, **य**—और, **एव**—निश्चय अर्थ मे है, **अट्ठमते**—आठवा, **अभिचन्दे**—अभिचन्द्रकुमार ।

जहा—जैसे, **पढमो**—प्रथम, **वग्गो**—वर्ग का वर्णन किया है, **तहा**—वैसे ही, **सव्वे**—सभी, **अट्ठ अज्झयणा**—आठ अध्ययनो का वर्णन जानना, **गुणरयणतवोकम्म**—गुणरत्न तप का आराधन किया, **सोलसवासाइं**—सोलह वर्ष की, **परिआओ**—दीक्षा पाली, **सेत्तुजे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **मासियाए**—एक महीने की, **सलेहणाए**—सलेखना द्वारा, **सिद्धी**—मोक्ष प्राप्त किया ।

मूलार्थ—द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप समझ लेना। हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के द्वितीय वर्ग का अर्थ इस प्रकार वर्णन किया है—

उस काल, उस समय मे द्वारिका नगरी थी। महाराज वृष्णि राज्य करते थे। रानी का नाम धारिणी था। इन के आठ पुत्र थे—अक्षोभकुमार, सागरकुमार, समुद्रकुमार, हैमवन्तकुमार, अचलकुमार, धरणकुमार, पूर्णकुमार, और अभिचन्द्रकुमार।

जैसे प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इन के आठ अध्ययनो का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। इन्होने भी 'गुण-रत्न-सवत्सर-तप' का आराधन किया और १६ वर्ष का सयम पालन कर के अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास की सलेखना द्वारा सिद्ध पद प्राप्त किया।

व्याख्या—जिस प्रकार प्रथम वर्ग मे गौतम आदि राजकुमारों के साधना-प्रधान जीवनो का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार प्रस्तुत द्वितीय वर्ग मे भी अक्षोभ आदि राजकुमारो के त्याग एव वैराग्य प्रधान जीवन-चरितो का सकलन किया गया है।

सूत्रकार ने—**"जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा"** ये इस वाक्य द्वारा यह ध्वनित कर दिया है कि प्रथम वर्ग मे प्रतिपादित राजकुमारों के जीवन-चरित के समान ही इनका भी जीवन चरित है। नामो की भिन्नता के अतिरिक्त विशेष अन्तर नही है।

सूत्रकार ने—**"सोलस वासाइ परिआओ"** इस वाक्य द्वारा इतना अन्तर अवश्य बताया है कि प्रथम वर्ग मे वर्णित राजकुमारो की दीक्षापर्याय १२ साल की थी, प्रस्तुत वर्ग मे वर्णित राजकुमारो की दीक्षापर्याय १६ वर्षों की थी। दीक्षा-पर्याय की स्थिति-गत भिन्नता को छोड कर शेष सभी बातें—माता का स्वप्नदर्शन, कुमारो का जन्म, बाल-जीवन, कलाभ्यास, यौवन, पाणिग्रहण प्रासाद मे भोगोपभोग, भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थिति, वैराग्य और अन्त में भगवान के पास दीक्षा शास्त्र-स्वाध्याय भिक्षु-प्रतिमा तथा गुणरत्न सम्वत्सर तप का आराधन आदि प्रथमवर्ग में वर्णित राजकुमारों जैसा ही था, इसीलिये सूत्रकार ने इन राजकुमारो के जीवन-वृत्तो का विस्तार से वर्णन न करके सक्षेप मे साकेतिक वर्णन कर दिया है।

ये आठो ही राजकुमार महाराज अन्धकवृष्णि और धारिणी माता के ही पुत्र थे। सभी ने भगवान नेमिनाथ के चरणो मे उपस्थित होकर दीक्षा अगीकार की थी। सभी ने इन्हीकी छत्रछाया मे ज्ञान दर्शन और चारित्र के सम्यक् अनुष्ठान से आत्म-शुद्धि द्वारा निर्वाण पद प्राप्त किया था। इसी कारण इन्हें अन्तकृत केवली कहा जाता है।

"दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ" का अर्थ है द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप जान लेना। उत्क्षेप का अर्थ है—प्रस्तावना। प्रस्तावना आरभ, प्राक्कथन, भूमिका, एव वक्तव्य विषय की पूर्व सूचना को कहा जाता है। द्वितीय वर्ग की प्रस्तावना शास्त्रीय शब्दो मे इस प्रकार हैं—

द्वितीय वर्ग

महाराज अन्धक वृष्णि की पत्नी देवी धारिणी के आठ पुत्रों द्वारा मुनि-दीक्षा ग्रहण करने के वृत्तान्त को उपस्थित करते हुए सूत्रकार कहते हैं —

मूल—जइण दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ । तेण कालेणं तेण समएण बारवतीए णगरीए वण्हिपिया धारिणी माया—

अक्खोभसागरे खलु समुद्द हिमवत अचलनामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचन्दे चेव अट्ठमते ।। १ ।।

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्म सोलसवासाइ परिआओ । सेत्तुंजे मासियाए सलेहणाए सिद्धी ।। २ ।।

छाया—**यदि द्वितीयस्य वर्गस्य उत्क्षेपक (उत्क्षेप) । तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्या नगर्या वृष्णि पिता धारिणी माता—**

अक्षोभ सागर खलु समुद्रहैमवन्त अचलनामा च ।
धरणश्च पूरणोऽपि च अभिचन्द्रश्चैवाअष्टम ।। १ ।।

यथा प्रथमो वर्ग तथा सर्वाणि अष्टाध्ययनानि, गुणरत्नतप कर्म षोडशवर्षाणि पर्याय । शत्रुञ्जये मासिक्या संलेखनया सिद्धि ।।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **ण**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थ है, **दोच्चस्स**—द्वितीय, **वग्गस्स**—वर्ग का, **उक्खेवओ**—उत्क्षेप जानना, **तेण कालेण**—उस काल तथा, **तेण समएण**—उस समय, **बारवतीए**—द्वारिका, **नगरीए**—नगरी मे, **वण्हिपिया**—वृष्णि पिता, **धारिणी माया**—धारिणी माता, **अक्खोभ**—अक्षोभकुमार, **सागरे**—सागरकुमार, **खलु**—निश्चय ही, **समुद्द**—समुद्र कुमार, **हिमवन्त**—हैमवन्तकुमार, **य**—और; **अचलनामे**—अचल नामक कुमार, **य**—और, **धरणे**—धरण कुमार, **य**—तथा, **पूरणे वि**—पूर्ण कुमार भी, **य**—और, **एव**—निश्चय अर्थ मे है, **अट्ठमते**—आठवा, **अभिचन्दे**—अभिचन्द्रकुमार ।

जहा—जैसे, **पढमो**—प्रथम, **वग्गो**—वर्ग का वर्णन किया है, **तहा**—वैसे ही, **सव्वे**—सभी, **अट्ठ अज्झयणा**—आठ अध्ययनो का वर्णन जानना, **गुणरयणतवोकम्म**—गुणरत्न तप का आराधन किया, **सोलसवासाइ**—सोलह वर्ष की, **परिआओ**—दीक्षा पाली, **सेत्तुंजे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **मासियाए**—एक महीने की, **सलेहणाए**—सलेखना द्वारा, **सिद्धी**—मोक्ष प्राप्त किया ।

मूलार्थ— द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप समझ लेना। हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के द्वितीय वर्ग का अर्थ इस प्रकार वर्णन किया है—

उस काल, उस समय मे द्वारिका नगरी थी। महाराज वृष्णि राज्य करते थे। रानी का नाम धारिणी था। इन के आठ पुत्र थे—अक्षोभकुमार, सागरकुमार, समुद्र-कुमार, हैमवन्तकुमार, अचलकुमार, धरणकुमार, पूर्णकुमार, और अभिचन्द्रकुमार।

जैसे प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इन के आठ अध्ययनो का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। इन्होने भी 'गुण-रत्न-सवत्सर-तप' का आराधन किया और १६ वर्ष का सयम पालन कर के अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास की सलेखना द्वारा सिद्ध पद प्राप्त किया।

व्याख्या—जिस प्रकार प्रथम वर्ग मे गौतम आदि राजकुमारों के साधना-प्रधान जीवनो का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार प्रस्तुत द्वितीय वर्ग मे भी अक्षोभ आदि राजकुमारो के त्याग एव वैराग्य प्रधान जीवन-चरितो का सकलन किया गया है।

सूत्रकार ने—"**जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा**" ये इस वाक्य द्वारा यह ध्वनित कर दिया है कि प्रथम वर्ग मे प्रतिपादित राजकुमारों के जीवन-चरित के समान ही इनका भी जीवन चरित है। नामों की भिन्नता के अतिरिक्त विशेष अन्तर नही है।

सूत्रकार ने—"**सोलस वासाइ परिआओ**" इस वाक्य द्वारा इतना अन्तर अवश्य बताया है कि प्रथम वर्ग मे वर्णित राजकुमारो की दीक्षापर्याय १२ साल की थी, प्रस्तुत वर्ग मे वर्णित राजकुमारो की दीक्षापर्याय १६ वर्षों की थी। दीक्षा-पर्याय की स्थिति-गत भिन्नता को छोड कर शेष सभी बात माता का स्वप्नदर्शन, कुमारो का जन्म, बाल-जीवन, कलाभ्यास, यौवन, पाणिग्रहण प्रासाद मे भोगोपभोग, भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थिति, वैराग्य और अन्त मे भगवान के पास दीक्षा शास्त्र-स्वाध्याय भिक्षु-प्रतिमा तथा गुणरत्न सम्वत्सर तप का आराधन आदि प्रथमवर्ग मे वर्णित राजकुमारो जैसा ही था, इसीलिये सूत्रकार ने इन राजकुमारो के जीवन-वृत्तो का विस्तार से वर्णन न करके सक्षेप मे साकेतिक वर्णन कर दिया है।

ये आठो ही राजकुमार महाराज अन्धकवृष्णि और धारिणी माता के ही पुत्र थे। सभी ने भगवान नेमिनाथ के चरणों मे उपस्थित होकर दीक्षा अगीकार की थी। सभी ने [illegible] ज्ञान दर्शन और चारित्र के सम्यक् अनुष्ठान से आत्म-शुद्धि द्वारा निर्वाण पद प्राप्त किया था। इसी कारण इन्हें अन्तकृत केवली कहा जाता है।

"**दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ**" का अर्थ है द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप जान लेना। उत्क्षेप का अर्थ है—प्रस्तावना। प्रस्तावना आरभ, प्राक्कथन, भूमिका, एव वक्तव्य विषय की पूर्व सूचना को कहा जाता है। द्वितीय वर्ग की प्रस्तावना शास्त्रीय शब्दो में इस प्रकार है—

'जइण भते ! समणेम जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स पढमवग्गस्स य अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते। वग्गस्स अन्तगडदसाण समणेणं जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते । एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेण समएण समणेण जाव सपत्तेण दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता । तजहा-अक्खोभ सागरे खलु समुद्द हिमवन्त अयलणामे य । धरणे य पूरणे य अभिचदे चेव अट्ठमए ।

जम्बू अनगार सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अग के प्रथम वर्ग का यह कथन किया है तो श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने आठवें अग अन्तगड सूत्र के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ बताया है । उत्तर मे सुधर्मा स्वामी बोले—'जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन बताए हैं उनके नाम ये हैं—

अक्षोभ, सागर, समुद्र, हैमवन्त, अचल, धरण, पूर्ण, और अभिचन्द्र । द्वितीय वर्ग की समाप्ति पर किसी-किसी प्रति मे निम्नोक्त पाठ देखने मे आता है—

'एव खलु जंबू ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

हे जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने अष्टम अग के द्वितीय वग का अर्थ समझाया है । इस अश को शास्त्रीय भाषा मे निक्षेप कहते है । निक्षेप का अर्थ है—समाप्ति, किसी पुस्तक का या ग्रन्थ का अन्तिम भाग जिस मे उसका उद्देश्य अथवा परिणाम सक्षेप मे बताया गया है ।

यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र के प्रथमवर्ग के दस अध्ययनो मे समुद्र, सागर और अक्षोभ नामक जिन राजकुमारो की जीवनी वर्णित हुई है, इसी सूत्र के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययनो मे वर्णित अक्षोभ, सागर और समुद्र ये राजकुमार वही थे या ये उन से पृथक् हैं ?

सूत्रकार ने **"वण्हि पिया धारिणी माया"** ये पद देकर दोनो वर्गों के राजकुमारो के माता-पिता एक ही अभिव्यक्त कर दिए है । ऐसी दशा मे इन राजकुमारो को एक ही समझना चाहिए या भिन्न भिन्न ?

माता-पिता तथा राजकुमारो की नामगत समानता को देख कर उक्त आशका उत्पन्न होनी स्वाभाविक है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि दोनो वर्गों मे वर्णित समान नाम वाले राजकुमार एक नही थे, प्रत्युत ये सभी भिन्न थे, क्योकि लोक-व्यवहार मे देखा गया है कि एक नगरी मे समान नामवाले माता-पिता के एक जैसे नामवाले पुत्र भी होते हैं । इसी तरह द्वारिका नगरी मे वृष्णि राजा और माता धारिणी के समान नामवाले अन्य वृष्णि और धारिणी नामक दम्पति भी थे, इनके अक्षोभ, सागर और समुद्र नामक एक ही सज्ञावाले पुत्र थे । ये सभी भगवान के पवित्र चरणो मे दीक्षित हो गये थे । अन्तर केवल इतना है कि प्रथम वर्गस्थ राजकुमारो की दीक्षा पर्याय १२ वर्ष की थी, जबकि द्वितीय वर्गीय राजकुमारो की १६ वर्षों की । शेष साधना इन सब की एक जैसी है ।

यदि ये राजकुमार एक ही होते तो सूत्रकार प्रथमवर्ग मे वर्णन करने के अनन्तर इनका दूसरी वार द्वितीय वर्ग मे वर्णन न करते ।

समाप्त. द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

तृतीय वर्ग मे तेरह जीवन-चरितो का वर्णन प्रस्तुत करते हुए सूत्रकार भूमिका रूप मे कहते है —

मूल——जइ ण तच्चस्स उक्खेवओ । एव खलु जबू ! तच्चस्स वग्गस्स अतगडदसाण तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

१–अणीयसे, २–अणतसेणे, ३–अणिहय, ४–विऊ, ५–देवजसे, ६–सत्तुसेणे, ७-सारणे, ८–गए, ९–सुमुहे, १०–दुम्मुहे, ११–कूवए, १२–दारुए, १३–अणादिट्ठी ।

जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण तच्चस्स वग्गस्स अतगडदसाण तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तच्चस्स ण भते ! वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण भद्दिलपुरे णाम नगरे होत्था, वण्णओ । तस्स ण भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए सिरिवणे णाम उज्जाणे होत्था। वण्णओ । जितसत्तु राया । तत्थ ण भद्दिलपुरे णयरे नागे नाम गाहावती होत्था । अड्ढे० । तस्स ण नागस्स गाहावतिस्स सुलसा नाम भारिया होत्था । सुमाला जाव सुरूवा ॥१॥

छाया—यदि खलु तृतीयस्य उत्क्षेपक । एव खलु जबू ! तृतीयस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशाना त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१–अनीयस , २–अनन्तसेन , ३–अनिहत , ४–विदु (विद्वान्), ५–देवयश , ६–शत्रुसेन , ७–सारण । ८–गज , ९–सुमुख , १०–दुर्मुख , ११–कूपक , १२–दारुक , १३–अनादृष्टि ।

यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन तृतीयस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशानां त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तृतीयस्य भदन्त ! वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अन्तकृद्दशाना कोऽर्थ प्रज्ञप्त ।

एव खलु जबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये भद्दिलपुर नाम नगरमभूत । वर्णक । तस्य भद्दिलपुरस्य उत्तरपौरस्त्ये दिग्विभागे श्रीवन नामोद्यानमभूत् । वर्णक । जितशत्रु राजा । तत्र

भद्दिलपुरे नगरे नागो नाम्ना गृहपतिरभूत् । आढ्य ० । तस्य नागस्य गृहपते सुलसा नाम्नी भार्याऽभूत् । सुकुमारा यावत् सुरूपा ।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **णं**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थ है, **तच्चस्स**—तृतीय वर्ग के, **उक्खेवओ**—उत्क्षेप समझ लेना, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू !**— जम्बू ! **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग के, **अतगडदसाण**—अन्तगडसूत्र के, **तेरस**—तेरह, **अज्झयणा**—अध्ययन, **पण्णत्ता**—कथन किए हैं, **तजहा**—जैसे, **अणीयसे**—अनीयस कुमार, **अणतसेणे**—अनन्तसेन कुमार, **अणिहय**—अनिहत कुमार, **विऊ**—विद्वत् कुमार, **देवजसे**—देवयश कुमार । **सत्तुसेणे**—शत्रुसेन कुमार, **सारणे**—सारण कुमार, **गए**—गज कुमार, **सुमुहे**—सुमुख कुमार, **दुम्मुहे**—दुर्मुख कुमार, **कूवए**—कूपक कुमार, **दारुए**—दारुक कुमार, **अणादिट्ठी**—अनादृष्टि कुमार, ।

जइ—यदि, **भते !**—हे भगवन् ! **समणेण** -श्रमण, **जाव**—यावत्, **सपत्तेण**—मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने, **तच्चस्स**—तृतीय, **वग्गस्स**—वर्ग के, **अतगडदसाण**—अन्तगडसूत्र के, **तेरस**—तेरह, **अज्झयणा**—अध्ययन, **पण्णत्ता**—कथन किए हैं, **भते**—हे भगवन् ! **तच्चस्स**—तृतीय, **वग्गस्स**—वर्ग के, **पढम अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन के, **के**—क्या, **अट्ठे**—अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है ।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू !**—हे जम्बू ! **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **भद्दिलपुरे**—भद्दिलपुर, **नाम**—नाम का, **नगरे**—नगर, **होत्था**—था, **वण्णओ**—औपपातिक सूत्र के अनुसार उस नगर का वर्णन जानना, **तस्स भद्दिलपुरस्स**—उस भद्दिलपुर के, **उत्तरपुरच्छिमे**—ईशान कोण के, **दिसिभाय**—दिग्भाग मे, **सिरिवणे**—श्रीवन, **नाम**—नामक, **उज्जाणे**—उद्यान (बाग), **होत्था**—था, **वण्णओ**—औपपातिक सूत्र के अनुसार इस उद्यान का वर्णन भी जान लेना चाहिए, (वहा), **जियसत्तू राया**—जितशत्रु नामक राजा थे, **तस्स**—उस, **भद्दिलपुरे णयरे**—भद्दिलपुर नगर मे, **नागे नाम**—नाग नामक, **गाहावती**—गाथापति, **होत्था**—था, **अड्ढे-आढ्य**—धनी था, **तस्स नागस्स**—उस नाग, **गाहावतिस्स**—गाथापति की, **सुलसा नाम**—सुलसा नामवाली, **भारिया**—भार्या—स्त्री, **होत्या**—थी, **सुमाला**—सुकुमारी थी, **जाव**—यावत्, **सुरूवा**—रूपवती थी ।

मूलार्थ—श्रद्धेय जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कथन किया है तो भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तीसरे वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस पर सुधर्मा स्वामी कहने लगे—

जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन बताए हैं, जैसे कि—

अनीयस कुमार, अनन्तसेन कुमार, अनिहत कुमार, विद्वत् कुमार, देवयश कुमार, शत्रुसेन कुमार, सारण कुमार, गज कुमार, सुमुख कुमार, दुर्मुख कुमार, कूपक कुमार, दारुक कुमार और अनादृष्टि कुमार।

ये तेरह अध्ययन है। इनमे इन्ही नामवाले राजकुमारो का वर्णन किया गया है।

हे भगवन्! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के तेरह अध्ययन बताये है तो भगवन्! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगड-सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है?

सुधर्मा स्वामी बोले—'हे जम्बू! उस काल मे उस समय मे एक भद्दिलपुर नाम का नगर था। उसके ईशानकोण (उत्तर-पूर्व दिशा का मध्यभाग) मे श्रीवन नामक एक उद्यान था। उस नगर मे महाराज जितशत्रु राज्य किया करते थे। उसी नगर मे नाग नामक एक गाथापति—गृहपति निवास किया करता था, वह महान् धनी था। उस गृहपति की सुलसा नाम की एक भार्या थी। सुलसा अत्यन्त सुकोमल और रूपवती थी।

व्याख्या—इस तृतीय वर्ग मे तेरह अध्ययन है। तेरह अध्ययनो मे तेरह राजकुमारो के जीवन-चरित वर्णित किये गये हैं। राजकुमारो के नाम पर ही इन अध्ययनो के नाम रखे गये हैं। उदाहरणार्थ प्रथम अध्ययन मे राजकुमार अनीयस कुमार का वर्णन हुआ है, इसलिये इस अध्ययन का नाम भी अनीयस कुमार रखा गया है। इसी प्रकार शेष अध्ययनो के नामकरण भी किए गये हैं।

प्रस्तुत सूत्र का भाव सरल एव स्पष्ट है और वह मूलार्थ के द्वारा ही स्पष्ट हो चुका है। अत हम केवल सूत्रगत विशेष वाक्यो को ही स्पष्ट करने का यत्न करेगे।

"तच्चस्स उक्खेवओ" इस वाक्य द्वारा तृतीय वर्ग के उत्क्षेप की ओर सकेत किया गया है। उत्क्षेप का अर्थ है—प्रस्तावना। प्रस्तुत वर्ग की प्रस्तावना भी मूलार्थ के रूप मे स्पष्ट हो चुकी है।

तृतीय वर्ग के प्रस्तुत तेरह अध्ययनो के नामो मे पाठ भेद मिलता है। एक प्रति मे पाठ है—

१—अणीयसेणे, २—अणतससेणे, ३—अजियसेणे, ४—अणिहयविऊ, ५—देवसेणे, ६—सत्तुसेणे, ७—सारणे, ८—गए, ९—सुमुहे, १०—दुम्मुहे, ११—कूवए, १२—दारुए, १३—अणादिट्ठी।

और दूसरी प्रति का पाठ है —

अणीयसे, **अणतसेणे**, **अणिहय**, **विऊ**, **देवसेणे**, **सत्तुसेणे**, **सारणे**, **गए**, **सुमुहे**, **दुम्मुहे**, **कूवए**, **दारुए**, **अणाविट्ठी** ।

आगमज्ञ महापुरुषो को इस दिशा मे ध्यान देना चाहिए कि इस अध्ययन के नामो मे यह अन्तर क्यो है ?

"समणेण जाव सम्पत्तेण" इस वाक्य मे पठित 'जाव' पद का भाव भी वही है जो पूर्व सूत्रो मे वर्णित किया गया है।

"नगरे होत्था वण्णओ" इस वाक्य के 'वण्णओ' शब्द द्वारा सूचित नगर-वर्णन इस प्रकार है —

"रिद्धत्थिमिय-समिद्धे पमुइय जणजाणवये" आइण्णजणमणुस्से हलसय-सहस्स-संकिट्ठ-विकिट्ठ-लट्ठ-पण्णत्त-सेउसीमे कुक्कुट-संडेय-गामपउरे, उच्छु जव-सालि-कलिये गोमहिस-गवेलगप्पभूते, आयार-वन्त-चेइय जुवइ-विविह-सन्निविट्ठ बहुले, उक्कोडिय-गाय-गठिय-भेय-भड तक्कर-खड-रक्खरहिए खेमे निरुवद्दवे सुभिक्खे वीसत्थसुहावासे, अणेगकोडि-कुटुम्बियाइण्ण-णिव्वुयसुहे णड णट्टग जल्ल मल्ल-मुट्ठिय-वेलबय-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लख-मख-तूणइल्ल-तु ब-वीणिय अणेग - तालायराणुचरिये आरामुज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय वप्पिणी गुणोववेए, नदण-वण सन्निभप्पगासे उव्विद्ध-विउल-गभीर-खाय-फलिहे, चक्कगय-भुसु डि-ओरोह-सयग्घि-जमल-कवाड-घणदुप्पवेसे, धणु-कुडिल-वक-पागार-परिक्खित्ते, कविसीसग-वट्टरइय-सठिय-विरायमाणे अट्टालय चरिय दारगोपुर-तोरण-उण्णय-सुविभत्त-रायमग्गे, छेयायरिय-रइय-दढफलिहे-इ दकीले, विवणि-वणिच्छेत्त-सिप्पियाइण्णा णिव्वुय सुहे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-पणियावण-विविह वत्थु-परि-मण्डिए सुरम्मे नरवइ-पविइण्ण-महिवइ पहे, अणेगवर-तुरग-मत्त-कुजर-रह-पहकर, सीय-सदमाणीयाइण्ण-जाण जुग्गे विमउल णव णलिणिसोभियजले, पण्डुर-वर-भवण-सण्णिमहिये उत्ताण-णयण-पेच्छणिज्जे, पासादीये दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

वह नगर अनेक समृद्ध भवनो से युक्त, स्तिमित, स्वचक्र और पर-चक्र के भय से विमुक्त और धन-धान्य से परिपूर्ण था। उस मे रहनेवाले लोग तथा जानपद—बाहिर से आए हुए लोग, बहुत प्रसन्न रहते थे। वह जन-सख्या की दृष्टि से भी सम्पन्न था। उस की सीमाओ पर दूर-दूर तक लाखो हलो द्वारा खेतो को अच्छी तरह जोता जाता था, वे खेत किसानो के अभिलषित फल के देने मे समर्थ और बीज बोने के योग्य बनाए जाते थे। उस मे कुक्कुटो-मुर्गों और साडो के बहुत से समूह रहते थे। वह ईख, जो और शालि आदि धान्यो से भरपूर था। उसमे बहुत सी गाँए, भैसे और भेडे रहती थी। उसमे बहुत से सुन्दर चैत्यालय और वेश्याओ के मुहल्ले थे। उस नगर मे कोई रिशवत लेनेवाला, गाठ कतरनेवाला, बलात्कार करनेवाला, चोर और कर वसूल करनेवाला न था।

वह नगर क्षेमरूप था, अत वहा किसी का अनिष्ट नही होता था और वह उपद्रवो से रहित था। उसमे भिक्षुओ को भिक्षा की कोई कमी नही थी। वह नगर विश्वस्त, निर्भय अथवा धैर्यवान लोगो के लिये सुखरूप आवासवाला था, अनेक प्रकार के कुटुम्बियो और सन्तुष्ट लोगो के निवास के कारण सुखरूप था। नाटक करनेवाले, नृत्य करनेवाले, रस्से पर खेल करनेवाले अथवा

राजा की स्तुति करनेवाले चारण, मल्ल, पहलवान, मौष्टिक—मुष्टियुद्ध करनेवाले, विदूषक, कथा कहनेवाले तैरनेवाले, रसिया गानेवाले, ज्योतिषी, वासो पर खेल करनेवाले, चित्र दिखा कर भिक्षा मागनेवाले, तूण नामक वाजा बजानेवाले, वीणा बजानेवाले, ताली बजा कर नाचनेवाले आदि लोग उस नगर मे रहते थे। उत्सवो के लिये उपयुक्त आराम-बागो उद्यानो, वाटिकाओ कूओ, तालावो, वावडियो और खेतो से परिपूर्ण वह नगर सुशोभित था।

वह नगर मेरु पर्वत पर स्थित नन्दन वन के समान शोभायमान था। उस विशाल नगर के चारो ओर एक गहरी खाई थी जोकि ऊपर से चौडी और नीचे से सकुचित थी चक्र, गदा, भुशुण्डी (बन्दूक), अवरोध अर्थात् मध्य के कोट शतघ्नी (तोप), तथा छिद्र-रहित कपाटो के कारण उस नगर मे प्रवेश करना बडा कठिन था अर्थात् शत्रुओ के लिये वह दुष्प्रवेश था। वक्र धनुष से भी अधिक वक्र प्राकार-कोट से वह नगर परिवेष्टित था। वह नगर अनेक सुन्दर कगूरो से मनोहर था। ऊची अटारियो वाले कोट के भीतर आठ हाथ के मार्गो, ऊचे-ऊचे कोट के द्वारो, गोपुरो तोरण द्वारो और चौडी-चौडी सडकोवाला वह नगर था। उस नगर का अर्गल (वह लकडी जिसे कपाट बन्द करके पीछे मे आडी लगा देते हैं) इन्द्रकील (नगर के दरवाजो का एक अवयव जिसके आधार से दरवाजे के दोनो किवाड बन्द रह सके) दृढ था और निपुण शिल्पियो द्वारा उनका निर्माण किया गया था। वहा पर बहुत से शिल्पी निवास किया करते थे, जिनसे वहा के लोगो की प्रयोजन सिद्धि हो जाती थी, इसीलिये वह नगर लोगो के लिये सुखप्रद था।

शृ घाटक अर्थात् त्रिकोण मार्गो, त्रिको (जहा तीन रास्ते मिलते है) चतुष्को (चौराहो), चत्वरो (जहा चार से भी अधिक रास्ते मिलते हो) और नाना प्रकार के नर्तन आदि के बाजारो से वह नगर अति रमणीय प्रतीत होता था।

वहा का राजा इतना प्रभावशाली था कि उसने अन्य राजाओ के तेज को फीका कर दिया था। अनेक अच्छे-अच्छे घोडो, मस्त हाथियो, रथो, गुमटीवाली पालकियो, पुरुष की लबाई के समान लबाईवाली पालकियो, गाडियो और युग्मो (गोल्ल देश मे पाई जानेवाली एक प्रकार की पालकी जिस के चारो ओर दो हाथ प्रमाण की वेदिका (कटहरा) होती है) से वह नगर युक्त था। उस नगर के जलाशय नवीन कमल कमलनियो से सुशोभित थे। वह श्वेत और उत्तम मोहल्लो से युक्त था। वह नगर इतना स्वच्छ था कि एकटक देखने के लिये मन चाहता था। वह चित्त को पसन्न करनेवाला था, उसे देखते देखते आखे नही झपकती थी। उसे एक बार देख लेने पर भी पुन देखने की लालसा बनी रहती थी। उसे जब देखा जाये तब उसमे नवीनता ही प्रतीत होती थी। इस प्रकार अनुपम सौन्दर्य से सम्पन्न वह नगर था।

"उज्जाणे होत्था, वण्णओ" इस वाक्य मे पठित **"वण्णओ"** पद से व्यक्त उद्यान-सौन्दर्य का वर्णन पृष्ठ २९-३० पर किया जा चुका है।

"गाहावती" का अर्थ होता है—गाथापति, गृहपति अर्थात् परिवार का प्रमुख व्यक्ति।

"अड्ढे०" यहा दिए बिंदु से—**दित्ते, वित्थिण्ण–विउल–भवण–सयणासण जाण–वाहणाइण्णे,**

बहुधन-बहु जाय रूवरयए, आओगप्पओग सपउत्ते विच्छड्डिय-विउलभत्तपाणे, बहुदासी दास-गोमहिस-गवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए" इन पदो का ग्रहण करना चाहिये। इनका अर्थ इसप्रकार है—

नाग गाथापति आढ्य—धनी तेजस्वी विस्तृत और विपुल भवनो शय्याओ, आसनो, यानो और वाहनोवाला था तथा सोना चादी आदि धन की बहुलता से युक्त था। अधमर्णों (ऋण लेनेवालो) को वह अनेक प्रकार से व्याज पर रुपया देता था। उसके यहा भोजन करने के अनन्तर भी बहुतसा अन्न बाकी बच जाता था, उसके घर मे दास-दासी आदि पुरुष और गाय-भैस और बकरी आदि पशु थे। वह बहुतो से भी पराभव को प्राप्त नही होता था और जनता मे सम्माननीय था।

"सुमाला जाव सुरूवा" यहा पठित **जाव** पद से सूत्रकार कुलीन स्त्रियो के समस्त गुणो को ग्रहण कर लेने की सूचना देते है। शास्त्रो के परिशीलन से ज्ञात होता है कि स्त्रियो मे दो प्रकार के गुण होते है। एक अन्तरग गुण दूसरे बहिरग गुण। इनमे अन्तरग गुण मुख्य और बहिरग गुण गौण माने जाते हैं। पातिव्रत्य धर्म का सम्यक्तया परिपालन करना और पति की आज्ञा से कदापि पराड्मुख न होना, सत्य, सन्तोष, श्रद्धा-शील, विवेक, उदारता, सहिष्णुता आदि स्त्री के अन्तरग गुण कहलाते है। रूप, लावण्य, आकृति अगोपाग का सगठित होना और सुकुमारता आदि स्त्री के बहिरग गुण माने गये है। सूत्रकार के कहने का भाव यह है कि सेठानी सुलसा अन्तरग और बहिरग दोनो प्रकार के गुणो से विभूषित थी। सक्षेप मे कहे तो सुलसा शारीरिक दृष्टि से परम सुन्दरी थी और आचार-विचार की दृष्टि से सती-साध्वी सुशीला नारी थी। भद्दिलपुर के नारी जगत मे उसका सर्वोत्कृष्ट आदरास्पद स्थान था। स्त्री-जगत को उस पर गौरव था, मान था।

अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे प्रस्तुत अध्ययन के प्रधान-चरित श्रीअनीयस कुमार का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तस्स ण नागस्स गाहावतिस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नाम कुमारे होत्था। सुमाले जाव सुरूवे। पचधाती परिक्खिते, तजहा—खीरधाती जहा दढपइण्णे जाव गिरि० सुह परिवड्ढइ। ततेण त अणीयस कुमार सातिरेग अट्ठ-वासजाय अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाते यावि होत्था। तते ण त अणीयस कुमार उम्मुक्कबालभाव जाणेत्ता अम्मापियरो सरि०जाव बत्तीसाए इब्भवर-कन्नगाणं एगदिवसे पाणि गेण्हावेंति।*

*इस सूत्र का अन्य प्रतियो मे कुछ पाठ-भेद भी प्राप्त होता है।

तस्स ण नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए-भारियाए अत्तए,अणीयस-सेणे णाम कुमारे होत्था। सुकुमाल जाव सुरूवे। पचधाई परिक्खित्ते, तजहा—खीरधाई, मज्जणधाई, मण्डणधाई, कीलावणधाई, अ कधाई। जहा दढपइण्णे जाव गिरि-कन्दरमल्लीणेव चपगवरपायवे सुह सुहेण परिवड्ढइ। तएण त अणीयसकुमार सातिरेग-अट्ठवास जाय अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तएण त अणीयस कुमार उम्मुक्कबालभाव जाणेत्ता अम्मापियरो सरिसयाण सरिसव्वयाण सरिस-तयाण सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाण सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाण बत्तीसाए इब्भवर-कण्णगाण एगदिवसे पाणि गेण्हावेंति।

छाया—तस्य नागस्य गृहपते पुत्र सुलसाया भार्याया आत्मज अनीयसनाम्ना कुमारोऽभूत्, सुकुमार यावत् सुरूप। पञ्चधात्री परिरक्षित तद्यथा-क्षीरधात्री यथा दृढप्रतिज्ञ यावत् गिरि० सुख परिवर्द्धते। तत तद् अनीयस कुमार सातिरेक-अष्टवर्षजात अम्बापितरौ कलाचार्यं यावत् भोग समर्थो जातश्चापि अभवत्। तत तमनीयस कुमारमुन्मुक्तबालभाव ज्ञात्वा अम्बापितरौ सदृग् यावत् द्वात्रिंशत् कन्यकानामेकदिवसेन पाणि ग्राह्यन्ति।

पदार्थ—**तस्स**—उस, **नागस्स**—नाग, **गाहावतिस्स**—गाथापति का, **पुत्ते**—पुत्र, **सुलसाए**—सुलसा, **भारियाए**—भार्या का, **अत्तए**—आत्मज, **अणीयसे कुमारे**—अनीयस कुमार, **होत्था**—था, **सुमाले**—सुकुमार, **जाव**—यावत्, **गिरि०**—जैसे पर्वत की गुफा मे चम्पकलता सुख पूर्वक बढती है ठीक उसी प्रकार, **सुह०**—सुखपूर्वक, **परिवड्ढइ**—वृद्धि को प्राप्त करता है, **ण**—वाक्यालकारार्थक है, **तते**—तत्पश्चात्, **त**—उस, **अणीयस**—अनीयस, **कुमार**—कुमारको, **साहिरेग**—कुछ अधिक, **अट्ठवास जाय**—आठ वर्ष का हुआ जान कर, **अम्मापियरो**—माता-पिता ने, **कलायरिय**—कलाचार्य के पास भेज दिया, **जाव**—यावत् वह, **भोगसमत्थे जाते यावि होत्था**—भोग भोगने मे समर्थ हो गया, **तते**—तदनन्तर, **त**—उस, **अणीयस कुमार**—अनीयस कुमार को, **उम्मुकबालभाव**—बाल्यावस्था का परित्याग किये हुए को, **जाणेत्ता**—जानकर, **अम्मापियरो**—माता-पिता ने, **सरि०**—उसके समान, **जाव**—यावत्, **बत्तीसाए**—बत्तीस, **इब्भवरकन्नगाण**—प्रधान कुलो की कन्याओ के साथ, **एगदिवसे**—एक ही दिन मे, **पाणि गेण्हावेंति**—पाणि ग्रहण—विवाह कराया।

मूलार्थ—उस नाग गृहपति का पुत्र सुलसा भार्या का आत्मज अनीयस नामक पुत्र था। उनका यह बेटा अति कोमल और रूपवान था। क्षीर-धात्री—दूध पिलानेवाली, आदि पाच धाय माताओ के द्वारा वह परिरक्षित था। उसका अगला जीवन दृढप्रतिज्ञ की भाति समझ लेना चाहिए तथा वह गिरि-गुफा मे उत्पन्न होनेवाली चम्पकलता के समान सम्वधित हो रहा था। अनीयस कुमार जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता-पिता ने विद्या ग्रहण करने के लिये उसको कलाचार्य के पास छोडा। विद्या पढने के अनन्तर तथा बालभाव को छोडकर जब अनीयस कुमार भोगो के भोगने मे समर्थ हो गया तब माता-पिता ने उसके अनुरूप बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ उसका एक ही दिन मे विवाह कर दिया।

व्याख्या—गाथापति नाग और सेठानी सुलसा का परिचय पिछले सूत्र मे देकर सूत्रकार उनके पुत्र अनीयस कुमार का वर्णन करते हैं कि यह बालक क्षीर-धात्री—दूध पिलानेवाली, स्नान-धात्री—स्नान करानेवाली, मण्डन-धात्री—शरीर को विभूषित करनेवाली, क्रीडा-धात्री—खेल आदि क्रियाए करानेवाली तथा अक-धात्री—गोद मे रखनेवाली, इन पाच धाय माताओ के द्वारा लालित-

पालित होने लगा और पर्वत की गुफा मे उत्पन्न होनेवाले चम्पक वृक्ष के समान बिना किसी विघ्न-बाधा के स्वत ही बढने लगा।

जब बालक आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु का हो गया, तब उसको विद्याध्ययनार्थ कलाचार्य के पास भेज दिया गया। विद्याध्ययन करते हुए उसने पुरुष की ७२ कलाए और नानाविध भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया। युवा होते ही उसके माता-पिता ने उसके अनुरूप अर्थात्* शरीर, अवस्था, रूप, लावण्य, विद्या विनय और शील आदि गुणो से युक्त ३२ कुलीन कन्याओ के साथ एक ही दिन उसका विवाह कर दिया।

"सुमाले जाव सुरूवे" इस वाक्य मे पठित 'जाव' शब्द के द्वारा सूत्रकार को—**अहीण पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे, लक्खण-वजण-गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंग सुन्दरंगे ससिसोमागारे कंते पियदंसणे**" यह वाक्य अभीष्ट है। जिसका अर्थ है—उसकी पाचो इन्द्रिया पूर्ण एव निर्दोष थी। उसका शरीर विद्या, धन और प्रभुत्व आदि के सूचक सामुद्रिक लक्षणो और मस्सा-तिल आदि व्यजनो और विनय सुशीलता आदि गुणो से युक्त था तथा मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण एव अगोपाग-गत सौंदर्य से परिपूर्ण था, वह चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त-मनोहर और प्रियदर्शन था।

"**खीरधाती जहा दढपइण्णे जाव गिरि० सुह० परिवड्ढइ**—इस वाक्य से सूत्रकार ने अनीयस कुमार के शैशव को दृढ-प्रतिज्ञ के समान सूचित किया है। दृढ-प्रतिज्ञ का वर्णन 'राज-प्रश्नीय सूत्र' मे प्राप्त होता है। दृढ-प्रतिज्ञ कुमार के शैशव का वर्णन करते हुए राजप्रश्नीय सूत्रकार कहते है—

दृढप्रतिज्ञ क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मण्डनधात्री, अकधात्री और क्रीडाधात्री इन पाच धाय-माताओ द्वारा वृद्धि को प्राप्त करेगा। वह अनेक कुब्ज, चिलात, वामिनी आदि देश-विदेश की दासियो से घिरा रहेगा। ये दासियाँ उसकी देख-रेख करेगी तथा वर्षधर कचुकी पुरुषो द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ रखा जाता हुआ, एक गोद से दूसरी गोद लिया जाता हुआ, बाल-सुलभ गुणो द्वारा प्रशसा का पात्र बनता हुआ हृदय से हृदय को प्राप्त करता हुआ, बाल-मनोविनोद योग्य गीतो द्वारा गाया रिझाया जाता हुआ, रत्न-जटित आगण मे खेलता हुआ और पर्वत मे उत्पन्न चम्पकलता के समान सुखपूर्वक वृद्धि करेगा।

सूत्रकार का आशय है कि अनीयस कुमार का शैशव भी दृढ-प्रतिज्ञ के शैशव के समान सुखी एव सम्पन्न था।

"**कलायरिय जाव भोग समत्थे**" इस वाक्य मे पठित 'जाव' पद से सूत्रकार ने अनीयस कुमार की शिक्षा-दीक्षा की ओर सकेत किया है। भाव यह है कि अनीयस कुमार जब आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु का हो गया तो उसे कलाचार्य के पास भेजा गया। वहा पर उसने—लेखनकला, गणित कला, रूपपरावर्तन, नृत्य-कला, गीत-कला ताल-कला, वादित्र-कला आदि पुरुष की ७२ कलाओ

*सरिसयाण, सरित्तयाण, सरिव्वयाण सरिसलावण्ण-रूव-जोवण-गुणोववेयाण विणीयाण कय कोउय-मगलपाय-च्छित्ताण सरिसएहिं रायकुलेहिं आणिल्लयाण०—व्या० शत० ११ उद्दे० ११ सू०।

का अध्ययन किया। विद्या के क्षेत्र मे पूर्णतया निष्णात हो जाने पर अनीयस कुमार को राजदरबार मे लाया गया। अनीयस कुमार के पिता ने कलाचार्य का खूब सम्मान एव सत्कार किया, अन्त मे उन्हें योग्य पारितोषिक देकर विदा किया।

अब अनीयस कुमार के कानो, आखो, नासिका, जिह्वा, शरीर एव मन आदि मे नवचेतना आने लगी, वह सगीत व नृत्यकला मे कुशल होकर मानो शृ गार का आगार बन गया। घोडो और हाथियो के युद्ध मे तथा बाहुयुद्ध मे कुशल एव भोग-भोगने मे समर्थ हो गया।"

"**सरि जाव बत्तीसाए**" इस वाक्य मे पठित **जाव** पद—**सरितयाण सरिव्वयाण सरिसलावण्ण-रूव-जोवण-गुणोववेयाण सरिसेहिं कुलेहितो आणिल्लियाण** आदि विशेपताओ का ससूचक है। इन पदो से सूत्रकार ने, वर और कन्या मे जिन बातो की समानता होनी चाहिए उन बातो की ओर सकेत किया है। वे बाते इस प्रकार हैं—

१—शरीर की त्वचा समान हो।
२—अवस्था समान हो।
३—लावण्य—कान्ति समान हो।
४—रूप आकृति समान हो।
५—यौवन समान हो।
६—विद्यादि गुण समान हो।
७—कुल समान हो।

यदि वर और कन्या मे उक्त समानताए हों तो दोनो का वैवाहिक जीवन सुखमय रह सकता है, दोनो मे परस्पर प्रेम का सम्वर्धन हो सकता है और दोनो अभ्युदय के मार्ग पर सुखपूर्वक चल सकते हैं। इसी कारण लौकिक व्यवहार में अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह, दु ख के उत्पादक और समान विवाह सुख के साधक माने गये हैं।

"**उम्मुक्कबालभाव**" इन शब्दो से स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि बाल-विवाह नही करना चाहिये, जो बालक बालिकाए बालभाव को छोडकर युवावस्था मे पदार्पण कर चुके हैं, वे ही विवाह के योग्य हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सूत्रकार ने—**सातिरेग अट्ठवासजाय-अम्मापियरो कलायरिय जाव**"—आदि पदो द्वारा यह भी बता दिया है कि विद्यारम्भ का समय आठ वर्ष से कुछ अधिक होना चाहिये। इस अवस्था मे विद्योपार्जन करने पर विद्यार्थी के शारीरिक और मानसिक विकास मे किसी प्रकार की क्षति नही पहुचती है। इससे कम आयु मे विद्या आरभ कर दी जाने पर बालक के मन और शरीर पर अधिक बोझ पडने से उसकी शारीरिक एव मानसिक उन्नति में बाधा पड सकती है।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा सूत्रकार ने यह भी समझाया है कि प्राचीन युग मे गुरुकुलवास की प्रथा थी और विद्यार्थियो को गुरुकुल मे रहना पडता था। वही रहकर कलाचार्य से विद्या का अध्ययन करना पडता था। इसी कारण अनीयस कुमार को विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल भेजा गया था। अनीयस

कुमार घर मे रह कर भी पढ सकता था, पर जिस सुविधा के साथ गुरुकुल मे विद्या प्राप्त की जा सकती है, वह घर मे नही प्राप्त की जा सकती। घर मे रहने से अनेको विघ्न उपस्थित होते है। वातावरण अनुकूल नही रहता, कोलाहल और शोर छात्र के अध्ययन मे बाधक बनते हैं, अत अनुकूल वातावरण मे रह कर ही विद्या का सम्पादन करना अधिक श्रेष्ठ और चरित्र को सयमित बनानेवाला होता है।

अनीयस कुमार के शैशव तथा उस के वैवाहिक जीवन का उल्लेख करके अब सूत्रकार उस के अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—ततेण से नागे गाहावती अणीयसस्स कुमारस्स इम एयारूव पीतिदाण दलयति। त जहा—बत्तीस हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पि पासा० फुट्ट० विहरइ। तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठ जाव समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे। जहा जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। ततेण तस्स अणीयसस्स तं महा० जहा गोयमे तहा नवर सामाइयमातियाइ चउद्दस पुव्वाइ अहिज्जइ। वीस वासाति परिताओ। सेस तहेव जाव सेतुजे पव्वते मासियाए सलेहणाए जाव सिद्धे ५।

एव खलु जंबू! समणेणं अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढम अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

एवं जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो जाव सत्तुसेणे छअज्झयणा एक्कगमा। बत्तीसदो दाओ। वीसं वासा परियाओ। चउद्दस पुव्वाइ अहिज्झति। सेत्तुंजे सिद्धा।

छाया—तत स नागो गृहपति अनीयसस्य कुमारस्य इदमेतद् रूप प्रीतिदान ददाति। तद्यथा—द्वात्रिंशत् हिरण्यकोटी (कोट्य) यथा महाबलस्य यावद् उपरि० प्रासादे० स्फुट० विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्ट यावत् समवसृत। श्रीवने उद्याने यथा यावद् विहरति। परिषद् निर्गता। तत तस्य अनीयसस्य त महा० यथा गौतमस्तथा नवर सामायिकादीनि चतुर्दशपूर्वाणि अधीते। विंशतिवर्षाणि पर्याय, शेष तथैव यावत् शत्रुञ्जये पर्वते मासिक्या सलेखनया यावत् सिद्ध ५।

एव खलु जबू! श्रमणेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशाना तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त।

एव यथा अनीयस एव शेषा अपि अनन्तसेन यावत् शत्रुसेन। षड् अध्ययनानि एकगमा। द्वात्रिंशद्दाया. विंशतिवर्षाणि पर्याय। चतुर्दश पूर्वाणि अधीयन्ते। शत्रुञ्जये सिद्धा।

पदार्थ—ण—वाक्यालकारार्थक है, तते—इस के पश्चात्, से—वह, नागे गाहावती—नाग गृहपति, अणीयसस्स—अनीयस, कुमारस्स—कुमार को, इम—यह, एयारूव—इस प्रकार का, पीतिदाण—प्रीतिदान, दलयति—देते है, त जहा—जैसे कि, बत्तीस—३२, हिरण्णकोडीओ—हिरण्यकोटि, जहा—जैसे, महब्बलस्स—महाबल कुमार को दहेज मे दिया था, पासा० उप्पि०—महलो के ऊपर, फुट० विहरइ—नाटक देखता हुआ विहरण कर रहा है, तेण कालेण—उस काल, तेण समएण—उस समय, अरहा—अरिहन्त, अरिट्ठ—अरिष्टनेमि भगवान्, जाव—यावत्, सिरिवणे उज्जाणे—श्रीवन नामक उद्यान मे, समोसढे—पधारे, जहा—जैसे, जाव—यावत्, परिसा—परिषद्, निग्गया—व्याख्यान सुनने को आई, तत—तदनन्तर, तस्स—उस, अणीयसस्स—अनीयस कुमार का भगवद्दर्शन करने आना, जहा—जैसे, गोयमे—गौतम का धर्मश्रवण और दीक्षा ग्रहण, तहा—उसी प्रकार अनीयस कुमार का भी जानना, नवर—इतना अन्तर है, सामाइयमातियाइ—आचाराग से ले कर, चउद्दस—चौदह, पुव्वाइ—पूर्वों को, अहिज्जइ—पढते हैं, वीस—२०, वासाति—वर्षों की, परितागो—सयमपर्याय पाल कर, सेस—शेष वर्णन, गौतम कुमार के समान जानना, तहेव—उसी प्रकार, जाव—यावत्, सेत्तुजे—शत्रुञ्जय, पव्वते—पर्वत पर, मासियाए—एक मास की, सलेहणाए—सलेखना द्वारा, जाव—यावत्, सिद्धे ५—सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परिनिर्वृत और सर्वदु खप्रहीण बनेगा।

एव—इस प्रकार, खलु—निश्चय ही, जबू!—हे जम्बू! समणेण—श्रमण भगवान महावीर ने, अट्ठमस्स—आठवें, अगस्स—अग, अतगडदसाण—अन्तगड सूत्र के, तच्चस्स—तृतीय, वग्गस्स—वर्ग के, पढम—प्रथम, अज्झयणस्स—अध्ययन का, अयमट्ठे—यह अर्थ, पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है।

एव—इस प्रकार, जहा—जैसे, अणीयसे—अनीयस कुमार का वर्णन है, एव—उसी प्रकार, सेसा वि—शेष भी, अणतसेणे—अनन्त सेन, जाव—यावत्, सत्तुसेणे—शत्रुसेन का भी वर्णन जान लेना चाहिए, छ अज्झयणा—छह अध्ययनो का, एक्कगमा—एक समान पाठ है, बत्तीसदो दाओ—बत्तीस-बत्तीस दहेज दिए गए, वीस-वासा—वीस वर्ष, परियातो—सयम पाला, चउद्दस पुव्वाइ—चौदह पूर्वों का, अहिज्झति—अध्ययन किया, सेतुञ्जे—शत्रुञ्जय पर्वत पर, सिद्धा ५—सिद्ध हुए।

मूलार्थ—विवाह के अनन्तर वह नाग गाथापति अनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय वत्तीस करोड चादी के सिक्के तथा अन्य वत्तीस प्रकार की अनेको वस्तुए देता है। जिस प्रकार महाबल कुमार महलो मे नाटक देखता हुआ सानन्द जीवन व्यतीत करता है। इसी प्रकार अनीयस कुमार भी सासारिक वैषयिक आनन्द भोगता है।

उस काल तथा उस समय श्रीवन नामक उद्यान मे भगवान अरिष्टनेमि पधारे। जनता उनका धर्मोपदेश सुनने के लिये उद्यान मे पहुची और सुन कर अपने-अपने घर को चली गई।

भगवान की सेवा मे अनीयस कुमार भी आए। उन्होने भी भगवान का प्रवचन सुना और प्रवचन के प्रभावसे उनके हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्तमे गौतम कुमारकी भान्ति वे भगवानके चरणोमे दीक्षित हो गये। दीक्षित होने के अनन्तर उन्होने आचारागसे लेकर चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। बीस वर्ष दीक्षाका पालन किया। अन्त समय एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी कहने लगे—हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तगड के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया है।

इसी प्रकार अनन्तसेन से ले कर शत्रुसेन पर्यन्त अध्ययनो का वर्णन भी जान लेना चाहिए। सब का बत्तीस-बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ विवाह हुआ था और सब को बत्तीस-बत्तीस करोड अनेक वस्तुए दी गई। बीस वर्ष तक सयम का पालन एव १४ पूर्वो का अध्ययन किया। अन्त मे एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुञ्जय पर्वत पर पाचो ही सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे अनीयस कुमार के शेष जीवन का तथा अनन्तसेन आदि पाच श्रेष्ठ-पुत्रो का वर्णन किया गया है। इन के विस्तृत जीवनो को महाबल कुमार तथा गौतमकुमार के जीवनो के समान बतला कर उन्हे सक्षिप्त कर दिया गया है। मूल पाठ का अर्थ स्पष्ट ही है। मूलार्थ मे उस का भाव लिख दिया गया है।

'पीतिदाण' का अर्थ है—प्रीतिदान जो हर्ष होने के कारण दिया जाता है। यहा दान का अर्थ है पारितोषिक प्रेमोपहार। वैसे प्रीतिदान का प्रयोग आज कल दहेज के लिये किया जाता है। आज विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जानेवाला धन और सम्मान दहेज समझा जाता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से पता चलता है यह दहेज विवाह के अवसर पर वर के पिता की ओर से वर को दिया जाता था। जो वर द्वारा विवाहित कन्याओ मे बाट दिया जाता था।

"हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पि पासा० फुट्ट०—" इन पदो द्वारा सूत्रकार ने अनीयस कुमार को दिए गए प्रीतिदान का विशेष वर्णन न कर के उसे महाबल के प्रीतिदान के समान बतला कर समास शैली के द्वारा उसका साकेतिक वर्णन कर दिया है। महाबल को जो प्रीतिदान दिया गया था उस का वर्णन पृष्ठ ४३ पर किया जा चुका है।

'पासा०' यहाँ दी गई बिंदु—**"य-वर-गए"** इस पद का बोधक है, तथा **'फुट्ट०'** यहा का बिंदु-**"माणेहि मुइ गमत्थएहि भोगभोगाइ, भजमाणे"** इन पदो की ओर सकेत कर रहा है। इनका भाव है—महल मे बजते हुए मृदगो के द्वारा पर्याप्त भोगो का उपभोग करते हुए।

"अरिट्ठ जाव समोसढे" इस वाक्य मे पठित जाव पद द्वारा भगवान अरिष्टनेमि से सम्बन्धित "—नेमी आदि करे " आदि पदो का स्मरण कराया गया है। आदिकर आदि पदो का अर्थ पृष्ट १३ पर किया जा चुका है।

"त महा० जहा गोयमे तहा" ये पद अनीयस कुमार के दर्शन-यात्रा, धर्मश्रवण, वैराग्य आदि जीवनप्रसगो को गौतम कुमार के समान वतला रहे हैं । गौतम कुमार का वर्णन अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है।

"नवर सामाइयमाइयाइ चउद्दस पुव्वाइ" इस वाक्य मे पठित नवर यह अव्ययपद गौतम कुमार और अनीयस कुमार की अध्ययनगत भिन्नता को प्रकट कर रहा है। 'नवर' शब्द का अर्थ है— "इतना विशेष है या इतना अन्तर है।" अनीयस कुमार और गौतम कुमार की पढाई मे जो अन्तर था उसे सूत्रकार ने स्वय "सामाइय पुव्वाइ—इन पदो द्वारा व्यक्त कर दिया है। भाव यह है कि गौतम कुमार ने तो केवल ग्यारह अगो का अध्ययन किया था, परन्तु अनीयस कुमार ने ११ अग भी पढे और साथ मे १४ पूर्वो का अध्ययन भी किया था। तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थकर भगवान जिस अर्थ का गणधरो को पहले पहल उपदेश देते हैं या गणधरदेव पहले पहल अर्थ को सूत्र रूप मे गूथते है, उसे पूर्व कहते है। पूर्व १४ हैं। जिनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

१—**उत्पादपूर्व**—इस पूर्व मे सभी द्रव्य और सभी पर्यायो के उत्पाद को ले कर प्ररूपणा की गई है।

२—**अग्रायणीयपूर्व**–इसमे सभी द्रव्यो, सभी पर्यायो और सभी जीवो के परिमाण कावर्णन है।

३—**वीर्य-प्रवाद-पूर्व**—इस मे कर्म-सहित और विना कर्मवाले जीवो तथा अजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है।

४—**अस्ति-नास्ति-प्रवाद-पूर्व**–ससार मे धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुए विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान है, उन सव का वर्णन इस पूर्व मे है।

५—**ज्ञान-प्रवाद-पूर्व**—इस मे मति ज्ञान आदि पञ्चविध ज्ञानो का विस्तृत वर्णन है।

६—**सत्य-प्रवाद-पूर्व**—इस मे सत्यरूप सयम का या सत्य वचन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

७—**आत्म-प्रवाद-पूर्व**—इस मे अनेक नय तथा मतो की अपेक्षा से आत्मा का वर्णन है।

८—**कर्म-प्रवाद-पूर्व**—इस मे आठ कर्मो का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदो द्वारा विस्तृत रूप मे किया गया है।

९—**प्रत्याख्यान-प्रवाद-पूर्व**—इस मे प्रत्याख्यानो का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन है।

१०—**विद्यानु-प्रवाद-पूर्व**–इस पूर्व मे विविध प्रकार की विद्याओ तथा सिद्धियो का वर्णन है।

११—**अवन्ध्य-पूर्व**—इस मे ज्ञान, तप, सयम आदि शुभ फलवाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फलवाले, निष्फल न जानेवाले कार्यो का वर्णन है।

१२—**प्राणायुष्य-प्रवाद-पूर्व**—इस मे दस प्राण और आयु आदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है।

१३—**क्रिया-विशाल-पूर्व**—इस मे कायिकी आधिकरणिकी आदि तथा सयम मे उपकारक क्रियाओ का वर्णन है।

१४—**लोक-बिन्दुसार-पूर्व**—ससार मे श्रुतज्ञान मे जो शास्त्र बिंदु की तरह सब से श्रेष्ठ है, वह लोक-बिंदुसार है।

"तहेव जाव सेतुञ्जे" इस वाक्य मे पठित **जाव** पद से सूत्रकार गौतम मुनि जी ने जिस तप का आराधन किया था, उसकी ओर सकेत किया गया है। सूत्रकार का भाव यह है कि जिस प्रकार गौतम मुनि ने नानाविध तपो का आराधन किया और अन्त मे वे स्थविरो के साथ शत्रुञ्जय पर चले गये इसी प्रकार अनीयस कुमार ने भी तप का अनुष्ठान किया और उन्ही की तरह ही स्थविरो के साथ शत्रुञ्जय पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

"सिद्धे ५" यहा दिए गए ५ के अ क से जिन पदो की ओर सकेत कराया गया है। उन का निर्देश पृष्ठ ६६ पर कराया जा चुका है।

"एव सेसा वि" इस वाक्य के 'शेष' पद का अर्थ है अवशिष्ट। प्रश्न हो सकता है कि अनीयस कुमार को छोड कर शेष अनन्तसेन आदि सभी अवशिष्ट ही है, अत शेष शब्द अवशिष्ट सभी का परिचायक है या किसी विशेष कुमार का ? इस प्रश्न का उत्तर सूत्रकार स्वय **"अणतसेणे जाव सत्त् सेणे"** कह कर दे रहे है। सूत्रकार का आशय है कि जिस प्रकार अनीयस कुमार का जीवन-चरित बताया गया है। उसी प्रकार अणतसेन से लेकर शत्रुसेन आदि के जीवन चरित भी समझ लेने चाहिए।

"अणतसेणे जाव सत्त् सेणे" इस वाक्य मे विद्यमान **जाव** पद अनिहत कुमार, विद्वत् कुमार, देवयश कुमार इन तीन श्रेष्ठि-पुत्रो का ससूचक है। तात्पर्य यह है कि अनीयस कुमार की भान्ति *अनन्तसेन, अनिहत कुमार, विद्वत् कुमार, देवयश और शत्रुसेन इन पाचो की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए।

अध्ययनो की समाप्ति पर प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने कुछ सकेत नही किया, परन्तु सूत्र शैली के आधार पर सर्वत्र निक्षेप उपसहार की कल्पना कर लेनी चाहिए। शास्त्रीय भाषा मे इस निक्षेप को ऐसे कह सकते हैं—

एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स वितियस्स, तइयस्स, चउत्थस्स, पचमस्स, छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अर्थात्—हे जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम या षष्ठ) अध्ययन का अर्थ इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

---

*वृत्तिकार अभयदेवसूरि के मत मे अनीयस कुमार आदि छहो मुनि मा जाए भाई थे और मूलत ये महाराज वसुदेव और माता देवकी के पुत्र थे। वैसे प्रत्यक्ष रूप से ये सुलसा सेठानी के पुत्र गए हैं। इति षडपि चैते तत्वतो वसुदेवदेवकीसुता। आठवे अध्ययन मे यह बात स्पष्ट हो जाएगी

सप्तम अध्ययन

मूल—तेणं कालेण तेण समएणं बारवतीए नयरीए जहा पढमे नवरं वसुदेवे राया धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पन्नासतो दातो, चउद्दस पुव्वा। वीस वासा परिताग्रो। सेस जहा गोयमस्स जाव सेतु जे सिद्धे।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्या नगर्यां यथा प्रथम। नवर वसुदेवो राजा। धारिणी देवी। सिंह स्वप्न। सारण कुमार। पञ्चाशत् दाया। चतुर्दशपूर्वाणि, विंशति वर्षाणि पर्याय। शेष यथा गौतमस्य यावत् शत्रुञ्जये सिद्ध।

पदार्थ—**तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय मे, **बारवतीए**—द्वारिका, **नयरीए**—नगरी मे, **जहा**—जैसे, **पढमे**—प्रथम वर्णन है वैसा जानना, **नवर**—इतना विशेष है, **वसुदेवे**—वसुदेव राजा राज्य करता था, **धारिणी देवी**—धारिणी देवी थी, **सीहो-सुमिणे**—उसने स्वप्न मे सिंह देखा, **सारणे कुमारे**—सारण कुमार पुत्र का नाम था, उस के विवाह मे, **पन्नासातो**—पचास, **दातो**—दहेज दिए, **चउद्दस**—चौदह, **पुव्वा**—पूर्वों का अध्ययन किया, **वीस**—वीस, **वासा**—वर्ष तक, **परिताग्रो**—सयम का पालन किया, **सेस**—शेष वर्णन, **जहा**—जैसे, **गोयमस्स**—गौतम कुमार का वर्णन है, **जाव**—यावत्, **सेतुञ्जे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय मे द्वारिका नगरी थी। उस मे वसुदेव राजा राज्य किया करता था, धारिणी उस की रानी थी। उसने गर्भाधान के पश्चात् स्वप्न मे सिंह देखा। समय ग्राने पर बालक को जन्म दिया, उस का नाम सारण कुमार रखा गया। उस का ५० कन्याग्रो के साथ विवाह हुग्रा। पिता ने ५० दहेज दिए। तदनन्तर भगवान ग्ररिष्टनेमि के चरणो मे उपदेश सुन कर वह वैराग्य को प्राप्त हुग्रा, साधु बना, चौदह पूर्वो का ग्रध्ययन किया, बीस वर्ष तक सयम का पालन कर के एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुजय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया सारण कुमार का शेष वर्णन गौतम कुमार की भान्ति समझ लेना चाहिए।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र ग्रन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग का सातवा ग्रध्ययन है। इस मे सारण कुमार का जीवन-चरित्र वर्णन किया गया है। यह कुमार वसुदेव राजा का पुत्र था, माता का नाम धारिणी था। जब सारण कुमार का जीव माता धारिणी के गर्भ मे प्रविष्ट हुग्रा, उस रात्रि को माता ने एक स्वप्न देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुग्रा कि मानो एक सिंह मेरे मुख मे प्रवेश कर रहा है। गर्भकाल के पूर्ण होने पर माता ने बालक को जन्म दिया। बालक का नाम सारण कुमार रखा गया। सारण कुमार पर्वत गुफा में स्थित चम्पकलता की भान्ति पांच धायमाताग्रो के सरक्षण में सवर्धित होने लगा। जब कुछ ग्रधिक ग्राठ वर्ष का हो गया तो इसे गुरुकुल मे कलाचार्य के पास

भेजा गया। वहा इसने ७२ पुरुष कलाए सीखी। विद्या क्षेत्र मे खूब प्रगति की। एक दिन सारण कुमार पूर्ण विद्वान् हो गया।

माता पिता ने विवाह योग्य जान कर सारण कुमार का ५० राजकन्याओ के साथ विवाह कर दिया और कुमार को ५० करोड चादी के सिक्के और नाना प्रकार की वस्तुएं प्रीतिदान मे दी। विवाहित सारण कुमार आनन्दपूर्वक राजमहलो मे अपनी तरुण सुन्दरी पत्नियो के साथ सासारिक विषयो का उपभोग करने लगा।

उस समय भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका मे पधारे। महाराज वसुदेव तथा अन्य नागरिक प्रभु की धर्मदेशना सुनने के लिये भगवान की सेवा मे उपस्थित हुए। सारण कुमार भी गया। सब ने भगवान की कल्याणकारिणी वाणी सुनी। सुन कर सब अपने अपने घर को चले गए। सारण कुमार को भगवान की वाणी सुन कर वैराग्य हो गया। माता पिता ने बहुत समझाया, इस के वैराग्य रग को उतारने की उन्होने भरसक कोशिश की, पर सारण कुमार दृढ रहा। अन्त मे माता पिता से आज्ञा ले कर सारण कुमार भगवान के चरणो मे दीक्षित हो गए, साधु बन गए।

मुनि सारण कुमार विद्याध्ययन करने लगे। तथारूप स्थविरो के पास इन्हो ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन के साथ साथ तप का भी आराधन किया। बीस वर्ष तक सयम का पालन किया। अन्त मे भगवान से आज्ञा लेकर शत्रुञ्जय पर्वत पर चले गए और वहा एक मास का अनशन कर के कर्मों को क्षय कर दिया, निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। सारण मुनि सिद्ध हो गए।

यह है सारण मुनि का सक्षिप्त जीवनचरित्र जिसे सूत्रकार ने अपनी भाषा मे उपस्थित किया है। साथ मे यह भी सूचित कर दिया है कि सारण कुमार का जीवन गौतम कुमार की भान्ति समझ लेना चाहिए। सारण कुमार और गौतम कुमार के जीवन मे जो भिन्नता है, उस का भी सूत्रकार ने स्वय निर्देश कर दिया है। **'सीहो सुमिणे, पन्नासतो दातो'** आदि पद उसी भिन्नता के बोधक हैं।

"सेस जहा गोयमस्स जाव" इन पदो द्वारा सूत्रकार ने सारण कुमार के जीवन को गौतम कुमार के समान होने की सूचना दी है। भाव यह है, जैसे गौतम कुमार का जीवन-चरित था वैसा सारण कुमार का भी समझ लेना चाहिए।

इस अध्ययन से या सारण कुमार के जीवन-चरित से साधक को अपने जीवन को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि जीवन को परम शान्त और परम सुखी बनाने के लिये भोगमय जीवन का परित्याग करना ही पडेगा, धर्म मे दीक्षित हो कर सयम का पालन करना ही होगा। वस्तुत अध्यात्मसाधना ही जीवन को शान्त और सुखी बना सकती है। इसी के प्रताप से साधक निर्वाण पद को प्राप्त कर के परम सुख को प्राप्त कर सकता है। अत प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी का कर्त्तव्य बनता है कि वह सारण कुमार के जीवन से ग्राह्य सार को अवश्य ग्रहण करने का प्रयत्न करे।

प्रस्तुत अध्ययन के उत्क्षेप-प्रस्तावना और निक्षेप-उपसहार की कल्पना पिछले अध्ययनो की भान्ति पाठको को कर लेनी चाहिए। सूत्रकार ने विस्तार भय से उनका उल्लेख नही किया।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम अध्ययन

मूल—जइ ण उक्खेवश्रो अट्ठमस्स । एव खलु जंबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवतीए नयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी सामी समोसढे । तेण कालेण तेण समएण अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अन्तेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था । सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा, सिरिवच्छंकिय-वच्छा, कुसुम-कुडल-भद्दालया नलकूब्बरसमाणा । तते ण ते छ अणगारा ज चेव दिवसं मुंडे भवेत्ता अगाराश्रो अणगारिय पव्वतिया त चेव दिवसं अरह अरिट्ठनेमिं वदति, नमसति वदित्ता, नमस्यित्ता एव वयासी—इच्छामो ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवकम्मसजमेण अप्पाण भावेमाणे विहरित्तते । अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह । ततेण छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठ छट्ठेण जाव विहरति ।

छाया—यदि उत्क्षेपकोऽष्टमस्य । एव खलु जबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्या नगर्या यथा प्रथमो यावद् अर्हद् अरिष्टनेमि स्वामी समवसृत । तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हत अरिष्टनेमे अन्तेवासिन षड् अनगारा भ्रातर सहोदरा अभूवन् । सदृशा, सदृग्वयस नीलोत्पल-गवलगुलिकाअतसीकुसुमप्रकाशा श्रीवत्साकितवक्षस कुसुमकुण्डलभद्रालका नलकूबरसमाना । तत ते षड् अनगारा यत्र चैव दिवसे मुण्डा भूत्वा अगारादनगारिता प्रव्रजिता तत्र चैव दिवसे अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दन्ते, नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवदन्—इच्छामो भगवन् ! युष्माभि-रभ्यनुज्ञाता सन्त यावज्जीव षष्ठषष्ठेण अनिक्षिप्तेन तप कर्मसयमेन आत्मान भावयन्त विहर्तुम् ? यथासुख देवानुप्रिया ! मा प्रतिबध कुर्यु । तत षडनगारा अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञाता सन्त यावज्जीव षष्ठषष्ठेण यावद् विहरन्ति ।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **ण**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थक है । **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक समझ लेना चाहिये, **अट्ठमस्स**—आठवें अध्ययन का, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **जबू !** हे जम्बू ! **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **बारवतीए**—द्वारिका नामक, **नयरीए**—नगरी मे, **जहा**—जिस प्रकार, **पढमे**—प्रथम अध्ययन मे वर्णन किया गया है, **जाव**—यावत्, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि, **सामी**—स्वामी, **समोसढे**—पधारे, **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **अरहतो**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि भगवान के, **अन्ते-वासी**—शिष्य, **छ**—छह, **अणगारा**—साधु, जो कि, **सहोदरा भायरो**—मा जाए, सगे भाई, **होत्था**—थे । वे छ भाई, **सरिसया**—एक समान थे, **सरित्तया**—समान त्वचा वाले थे, **सरिव्वया**—

समान उमर वाले थे, **नीलुप्पल**—नील कमल, **गवल**—भैंस के सीग के अन्दर का भाग, **गुलिय**—गुलिका—रग विशेष, **अयसिकुसुम**—अलसी के फूल, इन सब के, **प्पगासा**—प्रकाश वाले थे, नील कमल आदि के समान वर्ण वाले थे, **सिरिवच्छंकियवच्छा**—उन की छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह था, **कुसुमकुंडलभद्दालया**—कुसुमो के समान कोमल और कुण्डल के समान-वर्त्तु ल-घु घराले अलक—केशो वाले, **नलकूब्बरसमाणा**—वैश्रमण देव के पुत्र के समान थे, **तते**—तदनन्तर, **ते**—वे, **छ**—छह, **अणगारा**—अनगार साधु, **जचेव दिवस**—जिस दिन, **मुण्डा भवेत्ता**—मुण्डित हुए थे, साधु बने थे, **अगाराओ**—घर से निकल कर, **अणगारिय**—अनगार भाव मे, **पव्वतिया**—प्रव्रजित हुए थे, दीक्षित हुए थे, **त चेव दिवस**—उसी दिन, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि भगवान को, **वदति**—वन्दना करते हैं, **वदित्ता**—वदना कर के, **नमसति**—नमस्कार करते है, **नमसित्ता**—नमस्कार कर के, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे, **भते**—हे भगवन् ! **ण**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है, **इच्छामो**—हम चाहते है, **तुब्भेहिं**—आपश्री द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणा**—अभ्यानुज्ञात—आज्ञा प्राप्त किये हुए, **छट्ठछट्ठेण**—बेले-बेले तप द्वारा, **अणिक्खित्तेण**—निरन्तर, बिना व्यवधान के, **तवकम्मसजमेण**—तपस्या और सयम से, **अप्पाण**—आत्मा को, **भावेमाणे**—भावित युक्त करते हुए, **विहरित्तते**—विहरण को। भगवान बोले, **देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रियो ! **अहासुह**—जैसे तुम्हे सुख हो, परन्तु, **पडिबध**—विलम्ब, **मा करे**—मत करो, **तते**—तत्पश्चात् **छ**—छह, **अणगारा**—साधु, **अरहया**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिणा**—अरिष्टनेमि भगवान द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त, **छट्ठ छट्ठेण**—बेले-बेले तप द्वारा, **जाव**—यावत्, **विहरति**—विहरण करते है।

मूलार्थ—आठवे अध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी थी। उसके बाहिर उद्यान मे भगवान अरिष्टनेमि पधारे।

उस काल तथा उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के छ शिष्य थे। ये छहो सगे भाई थे, वर्ण त्वचा और आयु मे एक दूसरे के समान प्रतीत होते थे। उन का वर्ण नील कमल, महिष के शृङ्ग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रग विशेष और अलसी के समान था। उनका वक्षस्थल श्रीवत्स नामक चिन्ह से चिन्हित था। उन के सिर के केश फूल के समान कोमल और कुण्डल के समान वर्त्तु ल गोल अर्थात् घु घराले थे। वे वैश्रमण देव के पुत्र के समान प्रतीत होते थे।

उक्त छहो भाई जिस दिन अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे साधु बने और घर को छोड कर दीक्षित हुए, उसी दिन भगवान के चरणो मे वन्दना नमस्कार करते हुए निवेदन करते है—

भगवन् ! हमारी हार्दिक इच्छा है कि यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करदें, तो हम जीवनपर्यन्त बेले-बेले तप द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि करे।

अपने शिष्यो की विनीत प्रार्थना सुनकर भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हे सुख हो, करो पर शुभ कर्म करने मे विलम्ब नही करना चाहिये।

भगवान से आज्ञा मिल जाने पर छहो भाई जीवनपर्यन्त बेले-बेले तप द्वारा अपनी आत्म-साधना करने लगे।

व्याख्या—यह अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का आरम्भिक सूत्र है। इसमे भगवान अरिष्टनेमि के छ शिष्यो का वर्णन किया गया है। सुधर्मा स्वामी श्रीजम्बू स्वामी से कहते हैं—एक बार बाईसवे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। भगवान नगर से बाहिर उद्यान मे विराजमान हो गये। उस समय भगवान के छ शिष्य मा जाए भाई थे। उनका रूप-रग एक जैसा था। एक समान उनकी आयु प्रतीत होती थी। नील-कमल जैसा या भैसे के सीग जैसा अथवा अलसी के फूल जैसा इनका रग था। वक्ष स्थल मे श्रीवत्स का निशान था, सिर के बाल बडे कोमल और कुण्डल की तरह गोल घुँघराले थे। वे धनपति कुबेर के पुत्रो के तुल्यही दिखाई देते थे। छहो ने जीवन-भर के लिये बेले-बेले पारणा करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। इस तरह ये छहो मुनि भगवान अरिष्टनेमि की सेवा मे तप-सयम की आराधना कर रहे थे। यही प्रस्तुत सूत्र का सक्षिप्त भावार्थ है।

"उक्खेवओ अट्ठमस्स" का अर्थ है—अष्टम अध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। इन शब्दो द्वारा सूत्रकार कहना चाहते हैं कि आठवें अध्ययन के उत्क्षेप-उपोद्घात की कल्पना पिछले अध्यायो की भाति कर लेनी चाहिये। जिस उपोद्घात की कल्पना की ओर सकेत किया गया है, वह उपोद्घात शास्त्रीय भाषा मे इस प्रकार है—

"जइ ण भते ! अतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स ण भते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?"

अर्थात्—जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव सुधर्मास्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के सप्तम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?

"नयरीए जहा पढमे जाव अरहा" इस वाक्य मे पठित **"जहा पढमे जाव"**—इन वाक्यो द्वारा सूत्रकार प्रथम अध्ययन मे प्रदर्शित द्वारिका नगरी, वहा के उद्यान, वहाँ के नरेश आदि बातो की ओर सकेत कर रहे है। कहने का भाव यह है कि जैसे अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारिका नगरी के नन्दन वन का तथा महाराज वासुदेव का वर्णन किया गया है, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

'सरिसया'—आदि पदो का टीकानुसारी अर्थ सम्बन्धी चिन्तन इस प्रकार है—

सरिसया—सदृशका समानाकारा, अर्थात् समान आकृति या आकारवाले को सदृशक कहते हैं।

सरित्तया—सदृक्त्वच –सदृशी त्वग् येषा ते, समानकान्तय , अर्थात् एक जैसी त्वचा–चमडी-वाले या एक जैसे रूपवाले को सदृक्त्वच् कहते है।

सरिव्वया—सदृग् वयस । **सदृक् सदृश समान वयो येषा ते समान वयस्का**, अर्थात् जिनकी आयु समान हो, उन्हे सदृग्वय कहते है।

उक्त विशेपण भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यो के है। इन विशेषणो से सूत्रकार ने छहो भाइयो को एक जैसी आयुवाला ध्वनित किया है, परन्तु यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि छहो भाइयो की एक जैसी आयु कैसे हो सकती है ? जो बालक एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इसी प्रकार चौथा, पाचवा और छठा इस प्रकार इकट्ठे बालक लगातार भी पैदा होते हैं, तो भी उनकी आयु मे अन्तर रहता है, उनमे भी कोई छोटा कोई बडा यह कल्पना रहती है, फिर सर्वथा भिन्न-भिन्न काल मे पैदा होनेवाले बालको की आयु एक जैसी कैसे हो सकती है ?

उत्तर मे निवेदन है कि यह सत्य है कि छहो भाइयो की एक जैसी आयु नही थी वे सब भिन्न-काल मे पैदा हुए थे, वे भी आपस मे छोटे बडे थे, तथापि सूत्रकार ने उनकी जो समान आयु बतलाई है उसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि उन के शरीरो की अवगाहना एक जैसी थी। उन छहो को यदि खडा कर दिया जाए तो वे एक जैसे कदवाले प्रतीत होते थे और एक जैसी उमरवाले लगते थे।

नीलुप्पल-गवल-अयसि-कुसुम-प्पगासा—नीलोत्पलगवलातसी—कुसुमप्रकाशा—नीलोत्पल नील-कमलम्, गवल महिषशृङ्गान्तवर्ती नीलद्रव्यम्, गुलिका रग विशेष, अतसीकुसुमम्, अतसी नामधेय पुष्पविशेषम् एतेषा प्रकाश इव प्रकाश कान्तिर्येषा ते नीलवर्णा। नीले-कमल भैस के सीग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रग विशेष तथा अलसी के फूल, इनके समान जिनकी कान्ति हो, उन्हे नीलोत्पल-गवल तथा अलसी के फूल* ये सब नील वर्णवाले होते हैं। अत छहो भाई नीलवर्ण के थे।

किसी प्रति मे—**नीलुप्पल-गुलिय-अयसि-कुसुम-प्पगासा**" ऐसा पाठ है। इसमे गवल शब्द का सर्वथा अभाव है और गुलिय का ग्रहण किया है। आगमोदय समिति द्वारा इसी पाठ को अपनाया गया है, परन्तु वृत्तिकार अभय देव सूरि ने—**नीलोप्पल-गवल-गुलिका-अतसीज-कुसुम-प्रकाशा गवल-महिषशृङ्ग, अतसी-धान्य विशेष**" ऐसा लिखा है। इन्होने गवल और गुलिय दोनो पदो का आश्रयण किया है। पाठ भेद की इस विचित्रता पर आगमज्ञ मनीषी व्यक्तियो को ध्यान देना चाहिये।

सिरिवच्छकियवच्छा—श्रीवत्साकितवक्षस, श्रीवत्सो महापुरुषाणा वक्ष स्थचिन्हविशेष, तेन अकित वक्ष उरो येषा ते श्रीवत्स-युक्त-वक्षस्थस्का, अर्थात् श्रीवत्स से युक्त है, वक्ष स्थल जिनका वे महापुरुष श्रीवत्साकित वक्षस् कहलाते हैं। श्रीवत्स का अर्थ है—महापुरुषो के हृदय का एक ऊचा अवयवाकार नौ कोणवाला चिन्ह, साथिया जैसा शुभ चिन्ह विशेष।

कुसुम-कुण्डल-भद्दालया—कुसुम-कुण्डल-भद्रालका, कुसुमवत्कोमला, कुण्डलवद् वर्तुला,

---

* अलसी के फूल आसमानी रग के होते हैं, इसके बीज चपटे और नुकीले होते हैं, इनमे से तिलो की भाति तेल निकलता है।

आकुञ्चितत्वाद् , भद्रा शोभना अलका केशा येषा ते, अर्थात्—जिनके वाल कुसुमो के समान कोमल और कुण्डल के समान गोल, घुघराले होने के कारण सुन्दर प्रतीत हो रहे है वे 'कुसुम-कुण्डल-भद्रालक' कहलाते है।

"कुसुम-कुण्डल-भद्दालया" इस वाक्य की वृत्तिकार अभयदेव सूरि व्याख्या करते हुए कहते हैं—

कुसुमकुण्डलभद्दालयेति–कुसुमकुण्डल धत्तूरकपुष्पसमानाकृतिकर्णाभरण तेन भद्रका शोभना ये ते तथा। बालावस्थाश्रय विशेषण न पुनरनगारावस्थाश्रयमित्येके, अन्ये पुनराहु –दर्भ-कुसुमवद्भद्रा सुकुमारा इत्यर्थ , तत्त्व तु बहुश्रुतगम्यम्। अर्थात् धतूरे के फूल के समान आकृतिवाले कर्णभूषण से सुशोभित व्यक्ति को कुसुम-कुण्डल-भद्रक कहते हैं। प्रश्न हो सकता है कि साधु-जीवन मे कुण्डल पहनने का प्रसग कैसे हो सकता है ? इसका समाधान करते हुए वृत्तिकार कहते है कि सूत्र-कार ने यह उपमा बाल्यावस्था को लक्ष्य मे रखकर दी है। इससे अनगारावस्था का कोई सम्बन्ध नही है। ऐसा एक आचार्य का मत है।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि कहते है कि अन्य आचार्यों ने उक्त पद का अर्थ—दर्भ-पुष्प के समान सुकुमार अर्थात्—जिसका शरीर दर्भपुष्प के समान अत्यन्त कोमल है—यह अर्थ किया है।

नलकूब्बरसमाणा–नलकूब्बरसमाना , सौंदर्य लावण्यादिभि गुणै नलकूबर सदृशा , अर्थात्—जो सौदर्य, लावण्य आदि गुणो से नलकूबर के समान हो, उसे नलकूवर समान कहते है। नलकूवर वैश्रमणदेव का पुत्र माना जाता है, जो सौन्दर्यादि गुणो मे अनुपम है।

इस पद की व्याख्या करते हुए श्री अभयदेव सूरि लिखते है—

'नलकूबर समाना" वैश्रमण पुत्र तुल्या । इद च लोकरूढ्या व्याख्यात यतो देवाना पुत्रा न सन्ति, अर्थात्—भगवान अरिष्टनेमि के छहो शिष्यो को जो वैश्रमण देव के पुत्र के समान वतलाया गया है, यह कथन लोकरूढि को लक्ष्य मे रखकर किया गया है, कारण कि देवो के पुत्र नही होते, जैसे लोक व्यवहार मे देखा जाता है कि कोई लडका अच्छा सुन्दर हो, कोमलाग हो तो उसे देखकर कह दिया जाता है कि 'यह लडका तो देवकुमार के समान है' इसी प्रकार प्रस्तुत प्रकरण मे लोक-प्रथा को लेकर अथवा देवकुमार के सौन्दर्याधिक्य की समानता के कारण भगवान अरिष्टनेमि के शिष्यो को वैश्रमणदेव के पुत्र की उपमा दी गई है।

"**मुडा भवेत्ता**" यहा पर पठित '**मुडा**' पद मुण्डित का बोधक है। मुडित दो प्रकार के होते हैं—द्रव्य-मुण्डित, भाव-मुण्डित। जिसने सिर के केश उतार रखे हो, केशलुञ्चन करवा रखा हो, वह द्रव्य-मुण्डित और जो क्रोध, मान, माया आदि जीवन-विकारो को समाप्त कर चुका है, वह भाव-मुडित कहलाता है। छहो भाई द्रव्य मुडित भी थे और भावमुडित भी।

"**छट्ठछट्ठेण**" का अर्थ है—षष्ठ षष्ठ से। षष्ठ-बेला लगातार दो उपवास का नाम है। एक साथ दो उपवास करना, तीसरे दिन पारणा कर लेना, फिर लगातार दो उपवास करने तथा फिर तीसरे दिन अन्न-जल ग्रहण करना, इसी प्रकार करते रहना यही बेले-बेले पारणा करना कहलाता

है। जैन-जगत मे उपवास को चतुर्थभक्त-परित्याग कहते हैं, लगातार दो व्रत षष्ठ-भक्त-विरमण तथा लगातार तीन उपवास अष्टमभक्त विरमण कहलाते हे।

किसी प्रति मे **"तवकम्म सजमेण तवसा"** ऐसा पाठ दिया गया है। पर **'तव कम्म'** शब्द के आ जाने पर पुन **तवसा** शब्द का प्रयोग क्यो किया गया है ? यह विचारणीय है।

"अहासुह देवाणुप्पिया" यहा पठित **'अहासुह'** इस पद का अर्थ है जैसे तुम्हे सुख हो। इस कथन के पीछे एक सैद्धान्तिक सत्य है। जैन-दर्शन का विश्वास है कि वही तप आत्म-शुद्धि का कारण बन सकता है, जो सुखपूर्वक, समाधिपूर्वक किया जाता है। जिस तप मे मन की समाधि भग हो जाए, मन अशान्त और दु खी हो जाये वह तप आत्म-शुद्धि का कारण नही बनसकता। फलत. साधक को तप करते समय अपनी मानसिक शान्ति का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

देवाणुप्पिया—देवानुप्रिय का अर्थ है—भद्र ! आगमो के परिशीलन से पता चलता है कि देवानुप्रिय शब्द का प्रयोग बडा आदरास्पद माना गया है। इस शब्द द्वारा वक्ता सम्बोधित व्यक्ति के प्रति अपनी आदरमयी तथा स्नेह पूर्ण भावना को व्यक्त करता है।

इन पदो द्वारा सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि श्रेष्ठ कार्यों मे कभी विलम्ब नही करना चाहिए। जो काय जीवन का भविष्य उज्ज्वल समुज्ज्वल बनानेवाले होते है, जिनसे मनुष्य परम-साध्य मोक्ष पद को प्राप्त करता है, उन कार्यों के सम्पादन मे किंचित् भी प्रमाद नही करना चाहिये। अन्यथा विचार विचार ही रह जाते है, उन्हे आचरण का रूप देना कठिन हो जाता है, इसीलिये भगवान महावीर स्वामी ने गौतम जी महाराज को कहा था—'हे गौतम ! एक समय के लिये भी अपने आपको प्रमादी नहीं बनाना चाहिये। **"समय गोयम मा पमायए"**।

"छट्ठ छट्ठेण जाव विहरति" यहाँ पठित **जाव**-यावत् पद से **"अणिक्खित्तेण तवकम्म-सजमेण अप्पाण भावेमाणे"** इन पदो का ग्रहण करना चाहिये। अर्थ मूलार्थ मे दिया जा चुका है।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने भगवान अरिष्टनेमि के छ शिष्यो के जीवन का कुछ परिचय कराया है। अब सूत्रकार उन्ही के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्रस्तुत करते हुए कहते है—

मूल—तते ण छ अणगारा अण्णया कयाइ छट्ठक्खमणपारणयसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति जहा गोयमो जाव इच्छामो ण छट्ठक्खमणस्स पारणाए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं सघाडएहि बारवतीए नयरीए जाव अडित्तए। अहासुहं-देवाणुप्पिया। तते ण ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरह अरिट्ठनेमि वदति, णमसति, वदित्ता, णमसित्ता अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अन्तियाओ सहसबवणाओ पडिनिक्खमति २ तिहिं सघाडएहि अतुरिय जाव अडति।

छाया—तत षड् अनगारा अन्यदा कदाचित् षष्ठक्षमणपारणके प्रथमाया पौरुष्या स्वाध्याय कुर्वन्ति। यथा गौतम, यावद् इच्छाम षष्ठक्षमणस्य पारणके युष्माभि अभ्यनुज्ञाता सन्त त्रिभि सघाटकै द्वारावत्या नगर्या यावद् अटितुम्? यथासुखम् देवानुप्रिय ! ततस्ते षडनगारा अर्हता अरिष्ट-

नेमिणा अभ्यनुज्ञाता सन्त , अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दन्ते, नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा अर्हत अरिष्ट-नेमे अन्तिकाद् सहस्राम्रवनात् प्रतिनिष्क्राम्यन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य त्रिभि सघाटकैस्त्वरित यावदटन्ति ।

पदार्थ—**ण**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है, **तते**—इस के पश्चात्, **छ अणगारा**—छहो साधु, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य समय, **छट्ठक्खमणपारणयसि**—षष्ठ क्षमण-बेले के पारणे के दिन, **पढमाए**—प्रथम, **पोरिसीए**—प्रहर मे, **सज्झाय**—स्वाध्याय, **करेंति**—करते हैं, **जहा**—जैसे, **गोयमो**—अनगार गौतम भगवान महावीर से पूछते हैं, **जाव**—यावत्, भगवान अरिष्टनेमि से बोले, **इच्छामो**—हम चाहते हैं, **छट्ठक्खमणस्स**—बेले के, **पारणाए**—पारणे मे, **तुब्भेहिं**—आप से, **अब्भणुण्णाया-समाणा**—आज्ञा प्राप्त किए हुए, **तिहिं**—तीन, **सघाडएहिं**—सघाडो से, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी मे, **जाव**—यावत्, **अडित्तए**—भिक्षार्थ गमन करना, इस पर भगवान बोले—**अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो ।

देवाणुप्पिया—देवानुप्रिये, **तते**—तत्पश्चात्, **ते**—वे, **छ**—छह, **अणगारा**—साधु, **अरहया**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिणा**—अरिष्टनेमि भगवान द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त किए हुए, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—भगवान अरिष्टनेमि को, **वदति**—वदना करते है, **नमसति**—नमस्कार करते हैं, **वदित्ता, नमसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करने के अनन्तर, **अरहतो**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स** अरिष्ट-नेमि के, **अन्तियाओ**—पास से, **सहसबवणाओ**—सहस्राम्र नामक वन से, **पडिनिक्खमति**—निकलते हैं, निकल कर, **तिहिं**—तीन, **सघाडएहि**—सघाडो से, **अतुरिय**—शीघ्रता और चपलता से रहित, **जाव**—यावत्, **अडति**—पर्यटन करते है ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वे छहो अनगार किसी समय बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते हैं, अनगार गौतम की भान्ति जीवनचर्या करते हुए भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे निवेदन करते हैं। भगवन् ! आज हमारा बेले का पारणा है। अत हम चाहते हैं, कि हम छहो भाई तीन भागो मे विभक्त हो जाए और द्वारिका नगरी मे भिक्षा के लिये भ्रमण करें। इसके लिये आपश्री की आज्ञा चाहते है।

अपने शिष्यो को सम्बोधित करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि बोले—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।

भगवान अरिष्टनेमि से आज्ञा मिल जाने पर छहो अनगार अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वन्दना तथा नमस्कार करने के अनन्तर अरिहन्त अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्र वन से निकलते है, निकल कर तीन सघाडो मे विभाजित हो कर चपलता और शीघ्रता को छोड कर शान्त भाव से द्वारिका नगरी मे यावत् भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यो की जीवन-चर्या का परिचय कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि छहो अनगार बडे आनन्द तथा उल्लास के साथ तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए समय बिता रहे थे। एक दिन की बात है कि बेले के पारणे का दिन था। प्रात काल प्रथम प्रहर तक उन्हो ने शास्त्रस्वाध्याय किया। शास्त्रो के अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन मे व्यतीत किया। दूसरे प्रहर मे ध्यान करते हैं, आत्मा का चिन्तन, मनन करते है। तीसरे पहर मे मुख-वस्त्रिका तथा भाजन एव वस्त्रो की प्रतिलेखना करते हैं। तदनन्तर पात्रो को झोली मे रखा, झोली उठा कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित हुए। भगवान को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगे—

भगवन्! यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करे, तो हम छहो अनगार तीन भागो मे बट कर, अर्थात् दो-दो की तीन टोलिया बना कर बेले के पारने के वास्ते द्वारिका नगरी मे भिक्षा के लिये जाए? इतना निवेदन कर के भगवान के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। अपने शिष्यो द्वारा पारणे के लिये द्वारिका नगरी मे भिक्षार्थ जाने की आज्ञा की माग सुन कर भगवान् बोले—

भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा कर लो। मेरी ओर से तुम्हे भिक्षार्थ द्वारिका नगरी मे जाने की आज्ञा है।

अपने आराध्यदेव गुरुदेव भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पारणे के लिये द्वारिका मे जाने की आज्ञा मिल जाने पर छहो अनगार दो-दो भागो मे अपने को बांट लेते हैं और भगवान को विधि-पूर्वक वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर द्वारिका नगरी की ओर चल देते हैं। यह प्रस्तुत सूत्र का सक्षिप्त भावार्थ है।

"जहा गोयमो जाव इच्छामो" इन पदो द्वारा सूत्रकार ने छहो मुनियो के जीवनवृत्त को गौतम स्वामी के जीवनवृत्त से उपमित किया है। गौतम स्वामी पारणे के लिये जैसे भगवान महावीर से पूछते हैं, वैसे ही ये मुनि भगवान अरिष्टनेमि से पूछते है। गौतम स्वामी से सम्बन्धित आगमीय पाठ इस प्रकार है—

बीयाए पोरसीए झाण झियाती, तइयाए पोरसीए अतुरियमचवलमसभते मुह-पोतिय पडिलेहेति, भायणवत्थाणि पडिलेहति, भायणाणि पमज्जति, भायणाणि उग्गाहेति, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, २ समण ३ वदति २ एव वयासी—।" अर्थात्—गौतम स्वामी दूसरे पहर में ध्यानारूढ होते, तीसरे पहर मे कायिक और मानसिक चपलता से दूर हो कर मुखवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रो की प्रतिलेखना करते हैं। तत्पश्चात् पात्रो को झोली मे रख कर और झोली को ग्रहण कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित होते है, वन्दना नमस्कार करते हैं तदनन्तर निवेदन करते है जैसे गौतम अनगार का यह वर्णन किया गया है, वैसे ही छहो मुनियो का समझ लेना चाहिए। अन्तर केवल भगवान अरिष्टनेमि और भगवान महावीर का है। गौतम अनगार भगवान महावीर के पास गए जब कि छहो मुनि भगवान अरिष्टनेमि के पास जाते है। इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नही है।

"तिहिं सघाडएहिं"—यहा सघाटक शब्द टोली के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार दो-दो की टोली मे छ साधुओ के तीन सघाटक वन जाते है। भाव यह है कि छहो मुनि पारणे के लिये इकट्ठे भी नही गए और न ही अकेले-अकेले गए। प्रत्युत वे दो-दो की टोली वना कर भिक्षा के लिये जाते है।

"अतुरिय जाव अडति" यहां पठित जाव—यावत् पद—**अचवलमसभते जुगतरपरिलोयणाए दिट्ठीए पुरओ ईरिय सोहेमाणे जेणेव बारवती नगरी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता वारवतीए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए**" इन पदो का ससूचक है, अर्थात् चपलता तथा सभ्रान्ति से रहित दो हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमिति का पालन करते हुए जहा द्वारिका नगरी थी, वहा आते है, वहा आकर द्वारिका नगरी मे साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरो मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं।

दो साधुओ का पारणा एक साधु भी ला सकता था, किन्तु एक न जा कर जो दो-दो साधु पारणे के लिये जा रहे हैं, इस से यह ध्वनित होता है कि साधु को यथाशक्य गोचरी के लिये अकेले नही जाना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र से सयमशील साधक के लिये तीन बातो को ग्रहण करने की पवित्र प्रेरणा प्राप्त होती है।

१—पारणे के दिन पहले प्रहर मे स्वाध्याय और दूसरे प्रहर मे ध्यान करना चाहिए।

२—गुरुजनो की आज्ञा ले कर फिर आहारादि के लिये जाना चाहिए।

३—भिक्षा के लिये जाने वाले साधक को चपलता चचलता और सभ्रान्ति से रहित हो कर शान्तभाव से ईर्यासमिति का परिपालन करते हुए भ्रमण करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमि के छहो मुनि भगवान से आज्ञा लेकर तीन भागो मे विभाजित हो कर द्वारिका नगरी मे वेले के पारणे के लिये पधार जाते है। अव सूत्रकार अग्रिमसूत्र मे उन मुनियो के अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तत्थ ण एगे सघाडए वारवतीए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवतीए देवीए गेहे अणुपविट्ठे, तते ण सा देवती देवी ते अणगारे, एज्जमाणे पासति पासित्ता हट्ठ जाव हियया आसणातो अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइ तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेति, करित्ता वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागया, सीहकेसराण मोयगाण थाल भरेति ते अणगारे पडिलाभेति, वदति, णमसति वदित्ता, णमसित्ता पडिविसज्जेइ। तदाणतर च ण दोच्चे सघाडए वारवतीए उच्च जाव विसज्जेइ।

छाया—तत्र एक सघाटक द्वारवत्या नगर्यामुच्चनीचमध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन्-अटन् वसुदेवस्य राज्ञ देवक्या देव्या गृहेऽनुप्रविष्ट । तत सा देवकी देवी तमनगारमेजमान पश्यति, हृष्टा यावत् हृदयेन आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि त्रिकृत्व (त्रिवार) आदक्षिण प्रदक्षिणा करोति, कृत्वा च वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च यत्रैव भक्त-गृह तत्रैवोपागता, सिहकेसराणा मोदकाना स्थाल भरति, तावनगारौ प्रतिलाभयति, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य प्रतिविसर्जयति, तदनन्तर च द्वितीय सघाटक द्वारवत्यामुच्चै यावद् विसर्जयति।

पदार्थ—ण—वाक्य सौदर्य के लिये है, तत्थ—उन तीन सिघाडो मे से, एगे—एक, सघाडए—सिघाडा, बारवतीए नयरीए—द्वारिका नगरी मे, घरसमुदाणस्स—घर समुदाय के, उच्चनीयमज्झिमाइ—साधारण असाधारण और मध्यम, कुलाइ—कुलो—घरो मे, भिक्खायरियाए—भिक्षा के लिये, अडमाणे-अडमाणे—भ्रमण करते हुए, वसुदेवस्स—वसुदेव, रण्णो—राजा के, देवतीए देवीए—देवकी-देवी के, गेहे—घर मे, अणुपविट्ठे—प्रविष्ट हुआ, तते—तदनन्तर, सा—वह, देवती देवी—देवकी देवी , एज्जमाणे—आते हुए, ते—उन, अणगारे—साधुओ को, पासइ—देखती है, पासित्ता—देखकर, हियया—हृदय से, हट्ठ—प्रसन्न होती है, जाव—यावत्, आसणातो—आसन से, अब्भुट्ठेति—उठती है, अब्भुट्ठित्ता—उठकर, सत्तट्ठपयाइ—सात-आठ कदम आगे जाकर, तिक्खुत्तो—तीन बार , आयाहिण—दक्षिण की ओर से, पयाहिण—प्रदक्षिणा, करेति—करती है, करित्ता—प्रदक्षिणाकरके, वदति—वन्दना करती है, णमसति—नमस्कार करती है, वदित्ता, नमसित्ता—वन्दना, नमस्कार करके, जेणेव—जहा पर, भत्तघरे—भक्त घर—रसोई घर है, तेणेव—वहा पर, उवागया—आई, आकर, सीहकेसराणा—सिह-केसर, मोयगाण—लड्डुओ का, थाल—थाल, भरेति—भरती है, थाल भर कर, ते अणगारे—उन साधुओ को, पडिलाभेति—प्रदान करती है, तदनन्तर, वदति—वन्दना करती है, णमसति—नमस्कार करती है, वदित्ता, नमसित्ता—वन्दना, नमस्कार करके, पडिविसज्जेति—उनको विदा करती है, तदाणतर च—तदनन्तर, दोच्चे—द्वितीय, दूसरा, सिंघाडए—सिघाडा, बारवतीए—द्वारिका नगरी के, उच्च०—साधारण असाधारण आदि गृहो मे, जाव—यावत् भिक्षा करता हुआ देवकी के घर मे आया, विसज्जेति—वह उसे भी सिह केसर लड्डू देकर विदा करती है।

मूलार्थ—तीन सिघाडो मे से एक सिंघाडे के दोनो मुनि द्वारिका नगरी के साधारण असाधारण तथा मध्यम गृहो मे से भिक्षा के लिये घूमते हुए महाराज वसुदेव की रानी देवकी देवी के घर मे प्रविष्ट हुए। तब देवकी देवी ने घर मे आते हुए मुनियो को देखा, देखकर वह प्रसन्नता से फूली नही समाई। तदनन्तर आसन से उठकर सात-आठ कदम आगे चलकर दक्षिण की ओर से उनकी तीन वार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके उनको वन्दन, नमस्कार किया, तत्पश्चात् जहाँ भोजन-गृह था वहा आई, आकर सिंहकेसर नामक लड्डुओ से एक थाल भरा और उसे मुनियो को बहराया, फिर वन्दना नमस्कार करके मुनियो को विदा किया।

पहले मुनियो के जाने के अनन्तर दूसरा सिंघाडा भी द्वारिका नगरी के उच्च असाधारण, नीच-सामान्य तथा मध्यम (न साधारण और न असाधारण, मध्यम श्रेणी के) गृहो मे भिक्षा के निमित्त भ्रमण करता हुआ देवकी देवी के घर मे आ पहुचा । देवकी देवी ने प्रथम सिघाडे की भाति इसको अभ्युत्थान वन्दन नमस्कार आदि से सत्कृत किया और उसे भी सिंह-केसर नामक लड्डू देकर विदा किया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि के छह साधुओ मे (जो कि दो-दो की टोली मे विभक्त होकर भिक्षा के लिये द्वारिका नगरी मे गये हैं) से पहली और दूसरी टोली को महाराज वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी देवी द्वारा सत्कृत सम्मानित करने के अनन्तर विधिपूर्वक दी जानेवाली सिंह-केसर मोदको की भिक्षा का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से सुपात्रदान में प्रवृत्ति रखनेवाले सद्गृहस्थो को अनेको शिक्षाए प्राप्त हो सकती है। घर मे आये हुए सुपात्र साधु का हृदय से सम्मान करना चाहिये। साधु को देखकर खडे होना, आसन छोड देना, उनके स्वागतार्थ उनको लेने के लिये आगे जाना, वन्दना नमस्कार करना, दान देने से पहले आनन्दानुभूति करना, दान देते समय आनन्द-विभोर होना, दान देने के पश्चात् हृदय को प्रमुदित बनाये रखना, वन्दन, नमस्कार रूप शिष्टाचारपूर्वक आगन्तुक साधु को विदा करना आदि बातो का शिक्षण उक्त संदर्भ से बहुत अच्छी तरह प्राप्त हो सकता है। कल्याण-कामी साधक को इस शिक्षण से अपने को शिक्षित करके तदनुसार आचरणशील बनकर अपना कल्याण करना चाहिये।

"**उच्चनीय-मज्झिमाइ कुलाइ**" का अर्थ है—उच्च नीच तथा मध्यम कुल-गृह। उच्च कुल से धनी गृह, नीच कुल से निर्धन गृह और मध्यम कुल से मध्यम अवस्थावाले गृह का ग्रहण करना होता है। भिक्षु के सामने धनी, निर्धन गृह का कोई प्रश्न नही होता। वह तो बिना किसी भेद के लोगो के घरो मे भिक्षार्थ जाता है। जहा उसे निर्दोष और सात्त्विक आहार मिलता है, उसका ग्रहण कर लेता है। यदि भिक्षु के सामने धनी का महत्त्व और निर्धन की अवहेलना हो तो समता के दर्शन कहा होगे? यह सत्य है कि लोक-व्यवहार मे जो कुल निंदनीय अथवा घृणास्पद है, जहा से भिक्षा लेने पर जनता से किसी प्रकार का अपवाद-मूलक विवाद उत्पन्न होता हो, उन कुलो मे साधु को भिक्षा के लिये जाना शास्त्र द्वारा निषिद्ध है।

"**घरसमुदाणस्स**" का अर्थ है—**गृहेषु समुदान भिक्षाटन, गृहसमुदानम्**, अर्थात् सामान्य रीति से सभी घरो से गोचरी करना। भाव यह है, कि जो गोचरी बीच मे आनेवाले घरो को छोडे बिना की जाती है उसे गृहसमुदान भिक्षा कहते हैं। इस भिक्षा मे गरीब-अमीर का प्रश्न नही रहता। इसमे तो बिना भेदभाव के आहार लिया जाता है।

'**देवती**'—का अर्थ है—'देवकी' यह शब्द आर्ष प्राकृत भाषा का रूप है, अन्यथा व्याकरण के आधार पर तो '**देवकी**' शब्द का प्राकृत प्रतिरूप '**देवई**' ऐसा होता है। कुछ प्रतियो मे '**देवई**' ऐसा ही पाठ उपलब्ध होता है।

"हट्ठ जाव हियया" यहा पठित **जाव** पद-**तुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा, परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणा"** इन पदो का वोधक है। इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१—**तुष्ट-चित्तानन्दिता**-हर्ष को प्राप्त एव सन्तोप को उपलब्ध तुष्ट और कृतकृत्य चित्त होने के कारण जो आनन्द को प्राप्त करती है। उसे **तुष्ट-चित्तानन्दिता** कहते हैं।

२—**प्रीतमना—तृप्तचित्ता** अर्थात् जिस का मन अभिलपित उत्तम पदार्थों की प्राप्तिरूप तृप्ति की उपलब्धि कर रहा है, उस स्त्री को प्रीतमना कहते हैं।

३—**परमसौमनस्यिता**—अत्यन्त आमोद-प्रमोद को प्राप्त करने वाली नारी का नाम परम सौमनस्यिता है।

४—**हर्ष-वश विसर्पद्-हृदया**—हर्ष के कारण जिस का हृदय विस्तृत विस्तार को प्राप्त हो गया है, हर्षाधिक्य से जिस का हृदय उछल रहा है, उस नारी को 'हर्ष-वश-विसर्पद्-हृदया' कहा जाता है।

"सत्तट्ठपयाइ" का अर्थ है—सात आठ कदम। यहा पर केवल सात या आठ का ग्रहण न करके सूत्रकार ने जो सात और आठ इन दोनो का एक साथ ग्रहण किया है, इस मे एक रहस्य है। वह यह है कि जब आदमी दोनो पाव जोड कर खडा होता है, तब चलने पर एक पाँव आगे होगा और दूसरा पाव पीछे। चलते-चलते जब अगले पाव से सात कदम पूरे हो जाएगे तब उसी दशा मे स्थित रहने से एक कदम आगे और एक कदम पीछे, ऐसी स्थिति होगी। तदनन्तर पिछले पाव को उठाना पडता है और उसे उठा कर दूसरे पाँव के साथ मिलाने से खडे होने की स्थिति सम्पन्न होती है। ऐसे क्रम मे जो पाव आगे था उससे तो सात कदम होते हैं और जिस समय पिछला पाव अगले पाव के साथ मिलाया जाता है उस समय आठ कदम होते है। इस तरह एक पाव से सात कदम रहते है और दूसरे से आठ कदम होते है। इसी भाव को सूचित करने के लिये सूत्रकार ने केवल सात या आठ का उल्लेख न कर के **"सत्तट्ठपयाइ"** ऐसा उल्लेख किया है, जो कि सर्वथा उचित ही है।

"सिंह-केसराण मोयगाण" का अर्थ है—सिंह केसर नामक मोदक—लड्डू। सिंह केसर का अर्थ कोषो ने कई प्रकार का बतलाया है। एक कोपकार इसका अर्थ मोदक विशेष करते हैं। गुजराती कोष जैनागम शब्द सग्रह मे लिखा है—

"सीह-केसर—पुं० (सिंह-केशर) सिंह नी केस जेवी बून्दी ना बना वेल लाडवा, सिंह केसरिया लाडवा (पृष्ठ ७८१)। अर्थात्—शेर की गर्दन के बालो के समान बारीक दानो से निर्मित मोदक सिंह-केसर मोदक कहलाते हैं।*

* पण्डितप्रवर श्री घासीलाल जी महाराज सिंह केसर का अर्थ करते हुए लिखते है—

"सीहकेसराण मोयगाण"—सिंहकेसराणा मोदकानाम्। चतुरशीति-विशिष्ट-वस्तु-विनिर्मिता मोदका सिंहकेसरमोदका उच्यन्ते—अर्थात् जिन लड्डुओ मे ८४ प्रकार की विशिष्ट वस्तुए डाली गई हैं, वे लड्डू 'सिंहकेसर मोदक' कहलाते हैं।

"उच्च जाव विसज्जेति" यहा पठित जाव पद से प्रस्तुत सूत्र मे ही पठित—"नीयमज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ते अणगारे पडिलाभेति वदति णमसति वदित्ता नमसित्ता पडिवसज्जेति" इन पदो का ससूचन कराया गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मुनियो की दो टोलिया देवकी देवी के घर से आहार लेकर चली गई हैं, इस के पश्चात् तीसरी टोली के सम्बन्ध मे सूत्रकार वर्णन करते हुए लिखते हैं—

मूल—तदाणतर च ण तच्चे संघाडए बारवतीए नयरीए उच्चनीयजाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एव वयासी—

किण्ण देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवतीए नयरीए नवजोयण वित्थिणाए पच्चक्खदेवलोगभूताए समणा निग्गथा उच्चनीय जाव अडमाणा भत्तपाण णो लभति, जन्न ताइ चेव कुलाइ भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसन्ति ?

तते ण ते अणगारा देवती देवी एव वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवतीए नयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा निग्गथा उच्चनीय जाव अडमाणा भत्तपाण नो लभति, नो चेव ण ताइ ताइ कुलाइ दोच्चपि भत्तपाणाए अणुप्पविसन्ति।

एव खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावतिस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव नलकूब्बर समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्म सोच्चा ससार-भउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाण मु डा जाव पव्वइया। तते ण अम्हे ज चेव दिवस पव्वतिता त चेव दिवस अरह अरिट्ठनेमि वदामो नमसामो, वदित्ता, नमसित्ता इम एयारूव अभिग्गह अभिगेण्हामो—इच्छामो ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुह देवाणुप्पिया ! तते ण अम्हे अरहतो अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेण जाव विहरामो। त अम्हे अज्ज छट्ठक्खमण-पारणयसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहे अणुप्पविट्ठा, ते नो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव ण अम्हे, अम्हे ण अन्ने, देवति देवि एव वदति, वइत्ता जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडिगता।

छाया—तदनन्तर च तृतीय सघाटक द्वारवत्या नगर्यामुच्चनीच यावत् प्रतिलाभयति, प्रतिलभ्य एवमवादीत् —

किं देवानुप्रिया ! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारवत्यां नगर्यां नवयोजन-विस्तीर्णायां प्रत्यक्ष-देव-लोक-भूतायां श्रमणा निर्ग्रन्था उच्चनीच यावद् अटन्त भक्तपान नो लभन्ते, यत्तानि चैव कुलानि भक्तपानाय भूयो-भूय अनुप्रविशन्ति ? तत तावनगारौ देवकीं देवीमेवमवादिष्टाम् नो खलु देवानुप्रिये ! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारवत्यां नगर्यां यावद् देवलोकभूतायां श्रमणा निर्ग्रन्था उच्चनीच यावद् अटन्त भक्तपान नो लभन्ते, नो यच्चैव तानि-तानि कुलानि द्वितीयमपि तृतीयमपि भक्तपानाय अनुप्रविशन्ति। एव खलु देवानुप्रिये। वय भद्दिलपुरे नगरे नागस्य गृहपते पुत्रा, सुलसाया भार्याया आत्मजा षड् भ्रातर सहोदरा सदृशा यावत् नलकूबरसमाना अर्हत अरिष्टनेमे अन्तिके धर्मं श्रुत्वा ससारभयाद् उद्विग्ना भीता जन्ममरणाणा (जन्ममरणेभ्य) मुण्डा यावत् प्रव्रजिता। तत वय यच्चैव दिवस प्रव्रजिता, तच्चैव दिवसमर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दामहे नमस्याम वन्दित्वा नमस्कृत्य इदमेतद् रूपमभिग्रहमभिगृह्णाम—इच्छामो भदन्त ! युष्माभि अभ्यनुज्ञाता सन्त यावद् यथासुख देवानुप्रिया ! तत वय अर्हत अभ्यनुज्ञाता सन्त यावज्जीव षष्ठषष्ठेन यावद् विचराम। तद् वयमद्य षष्ठक्षमणपारणके प्रथमाया पौरुष्या यावद् अटन्त तव गृहे अनुप्रविष्टा। तन्नो खलु देवानुप्रिये ! ते चैव वयम्, आवामन्यौ, देवकी देवीमेव वदत उक्त्वा यामेव दिश प्रादुर्भूतौ तामेव दिश प्रतिगतौ।

पदार्थ—**तदाणतर**—तदनन्तर, **च**—समुच्चय अर्थ मे है, **ण**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है, **तच्चे**—तृतीय, **सघाडए**—सिघाडा—टोली, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी मे पूर्व की भान्ति **उच्चनीय**—उच्च नीच, जाव—यावत् मध्यम कुलो मे घूमता हुआ देवकी देवीके घर, पहुचा, **पडिलाभेति**—वह भिक्षा देकर लाभ लेती है, तदनन्तर, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगी —

देवाणुप्पिया ! हे देवताओ को प्यारो ! **किण्ण**—क्या, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव की, **इमीसे बारवतीए नयरीए**—इस द्वारिका नगरी मे, जोकि **नव जोयणवित्थिणाए**—नव योजन चौडी (और १२योजन लम्बी है), **पच्चक्ख**—प्रत्यक्ष रूप से, **देवलोगभूयाए**—देवलोक के समान है, **समणा**—श्रमण, **निग्गथा**—निग्रन्थ, **उच्चनीय**—सामान्य, असामान्य आदि कुलो मे, **जाव**—यावत्, **अडमाणा**—भ्रमण करते हुए, **भत्तपाण**—आहार पानी, **नो लभति**—प्राप्त नही करते है, **जन्न**—क्योकि, **ताइ ताइ**—उन उन, **कुलाइ**—घरो मे, **चेव**—निश्चय ही, **भत्तपाणाए**—आहार पानी के लिये, **भुज्जो-भुज्जो**—बार-बार, **अणुप्पविसति**—प्रवेश करते है ? **तते**—तदनन्तर, **ते**—वे, **अणगारा**—साधु, **देवतीं देवीं**—देवकी देवी को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—, **खलु**—निश्चय ही, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव की, **देवाणुप्पिए** ! हे देवानुप्रिये ! **इमीसे**—इस, **बारवतीए**—द्वारिका, **नयरीए**—नगरी मे, **जाव**—यावत् जो, **देवलोगभूयाए**—देवलोक के समान हैं, **समणा**—श्रमण, **निग्गथा**—निर्ग्रन्थ, **उच्चनीय०**—सामान्य, असामान्य आदि घरो मे, **जाव**—यावत्, **अडमाणा**—भिक्षा के लिए घूमते हुए, **भत्तपाण**—आहार-पानी को, **नो लभति**—प्राप्त नही करते हैं, **नो**—ऐसी बात नही है, **नो चेव**—ऐसा भी नही है, कि, **ताइ ताइ**—उन उन, **कुलाइ**—कुलो मे, **दोच्चपि**—दो बार, **तच्चपि**—तीन बार, **भत्तपाणाए**—आहार-पानी के लिये, **अणुप्पविसति**—प्रवेश करते है, **खलु**—

निश्चय ही, **देवाणुप्पिए** !—हे देवानुप्रिये ! **एव**—(वस्तुस्थिति) इस प्रकार है—, **अम्हे**—हम, **भद्दिलपुरे**—भद्दिलपुर, **नयरे**—नगर मे, **नागस्स**—नाग, **गाहावतिस्स**—गृहपति के, **पुत्ता**—पुत्र है, उसकी, **सुलसाए**—सुलसा नामक, **भारियाए**—धर्म पत्नी के **अत्तया**—आत्मज है, **छ भायरो**—हम छ भाई हैं, **सहोदरा**—मा जाए हैं, **सरिसया**—एक जैसे हैं, **जाव**—यावत्, **नलकूब्बर समाणा**—वैश्रमणदेव के पुत्र जैसे हैं, **अरहतो**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के, **अतिए**—पास, **धम्म**—धर्म को, **सोच्चा**—सुनकर, **ससार-भउव्विग्गा**—ससार के भय से उद्विग्न बने हुए, **जम्म-मरणाण**—जन्म और मरण से, **भीया**—भयभीत हुए, **जाव**—यावत्, **मुडा**—मुण्डित होकर, **पव्वइया**—दीक्षित हो गये, **तते**—उसके अनन्तर, **अम्हे**—हम, **च**—अवधारण अर्थ मे है, **एव**—निश्चयार्थक है, **ज दिवस**—जिस दिन, **पव्वइया**—दीक्षित हुए, **त चेव दिवस**—उसी दिन, **अरहत**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि को, **वदामो**—वदना करते है, **नमसामो**—नमस्कार करते हैं, **वदित्ता**—वन्दना करके, **नमसित्ता**—नमस्कार करके, **इम**—यह, **एयारूव**—इस प्रकार का, **अभिग्गह**—अभिग्रह अर्थात् प्रतिज्ञा को, **अभिगिण्हामो**—ग्रहण करते हैं, **भते**—हे भगवन् !, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **इच्छामो**—हम चाहते है, **तुब्भेहिं**—आपश्री द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त किये हुए, **जाव**—यावत् भगवान ने कहा, **अहासुह**—जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो, **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो !

अम्हे—हम । **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **अरहतो**—अरिहन्त भगवान से, **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त कर, **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त, **छट्ठछट्ठेण**—वेले-वेले तप द्वारा, **जाव**—यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **विहरामो**—विचरते है, **त**—इसलिये, **अम्हे**—हम, **अज्ज**—आज, **छट्ठक्खमणपारणयसि**—वेले के पारणे मे, **पढमाए**—प्रथम, **पोरिसीए**—प्रहर मे स्वाध्याय किया, **जाव**—यावत्, **अडमाणा**—भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए हमने, **तव गेहे**—तुम्हारे घर मे, **अणुप्पविट्ठा**—प्रवेश किया है, **त**—इसलिये, **खलु**—निश्चयार्थक है, **देवाणुप्पिए** !—हे देवानुप्रिये । **ते**—वे, **अम्हे**—हम, **नो**—नही हैं, **च**—समुच्चयार्थक हैं, **एव**—निश्चयार्थक है, **अम्हे**—हम, **अन्ने**—अन्य हैं, **देवती देवीं**—देवकी देवी को, **एव**—इस प्रकार, **वदति**—कहते हैं, **वइत्ता**—इस प्रकार कहकर, **जामेवदिस**—जिस दिशा से, **पाउब्भूया**—आये थे, **तामेव**—उसी ही, **दिस**—दिशा मे, **पडिगता**—चले गये ।

मूलार्थ—तदनन्तर उन साधुओ की तीसरी टोली द्वारिका नगरी के असाधारण साधारण तथा मध्यम श्रेणी के लोगो के घरो मे भिक्षा के लिये भ्रमण करती हुई देवकी देवी के घर आई । माता देवकी ने उस टोली का पूणतया स्वागत किया और सम्मानपूर्वक उसे सिंहकेसर नामक मोदको का भोजन वहराया । आहार देने के अनन्तर देवकी देवी ने मुनियो की सेवा मे सादर निवेदन किया—

'देवानुप्रियो ! आदरास्पद मुनिवर' ! कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नव योजन चौडी और १२ योजन लम्बी है प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान है । इतनी विशाल नगरी

मे श्रमणो—साधुओ को साधारण-असाधारण तथा मध्यम श्रेणी के लोगो के घरो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए क्या आहार-पानी प्राप्त नही होता ? क्या कारण है कि श्रमणो को आहार पानी के लिये बार बार एक ही घर आना पडता है ?'

देवकी देवी के प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि बोले— 'हे देवानुप्रिये ! हे भद्रे ! कृष्ण वासुदेव की नगरी बडी विशाल है और देवलोक के समान है। इसमे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए श्रमणो, साधुओ को अहार-पानी नही मिलता, ऐसी कोई बात नही है। कृष्ण महाराज की द्वारिका मे साधुजनो को अहार पानी को प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही है, सभी घरो मे सुविधापूर्वक आहार-पानी प्राप्त हो जाता है। दूसरी बात—साधु लोग जिन घरो से एक वार अहार ले आते हैं, विना कारण उन्ही घरो मे दूसरी बार या तीसरी बार आहारार्थ नही जाते है।

देवानुप्रिये ! वास्तव मे बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के निवासी नाग गृहपति के पुत्र हैं, हमारी माता सुलसा सेठानी है। हम छह सगे भाई हैं, एक जैसे प्रतीत होते है—रूप, लावण्य, अवस्था मे समान से दृष्टिगोचर होते हैं, वैश्रमणदेव के पुत्र के समान हमारी आकृति है। हमने अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे वैठकर धर्म का श्रवण किया, तत्पश्चात् ससार (आवागमन के चक्र) के भय से उद्विग्न तथा जन्म-मरण से भयभीत होने के कारण हम दीक्षित हुए थे, उसी दिन अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वन्दना नमस्कार करके हमने अभिग्रह धारण करने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हुए कहा—

भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम 'जीवन पर्यन्त बेले बेले पारणा करे" ऐसी प्रतिज्ञा करना चाहते हैं। हमारी इस प्रार्थना पर भगवान अरिष्टनेमि ने कहा, देवानुप्रियो ! जैसे तुमको सुख हो। इस प्रकार अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा हो जाने पर हमने बेले-बेले पारणा करना आरम्भ कर दिया। आज हमारे वेले का पारणा था। प्रथम प्रहर हमने स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर ध्यान किया, तीसरे प्रहर हम छहो भाई तीन टोलिया वना कर बेले के पारणे के वास्ते भिक्षा के लिये द्वारिका नगरी के साधारण असाधारण आदि सभी गृहो मे भ्रमण करते हुए आपके घर आगए है। अत हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे घर मे पहले आ चुके है, वे हम नही हैं।

हम उनसे अन्य हैं। इस प्रकार देवकी देवी के प्रति अपनी बात कह कर दोनो मुनि जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा की ओर चले गये।

व्याख्या—एक जैसी आकृतिवाले पदार्थों के पृथक्करण मे सन्देह का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही है, जहा पर अधिक साम्य होता है, रूप, वर्ण लावण्य एक समान होता है, वहा पर देखनेवाले को भ्रम हो जाने के कारण पृथक्करण मे अवश्य कठिनता हो जाया करती है और कभी-कभी तो मनुष्य का यह भ्रान्त ज्ञान निश्चय के रूप मे परिणत हो जाता है। इसी भाव को प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने व्यक्त किया है।

भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यो की तीसरी टोली जिस समय देवकी देवी के घर मे प्रविष्ट हुई तो उसे देख कर देवकी देवी के मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या कृष्ण वासुदेव की स्वर्ग-तुल्य विशाल नगरी मे जहा पर कि सम्पत्तिशाली सम्मान्य गृहस्थो का निवास चल रहा है, इन श्रमण निर्ग्रन्थो को आहार पानी नही मिलता होगा। यह साधु तीसरी वार मेरे घर मे आए हैं। यदि इन को अन्यत्र भिक्षा मिल जाती तो फिर ये तीसरी बार मेरे यहा क्यो आते ? इस से प्रतीत होता है कि इन को और किसी घर मे भिक्षा की प्राप्ति ही नही हुई है। यह सन्देह देवकी देवी को उन साधुओ की अधिक समानता के कारण होना स्वाभाविक ही था।

यह सत्य है कि देवकी देवी ने उन साधुओ को भिक्षा देने मे तो किसी प्रकार की आनाकानी नही की और न ही उसने जरा विलम्ब किया, किन्तु विधि और सम्मानपूर्वक भिक्षा देने के अनन्तर उसने अपने आन्तरिक भाव को छिपाए रखने की अपेक्षा उसे प्रकट कर देना ही उचित समझा। ऐसा करना उचित ही था। किसी बात को मन मे रखने की अपेक्षा उसे निकाल देना, अपनी जिज्ञासा बता कर उसका समाधान कर लेना अच्छा होता है। भ्रान्ति से कई वार अनर्थ हो जाते हैं। इस अनर्थ को रोकने का सर्वोत्तम साधन वही है जिसका देवकी देवी ने आश्रयण किया है।

देवकी देवी के उक्त प्रश्न को सुन कर उस के समाधान मे मुनियो ने अपना जीवन-परिचय दिया और बताया कि हम भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के पुत्र हैं, हमारी माता सेठानी सुलसा है भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे बैठ कर धर्म का श्रवण करने से हमे वैराग्य हो गया और हम साधु बन गए। बेले-बेले तप का आराधन करने लगे। आज बेले का पारणा है, हम सब ने अपनी तीन टोलिया बना ली थी। तीनो टोलिया द्वारिका नगरी मे भिक्षार्थ भ्रमण कर रही हैं। इस प्रकार इन मुनियो ने अपना सारा जीवन-वृत्तान्त सुना कर देवकी देवी के सन्देह को निवृत्त करते हुए अपने जीवन को आदर्श के सर्वथा अनुरूप बतलाने का भी स्तुत्य प्रयत्न किया है।

उन्होने दूसरी बात यह भी कह दी कि साधु दो या तीन वार भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर मे नही जाना और न ही हम दूसरी या तीसरी वार आप के घर आए हैं। हम से पहले जो आपके घर मे आ चुके हैं, वे मुनिराज दूसरे थे, हम वे नही हैं, हम और है। मालूम होता है कि आपको हमारी समान आकृति और समान अवस्था को देख कर भ्रम हो गया है।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा ज्ञातव्य तीन बातो का बोध होता है। उन्हे भी समझ लेना चाहिए –

सयम शील मुनिराज जितनी बार घर मे आवे उतनी बार सद्गृहस्थ को उनका विधिपूर्वक वन्दन, नमस्कार और भक्त-पान आदि अपेक्षित वस्तुओ से सत्कार करना चाहिए।

किसी भी सन्देहमूलक विचार की उपेक्षा करने की अपेक्षा उसको सरलता पूर्वक प्रकट करके सन्देह रहित होने का प्रयास करना चाहिए। मन मे सन्देह के रहने से अश्रद्धा, अवहेलना आदि अनेको दोष उत्पन्न हो सकते हैं, अत. इसका परिहार कर लेना ही उचित होता है।

सयमशील मुनि को बिना किसी विशिष्ट कारण के भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर मे एक से अधिक बार जाने का प्रयत्न नही करना चाहिए तथा अपने सम्बन्ध मे उत्पन्न हुए किसी भी सन्देह को उसी समय दूर कर देना चाहिए ताकि अपने निमित्त से किसी गृहस्थ को धर्मभ्रष्ट होने का अवसर न आए और उसकी श्रद्धा पर किसी भी प्रकार का आघात न हो।

"**उच्चनीय जाव पडिलाभेइ**" यहां पठित "**जाव**"—यावत् पद से पिछले सूत्र मे पढे गए—**मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स थाल भरेति ते अणगारे**" इन पदो की ओर सकेत किया गया है।

नव जोयण ० वित्थिणाए पच्चक्खदेवलोगभूयाए" इस वाक्य के साथ पृष्ठ २३–२४ पर दिए गए द्वारिका वर्णन की सगति अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिए।

किसी प्रति मे '**नवजोयण०**' इस पाठ से पहले "**दुवालस जोयणायामा**" ऐसा पाठ आता है। वर्णन-क्रम से यह पाठ पहले ही आना चाहिए। दोनो पाठ एक ही स्थान पर दिए गए हैं। दोनो मे पहला स्थान "दुवालसजोयणायामा" का है, परन्तु आगमोदय समितिवालो ने इस सस्करण मे पहले पाठ को छोड कर दूसरे का आश्रयण न जाने किस उद्देश्य से किया है ? यह अवश्य विचारणीय है।

'**नगरीए जाव देवलोगभूयाए**" इस वाक्य का जाव पद द्वारिका नगरी के **दुवालसजोयणायामा** आदि पदो का सूचक है। विभक्ति-व्यत्यय स्वय कर लेना चाहिए।

"सरिसया जाव नलकूब्बरसमाणा" यहा पठित **जाव** पद "**सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गुलियअयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छकियवच्छा कुसुम-कुण्डल-भद्दालया**" इन पदो का बोधक है। इन पदो का अर्थ पीछे पृष्ठ ६२ पर लिखा जा चुका है।

ससारभउव्विग्गा—ससार भयोद्विग्ना, ससारात् यद् भय तेन उद्विग्ना—ससारभयोद्भ्रान्ता, अर्थात्—ससार के दु खो से होनेवाला भय, उससे उद्विग्न—खिन्न होनेवाले 'ससारभयोद्विग्न' कहलाते है। **अभिग्गह** का अर्थ है—अभिग्रह। अभिग्रह प्रतिज्ञा विशेष का नाम है। "**मुडा जाव पव्वइया**"—यहा पठित जाव पद से "**भवेत्ता अगाराओ अणगारिय**" इन पदो का ग्रहण करना चाहिये।

समाणा जाव अहासुह" यहा पठित जाव पद **जावज्जीवाए छट्टछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवकम्मसजमेण अप्पाण भावेमाणे विहरित्तते**" इन पदो का परिचायक है।

"छट्ठ छट्ठेण जाव विहरामो पोरिसीए जाव अडमाणा" यहा पठित जाव पद भी पीछे पढे गये पदो का ससूचक है।

प्रस्तुत सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि के छ शिष्यो मे से दो शिष्यो के साथ देवकी देवी के साथ हुई बात का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार देवकी देवी के मन मे उठे एक सकल्प का वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तीसे देवतीते देवीए अयमेयारूवे अज्भत्थिए० समुपण्णे, एव खलु अह पोलासपुरे नगरे अतिमुत्तेण कुमारसमणेण बालत्तणे वागरिता तुमण्ण देवाणुप्पिए! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि, सरिसए जाव नलकूब्बरसमाणे, नो चेव ण भरहे वासे अन्नातो अम्मयातो तारिसए पुत्ते पयाइस्सइ त ण मिच्छा, इम ण पच्चक्खमेव दिस्सइ भरहे-वासे अन्नातो वि अम्मयातो एरिस जाव पुत्ते पयायाओ। त गच्छामि ण अरह अरिट्ठ-नेमि वदामि नमसामि, वदित्ता, णमसित्ता इम च ण एयारूव वागरण पुच्छिस्सामीत्ति कट्टु एव सपेहेति, सपेहित्ता कोडुबियपुरिसा सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी— लहुकरणप्पवर जाव उवट्ठवेंति, जहा देवाणदा जाव पज्जुवासइ। ते अरहा अरिट्ठनेमि देवति देवि एव वयासी— से नूण तव देवती! इमे छ अणगारे पासेत्ता अयमेयारूवे अज्भत्थि० एव खलु अह पोलासपुरे नगरे अतिमुत्तेण त जाव णिगच्छसि, णिगच्छित्ता जेणेव मम अतिय हव्वमागया, से नूण देवति! अत्थे समट्ठे? हता अत्थि!

छाया—तस्या देवक्या देव्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिक० समुत्पन्न —एव खलु अह पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तेन कुमारश्रमणेन बालत्वे व्याकृता-त्व नु देवानुप्रिये! अष्टपुत्रान् प्रजनिष्यसि, सदृश यावत् नलकूबरसमानान्, नो चैव भारते वर्षे अन्या अम्बा तादृश पुत्रान् प्रजनिष्यति, तन्मिथ्या, इद प्रत्यक्षमेव दृश्यते भारते वर्षे अन्यतोऽपि अम्बाया ईदृश यावत् पुत्रा प्रजातास्तद् गच्छामि, अर्हन्तमरिष्टनेमि वन्दे, नमस्यामि, वन्दित्वा, नमस्कृत्य इद चैतद्रूप व्याकरण प्रक्ष्यामीति कृत्वा एव सप्रेक्षते, सप्रेक्ष्य, कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दायति, शब्दायित्वा एवमवादीत्— लघुकरणप्रवर यानम् उपस्थापयन्ति, यथा देवानन्दा यावत् पर्युपास्ते। तत् अर्हन् अरिष्टनेमि देवकी देवीमेवम-वादीत्—अथ नून तव देवकि! इमान् षट् कुमारान् दृष्ट्वा अयमेतद्रूप आध्यात्मिक० समुत्पन्न, एव खलु अह पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तेन तच्चैव यावत् निर्गच्छसि, निर्गत्य यत्रैव ममान्तिके शीघ्र-मागता, अथ नून देवकि! अर्थ समर्थ? हत अस्ति!

पदार्थ—तीसे—उस, देवतीते—देवकी, देवीए—देवी के, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार के, **अज्भत्थिए०**—आध्यात्मिक, **समुप्पण्णे**—समुत्पन्न—मानसिक सकल्प हुआ, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **अह**—मैं (मुझे), **पोलासपुरे**—पोलासपुर नामक, **नगरे**—नगर मे, **अइमुत्तेणं**—

अतिमुक्त, **कुमारसमणेण**—कुमार श्रमण ने, **बालत्तणे**—बालकपने मे, **वागरित्ता**—कहा था, **देवाणुप्पिए**—हे देवानुप्रिये !, **तुमण्ण**—तू, **अट्ठपुत्ते**—आठ पुत्रो को, **पयाइस्ससि**—जन्म देगी जो कि, **सरिसए**—एक जैसी आकृतिवाले होगे, **जाव**—यावत्, **नलकूब्बरसमाणे**—वैश्रमणदेव के पुत्र के समान होगे, **ण**—वाक्य-सौन्दर्य के लिये है, **च**—समुच्चयार्थक है, **एव**—निश्चयार्थक है, **अन्नातो**—अन्य, **अम्मयातो**—माताए, **तारिसए**—उनके समान, **पुत्ते**—पुत्रो को, **नो पयाइस्सति**—जन्म नही देगी, **त ण मिच्छा**—वह कथन मिथ्या प्रमाणित हुआ, **इम**—यह, **पच्चक्खमेव**—प्रत्यक्ष ही, **दिस्सइ**—दिखाई दे रहा है, **भरहे वासे**—भारतवर्ष मे, **अन्नातो वि**—अन्य भी, **अम्मयातो**—माता से, **एरिस**—ऐसे—इनके समान, **जाव**—यावत्, **पुत्ते**—पुत्र, **पयायाओ**—उत्पन्न हुए है, **त**—इसलिये, **गच्छामि**—मैं जाती हू, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि को, **वन्दामि**—वन्दना करती हू, **णमसामि**—नमस्कार करती हू, **वदित्ता**—वन्दना करके, **णमसित्ता**—नमस्कार करके, **च**—समुच्चयार्थक है, **तदनन्तर इम**—यह, **एयारूव**—इस प्रकार के, **वागरण**—प्रश्न, **पुच्छिस्सामि**—पूछू गी, **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर, **एव**—इस प्रकार, **सपेहेति**—विचार करती है, **सपेहित्ता**—विचार करके, तदनन्तर, **कोडुबियपुरिसा**—सेवक जनो को, **सद्दावेइ**—बुलाती है, **सद्दावित्ता**—बुलाकर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगी, **लहुकरणप्पवर**—शीघ्र कार्य करने-वाले वृषभो से युक्त रथको, **जाव**—यावत्, राजपुरुष, **उवट्ठवेंति**—उपस्थित करते हैं, **जहा**—जिस सकार, **देवानन्दा**—देवानन्दा भगवान के पास गई, **जाव**—यावत्—देवकी देवी, **पज्जुवासइ**—भगवान की सेवा करने लगी तब, **ते**—वे, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि भगवान, **देवति देवि**—देवकी देवी को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **देवती !**—हे देवकि ! **नूण**—निश्चय ही, **से**—अथ, अब, **तव**—तेरे को, **इमे**—इन, **छ अणगारे**—छ साधुओ को, **पासेत्ता**—देखकर, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का, **अज्झत्थि०**—सकल्प उत्पन्न हुआ, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **अह**—मैं, **पोलासपुरे नगरे**—पोलासपुर नगर मे, **अइमुत्तेण**—अतिमुक्त कुमार श्रमण, **त**—तू, **जाव**—यावत्, **णिगच्छसि**—घर से निकलती है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर, **जेणेव**—जहा पर मैं हू वहा, **मम अन्तिय**—मेरे पास, **हव्वमागया**—शीघ्र आ गई है, **से**—अथ, **नूण**—निश्चय ही, **देवती !**—हे देवकि !, **अट्ठे**—अर्थ-वार्ता, **समट्ठे**—ठीक है ? **हता अत्थि**—हा, यह ठीक है।

मूलार्थ—उन श्रमणो के चले जाने के अनन्तर देवकी देवी के मन मे यह निश्चयात्मक-विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे पोलासपुर नगर मे अतिमुक्त कुमार श्रमण ने बालावस्था मे कहा था कि देवानुप्रिये! तू वैश्रमण कुमार के तुल्य और समानवर्णवाले आठ पुत्रो को जन्म देगी। तथा भारतवर्ष मे अन्य माताए इस प्रकार के पुत्रो को जन्म नही देंगी। वह कथन मिथ्या निकला, क्योकि यह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओ से भी इस प्रकार के नलकूबर के समान पुत्र उत्पन्न हुए हैं। अत मैं जाती हू अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना नमस्कार करती हू और

वन्दना नमस्कार करके यह प्रश्न पूछू गी। इस प्रकार मन मे विचार करके उसने सेवको को बुलाया और उनसे कहा कि तुम शीघ्र चलनेवाले बैलो से सुसज्जित धर्म-रथ को तैयार करो। यह आज्ञा मिलते ही सेवको ने शीघ्रगामी वृषभो से युक्त रथ को तैयार कर दिया। जिस प्रकार देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हुई थी उसी प्रकार देवकी देवी भी गई।

अरिहन्त अरिष्टनेमि देवकी देवी को देखते ही कहने लगे— हे देवकि। इन छह अनगारो को देख कर तुम्हारे मन मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ है कि मुझे पोलासपुर नगर मे अतिमुक्तकुमार ने कहा था, यावत् वस्तुस्थिति जानने के लिये तुम घर से निकलकर बड़ी शीघ्रता के साथ मेरे पास आई हो, क्या यह बात सत्य है ? भगवान के इस प्रश्न का समाधान करती हुई देवकी कहने लगी —

भगवन् ! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य है, मैं इसी उद्देश्य के लिये आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुई हू ।

व्याख्या—भगवान अरिष्टनेमि के शिष्यो को तीसरी वार अपने घर मे आए देखकर देवकी देवी के हृदय मे जो सकल्प उत्पन्न हुआ, उसका निश्चय करने के लिये वह भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित हुई तथा भगवान ने उस के हृदयगत सकल्प को जिन स्पष्ट शब्दो मे वर्णन किया है, इन सब बातो का प्रस्तुत सूत्र मे दिग्दर्शन कराया गया है। उनका पदार्थ और मूलार्थ मे स्पष्टीकरण कर दिया गया है। **"अज्झत्थिए० समुप्पण्णे"** इस वाक्य मे शून्य द्वारा—**कप्पिए-चिन्तिए-पत्थिए-मणोगए-सकप्पे** इन पदो का बोध होता है। आध्यात्मिक—आत्मगत को कहते हैं। कल्पित शब्द हृदय में उठनेवाली अनेकविध कल्पनाये, चिन्तित शब्द—बार-बार किया गया विचार। प्रार्थित शब्द—इस दशा का मूल कारण क्या है ? इस जिज्ञासा का पुन पुन होना। मनोगतशब्द—जो विचार अभी मन मे है प्रकट नही किया गया है, तथा सकल्प शब्द—सामान्य विचार—इस अर्थ का बोधक है।

"अतिमुत्तेण कुमार समणेण" का अर्थ है—अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण। अतिमुक्त कुमार श्रमण (सुकुमार शरीरवाला श्रमण, या कुमारावस्था वाला श्रमण) कस कुमार के छोटे भाई थे। जिस समय कस की धर्मपत्नी जीवयशा देवकी के साथ क्रीडा कर रही थी उस समय अतिमुक्त कुमार जीवयशा के घर मे भिक्षा के लिये गये थे। आमोद-प्रमोद मे मग्न जीवयशा ने अपने देवर को मुनि के रूप में देखकर उपहास करना प्रारम्भ किया। वह बोली—देवर ! आओ तुम भी मेरे साथ क्रीडा करो, इस आमोद-प्रमोद मे तुम भी भाग लो। इस पर मुनि अतिमुक्त कुमार जीवयशा से कहने लगे—जीवयशे ! जिस देवकी के साथ तुम इस समय क्रीडा कर रही हो, इस देवकी के गर्भ

से आठ पुत्र पैदा होगे। ये पुत्र इतने सुन्दर और पुण्यात्मा होगे कि भारतवर्ष मे अन्य किसी स्त्री के ऐसे पुत्र नही होगे। परन्तु इस देवकी का सातवा पुत्र तेरे पति को मार कर आधे भारतवर्ष का राज्य करेगा। इस प्रकार की बात देवकी देवी ने बचपन मे सुनी थी। भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यो को देखकर देवकी देवी को अतिमुक्त मुनि द्वारा कही गई बचपन की बात याद आ गई। तब उसके हृदय मे सकल्प पैदा हुआ कि जब मै पोलाशपुर नगर मे थी और मैं बाल-अवस्था मे ही थी उस समय अतिमुक्त मुनि ने मुझसे कहा था कि तू आठ पुत्रो की माता बनेगी। जो एक समान होगे, रूप वर्ण, लावण्य की दृष्टि से उनमे कोई अन्तर दिखाई नही देगा। वे ऐसे लगेगे मानो धनपति देव के पुत्र हो और वह पुत्र ऐसे होगे जिनको भारतवर्ष मे दूसरी माता जन्म न दे सकेगी। देवकी कहने लगी समझ मे नही आता ये क्या बात बनी ? सयमशील मुनिराजो की वाणी तो कभी असत्य हो नही सकती, पर **"प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्"** जब मैं सेठानी सुलसा द्वारा जन्म दिए गए एक जैसी आकृति-त्वचा-रूप-लावण्य वाले बालक सामने देख रही हू तो कैसे समझू कि अतिमुक्त मुनि ने जो कुछ कहा था वह सत्य ही है देवकी अपनी विचारधारा से प्रभावित होती जाती थी, सोचने लगी—अतिमुक्त मुनि भी साधारण सत नही थे, वे अहिंसा सत्य के अमर साधक रहे हैं। उनकी वाणी आज तक कभी असत्य नही हुई है, फिर यह भी कैसे कह दू कि अतिमुक्त मुनि ने जो कुछ कहा है वह सर्वथा मिथ्या है। इस प्रकार विचारो के उतार चढाव मे पडी हुई देवकी देवी को अन्त मे ध्यान आया कि अपनी नगरी के बाहिर उद्यान मे त्रिकालदर्शी भगवान अरिष्टनेमि विराजमान है। मुझे उनकी सेवा मे जाना चाहिये और उनके सामने अपने हृदय की समस्त बात रख देनी चाहिये, और उनसे ही अपनी आशका का समाधान करवाना चाहिये। यह निश्चय करने के बाद देवकी देवी एक रथ पर बैठकर भगवान की सेवा मे उपस्थित हो जाती है। इस तथ्य को सूत्रकार ने **'एव खलु पोलासपुरे नगरे—अतिमुत्तेण कुमार समणेण"** आदि पदो द्वारा प्रस्तुत किया है।

"सरिसए जाव नलकूब्बरसमाणे" यहाँ पठित **जाव** पद **सरित्तय सरिव्वया** आदि पदो का बोधक है। इनकी व्याख्या ९२ पृष्ठ पर की जा चुकी है।

कोडु बिय पुरिसा—का अर्थ है कौटुम्बिक पुरुष। कौटुम्बिक पुरुष के दो अर्थ हैं—कुटुम्ब का व्यक्ति और सेवकजन। प्रस्तुत मे—इस का दूसरा अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये। रथादि को सुसज्जित करने का कार्य प्राय सेवक जन ही किया करते हैं अत दूसरा अर्थ ही अधिक युक्त प्रतीत होता है।

"लहुकरणप्पवर जाव उवट्ठवेंति" इन पदो से सूत्रकार ने एक धार्मिक रथ की ओर सकेत किया है। यह रथ किसी धार्मिक कार्य के उपस्थित होने पर काम मे लाया जाता था। सासारिक कार्यों के लिये इस का प्रयोग नही किया जाता था, इसीलिये इस का नाम धार्मिक रथ रखा गया है।

किसी प्रति मे—**लहुकरणजुत्तजोइय जाणप्पवर जाव उवट्ठवेंति"** ऐसा पाठ आता है। इस का अर्थ है—**"लघुकरणयुक्तयोजितम्, लघुकरण**—क्षिप्रकारित्व, **तेन युक्तोल घुकरणयुक्त**—दक्षपुरुष तेन **योजितम्-दक्षपुरुषयोजितम्-जाणप्पवर**—यानप्रवर, धार्मिकरथमुपस्थापयन्ति, अर्थात् लघुकरण शब्द शीघ्रता का बोधक है। उस से युक्त—कार्य को शीघ्र करने वाला, लघुकरण-युक्त कहा जाता है।

प्रस्तुत मे रथ का प्रसग होने से लघुकरण युक्त शब्द शीघ्रगामी वैलो का अथवा सर्वथा सतर्क और चुस्ती के साथ कार्य करने वाले सारथी का वोधक है जिस मे शीघ्रगामी वैल जोड दिये गए है अथवा जिस पर कुशल—कार्यदक्ष सारथी वैठा है उस रथ को 'लघुकरण-युक्त-योजित' कहते है। यानप्रवर— धार्मिक रथ का नाम है। शेष पदो का अर्थ स्पष्ट ही है। **जाव** पद भगवती सूत्र मे वर्णित रथ सम्वन्धी अवशिष्ट पदो का वोधक है।

"जहा देवाणदा जाव पज्जुवासइ" इन पदो से सूत्रकार ने देवकी देवी की दर्शन-यात्रा को भगवती सूत्र में वर्णित देवानन्दा की दर्शनयात्रा से उपमित किया है। जैसे भगवती सूत्र के शतक नौ उद्देश ३३ मे, धार्मिक रथ मे वैठ कर भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रही देवानन्दा का वर्णन किया गया है, उसी तरह माता देवकी देवी धार्मिक रथ मे वैठ कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होती है, परन्तु भगवती सूत्र के अनुसार देवानन्दा भगवान महावीर की सेवा मे पहुँचती है जबकि माता देवकी भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में गई थी। इसके अतिरिक्त और कोई भिन्नता नही है।

"सा नूण तव देवती ! इमे" आदि पद भगवान अरिष्टनेमि के कहे हुए हैं। देवकी देवी अभी भगवान की सेवा मे आई ही थी कि उसके कुछ कहने से पूर्व ही भगवान ने उसके हृदय की वात उसके सामने रखते हुए कहा—देवकि ! इन छह मुनियो को देख कर तेरे मन मे ये विचार आया है कि जब मैं पोलाशपुर मे थी उस समय अतिमुक्त मुनि ने कहा था कि तू ऐसे आठ पुत्रो की मा वनेगी जो एक जैसे लगेंगे, त्वचा-वर्ण-लावण्य से एक जैसे प्रतीत होगे, भारत वर्ष मे और जननी ऐसे पुत्रो को जन्म नही दे सकेगी, पर प्रतीत होता है कि यह वात असत्य प्रमाणित हुई। अतिमुक्त मुनि की वात मिथ्या है या सत्य ? इसी वात का निर्णय करने के लिये तू मेरे पास आ रही है ! देवकि ! यह सत्य है कि तुम इसी उद्देश्य से मेरे पास आई हो। आदि सभी वातें उक्त पाठ द्वारा सूत्रकार ने व्यक्त की हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अपने सन्देह की निवृत्ति के लिये देवकी भगवान के पास गई और भगवान ने विना पूछे ही उस के हृदयगत सन्देह को प्रकट कर दिया। तो क्या भगवान भी ज्योतिपियो की भान्ति लौकिक फलाफल का वणन किया करते थे ?

उत्तर मे निवेदन है कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान अरिष्टनेमि ने जो कुछ कहा है वह केवल धार्मिक दृढता लाने के उद्देश्य से कहा है। देवकी देवी का मन अतिमुक्त मुनि के प्रति अश्रद्धालु हो रहा है, साधु-जगत पर उसकी श्रद्धा कुछ शिथिल पड रही है। इसी शिथिलता को दूर करने के लिये ही भगवान ने उस की हृदयगत विचारणा को उसके विना कहे उस के सामने प्रस्तुत किया है। इस के अलावा सूत्रकार इन पदो द्वारा भगवान की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता को भी प्रकट करना चाह रहे हैं। प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने देवकी देवी के हृदयगत सकल्प विकल्प का चित्रण किया है और देवकी देवी अपने हृदय की वात भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे निवेदन करने के लिये चल पडी और वहा उपस्थित हो गई आदि वातो का भी वर्णन किया है। तदनन्तर देवकी देवी के मानस को समाहित करने के लिये भगवान अरिष्टनेमि ने जो कुछ कहा, सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं।

मूल—एव खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेण तेण समएण भद्दिलपुरे नगरे नागे नाम गाहावती परिवसइ अड्ढे० । तस्स ण नागस्स गाहावइस्स सुलसा नाम भारिया होत्था । सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएण वागरित्ता–एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ । तते ण सा सुलसा बालप्पभिति चेव हरिणेगमेसी भत्तया यावि होत्था । हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लि ण्हाता जाव पायच्छित्ता-उल्लपडसाडया महरिह पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जन्नुपायपडिया पणाम करेइ । ततो पच्छा आहारेति वा, नीहारेति वा, वरति वा । तते ण तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिते यावि होत्था । तते णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसा गाहावइणा तुम च दोवि सम-उउयाओ करेइ । तते ण तुब्भे दोवि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भ परिवहह, सममेव दारए पयाहह । तए ण सा सुलसा गाहावइणां विणिहायमावण्णए दारए पयाइति । ततेणं हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकपणट्ठाते विणिहायमावण्णए दारए करतलसपुडेण गेण्हति, गेण्हित्ता तव अतिय साहरइ । तं समय च ण तुम पि णवण्हं मासाण० सुकुमालदारए पसवसि । जे वि अ णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अतिआओ करयलसंपुडेण गेण्हति, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावयणीए, अतिए साहरइ । त तव चेव ण देवइ ! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाते गाहावयणीए ।

छाया—एव खलु देवानुप्रिये ! तस्मिन् काले, तस्मिन् समये भद्दिलपुरे नगरे नागो नाम गाथापति परिवसति । आढ्य । तस्य नागस्य गाथापते सुलसा नाम्नी भार्या अभूत् । सा सुलसा गाथापत्नी बालत्वे चैव नैमित्तिकेन व्याकृता– एषा दारिका निन्दु (मृतप्रसविणी) भविष्यति । तत सा सुलसा बालप्रभृति चैव हरिनैगमेषिभक्तका चाभूत् । हरिनैगमेषे प्रतिमा करोति, कृत्वा, कल्याकल्य स्नात्वा यावत् प्रायश्चित्ता आर्द्रकपट-शाटिका महार्हा पुष्पार्चना करोति, कृत्वा जानु-पादपतिता प्रणाम करोति । तत पश्चाद् आहारयति वा, नीहारयति वा, वरयति वा । तत तस्या सुलसाया गाथापत्न्या भक्ति-बहु-मान-शुश्रूषया हरिनैगमेषिदेव आराधितश्चापि अभूत् । तत सो हरिनैगमेषिदेव सुलसाया गाथापत्न्या अनुकम्पनार्थं सुलसा गाथापत्नीं त्वा च द्वेऽपि समर्तुके (समकाल-ऋतुमत्यौ) करोति । तत युवा द्वेऽपि सममेव (समकालमेव) गर्भं गृण्हीथ (धारयथ) सममेव गर्भं परिवहथ, सममेव दारकौ प्रजायेथे (प्रजनयथ) । तत सा सुलसा गाथापत्नी विनिघात-मापन्नान् दारकान् प्रजनयति । तत स हरिनैगमेषिदेव सुलसाया अनुकम्पनार्थं विनिघातमापन्नान् दारकान् करतलसम्पुटेन गृण्हाति, गृहीत्वा तवान्तिके समाहरति (स्थापयति), तस्मिन् समये च त्वमपि नवाना मासाना० सुकुमारदारकान् प्रसवयसि । येऽपि च देवानुप्रिये ! तव पुत्रा तेऽपि

च तव अन्तिकात् करतलसम्पुटेन गृण्हाति, गृहीत्वा सुलसाया गाथापत्न्या अन्तिके समाहरति (स्थापयति), तस्मात् तव चैव देवकि ! एते पुत्रा, नो चैव सुलसाया गाथापत्न्या ।

पदार्थ—**खलु**—निश्चय ही, **एव**—इस प्रकार, **देवाणुप्पिए !**—देवानुप्रिये ! **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **भद्दिलपुरे नगरे**—भद्दिलपुर नामक नगर मे, **नागे नाम**—नाग नामक, **गाहावती**—गृहपति (सेठ), **परिवसइ**—निवास करता था जो कि, **अड्ढे०**—धनी था, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **तस्स नागस्स**—उस नाग, **गाहावइस्स**—सेठ की, **सुलसा नाम**—सुलसा नामक, **भारिया**—पत्नी, **होत्था**—थी। **सा**—वह, **सुलसा**—सुलसा नामक, **गाहावइणी**—गृहपति की पत्नी जो कि, **बालत्तणे**—बालावस्था मे, **चेव**—ही (उससे) **निमित्तिएण**—किसी नैमित्तिक ज्योतिषी ने, **वागरिता**—कहा था कि, **एसा**—यह, **दारिया**—लडकी, **णिदू**—मृतप्रसविणी—जिसके बच्चे मरे हुए पैदा हो, **भविस्सइ**—होगी । **तते**—तदनन्तर, **सा सुलसा**—वह सुलसा, **बालप्पभिति चेव**—बालावस्था से ही, **हरिणेगमेसी**—हरिनैगमेषी देव की, **भत्तया-यावि-होत्था**—भक्ति किया करती थी, वह, **पडिम**—प्रतिमा—मूर्ति, **करेइ**—बनाती है, **करित्ता**—मूर्ति बना कर, **कल्लाकल्ल**—प्रतिदिन, **ण्हाता**—स्नान करके, **जाव**-यावत्, **पायच्छित्ता**—प्रायश्चित्त करके, **उल्लपडसाडया**—आर्द्र पट तथा गीली धोती पहन कर, **महरिह**—पूजा के योग्य, **पुप्फच्चण**—पुष्पो द्वारा पूजा, **करेइ**—करती है, **करित्ता**—पूजा करके, **जन्नुपायपडिया**—अपने पाचो अग नमाकर, **पणाम**—प्रणाम, **करेइ**—करती है, **ततो पच्छा**—उसके पश्चात् **आहारेति**—आहार करती है, **वा**—अथवा, **नीहारेति**—नीहार करती है, **वा**—अथवा, **वरति**—अन्य क्रियाओ मे प्रवृत्त होती है । **तते**—तदनन्तर, **तीसे**—उस, **सुलसाए**—सुलसा, **गाहावइणीए**—उस सेठ की पत्नी की, **भत्ति**—भक्ति, **बहुमाण**—बहुविध सम्मान—अत्यधिक सत्कार, **सुस्सूसाए**—शुश्रूषा—सेवा से, **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी देव, **आराहिते**—आराधित—सिद्ध, **यावि होत्था**—हो गया । **तते**—तत्पश्चात्, **ण**—सौन्दयार्थ, **से**—वह, **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी **सुलसाए**—सुलसा, **गाहावइणीए**—सेठ की पत्नी के, **अणुकम्पणट्ठाए**—अनुकम्पा के लिये, उस पर दया करके, **सुलसं**—सुलसा, **गाहावइणी**—सेठानी, **च**—और, **तुम**—तुम, **दो वि**—दोनो को ही, **समउउयाओ**—सम ऋतुवाली, **करेति**—करता है—रजस्वला होने का समय एक कर देता है, **तते**—तदनन्तर, **तुब्भे**—तुम, **दो वि**—दोनो ने ही, **सममेव**—एक काल मे मे ही, **गब्भे**—गर्भ, **गिण्हह**—धारण किया, **सममेव**—एक ही काल मे, **गब्भे परिवहह**—गर्भ का उद्वहन किया, **सममेव**—एक ही काल मे, **दारए**—बालको को, **पयायह**—जन्म दिया, **तए**—तदनन्तर, **सा**—वह, **सुलसा**—सुलसा, **गाहावइणी**—सेठानी, **विणिहायमावण्णए**—मरे हुए, **दारए**—बालको को, **पयाइति**—जन्म देती है, **तत**—तदनन्तर, **से**—वह, **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी देव, **सुलसाए**—सुलसा पर, **अणुकपणट्ठाए**—अनुकम्पा करने के लिये **विणिहायमावण्णए**—मरे हुए, **दारए**—बालको को, **करतलसपुडेण**—करतल के सम्पुट मे, **गेण्हति**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **तव**—तुम्हारे, **अतिय**—पास, **साहरइ**—उपस्थित करता है, **च**—और, **त समय**—उसी समय, **तुम पि**—तुम भी, **णवण्ह मासाण**—नौ मास से कुछ अधिक समय व्यतीत हो जाने पर, **सुकुमाल**—

दारए—सुकुमार बालको को **पसवसि**—जन्म देती है। **देवाणुप्पिए!**—हे देवानुप्रिये! **जे वि य**—जो भी, **तव पुत्ता**—तेरे पुत्र थे, **ते वि अ**—वे सब, **तव अतिआओ**—तुम्हारे पास से, **करयलसपुडेण**—करतल के सम्पुट से, **गेण्हति**—ग्रहण करता है और ग्रहण करके, **सुलसाए गाहा०** सुलसा सेठानी के, **अन्तिए**—पास, **साहरति**—लाकर, स्थापित कर देता है, **त चेव**—अत एव, **देवइ**—हे देवकि! **एए**—ये छहो अनगार, तव—तुम्हारे, **पुत्ता**—पुत्र हैं, **सुलसाते गाहावइणीए**—सुलसा सेठानी के, **णो चेव**—नही हैं।

मूलार्थ—हे देवानुप्रिये! उस काल तथा उस समय मे भद्दिलपुर नामक नगर मे नाग नामक सेठ निवास करता था। वह पूर्णतया सम्पन्न था। नागरिको मे उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। सेठ नाग की धर्मपत्नी का नाम सेठानी सुलसा थी। वह सेठानी सुलसा जब बालावस्था मे थी, तब किसी नैमित्तिक ज्योतिपी ने उसके सम्बन्ध मे कहा था कि यह लडकी निंदू होगी अर्थात् उसके मरे हुए बच्चे उत्पन्न होगे। ज्योतिपी की बात सुन कर सुलसा ने बाल्यकाल से हरिनैगमेपी का आराधन करना आरम्भ कर दिया। उस ने हरिनैगमेषी देव की एक प्रतिमा बनवाई, प्रतिमा बनवाकर नित्यप्रति स्नान, अनिष्ट परिहारार्थ प्रायश्चित्त करके आर्द्र पट तथा साडी के साथ पूजा के योग्य फूलो के द्वारा वह उस प्रतिमा की पूजा किया करती थी, तदनन्तर दोनो जानुओ को भूमि पर टेककर उसको प्रणाम करती है। यह सब कुछ करने के बाद ही वह आहार ग्रहण करती, नीहार करती—शौचादि से निवृत्त होती तथा अन्य कामो मे प्रवृत्त होती थी।

तदनन्तर सुलसा सेठानी की भक्ति-प्रचुर सत्कार तथा सेवा से हरिनैगमेपी देव आराधित हो गया, प्रसन्न हो गया। तब प्रसन्न हुए हरिनैगमेपी देव ने सुलसा सेठानी की अनुकम्पा निमित्त उस पर दयाभाव लाकर सुलसा के और तुम्हे, इस प्रकार दोनो को एक समय मे रजस्वला होने की व्यवस्था कर दी अर्थात् देवमाया से तुम और सुलसा दोनो एक समय मे रजस्वला बनने लगी। तदनन्तर तुम दोनो ने एक ही समय मे गर्भ धारण किया, उसका परिवहन किया और एक ही समय मे बालको को जन्म दिया। तब सुलसा पर अनुकम्पा करके देव ने मृतक बच्चो को अपने दोनो हाथो से उठाकर तुम्हारे पास लाकर स्थापित कर दिया। उस समय तुमने भी कुछ अधिक नवमास व्यतीत होने पर सुकुमार बालको को जन्म दिया। हे देवानुप्रिये! जो तुम्हारे बालक थे उनको

तुम्हारे पास से दोनो हाथो से उठाकर सेठानी सुलसा के पास पहुचा दिया। अत हे देवकि ! ये पुत्र तुम्हारे ही हैं, सेठानी सुलसा के नही है।

व्याख्या—भगवान अरिष्टनेमि ने देवकी देवी के समाधान के लिये सेठ नाग की धर्मपत्नी सेठानी सुलसा का निन्दू होना उसका हरिनैगमेषी देव की आराधना करना, देव का प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रो को सुलसा के पास पहुचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रो को देवकी देवी के पास पहुचाना आदि जितनी बातें कथन की थी, उन्ही का प्रस्तुत सूत्र मे वर्णन दिया गया है। भाव स्पष्ट ही है। पदार्थ और मूलार्थ मे उसे लिख भी दिया गया है।

"अड्ढे०" यहा दिये गये बिन्दु से जिन पदो की ओर सकेत करना सूत्रकार को इष्ट है उन का निर्देश पृ० ७७-७८ पर कर दिया गया है।

"निमित्तएण" का अर्थ है—**नैमित्तिक"**। भविष्य की बात बतलानेवाले योग्य ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

णिंदू—का अर्थ है—**मृतप्रस्रविनी**, जिसके बच्चे मृत पैदा हो, उसे "निन्दू" कहते है। मृत बालक दो तरह के होते है—एक तो गर्भ से ही मरे हुए पैदा होनेवाले, दूसरे पैदा होने के बाद मर जानेवाले। प्रस्तुत प्रकरण मे निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणेगमेसी—का अर्थ होता है—**हरे इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य सम्बन्धी नैगमेषी नाम देव इति** (कल्पसूत्र प्रदीपिका टीका,गर्भपरिवर्तन-प्रकरण) अर्थात् हरिनगमेषी शब्द के दो अर्थ हैं—१ हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश की इच्छा रखनेवाला देव तथा २-हरि-इन्द्र का नैगमेषी नामक सम्बन्धी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शक्रेन्द्र के सेनापति देव हैं।

"ण्हाता जाव पायच्छित्ता"—यहा पठित **जाव** पद **कयबलिकम्मा-कय-कोउय मगल**—इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ है—शरीर की स्फूर्ति के लिये जिसने तैल आदि का मर्दन कर रखा है अथवा जो काक आदि पक्षियो को अन्नादि दान रूप बलिकर्म से निवृत्त हो गया है अथवा जिसने देवता के निमित्त किया जानेवाला कर्म कर लिया है उसे **कृतबलिकर्मा** कहते हैं। दुष्ट स्वप्नादि के फल को निष्फल करने के लिये जिसने प्रायश्चित्त के रूप मे—कौतुक-कपाल पर तिलक तथा अन्य मागलिक कृत्य कर रखे है उसे "कृतकौतुक मगल-प्रायश्चित्त" कहा जाता है।

"उल्ल-पड-साडया" का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढने के वस्त्र का नाम है। शाटिका-शब्द से नीचे पहरने की धोती या साडी का बोध होता है।

"पुप्फच्चण" का अर्थ है—पुष्पार्चन। पुष्पो द्वारा की जानेवाली पूजा का नाम पुष्पार्चन है।

"आहारेति वा, नीहारेति वा, वरति वा" यहा पठित आहारेति का अर्थ है—आहार करती थी, भोजन खाती थी। **नीहारेति** का अर्थ है—शौचादि क्रियाओ से निवृत्त होती थी। **वरति—वृ** धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, वरण करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना,

आच्छादन करना, ढकना, सेवा करना। प्रस्तुत मे वृ धातु विचार करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तब **वरति** का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध मे चिन्तन करती थी। **आहारेति** आदि तीनो पदो से सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि सुलसा सेठानी के हृदय मे हरिनैगमेषी देव के लिये अत्यन्त श्रद्धा थी, आस्था थी, निष्ठा थी। यहा तक कि जब तक वह अपने इष्टदेव की पूजा न कर लेती, उसका वन्दन-नमस्कार न कर लेती, तब तक वह न खाती थी न पीती थी, मुख जूठा नही करती थी। शुद्ध मुख से अपने आराध्य की आराधना किया करती थी। जब तक अपने उपास्य की उपासना न कर लेती तब तक वह शौच तक नही जाती थी। वैसे पूजन आदि कार्य शौच आदि से निवृत्त होने के अनन्तर किये जाने की परम्परा देखने मे आती है, पर सुलसा सेठानी को तो अपने इष्टदेव के पूजन की इतनी अधिक लगन थी कि जब तक वह अपना इष्ट कार्य न करले तब तक शौच जाना भी उसे नही सूझता था। इसी प्रकार सुलसा जब तक हरिनैगमेषीदेव की पूजा नही कर लेती थी तब तक उसको अन्य कार्य करने का विचार ही नही आता था। इस विवेचन से हम यह कहना चाहते हैं कि सुलसा सेठानी के हृदय मे हरिनैगमेषी देव के लिये अत्यधिक श्रद्धा थी, वह पूरी आस्था के साथ उसका पूजन किया करती थी।

"भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए"—का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान—अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदो द्वारा सूत्रकार ने हरिनैगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनो का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातो की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्व प्रथम साधक के हृदय मे देव के लिये अनुराग होना चाहिये, तदनन्तर साधक के हृदय मे देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

"गिण्हइ, परिवहइ, पयाहइ" ये तीनो—क्रियापद हैं। प्रथम का अर्थ है—ग्रहण किया अर्थात् धारण किया और दूसरे का अर्थ है—परिवहन किया और **पयाहइ** का अर्थ है—जन्म दिया।

प्रस्तुत सूत्र मे आए हुए वर्णन से निम्नोक्त बातो का बोध होता है—सत्पुरुषो के मुख से निकला हुआ वचन अन्यथा नही होता। त्याग-वैराग्य की सजीव प्रतिमा महामान्य अतिमुक्त कुमार श्रमण ने देवकी देवी से कहा था कि तुम आठ अनुपम राजकुमारो को जन्म दोगी, यह सोलह आने सत्य-प्रमाणित हुआ। छह मुनियो को देखकर देवकी के मन मे मुनि के वचन के मिथ्या होने की जो आशका पैदा हो गई थी, उसे त्रिकालदर्शी भगवान अरिष्टनेमि ने दूर कर दिया और देवकी को स्पष्ट कह दिया कि छहो अनगार तुम्हारे ही पुत्र हैं, सुलसा के नही हैं। यह सारा परिवर्तन हरिनैगमेषी देव ने किया है। भगवान के इस कथन से भी अतिमुक्त कुमार श्रमण की वचनगत सत्यता का ही परिचय प्राप्त होता है।

सेठानी सुलसा जब बालावस्था मे थी उसके सम्बन्ध मे उस समय एक नैमित्तिक ने बतलाया था कि यह बालिका निन्दू होगी—मृत बच्चो को जन्म देगी। नैमित्तिक की यह भविष्यवाणी भी

सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई। साराश यह है कि अनुभवी सत्पुरुषो की वाणी कभी निष्फल नही होती है वह समय आने पर सर्वथा सत्य सिद्ध हो जाती है।

मनुष्य के सतत प्रयत्न से दुष्कर से दुष्कर कार्य भी सुकर हो जाता है। मनुष्य मे यदि साहस है, वह हतोत्साह नही है तो उसके लिये कुछ असभव नही रहता है। वह अपने भागीरथ प्रयत्नो द्वारा असभव से असभव कार्य को भी सभव बना लेता है। सेठानी सुलसा इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। सेठानी-सुलसा को बचपन मे किसी ज्योतिषी ने मृत-प्रस्रविनी—मृत-बच्चो को जन्म देनेवाली कहा था, परन्तु सुलसा निराश नही हुई। आशावादी बन कर उसने हरिनैगमेषी देव की आराधना आरभ कर दी। देवोपासना मे उसने अपना तन, मन, धन सब समर्पित कर दिया। पूर्ण तन्मयता तथा दृढता के साथ देव की आराधना करके, उसने देव को आराधित कर लिया। यह सत्य है कि बच्चे तो उसके मरे हुए ही पैदा होते थे, पर देव-कृपा से उसके मरे बच्चे देवकी के पास पहुँचा दिये जाते थे और देवकी के सुकोमल बच्चे सुलसा के पास ला दिए जाते थे। यह सब कुछ होने पर भी सुलसा यही समझती थी कि मेरे जीवित बच्चे ही पैदा होते है और देव-कृपा से मुझे भी जीवित बच्चो की जननी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। सुलसा ने यह सौभाग्य अपने सतत-परिश्रम द्वारा ही प्राप्त किया था, अत यह मानना पडेगा कि परिश्रम मे बडा बल है वह असभव को भी सभव बना देता है।

सेठानी सुलसा ने हरिनैगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे ये भली भान्ति सिद्ध हो जाता है कि देवता का किया हुआ अनन्य चिन्तन साधक की कामना पूर्ण बनाने मे सहायक बन सकता है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने मे सशक्त होता है।

जो लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव पूजन करते है और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य-कर्म के सहयोगी होने के कारण पुत्रादि की प्राप्ति कर लेने पर भक्तिसातिरेक से देवदत्त ही मान लेते हैं। पुत्रादि की प्राप्ति मे देव को उपादान कारण मान लेते हैं, वे भूल करते हैं, क्योकि यदि पूर्वोपार्जित कर्म विद्यमान हैं तो उसके फल को प्रकट करने मे देव निमित्त कारण बन सकता है। इसके विपरीत, यदि पूर्व कर्म सहयोगी नही है तो एक बार नही, अनेको बार देवपूजा की जावे या देव की अनेको मनौतिए मान ली जायें तो देव कुछ नही कर सकता। वस्तुत किसी भी कार्य की सिद्धि मे देव केवल निमित्त कारण बन सकता है, उपादान कारण नही।

प्रश्न हो सकता है कि यदि कार्य सिद्धि मे देव निमित्त कारण बन सकता है और उसमे कोई सैद्धान्तिक बाधा नही है तो फिर स्थानकवासी परम्परा मे देव-पूजन का निषेध क्यो किया जाता है? उत्तर मे निवेदन है कि ससार मे दो प्रकार की प्रवृत्तिया पाई जाती हैं। प्रथम ससार-मूलक, दूसरी मोक्ष मूलक। ससार-मूलक प्रवृत्ति सासारिक जीवन का पोषण करती है जबकि मोक्ष मूलक ससार (जन्म-मरणरूप) के शोषण का तथा आत्मा को परमात्मा का पद प्राप्त करवाने का कारण बनती है। जैन-धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है, वह आध्यात्मिकता की प्राप्ति के लिये सर्वतोमुखी प्रेरणा प्रदान करता है। आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम लक्ष्य परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करना होता है।

सासारिक जीवन उसके लिये बधन रूप होता है, इसलिये वह उसे अपनी प्रगति मे बाधक समझता है, सासारिक अर्थात् जन्म-मरण रूप दु ख की सभी प्रवृत्तिया उसके लिये हेय एव त्याज्य है। आध्यात्मिकता-प्रिय साधक आत्मा को परमात्मा बनाने मे सहायक और मोक्ष मूलक प्रवृत्तिया को ही अपनाता है सासारिकता की पोषक सामग्री से उसे कोई लगाव नही होता और इसीलिये वह उससे दूर रहता है। देव-पूजा सासारिकता का पोषण करती है, या करने मे सहायक होती है, इसीलिये स्थानकवासी जैन-परम्परा मे देवपूजा का निषेध पाया जाता है।

देवपूजा सासारिक जीवन का पोषण कैसे करती है ? इसके उत्तर मे इतना ही कहना है कि देवपूजा करनेवाला यही समझ कर पूजा करता है कि इससे मै युद्ध मे शत्रु को पराजित कर दूगा, शासक बन जाऊगा, मुझे पुत्र की प्राप्ति होगी, धन की प्राप्ति होगी, अत अन्य परिवार आदि की उपलब्धि होगी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूजक व्यक्ति मोह-जाल को अधिकाधिक प्रसारित कर रहा है जो कि ससार-वृद्धि का कारण होता है, परन्तु यह मुमुक्षु प्राणी को इष्ट नही होता।

यदि कोई यह एक कहे कि देवपूजा से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा स्वर्ग की उपलब्धि होती है तो उसकी भ्रान्ति है। कारण यह है कि देव मे ऐसा करने की शक्ति नही होती। अशक्त से शक्ति की अभ्यर्थना का कुछ अर्थ नही होता। धनहीन से धन की आशा नही की जा सकती। दूसरी बात यह है कि जब देव स्वय मुक्ति मे नही जा सकता और देव की देवलोक की भवस्थिति पूरी होने पर—आयु की समाप्ति होने पर अनिच्छा होते हुए भी भूतल पर आना पडता है तो वह दूसरो को मुक्ति मे कैसे पहुचा सकता है ? तथा स्वर्ग का दाता कैसे हो सकता है ?

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे उपस्थित हुई देवकी देवी को भगवान ने सुलसा सेठानी की जीवनी सुनाकर यह बताया कि यह छहो मुनि सुलसा सेठानी के पुत्र नही है, ये तो तुम्हारे ही पुत्र हैं। इस प्रकार भगवान के मुख से उक्त वृत्तान्त सुनकर देवकी ने जो कुछ किया अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तते ण सा देवती देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठजाव हियया अरह अरिट्ठनेमि वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ। ते छप्पि अणगारा वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता आगतपण्हुता, पप्फुतलोयणा, कंचुयपडिक्खित्तया, दरियवलयबाहा धाराहयकलंबपुप्फग पिव समूससियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमसाए दिट्ठीए पेहमाणी २ सुचिर निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वदति णमसति, वदित्ता नमसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति, करित्ता वन्दति, णमसति, वन्दित्ता णमसित्ता तमेव धम्मिय जाण दुरूहति, दुरुहित्ता जेणेव बारवती नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवति नर्यार अणुप्पविसति, अणुप्पविसित्ता जेणेव सते गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ २ जेणेव सते वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयसि सयणिज्जसि निसीयति ॥

छाया—तत खलु सा देवकी देवी अर्हतोऽरिष्टनेमे अन्तिके एनमर्थं श्रुत्वा, निशम्य हृष्ट-तुष्टयावद्हृदया अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्कृत्य यत्रैव ते षडनगारा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तान् षडप्यनगारान् वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य आगतप्रस्नुता प्रप्लुत-लोचना कञ्चुकपरिक्षिप्ता दीर्णवलयबाहू धाराहत-कदम्ब-पुष्पमिव समुच्छ्वसितरोमकूपा तान् षडप्य-नगारान् अनिमेषया दृष्ट्या प्रेक्षमाणा प्रेक्ष्य सुचिर निरीक्षते, निरीक्ष्य वन्दते, नमस्यति वन्दित्वा, नमस्कृत्य यत्रैव अरहन् अरिष्टनेमि तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्वा आद-क्षिण प्रदक्षिण करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्कृत्य तमेव धार्मिक यान दुरूहति, दुरुह्य यत्रैव द्वारवती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य द्वारवती नगरीमनुप्रविशति अनुप्रविश्य यत्रैव स्वकीय वासगृह, यत्रैव स्वकीय शयनीय तत्रैवोपागच्छइ, उपागत्य स्वके शयनीये निषीदति।

पदार्थ—**तते**—उस के पश्चात्, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **सा देवती देवी**—वह वकी देवी, **अरहओ**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के, **अतिए**—पास, **एयमट्ठ**—इस अर्थ अर्थात् वृत्तान्त को, **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—विचार कर, **हट्ठतुट्ठ**—बडी हृष्ट और सन्तुष्ट हुई, **जाव**—यावत्, **हियया**—उस का हृदय खिल गया, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि भगवान को, **वदति**—वदना करती है, **नमसति**—नमस्कार करती है, **वदित्ता**—वदना करके, **नमसित्ता**—नमस्कार करके, **जेणेव**—जहा पर, **ते**—वे, **छ अणगारा**—छह सावु थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छति**—आ जाती है और **उवागच्छित्ता**—आने के पश्चात्, **ते**—उन, **छप्पि**—छहो ही, **अणगारा**—अनगारो अर्थात् साधुओ को, **वदति**—वन्दना करती है, **णमसति**—नमस्कार करती है, **वदित्ता, नमसित्ता**—वन्दन तथा नमस्कार करने के अनन्तर, **आगतपण्हुता**—पुत्र स्नेह के कारण उसके स्तनो मे दूध आ गया, **पप्फुतलोयणा**—उसके नेत्र आनन्दाश्रुओ से आर्द्र हो गए, **कचुयपरि-क्खितया**—हर्षाधिक्य से उसके कचुक वन्धन टूट गए, **दरियबलयबाहा**—हर्ष और रोमाच से शरीर फूल जाने के कारण ककण तग हो गए, **धाराहय**—मेघ-धारा से आहत हुए, **कलबपुप्फगपिव**—कदम्बक नामक फूल की भान्ति **समूससियरोमकूवा**—उस की रोमराजि विकसित हो गई, **छप्पि**—छहो, **अणगारा**—साधुओ को **अणिमिसाते**—निर्निमेष, **दिट्ठीए**—दृष्टि से, **पेहमाणी २**—देखती हुई २, **सुचिर**—चिरकाल तक, **निरिक्खति २**—देखती है, **निरिक्खित्ता**—देख कर, **वदति**—वन्दना करती है, **णमसति**—नमस्कार करती है, **वदित्ता, नमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **जेणेव**—जहा पर, **अरिहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि भगवान थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छति २**—आती है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को, **तिखुत्तो**—तीन वार—**आयाहिण**—दक्षिण की ओर से ले कर, **पयाहिण**—प्रदक्षिणा, **करेति**—करती है, **करित्ता**—प्रदक्षिणा करके, **वदति**—वन्दना करती है, **णमसति**—नमस्कार करती है, **वदित्ता नमसित्ता**—वन्दना तथा नमस्कार करने के अनन्तर, **तमेव**—उसी, **धम्मिय**—धार्मिक कार्यो के उपयोग मे लाया जाने वाले, **जाण**—यान पर, **दुरूहति**—चढ जाती है, **दुरूहित्ता**—रथ पर

चढकर, **जेणेव**—जहा, **बारावती नगरी**—द्वारिका नगरी थी, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छति**—आजाती है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **बारवति नयरि**—द्वारिका नगरी मे, **अणुप्पविसित्ता**—प्रवेश करके, **सते गिहे**—जहा अपना घर था, **जेणेव**—जहा पर, **बाहरिया**—बाहिर की, **उवट्ठाणसाला**—उपस्थान शाला, बैठने की जगह थी, **उवागच्छइ**—आती है और **उवागच्छित्ता**—आकर, **धम्मियातो**—धार्मिक, **जाणप्पवरातो**-यान प्रवर-विशेष रथ से, **पच्चोरूहति**—नीचे उतरती है, उतर कर, **पच्चोरूहित्ता**—और नीचे उतर कर, **जेणेव**—जहा पर, **सते**—अपना, **वासगिहे**—वासगृह , **जेणेव**—जहा पर घर मे निवास किया जाता था, **सए**—अपनी, **सयणिज्जे**—शय्या थी, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आजाती है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **सयसि**—अपनी, **सयणिज्जसि**—शयनीय शय्या पर, **निसीयति**—बैठ जाती है।

मूलार्थ—तदनन्तर वह देवकी देवी अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान के पास से उक्त वृत्तान्त को सुनकर और उस पर चिन्तन, मनन करने पर बडी प्रसन्न हुई, उसका हृदय कमल की भान्ति खिल गया। उसने अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान के चरणो मे वन्दना नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर जहा छहो मुनि विराजमान थे, वहा पर आई, आकर उन छहो मुनियो को उसने वन्दन किया, नमस्कार किया। तदनन्तर निर्निमेष दृष्टि से उन साधुओ को वह देखने लगी। उनको देखते-देखते उसके स्तनो मे दूध भर आया, नेत्र खिल उठे, आखो से हर्षाश्रु निकलने लगे, हर्ष के मारे कचुक के बन्धन टूटने लगे, भुजाओ के आभूषण तग हो गये, उसकी रोमावली मेघ-धारा से अभिताडित हुए पुष्प की भाँति खिल उठी।

देवकी देवी लगातार मुनियो को देखती ही चली गई। अन्त मे उसने उन मुनियो को वन्दन किया, नमस्कार किया वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर जहा पर अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे वहा आ जाती है, आकर भगवान को दक्षिण ओर से आरम्भ करके तीन प्रदक्षिणा देती है, वन्दन, नमस्कार करती है तदनन्तर उसी धार्मिक रथ पर सवार होकर जहा द्वारिका नगरी थी वहा आती है, नगरी मे प्रवेश करती है जहा अपना घर था, उपस्थानशाला थी वहा आजाती है। रथ से नीचे उतरती है उतरकर जहाँ अपना वासगृह था, शैया थी वहाँ आकर उस पर बैठ जाती है।

व्याख्या—अपनी जिज्ञासा की पूर्ति हो जाने पर तथा भगवान अरिष्टनेमि से यह सुनकर कि यह छहो मुनि तुम्हारे ही पुत्र हैं सेठानी सुलसा के नही हैं, देवकी देवी के हृदय मे जो हर्ष उत्पन्न हुआ उसका ही दिग्दर्शन प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है। मूल पाठ का अर्थ पदार्थ तथा मूलार्थ मे लिखा जा चुका है, वह स्पष्ट ही है।

"हट्ठतुट्ठ जाव हियया" यहा पठित जाव पद "चित्तमाणदिया-पीइमणा-परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणा' इन पदो का बोधक है। इन शब्दो का अर्थ पृष्ठ १०० पर लिखा जा चुका है।

"आगतपण्हुता—आगत प्रस्नुता, आगत प्रस्नुत यस्या सा, स्वीयपुत्रदर्शनेन सजातस्तन्य-प्रस्रवणा—अर्थात् जिसके स्तनो मे दूध आ गया है, उस नारी का नाम 'आगत प्रस्नुता' है।

"पप्फुतलोयणा"—प्रप्लुते आनन्दजलेन लोचने यस्या सा—अर्थात् जिसके नयनो मे आनन्द-जनित आसू आ गये हैं, वह 'प्रप्लुतलोचना' कही जाती है।

"कंचुय-पडिक्खित्तया"—कञ्चुकपरिक्षिप्तका, स्वपुत्रावलोकन-जनितानन्दप्रकर्षेण स्थूल-शरीरतया त्रुटितकञ्चुककशेत्यर्थ—अर्थात् अपने पुत्रो को देखने से अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होने के कारण शरीर के फूलने से जिस नारी के कचुक (अगिया) के वन्धन टूट गये हैं। उसे 'कचुक-परिक्षिप्तका' कहते हैं।

दरियवलयवाहा— दीर्णवलयौ हर्षरोमाञ्चस्थूलत्वात् स्फुटित-कटकौ बाहू भुजौ यस्या सा—अर्थात् अत्यन्त हर्ष के कारण रोमाञ्चित तथा स्थूल हो जाने के कारण जिस नारी के भुजाओ के आभूषण तथा हाथ की चूडिया टूटने लगी या तग होने लगी हो उसे 'दीर्ण-वलय-बाहू' कहते हैं।

धाराहयकलवपुप्फग पिव समूससियरोमकूवा—धारया वर्षाधाराभि आहत यत् कदम्ब-पुष्पक-कदम्बकुसुम तदिव समुच्छ्वसित-रोमकूपा, समुच्छ्वसित पुलकित रोमकूप—रोम राजिर्य-स्या सा, धारानिपाताहत कदम्बपुष्पमेकस्मिन्नेव काले विकसति तथैवेय पुलकित-सकल-रोमा जाता—

अर्थात्—वर्षा की धारा पडने से जिस प्रकार कदम्ब पुष्प* एक साथ ही कुसुमित हो जाते हैं उसी प्रकार देवकी देवी के शरीर के सभी रोम पुलकित हो गए थे।

"आगतपण्हुता" आदि विशेषणो द्वारा सूत्रकार ने माता के हृदय मे पुत्रो के लिये स्नेह और वात्सल्य की कितनी मात्रा होती है? और माताए अपने पुत्रो को देखकर किस प्रकार आनन्द-विभोर हो उठती हैं? इन तथ्यो का परिचय कराया है।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने निर्देश किया है कि देवकी देवी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे पूर्णतया समाहित हो कर वापिस अपने वासगृह मे आ गई और आकर अपनी शय्या पर बैठ गई। इसके अनन्तर देवकी देवी ने क्या विचार किया? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल— **तते ण तीसे देवतीते देवीए अय अब्भत्थिए४ समुप्पणे—एव खलु अह सरि-सते जाव नलकूब्बरसमाणे सत्तपुत्ते पयाता, नो चेव ण मए एगस्स वि बालत्तणते समुब्भूते, एसवि य ण कण्हे वासुदेवे छण्ह छण्ह मासाण मम अतिय पायवदते हव्व-मागच्छइ, त धन्नातो ण ताओ अम्माओ जासि मण्णे णियगकुच्छिसभूतयाइ थणदुद्धलुद्ध-**

---

* कदम्ब नाम का एक वृक्ष होता है इसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि जब बादल गरजते हैं तब इसमे कलिया लगती हैं (सस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ)

याइ–महुर०समुल्लावयाइं ममणपजपियाइ थणमूलकक्खदेसभाग अभिसरमाणाति मुद्धयाइ पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहि गिण्हिऊण उच्छगे णिवेसियाइ देंति, समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिते, अह ण अधण्णा, अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एक्कतरमपि न पत्ता, ओहय० जाव झियायई।

छाया—ततस्तस्या देवक्या देव्या अयमाध्यात्मिक (चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत, सकल्प) समुत्पन्न। एव खलु अह सदृश यावद् नलकूबरसमानान् सप्तपुत्रान् प्रयाता, नो चैव मया एकस्यापि बालत्व समनुभूतम्। एषोऽपि कृष्णो वासुदेव षण्णा षण्णा मासाना ममान्तिके पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छति। तत् धन्यास्ता अम्बा, यासा मन्ये निजककुक्षिसभूतानि स्तनदुग्धलुब्धानि मधुरसमुल्लापानि मन्मन-जल्पितानि स्तनमूलकक्षदेशभागमभिसचरन्ति, मुग्धकानि पुनश्च कोमलकमलोपमाभ्यां हस्ताभ्या गृहीत्वा उत्सगे निवेशितानि (सन्ति) ददति, समुल्लापकान् समधुरान् पुन पुन मञ्जुलभणितानि, अहमधन्या, अपुण्या, अकृतपुण्या। एषामेकतरमपि न प्राप्ता! उपहतमना यावत् ध्यायति।*

पदार्थ—**ण**—वाक्य-सौन्दर्य के लिये है, **तते**—उसके पश्चात्, **तीसे**—उस, **देवतीते देवीए** देवकी देवी को, **अय**—यह इस प्रकार का, **अब्भत्थिए**—आत्माश्रित—आत्मगत विचार, **चिंतिते**—चिंतित–स्मरण रूप, **पत्थिए**—प्रार्थित–अभिलाषा रूप, **मणोगए**—मनोगत, **सकप्पे**—सकल्प, **समुप्पण्णे**—उत्पन्न हुआ, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **अह**—मैंने, **सरिसते**—एक समान, **जाव**—यावत्, **नलकूब्बरसमाणे**—धनपति कुवेर के पुत्र के समान, **सत्तपुत्ते**—सात पुत्रो को, **पयाता**—जन्म दिया पर, **मए**—मैंने, **एगस्स वि**—एक के भी, **बालत्तणते**—बालत्व—बालभाव का, **नो समुब्भूते**—अनुभव नही किया, **एसवि य ण**—यह, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव भी, **छण्ह-छण्ह**—छह-छह, **मासाण**—महीनो के अन्तर से, **मम**—मुझे, **पायवन्दते**—पादवन्दन के लिये, **हव्वमागच्छइ**—शीघ्र आता है, **त**—अत, **मण्णे**—मैं मानती हू, **धन्नाओ**—धन्य हैं, **ताओ**—वे, **अम्माओ**—माताए, **यासि**—जिनके (पुत्र), **णियगकुच्छिसमूतयाइ**—अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए हैं, **थणदुद्धलुद्धाइ**—स्तन दुग्ध के लोभी हैं, **महुरसमुल्लावयाइ**—मधुर सलाप करते हुए, **ममणपजपियाइ**—तोतले और थोडे वचन के बोलनेवाले हैं, **थणमूलकक्खदेसभाग**—स्तन के मूल और कक्ष प्रदेश मे, **अभिसरमाणाति**—लटकते हुए विचरनेवाले हैं, **मुद्धाइ**—मुग्ध—अत्यन्त अव्यक्त विज्ञानवाले हैं, **य**—और, **पुणो-पुणो**—बार-बार, **कोमलकम्लोवमेहिं**—कमल के समान कोमल, **हत्थेहिं**—हाथो से, **गिण्हिऊण**—ग्रहण करके, **उच्छगे**—अक मे, **णिवेसियाइ**—स्थापित है, **देंति**—सुनाते हैं (क्या), **समुल्लावते**—समुल्लाप वचन, **सुमहुरे**—सुमधुर, **पुणो-पुणो**—बार-बार, **मजुलप्पभणिते**—अति कोमल वचनो को, **अधन्ना**—मैं अधन्य हू, **अपुण्णा**—पुण्यहीन हू, **अकयपुण्णा**—कोई शुभ कार्य न करनेवाली हू, **एत्तो**—इस प्रकार के पुत्रजन्म के सुखो मे से, **एक्कतरमपि**—

* इत्युपहतमन सकल्पा भूगतदृष्टिका करतले पर्यस्तितमुखी ध्यायतीत्यर्थ।

एक भी सुख, **न पत्ता**—मुझे प्राप्त नही हुआ, **ओहय०**—उदासीन मनवाली, **जाव**—यावत् चिन्ता करती हुई, **झियायइ**—यह सोचती है।

मूलार्थ— तदनन्तर उस देवकी देवी के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने वैश्रमण के पुत्रो के समान एक जैसे सात पुत्रो को जन्म दिया, परन्तु मैने एक पुत्र की भी बाल-लीला का रसास्वादन नही किया। यह कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आता है, अत मैं मानती हू कि वे माताए धन्य हैं, जिन की सन्तति निज कुक्षि से उत्पन्न है, स्तनदुग्ध की लोभी है, मधुर तथा अव्यक्त और तुतलाती वाणी के बोलनेवाली है, स्तनो के कक्षाप्रदेश मे विहरण करने वाली है, भद्रक है, सरल है और जिसको माता ने कमल के समान कोमल हाथो से उठा कर अपनी गोदी मे बैठा रखा है तथा जो माताओ को मनोहर और मधुर वचन सुनाती है, किन्तु मैं अधन्य हू, पुण्यहीन हू तथा अकृतपुण्या हू, क्योकि मुझे उपर्युक्त पुत्रजनित सुखो मे से एक भी सुख प्राप्त नही हुआ। इस प्रकार उदासीन मन से देवकी देवी आर्तध्यान करने लगी।

व्याख्या—अपनी गोदी मे बैठे हुए बच्चे की तोतली वाणी को सुन कर तथा उसके साथ उसी प्रकार के सम्भाषण करके एक माता को कितना हर्ष होगा? और इस प्रकार की बालक्रीडा के लिये प्रत्येक माता के हृदय मे कितनी उत्कण्ठा होती है? इस विषय की कल्पना देवकी देवी के उक्त कथन से भली भान्ति हो जाती है। पुत्र को उत्पन्न करके जिस माता ने उसकी बाल-चेष्टाओ का अनुभव नही किया, सचमुच ही वह माता अधन्य है, अकृत्यपुण्य है, सन्तानजन्य लोक के परम मधुर और अनिर्वचनीय सुख से मानो वह वचित ही रह गई है। यह लौकिक सत्य भी देवकी देवी के जीवन से पूर्णतया चरितार्थ हो जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे इन्ही बातो को ले कर प्रकाश डाला गया है। जिन्हे मूलार्थ मे लिख दिया गया है।

"**अब्भत्थिले ४**"—यहा दिए गए ४ के अक द्वारा सूत्रकार ने "**चिंतिले-पत्थिते-मणोगते-सकप्पे**' इन पदो की ओर सकेत किया है। इन का अर्थ पृष्ठ १०९ पर लिखा जा चुका है।

"**सरिसते जाव नलकूब्बर समाणे**" यहा पठित **जाव** पद "**सरित्तये-सरिये** आदि पदो का ससूचक है। इन पदो का अर्थ पृष्ठ ६३पर लिखा जा चुका है। यहा ये पद द्वितीयान्त हैं, अत विभक्ति के अनुसार अर्थ की योजना कर लेनी चाहिये।

"**कण्हे वासुदेवे छण्ह-छण्ह मासाण**" इन पदो द्वारा सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि त्रिखण्डाधिपति, वासुदेव श्रीकृष्ण छह-छह-महीनो के पश्चात् माता देवकी देवी को वन्दन करने आया करते थे। यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि महाराज कृष्ण माता देवकी देवी को प्रतिदिन

वन्दन न करके छह-छह महीनो के अनन्तर वन्दन क्यो किया करते थे ? वन्दन तो प्रतिदिन करना चाहिये था ?

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा। वे यहा सर्वथा मौन हैं। तथापि परम्परा के आधार पर उक्त प्रश्न के उत्तर मे निम्नोक्त बाते कही जा सकती है—

महाराज श्री कृष्ण के राज्य मे कोई पाण्मासिक उत्सव होता होगा, उसके उपलक्ष्य मे कृष्ण महाराज अपनी माता देवकी देवी को वन्दन करने जाया करते होगे।

महाराज श्री कृष्ण के पिता महाराज वसुदेव की अनेको रानिया थी। कृष्ण सबको क्रमश वन्दना किया करते थे। इस कारण देवकी देवी को वन्दन करने के लिये उनकी छह मास के पश्चात् बारी आती होगी।

महाराज श्री कृष्ण वासुदेव तीन खण्ड के नाथ थे। उन्हे अपने जीवन मे अनेक युद्ध लडने पडे थे, वे राज्यकार्यों मे अत्यधिक व्यस्त रहते थे, अत प्रतिदिन माता देवकी देवी के चरणो मे उपस्थित होना उनके लिये कठिन था। जब कभी उन्हे मौका मिलता माता के चरणो मे उपस्थित होकर उन्हे वन्दन कर लेते थे। यदि कभी अत्यधिक व्यस्त होने के कारण उन्हे अवसर नही मिलता था तो छह मास के बाद तो वे निश्चितरूप मे माता के चरणो मे उपस्थित होते ही थे। मातृ-चरणो मे अपना मस्तक रखकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे। छह महीनो के पश्चात् एक दिन का भी उल्लघन नही किया जाता था, निश्चित और व्यवस्थित रूप से महाराज श्री कृष्ण देवकी देवी के चरणो का स्पर्श कर लिया करते थे।

"जासिं मण्णे"—यहाँ पठित **जासिं** यह पद सर्वनाम है और "जिन माताओ की" इस अर्थ का बोधक है। अर्थ की सगति के लिये **"जासिं"** के आगे "अपच्चानि" का अध्याहार किया जाता है। **"जासिं"** से **"अपच्चानि"** का अध्याहर कर लेने से—जिन माताओ की सन्तान यह अर्थ हो जायेगा और "**णियग-कुच्छिसभूतयाइ**" से लेकर "**उच्छगे-णिवेसियाइ**" यहा तक के पद "अपच्चाणि" के विशेषण है। इन विशेषणा का अर्थ सम्बन्धी चिन्तन इस प्रकार हैं—

"णियगकुच्छिसभूतयाइ"—निजककुक्षे सम्भूतानि निजककुक्षिसभूतानि—स्वोदरजातानीति— अर्थात् अपने पेट से पैदा होनेवाली सन्तान—'निजक कुक्षि-सभूत' कहलाती है।

"थणदुद्धलुद्धयाइ"—स्तनदुग्धे लुब्धकानि तानि स्तनदुग्धे सजातस्पृहाणि, अर्थात् माताओ के स्तनो का दूध पीने के लिये जो लालायित हो रहे है, उन्हे 'स्तन-दुग्ध-लुब्धक' कहते है।

"महुरसमुल्लावयाइ"—मधुर चित्ताकर्षक **समुल्लापक** बालभाषण **येषा तानि। स्तनपानार्थं बाला मनोहरै सम्भाषणैर्मातृरनुकूलयन्तीतिभाव,** अर्थात्—जिन बच्चो के समुल्लाप मधुर हैं या जिन बच्चो की तोतली बोली हृदय को आकर्षित करनेवाली होती है, वे बच्चे 'मधुर समुल्लापक' कहलाते हैं।

"मम्मणपजपियाइ" मन्मनम्—अव्यक्तम्, ईषत्स्खलित **प्रजल्पित—भाषण येषा तानि—**अर्थात् बालको का प्रजल्पित—कथन वाणी-विलास अव्यक्त है अच्छी तरह से समझ मे नही आ रहा है और

ईषत्स्खलित है, कुछ लडखडाया हुआ है, अथवा जिन बच्चो का वाणी-विलास **मम्मण*** स्वरूप है। भाव यह है कि बच्चे जब दूध पीने के लिये इच्छुक या उत्सुक होते है तो उस समय **'मम्मण'** इस तरह की अव्यक्त और लडखडाई हुई भाषा का प्रयोग किया करते हैं। जो बच्चे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं उनको ही 'मम्मण-प्रजल्पित' कहा जाता है।

"थणमूलकक्खदेसभाग अभिसरमाणांति"—स्तनमूलात् कक्षादेशभागमभिसचरन्ति, अभिगच्छन्ति—अर्थात् जो बच्चे स्तनो के मूल भाग से लेकर कक्ष (काँख) तक के भाग मे अभिसरण करते हैं—भ्रमण करते है, उन बच्चो को सूत्रकार ने—**"थणमूलकक्खदेसभाग अभिसरमाणांति"** इन पदो से व्यक्त किया है।

"मुद्धयाइ" अव्यक्तविज्ञानानि—भद्रकाणि—अर्थात् जिन के वचनो का ज्ञान अभी बहुत अव्यक्त है, अप्रकट है या जो भद्र है सर्वथा सरल हैं, वे बच्चे "मुग्धक" कहलाते है।

"कोमल-कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छगे णिवेसियाइ"—कोमल कमलोपमाभ्या मृदुकमलतुल्याभ्या हस्ताभ्या गृहीत्वा उत्सगे—क्रोडे निवेशितानि—उपवेशितानि—अर्थात् कमल के समान कोमल हाथो के द्वारा पकडकर या उठाकर जो बच्चे गोद मे बिठा लिए गए है, उन बच्चो की ओर सूत्रकार ने उक्त पदो द्वारा सकेत किया है।

"समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिते" यह इस क्रियापद के कर्म हैं। उक्त क्रियापद का अर्थ है—देते हैं। प्रस्तुत मे प्रसग बच्चो के वाणी विलास का है, अत इस का अर्थ होगा—सुनाते हैं, अर्थात् सूत्रकार कहना चाहते हैं कि देवकी देवी कह रही है कि वे माताए धन्य है जिन माताओ की सन्तान अपनी कुक्षि से सम्भूत है, स्तनलुब्ध है, मधुरसलापक है, मम्मणप्रजल्पित है, स्तनमूल से लेकर कक्ष तक के भाग मे अभिसरणशील है तथा कमल के समान कोमल हाथो द्वारा जिसको उठा कर गोद मे बैठा रखा है। देवकी फिर कह रही है वे माताए धन्य हैं जिन की सन्तान **देंति**—देती है अर्थात् सुनाती है। प्रश्न हो सकता है क्या सुनाती है ? इस प्रश्न का उत्तर **'समुल्लावते'** आदि पदो द्वारा दिया गया है। इन का अर्थ इस प्रकार है—

"समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिते"—समुल्लपकान् सुमधुरान् पुन पुन प्रभणितान्, मञ्जुल मधुर प्रभणित भणितिर्येषु ते तथा तान्, अर्थात् समुल्लापक बाल-भाषण का नाम है। विशेष रूप से जो सुमधुर है, चेतोहर है वचन-विलास जिस मे उसे मजुलप्रभणित कहा जाता है। **"सुमहुरे तथा पुणो पुणो मजुलप्पभणिते"** ये दोनो **"समुल्लावते'** इस पद के विशेषण हैं।

प्रस्तुत प्रकरण मे मधुर और मजुल शब्दो के प्रयोग मे पुनरुक्ति की आशका हो सकती है, परन्तु वृत्तिकार अभयदेव सूरि इस का समाधान करते हुए कहते है कि सम्भ्रम मे यह कहा गया है, अत यहा पुनरुक्ति दोष नही समझना चाहिये—

इह सुमधुराणीत्यभिधाय यन्मञ्जुलप्रभणितानीत्युक्त तत्पुनरुक्ति न दुष्टसम्भ्रमभणितत्वादस्येति।

---

* मम्मण 'इत्यव्यक्तध्वनिरूप प्रजल्पित—भाषण येषा तानिति। देति' यह क्रिया पद है। इसका कर्त्ता अपत्यानि" है।

"अधन्ना, अपुण्णा, अकयपुण्णा" ये तीनो पद विशेषण हैं। इन तीनो का अर्थ-भेद इस प्रकार है—**अधन्या**—जिसे धन्य नही कहा जा सकता। **अपुण्या**—जिसके पास पुण्य की सम्पत्ति नही है। **अकृतपुण्या**—जिसने पुण्योत्पादक कोई आचरण नही किया है।

प्रस्तुत सूत्र मे देवकी देवी के हृदय मे उठ रहे सकल्प-विकल्पो का चित्रण किया गया है। इसके अनन्तर जो कुछ हुआ, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—इम च ण कण्हे वासुदेवे ण्हाते जाव विभूसिते देवतीते देवीए पायवदते हव्वमागच्छइ। तते ण से कण्हे वासुदेवे देवइ देविं पासइ, पासित्ता देवतीए देवीए पायग्गहण करेति, करित्ता देवती देवी एव वयासी—

अण्णदा ण अम्मो! तुब्भे मम पासेत्ता हट्ठ जाव भवह, किण्ण अम्मो! अज्ज तुब्भे ओहय० झियायह?

तए ण सा देवती देवी कण्हं वासुदेव एव वयासी—एव खलु अह पुत्ता! सरिसए जाव समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव ण मए एगस्सवि बालत्तणे अणुब्भूते। तुम पि य ण पुत्ता! मम छण्ह छण्ह मासाण अतिय पायवन्दते हव्वमागच्छसि। त धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

तए ण से कण्हे वासुदेवे देवति देविं एव वयासी—मा ण तुब्भे अम्मो! ओहय० जाव झियायह। अहण्ण तहा घत्तिस्सामि जहा ण मम सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सतीति कट्टु देवति देविं ताहि इट्ठाहि वग्गूहि समासासेइ, समासासित्ता ततो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ नवर।

छाया—इद च कृष्ण वासुदेव स्नात यावद् विभूषित देवक्या देव्या पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छति। तत स कृष्णो वासुदेव देवकी देवीं पश्यति, दृष्ट्वा देवक्या देव्या पादग्रहण करोति, कृत्वा देवकीं देवीमेवमवादीत्—

अन्यदा अम्ब! यूय मा दृष्ट्वा हृष्टा यावद् भवथ! किमम्ब! अद्य यूयमुपहतयावद् ध्यायथ?

तदा सा देवकी देवी कृष्ण वासुदेवमेवमवादीत्—एव खलु अह पुत्र! सदृश यावत् समानान् सप्तपुत्रान् प्रजाता (प्रजनितवती), नो चैव मया एकस्यापि बालत्वमनुभूतम्। त्वमपि च पुत्र! मम षण्णा-षण्णा मासाणामन्तिके पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छसि। तद् धन्या ता अम्बा यावद् ध्यायामि!

तत स कृष्णो वासुदेव देवकीं देवीमेवमवादीत्-मा यूयमम्ब ! उपहतयावद् ध्यायथ। अह तथा यतिष्ये यथा मम सहोदर कनीयान् भ्राता भविष्यतीति कृत्वा देवकीं देवीं ताभिरिष्टाभि वाग्भि समाश्वासयति, समाश्वास्य तत प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य यथा--अभय, नवरम्।

पदार्थ—च—समुच्चय अर्थ मे आता है, ण—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त होता है, इम—इधर, कण्हे-वासुदेवे-कृष्ण वासुदेव, ण्हाते—स्नान से निवृत्त हो, जाव—सभी प्रकार से, विभूसिते—विभूषित होकर, देवतीए देवीए—देवकी देवी के, पायवदते—चरण वन्दन के लिये, हव्वमागच्छइ—शीघ्र आ जाते हैं। तते—तत्पश्चात्, से कण्हे वासुदेवे—वे कृष्ण वासुदेव, देवइ देविं—देवकी देवी को, पासइ—देखते हैं और, पासित्ता—देखकर, देवतीए-देवीए—देवकी देवी के, पायग्गहण—चरण वन्दन, करेति—करते हैं, करित्ता—चरण वन्दना करके, देवतीं देवी—देवकी देवी को, एव—इस प्रकार, वयासी—कहने लगे, अम्मो—हे माता ! अन्नदा—अन्य दिनो मे तो, तुब्भे—आप, मम—मुझे, पासेत्ता—देखकर, हट्ठ जाव भवह—हर्षित यावद खुशी के मारे फूली नही समाती थी, परन्तु अम्मो !—हे माता ! अज्ज—आज, तुब्भे—आप, किण्ण—किस कारण से, ओहय—उदासीन, जाव—यावत्, झियायह—चिन्तामग्न हो रही हैं।

तए—तदनन्तर, सा—वह, देवती देवी—देवकी देवी, कण्ह वासुदेव—कृष्ण वासुदेव को, एव वयासी—इस प्रकार कहने लगी। एव—इस प्रकार, खलु—निश्चयार्थक है, पुत्ता—हे पुत्र ! अह—मैंने, सरिसए—एक जैसे, जाव—यावत्, समाणे—नल कूबर के समान, सत्त पुत्ते—सात पुत्रो को, पयाता-जन्म दिया, परन्तु मए-मैंने, एगस्सवि—एक बालक के भी, बालत्तणे—बचपन का, णो चेव ण—नही, अणुब्भूते—अनुभव किया। तुमपि—तुम भी, पुत्ता—हे पुत्र ! छण्ह-छण्ह—छह छह, मासाण—महीने के पश्चात्, मम अतिय—मेरे पास, पायवदते पादवन्दन के लिये, हव्वमागच्छसि—शीघ्र आते हो, शीघ्र ही चले जाते हो, त—इसलिये, मैं सोचती हू कि, धन्नाओ—धन्य हैं, ताओ—वे, अम्मयातो—माताए, जाव—यावत् धन्य हैं जो अपने पुत्रो की बालक्रीडा को देखती है, अत हे पुत्र ! मैं उसके अभाव के कारण, झियामि—चिन्तित हो रहा हू—आर्तध्यान कर रही हू। तत —तदनन्तर, कण्हे वासुदेव—कृष्ण वासुदेव, देवतीं देवीं—देवकी देवी को, एव वयासि—इस प्रकार कहने लगे, अम्मो—हे मात ! तुब्भे—आप, मा—मत, ओहय०—उदासीन हो, जाव—यावत्, झियायह—आर्त ध्यानी बनकर चिन्ता करो, अहण्ण—मैं, तहा—उस प्रकार, घत्तिस्सामि—यत्न करूगा, जहा—जिससे, मम—मेरा, कण्णीयसे—छोटा, सहोदरे—सहोदर-माजाया, भाउए—भाई, भविस्सति—होगा, त्तिकट्टु—ऐसा कहकर, देवतिं देविं—देवकी देवी को, ताहिं—उन, इट्ठाहिं वग्गूहिं—इष्ट वचनो द्वारा, समासासेति—आश्वासन देते है, समासासित्ता—आश्वासन देकर, ततो—तदनन्तर, वहा से, पडिनिक्खमति —चल देते है, और, पडिनिक्खमित्ता—चलकर, जेणेव—जहा पर, पोसहसाला—पौषधशाला थी, तेणेव—वहा पर, उवागच्छइ—आते हैं और, उवागच्छित्ता—आकर, जहा—जैसे, अभओ—अभयकुमार तेला करते हैं वैसे तेला करते हैं, नवर—पर इतना अन्तर है।

मूलार्थ—उस समय कृष्ण वासुदेव स्नान करके सभी प्रकार के वस्त्राभूषणो से विभूषित होकर देवकी देवी की चरण-वन्दना करने के लिये शीघ्र पधार जाते है। तब वे कृष्ण वासुदेव देवकी देवी को देखकर देवकी देवी के चरणो मे वन्दन करते है। वन्दन करने के अनन्तर इस प्रकार निवेदन करने लगे—

मात ! अन्य दिनो मे तो आप मुझे देखकर हर्षित होती थी, पर आज क्या कारण है जो आप उदासीन होकर आर्तध्यान मे लग रही है ?

अपने पुत्र की बात सुनकर माता देवकी देवी कहने लगी कि 'हे पुत्र ! मैंने एक जैसी आकृतिवाले नलकूबर के समान आठ पुत्रो को जन्म दिया, परन्तु उनमे से एक बालक का भी मैने बालभाव नही देखा। हे पुत्र ! तुम भी छह-छह महीने के अनन्तर मुझे वन्दन करने के वास्ते मेरे पास आते हो।'

आज मेरा मन दुखी है, इसीलिये मैं सोच रही हू कि वे माताए धन्य है जो अपने पुत्रो की बाल-लीलाओ का अनुभव करती है। इसलिये हे पुत्र ! आज मै उदासीन तथा चिन्तामग्न हू।'

तदनन्तर कृष्णवासुदेव देवकी देवी को इस प्रकार कहने लगे—हे मात ! आप किसी प्रकार भी चिन्ता मत करे। मै ऐसा यत्न करूगा जिससे मेरा मा जाया छोटा भाई और उत्पन्न हो जायेगा। इस प्रकार कह कर तथा देवकी देवी को इष्ट वचन विलास से आश्वासन देते है, आश्वासन देने के पश्चात् कृष्ण महाराज वहा से निकलते है, निकल कर जहा पौषधशाला है वहा आते है आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया था उसी प्रकार वे भी तेला आरभ कर देते हे, परन्तु इतना इस मे अन्तर है।

व्याख्या—देवकी देवी भगवान अरिष्टनेमि के मुख से सारा वृत्तान्त सुनने और उक्त छहो पुत्रो को देखने के पश्चात् घर मे आने पर पुत्र-स्नेह से विह्वल हो गई। उसे ध्यान आया कि वैसे तो मैं सात पुत्रो की जन्म-दात्री हू, सात पुत्रो को जन्म देने का मुझे सौभाग्य मिला है जो वर्ण-त्वचा एव लावण्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं, आज जगत मे कोई दूसरा उनकी समता करनेवाला नही है पर मुझे उनमे से किसी एक बालक के भी प्यार भरे बचपन को देखने का अवसर प्राप्त नही हुआ। देवकी पुन कहने लगी कि मैं तो पुण्यहीन हू, मैंने कोई ऐसा पुण्यकर्म नही किया जिसमे मुझे ऐसा सुअवसर प्राप्त होता। कहने को मैं कृष्ण की मा हू, सात पुत्रो की जननी हू, पर मैं तो कहती हू कि मैं किसी की भी मा नही हू। जब मैंने मा का कोई कार्य ही नही किया, फिर मा कहलाने का मुझे

अधिकार भी क्या है कृष्ण मेरे पास अवश्य आते है, पर वे छह महीनो के अनन्तर आने पर भी मेरे पास ठहरते नही है। आते पीछे हैं जाने की तैय्यारी पहले होती है। सौ बातो की एक बात कि मेरे जैसा पुण्यहीन जीवन किसी नारी का नही होगा। इस तरह शोकग्रस्त होकर आर्त्तध्यान करने लगी।

इधर देवकी देवी इस प्रकार आर्तध्यान कर रही थी, उधर श्रीकृष्ण उन्हे वहा चरण-वन्दन करने के लिये आ गए। श्रीकृष्ण ने अपनी माता को शोकातुर देखा तो आश्चर्यचकित रह गए। सर्वप्रथम मातृचरणो मे प्रणाम किया, तदनन्तर माता से सादर निवेदन करने लगे—मा! आज क्या बात है? पहले मैं आया करता था, तो आप प्रसन्नता से झूम उठती थी, पर आज तो उदासीनता ने आप को घेर रखा है। न मेरे आने की आप को खुशी हुई है—और न मुझे आशीर्वाद ही प्राप्त हुआ है। यह उदासीनता क्यो पैदा हुई है?

तब माता देवकी ने अपने मनोगत विचारो को श्रीकृष्ण के सामने रखा। वे समस्त विचार ऊपर की पंक्तियो मे लिखे जा चुके हैं। माता के चिन्तातुर होने के कारण को सुन कर श्रीकृष्ण ने उसकी निवृत्ति के लिये प्रयत्न करने का पूरा-पूरा आश्वासन दिया और मातृ-चरणो मे विनय-पूर्वक निवेदन किया —

मा! आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मेरे होते हुए आप आर्त्तध्यान मे बैठे, उदासीनता को धारण करें, यह मेरे लिये लज्जा का स्थान है। मा! आप सर्वथा निश्चिन्त रहे, मैं प्रयत्न करूगा कि मेरे अवश्य छोटा भाई हो। आप के हृदय की कामना अवश्य पूर्ण होगी। यदि पुत्र अपनी जननी की मनोकामना भी पूरी न कर सके तो वह पुत्र कहलाने का अधिकारी ही नही हो सकता। जननि! बिल्कुल मन को शान्त रखो! प्रसन्नता के साथ रहो मैं जाता हू, आप की इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

योग्य और भाग्यशाली सन्तान भी जन्म-जन्मान्तर के किसी विशिष्ट पुण्य के प्रताप से प्राप्त होती है। बिना सौभाग्य के आज्ञाकारी विनीत पुत्र की प्राप्ति का होना सर्वथा असम्भव है। देवकी देवी को जहा अपने दुर्भाग्य का खयाल आ रहा है वहा उस का सौभाग्य भी हमारे सामने है। वह त्रिखण्डाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण की जननी है। ऐसे पुत्र की मा बन कर उसने मातृजीवन की महत्ता को चार चाद लगा दिये है।

श्रीकृष्ण बडे विनीत और मातृभक्त महापुरुष थे। माता की सुख शान्ति के लिये सभी सम्भव उपाय करने मे उन्होने कभी कसर नही रखी। वस्तुत पुत्र वही है जो माता-पिता का पूर्ण भक्त होता है। उनके कष्टो को दूर करने तथा उनको प्रसन्न रखने के लिये वह अधिक से अधिक जो कुछ भी कर सकता है करने के लिये सदा तैयार रहता है।

जैनागम स्थानाग सूत्र मे वासुदेव को 'कर्म-उत्तम-पुरुष' माना गया है। प्रस्तुत वर्णन के अनुसार जब 'कर्म-उत्तम-पुरुष' भी मातृभक्ति से पराङ्मुख नही हुए और उन्होने मातृ-हृदय को प्रसन्न बनाये रखने के लिये तन मन का पूर्णतया योगदान किया, तब वर्तमान युग के साधारण व्यक्तियो को सेवा भगवती की आराधना करने के लिये विशेष कहने की आवश्यकता ही

नही रहती। उन को तो माता की सेवा-भक्ति से कभी भी पराङ्मुख नही होना चाहिये। माता-पिता की सेवा करनेवाला पुत्र ही देव, गुरु और धर्म की आराधना करनेवाला होता है।

कृष्ण महाराज माता देवकी देवी को आश्वासन देने के अनन्तर सीधे पौषधशाला मे गये। वहा पहुच कर हरिनैगमेषी देव की आराधना करने के लिये तीन दिन का लगातार उपवास प्रारम्भ कर दिया।

"ण्हाते जाव विभूसिते" "हट्ठ जाव भवइ" "ओहय० जाव झियायह" "सरिसए जाव समाणे" अम्मयाओ जाव झियामि" इन वाक्यो मे पठित **जाव** पद जिन पदो के ससूचक है उनके अर्थ पीछे यथा स्थान पर निर्दिष्ट किये जा चुके हैं।

"पोसहसाला" का अर्थ है—पौषधशाला। जहा बैठ कर पौषधव्रत किया जाता है उसे पौषधशाला कहा जाता है। जैसे भोजन करने के स्थान को भोजनशाला, पढने के स्थान को पाठशाला कहते हैं इसी प्रकार पौषधशाला के सम्बन्ध मे भी जान लेना चाहिये। जिससे आध्यात्मिक विकास को पोषण अर्थात् पुष्टि मिले उसे पौषध कहते है। यह श्रावक का एक धार्मिक अनुष्ठान विशेष है, यह पौषधशाला मे बैठ कर प्राय अष्टमी चतुर्दशी पक्खी आदि पर्व-तिथियो मे सम्पन्न होता है।

"जहा अभओ" का अर्थ है—जैसे अभय कुमार। भाव यह है कि जिस प्रकार 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' मे अभय कुमार का वर्णन आता है वहा बताया गया है कि अभय कुमार ने अपने मित्र देव को आराधित करने के लिये तेला किया था, इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी तेला किया। दोनो के तेले मे सामान्य सा अन्तर यह है कि अभयकुमार ने अपने मित्र देव का आराधन किया था जबकि श्रीकृष्ण ने हरिनैगमेषी देव का। इसी अन्तर को ध्वनित करने के लिये ही **'नवर'**—इतना विशेष है—(इतना अन्तर है) इस पद का प्रयोग किया गया है। इस अन्तर का परिचय सूत्रकार अगले सूत्र मे स्वय करा रहे हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि माता देवकी देवी को महाराज श्रीकृष्णने पूरा-पूरा आश्वासन दिया और पौषधशाला मे चले गये। वहा जाकर उन्होने अपनी तीन दिन की तपस्या आरम्भ कर दी। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्त परिणमइ, जाव अजलि कट्टु एव वयासी—इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! सहोदर कणीयस भाउय विदिण्ण।**

तते ण से हरिणेगमेसी कण्ह वासुदेव एव वयासी—होहिति ण देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुते सहोदरे कणीयसे भाउए। से ण उम्मुक्क जाव अणुप्पत्ते अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिय मुडे जाव पव्वतिस्सइ, कण्ह वासुदेव दोच्च पि तच्च पि एव वदति, वइत्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगते।

तते ण से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव देवती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवतीए देवीए पायग्गहण करेइ, करित्ता एवं वयासी– होहिति ण अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवति देवि ताहिं इट्ठाहि जाव आसासेइ, आसासित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए ।

छाया—हरिनैगमेषिण अष्टमभक्त प्रगृह्णाति यावदञ्जलि कृत्वा एवमवादीत्—इच्छामि देवानुप्रिय ! सहोदर कनीयस भ्रातृक वितीर्णम् ।

तत स हरिनैगमिषी कृष्ण वासुदेवमेवमवादीत्—भविष्यति देवानुप्रिय ! तव देवलोकच्युत सहोदर कनीयान् भ्रातृक । स उन्मुक्तो यावत् अनुप्राप्तोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्ड यावत् प्रव्रजिष्यति । कृष्ण वासुदेव द्वितीयमपि तृतीयमपि एव वदति, वदित्वा यामेव दिश प्रादुर्भूत तामेव दिश प्रतिगत ।

तत स कृष्ण वासुदेव पौषधशालाया प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव देवकी देवी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य देवक्या देव्या पादग्रहण करोति, कृत्वा एवमवादीत्—भविष्यति अम्ब ! मम सहोदर कनीयान् भ्रातृक इति कृत्वा देवकीं देवीं ताभिरिष्टाभिर्यावदाश्वासयति, आश्वास्य च यस्या दिश प्रादुर्भूत तामेव दिश प्रतिगत ।

पदार्थ—हरिणेगमेसिस्स—हरिनैगमेषी को उपलक्षित करके, अट्ठमभत्त —तेला, पगेण्हइ—ग्रहण करते है, जाव—यावद्, अजलि—अञ्जलि—करबद्ध, कट्टु—करके, एव—इस प्रकार, वयासी—बोले, देवाणुप्पिया—हे देवानुप्रिय !, इच्छामि—मैं चाहता हूँ कि आप, सहोदर—माजाया, कणीयस—छोटा, भाउय—भाई, विदिण्ण—दे ।

तते—तदनन्तर, से—वह, हरिणेगमेसी—हरिनैगमेषी देव, कण्ह वासुदेव—कृष्ण वासुदेव को, एव—इस प्रकार, वयासी—कहने लगे, देवाणुप्पिया ! हे देवानुप्रिय !, होहिति—हो जायेगा, तव—तेरे, देवलोयचुते—देवलोक से च्यव कर, सहोदरे—माजाया, कणीयसे—छोटा, भाउए—भाई, किन्तु, से—वह, उम्मुक—बालावस्था मे ही मुक्त होकर, जाव—यावत्, अणुप्पत्ते—युवावस्था को पाकर, अरहतो—अरिहन्त, अरिट्ठनेमिस्स—अरिष्टनेमि भगवान के, अतिय—पास, मुण्डे—मुण्डित, जाव—यावत्, पव्वतिस्सइ—दीक्षित हो जायेगा, कण्ह वासुदेव—कृष्ण वासुदेव को, दोच्चपि—दो वार, तच्चपि—तीसरी बार, एव—इस प्रकार, वदइ—कहता है, और वइत्ता—कहकर, जामेव दिस—जिस दिशा से, पाउब्भूते—आया था, तामेव दिस—उसी दिशा मे, पडिगते—चला गया ।

तते—तदनन्तर, ण—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, से—वह, कण्हे वासुदेवे—कृष्ण वासुदेव, पोसहसालाओ—पौषधशाला से, पडिनिक्खमइ—निकलते हैं और, पडिनिक्खमित्ता—वहा से निकलकर, जेणेव—जहा पर, देवती देवी—देवकी देवी थी, तेणेव—वहा पर, उवागच्छइ—

आते है, **उवागच्छित्ता**—और वहाँ आकर, **देवतीए देवीए**—देवकी देवी के, **पायग्गहण करेति**—चरणो मे वन्दना करते है, **करित्ता**—और वन्दना करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **अम्मो !**—हे जननि !, **मम**—मेरे, **सहोदरे**—सहोदर, **कणीयसे**—छोटे, **भाउए**—भाई, **होहिति**—हो जायेगा, **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कहकर, **देवति देवि**—देवकी देवी को, **ताहि इट्ठाहि**—उन इष्ट अभिलपित वचनो द्वारा, **जाव**—यावत्, **आसासेइ**—आश्वासन देते हे, और **आसासित्ता**—आश्वासन देकर, **जामेवदिस**—जिस ओर से, **पाउब्भूते**—आये थे, **तामेव दिस**—उसी ओर, **पडिगते**—चले गए।

मूलार्थ- कृष्ण वासुदेव ने हरिनैगमेषी देव की आराधना के लिये अष्टम भक्त-तेला किया। यावत् देव के प्रसन्न और प्रकट हो जाने पर श्रीकृष्ण वासुदेव हाथ जोडकर उनके चरणो मे निवेदन करने लगे- हे देवानुप्रिय ! मै चाहता हू कि आप मुझे एक छोटा सहोदर भाई दे। तब हरिनैगमेषी देव ने श्रीकृष्ण वासुदेव को उत्तर देते हुये कहा कि हे देवानुप्रिय ! देवलोक से च्यव कर तुम्हारे एक छोटा सहोदर भाई हो जायेगा, परन्तु वह बालक जब बडा होगा-यौवन अवस्था को प्राप्त होगा, तब अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित होकर दीक्षित हो जायेगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव को दो बार तीन बार कहकर हरिनैगमेषी जिस दिशा से आया था उसी दिशा की ओर चला गया।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण पौषधशाला से बाहर निकले और निकलकर जहा देवकी देवी थी, वहाँ पर आये और देवकी देवी के चरणो मे वन्दन करके बोले-माता ! मेरा छोटा सहोदर भाई हो जायेगा। इस प्रकार देवकी देवी को इष्ट-प्रिय वचनो द्वारा आश्वासन दिया और आश्वासन देकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर चले गये।

व्याख्या—पिछले सूत्र मे बताया गया था कि जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया था वैसे ही श्रीकृष्ण महाराज ने भी तेला किया। वहा यह भी बताया गया था कि दोनो के तेलो मे थोडा अन्तर था। प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने सर्वप्रथम उस अन्तर की ओर सकेत किया है, सूत्रकार ने **'हरिणेगमेसिस्स'** इस पद द्वारा उस अन्तर को स्पष्ट कर दिया है।

ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र के प्रथम अध्याय मे लिखा है कि—अभयकुमार* ने पूर्वसगतिकर (जो पहले मित्र रह चुका है) देव का आराधन किया था, तेले की तपस्या द्वारा उसका आह्वान किया था, तदनन्तर उससे अपना अभीष्ट कार्य सम्पन्न करवाया था, किन्तु श्रीकृष्ण न लगातार तीन दिनो

* देखो, 'ज्ञाता-धर्म कथाङ्ग सूत्र' प्रथम अध्ययन अभयकुमार द्वारा देवाराधन प्रकरण।

के तप द्वारा हरिनैगनेपी देवता का ग्राह्वान किया और उसका आराधन किया था, इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नही है। अभयकुमार के अष्टम-भक्त (तेले) द्वारा उसके पूर्व सगतिक देव का आसन कम्पित होना और उसके पास उपस्थित होना आदि सभी बातो का विस्तारपूर्वक वर्णन ज्ञाताधर्मकथागसूत्र मे किया गया है। जिस प्रकार अभयकुमार के तपोऽनुष्ठान से पूर्व-सगतिक देव का आसन कम्पित हुआ था और वह अभयकुमार के पास आया था, इसी प्रकार श्रीकृष्ण महाराज के तपोऽनुष्ठान से हरिनैगमेषी का आसन प्रकम्पित हुआ और वह उनके पास उपस्थित हुआ। आदि बातो की समानता के कारण ही सूत्रकार ने पिछले सूत्र मे 'जहा अभओ'' वाक्य प्रयुक्त किया है।

दिव्यरूपधारी हरिनैगमेषी देव के प्रकट होने पर कृष्ण महाराज ने अपने अनुष्ठान का उद्देश्य बतलाते हुए उनसे हाथ जोड कर विनम्र निवेदन किया—हे देवानुप्रिय ! मै चाहता हू कि मुझे एक छोटा भाई मिल जाये, अत आप मुझे एक छोटा भाई देने की कृपा करें। श्रीकृष्ण को उत्तर देते हुए— हरिनैगमेषी देव बोले—देवानुप्रिय ! देवलोक से एक देवता आयुष्य पूर्ण करके तुम्हारे घर मे जन्म लेगा और वह तुम्हारा भाई बनेगा, पर युवावस्था आने पर तुम्हारे घर मे नही रह सकेगा। भगवान अरिष्टनेमि की जन-कल्याणकारिणी अमृतमयी वाणी उस पर ऐसा अपूर्व प्रभाव डालेगी कि वह भरी जवानी मे ही मोह-माया के बधनो को तोडकर भगवान के चरणो मे दीक्षित हो जायेगा—साधु बनेगा। हरिनैगमेषी देव ने अपनी यह बात एक बार या दो बार नही प्रत्युत तीन बार श्रीकृष्ण महाराज के सामने दोहराई, ताकि श्रीकृष्ण का हृदय पूर्णतया समाहित हो जाये। अपनी बात तीसरी बार कहने के अनन्तर-हरिनैगमेषी देव जिधर से आया था उधर ही चल दिया।

हरिनैगमेषी देव के द्वारा पूर्णतया समाहित हो जाने पर त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण महाराज ने पौषध का पारण किया और पौषधशाला से निकलकर वे जहा माता देवकी विराजमान थी वहा आए और मातृ-चरणो मे सविनय वन्दना करने के अनन्तर कहने लगे—

माँ ! चिन्ता और निराशा को छोडो, किसी भी प्रकार की उदासीनता मन मे न रखो। हरिनैगमेषी देव की मैंने आराधना की थी। उन्होने कहा है कि तुम्हारा एक छोटा सहोदर भाई जन्म लेगा और तुम्हारी जननी की समस्त कामनाये पूर्ण हो जायेगी।

शान्तिदायक एव हृदयप्रिय वाणी द्वारा श्रीकृष्ण ने माता देवकी को आश्वासन देकर उनके अशान्त हृदय को शान्त किया। माता के हृदय को प्रफुल्लित कमल की भाति खिला जानकर तथा अन्य सन्तोष-जनक वचनो द्वारा मा को शान्ति पहुचा कर श्रीकृष्ण अपनी माँ से विदा लेते है और वहा से वापिस लौट कर अपने राज्यकार्यो मे लग जाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे मुख्यतया श्रीकृष्ण की अनन्य मातृ-भक्ति श्रद्धा और विश्वास द्वारा की गई साधना की सफलता तथा देव-शक्ति मे भविष्यत्कालीन बातो को प्रकट करने की क्षमता, इन तीनो बातो का वर्णन उपलब्ध होता है। प्रस्तुत मे इन बातो पर भी कुछ विचार कर लेते हैं—

श्रीकृष्ण महाराज के विशाल—एव अनन्त वैभव से सभी परिचित हैं। तीन खण्डो में उनका निष्कण्टक राज्य था, सोलह हजार नरेश उनके चरण सेवक थे, अन्य दास-दासियो की तो गणना ही क्या ? आकाश के देव भी उनकी सेवा किया करते थे। यह सब कुछ होने पर भी श्रीकृष्ण सर्वथा

निरभिमानी महापुरुष थे। अस्मिता—अहभाव उनके निकट नही था। यही कारण था कि अवसर आने पर स्वय सेवक बनने मे भी उन्होने कभी सकोच नही किया। प्रस्तुत सूत्र इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है। माता देवकी देवी की चिन्ता को दूर करने और उनके अभीष्ट को सिद्ध करने के लिये उन्होने अपने सब कार्य छोड दिए, अपने सुख दु ख को भुला दिया और बडी श्रद्धा तथा आस्था के साथ उन्होने तपस्या का कठोर पथ अपनाया, तेला करके हरिनैगमेषी देवता की आराधना की। इस प्रकार आज्ञाकारी, सुशील, विनीत पुत्र बनकर उन्होने क्रियात्मक अनन्य मातृ-भक्ति तथा मातृ-सेवा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया। मातृभक्ति, मातृ सेवा तथा माता की इच्छा की पूर्ति करने का जीवन मे कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है ? यह समझने के लिये प्रस्तुत सूत्र का कथानक पर्याप्त है। पुत्र-जगत को इस कथानक से शिक्षा प्राप्त करके मातृभक्ति एव मातृसेवा की महत्ता को समझना चाहिये और इसे जीवन मे अगीकार करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो कार्य मनुष्य को अशक्य प्रतीत होता है, कठिन दिखाई देता है उसको यदि श्रद्धा और विश्वास के साथ किया जाए तो वह भी एक दिन अवश्य सफल होता है। उसके सम्पादन मे मनुष्य तो क्या देवता भी सहायक बन जाते है। वस्तुत पूरी लगन तथा अखण्ड निष्ठा से की गई साधना कभी निष्फल नही जा सकती, वह सदा सफल होती है। प्रस्तुत सूत्र मे इस सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है।

यहा लिखा है कि श्रीकृष्ण ने तेला किया और हरिनैगमेषी देव को प्रसन्न कर लिया। केवल तीन दिनो मे देव की आराधना कर लेना, उसे प्रसन्न कर लेना बच्चो का खेल नही है। बहुत कठिन कार्य है, पर जिस साधना के पीछे विश्वास और श्रद्धा की महान शक्ति काम कर रही हो वह साधना कभी निष्फल नही होती। वह देवताओ के सिंहासनो को कम्पित करके ही छोडती है। वर्षों साधना करने पर असफल रहनेवाले साधक वर्ग को प्रस्तुत कथानक से शिक्षा प्राप्त करके अपनी आस्था और निष्ठा को सशक्त बनाने का प्रयास करना चाहिये।

श्री नन्दी सूत्र मे ज्ञान के ५ प्रकार लिखे गए है —

१ आभिनिबोधिक ज्ञान (मति) २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मन पर्यवज्ञान और ५ केवल ज्ञान। इसमे तीसरा ज्ञान अवधि ज्ञान है। इसका अर्थ है इन्द्रियो की और मन की अपेक्षा न रखते हुए केवल आत्मा के द्वारा मूर्त-पदार्थों का बोध प्राप्त करनेवाला ज्ञान। यह ज्ञान मुख्यतया दो प्रकार का होता है। पहला भव-प्रत्ययिक है। दूसरा—क्षायोपशमिक। जो अवधिज्ञान जन्म लेते ही प्रकट होता है जिसके लिये अहिंसा—सयम आदि अनुष्ठानो की अपेक्षा नही होती, ऐसा जन्मसिद्ध ज्ञान भव-प्रत्ययिक-अवधिज्ञान कहलाता है। अहिंसा सयम तपादि कठोर साधनो के बल पर जो अवधिज्ञान प्राप्त होता है उसका नाम क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है। इनमे से भव-प्रत्ययिक अवधिज्ञान देवो और नारकीय जीवो को होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि हरिनैगमेषी देव ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा था कि हे देवानुप्रिय ! देवलोक से च्यव कर आपके एक सहोदर छोटा भाई होगा, परन्तु वह युवा होने पर भगवान अरिष्ट-नेमि के चरणो मे दीक्षित हो जायेगा। देवलोक से च्युत होना और भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होना आदि भविष्यत्कालीन जितनी भी बाते कही है ये सब हरिनैगमेषी देव ने अपने

अवधिज्ञान द्वारा ही कही हैं। सूत्रकार ने इस कथानक द्वारा देवो में भविष्यकालीन बातो को प्रकट करने की क्षमता प्रकट की है।

"पगेण्हइ जाव अजलि" "उम्मुक जाव अणुप्पत्ते" "मुडे जाव पव्वतिस्सइ" "हट्ठहिं जाव आसासेति" यहां पढे गए जाव पद अन्य स्थानो पर दिए गए मध्यगत पाठो के बोधक हैं, इस पद्धति से सूत्रकार ने पाठो को सक्षिप्त कर दिया है। ग्रन्थ का शरीर बडा न हो इस दृष्टि को आगे रख कर ही इस पद्धति को अपनाया गया है।

"हरिणेगमेसी"—हरिनैगमेषी"—यह शब्द हरिनैगमेषी नामक देवता का बोधक है। यह देवता शक्रेन्द्र महाराज की पैदल सेना का स्वामी है तथा इन्द्र का सन्देश लेकर कार्य करता है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था। हरिनैगमेषी देव द्वारा कही गई आवश्यक बात माता देवकी को कहकर श्रीकृष्ण अपने इष्ट स्थान की ओर चले गए। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण सा देवती देवी अन्नया कदाइ तसि तारिसगसि जाव सीह सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा, जाव पाढया, हट्ठहियया परिवहइ। तते ण सा देवती देवी नवण्ह मासाण जासुमणा-रत्तबधुजीवगलक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवाकरसमप्पभ सव्वनयणकत सुकुमाल जाव सुरूव गयतालुय-समाण दारय पयाया। जम्मण जहा मेहकुमारे जाव जम्हा ण अम्ह इमे दारते गयतालुसमाणे त होउ ण अम्ह एतस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले २। तते ण तस्स दारगस्स अम्मापियरे नाम करेंति गयसुकुमालोत्ति। सेस जहा मेहे जाव अल भोगसमत्थे जाते यावि होत्था।

छाया—तत खलु सा देवकी देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशके यावत् सिंहस्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, यावत् पाठका, हृष्टहृदया परिवहति,। तत खलु सा देवकी देवी नवाना मासाना जयासुमना-रक्तबधुजीवक-लाक्षारस-सरसपारिजालक-तरुणदिवाकरसमप्रभ, सर्वनयनकान्त सुकुमार यावत् सुरूप गजतालुक-समान दारक प्रयाता, जन्म यथा मेघकुमार, यावत् यस्माद् खलु आवयोरेतस्य दारकस्य नामधेय गजसुकुमाल २। तत खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नाम कुरुत गजसुकुमाल, इति शेष यथा मेघ यावत् अल भोगसमर्थो जातश्चाप्यभवत्।

पदार्थ—तए—तदनन्तर, ण—वाक्यसौन्दर्य के लिये प्रयुक्त होता है, सा—वह, देवती देवी—देवकी देवी, अन्नवा कदाइ—अन्य किसी समय, तसि—उस, तारिसगसि—सुकोमल शय्या पर, जाव—यावत्, सुमिणे—स्वप्न मे, सीह—शेर को, पासेत्ता—देख कर, पडिबुद्धा—जाग उठी, जाव—यावत्, पाढया—स्वप्नपाठक बुलवाए गए, हट्ठहियया—हृदय मे प्रसन्न हुई माता देवकी ने, परिवहइ—गर्भ धारण किया, तते—तदनन्तर, सा—वह, देवती देवी—देवकी देवी, नवण्ह—नौ, मासाण—महीनो के बाद, जासुमणा—जासु के फूल के समान, रत्तबधुजीवग—रक्त बधु जीवक, रक्त-

वर्णीय वीर बहूटी जीव विशेष के समान, **लक्खारस**—लाक्षारस—लाख के रग के समान, **सरसपारिजातक**—खिले हुए पारिजात पुष्प जैसे, कल्पवृक्ष नामक—देववृक्ष विशेष के समान, **तरुणदिवाकर**—प्रात कालीन सूर्य के, **समप्पभ**—समान प्रभा कान्ति वाले, **सव्वनयणकत**—सब के नेत्रो को प्यारे लगने वाले, **सुकुमाल**—सुकुमार—अत्यधिक कोमल, **जाव**—यावत्, **सुरूव**—सुन्दर रूप वाले, **गयतालुयसमाण**—रक्त या कोमलता मे हाथी के तालु के समान, **दारय**—पुत्र को, **पयाया**—जन्म देती है, **जम्मण**—बालक का जन्म सस्कार, **जहा**—जैसे, **मेघकुमारे**—मेघ कुमार का हुआ था वैसे ही हुआ, **जाव**—यावत्, **जम्हा**—जिस से, **अम्ह**—हमारा, **इमे दारते**—यह बालक, **गयतालुसमाणे**—हाथी के तालु के समान रक्त और कोमल है, **अम्ह**—हमारे, **एतस्स**—इस, **दारगस्स**—बालक का, **नामधेज्जे**—नाम, **गयसुकुमालोत्ति**—गजसुकुमाल, **होउ**—हो, **तते**—तदनन्तर, **तस्स दारगस्स**—उस बालक के, **अम्मापियरे**—माता-पिता, **गयसुकुमालोत्ति**—गज सुकुमार यह, **नाम**—नाम, **करेंति**—रखते हैं, **सेस**—शेष वर्णन, **जहा मेहे**—जैसे मेघकुमार का है, वैसे जानना, **जाव**—यावत्, **अल भोग समत्थे यावि**—और भोग भोगने मे पूण रीति से समर्थ भी, **जाते यावि होत्था**—हो गया।

मूलार्थ—तदनन्तर किसी अन्य समय माता देवकी देवी अपने शयनागार मे बडी ही कोमल एव सुखद शय्या पर सो रही थी, उसने स्वप्न मे सिंह को देखा। स्वप्न देखने के अनन्तर वह जाग उठी। उस ने स्वप्न का सारा वृत्तान्त अपने पति वसुदेव को सुनाया। महाराज वसुदेव ने स्वप्न-पाठको को बुला कर उन से स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नपाठको ने उस का फल एक सुयोग्य पुण्यात्मा पुत्र की प्राप्ति बतलाया। माता देवकी स्वप्नपाठको से स्वप्न का फल सुन कर बडी ही प्रसन्न हुई। समय आने पर उसने गर्भ को धारण किया और वह उस का उचित रीति से पालन-पोषण करने लगी।

तदनन्तर नौ मास हो जाने के पश्चात् माता देवकी ने जया-कुसुम तथा रक्तबधुजीवक—वीरबहूटी के समान, लाख के रग, विकसित पारिजात, तथा प्रात कालीन सूर्य के समान कान्तिवाले, सब के नेत्रो को आनन्द देनेवाले, सुकुमार अङ्गोवाले तथा सुन्दर रूपवाले हाथी के तालु के समान रक्त तथा कोमल पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का जन्मसस्कार 'ज्ञाताधर्म-कथाँग सूत्र' मे वर्णित मेघकुमार के समान किया गया।

नामसस्कार करते समय कहा गया कि हमारा यह बालक हाथी के तालु के समान रक्त वर्णवाला है, तथा कोमल अङ्गोवाला है, इसलिये इस बालक का नाम

गजसुकुमाल होना चाहिये। अपने इस कथन के अनुसार माता-पिता ने बालकका नाम "गजसुकुमाल" उद्घोषित कर दिया।

राजकुमार गजसुकुमाल की बालवास्था तथा विद्याप्राप्ति का समस्त वर्णन मेघकुमार के समान समझ लेना चाहिये। विद्याध्ययन के अनन्तर गजसुकुमाल भोगो के भोगने मे पूर्णतया समर्थ हो गए।

व्याख्या—इस सूत्र मे सक्षेप से माता देवकी का स्वप्न मे सिंह को देखना, जागने पर पतिदेव को अपने स्वप्न का हाल कहना, पतिदेव द्वारा स्वप्न-पाठको को बुलवाना, स्वप्न-पाठको द्वारा स्वप्न का फल बतलाना, समय आने पर गर्भ का धारण करना, उसका सरक्षण करना, नौ मास व्यतीत हो जाने पर हाथी के तालु के समान रक्त एव कोमल पुत्र का जन्म होना और उसका गजसुकुमाल नाम-सस्कार करना, अन्त मे गजसुकुमाल का बालावस्था से युवावस्था मे पदार्पण करना, इन सब बातो का वर्णन किया गया है। सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जन्म कालीन सभी वृत्तान्तो को विस्तार मे न लिखकर '**जहा मेहकुमारे**" इन पदो द्वारा मेघकुमार के तुल्य सूचित कर दिया है। "**जहा मेहकुमारे**" का अर्थ है जिस प्रकार राजकुमार मेघकुमार का जन्म होने पर माता-पिता ने हर्ष मनाया, नागरिको ने प्रमोदानुभव किया, तथा राज्य भर मे खुशिया मनाई गई, उसी प्रकार राजकुमार गज-सुकुमाल का जन्म होने पर जन्म-उत्सव मनाया गया, घर घर मे खुशिया नाच उठी। श्री मेघकुमार का जीवन "**श्रीज्ञाताधर्मकथाग सूत्र**" मे वर्णित हुआ है।*

'**तारिसगसि जाव सीहं**" "**पडिबुद्धा जाव पाढया**" "**मेहकुमारे जाव जम्हा**" तथा "**मेहे जाव अल**" उन वाक्यो मे पठित जाव पद अन्य स्थानो पर लिखे गए सम्पूर्ण पाठो के परिचायक समझने चाहियें। जैनागमो को यह शैली रही है कि एक स्थान पर या एक सूत्र मे जिस बात का वर्णन कर दिया है उसी बात का यदि फिर उल्लेख करना इष्ट हो तो वहा सम्पूर्ण पाठ न लिखकर आदि और अन्त के पाठ का ही उल्लेख करके मध्य मे **जाव** पद दे दिया जाता है। यह **जाव** पद मध्य मे पढे गए सभी पदो का ससूचक होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे जो "हट्ठहियया" आदि समस्त पद दिए गए हैं उनका अर्थ इस प्रकार है—

"**हट्ठहियया**"—**हृष्ट प्रमुदित हृदय मानस यस्या सा**—जिसका हृदय प्रसन्न हो, उसे "**हृष्टहृदया**" कहते हैं। माता देवकी ने स्वप्न मे जब शेर को देखा तो जागने पर उसने अपने पति-देव वसुदेव के पास जाकर अपना स्वप्न बतलाया, पतिदेव से स्वप्न का उत्तम फल सुनकर उसे अनुभव होने लगा कि तेरी चिराभिलषित पुत्र-प्राप्ति तथा लाडले से लाड लडाने की कामना अब अवश्य पूर्ण हो जायेगी। ऐसा विचार आते ही माता देवकी आनन्द विभोर हो उठी, उसका रोम-रोम खुशी के कारण पुलकित हो गया। माता देवकी की इसी असीम हर्षानुभूति को सूत्रकार ने "**हट्ठहियया**" इस पद द्वारा अभिव्यक्त किया है।

---

* 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र का प्रथमाध्ययन' देखना चाहिये।

"जासुमणा–रत्तबधुजीवग-लक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवाकर-समप्पभ–जया वनस्पति-विशेष, तस्य सुमनानि पुष्पाणि, रक्तबधु लोहितबधुक, तदपि च रक्तवर्णमपि भवतीति रक्तग्रहणम्, लाक्षारस' जावक, सरसपारिजातक अम्लान् (अभिनव) सुरद्रुमविशेषकुसुम, तरुणदिवाकर — उदीयमान सूर्य —एतै सम एतत्प्रभातुल्यप्रभा–वर्णो यस्य स तमिति।

इस पद मे १ —जया सुमन, २—रक्तबन्धु-जीवक, ३—लाक्षारस, ४—सरस-पारिजात, ५—तरुण दिवाकर इन पाच वस्तुओ का उल्लेख किया गया है। जया—एक वनस्पति विशेष का नाम है। इसे जासु या अडहुल भी कहते हैं। सस्कृत—शब्दार्थ कौस्तुभ नामक सस्कृत कोष मे **जया** का अर्थ—"सदा बहार गुलाब का फूल या पौधा" ऐसा लिखा है। **जया** के फूलो को **"जासुमन"** कहा जाता है, ये फूल रक्त वर्णीय होते हैं।

रक्त-बन्धु जीवक—यह शब्द रक्त और बधुजीवक इन दो पदो से बना है। रक्त लाल वर्ण को कहते है, बधुजीवक शब्द का अर्थ होता है—गुल्म विशेष—दुपहरिया का पौधा, जिसमे लाल रग के फूल लगते है और जो बरसात मे फूलता है। दोनो का सम्मिलित अर्थ है—लाल रग का दुपहरिया नामक एक गुल्म विशेष। एक स्थान पर रक्तबधु-जीवक का अर्थ रक्त पुष्प विशेष लिखा है। आचार्य-प्रवर अभयदेव सूरि के अनुसार बन्धुजीवक पांच वर्णवाले पुष्प विशेष होते है। प्रस्तुत मे रक्तवर्ण वाले अभीष्ट है, इसलिये सूत्रकार ने बन्धुजीवक के साथ रक्त शब्द का प्रयोग किया है। सचित्र अर्धमागधी कोष मे रक्त-बधु-जीवक शब्द का अर्थ लिखा है—वर्षा ऋतु मे उत्पन्न होने वाला, गोगलगाय, देवगाय, इन्द्रगोप, नामक लाल रग का जीव। अर्धमागधी कोषकार ने रक्तबन्धु-जीवक शब्द का जो अर्थ लिखा है, उसे ग्राम भाषा मे इन्द्रगोप या वीरवहूटी कहते हैं। यह जीव रक्त वर्ण का तथा मखमल जैसा नरम होता है।

लाक्षारस—महावर को कहते हैं। महावर लाख के रग का नाम है यह रक्त होता है, इसमे स्त्रिया अपने पाव रगती हैं।

सरस-पारिजातक—मे सरस शब्द विकसित—खिला हुआ इस अर्थ का बोधक है। पारिजातक शब्द के अनेको अर्थ उपलब्ध होते है, १—पुष्प-विशेष, २—फरहद का फूल जो रक्त वर्ण का और अत्यन्त शोभायमान होता है, ३—देववृक्ष विशेष, ४—कल्प-तरु विशेष। प्रस्तुत मे पारिजातक का अर्थ रक्त वर्णीय पुष्प ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

तरुण-दिवाकर—इस पद मे प्रयुक्त 'तरुण' शब्द युवा अर्थ का बोधक है और मध्याह्न काल मे ही सूर्य तरुण–युवा अवस्था को प्राप्त हुआ माना जाता है, अत मध्याह्न के सूर्य को ही तरुण-दिवाकर कह सकते हैं, परन्तु प्रस्तुतमे यह अर्थ इष्ट नही है। राजकुमार गजसुकुमाल का वर्ण रक्त होने से दोपहर के सूर्य के साथ उसका अन्वय नही हो सकता। यही कारण है कि आचार्यवर अभयदेव सूरि ने तरुण-दिवाकर का अर्थ—उदीयमान—उदय होता हुआ सूर्य किया है। यह अर्थ उचित भी है, क्योकि उदीयमानसूर्य का वर्ण लाल होता है, अत राजकुमार गजसुकुमाल के रक्त वर्ण के साथ इसका सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त तरुण शब्द रक्त अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। उत्तराध्ययन

सूत्र के ३४वें अध्ययन के तेजोलेश्या प्रकरण मे लिखा है—

"हिंगुलधाउसकासा, तरुणाइच्चसनिभा ।
सुयतु डपइयनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥"

अर्थात् हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोच, और दीपशिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है। प्रस्तुत सूत्र मे तरुण शब्द रक्त अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेश्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की सगति नही हो सकती।

जयासुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरसपारिजातक और तरुण दिवाकर इनके समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जया-सुमन- रक्तबधुजीवक-लाक्षारस-सरस-पारिजातक-तरुणदिवाकर समप्रभ' कहते हैं।

सव्वनयणकत—सर्वस्य जनस्य नयनाना कान्त कमनीयोऽभिलषणीय सर्वनयनकान्तस्तमिति। यहा सर्व शब्द सभी लोगो की, नयन शब्द आखो को तथा कान्त शब्द प्यारा लगनेवाला—सुख देनेवाला इस अर्थ का परिचायक है। सभी मनुष्यो की आखो को प्रिय लगनेवाले को **"सर्व-नयन-कान्त"** कहा जाता है।

"गय-तालुय-समाण"—गज-तालुक-समानम्, गजस्यतालु गजतालु तत्समानम् कोमल-रक्तत्वाभ्यां तत्सदृशम्—अर्थात् गज हाथी का नाम है। तालु का अर्थ है—ऊपर के दातो और कौवे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते हैं। गज के तालु के समान जिस का तालु हो वह 'गज-तालु-समान' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियो का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विशेष रूप से रक्त और कोमल माना गया है। सूत्रकार कहते हैं कि राजकुमार गजसुकुमाल का तालु हाथी के तालु के समान रक्त और कोमल था, इसीलिए गजसुकुमाल को गज-तालु, इस विशेषण से विशेषित किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे गजसुकुमाल के नाम-सस्कार का जो वर्णन किया गया है इस से यह सिद्ध होता है कि उस समय बालक का नामकरण उस मे व्यक्त होनेवाले किसी गुण-विशेष को लक्ष्य मे रख कर ही किया जाता था।

"अल भोगसमत्थे"—अल भोगसमर्थ। अल शब्द का अर्थ है—पूर्ण रूप से प्रत्येक दृष्टि से। स्पर्श, रस, गन्ध आदि उपभोग्य पदार्थों का उपभोग करना, इस अर्थ का ग्रहण भोग शब्द से होता है। समर्थ शक्तिशाली को कहते हैं। तीनो को मिला कर अर्थ होगा—उपभोग्य पदार्थों के भोगने मे जो पूर्णतया समर्थ है। उसे ही 'अल भोगसमर्थ' कहते है।

राजकुमार गजसुकुमाल के युवक हो जाने पर उस के विवाह आदि के सम्बन्ध मे क्या किया गया ? अब सूत्रकार इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहते हैं —

मूल—तत्थ ण बारवतीए नयरीए सोमिले नाम माहणे परिवसइ, अड्ढे रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिते यावि होत्था। तस्स सोमिलमाहणस्स सोमसिरि नाम माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स ण सोमिलस्स धूता सोमसिरिए माहणीए अत्तया सोमानामं दारिया होत्था। सोमाला जाव सुरूवा। रूवेण जाव लावण्णेण उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि

होत्था । तते ण सा सोमा दारिया अन्नया कदाइ ण्हाता जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहि जाव परिक्खित्ता सतातो गिहातो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिन्दूसएण कीलमाणी २ चिट्ठइ ।

छाया—तत्र द्वारवत्या नगर्यां सोमिलो नाम माहन (ब्राह्मण) परिवसति । आढ्य, ऋग्वेदे यावत् सुपरिनिष्ठितश्चाप्यभवत् । तस्य सोमिलमाहनस्य सोमश्री नाम्नो माहनी अभवत् सुकुमारा । तस्य सोमिलस्य दुहिता सोमश्रियो माहन्या आत्मजा सोमा नाम्नी दारिकाभवत् । सुकुमारा यावत् सुरूपा, रूपेण यावत् लावण्येन उत्कृष्टा, उत्कृष्ट-शरीरा चाप्यभवत् । तत सा सोमा दारिका अन्यदा कदाचिद् स्नाता यावत् विभूषिता बहुभि कुब्जिकाभि यावत् परिक्षिप्ता स्वस्मात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव राजमार्गस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कनकतिन्दूपकेण क्रीडमाना २ तिष्ठति ।

पदार्थ—तत्थ—उस, ण—वाक्य-सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया गया है, बारवतीए नयरीए —द्वारिका नगरी मे, सोमिले—सोमिल, नाम—नाम का, माहणे—माहन ब्राह्मण, परिवसइ—रहता था, अड्ढे—वह बडा धनवान था, रिउव्वेद—ऋग्वेद, जाव—यावत् (अन्य वेदो मे), सुपरिणिट्ठिते—निष्णात, पारगत, यावि होत्था—भी था, तस्स—उस, सोमिल माहणस्स—सोमिल ब्राह्मण की, सोमसिरी—सोमश्री, नाम—नाम की, माहणी होत्था—ब्राह्मणी (धर्मपत्नी थी), सूमाल०—वह कोमल थी, तस्स—उस, सोमिलस्स—सोमिल की, धूता—पुत्री, सोमसिरिए माहणीए—सोमश्री नामक ब्राह्मणी की, अत्तया—आत्मजा—बेटी, सोमा नाम—सोमा नाम की, दारिया —लडकी, होत्था—थी, सोमाला—वह कोमल थी, जाव—यावत्, लावण्णेण—लावण्य-सौन्दर्य से, उक्किट्ठा—उत्तम, उक्किट्ठसरीरा—इन्द्रियो की निर्दोषता के कारण, शारीरिक अवयवो की उचित स्थिति के कारण प्रशस्त शरीरवाली, यावि होत्था—भी थी । तते—तदनन्तर, अन्नया कदाइ—किसी अन्य समय, सा—वह, सोमा दारिया—बालिका सोमा, ण्हाता—स्नान से निवृत्त हो, विभूसिया—भूषणो से विभूषित होकर, बहूहि—बहुत सी, खुज्जाहि—कुब्जाओ—बौनी दासियो, जाव—यावत्, अन्य अनेकविध दासियो द्वारा, परिक्खित्ता—घिरी हुई, सतातो—अपने, गिहातो—घर से, पडिनिक्खमइ—निकलती है, पडिनिक्खमित्ता—और निकल कर, जेणेव—जहा पर, रायमग्गे —राजमार्ग (शाही सडक) था, तेणेव—वहा पर, उवागच्छइ—आती है, उवागच्छित्ता—और वहा आकर, रायमग्गंसि—राज पथ मे, कणगतिंदूसएण—सोने की गेंद से, कीलमाणी २ चिट्ठइ —खेलने लगी ।

मूलार्थ—उस द्वारिका नगरी मे सोमिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था । वह ऋद्धि-सम्पन्न, ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि वेदो के ज्ञान मे पूर्णतया निष्णात अर्थात् पारगत था । उस सोमिल ब्राह्मण की धर्मपत्नी का नाम सोमश्री था । सोमश्री अगोपाग के सौदर्य तथा स्वभावकी दृष्टिसे बडी कोमल थी ।

सोमिल ब्राह्मण की पुत्री तथा सोमश्री ब्राह्मणी की वेटी का नाम सोमा था। सोमा वालिका बडी कोमल तथा रूपवती थी। रूप, आकार तथा लावण्य--सौन्दर्य की दृष्टि से उस मे कोई दोष नही था, अतएव वह उत्तम तथा उत्तम शरीरवाली थी।

एक समय की वात है। सोमा वालिका ने स्नान किया, आभूषणो से अपने शरीर को आभूषित किया। कुब्जा-बौनी आदि अनेकविध दासिया अपने साथ ली। इस प्रकार पूरी सज-धज के साथ वह घर से निकली और राज-पथ पर आ गई। राज-पथ पर पहुच कर वह अपनी दासियो के साथ सोने की गेन्द के साथ खेलने लगी।

व्याख्या--इस सूत्र मे सूत्रकार ने द्वारिका-नगरी के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण सोमिल, उसकी धर्म-पत्नी सोमश्री तथा उसकी परम सुन्दरी सोमा नामक लडकी का सक्षेप से वर्णन किया है। सोमिल ब्राह्मण का परिचय कराते हुए सूत्रकार ने उसे वैभव-सम्पन्न एक महान विद्वान् सूचित किया है। जन साधारण में यह कहा जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मी--विद्या और सम्पत्ति का आपस मे कोई सान्निध्य नही होता। दोनो एक दूसरे से दूर रहती हैं। जहा विद्या भगवती हो वहा लक्ष्मी नही रहती और जहा लक्ष्मी की छाया हो वहा विद्या देवी निवास नही करती। इस तरह लक्ष्मी और विद्या दोनो कभी एक आसन पर विराजमान नही हो पाती। लौकिक-व्यवहार भी इस सत्य का गवाह है। विद्वानो से प्राय लक्ष्मी रूठी ही रहती है और धनवान लोग प्राय विद्या से वञ्चित देखे जाते हैं। यह सब कुछ होने पर भी द्वारिका नगरी का सोमिल ब्राह्मण इस लौकिक मान्यता मे वहुत ऊपर उठा हुआ था। वह वैभव-सपन्न था और साथ मे वहुत ऊचा विद्वान् भी था। यहा लक्ष्मी और सरस्वती का मधुर सगम दिखाई दे रहा था। यही सोमिल की अपनी एक विशेपता थी।

सूत्र मे पढे गए **'अड्ढे'** तथा **"रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिते"** ये पद सोमिल ब्राह्मण को वैभव-शाली तथा विद्वान अभिव्यक्त कर रहे हैं। आढ्य का अर्थ है--समृद्ध व्यक्ति सोमिल ब्राह्मण के घर मे सेवा के लिये दास-दासिया थी। चल-अचल दोनो प्रकार की सम्पत्ति का अक्षय भण्डार था, द्वारिका नगरो के जन-गण-मान्य धनी-पुरुषो में उसका प्रतिष्ठित स्थान था, इसीलिये सूत्रकार ने उसे **आढ्य** कहा है। सोमिल लक्ष्मीपति होने के साथ-साथ धमशास्त्रो का भी पण्डित था। वेदो का उसे विशेष वोध था। वैदिक परम्परा मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद तथा व्याकरण आदि छह अग माने जाते हैं। सोमिल ब्राह्मण इन सभी का पूर्ण ज्ञान रखता था। **"रिउव्वेद"** के आगे पढा गया **जाव-यावत्** पद ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य वेदो तथा व्याकरण शिक्षा, ज्योतिष छन्द, निरुक्त और कल्प नामक वेद के छह अगो का वोधक है।

सोमिल ब्राह्मण की तरह उसकी धर्म-पत्नी सोमश्री ब्राह्मणी का भी वडा सम्मानित जीवन था, वह व्यवहारज्ञा थी, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को वह खूब समझती थी। विशिष्ट गुण-सम्पदा के कारण ही सूत्रकार ने **सूमाल०** के आगे दिए विन्दु से अन्य सूत्रो मे दिए गए नारी-जीवन-सम्बन्धी

पाठ को ससूचित किया है, इसका अर्थ यह है कि सोमश्री की गुण-सम्पदा महान थी। उसका जीवन नारी-योग्य सभी सद्‌गुणो का भण्डार था।

सोमश्री की पुत्री का नाम सोमा था। सूत्रकार ने सोमा का वर्णन करते हुए उसे सोमिल ब्राह्मण की दुहिता—पुत्री और सोमश्री की आत्मजा कहा है। प्रश्न हो सकता है कि अकेले दुहिता शब्द से ही काम चल सकता था तो फिर सूत्रकार ने आत्मजा शब्द का प्रयोग किस कारण किया है ? उत्तर मे निवेदन है कि आत्मजा शब्द के पीछे एक रहस्य विद्यमान है। आत्मजा का अर्थ है अपने पेट से उत्पन्न होनेवाली। यह शब्द देकर सूत्रकार यह प्रकट करना चाहते हैं कि सोमा बालिका सोमश्री की अपने पेट से पैदा की हुई सन्तति थी उसे गोद नही लिया हुआ था। **"सोमाला जाव सुरूवा"** तथा **रूवेण जाव लावण्णेण"** इन वाक्यो मे पठित **जाव**—यावत् पदो द्वारा सूत्रकार अन्य सूत्रो मे दिये गए लडकियो का वर्णन करनेवाले पाठो की ओर सकेत कर रहे हैं। सूत्रकार कहना चाहते हैं कि सोमा बालिका के सम्बन्ध मे यदि विशेष जानकारी प्राप्त करनी इष्ट हो तो अन्य सूत्रो मे दिए गए वर्णन पाठको को देख लेना चाहिये।

सोमा का परिचय कराते हुए सूत्रकार ने रूप और लावण्य से उसे उत्तम बतलाया है। रूप और लावण्य दोनो मे क्या अन्तर है ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। कोषकार इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि रूप शब्द—वर्ण आकृति शरीर के आकार आदि का बोधक है और लावण्य शब्द से शरीर-सौन्दर्य की विशेष शारीरिक कान्ति का ग्रहण होता है।

सोमा के सम्बन्ध मे **"उक्किट्ठा"** तथा **"उक्किट्ठसरीरा"** ये दो विशेषण भी दिए हैं। इन मे जो अन्तर है उन्हे भी समझ लेना चाहिये। उत्कृष्ट शब्द श्रेष्ठ उत्तम शब्द का ससूचक है। जिस लडकी के शरीर मे श्रोत्र चक्षु, आदि पाचो इन्द्रियाँ सर्वथा निर्दोष हो तथा जिसमे अवयवो की औचित्य पूर्ण आकर्षक स्थिति हो उसे 'उत्कृष्ट-शरीरा' कहते है।

'ण्हाता जाव विभूसिया" तथा **"खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता"** इन वाक्यो मे पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर पढे गए मध्यगत पाठो का परिचायक है।

"रायमग्गसि कणगतिन्दूसएण कीलमाणी" का अर्थ है राजमार्ग मे सोने की गेन्द से खेलती हुई। यहा राजमार्ग से उसके समीपवर्ती किसी उद्यान या क्रीडास्थान का ग्रहण समझना चाहिये। आजकल भी राजमार्ग के एक ओर किसी विशिष्ट स्थान पर नागरिक लोगो के लिये क्रीडा-उद्यान बने हुए देखे जाते हैं। सोमा बालिका भी अपनी सहेलियो तथा दासियो को साथ लेकर राजमार्ग के समीपवर्ती किसी विशिष्ट स्थान मे सोने की गेन्द से खेल रही थी। राजमार्ग शब्द से "लोगो के आने-जाने का पथ" यह अर्थ नही समझना चाहिये, क्योकि जहाँ लोगो का गमनागमन हो ऐसे स्थान पर खेलना तो वैसे भी अव्यावहारिक है तथा नियम विरुद्ध है।

सोमा राजमार्ग मे खेल रही थी, इस वर्णन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि उस समय बालको की भाति बालिकाओ मे भी राजमार्ग मे खेलने की प्रथा थी। लडकियो के खुले स्थानो

पर खेलने को अनादर की दृष्टि से नही देखा जाता था। इसके अतिरिक्त इस वर्णन से लडकिया अपने ढग से शारीरिक-व्यायाम किया करती थी, यह भी प्रमाणित हो जाता है।

सोमा बालिका अपनी दासियो के साथ राजमार्ग मे क्रीडा कर रही थी, इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकर इसका वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे। परिसा निग्गया।

छाया—**तस्मिन् काले, तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमि समवसृत। परिषत् निर्गता।**

पदार्थ—**तेण**—उस, **कालेण**—काल, **तेण समएण**—उस समय, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि भगवान्, **समोसढे**—पधारे, **परिसा**—परिषद्—जनता, **निग्गया**—दर्शनार्थ नगरी से बाहिर आई।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् पधारे। उनका दर्शन करने के लिये जनता अपनी नगरी से निकली।

व्याख्या—जैन जगत ने तीर्थकर २४ माने हैं। इनमे सबसे पहले भगवान "आदिनाथ" है और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। मध्य के तीर्थंकरो मे २२वें तीर्थकर भगवान अरिष्टनेमि हैं। भगवान अरिष्टनेमि महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे और मातेश्वरी शिवा देवी के अगज थे। त्रिखण्डाधिपति महाराज श्रीकृष्ण के ये छोटे भाई थे। राजकुमारी राजमती से विवाहित होने के लिये जब ये बरात लेकर अपने सुसराल पहुचे तो इन्होने बरातियो के भोजनार्थ पिञ्जरो तथा वाडो मे वद पशु-पक्षियो को देखा। पशु-पक्षियो की आकुलता एव व्याकुलता को देखकर ये सिहर उठे, इनका हृदय दया से भर आया। अपनी शादी से अनेक जीवो की बरबादी इनको अच्छी नही लगी। इन्होने तत्काल सब पशु-पक्षियो को मुक्त कर दिया और स्वय सयम-साधना के महापथ पर चल दिए—साधु बन गए। सयम की कठोर साधना द्वारा उन्होने अरिहन्त पद प्राप्त किया। चतुर्विध सघ को स्थापना की। तीर्थंकर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि एक वार द्वारिका नगरी मे पधारे। नगरीवालो को जब इनके पधारने का शुभ समाचार मिला तो वे अपने आराध्य भगवान का दर्शन तथा इनका मगलमय उपदेश सुनने के लिये अपने-अपने घरो से निकल पड़े।

"**तेण कालेण तेण समएण**" इन पदो मे काल और समय, शब्दो का प्रयोग किया गया है, दोनो शब्द समानार्थक हैं परन्तु प्रश्न उठता है फिर इन दोनो का एक साथ प्रयोग क्यो किया गया है ? टीकाकार ने इसका समाधान करते हुए लिखा है कि काल शब्द अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का बोधक है तथा समय शब्द से चौथे आरे के उस भाग का ग्रहण करना है जिस समय यह बात कही जा रही है।

अथ कालसमयो को विशेष ? उच्यते, सामान्यो वर्तमानावसर्पिणी चतुर्थारक-लक्षण काल-विशिष्ट पुनस्तदेकदेशभूत समय।

"अरहा" शब्द का अर्थ है—अरिहन्त। काम, क्रोध, मान, माया आदि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करनेवाले को अरिहन्त कहते है। अरिहन्त आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने के कारण ही वीतराग कहलाते हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते है, सर्वथा निर्विकार और प्रकाश-स्तम्भ होते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि के द्वारिका नगरी मे पधार जाने के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है —

मूल—तते ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाते जाव विभूसिए। गयसुकुमालेणं कुमारेण सद्धि हत्थि-खध-वरगते सकोरटमल्लदामेण धरिज्जमाणेण सेयवर-चामराहिं उद्धुब्बमाणीहिं बारवइए नयरीए मज्झमज्झेण अरहतो अरिट्ठनेमिस्स पाय-वदते णिगच्छमाणे सोम दारिय पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जाव विम्हिए। तए णं कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिल माहण जायित्ता सोम दारिय गेण्हह, गेण्हित्ता कन्नतेउरसि पक्खिवह। तते ण एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सति, तते ण कोडुंबिय जाव पक्खिवति।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेव अस्या कथाया लब्धार्थ सन् स्नातो यावद् विभूषित। गजसुकुमालेन कुमारेण सार्धं हस्तिस्कन्धवरगत, सकोरण्ट-मल्ल-दाम्नाछत्रेण ध्रियमाणेन, श्वेत-वर-चामरैरुद्धूयमानै, द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन अर्हतोऽरिष्टनेमे पादवन्दनाय निर्गत सन् सोमा दारिका पश्यति, दृष्ट्वा सोमाया दारिकाया रूपेण च, यौवनेन च, लावण्येन च यावद् विस्मित। तत कृष्ण कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—

गच्छत यूय देवानुप्रिया! सोमिल ब्राह्मण याचित्वा सोमा दारिका गृह्णीत, गृहीत्वा कन्यान्त पुरे प्रक्षिपत। तत एषा गजसुकुमालस्य कुमारस्य भार्या भविष्यति। तत कौटुम्बिका यावत् प्रक्षिपन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है, **से**—वह, **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **इमीसे**—इस, **कहाए**—कथा-वृत्तान्त को, **लद्धट्ठे समाणे**—जानकर, **ण्हाते**—स्नान किये हुए, **जाव**—यावत्, **विभूसिए**—शृगारित हुए, **गयसुकुमालेण**—गज सुकुमाल, **कुमारेण**—कुमार के, **सद्धि**—साथ, **हत्थि-खध-वर-गते**—हाथी के कन्धे पर बैठकर, **सकोण्टमल्लदामेण**—कोरण्ट वृक्ष की माला से युक्त, **छत्तेण धरिज्जमाणेण**—छत्र को धारण करते हुए, **सेयवरचामराहिं**—सफेद चवरो को, **उद्धुब्बमाणीहिं**—भुलाते हुए, **बारवइए नयरीए**—द्वारिका नगरी के, **मज्झमज्झेण**—बीचोबीच, **अरहतो**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के, **पायवदते**—चरण वन्दन के लिये, **णिगच्छमाणे**—निकलते हुए, **सोम दारिय**—सोमा बालिका को, **पासति**—देखते हैं, **पासित्ता**—और देखने के अनन्तर, **सोमाए दारियाए**—सोमा बालिका के,

रूवेण—रूप—आकृति से, **य**—और, **जोव्वणेण**—यौवन से, **य**—और, **लावण्णेण**—लावण्य—शरीर की कान्ति से, **य**—और, **जाव**—यावत्—अन्य अग-प्रत्यग देखने से, **विम्हिए**—विस्मय को प्राप्त हुए, **तए ण**—तदनन्तर, **कण्हे**—कृष्ण महाराज, **कोडुबियपुरिसे**—दास पुरुषो को, **सद्दावेइ**—बुलाते हैं, **सद्दावित्ता**—और बुलाकर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **देवाणुप्पिया**! हे भद्र-पुरुषो! **तुब्भे**—तुम लोग, **गच्छह**—जाओ, **सोमिल**—सोमिल, **माहण**—ब्राह्मण से, **जायित्ता** याचना करके, **सोम दारिय**—सोमा बालिका को, **गेण्हह**—ग्रहण करो, **गेण्हित्ता**—ग्रहण कर, उसे, **कन्नतेउरसि**—कन्याओ के अन्त पुर मे, **पक्खिवह**—लेजाकर रखो, **तते**—तदनन्तर, **एसा**—यह बालिका, **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार की, **भारिया**—धर्मपत्नी, **भविस्सति**—होगी, **तते**—तदनन्तर, **कोडुबिय**—दास पुरुष, **जाव**-यावत्—सोमिल ब्राह्मण से सोमा बालिका की याचना करके उसे कन्याओ के अन्त पुर मे, **पक्खिवन्ति**—स्थापित कर देते हैं।

मूलार्थ—उसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव इस वृत्तान्त को जानकर स्नान करते हैं वस्त्राभूषणादि से अपने को अलकृत करके राजकुमार गजसुकुमालको अपने साथ लेकर हाथी के कन्धे पर बैठ जाते हैं। उन्होने कोरण्ट वृक्ष के फूलो से युक्त छत्र धारण कर रखा था। श्वेत चवर झुलाए जा रहे थे। इस प्रकार महाराज कृष्ण द्वारिका नगरी के बीचो-बीच होते हुए अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के दर्शनो को चलदेते है।

श्रीमहाराज कृष्ण जब राजमार्ग पर पहुचे तो उन्होने वहा सोनेकी गेद से खेलती हुई सोमा दारिका को देखा। सोमा बालिका के रूप यौवन तथा लावण्य को देखकर वे आश्चर्य-चकित रह गए। तत्काल उन्होने अपने कर्मचारियो को बुला कर कहा—

भद्रपुरुषो! आप सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ, जाकर उससे सोमा बालिका के लिये याचना करो, यदि सोमिल माहन मान जाये तो उसे कन्याओ के अन्त पुर मे पहुचा दो। समय पर इस बालिका का राजकुमार गजसुकुमाल से विवाह कर दिया जायेगा।

महाराज श्री कृष्ण की इस आज्ञा को सुनते ही राज्य-कर्मचारी सोमिल ब्राह्मण के पास जाते है, गजसुकुमाल से विवाहित करने के लिये सोमा बालिका की याचना करते है तथा सोमिल ब्राह्मण से स्वीकृति मिलने पर सोमा बालिका को कन्याओ के अन्त पुर मे पहुचा देते है।

व्याख्या—इस सूत्र मे बतलाया गया है कि द्वारिकाधीश महाराज श्री कृष्ण को जब अहिंसा, सयम तथा तप की पवित्र त्रिवेणी शासनेश भगवान अरिष्टनेमि जी महाराज के द्वारिका मे पधारने

का शुभ समाचार मिला तो उनका अत करण प्रसन्नता से नाच उठा, वे आनन्द-विभोर हो गए, भगवान के दर्शन की लालसा के कारण उन्होने प्रस्थान की तैय्यारी प्रारम्भ कर दी। सर्व प्रथम वे स्नान करते है, स्नानादि से निवृत्त हो उन्होने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप वस्त्र तथा आभूषणो द्वारा अपने को शृगारित किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर उन्होने अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को साथ लिया। वे हाथी पर बैठ गए। दर्शन-यात्रा आरम्भ हो गई। द्वारिका के मध्य मे से होते हुए ये जब राजपथ पर आये तो उन्होने दूर से राजपथ के समीपवर्ती एक क्रीडा-स्थान मे लडकियो को खेलते हुए देखा। जब निकट आए तो पता चला कि लडकियो का नेतृत्व सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा बालिका कर रही है। सोमा अपने युग की एक होनहार लडकी थी, उसके आकृति, रूप, वर्ण यौवन तथा शारीरिक सौन्दर्य ने महाराज श्री कृष्ण का मन जीत लिया। कृष्ण महाराज को ऐसा लगा मानो विधाता ने उस बालिका को ही सारी सुन्दरता दे दी है। अन्त मे उन्होने निर्णय किया कि इस बालिका का गजसुकुमाल के साथ यदि सम्बन्ध हो जाये तो सोने मे सुहागे जैसी बात होगी अपने विचार को मूर्त रूप देने के लिये उन्होने अपने सेवको को बुला कर कहा—'भद्रपुरुषो! सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर कहो कि कृष्ण वासुदेव गजसुकुमाल के लिये सोमा बालिका को चाहते हैं।' कृष्ण महाराज ने अपनी बात को चालू रखते हुए फिर कहा—'यदि सोमिल ब्राह्मण इस बात से सहमत हो और सहर्ष इस बात को स्वीकार करे तो सोमा बालिका को राजमहल मे जहा कन्याओ का निवास-स्थान है, वहा पहुचा दो। महाराज कृष्ण यह आदेश देकर इधर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होने के लिये चल दिए। उधर सेवक-पुरुषो ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर गजसुकुमाल के लिये सोमा बालिका की याचना की और उसे राज-महलो मे पहु चा दिया।

प्रस्तुत सूत्र के कथा-सदर्भ से अनेको बाते जानने को मिली है, उन पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है। भगवान अरिष्टनेमि के द्वारिका मे पधारने पर कृष्ण महाराज का स्वय पूरी सजधज के साथ उनके चरणो मे उपस्थित होना इस बात को प्रकट करता है कि भगवान अरिष्टनेमि अपने लोक के माने हुए महापुरुष थे। राजा-प्रजा सभी उनके चरणो के उपासक थे। उनका व्यक्तित्व किसी एक वर्ग या समाज तक सीमित न था, प्रत्युत आकाश की भाति असीम था, सभी जातियो तथा कुलो के हृदयो के वे आराध्य देवता थे।

कृष्ण महाराज स्वय जहाँ राजनीति के अग्रदूत थे, वहा वे धर्म-नीति के भी पुण्य-सरोवर थे। साधु-सन्तो का मान करना उनके उपदेशादि का श्रवण करना, उनकी सेवा भक्ति करना आदि सब गुण उनमे उपस्थित थे। राजा का धार्मिक होना, प्रजा के सौभाग्य का सबसे बडा प्रतीक माना गया है, आध्यात्मिकता के प्रकाश से विहीन भूप अधकार मे ही भटकता रहता है। उसकी प्रजा भी अन्धेरे मे ही रहती है। द्वारिका नगरी के लोगो का यह सौभाग्य था कि उन्हे कृष्ण महाराज जैसा आध्यात्मिक शासक प्राप्त हुआ था। कृष्ण महाराज की आध्यात्मिकता भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर उनके धर्मोपदेश सुनने की लालसा से स्वत स्पष्ट हो जाती है।

सूत्रकार कहते हैं कि कृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी से वाहिर निकल कर जब राजमार्ग पर खेल रही सुन्दरी सोमा को देखा, तो वे सौन्दर्य के उत्कर्ष को देख कर विस्मित रह गए और उन्होंने उसका गजसुकुमाल के साथ विवाह कर देने का निश्चय किया। इस कथन से कृष्ण महाराज की महानता तथा सच्चरित्रता का वोध होता है। यदि ये कामुक वासनाप्रिय या चरित्र-हीन होते तो सोमा के रूप, यौवन तथा लावण्य पर मोहित हो कर अपने लिये उस की याचना करते, उसे अपनी रानी बनाते, पर उन्होने ऐसा न करके गजसुकुमाल के साथ उसे विवाहित करने का पवित्र सकल्प किया उनके चरित्र की महानता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

सूत्रकार कहते हैं कि कृष्ण महाराज ने सोमा वालिका को गजसुकुमाल के अनुरूप समझ कर उसके पिता से गजसुकुमाल के लिये उस की याचना की। इस की याचना से यह सिद्ध होता है कि उस समय के शासक लोग अपनी प्रजा के साथ किसी प्रकार का वलात्कार नही किया करते थे, अपने लिये प्रजा की कोई वस्तु यदि उन्हे अपेक्षित होती थी तो वे उस वस्तु को उसके स्वामी से सप्रेम मागा करते थे, इस पर यदि स्वामी की अनुमति होती थी तभी उसे स्वीकार किया करते थे अन्यथा नही। यही कारण है कि सोमिल ब्राह्मण की ओर से सहर्ष स्वीकृति मिलने के अनन्तर ही उसकी पुत्री सोमा वालिका को राजमहल मे पहुचा दिया गया।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि कृष्ण महाराज ने सहर्ष सोमा को अपने छोटे भाई गजसुकुमाल से विवाहित करने की इच्छा से उसके लिये सोमिल ब्राह्मण से याचना की और सोमिल ने भी सादर अपनी प्रिय पुत्री सोमा को गजसुकुमाल से विवाह करने की स्वीकृति दे कर उसे अपना दामाद वनाना अगीकार किया है। इस तरह क्षत्रिय और ब्राह्मण उन दोनो परिवारो मे आपसी सम्बन्ध स्थापित हुए। इस कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनो जातियो मे परस्पर विवाह होना निषिद्ध नही था। क्षत्रियो का ब्राह्मणो और ब्राह्मणो का क्षत्रियो से वैवाहिक सम्बन्ध चलता था, अन्यथा सोमिल अपनी कन्या को कृष्ण वासुदेव के कहने पर भी उनके लघु भ्राता गजसुकुमाल को देने के लिये कभी सहमत नही होता।

"इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे" इस वाक्य का अर्थ है—इस कथा का अर्थ प्राप्त किए हुए। भाव यह है कि भगवान—अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे विराजमान हो गए है, यह वृत्तान्त वासुदेव कृष्ण महाराज को ज्ञात हो गया था।

"कोडुबिय पुरिसे—कौटुम्विक पुरुष। इस शब्द के अनेको अर्थ उपलब्ध होते हैं वे अर्थ इस प्रकार हैं—कौटुम्विक मनुष्य, हजूरी सेवक, राजसेवक, कुटुम्व का स्वामी, परिवार का स्वामी, परिवार का मुखिया, ग्राम प्रधान, गाँव का मुखिया, कुटुम्व मे उत्पन्न, कुटुम्ब से सम्वन्ध रखनेवाला, पिता, घर का वडा या वूढा। प्रस्तुत प्रकरण मे कौटुम्बिक पुरुष के—"राजसेवक या कुटुम्व का स्वामी या कुटुम्व से सम्वन्ध रखने वाला" ये सभी अर्थ सगत हैं।

"कन्नतेउरसि" इस पद मे कन्या और अन्त पुर ये दो शब्द है, कन्या—कुमारी अविवाहिता लडकी का नाम है। अन्त पुर राजप्रासाद अर्थात् जनान खाने को कहते है। दोनो शब्दो के मिलने पर अर्थ होगा—वह राजमहल जिसमे अविवाहित लडकिया रहती हैं। प्रस्तुत सूत्र मे—**"कन्नतेउरसि"**

शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उस समय गजसुकुमाल के विवाहार्थ अनेक कुमारिया एकत्रित की गई थी।

"ण्हाते जाव विभूसिए" "लावण्णेण जाव विम्हिए" तथा "कोडुबिय जाव पक्खिवति" यहां पठित जाव पदो द्वारा अन्य स्थानो पर पढे गए मध्यगत पाठो का ग्रहण किया जाता है।

वासुदेव कृष्ण अपने कौटुम्बिक पुरुषो के आदेश देने के अनन्तर जब आगे चल दिए तब आगे क्या हुआ ? अब—सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है —

मूल——तते ण से कण्हे वासुदेवे बारवतीए नयरीए मज्झ-मज्झेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहसबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तते ण अरहा अरिट्ठनेमि कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहाए, कण्हे पडिगते। तते ण से गयसुकुमाले अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिय धम्म सोच्चा, ज नवर, अम्मापियर आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्ज जाव वड्ढियकुले। तते ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमाल आलिंगइ, उच्छगे निवेसइ निवेसित्ता एव वयासी—

तुम मम सहोदरे कणीयसे भाया, त मा ण तुम देवाणुप्पिया ! इयाणि अरहतो मुडे जाव पव्वयाहि, अहण्ण बारवतीए नयरीए महया महया रायाभिसेएण अभिसिचिस्सामि। तते ण से गयसुकुमाले कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ते समाणे तुसिणीए सचिट्ठइ। तए ण से गयसुकुमाले कण्ह वासुदेव अम्मापियरो य दोच्चपि तच्चपि एव वयासो—

एव खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्सति, त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए जाव पव्वइत्तए। तते णं त गयसुकुमाल कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो सचाएति बहुयाहिं अणुलोमाहि जाव आघवित्तते ताहे अकामा चेव एव वयासी—

त इच्छामो ण ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए। निक्खमण जहा महाबलस्स जाव तमाणाते तहा सजमित्तए, से गयसुकुमाले अणगारे जाते ईरियासमिए जाव गुत्तबभयारी।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेव द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवनमुद्यान यावत्पर्युपास्ते। ततोऽर्हन् अरिष्टनेमि कृष्णस्य वासुदेवस्य गजसुकमालस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा, कृष्ण प्रतिगत। तत सो गजसुकुमाल अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके धर्म श्रुत्वा यन्नवर-

मम्बापितरमापृच्छामि। यथा मेघ । महिलावर्ज्यं यावत् वर्धितकुलम्, तत स कृष्णो वासुदेव अस्या कथाया' लब्धार्थ सन् यत्रैव गजसुकुमालस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य गजसुकुमालमालिंगति, आलिंग्य उत्सगे निवेशयति, निवेश्य एवमवदत् —

त्व मम सहोदर कनीयान् भ्राता। तत् मा त्व देवानुप्रिय ! इदानीमहर्त मुण्डो यावत् प्रव्रजत। अह द्वारवत्या नगर्या महता महता राज्याभिषेकेण अभिषेक्ष्यामि। तत सो गजमुकुमाल कृष्णेन वासुदेवेन एवमुक्त सन् तूष्णीक सतिष्ठते। तत सो गजसुकुमाल कृष्ण वासुदेवम्, अम्बापितरौ च द्वितीयमपि, तृतीयमपि एवमवदत् —

एव खलु देवानुप्रिया ! मानुष्यका कामा खेलाश्रवा, यावत् विप्रहातव्या भविष्यन्ति। तस्मात् इच्छामि देवानुप्रिया ! युष्मद्भिरभ्यनुज्ञात, अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके यावत् प्रव्रजितुम्।

ततस्त गजसुकुमाल कृष्णो वासुदेव, अम्बापितरौ च यदा न शक्नुवति बहुभिरनुलोमैं, यावद् आख्यातुम्, तदा अकामाश्चैव एवमवदत्—तद् इच्छाम ते जात ! एक दिवसमपिराज्यश्रिय द्रष्टुम्। निष्क्रमण यथा महाबलस्य, यावत् तदाज्ञया तथा सयमित सो गजमुकुमालोऽनगार जात ईर्यासमित यावद् गुप्तब्रह्मचारी।

पदार्थ—**तते ण**—तदनन्तर, **से**—वे, **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के, **मज्झमज्झेण**—बीचोबीच, **णिग्गच्छइ**—निकलते हैं, **णिग्गच्छित्ता**—निकल कर, **जेणेव**—जहा पर, **सहसबवणे**—सहस्राम्रवन नाम का, **उज्जाणे**—उद्यान था, वहा जाकर, **जाव**—यावत् **पज्जुवासइ**—भगवान की पर्युपासना एव सेवा-भक्ति करने लगे, **तते**—तत्पश्चात्, **ण**—वाक्य सौन्दयर्थि, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि ने, **कण्हस्स—वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को, **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार को, **तीसे य०**—और आई हुई अन्य जनता को, **धम्मकहा**—धर्मकथा, सुनाई, **कण्हे**—श्रीकृष्ण, तदनन्तर-**पडिगते**—चले गए, **तते**—तदनन्तर, **से**—वह, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल कुमार, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के, **अतिय**—पास, **धम्म**—धर्मोपदेश, **सोच्चा**—सुनकर, **ज**—जो, **नवर**—विशेष, बात यह है कि वे बोले, **अम्मापियर**—माता-पिता को, **आपुच्छामि**—पूछता हू, शेष वर्णन, **जहा मेहो**—जैसे मेघकुमार का है वैसे ही जानना चाहिये, अर्थात् जैसे मेघकुमार ने दीक्षित होने की आज्ञा माता-पिता से मागी थी वैसे ही गजसुकुमाल ने अपने माता-पिता से आज्ञा मागी। आज्ञा मागने पर उससे माता-पिता बोले पुत्र !, **महेलियावज्ज**—तू अभी महिलावर्ज महिलारहित अर्थात् अविवाहित है,पहले विवाहित हो, **जाव**—यावत्, **वड्ढियकुले**—कुल की वृद्धि कर, **तते**—इसके पश्चात्, **से**—वे, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **इमीसे**—इस, **कहाए**—वृत्तान्त को **लद्धट्ठे समाणे**—जान कर, **जेणेव**—जहा पर, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आते हैं, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **गयसुकुमाल**—गजसुकुमाल का, **आलिंगइ**—आलिंगन करते हैं, **उच्छगे**—गोद मे, **निवेसेइ**—बैठाते हैं, **निवेसित्ता**—गोद में बैठाकर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे —

तुम—तू, **मम**—मेरा, **सहोदरे**—सहोदर,मा जाया, **कणीयसे**—छोटा, **भाया**भाई है, **त—देवाणुप्पिया !**—अत देवानुप्रिय !, **तुम**—तू, **मा**—मत, **इयाणि**—इस समय, **अरहतो**—अरिष्टनेमि भगवान

के पास, **मुडे**—केश रहित होकर, **जाव**—यावत्, **पव्वयाहि**—प्रव्रजित—दीक्षित हो, **अहण्ण**—मैं, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के भूपति के रूप मे तेरा, **महया महया**—महान् से भी महान्, **रायाभिसेण**—राज्यभिषेक राजगद्दी पर, **अभिसिंचिस्सामि**—अभिषेक करूगा अर्थात् तुम्हे राजगद्दी दू गा। **तते ण**—तत्पश्चात्, **से**—वह, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल, **कण्हेण वासुदेवेण**—कृष्ण वासुदेव द्वारा, **एव वुत्ते समाणे**—इस प्रकार कहे जाने पर, **तसिणीए**—मौन, **सचिट्ठइ**—रहते हैं, **तए ण**—तदनन्तर, **से**—वह, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **य**—और, **अम्मापियरो**—माता-पिता को, **दोच्चपि**—दो वार, **तच्चपि**—तीन बार, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **देवाणुप्पिया!** हे देवानुप्रियो! **माणुस्सया**—मनुष्य जीवन सम्बन्धी, **कामा**—काम भोग के आधाररूप पुरुषो के शरीर, **खेलासवा**—खेलाश्रव (जिस से कफ बहता है) है। **जाव**—यावत्, **विप्पजहियव्वा**—छोडने योग्य, **भविस्सति**—होगे ही, **त**—इसलिये, **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो! **इच्छामि**—मै चाहता हू, कि, **तुब्भेहिं**—आप के द्वारा, **अब्भणुण्णाए**—आज्ञा मिल जाने पर, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **अतिए**—पास, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—दीक्षित हो जाऊ, **तते**—तदनन्तर, **त गयसुकुमाल**—उस गजसुकुमाल को, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **य**—और, **अम्मापियरो**—माता-पिता, **बहुयाहिं**—बहुत सी, **अणुलोमाहि**—अनुकूल बातो द्वारा, **जाव**—यावत्, **आघवित्तते**—कहने समझाने मे, **नो सचाएति**—समर्थ नही हो सके, **ताहे**—तब, **अकामा**—अकाम, निराश हुए, **च**—समुच्चयार्थक है, **एव**—निश्चयार्थक है, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे।

त—सो, **जाया**—हे पुत्र! **ते**—तेरी, **एगदिवसमवि**—एक दिन की ही, **रज्जसिरिं**—राज्यश्री, राज्यसिंहासन पर आरूढ होने पर प्राप्त हुई शोभा को, **पासित्तए**—देखना, **इच्छामो**—चाहते है, **निक्खमण**—निष्क्रमण—दीक्षा, **जहा**—जैसे, **महाबलस्स**—महाबल की थी, वैसीही जानना, **जाव**—यावत्, **तमाणाते**—गजसुकुमार की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण की सब सामग्री, **तहा**—वैसे ही, महाबल की तरह लाई गई, **सजमिते**—सयमित—दीक्षा ग्रहणकी, **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल कुमार, **अणगारे जाते**—साधु बन गए, **ईरिया समिए**—ये ईरिया समिति का पालन करनेवाले, यावत्, **गुत्त**—जितेन्द्रिय थे, **बभयारि**—ब्रह्मचारी थे।

ने मेरे हृदय मे वैराग्य पैदा कर दिया है, मैं साधु बनना चाहता हू , इसके लिये मैं अपने माता-पिता से पूछता हू, आज्ञा मिलने पर मैं आपके चरणो मे आकर दीक्षा ग्रहण करूगा।

भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने के अनन्तर राजकुमार गजसुकुमाल अपने घर गए और राजकुमार मेघकुमार की तरह अपने मातापिता को अपने वैराग्य की बात कह कर उन से दीक्षित होने की आज्ञा मागी। पुत्र की यह बात सुन कर माता-पिता कहने लगे—

पुत्र ! तुम अभी अविवाहित हो, सर्व-प्रथम तुम्हारा विवाह होना चाहिये। सन्तति (सन्तान) होने के अनन्तर उस पर अपना दायित्व डाल कर फिर तुम्हारा दीक्षा ग्रहण करना उचित हो सकता है, इससे पहले नही।

राजकुमार गजसुकुमाल साधु बनना चाहते है, यह समाचार जब श्री कृष्ण वासुदेव को मिला, तब वे गजसुकुमाल के पास आते है, और उसका आलिंगन करते है—उसे गले लगाते हैं और उसे अपनी गोद मे बैठा कर वे गजसुकुमाल को कहते हैं—

हे देवानुप्रिय ! देव के समान प्रिय ! तू मेरा माँजाया छोटा प्रिय भाई है, अत तुम्हें मेरा कहना अवश्य मानना चाहिये, अत मेरी इच्छा है कि तुम इस समय अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का विचार छोड दो। मैं तुझे बडे समारोह के साथ द्वारका नगरी का नरेश बना दूंगा। वासुदेव महाराज श्री कृष्ण के ऐसा कहने पर गजसुकुमाल मौन रहे, इन्होने अपने बडे भाई कृष्ण महाराज की बात का कोई उत्तर नही दिया।

कुछ विचार करने के अनन्तर गजसुकुमाल वासुदेव महाराज श्री कृष्ण तथा माता-पिता को कहने लगे—

देवानुप्रियो ! आदरणीय पूज्य पुरुषो ! मनुष्य का शरीर कफ-मल-मूत्र आदि का घर है, एक न एक दिन इसे छोडना ही पडेगा। इसलिये मेरी हार्दिक इच्छा है कि यदि आप मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दे दें तो मैं अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुच कर साधु बन जाऊ। राजकुमार गजसुकुमाल ने अपनी इस बात को दो-तीन बार दोहराया।

गजसुकुमाल की बात सुन कर वासुदेव श्रीकृष्ण तथा माता-पिता ने इनको मनाने समझाने की बडी कोशिश की, अनुकूल प्रतिकूल वचनो द्वारा इन को बहुत कुछ कहा,

के पास, **मुडे**—केश रहित होकर, **जाव**—यावत्, **पव्वयाहि**—प्रव्रजित—दीक्षित हो, **अहण्ण**—मैं, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के भूपति के रूप मे तेरा, **महया महया**—महान् से भी महान्, **रायाभिसेण**—राज्यभिषेक राजगद्दी पर, **अभिसिंचिस्सामि**—अभिषेक करूगा अर्थात् तुम्हे राजगद्दी दू गा। **तते ण**—तत्पश्चात्, **से**—वह, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल, **कण्हेण वासुदेवेण**—कृष्ण वासुदेव द्वारा, **एव वुत्ते समाणे**—इस प्रकार कहे जाने पर, **तसिणीए**—मौन, **सचिट्ठइ**—रहते हैं, **तए ण**—तदनन्तर, **से**—वह, **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **य**—और, **अम्मापियरो**—माता-पिता को, **दोच्चपि**—दो बार, **तच्चपि**—तीन बार, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **देवाणुप्पिया !** हे देवानुप्रियो ! **माणुस्सया**—मनुष्य जीवन सम्बन्धी, **कामा**—काम भोग के आधाररूप पुरुषो के शरीर, **खेलासवा**—खेलाश्रव (जिस से कफ बहता है) है। **जाव**—यावत्, **विप्पजहियव्वा**—छोडने योग्य, **भविस्सति**—होगे ही, **त**—इसलिये, **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो ! **इच्छामि**—मैं चाहता हू, कि, **तुब्भेहि**—आप के द्वारा, **अब्भणुण्णाए**—आज्ञा मिल जाने पर, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **अतिए**—पास, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—दीक्षित हो जाऊ, **तते**—तदनन्तर, **त गयसुकुमाल**—उस गजसुकुमाल को, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **य**—और, **अम्मापियरो**—माता-पिता, **बहुयाहि**—बहुत सी, **अणुलोमाहि**—अनुकूल बातो द्वारा, **जाव**—यावत्, **आघवित्तते**—कहने समझाने मे, **नो सचाएति**—समर्थ नही हो सके, **ताहे**—तब, **अकामा**—अकाम, निराश हुए, **च**—समुच्चयार्थक है, **एव**—निश्चयार्थक है, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे।

त—सो, **जाया**—हे पुत्र ! **ते**—तेरी, **एगदिवसमवि**—एक दिन को ही, **रज्जसिरिं**—राज्यश्री, राज्यसिंहासन पर आरूढ होने पर प्राप्त हुई शोभा को, **पासित्तए**—देखना, **इच्छामो**—चाहते है, **निक्खमण**—निष्क्रमण—दीक्षा, **जहा**—जैसे, **महाबलस्स**—महाबल की थी, वैसीही जानना, **जाव**—यावत्, **तमाणाते**—गजसुकुमार की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण की सब सामग्री, **तहा**—वैसे ही, महाबल की तरह लाई गई, **सजमिते**—सयमित—दीक्षा ग्रहणकी, **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल कुमार, **अणगारे जाते**—साधु बन गए, **ईरिया समिए**—ये ईरिया समिति का पालन करनेवाले थे, **जाव**—यावत्, **गुत्त**—जितेन्द्रिय थे, **बभयारि**—ब्रह्मचारी थे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मे से निकल कर जहाँ सहस्राम्र नामक उद्यान था वहा पर पहुचे। अरिहत भगवान् अरिष्टनेमि का साक्षात्कार होने पर हाथी से नीचे उतरे, भगवान् के चरणो मे उपस्थित हुए और विनय-भक्ति के साथ उनकी सेवा करने लगे। भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, राजकुमार गजसुकुमाल तथा अन्य उपस्थित जनता को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर कृष्ण महाराज चले गये। राजकुमार गजसुकुमाल अरिहत भगवान अरिष्टनेमि जी महाराज का उपदेश सुनकर उनके चरणो मे निवेदन करने लगे—भगवन् ! आपकी अमृतवाणी

ने मेरे हृदय मे वैराग्य पैदा कर दिया है, मैं साधु बनना चाहता हू , इसके लिये मैं अपने माता-पिता से पूछता हू, आज्ञा मिलने पर मैं आपके चरणो मे आकर दीक्षा ग्रहण करूगा।

भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने के अनन्तर राजकुमार गजसुकुमाल अपने घर गए और राजकुमार मेघकुमार की तरह अपने मातापिता को अपने वैराग्य की बात कह कर उन से दीक्षित होने की आज्ञा मागी। पुत्र की यह बात सुन कर माता-पिता कहने लगे—

पुत्र! तुम अभी अविवाहित हो, सर्व-प्रथम तुम्हारा विवाह होना चाहिये। सन्तति (सन्तान) होने के अनन्तर उस पर अपना दायित्व डाल कर फिर तुम्हारा दीक्षा ग्रहण करना उचित हो सकता है, इससे पहले नही।

राजकुमार गजसुकुमाल साधु बनना चाहते हैं, यह समाचार जब श्री कृष्ण वासुदेव को मिला, तब वे गजसुकुमाल के पास आते हैं, और उसका आलिंगन करते हैं—उसे गले लगाते हैं और उसे अपनी गोद मे बैठा कर वे गजसुकुमाल को कहते हैं —

हे देवानुप्रिय! देव के समान प्रिय! तू मेरा माँजाया छोटा प्रिय भाई है, अत तुम्हे मेरा कहना अवश्य मानना चाहिये, अत मेरी इच्छा है कि तुम इस समय अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का विचार छोड दो। मैं तुझे बडे समारोह के साथ द्वारका नगरी का नरेश बना दूंगा। वासुदेव महाराज श्री कृष्ण के ऐसा कहने पर गजसुकुमाल मौन रहे, इन्होने अपने बडे भाई कृष्ण महाराज की बात का कोई उत्तर नही दिया।

कुछ विचार करने के अनन्तर गजसुकुमाल वासुदेव महाराज श्री कृष्ण तथा माता-पिता को कहने लगे—

देवानुप्रियो! आदरणीय पूज्य पुरुषो! मनुष्य का शरीर कफ-मल-मूत्र आदि का घर है, एक न एक दिन इसे छोडना ही पडेगा। इसलिये मेरी हार्दिक इच्छा है कि यदि आप मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दे दे तो मै अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुच कर साधु बन जाऊ। राजकुमार गजसुकुमाल ने अपनी इस बात को दो-तीन बार दोहराया।

गजसुकुमाल की बात सुन कर वासुदेव श्रीकृष्ण तथा माता-पिता ने इनको मनाने समझाने की बडी कोशिश की, अनुकूल प्रतिकूल वचनो द्वारा इन को बहुत कुछ कहा,

पर ये अपना पथ छोडने को तैयार न हुए । इनकी इस दृढता को देख कर सब निराश हो गए । अन्त मे उन्होने कुमार से कहा—हे पुत्र ! हम तुझे एक बार राजसिहासन पर विराजमान देखना चाहते है । अधिक नही तो एक दिन की ही राज्यशोभा दिखला दो ।

माता-पिता तथा बडे भाई की बात सुन कर गजसुकुमाल मौन हो गए । इसके अनन्तर इनका राज्याभिषेक किया गया । उन को राज्यसिहासन पर बैठाया गया, ये राजा बन गए । तत्पश्चात् इन से पूछा गया—'क्या आज्ञा है ? इस के उत्तर मे गज-सुकुमाल ने महाबल कुमार की तरह दीक्षा-सामग्री लाने का आदेश दिया और उनके आदेशानुसार दीक्षा की सामग्री आ गई । दीक्षा लेने के अनन्तर श्रीगजसुकुमाल जी अनगारसाधु बन गए । ईर्या समिति, भाषा समिति आदि समितियो का पालन करने लगे, इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की और ब्रह्मचर्यव्रत की आराधना करने लगे ।

व्याख्या—इस सूत्र मे श्रीकृष्ण महाराज तथा राजकुमार गजसुकुमाल का भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होना, भगवान का मगलमय उपदेश सुनकर चरमशरीरी श्रीगजसुकुमालजी के हृदय मे वैराग्य का उत्पन्न होना, फिर दीक्षित होने के लिये माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करना, कृष्ण महाराज द्वारा दीक्षा न लेने के लिये इनको समझाना, एक दिन के लिये द्वारिकाधीश बनकर राज्य की शोभा दिखलाने को कहना, राजा बन जाना, अन्त मे अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे साधु बन कर इनका ईर्यासमिति आदि साधु मर्यादा का पालन करना, आदि बातो का वर्णन किया गया है ।

सूत्रकार ने कथा-सदर्भ को विस्तार मे न लिखकर सक्षेप मे ही रखने का यत्न किया है । माता-पिता से होनेवाले गजसुकुमाल के प्रश्नोत्तरो को **"जहा मेहो"** यह कहकर केवल उसकी सूचना मात्र दी है । भाव यह है कि गजसुकुमाल की माता-पिता से जो चर्चा हुई एक दूसरे को समझाने तथा मनाने के लिये जो प्रश्नोत्तर हुए, उनकी जानकारी प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु पाठको को मेघकुमार का जीवन देखना चाहिये । राजकुमार मेघकुमार के सम्पूर्ण जीवन चरित का उल्लेख "श्रीज्ञाता-धर्मकथाग सूत्र" के प्रथमाध्ययन मे किया गया है ।

इसमे मेघकुमार ने दीक्षा ग्रहण करने के लिये माता पिता से जो चर्चा की है उसका सम्पूर्ण वर्णन विद्यमान है । उसी प्रकार गजसुकुमाल का वर्णन भी जान लेना चाहिये । इस बात को सूचित करने के लिये सूत्रकार ने **"जहा मेहो"** इन शब्दो द्वारा सकेत मात्र कर दिया है ।

सूत्रकार ने गजसुकुमाल के दीक्षा प्रकरण का उल्लेख करते हुए **"जहा महाबल्लस्स"** ये पद देकर गजसुकुमाल के दीक्षोत्सव को महाबल कुमार के दीक्षोत्सव के समान अभिव्यक्त किया है । महाबल जी का दीक्षा सम्बन्धी सभी वर्णन व्याख्याप्रज्ञप्ति भगवती सूत्र के शतक ११ और उद्देश्य ११ मे किया गया है ।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने की तीव्र भावना से प्ररित होकर गजसुकुमाल जब अपने माता-पिता से दीक्षित होने के लिये आज्ञा मागते हैं तो माता-पिता ने उनका सयम साधना की कठोरता एव दुष्करता की ओर प्रत्येक दृष्टि से ध्यान दिला दिया। इस वर्णन से यह ध्वनित होता है कि प्रत्येक साधक को साधना-क्षेत्र मे आने मे पूर्व अपनी शक्ति का सन्तुलन अवश्य कर लेना चाहिये। जिस अनुष्ठान को सम्पन्न करने की जीवन मे क्षमता हो, उसी को जीवन मे लाने का प्रयत्न करना उचित है, अन्यथा अपने ह्रास और लोगो द्वारा कृत उपहास के अतिरिक्त कुछ हाथ नही लगता, अत प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी को सयम-साधना के महामार्ग पर प्रस्थान करने से पूर्व अपने सामर्थ्य को अवश्य देख लेना चाहिये। सभव है इसीलिये हिन्दी के एक कवि को यह कहना पडा—

जो मत पाछे उपजे, सो मत पहले होय।

काम न बिगडे आपणो, जग मे हसे न कोय ॥

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि गजसुकुमाल वैराग्य-भावना से विचलित नही हुए—गृहस्थ-जीवन को अपनाने के लिये किसी भी तरह तैय्यार न हुए, तो निराश होकर वासुदेव कृष्ण तथा माता-पिता ने गजसुकुमाल से एक दिन के लिये राज्य सिंहासनारूढ होने के लिये निवेदन किया और अन्त मे उन्हे एक दिन के लिये द्वारिका के सिंहासन पर बिठला दिया। जब ये सिंहासनारूढ हो गए तो इनसे कहा गया—'द्वारिकाधीश! हमारे लिये क्या आज्ञा है?' इस प्रश्न का उत्तर देते समय गजसुकुमाल ने इतना ही कहा कि मुझे दीक्षा ग्रहण करनी है, अत दीक्षा की समस्त सामग्री उपस्थित की जाये इत्यादि। इस कथानक से यह ध्वनित होता है कि वासुदेव श्रीकृष्ण तथा इनके माता-पिता गभीर विचारक तथा अत्यधिक दूरदर्शी थे। इन्होने यह बात कह कर गजसुकुमाल के अन्तर्जगत को समझने का यत्न किया है। इससे दो बाते सामने आती हैं—१—गजसुकुमाल राज्य को श्रेष्ठ समझता है या सयम-साधना को २—राज्य को त्याग कर सयम लेने से जनता मे धर्म की प्रभावना बढेगी और सयम-साधना के महत्त्व का ससार को पता चलेगा।

द्वारिका नगरी के सिंहासन पर बैठ जाने के अनन्तर वैराग्यमूर्ति गजसुकुमाल ने दीक्षा की सामग्री लाने का जो आदेश दिया, इससे श्रीकृष्ण वासुदेव तथा माता-पिता को पूर्ण विश्वास हो गया कि गजसुकुमाल अपनी परीक्षा में पास हो गया है। इसे अब सासारिक विषय-भोगो मे उलझाया नही जा सकता। अब तो यह विश्ववन्द्य करुणा के सागर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षा ग्रहण करके ही रहेगा। तब उन्होने दीक्षा की पूरी तैय्यारी करके गजसुकुमाल को भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित कर दिया। द्वारिका नगरी का कण-कण गजसुकुमाल के वैराग्य-प्रधान त्याग की सराहना कर रहा था और सर्वत्र "गजसुकुमाल जी महाराज की जय हो" के जय-जयकार गूज रहे थे।

इस कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि सासारिक प्रलोभन और सयम का आपस मे कोई मेल नही है, वस्तुत सयम-साधना के महासाधक को सासारिक प्रलोभनो का परित्याग करना ही पडता है, अत ससार से विरक्त होकर सयम ग्रहण करनेवाले व्यक्ति को त्याग वैराग्य के अग्रदूत तथा देवकी के लाल गजसुकुमाल की भाति किसी भी प्रकार के सासारिक प्रलोभन मे नही आना

चाहिये। महाराज श्रीकृष्ण तथा माता-पिता के द्वारा राजसिंहासन का प्रलोभन मिलने पर भी जैसे गजसुकुमाल जी अपने निश्चय से नही गिरे—वैराग्य-पथ पर दृढता से खडे रहे, वैसे ही सयम के यात्री को प्रलोभनो की वर्षा होने पर भी अपने निश्चय मे अडिग रहना चाहिये। इसीमे उसका कल्याण निहित है।

"उज्जाणे जाव पज्जुवासइ", **'तीसे य धम्मकहाए"**, **"जाव वड्ढियकुले"**, **"मु डे जाव पव्वयाहि"** **खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा"** **"अतिए जाव पव्वइत्तए"** **"अणुलोमाहि जाव आघवित्तते"** **"महाबलस्स जाव तमाणाते** तथा **"ईरिया समिए जाव गुत्तबभयारी"** यहा पठित जाव पदो के द्वारा अन्य स्थानो पर दिए गए मध्यगत पाठो की ओर सकेत किया गया है। इस प्रकार पाठो को सक्षिप्त करके सूत्रकार ने उनके विस्तार को कम कर दिया है। **"पज्जुवासइ"** का अर्थ है—पर्यु पासना करना, पर्यु पासना शब्द का प्रयोग—सेवा, भक्ति, सत्सग आदि अर्थो मे किया जाता है।

"धम्मकहा" इस पद का अर्थ है—धर्मकथा। धर्मकथा धर्म की देशना—धर्म के व्याख्यान को कहते हैं। भगवान अरिष्टनेमि ने क्या धर्मदेशना दी थी ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। उत्तर मे निवेदन है कि धर्म-देशना का विवरण औपपातिक सूत्र मे दिया गया है, पाठको को उसका अध्ययन कर लेना चाहिए। यह सत्य है कि औपपातिक सूत्रीय धर्म-देशना भगवान महावीर द्वारा दी गई धर्म-देशना है, और स्थूल दृष्टि से देखने पर भगवान अरिष्टनेमि का उस धर्म-देशना के साथ कोई सम्बन्ध दिखाई नही देता, परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन करेंगे तो औपपातिक सूत्र मे वर्णित धर्मदेशना के साथ भगवान अरिष्टनेमि का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दिखाई देगा क्योकि—

"नवर"—यह अव्ययपद है इस का अर्थ है—विशेषत अन्तर। भाव यह है कि भगवान अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश सुन कर कृष्ण महाराज चले गए, दूसरे लोग भी चले गए। रह गए श्रीगजसुकुमाल। भगवान की वाणी सुनकर श्री गजसुकुमाल जी के हृदय पर उस वाणी का क्या प्रभाव पडा ? इस बात को सूत्रकार विशेष रूप से कहना चाहते है। इसीलिये सूत्रकार ने गजसुकुमाल जी का वर्णन करते हुए **नवर** शब्द का प्रयोग किया है, अर्थात भगवान की वाणी सुनकर गजसुकुमाल जी ने जो विशेष बाते कही वे इस प्रकार हैं। इसी बात को **"अम्मापियरे—आपुच्छामि"** इत्यादि पदो द्वारा व्यक्त किया गया है।

"महेलियावज्ज"—महिलावर्जम्" इस पद के दो अर्थ किए जाते हैं। महिलारहित अविवाहित। जिस का विवाह नही हुआ वह महिलावर्ज है। सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को **"जहा मेहो"** यह कह कर मेघकुमार के समान बताया है। मेघकुमार के जीवन का 'ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र' के प्रथमाध्ययन मे उल्लेख किया गया है। वहा मेघकुमार को विवाहित लिखा है, परन्तु गजसुकुमाल का विवाह नही हुआ था, अत दोनो राजकुमारो के जीवन मे विवाह-सम्बन्धी जो भिन्नता है उसको **"महेलियावज्ज"** इस पद से सूचित किया गया है इसका भाव यह है गजसुकुमाल के जीवन मे स्त्रियो के सम्बन्ध मे कुछ नही कहना, क्योकि उसका विवाह हुआ ही नही था।

'वड्ढियकुले"—वर्धित सन्तानोत्पत्या कुल येन स वर्धितकुल, अर्थात् सन्तानोत्पत्ति करके जिस ने कुल-वश की वृद्धि की है उसे 'वर्धित-कुल' कहते हैं। दीक्षार्थी श्रीगजसुकुमाल के माता-पिता

ने इनसे कहा था कि 'हे पुत्र ! तू अभी अविवाहित है, अत पहले विवाह करके सासारिक विषय-भोगो का उपभोग कर, भोगो के जगत से सर्वथा निवृत्त हो कर और सन्तानोत्पत्ति द्वारा अपने वश की वृद्धि के अनन्तर दीक्षा लेने की बात करना। सन्तति उत्पन्न करके वश की वृद्धि करने की इस बात को सूत्रकार ने **"वड्ढियकुले"** इस पद से सूचित किया है।

"मुंडे" का अर्थ है मुण्डित। इस के द्रव्य और भाव से दो भेद हैं। सिर के केशो को काट देने या उनकी लोच करनेवाले व्यक्ति को द्रव्यमुण्डित तथा क्रोध-मान-माया-लोभादि विकारो का परिहार करनेवाले व्यक्ति-मुण्डित कहलाते हैं।

"रायाभिसएण"—राज्याभिषेकेण। राजा के अभिषेक को राज्याभिषेक कहते हैं। अभिषेक के अर्थ हैं—सब औषधियो से युक्त पवित्र जल द्वारा मन्त्रोपचारपूर्वक राजादि पदवी का आरोपण करने के लिये मस्तक पर जल छिड़कने की क्रिया—राज्याभिषेक की क्रिया, राजगद्दी पर बैठने का महोत्सव, राजा का सिंहासनारोहण, राजतिलक।

"कामा खेलासवा"—काम शब्द सामान्य रूप से सुन्दर रूप, रस आदि विषयो का बोधक है, परन्तु प्रस्तुत मे यह शब्द विषयों का बोधक न हो कर विषयो के आधार-भूत, स्त्री पुरुषो के शरीर का परिचायक है। **"खेलासव"** इस शब्द का अर्थ है—कफ निकलने का स्थान। गजसुकुमाल इन शब्दो का प्रयोग कर के महाराज श्रीकृष्ण तथा अपने माता-पिता से यह कहना चाहते हैं कि जिस शरीर को लोग सुन्दर समझ रहे है, वास्तव मे यह शरीर सुन्दर है ही नही। यह शरीर तो कफ का स्रोत है—कफ निकलने का ठिकाना है—कफ का घर है, फिर इस शरीर पर आसक्ति कैसी ?

"विप्पजहियव्वा भविस्सति" का अर्थ है—अवश्य छोड़ने पड़ेंगे। गजसुकुमाल अपने माता पिता से कह रहे हैं कि यह शरीर एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा, यह सदा रहनेवाला नही है। अज्ञानी मनुष्य समझता है कि मैं सदा यही बैठा रहूँगा, इसलिये घर की दीवारो को स्थायी बनाने के विचार से वह इनमे लोहा-सीमेण्ट भरता है, इन्हे सुदृढ बनाता है, पर कितना आश्चर्य है कि उसे अपने जीवन की दीवारो का कुछ पता ही नही, जो ये कभी भी धराशायी हो सकती हैं।

इसके विपरीत ज्ञानी मनुष्य जीवन की इस क्षणभगुरता, अस्थिरता एव विनाशशीलता को खूब समझता एव जानता है। यही कारण है कि वह इस शरीर मे कभी भी आसक्त नही होता, परम वैरागी गजसुकुमाल की तरह शरीरादि के ममत्त्व से सदा विरक्त रहता है।

"रज्जसिरि"—का अर्थ है राज्य-लक्ष्मी, राज्य-शोभा, राज्य-शासनरूप लक्ष्मी। वैभव राज्य लक्ष्मी है तथा राजसिंहासन पर बैठने पर हजारो नरेशो द्वारा जब मस्तक नत होगे और हजारो नर-नारियो द्वारा जय जयकारो से आकाश को गुजाया जायेगा तब वह शोभा कुछ निराली ही होगी। उस निराली शोभा को ही **"रज्जसिरि'** इस पद से व्यक्त किया गया है।

'निक्खमण—निष्क्रमणम्"—इसका अर्थ सामान्य रूप से निकलना होता है, पर प्रस्तुत प्रकरण मे यह एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है—दीक्षा-जगत की मोहमाया को छोड़कर वीतरागता के महापथ पर चलना, साधु बनना।

"तमाणाते तहा—तदाज्ञया तथा"—इन पदो के दो अर्थ किए जाते है—**तमाणाए-तदाज्ञया दीक्षाग्रहणसामग्रीसमानयनादिक, तहा-तथैव,** अर्थात् गजसुकुमाल को जब द्वारिका के सिंहासन पर बैठा दिया गया तब उनसे पूछा गया 'कि महाराज ! हमारे लिये क्या आज्ञा है ?' तब उन्होने कहा—'मुझे दीक्षा ग्रहण करने के लिये रजोहरण पात्र आदि चाहिये, अत दीक्षा की सामग्री उपस्थित करो।' सूत्रकार कहते हैं कि गजसुकुमाल की **तमाणाते** इस आज्ञा से **तहा**—तथा वैसा कर दिया गया, अर्थात् दीक्षा की सब समग्री लाकर गजसुकुमाल जी को दे दी गई। आचार्य अभयदेव सूरि अपनी टीका मे लिखते है—

"तमाणाए तहा"—तस्य प्रव्रजितस्य किल् भगवानुपदिशति स्म—एव देवाणुप्पिया ! गतव्व, चिट्ठियव्व, निसीयव्व, तुयटियव्व, भासयिव्व एव उट्ठाए २ पाणेहिं सूतेहिं जीवेहि सत्तेहिं सजमेण सजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे नो पमाएव्व, तए ण गयसुकुमारे अणगारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए तह गच्छति, तह चिट्ठति, तह निसीयति, तह तुयट्टति, तह भुजति, तह उट्ठाए २ पाणेहि ४ सजमेण सजमइ।

अर्थात् जब गजसुकुमाल दीक्षित हो गए तब भगवान अरिष्टनेमि ने उन्हे साधु-धर्म की शिक्षा देते हुए कहा—'भद्र ! ऐसे चलना चाहिए, ऐसे खडे होना चाहिए, ऐसे बैठना चाहिए, ऐसे सोना चाहिए, ऐसे खाना चाहिए, इस प्रकार उठ कर प्राण (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव), भूत (वनस्पति काय के जीव), जीव (पाच इन्द्रियोवाले प्राणी) और सत्व (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय ये चार स्थावर जीव) की सयम पूर्वक रक्षा करनी चाहिये। कभी प्रमाद का सेवन नही करना चाहिये। इस प्रकार भगवान अरिष्टनेमि के ऐसे धार्मिक उपदेश को अनगार राजसुकुमार भली भाति ग्रहण करते है।

तमाणाए—उस आज्ञा से (भगवान अरिष्टनेमि ने जो आज्ञा दी थी उससे) **तहा**—वैसे (आज्ञा के अनुरूप चलते है, वैसे ही खडे होते है, वैसे ही बैठने है, वैसे ही सोते है, वैसे ही भोजन करते है, वैसे ही उठ कर प्राण-भूत-जीव-सत्व की सयमपूर्वक रक्षा करते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हो गए। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस बात का वर्णन करते हुए कहते है —

मूल—**तए णं से गयसुकुमारे ज चेव दिवस पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्ह-कालसमयसि जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिखुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—**

इच्छामि णं भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालसि सुसाणसि एगराइय महापडिम उवसपज्जित्ताण विहरित्तए। अहासुह देवाणुप्पिया ! तते ण से गयसुकुमाले

अणगारे अरहता अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरह अरिट्ठनेमि वदति णमसति, वदित्ता, णमसित्ता अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतियाओ सहसबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थडिल्ल पडिलेहेति, पडिलेहित्ता, उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेति, पडिलेहित्ता ईसिपब्भार-गएण काएण जाव दोवि पाए साहट्टु एगराइ महापडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ ।

छाया—तत सो गजसुकुमारो यच्चैव दिवस प्रव्रजितस्तस्यैव दिवसस्य पूर्वापराह्णकालसमये यत्रैवअर्हन् अरिष्टनेमि तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमि त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणा करोति, कृत्वा च वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—

इच्छामि भदन्त ! युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् महाकाले श्मशाने एकरात्रिकीं महाप्रतिमा-मुपसम्पद्य विहर्तुम् । यथासुख देवानुप्रिय ! तत सो गजसुकुमालोऽनगारोऽर्हतारिष्टनेमिना अभ्यनु-ज्ञात सन् अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकात् सहस्रा-म्रवनादुद्यानात् प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव महाकाल श्मशान तत्रैवोपागत, उपागत्य स्थडिल प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य, उच्चारप्रस्रवणभूमि प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ईषत्प्राग्भारगतेन* कायेन यावद् द्वावपि पादौ सघट्य एकरात्रिकीं महाप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति ।

पदार्थ—**तते**—तत्पश्चात्, **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ प्रयोग किया जाता है, **से गयसुकुमारे**—वह गजसुकुमाल, **ज चेव दिवस**—जिस दिन ही, **पव्वइए**—दीक्षित हुए थे, **तस्सेव दिवसस्स**—उसी दिन ही, **पुव्वावरण्हकालसमयसि**—सायकाल के समय, **जेणेव**—जहा, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आते हैं, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **अरह अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार, **आयाहिणपयाहिण**—दाहिनी ओर से आवर्तन कर फिर दाहिनी ओर तक परिक्रमा, **करेइ**—करते हैं, **करित्ता**—परिक्रमा करके, **वदित्ता नमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने —लगे

भते—हे भगवन् !, **तुब्भेहि**—आपश्री के द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त करके, **महाकालसि**—महाकाल, **सुसाणसि**—श्मशान मे, **एगराइय**—एक रात्रि की—जिस मे तेला करके श्मशान भूमि मे एक रात के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है, **महापडिम**—महान प्रतिज्ञा, **उवसप-ज्जित्ता**—धारण करके, **विहरित्तए**—विहरण करना, **इच्छामि**—मैं चाहता हू । तब भगवान बोले, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **अहासुह**—जैसे तेरी आत्मा को सुख हो, **तते ण**—तदनन्तर, **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल, **अणगारे**—अनगार मुनि, **अरहता**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिना**—अरिष्टनेमि द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि को, **वदति णमसति**—वन्दना नमस्कार करते हैं, **वदित्ता णमसित्ता**—वन्दना नमस्कार

* "ईसिपब्भारगएणत्ति" ईषदवनतवदनेति वृत्तिकार ।

"तमाणाए तहा"—तस्य प्रव्रजितस्य किल भगवानुपदिशति स्म—एवं देवाणुप्पिया! गतव्व, चिट्ठियव्व, निसीयव्व, तुयट्टियव्व, भुजियव्व एव उट्ठाए २ पाणेहिं भूतेहिं जीवेहिं सत्तेहिं सजमेण सजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे नो पमाएव्व, तए ण गयसुकुमारे अणगारे अरहस्रो अरिट्ठनेमिस्स प्रतिए तह गच्छति, तह चिट्ठति, तह निसीयति, तह तुयट्टति, तह भुजति, तह उट्ठाए २ पाणेहिं ४ सजमेण सजमइ।

अर्थात् जब गजसुकुमाल दीक्षित हो गए तब भगवान अरिष्टनेमि ने उन्हे साधु-धर्म की शिक्षा देते हुए कहा—'भद्र! ऐसे चलना चाहिए, ऐसे खडे होना चाहिए, ऐसे बैठना चाहिए, ऐसे सोना चाहिए, ऐसे खाना चाहिए, इस प्रकार उठ कर प्राण (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव), भूत (वनस्पति काय के जीव), जीव (पाच इन्द्रियोवाले प्राणी) और सत्व (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय ये चार स्थावर जीव) की सयम पूर्वक रक्षा करनी चाहिये। कभी प्रमाद का सेवन नही करना चाहिये। इस प्रकार भगवान अरिष्टनेमि के ऐसे धार्मिक उपदेश को अनगार राजसुकुमार भली भाति ग्रहण करते है।

तमाणाए—उस आज्ञा से (भगवान अरिष्टनेमि ने जो आज्ञा दी थी उससे) तहा—वैसे (आज्ञा के अनुरूप चलते है, वैसे ही खडे होते है, वैसे ही बैठते है, वैसे ही सोते है, वैसे ही भोजन करते हैं, वैसे ही उठ कर प्राण-भूत-जीव-सत्व की सयमपूर्वक रक्षा करते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हो गए। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इस बात का वर्णन करते हुए कहते है —

मूल—तए ण से गयसुकुमारे ज चेव दिवस पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्ह-कालसमयसि जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिखुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि ण भते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालसि सुसाणसि एगराइय महापडिम उवसपज्जित्ताण विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! तते णं से गयसुकुमाले

अणगारे अरहता अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरह अरिट्ठनेमि वदति णमसति, वदित्ता, णमसित्ता अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतियाओ सहसबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थडिल्ल पडिलेहेति, पडिलेहित्ता, उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेति, पडिलेहित्ता ईसिपब्भार-गएण काएण जाव दोवि पाए साहट्टु एगराइ महापडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ ।

छाया—तत सो गजसुकुमारो यच्चैव दिवस प्रव्रजितस्तस्यैव दिवसस्य पूर्वापराह्णकालसमये यत्रैवअर्हन् अरिष्टनेमि तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमि त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणा करोति, कृत्वा च वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—

इच्छामि भदन्त ! युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् महाकाले श्मशाने एकरात्रिकी महाप्रतिमा-मुपसम्पद्य विहर्तुम् । यथासुख देवानुप्रिय ! तत सो गजसुकुमालोऽनगारोऽर्हतारिष्टनेमिना अभ्यनु-ज्ञात सन् अर्हन्तमरिष्टनेमि वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकात् सहस्रा-म्रवनादुद्यानात् प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव महाकाल श्मशान तत्रैवोपागत , उपागत्य स्थडिल प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य, उच्चारप्रस्रवणभूमि प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ईषत्प्राग्भारगतेन* कायेन यावद् द्वावपि पादौ सघत्य एकरात्रिकीं महाप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति ।

पदार्थ—**तते**—तत्पश्चात्, **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ प्रयोग किया जाता है, **से गयसुकुमारे**—वह गजसुकुमाल, **ज चेव दिवस**—जिस दिन ही, **पव्वइए**—दीक्षित हुए थे, **तस्सेव दिवसस्स**—उसी दिन ही, **पुव्वावरण्हकालसमयसि**—सायकाल के समय, **जेणेव**—जहा, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आते है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **अरह अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार, **आयाहिणपयाहिण**—दाहिनी ओर से आवतन कर फिर दाहिनी ओर तक परिक्रमा, **करेइ**—करते हैं, **करित्ता**—परिक्रमा करके, **वदित्ता नमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने —लगे

भते—हे भगवन् !, **तुब्भेहिं**—आपश्री के द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त करके, **महाकालसि**— महाकाल, **सुसाणसि**—श्मशान मे, **एगराइय**—एक रात्रि की—जिस मे तेला करके श्मशान भूमि मे एक रात के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है, **महापडिम**—महान प्रतिज्ञा, **उवसप-ज्जित्ता**—धारण करके, **विहरित्तए**—विहरण करना, **इच्छामि**—मैं चाहता हू। तब भगवान बोले, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **अहासुह**—जैसे तेरी आत्मा को सुख हो, **तते ण**—तदनन्तर, **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल, **अणगारे**—अनगार मुनि, **अरहता**—अरिहन्त **अरिट्ठनेमिना**—अरिष्टनेमि द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अरह**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि को, **वदति णमसति**—वन्दना नमस्कार करते हैं, **वदित्ता णमसित्ता**—वन्दना नमस्कार

* "ईसिपब्भारगएणत्ति" ईषदवनतवदनेति वृत्तिकार ।

करके, अरहतो अरिट्ठनेमिस्स—अरिहन्त अरिष्टनेमि के, अन्तियाओ—पास से, सहसबणाओ—सहस्राम्रवन नामक उज्जाणाओ—उद्यान से, पडिणिक्खमइ—निकलते है, पडिणिक्खमित्ता—और निकल कर, जेणेव—जहा पर, महाकाले सुसाणे—महाकाल श्मशान था, तेणेव—वहा पर, उवागए—आ गए उवागच्छित्ता—और वहा आकर, थण्डिल्ल—स्थण्डिल—भूमि—जन्तुरहित प्रदेश—शुद्ध भूमि उच्चार पासवणभूमि—मलोत्सर्गार्थ तथा लघुशंका की निवृत्त्यर्थ भूमि को, पडिलेहेति—प्रतिलेखना निरीक्षण करते है, पडिलेहित्ता—प्रतिलेखना करके, ईसि—कुछ, पब्भारगएण—झुके हुए, काएण—शरीर से, जाव—यावत्, दोवि—दोनो ही, पाए—चरणो को, साहट्टु—सकुचित करके, एगराइ—एक रात्रि की, महापडिम—महान प्रतिज्ञा को, उवसपज्जित्ताण—धारण करके, विहरइ—विहरण करते है।

मूलार्थ—उसके अनन्तर श्री गजसुकुमाल जी जिस दिन दीक्षित हुए थे, उसी दिन सायकाल के समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे उपस्थित होते है। दक्षिण की ओर से आवर्तन कर फिर दक्षिण की ओर तीन बार भगवान को परिक्रमा देते है, वदन, नमस्कार करते है। इसके अनन्तर भगवान के चरणो मे निवेदन करते है—

भगवन्! मेरी इच्छा है, यदि आप आज्ञा दे तो मैं महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा (तीन उपवासो के साथ श्मशान भूमि मे एक रात के लिये ध्यान करना) की आराधना करू। इसपर भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जैसे तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो वैसे करो।

भगवान् से स्वीकृति सूचक वाक्य सुनकर मुनि गजसुकुमाल भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार करते है और सहस्राम्रवन नामक उद्यान से बाहिर निकलकर जहा महाकाल श्मशान था वहा आ जाते है। श्मशान मे प्रासुक—शुद्ध भूमि तथा मलोत्सर्गार्थ एव लघुशका निवृत्त्यर्थ योग्य भूमि देखकर कुछ झुके हुए शरीर से दोनो पावो को सकुचित करके एक रात्रि की महाप्रतिज्ञा की आराधना करना आरम्भ कर देते है।

व्याख्या—इस सूत्र मे महामहिम श्री गजसुकुमार जी महाराज के दीक्षित होने के अनन्तर विश्ववन्द्य भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा से एक रात्रि की महाप्रतिमा को अगीकार करके द्वारिका नगरी के सुप्रसिद्ध एव विशाल महाकाल नामक श्मशान मे ध्यानस्थ हो जाने का उल्लेख किया गया है। इस कथानक से साधकवर्ग को निम्नोक्त शिक्षाप्रद प्रेरणाए प्राप्त होती हैं—

किसी भी कार्य को करने से पूर्व गुरुजनो की आज्ञा का प्राप्त करना अत्यावश्यक होता है।

गुरुजनो की आज्ञा के बिना किसी भी क्रिया मे प्रवृत्त होना शास्त्रीय मर्यादा के विरुद्ध है, अत प्रत्येक कल्याणाभिलापी साधक को मुनिराज गजसुकुमाल की तरह गुरु महाराज की आज्ञा से ही प्रत्येक धार्मिक क्रिया का सम्पादन करना चाहिये। ऐसा करने से ही जीवन मे सफलता प्राप्त हो सकती है।

मुनि श्रीगजसुकुमाल जी ने जब भगवान अरिष्टनेमि से महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना के लिये आज्ञा मांगी तो भगवान ने उनको "**जहासुह देवाणुप्पिया**" इन शब्दो द्वारा एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना की आज्ञा दी। इन शब्दो का अर्थ है—'हे देवानुप्रिय! जैसे तुम्हे सुख हो।' भगवान के ऐसा कहने का अभिप्राय यही है कि 'हे गजसुकुमाल! एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना साधारण कार्य नही है, यह कठोर व्रत है, इसकी पालना के लिये बडी दृढता और स्थिरता की आवश्यकता है। ऐसी कठोर साधना मे पशुकृत, मनुष्यकृत तथा देवकृत उपसर्ग भी हो सकते हैं। भीपण मे भीषण दु खो के भूचाल भी आ सकते हैं। अत सोच लो! विचार लो! दुखो के आने पर मन को डावाडोल नही होने देना होगा। आर्तध्यान, रौद्र ध्यान से दूर रहना होगा, मेरु पर्वत की तरह अन्त करण को अचल एव अटल बनना होगा, गजसुकुमाल! प्रतिकूल वातावरण मे भी यदि आत्मिक शान्ति को सुरक्षित रखने की क्षमता अनुभव करते हो तो मेरी आज्ञा है।

इस कथानक से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को आरम्भ करने से पहले अपनी आन्तरिक शक्ति तथा सामर्थ्य का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन कर लेना चाहिये। विना सोचे, विना समझे अपने बल को जाने बिना ही यदि धर्माराधना मे प्रवृत्ति की जायेगी तो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सभावना रहेगी। जोश के साथ होश रखना आवश्यक होता है। इसी दृष्टि को आगे रख कर भगवान अरिष्टनेमि ने श्री गजसुकुमालजी को कहा था—'राजकुमार! अपनी आत्मा का सुख देखो?

"पुव्वावरण्हकाल समयसि"—**अह्न अपर दिवसस्य पश्चिमोऽर्धभाग तस्य य पूर्व प्रहर स पूर्वापराह्ण, कालस्य समय कालसमय कालो सामान्यो भवति, समयश्च तद्विशेष, एवमेव अह सामान्य तस्य प्रहरा तद्विशेषा। अनेनैव क्रमेण सर्वान्तिमो विभाग समय कथ्यते। पूर्वापराह्णश्चासौ काल समय पूर्वापराह्णकालसमय तस्मिन्निति,** अर्थात् दिन के पिछले आधे भाग, दोपहर से लेकर सूर्यास्त तक के काल को अपराह्ण कहते हैं। दिन के पिछले दोपहरो मे से पूर्व (प्रथम) प्रहर दिन का तीसरा प्रहर पूर्वापरह्ण कहा गया है। काल सामान्य और समय विशिष्ट होता है। प्रस्तुत में काल शब्द से तृतीय प्रहर तथा समय शब्द से उसके विशिष्ट क्षण ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है जिसमें यह घटना घटित हुई है।

"**आयाहिणपयाहिण**"—**आदक्षिणात् दक्षिणपार्श्वादारम्य क्रियमाण प्रदक्षिण परितो भ्रमण, "आदक्षिण-प्रदक्षिणम्" अनयो पदयो मध्यपदलोपी समास,** अर्थात् दक्षिण की ओर से की गई प्रदक्षिणा, परिक्रमा को आदक्षिण-प्रदक्षिणा कहा गया है।

"एगराइय महापडिम" का अर्थ है—एक रात्रि की महाप्रतिमा। जैनाचार्यों ने भिक्षु की बारह प्रतिमा बतलाई है। साधु के अभिग्रह विशेष को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमाधारी मुनिराज अपने शारीरिक संस्कारों तथा शारीरिक ममत्व को छोड देता है। किसी भी प्रकार की दीनता न दिखलाते हुए देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को समानभाव से सहन करता है।

एक मास से लेकर सात मास तक सात प्रतिमाए होती हैं, आठवी, नौवी और दसवी इन प्रतिमाओ मे प्रत्येक सात दिन-रात की होती है। ११वी एक दिन रात की और १२वी केवल एक रात्रि की होती है। मुनिराज गजसुकुमाल ने १२वी भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था। इसका समय केवल एक रात है। इसका आराधन बेले के अनन्तर चौविहार तेला करके किया जाता है। इसके आराधक को ग्राम आदि से बाहिर जाकर शरीर को थोडासा आगे की ओर झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रो से निश्चलतापूर्वक सब इन्द्रियो को गुप्त रख कर दोनो परो को सकुचित कर, हाथो को घुटनो तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना होता है। कायोत्सर्ग करते समय देव, मनुष्य या तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो तो दृढता के साथ उसे सहन करना पडता है। मलमूत्र की आशका हो तो उसे रोकने का निषेध है। यदि प्रतिमाधारी को किसी समय मलमूत्र की शका उत्पन्न हो तो पहले देखे स्थान पर उसकी निवृत्ति कर वापिस अपने स्थान पर आकर कायोत्सर्ग मे लग जाना होता है। इस प्रतिमा की यदि सम्यग् आराधना हो जाये तो साधक को अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान इन मे से किसी एक ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसके विपरीत यदि इसका सम्यक् पालन न हो तो साधक का अहित भी हो जाता है। साधनाकाल मे देवादि द्वारा किए गये अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गादि को समभाव के साथ सहन न करने से उन्माद अर्थात् पागलपन की या लम्बे समय तक रहनेवाले रोगादि की प्राप्ति हो जाती है अथवा साधक धर्म से ही गिर जाता है।

इस के अतिरिक्त शास्त्र कहता है कि १२वी भिक्षु पडिमा के धारक मुनि की दीक्षा-पर्याय १९ वर्षों की तथा आयु कम से कम २९ वर्ष की होनी चाहिये। एव उसका अष्टम भक्त (तेला) भी होना चाहिये। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि मुनिराज गजसुकुमार के जीवन मे उक्त तीनो बाते दिखाई नही देती, तब उन्होने १२वी प्रतिमा को धारण क्यो किया ? तथा भगवान् ने ऐसा करने की उन्हे आज्ञा क्यो दी ? उत्तर मे निवेदन है कि उक्त तीनो बातें सूत्र-व्यवहारियो के लिये है, आगम-व्यवहारियो के लिये नही। तीर्थंकर भगवान के होते हुए या उन की आज्ञा से जो कार्य किया जाता है वह आगमव्यवहार है। चार ज्ञान के धारक तथा १४ पूर्वों के पाठी मुनियो की उपस्थिति मे जो व्यवहार चलता है वह सूत्रानुसारी होने से सूत्र-व्यवहार कहा जाता है।

"थडिल्ल"—स्थण्डिलम् शब्द का अर्थ है प्रासुक भूमि, जीव-जन्तु रहित प्रदेश, सथारा करने के लिये योग्य स्थान, निवृत्तिपूर्ण स्थान, जहा किसी भी प्रकार की कोई बाधा न हो। साधु के शौच जाने की जगह। प्रस्तुत मे स्थण्डिल शब्द प्रासुक भूमि का बोधक है, मुनिराज श्री गजसुकुमाल जी ने जहा रहकर एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना करनी है, उस भूमि का प्रासुक होना—जीवजन्तु से रहित होना अत्यावश्यक है।

"उच्चारपासवणभूमि" का अर्थ है—जहां उच्चार एव प्रस्रवण का परित्याग किया जाता है वह स्थान "उच्चार-प्रस्रवण भूमि" कहलाती है। उच्चार मल का तथा प्रस्रवण मूत्र का नाम है।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमि से आज्ञा ले कर मुनिराज श्री गजसुकुमार महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना चालू कर देते हैं। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते कहते हैं —

मूल—इम च ण सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाते बारवतीओ नयरीओ बहिया पुव्व णिग्गते समिहातो य दब्भे य कुसे य पत्तामोड च गेण्हइ, गेण्हित्ता ततो पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामतेण वीइवयमाणे २ सझाकालसमयसि पविरलमणुस्ससि गयसुकुमाल अणगार पासइ, पासित्ता त वेर सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते ५ एव वयासी—

एस ण भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अप्पत्थिय जाव परिवज्जिए जे ण मम धूय सोमसिरीए भारियाए अत्तय सोम दारिय अदिट्ठदोसपइय कालवत्तिणि विप्पजहेत्ता मुडे जाव पव्वइए। त सेय खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायण करेत्तए। एव सपेहेइ, सपेहित्ता दिसा पडिलेहण करेइ, करित्ता सरस मट्टिय गेण्हइ गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स मत्थए मट्टियाए पालि बधइ, बधित्ता जलतीओ चिययाओ फुल्लियकिसुय समाणे खयरगारे कहल्लेण गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिस पाउब्भूते, तामेव दिस पडिगए।

छाया—इतश्च खलु सोमिलो माहन सामिधेयस्य (समित् समूहस्य) अर्थाय द्वारवत्या नगर्या बहि पूर्वं निर्गत समिधश्च दर्भाश्च कुशाश्च पत्रामोटश्च गृह्णाति, गृहीत्वा तत प्रतिनिवर्तते, प्रतिनिवृत्य महाकालस्य श्मशानस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन् २ सध्याकालसमये प्रविरलमनुष्येषु गजसुकुमालमनगार पश्यति, दृष्ट्वा त वैर स्मरति, स्मृत्वा च आशुरुप्त ५ एवमवदत् —

एष भो ! स गजसुकुमालकुमार अप्रार्थितो यावत् परिवर्जित यो मम दुहितर सोमश्रिया भार्याया आत्मजा सोमा दारिकामदृष्टदोषपतिता कालवर्तिनीं विप्रहाय मुण्डो यावत् प्रव्रजित।

तच्छ्रेय खलु मम गजसुकुमालस्य कुमारस्य वैर-निर्यातन कर्तुम्। एव सप्रेक्षते, सप्रेक्ष्य दिशा प्रतिलेखन करोति, कृत्वा सरसा मृत्तिका गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव गजसुकुमारोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य गजसुकुमारस्य कुमारस्य मस्तके मृत्तिकाया पालि बध्नाति, बध्वा ज्वलन्त्या चिताया विकसित-पलाश-कुसुम समानान्, खदिरगारान् कर्परेण गृह्णाति गृहीत्वा गज-

सुकुमारस्य कुमारस्य मस्तके प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य भीत तत. क्षिप्रमेव अपक्रामति, अपक्रम्य यस्या एव दिश प्रादुर्भूत तामेव दिश प्रतिगत ।

पदार्थ—**इम**—इधर, **च**—समुच्चयार्थक है, **सोमिले माहणे**—सोमिल ब्राह्मण, **सामिधेयस्स**—समिधाओ के, **अट्ठाते**—लिये, **बारवतीओ**—द्वारिका, **नयरीओ**—नगरी से, **बहिया**—बाहर **पुव्व**—पहले ही, **णिग्गते**—गया हुआ था, **समिहातो**—समिधाए, **य**—और, **दब्भे**—दर्भ, **य**—और, **कुसे**—कुशा, **य**—और, **पत्तामोड**—पत्तो को, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है और **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **ततो**—उसके बाद, **पडिनियत्तइ**—लौटता है, **पडिनियत्तित्ता**—लौटते हुए, **महाकालस्स सुसाणस्स**—महाकाल श्मशान के, **अदूरसामतेण**—अत्यन्त निकट से, **वीइवयमाणे**—निकलते हुए, **सझाकालसमयसि**—सन्ध्या के समय, **पविरलमणुस्ससि**—मनुष्यो का आवागमन कम होने पर, **गयसुकुमाल**—गजसुकुमाल, **अणगार**—अनगार—मुनि को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—और देख कर, **त वेर**—उस वैर को, **सरइ**—याद करता है, **सरित्ता**—और याद करके, **आसुरुत्ते**—अत्यन्त क्रुद्ध, ५—इस अक से— **रुट्ठे**—रुष्ट, **कुवित**—क्रुद्ध, **चडिक्किए**—अति क्रोधी, **मिसिमिसिमाणे**—दान्त पीसने वाला हो कर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा।

एस भो !—ओह !—यह, **से**—वही, **गयसुकुमाले कुमारे**—गजसुकुमाल कुमार है, **अपत्थिय**—जिसकी कोई इच्छा नही करता उस मृत्यु को चाहने वाला। **जाव**—यावत्, **जे**—जो, **परिवज्जिए**—श्री और लज्जा से रहित है, **मम धूय**—मेरी लडकी, **सोमसिरीए भारियाए**—सोम श्री भार्या की, **अदिट्ठ-दोस-पइय**—अदृष्ट-दोष-पतित—जिसमे कोई दोष नही है और जो जाति आदि से वहिष्कृत भी नही है ऐसी निष्कलक, **कालवत्तिणि**—युवति विवाह योग्य, **अत्तय**—पुत्री, **सोम—दारिय**—सोमा बालिका को, **विप्पजहेत्ता**—छोडकर, **मुडे**—मुण्डित होकर, **जाव**—यावत् **पव्वइए**—दीक्षित हो गया है,। **मम**—मुझे, **खलु**—निश्चय ही, **सेय**—योग्य है, **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार के, **वेरनिज्जायण करेत्तए**—वैर का बदला लेना, **एव**—इस प्रकार, **सपेहेइ**—विचार करता है, **सपेहित्ता**—विचार करके, **दिसापडिलेहण करेइ**—दिशा प्रतिलेखन करता है—चारो ओर देखता है, **करित्ता**—चारो ओर देखकर, **सरस मट्टिय**—गीली—भीगी हुई मिट्टी को, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **जेणेव**—जहा पर, **गयसुकुमाले अणगारे**—गजसुकुमार मुनि थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—और वहा आकर, **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार के, **मत्थए**—मस्तक पर, **पालि**—पाल, **मट्टियाए**—माटी को, **बधइ**—बाधता है, **बधित्ता**—और बाध कर, **जलतीओ**—जलती हुई, **चिययाओ**—चिता से, **फुल्लियकिसुयसमाणे**—खिले हुए पलाश के फूलो के समान, लाल लाल, **खयरगारे**—खदिर नामक लकडी के अगारो को, **कहल्लेण**—ठीकरे से, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके **गयसुकुमालस्स अणगारस्स**—गजसुकुमाल मुनि के, **मत्थए**—मस्तक पर, **पक्खिवइ** २—डाल देता है, **पक्खिवित्ता**—और डाल कर, **तओ**—तदनन्तर, **भीए**—भयभीत—डरा हुआ, **खिप्पामेव**—शीघ्र ही, **तओ**—वहा से, **अवक्कमइ**—भाग जाता है, **अवक्कमित्ता**—और भागकर, **जामेव दिस**—जिस दिशा से, जिस तरफ से, **पाउब्भूते**—आया था, **तामेव दिस**—उसी दिशा की ओर, **पडिगते**—चला जाता है।

मूलार्थ—इधर सोमिल ब्राह्मण पहले ही हवन के निमित्त सूखी लकडिया लाने के लिए द्वारिका नगरी से बाहिर गया हुआ था। वह लकडिया, दाभ, कुशा और पत्ते लेकर जब वापिस लौटा, तब सायकाल हो चुका था। लोगो का आना जाना भी बहुत कम हो गया था। उस समय महाकाल श्मशान के पास से जाते हुए उसने (ध्यान मे खडे) मुनि गजसुकुमाल को देखा। देखते ही उसके हृदय मे वैर जाग उठा। और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने (मन ही मन) कहा—

ओह ! यह मृत्यु को चाहने वाला पुण्य एव लज्जा से हीन वही गजसुकुमाल कुमार है जो किसी दोष से रहित-निर्दोष तथा जात्यादि से अवहिष्कृत सम्मानित और विवाह योग्य, मेरी पुत्री सोमश्री भार्या की आत्मजा—लडकी को छोड कर मुण्डित हो कर प्रव्रजित—दीक्षित हो गया है। अब मुझे चाहिए कि मैं इस गजसुकुमाल कुमार से इस वैर का बदला लू। सोमिल ब्राह्मण उक्त विचार-विमर्श के अनन्तर चारो ओर देखता है। जब उसे निश्चय हो गया कि मुझे कोई नही देखता है, तब उसने (पास के तालाब से) गीली मिट्टी उठाई, जहा मुनि गजसुकुमाल थे वहा आकर उसके मस्तक पर मिट्टी की पाल बनाता है, तत्पश्चात् धधकती चिता से खिले हुये पलाश के फूलो के समान रग वाले लाल-लाल खदिर लकडी के अगारे एक ठीकरे मे उठा कर वह मुनि गजसुकुमाल के मस्तक पर डाल देता है। उसके बाद उसकी अन्तरात्मा काँपने लगी, वह डर गया, और उसी समय वहा से भाग गया, जिधर से आया था उधर ही चला गया।

व्याख्या—इस सूत्र मे हवनोपयोगी सूखी लकडिया आदि सामग्री ग्रहण करने के लिये सोमिल ब्राह्मण के द्वारिका नगरी से बाहिर जाने, यज्ञीय लकडियां आदि सामग्री लेकर वहा से लौटते हुए महाकाल श्मशान भूमि मे ध्यान लगा कर खडे हुए मुनि श्रीगजसुकुमाल को देखकर, अपनी निरपराध कन्या को विना किसी भी कारण के त्याग कर दीक्षित हो जाने से क्रोधावेश मे आने, और क्रोध के वशीभूत हो कर उसके सिर पर गीली मिट्टी की पाल बाधकर उसमे धधकते खदिर लकडी के अगारो को रख कर वापिस लौट जाने आदि का बडा ही हृदयविदारक, मार्मिक उल्लेख किया गया है।

इस कथानक से क्रोध की भयकरता का स्पष्ट रूप से पता चल जाता है। क्रोध की अवस्था मे मनुष्य पागल हो जाता है। जिस प्रकार नदी के बढे हुए जल-वेगके आगे तृण-काष्ट आदि वह जाते हैं, उसी प्रकार क्रोध के प्रवल वेग के सामने मनुष्य की विचार, विवेक आदि सभी शक्तियां वह जाती हैं, उसको अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य हानि-लाभ का कुछ भी भान नही रहता। क्रोधावेश मे आकर सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि के साथ जो अमानुषिक व्यवहार

किया है, उससे मनुष्य प्रकृति की क्रोध मूलक दुर्भावना का सहज मे ही परिचय प्राप्त हो जाता है इसीलिए शास्त्रकारो ने मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति मे क्रोध को एक भयकर प्रतिबधक माना है। यही क्रोध मनुष्य को नरकादि दुर्गतियो की दु खाग्नि मे अनादि काल से जलाता चला आ रहा है। यही क्रोध मनुष्य को आखो के रहते अन्धा बना देता है। अत सुखाभिलाषी तथा कल्याण-कामुक मनुष्य को इस क्रोध-पिशाच से सदा दूर रहना चाहिये।

"सामिधेयस्स"—की व्याख्या करते हुए टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि लिखते हैं—**"सामिधेयस्सत्ति—समित्-समूहस्य"** अर्थात् समिध् शब्द से हवन मे जलाई जाने वाली लकडी का ग्रहण किया जाता है। इन लकडियो के समुदाय का नाम **सामिधेय** है।

"समिहातो य दब्भे य कुसे य पत्तामोड च" यहा पर समिध्, दर्भ, कुशा और आमोटितपत्र इन चार शब्दो का प्रयोग है। इन्धनभूत लकडी या हवन मे जलाई जाने वाली लकडी को समिध्, मूल सहित डाभ जडो वाली कुशा जैसी घास को दर्भ, डाभ के अग्रभाग को कुशा तथा देवपूजन के लिये वृक्षो की शाखाओ के अग्रभाग से तोडे हुए पत्रो को आमोटित पत्र कहते है। आचार्यवर अभयदेवसूरि के शब्दो मे समिध् आदि की व्याख्या इस प्रकार है।

"समिहाउत्ति" इन्धनभूता काष्ठिका, "दब्भेत्ति" समूलान् दर्भान्, "कुसेत्ति" दर्भाग्राणीति, "पत्तामोडय चत्ति" शाखि-शाखा—शिखामोटितपत्राणि देवतार्चनार्थानीत्यर्थ ।

एक स्थान पर—**पत्तामोडय** "का अर्थ—**पत्रामोटम्-पत्राणामामोट पत्रामोटस्तत्पत्रामोटम्—पत्रसमूहमित्यर्थ** " ऐसा लिखा है। इसके अनुसार "पत्तो" के समूह को **पत्रामोट** कहते हैं।

"अदूरसामन्तेण" यहा पठित अदूर-सामन्त शब्द का अर्थ है—वह प्रदेश जो न तो बहुत दूर हो और न बहुत पास हो। सूत्रकार यह पद देकर यह ध्वनित करना चाहते हैं कि सोमिल ब्राह्मण महाकाल श्मशान के इतना पास भी नही था कि श्मशान का धूआ उसको खेद-खिन्न कर रहा हो और वह श्मशान से इतना दूर भी नही था कि श्मशान के दृश्यो को वह देख ही न सकता हो।

"पविरलमणुस्ससि"—प्रविरला मानुषा यस्मिन्, तस्मिन्, क्वचित्-क्वचिद् दृष्टिगोचरी भवजनने प्रायो मानुष्यागमनरहिते, अर्थात् जहाँ मनुष्यो का आना जाना विशेष रूप से समाप्त हो गया हो, उसे 'प्रविरल-मानुष्य' कहते है।

"आसुरुत्ते ५" यहा ५ के अक से—**रुट्ठे—कुविए-चडिक्किए** और **मिसिमिसीमाणे** इन अवशिष्ट चार पदो का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है। **आसुरुत्ते"** इस शब्द के आशुरुप्त तथा आसुरोक्त ये दो सस्कृत रूप होते हैं दोनो का अर्थ विभेद इस प्रकार है—

जो शीघ्र ही क्रोध से विमोहित हो जाए, कृत्य-अकृत्य, के विवेक से रहित हो जाये, वह आशुरुप्त या जिसकी वाणी क्रोधी राक्षसो जैसी हो उसे आसुरोक्त कहते है। रोष करने वाला रुष्ट, मन से क्रोध करने वाला कुपित क्रोधाधिक्य के कारण भीषणता को प्राप्त चाण्डिक्यित तथा क्रोधाग्नि से जल कर दान्त पीसने वाला **मिसिमिसीमान** कहलाता है।

"अप्पत्थिए जाव परिवज्जिए" यहा पठित जाव पद से—पत्थए दुरत पतलक्खणे, हीनपुन्न-चाउद्दस-हिरि-सिरि" इन पदो का ग्रहण किया जाता है। अप्रार्थित—जिस की याचना नही की गई उस मृत्यु की प्राथना-याचना करने वाले को—अप्रार्थित तथा प्रार्थक, दुष्टावसान (जिसका अन्त दुष्ट—दु खप्रद हो) होने से खराब लक्षणो वाले को दुरन्त प्रान्त-लक्षण, जिस का पुण्यहीन हो गया हो तथा चतुर्दशी मे उत्पन्न हुआ हो, उसको पुण्यहीन चातुर्दश-पापात्मा, लज्जा तथा लक्ष्मी से रहित को—ह्री-श्री—परिवर्जित* कहते है।

"अदिट्ठ-दोस-पइय" दुष्टो दोषश्चौर्यादिर्यस्या सा दृष्टदोषा, सा चासौ पतिता—जात्यादेर्बहिष्कृता, दुष्टदोषपतिता न तथेत्यदृष्ट-दोषपतिता अथवा न दृष्टदोषपतिता इत्यदृष्टदोषपतिता अथवा अदृष्ट दोषप्रकृतिम् न दृष्टो दोषो यया सा अदृष्टदोषा, तादृशी प्रकृतिर्यस्या सा ता मरणवाञ्छक इति भाव। दुरन्त-प्रान्त-लक्षण, दुरन्त दुष्टावसानम् अत एव प्रान्तम्—अमनोज्ञ लक्षण यस्य स—भाग्यहीन इत्यर्थ। हीनपुण्यश्चातुर्दश चातुर्दश्या जात चातुर्दश, हीन पुण्य यस्यासौहीनपुण्य। हीनपुण्यश्चासौ-चातुर्दशश्च हीनपुण्यचातुर्दश—पापात्मा इत्यर्थ। ह्री-श्री-परिवर्जित—लज्जालक्ष्मी रहित इत्यर्थ। अदुष्ट स्वभावभावामित्यर्थ।

अर्थात् "अदिट्ठ-दोस-पइय" इस पद के "अदृष्ट-दोषपतिता" तथा अदृष्टदोष-प्रकृतिम्" ये दो सस्कृत रूप बनते हैं। अदृष्ट दोष पतित के दो अर्थ होते हैं—१ जिस लडकी मे चोरी आदि करने का कोई अवगुण-दोष न हो अथवा जो लडकी जाति आदि से बहिष्कृत—बाहिर निकाली हुई न हो अथवा बिना दोष देखे ही जिस लडकी को छोड दिया गया हो, उसे अदृष्टदोष पतित कहते है, किसी मे दोष देखने का जिस लडकी का स्वभाव न हो, वह बालिका—अदृष्टदोषप्रकृति कही गई है।

"कालवत्तिणी—काले-भोगकाले यौवने वर्तते इति कालवर्तिनी।" अर्थात् जो लडकी युवति होने के कारण विवाह योग्य हो रही हो उसे कालवर्तिनी कहते है।

"वेरनिज्जायण—वैरनिर्यातनम्—इस पद का अर्थ है—वैर का निकालना, शत्रुता का बदला लेना। इस पद द्वारा सोमिल ब्राह्मण ने मुनिराज गजसुकुमाल को अपना शत्रु अभिव्यक्त किया है शत्रुता के कारण उसने—"अदिट्ठदोसपइय" अथवा कालवत्तिणी—इन पदो द्वारा शत्रुता के भाव प्रगट किये हैं।

सोमा का पिता होने के नाते सोमिल ब्राह्मण गजसुकुमार को ध्यानस्थ मुनि के रूप मे खडे देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह सोचने लगा—यह क्या अनर्थ हो गया? सोमा का भावी पति तो साधु बन गया है। सोमा युवती है एव विवाह योग्य है, इसके सम्बन्ध का सब को पता लग गया है अब इसका दूसरे स्थान पर सम्बन्ध कैसे होगा? फिर यह सम्बन्ध मैंने तो नही किया। द्वारिकाधीश ने स्वय लडकी की याचना करके यह सम्बन्ध जोडा है। कितना खेद है कि आज इसे तोड दिया गया है जैसे कोई बात ही न हुई थी।

सोमिल की विचारधारा गभीर होने लगी वह कहने लगा—हा! मैं यह स्वीकार करता हू कि यदि लडकी मे कोई दोष होता या चरित्र-हीनता का कोई अपयश होता या उसको ओर कोई

*अप्रार्थित—प्रार्थक—अप्रार्थितस्य—अयाचितस्य मृत्यो प्रार्थक।

अगुलि उठाता, किसी ने इससे सम्बन्ध विच्छेद कर रखा होता तो इस सम्बन्ध को भले ही तोड दिया जाता, मै कभी खेद प्रकट न करता, स्वय ही विवाह करने से इन्कार कर देता पर बिना किसी दोष के बताये यू ही लडकी छोड देना कितनी बुरी बात है और मेरा कितना अपमान किया है दुनिया को क्या मुख दिखलाऊगा, मेरे लिये तो डूब मरनेवाली बात है।

यह सोचकर सोमिल तिलमिला उठा, उसकी आखो से रक्त बरसने लगा, उसकी त्योरिया चढ गई, क्रोध के मारे वह दाँत पीसने लगा। अन्त मे उसने, निश्चय किया कि गजसुकुमाल ने सर्वथा निर्दोष और सोने जैसी निष्कलक मेरी सोमा को छोड कर मेरे से जो वैर कमाया है—शत्रुता ठानी है, जब तक उसका बदला न ले लू तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूगा।

गजसुकुमार को इस शत्रुता का दण्ड अवश्य दूंगा। सोमिल के इस द्वेषपूर्ण आन्तरिक निर्णय को ही सूत्रकार ने **"वेर निज्जायण करेत्तए"** इन पदो से अभिव्यक्त किया है।

जब हम सोमिल ब्राह्मण की द्वेषपूर्ण मानसिक स्थिति का ऊपर-ऊपर से अध्ययन करते हैं, तो यह तर्क-सगत दिखाई देता है। पर जब सूक्ष्म दृष्टि से इसका परिशीलन करते हैं तो मानना पडेगा कि सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार पर द्वेष करना निर्मूल है, निराधार है, इसमे कोई सत्यता नही है, क्योकि गजसुकुमार सर्वथा निर्दोष हैं, उनमे कोई दोष दिखाई नही देता। पिछला प्रकरण बतलाता है कि गजसुकुमार की ओर से सोमा के साथ विवाह करने का कोई प्रस्ताव नही रखा गया, न सोमा के विवाहित होने का उन्होने कोई वचन दिया था। गजसुकुमार जी को तो विवाह से कोई लगाव ही नही था। यह अधिक सम्भव है कि गजसुकुमार को कन्याओ के अन्त पुर का पता ही न हो। सयम साधना के परमाराधक मनुष्य को वासना-प्रधान जीवन की सामग्री से प्रयोजन ही क्या हो सकता है? विष और अमृत, प्रकाश और अन्धकार का नाता कैसा? इसके अतिरिक्त यदि गजसुकुमार सोमा को छोड कर किसी दूसरी लडकी से विवाह करवाने का प्रस्ताव रखते या उसकी स्वीकृति देते तब तो सोमिल का रुष्ट होना कुछ जचता था पर गजसुकुमार तो विवाह की दुनिया से ही सन्यास ले रहे हैं, कञ्चन, कामनी के सर्वथा त्यागी बन कर ब्रह्मचर्य जैसे असिधारा व्रत के भयकर साधना-पथ पर चल रहे है, ऐसी दशा मे उनपर रोष करना उनको हानि पहुंचाने का हृदय मे सकल्प भी लाना बहुत बडी भूल करना है, ब्रह्मचर्य के महादेव का धृष्टतापूर्वक अपमान करना है।

"दिसापडिलेहण—दिशाप्रतिलेखनम्—का अर्थ हैं—दिशाओ को देखना, कोई आता या जाता तो नही, इस दृष्टि से चारो ओर अवलोकन करना। सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार के सिर पर अगीठी बनाकर उसमे अगारे डालने से पूव जो चारो ओर देखना है यह प्रकट करता है कि हिंसक हिंसा करता हुआ सदा डरता है, उसकी अन्तरात्मा एक बार काप उठती है। वस्तुत हिंसात्मक पापमयी प्रवृत्ति का इस जीव पर महान् प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की प्रवृत्ति पतन की ओर जाते हुए उस आत्मा को कितना प्रबल सकेत करती है और भय कपादि के द्वारा उसकी परिणाम-भयकरता को कितना स्पष्ट करती है, आदि सभी बातो का अनायास ही स्पष्ट बोध प्राप्त हो जाता है। हिंसा और अहिंसा मे यही अन्तर होता है। हिंसा भय और पतन की जननी है। इसके विपरीत अहिंसा दयामय-प्रवृत्ति निर्भयता और उत्थान की उत्पादिका है। अहिंसक आत्मा मे

उत्साह, प्रसन्नता, शान्ति और गभीरता आदि गुणो का उत्तरोत्तर विकास होता है, जबकि हिंसक आत्मा मे इन सद्गुणो का ह्रास होता है।

"फुल्लिय-किंसुय समाणे" का अर्थ टीकाकार अभयदेव सूरि के शब्दो मे इस प्रकार है—

विकसित-पलाश-कुसुम-समानान् रक्तानित्यर्थ । अर्थात् खिले हुये पलाश—टेसू के फूलो के समान। जैसे टेसू के फूलो का रग अत्यधिक लाल होता है ऐसे अत्यधिक लाल वर्णवाले।

"खयरगारे"—का अर्थ है—खैर नामक वृक्ष की लकडी के अगारे।

सूत्रकार कहते हैं कि सोमिल ब्राह्मण ने जलती हुई चिताओ से जिन अगारो को उठाकर गजसुकुमार के मस्तक पर डाला था वे अगारे खैर लकडी के थे। इस वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि उस युग मे शवदाह के लिए मृतको को जलाने के लिए खदिरकाष्ट—खैर वृक्ष की लकडियो का अधिक प्रयोग होता होगा या इस लकडी की मुख्यता होगी।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि मुनि गजसुकुमार के मस्तक पर जलते हुए अगारो को रख कर सोमिल ब्राह्मण भाग जाता है। इसके अनन्तर क्या हुआ। अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते ण तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयसि वेयणा पाउब्भूता, उज्जला जाव दुरहियासा। तए ण से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसावि अप्पदुस्समाणे त उज्जल जाव अहियासेमाणस्स सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण तदावरणिज्जाण कम्माण खएण कम्मरयविकिरणकर अपुव्वकरण अणुपविट्ठस्स अणते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदसणे समुप्पण्णे। ततो पच्छा सिद्धे जाव पहीणे। तत्थ ण अहासनिहितेहि देवेहि "सम्म आराहितत्ति" कट्टु दिव्वे सुरभिगधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिते, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीय-गधव्व-निनाये कए यावि होत्था।

छाया—ततस्तस्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता। उज्ज्वला यावद् दुरधिसहा। तत स गजसुकुमालोऽनगार सोमिलस्य माहनस्य मनसापि अप्रदुष्यन्* तामुज्ज्वलामधिसहते। ततस्तस्य गजसुकुमालस्यअनगारस्य तामुज्ज्वलां यावद् अधिसहमानस्य शुभेन परिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन तदावरणीयाना कर्मणा क्षयेण कर्म-रजोविकिरणकरमपूर्वकरणमनुप्रविष्टस्य अनन्तमनुत्तर यावद् केवल-वर-ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्, तत पश्चात् सिद्धो यावत् प्रहीण। तत्र यथासनिहितैं देवै "सम्यग् आराधितम्" इति कृत्वा दिव्य सुरभि गन्धोदक-वर्षित, दशार्द्धवर्णानि कुसुमानि निपातितानि, चैलोत्क्षेप कृत, दिव्यश्च गीत-गधर्व-निनादकृतश्चाप्यभवत्।

पदार्थ—तते—उस के पश्चात्, ण—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है, तस्स—उस, गयसुकुमालस्स—गजसुकुमाल, अणगारस्स—मुनि के, सरीरयसि—शरीर मे, उज्जला—अत्यधिक दु खमयी, जाव—यावद्, दुरहियासा—अत्यन्त असह्य, वेयणा—वेदना, पीडा, पाउब्भूता—उत्पन्न हुई, तते—तदनन्तर, से गयसुकुमाले—वह गजसुकुमार, अणगारे—अनगार—मुनि, सोमिलस्स—

* द्वेपमगच्छन्नित्यथ

अगुलि उठाता, किसी ने इससे सम्बन्ध विच्छेद कर रखा होता तो इस सम्बन्ध को भले ही तोड दिया जाता, मै कभी खेद प्रकट न करता, स्वय ही विवाह करने से इन्कार कर देना पर बिना किसी दोष के बताये यू ही लडकी छोड देना कितनी बुरी बात है और मेरा कितना अपमान किया है दुनिया को क्या मुख दिखलाऊगा, मेरे लिये तो डूब मरनेवाली बात है।

यह सोचकर सोमिल तिलमिला उठा, उसकी आखो से रक्त बरसने लगा, उसकी त्योरिया चढ गई, क्रोध के मारे वह दांत पीसने लगा। अन्त मे उसने, निश्चय किया कि गजसुकुमाल ने सर्वथा निर्दोष और सोने जैसी निष्कलक मेरी सोमा को छोड कर मेरे से जो वैर कमाया है—शत्रुता ठानी है, जब तक उसका बदला न ले लू तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूगा।

गजसुकुमार को इस शत्रुता का दण्ड अवश्य दूंगा। सोमिल के इस द्वेषपूर्ण आन्तरिक निर्णय को ही सूत्रकार ने "वेर निज्जायण करेत्तए" इन पदो से अभिव्यक्त किया है।

जब हम सोमिल ब्राह्मण की द्वेषपूर्ण मानसिक स्थिति का ऊपर-ऊपर से अध्ययन करते हैं, तो यह तर्क-सगत दिखाई देता है। पर जब सूक्ष्म दृष्टि से इसका परिशीलन करते हैं तो मानना पडेगा कि सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार पर द्वेष करना निर्मूल है, निराधार है, इसमें कोई सत्यता नही है, क्योकि गजसुकुमार सर्वथा निर्दोष है, उनमे कोई दोष दिखाई नही देता। पिछला प्रकरण बतलाता है कि गजसुकुमार की ओर से सोमा के साथ विवाह करने का कोई प्रस्ताव नही रखा गया, न सोमा के विवाहित होने का उन्होने कोई वचन दिया था। गजसुकुमार जी को तो विवाह से कोई लगाव ही नही था। यह अधिक सम्भव है कि गजसुकुमार को कन्याओ के अन्त पुर का पता ही न हो। सयम साधना के परमाराधक मनुष्य को वासना-प्रधान जीवन की सामग्री से प्रयोजन ही क्या हो सकता है ? विष और अमृत, प्रकाश और अन्धकार का नाता कैसा ? इसके अतिरिक्त यदि गज-सुकुमार सोमा को छोड कर किसी दूसरी लडकी से विवाह करवाने का प्रस्ताव रखते या उसकी स्वीकृति देते तब तो सोमिल का रुष्ट होना कुछ जंचता था पर गजसुकुमार तो विवाह की दुनिया से ही सन्यास ले रहे है, कञ्चन, कामनी के सर्वथा त्यागी बन कर ब्रह्मचर्य जैसे असिधारा व्रत के भयकर साधना-पथ पर चल रहे है, ऐसी दशा मे उनपर रोष करना उनको हानि पहुंचाने का हृदय मे सकल्प भी लाना बहुत बडी भूल करना है, ब्रह्मचर्य के महादेव का धृष्टतापूर्वक अपमान करना है।

"**दिसापडिलेहण—दिशाप्रतिलेखनम्**—का अर्थ है—दिशाओ को देखना, कोई आता या जाता तो नही, इस दृष्टि से चारो ओर अवलोकन करना। सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार के सिर पर अगीठी बनाकर उसमे अगारे डालने से पूव जो चारो ओर देखना है यह प्रकट करता है कि हिंसक हिसा करता हुआ सदा डरता है, उसकी अन्तरात्मा एक बार काप उठती है। वस्तुत हिंसात्मक पाप-मयी प्रवृत्ति का इस जीव पर महान् प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की प्रवृत्ति पतन की ओर जाते हुए उस आत्मा को कितना प्रबल सकेत करती है और भय कपादि के द्वारा उसकी परिणाम-भयकरता को कितना स्पष्ट करती है, आदि सभी बातो का अनायास ही स्पष्ट बोध प्राप्त हो जाता है। हिंसा और अहिंसा मे यही अन्तर होता है। हिंसा भय और पतन की जननी है। इसके विपरीत अहिंसा दयामय-प्रवृत्ति निर्भयता और उत्थान की उत्पादिका है। अहिंसक आत्मा मे

उत्साह, प्रसन्नता, शान्ति और गभीरता आदि गुणो का उत्तरोत्तर विकास होता है, जबकि हिंसक आत्मा मे इन सद्गुणो का ह्रास होता है।

"फुल्लिय-किंसुय समाणे" का अर्थ टीकाकार अभयदेव सूरि के शब्दो मे इस प्रकार है—

विकसित-पलाश-कुसुम-समानान् रक्तानित्यर्थं । अर्थात् खिले हुये पलाश—टेसू के फूलो के समान। जैसे टेसू के फूलो का रग अत्यधिक लाल होता है ऐसे अत्यधिक लाल वर्णवाले।

"**खयरगारे**"—का अर्थ है—खैर नामक वृक्ष की लकडी के अगारे।

सूत्रकार कहते हैं कि सोमिल ब्राह्मण ने जलती हुई चिताओ से जिन अगारो को उठाकर गजसुकुमार के मस्तक पर डाला था वे अगारे खैर लकडी के थे। इस वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि उस युग मे शवदाह के लिए मृतको को जलाने के लिए खदिरकाष्ट—खैर वृक्ष की लकडियो का अधिक प्रयोग होता होगा या इस लकडी की मुख्यता होगी।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि मुनि गजसुकुमार के मस्तक पर जलते हुए अगारो को रख कर सोमिल ब्राह्मण भाग जाता है। इसके अनन्तर क्या हुआ। अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते ण तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयसि वेयणा पाउब्भूता, उज्जला जाव दुरहियासा। तए ण से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसावि अप्पदुस्समाणे त उज्जल जाव अहियासेमाणस्स सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण तदावरणिज्जाण कम्माण खएण कम्मरयविकिरणकर अपुव्वकरण अणुपविट्ठस्स अणते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदसणे समुप्पण्णे। ततो पच्छा सिद्धे जाव पहीणे। तत्थ ण अहासनिहितेहिं देवेहि "सम्म आराहितत्ति" कट्टु दिव्वे सुरभिगधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिते, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीय-गधव्व-निनाये कए यावि होत्था।

छाया—ततस्तस्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता। उज्ज्वला यावद् दुरधिसहा। तत स गजसुकुमालोऽनगार सोमिलस्य माहनस्य मनसापि अप्रदुष्यन्* तामुज्ज्वलामधिसहते। ततस्तस्य गजसुकुमालस्यानगारस्य तामुज्ज्वला यावद् अधिसहमानस्य शुभेन परिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन तदावरणीयाना कर्मणा क्षयेण कर्म-रजोविकिरणकरमपूर्वकरणमनुप्रविष्टस्य अनन्तमनुत्तर यावद् केवल-वर-ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्, तत पश्चात् सिद्धो यावत् प्रहीण। तत्र यथासनिहितै देवै "सम्यग् आराधितम्" इति कृत्वा दिव्य सुरभि गन्धोदक वर्षित, दशार्द्धवर्णानि कुसुमानि निपातितानि, चैलोत्क्षेप कृत, दिव्यश्च गीत-गधर्व-निनादकृतश्चाप्यभवत्।

पदार्थ—**तते**—उस के पश्चात्, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है, **तस्स**—उस, **गयसुकुमालस्स**—गजसुकुमाल, **अणगारस्स**—मुनि के, **सरीरयसि**—शरीर मे, **उज्जला**—अत्यधिक दुखमयी, **जाव**—यावद्, **दुरहियासा**—अत्यन्त असह्य, **वेयणा**—वेदना, पोडा, **पाउब्भूता**—उत्पन्न हुई, **तते**—तदनन्तर, **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमार, **अणगारे**—अनगार—मुनि, **सोमिलस्स**—

* द्वेषमगच्छन्नित्यर्थ

पूर्ण नीति से वडे भयभीत थे, सतर्क थे। इस दल का सदस्य वनने के लिये एक वडी कडी शर्त थी। जो व्यक्ति इस का सदस्य वनना चाहता हो उसे सदस्य वनने से पूर्व एक परीक्षा देनी पडती थी। परीक्षा का रूप यह था कि परीक्षक परीक्षार्थी के सामने जलता हुआ दीपक रख देता था। परीक्षार्थी को उस की शिखा पर अपनी अगुली रख देनी होती थी। शिखा की आग जब अगुली को जलाती थी उसे नष्ट करती थी, तब परीक्षार्थी को विल्कुल शान्त रहना पडता था वह मुख से उफ तक नही कह सकता था। यदि परीक्षार्थी अपनी इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाए तब परीक्षक उसे अपने क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनाता था, अन्यथा नही। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कोई काल्पनिक बात नही है।

इस ऐतिहासिक सत्य से हम यह देख सकते हैं अच्छी तरह समझ सकते है कि अग्निदाह को सहन किया जा सकता है। अग्निदाह का सहन करना कठिन अवश्य है पर असभव बात नही है। पर इस सत्य से कभी इन्कार नही किया जा सकता कि यह सब उसके लिये सभव है जिस के हृदय मे सच्ची लगन हो, जिस के कण-कण मे सच्चा विश्वास हो, पूर्ण निष्ठा हो, मेरु जैसी अटलता हो। जिस मनुष्य मे विश्वास ही नही जरा स्थिरता एव दृढता ही नही मारणान्तिक कष्ट तो कहा सामान्य कष्ट सहन करना भी उस के वश की बात नही होती। मुनि गजसुकुमार के सच्चे विश्वास मे कही कोई कमी दिखाई नही देती। इन का विश्वास मेरु पर्वत से भी बढना सुदृढ था। यही कारण है, कि कृष्ण महाराज द्वारा द्वारिका का मुकुट सर पर रख देने पर भी यह मोह-माया मे नही फसे। अपने विश्वास पर दृढ रहे, सयम साधना के महापथ पर चल दिए और अब जबकि इन के सिर पर सोमिल ब्राह्मण ने अगीठी रख दी तब भी इन के दृढ विश्वास मे कोई कम्पन नही आया। महावेदना के होने पर भी बिल्कुल शान्त रहे, आत्मचिन्तन मे मस्ती स लगे रहे। इस के अलावा इन्होने सोमिल ब्राह्मण के सम्बन्ध मे द्वेषपूर्ण किसी भी विचार को अपने हृदय मे आने नही दिया। इस से बढ कर गजसुकुमार जी के अटल एव सुदृढ विश्वास का क्या प्रमाण हो सकता है?

सस्कृत के एक विद्वान आचार्य कितनी सुन्दर बात कहते है—

क्षमा वीरस्य भूषणम्—क्षमा वीर पुरुषो का ही भूषण हो सकता है कमजोरो का नही। वस्तुत अध्यात्मिक जीवन मे—क्षमा का बहुत ऊचा स्थान है। इस की उपासना किए बिना अध्यात्मिक जगत मे सफलता के दर्शन नही हो सकते, क्षमा भगवती है, इस भगवती की आराधना से ही मोक्ष का महापथ मिल सकता है। अत मोक्षाभिलाषी साधक वर्ग को क्षमा-वीर गजसुकुमार की भान्ति क्षमा प्रधान जीवन द्वारा परमसाध्य मोक्ष को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

उज्जला जाव दुरहियासा—यहा पठित **जाव** पद **"विउला-कक्खडा-पगाढा-चडा-रुद्दा-दुक्खा"** इन पदो का परिचायक है। उज्ज्वल, विपुल आदि पदो की व्याख्या वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—

वेदना किं विधा? उज्ज्वला-विपक्षलेशेनापि अकलकिता, विपुला-शरीरव्यापकत्वात्। क्व-चित्तु 'तितुलेहिं' पाठ है, **तत्र त्रीनपि मनोवाक् कायलक्षणान् अर्थान् तुलयति, जयति तुलारूढानिवाकरोति**

त्रितुला, कर्कशा—कर्कशद्रव्यमिवानिष्टेत्यर्थ, प्रगाढा—प्रकर्षवती, चण्डा—रौद्रा, दु खा—दु खरूपा न सुखेत्यर्थ, किमुक्त भवति ? दुरधिसह्या।

गजसुकुमाल मुनि के सिर पर जब अगारे रखे गए तब उन को जो वेदना हुई उसी की भयकरता को सूत्रकार ने उज्ज्वल आदि शब्दो द्वारा समूचित किया है। उज्ज्वल आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१—**उज्ज्वला**—अत्यधिक दु ख, जिस मे सुख का चिह्न भी न हो।

२—**विपुला**—महान, जो सारे शरीर को पीडित कर रही हो। वृत्तिकार कहते है कि किसी किसी प्रति मे विपुला के स्थान पर त्रितुला यह शब्द भी देखा जाता है। **त्रितुला** का अर्थ है—वह वेदना जिस मे मन, वचन और शरीर इन तीनो की दुरवस्था हो जाए।

३—**कर्कशा**—कर्कश—कठोर द्रव्य की तरह अनिष्ट-अप्रिय।

४—**प्रगाढा**—अत्यधिक भयकर।

५—**चण्डा**—उग्र, तीव्र।

६—**रौद्रा**—भीषण।

७—**दु खा**—जिस मे दु ख ही दु ख है।

८—**दुरधिसहा**—जिस का सहन करना बहुत ही कठिन है।

उज्ज्वल आदि पद प्राय समानार्थक से ही हैं। सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर जो अन्तर उपलब्ध होता है उस का दिग्दर्शन करा दिया गया है। सब पदो का भाव इतना ही है कि मुनिराज गजसुकुमार की वेदना अत्यधिक हृदयविदारक थी, भयकर थी, असह्य थी। साधारण मनुष्य इसको सहन नही कर सकता है।

"सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण"* इस पाठ मे दो बाते बताई है—१—शुभ परिणाम तथा २—प्रशस्त अध्यवसाय। दोनो का अर्थ विभेद इस प्रकार है—१—सामान्य रूप मे शुभनिष्पाप विचारों को शुभ परिणाम कहते है। २—विशेष रूप से आत्मसमाधि मे लग जाने या सूक्ष्म आत्म-चिन्तन मे सलग्न होने की दशा को प्रशस्त अध्यवसाय कहा गया है।

"तदावरणिज्जाण कम्माण"—तत्तदात्मगुणावरकाणा कर्मणाम्"। यहा कर्म विशेष्य है और तदावरणीय यह उस का विशेषण है। कर्म शब्द आत्म प्रदेशो से मिले कर्माणुओ का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणो को ढकने वाले, इस अर्थ का सूचक—तदावरणीय शब्द है।

"कम्म-रय-विकिरण-कर-कर्मरजो विकिरणकरम्—कर्म ज्ञानावरणादि, तदेवरज मलिन-कारकत्वात्, तस्य यद् विकिरण—पृथक्करण ध्वसनमिति, तस्य कर-कारकम्—अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज—मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कर्मरजो-विकिरण-कर कहते हैं।

---

* शुभेन परिणामेन शुभात्मक-परिणतिलक्षणेन। प्रशस्ताध्यवसानेन उत्कृष्टतया सूक्ष्मात्मचिन्तनेन।

अपुव्वकरण—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्वं शुभपरिणामम्। यहा पठित "**अपूर्वकरण**" जिसकी कभी पहले प्राप्ति नही हुई—इस अर्थ का बोधक है। यह आठवे **निवृत्तिवादर गुणस्थान*** का भी परिचायक माना गया है। जिस जीव के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध, मान-माया तथा लोभ ये चारो कषाय निवृत्त हो गये हो, उसके स्वरूप-विशेष को निवृत्तिवादर गुण-स्थान कहते है। इस गुणस्थान से उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दो श्रेणिया आरम्भ होती हैं। उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतिया उपशम करता हुआ ग्यारहवे गुणस्थान पर जाकर रुक जाता है और क्षपक श्रेणीवाला जीव दसवे गुणस्थान से सीधा बारहवे गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाति (जिसमे पतन न हो) हो जाता है। आठवे गुणस्थान मे आरूढ हुआ जीव क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो कर जब बारहवें गुणस्थान मे पहुच जाता है तब उसकी **अपूर्वकरण** दशा होती है। इस अवस्था मे जाकर जीव समस्त-घाती कर्मों का क्षय करता हुआ कैवल्य को प्राप्त करके परम-कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत मे सूत्रकार ने "**अपुव्वकरण**" ये पद देकर गज-सुकुमार के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है। भाव यह है कि गजसुकुमार मुनि ने आठवे गुणस्थान मे प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था।

"**अणते-अणुत्तरे जाव केवल वर-नाण-दसणे**" यहा पठित **जाव** पद से "**निव्वाघाए-निरावरणे-कसिणे-पडिपुण्णे**" इन पदो का ग्रहण करवाना सूत्रकार को इष्ट है। अनन्त आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१ **अनन्त**—अन्त रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा बना रहे। २ **अनुत्तर**—प्रधान—जिससे बढकर अन्य कोई ज्ञान नही है, सबसे ऊचा ३ **निर्व्याघात**—व्याघात—रुकावट रहित। जिसको दीवार वृक्ष-पहाडादि की कोई बाधा नही होती। ४ **निरावरण**—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नहीं है, चारो ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्षा करनेवाला। ५ **कृत्स्न**—सम्पूर्ण, जो अपूर्ण नही है। ६. **प्रतिपूर्ण**—ससार के सब पदार्थों को अपना विषय बनानेवाला, जिससे ससार का कोई पदार्थ ओझल नही है।

"**केवल-वर-नाण-दसणे**"—का अर्थ वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—**केवल-वर-ज्ञानदर्शन, केवल इति नाम्ना प्रसिद्धम्। एकमात्र-सजातीय-द्वितीय-रहित वर मतिश्रुतज्ञानाद्यपेक्षया श्रेष्ठ ज्ञान चक्षुर्दर्शनाद्यपेक्षया च श्रेष्ठ दर्शनम्। अनयो सकल-द्रव्य-पर्याय-विषयकत्वात्।** अर्थात् केवल शब्द जिस का कोई सजातीय नही है, इस अर्थ का बोधक है। वर का अर्थ है-श्रेष्ठ। मति श्रुत आदि ज्ञानो की अपेक्षा जो श्रेष्ठ है। वह केवल ज्ञान और चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनादि की अपेक्षा जो श्रेष्ठ है वह केवल वर-दर्शन कहलाता है। केवलज्ञान और केवलदर्शन ससार के समस्त पदार्थों तथा इनकी समस्त पर्यायो—दशाओ को अपना विषय बनाते हैं, इनको जानते हैं, देखते है।

"**सिद्धे जाव पहीणे**" यहा पठित **जाव** यह पद **बुद्धे-मुत्ते-परिनिव्वाए—सव्वदुक्ख** इन अवशिष्ट पदो का ससूचक है। सिद्ध आदि पदो की अर्थ विचारणा इस प्रकार है—

१ सिद्ध—जो कृतकृत्य हो गया है, जिसके समस्त कार्य सिद्ध—पूर्ण हो चुके है। २ जो लोक अलोक के सर्व पदार्थों का ज्ञाता है। ३ मुक्त—जो समस्त कर्मो से रहित हो चुका है। ४ परिनिर्वात—

* "अपुव्वकरणत्ति" अष्टमगुणस्थानकरवृत्तिकरोऽभयदेवसूरि।

समस्त कर्मगत के विकारो के नष्ट होने से जो शान्त है। ५ सर्व दुःख प्रहीण—जिसके शारीरिक तथा मानसिक दुःख नष्ट हो चुके है।

"अहासनिहिते देवेहि सम्म आराहित" त्ति कट्टु—यथा सनिहितैर्देवै—तत्समयसमीपवर्तिदेवै सम्यक् आराधितम्। अनेन गजसुखमालेन मुनिना चारित्र सम्यक् आराधितम्, इति कृत्वा—एव मनसि निधाय। अर्थात् जहा गजसुकुमार मुनिने निर्वाण प्राप्त किया था वहा के समीपवर्ती प्रदेश के देवो ने विचार किया कि गजसुकुमाल मुनि ने चारित्र की सम्यक् आराधना की है। यहा जिन देवो का सूत्र-कार ने वर्णन किया है, वे व्यतर देव ही समझने चाहिए, क्योकि उस समय श्मशान भूमि के समीपवर्ती वृक्षादि स्थानो मे वे ही विद्यमान हो सकते है। अत उन्होने ही मिलकर गजसुकुमाल मुनि का निर्वाणो-त्सव मनाया था उन देवो ने ही १ सुगन्धित जल की वृष्टि २ पांच रग के फूलो की वर्षा ३ वस्त्रो की वर्षा ४ गीतो तथा ५ मृदगो की ध्वनियो से आकाश को गुजाया था।

"गीय-गधव्व-निनाये"—गीत-गान्धर्व-निनाद। गीत स्वर तालयुक्त गान, गान्धर्वमृदगादि-वादनम्, अनयो निनाद ध्वनि, अर्थात् गीत और गाधर्व की ध्वनि। स्वर और ताल से युक्त गायन को गीत तथा मृदग आदि बाजे बजाने को गाधर्व कहते हैं।

गजसुकुमार मुनि के निर्वाण पद को प्राप्त होने पर देवी देवताओं ने निर्वाणोत्सव मनाया, सगीत के मधुर स्वरो से वातावरण को सरस और मधुर बनाया, मृदग (ढोल की तरह का एक बाजा मुरज) बजा कर आकाश को गूजा दिया। इस वर्णन से ध्वनित होता है कि गजसुकुमार के निर्वाण को प्राप्त होने पर देवी-देवताओ ने शोक न मना कर हर्ष मनाया। यहा यह प्रश्न होना स्वभाविक है कि गज-सुकुमार की दुखद् घटना को सुनने वाले श्रोता जनो के साधारण मानस भी जब सहानुभूति के कारण हृदय काप उठते हैं तब समीपवर्ती देवी देवताओ के हृदयो मे दुखानुभूति अवश्य होनी चाहिए थी, पर वह क्यो नही हुई? उन्होने खेद-खिन्न होने की बजाय हर्ष क्यो मनाया? उत्तर मे निवेदन है कि गजसुकुमार मुनि की दुखद घटना से वहा के समीपवर्ती देवी-देवताओ को कोई सहानुभूति नही थी और उन्होने सोमिल ब्राह्मण द्वारा रखे अगारो से गजसुकुमार के जलते हुए तथा खिचडी की तरह पकते हुए मस्तक को देखकर कोई दुखानुभव नही हुआ, ऐसा कोई उल्लेख सूत्रकार ने नही किया। यह भी सत्य है कि सूत्रकार ने देवी देवताओ के खेदखिन्न होने का भी कोई वर्णन नही किया। पर इसका यह अर्थ नही समझना चाहिए। गजसुकुमार की दुख-पूर्ण दशा को देखकर देवी देवताओ को दुख नही हुआ। मनोविज्ञान के नियमानुसार यह मानना पडेगा कि गजसुकुमार की दुखद स्थिति को देखकर ये भी दुखी थे, उनको भी इन से पूर्ण सहानुभूति थी। उनका खेदखिन्न होना—सिहर उठना स्वभाविक है क्योकि देवी देवता निवार्णोत्सव मनाकर गजसुकुमार के चरणो मे अपना श्रद्धा-सुमन सर्मपित कर रहे है, वे उनकी पहले की दुखपूण दशा से प्रभावित न हो, आकुल-व्याकुल न हो यह कैसे हो सकता है?

रही निर्वाणोत्सव मनाने की बात। इसके सम्बन्ध मे इतना ही निवेदन है कि ऐसा होना स्वभाविक है और उचित भी है। गजसुकुमार जिस लक्ष्य को लेकर ससार की मोह माया छोडकर साधु बने थे, एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना के लिए श्मशानमे आकर खडे थे, वह लक्ष्य आज

इनका पूर्ण हो गया है। पर सफल सैनिक की भान्ति उन्होने इस धर्म-युद्ध मे विजय प्राप्त की है। इस विजय के उपलक्ष मे यदि देवताओ ने उत्सव मनाकर गजमुकुमार की सफलता की सराहना कर दी तो यह किसी प्रकार अनुचित नही कहा जा सकता।

प्रस्तुत सूत्र मे कहा गया है कि मुनि गजसुकुमार ने श्मशान मे निर्वाणपद प्राप्त किया। समीपवर्ती देवी देवताओ ने इस उपलक्ष्य मे निर्वाणोत्सव मनाया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन इस प्रकार करते है—

मूल—तते ण से कण्हे वासुदेवे कल्ल पाउप्पभायाए जाव जलते ण्हाते जाव विभूसिए हत्थि-खध-वरगते-सकोरेंट-मल्लदामेण छत्तेणं धरिज्ज० सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहि महया-भडचडगर पहकर-वद-परिक्खित्ते बारवति नगरि मज्झ मज्झेण णिग्गच्छमाणे जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव पहारेत्थ गमणाय। तते ण से कण्हे वासुदेवे बारवतीए नगरीए मज्झ मज्झेण णिग्गच्छमाणे एक पुरिस पासति, जुन्न-जरा-जज्जरिय-देह जाव किलत महति-महालयाओ इट्टग-रासीओ एगमेग इट्टग गहाय-बहिया-रत्था-पहातो-अतोगिह अणुप्पविसमाण पासति। तए ण से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकपणट्ठाए हत्थिखधवर-गते चेव एग इट्टग गेण्हति २ बहिया रत्थापहाओ अतोगिह अणुप्पवेसेति। तते ण से कण्हेणं वासुदेवेण एगाते गहिताते समाणीते अणेगेहि पुरिससतेहि से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहातो अतोघरसि अणुप्पवेसिए।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेव कल्ये प्रादु प्रभाताया यावत् ज्वलति स्नातो यावद् विभूषित, हस्ति स्कन्ध-वर-गत सकोरण्ट-माल्य-दाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेत-वर-चामरै उद्धूयमानै महता भट-चटकर-प्रहकर-वृन्दपरिक्षिप्त-द्वारावत्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमि तत्रैव स सप्रधारितवान् गमनाय। तत स कृष्णो वासुदेवो द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छन् एक पुरुष पश्यति, जीर्ण-जरा-जर्जरित-देहयावत् क्लान्तम्। महातिमहत इष्टकाराशे एकैकामिष्टकां गृहीत्वा बहीरथ्या पथात् अन्तोगृहमनुप्रविशमान पश्यति। तत स कृष्णो वासुदेव तस्य पुरुषस्य अणुकम्पनार्थाय हस्ति-वर-स्कन्ध गतश्चैव एकामिष्टका गृह्णाति, गृहीत्वा बहि रथ्यापथात् अन्तोगृहमनुप्रविशति। तत कृष्णेन वासुदेवेन एकस्यामिष्टकायां गृहीताया सत्या अनेकै पुरुषशतै स इष्टकाया राशि बहीरथ्यापथात् अन्तर्गृहे अनुप्रवेशित।

पदार्थ—तते—तदनन्तर, ण—वाक्य सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त किया गया है, से—वह (उस,) कण्हे वासुदेवे—कृष्ण वासुदेव ने, कल्ल—दीक्षा से अगले दिन, पाउप्पभायाए—प्रभात हो जाने पर, जाव—यावत्, जलते—सूर्योदय हो जाने पर, ण्हाते—स्नान किया, जाव—यावत्, विभूसिए—शरीर को विभूषित किया, हत्थि-खध-वर-गते—हाथी के उत्तम कन्धे पर बैठे, सकोरेण्ट मल्ल

दामेण—कोरण्ट नाम के फूलो की माला से युक्त, **छत्तेण धरिज्ज०**—छत्र को धारण किया। **सेयवरचामराहिं**—श्रेष्ठ श्वेत चवर, **उद्धुवमाणीहिं**—झुलाए जाने लगे, **महया**—महान, **भड-चड-गर-पहकर-वद-परिक्खित्ते**—योद्धाओ के विस्तृत समूहो के वृन्द या समुदाय से आवृत्त, **बारवर्ति नर्गारं**—द्वारिका नगरी के, **मज्झमज्झेण**—मध्य मे से हो कर, **जेणेव**—जहा पर, **अरहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठ०**—अरिष्टनेमि भगवान थे, **तेणेव**—वहाँ पर, **पहारेत्थ गमणाए**—जाने का निश्चय किया, **तते**—तदनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के, **मज्झमज्झेण**—मध्य मे से **एक्क**—एक, **पुरिस**—पुरुष को, **पासति**—देखते हैं। वह पुरुष, **जुन्न**—जीर्ण—वृद्ध था, **जरा-जज्जरियदेह**—बुढापे ने उसके शरीर को जर्जरित—पीडित कर रखा था। **जाव**—यावत्, **किलत**—जो थका होने से कुम्हलाया हुआ था, ऐसे वृद्ध को, **महतिमहालयो** बहुत बडी, **इट्टगरासीओ**—ईंटो की राशि (ढेर) से, **एगमेग**—एक २, **इट्टग**—ईंट को, **गहाय**—लेकर, **बहिया-रत्था-पहातो**—गली के बाह्य प्रदेश से, **अन्तोगिह**—घर के भीतर, **अणुप्पविसमाण**—अनुप्रवेश करते हुए, **पासति**—देखते हैं, **तते ण**—तदनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष की, **अणुकपणट्ठाए**—अनुकम्पा—दया के लिए, **हत्थि-खध-वर-गते-चेव**—हाथी के श्रेष्ठ कधे पर बैठे २ ही, **एग**—एक, **इट्टग**—ईट को, **गेण्हति २**—ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके, **बहियारत्थापहाओ**—गली के बाह्य प्रदेश से, **अतोगिह**—घर के भीतर, **अणुप्पवेसेति**—रख देते हैं, **तते ण**—तदनन्तर, **कण्हेण वासुदेवेण**—कृष्णवासुदेव द्वारा, **एगाते इट्टगाते-गहिताते**—एक ईंट के ग्रहण करने पर, **अणेगेहिं पुरिससतेहिं**—सैकडो पुरुषो ने, **से महालए**—वह महान, **इट्टगस्स**—ईंटो की, **रासी**—राशी—ढेर, **बहियारत्थापहातो**—गली के बाह्य प्रदेश से, **अतोघरसि**—घर के अन्दर, **अणुप्पवेसिए**—रख दी।

मूलार्थ—दीक्षा के अगले दिन प्रात काल प्रभात के समय सूर्य के उदित होने पर कृष्ण वासुदेव ने स्नान किया, वस्त्राभूपणादि से अपने शरीर को अलकृत किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर कृष्ण महाराज हाथी के श्रेष्ठ कधे पर बैठ गए। कोरण्ट नामक फूलो की मालाओ से युक्त छत्र को धारण करने पर श्वेत चवर झुलाए जाने लगे, योद्धाओ के विस्तृत समूहो के वृन्द ने उनको घेर लिया। इस तरह पूरी सज-धज के साथ भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होने के लिए कृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी के मध्य मे से जाने का निश्चय किया। अपने निश्चयानुसार कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के बीचो-बीच होकर जारहे थे तो उन्होने एक वृद्ध पुरुप को देखा। वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर जर्जरित—पीडित हो रहा था, परिश्रम करने से उसका मुख भी मुरझाया हुआ था, वह वृद्ध गली के बाह्य प्रदेश मे पडे बहुत बडे ईटो के ढेर मे से एक-एक ईट उठाकर घर के अन्दर रख रहा था।

कृष्ण वासुदेव ने जब उस वृद्ध को देखा तो उनको उस पर बडी दया आई। दयार्द्र हुए कृष्ण महाराज ने हाथी पर बैठे-बैठे ही गली के बाह्य प्रदेश से एक ईट उठाकर घर के अन्दर रख दी। कृष्ण वासुदेव के ऐसा करने पर अन्य सैकडो पुरुषो ने भी वहा से ईटे उठा कर ईटो की राशि को गली के बाह्य प्रदेश से घर के अन्दर रख दिया।

व्याख्या—राजकुमार गजसुकुमाल का वडे समारोह के साथ दीक्षा सस्कार सम्पन्न हो जाने के अनन्तर महाराज वासुदेव माता देवकी कृष्ण वासुदेव आदि सभी द्वारिका निवासी लोग अपने अपने स्थान को वापिस लौट गए थे, यह वर्णन पीछे किया जा चुका है। इससे आगे का पारिवारिक वृत्तान्त सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित करते रहे है। कृष्ण महाराज अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को भगवान अरिष्टनेमि के चरणो में दीक्षित करके चले तो गए पर उनका हृदय वही पडा था, भाई की ममता मे महलो के स्वर्गतुल्य ऐश्वर्य मे मन को लगने नही दिया। प्रयत्न करने पर भी मन पर नियन्त्रण नही किया जा सका। अन्त मे वडी मुश्किल से रात्रि व्यतीत की गई। प्रात काल होते ही उन्होने भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर मुनि गजसुकुमाल के दर्शन करने का निश्चय किया।

कृष्ण महाराज ने स्नान किया शाही वस्त्राभूषण शरीर पर सजाये एव आवश्यक कामो से निवृत्त हो कर उन्होने अपने सेवको को दर्शनयात्रा का कार्यक्रम चालु करने का आदेश दिया। आदेशानुसार कर्मचारियो ने भी दर्शनयात्रा का कार्यक्रम आरभ कर दिया। वडा सुन्दर दृष्य था उस समय का। कृष्ण महाराज हाथी पर विराजमान थे, सिर पर छत्र था, चवर झुलाए जा रहे थे बहुत वडी सख्या मे अगरक्षक साथ थे। इस तरह कृष्ण महाराज द्वारिका नगरी के मध्यमार्ग से हो कर चलने लगे। अभी कुछ ही दूर गए थे कि उन की आंखो ने एक बूढे को देखा। बूढे की दशा वडी दयनीय थी। शरीर पर बुढापे के आक्रमण अपना पूर्ण प्रभाव दिखला रहे थे। शरीर लडखडा रहा था, मुख आभा समाप्त हो चुकी थी। शक्ति न होने पर भी विवशता के कारण वह ईटो के बहुत बडे ढेर मे से एक २ ईट उठा कर घर मे अन्दर रख रहा था। वृद्ध की इस शोचनीय अवस्था को देखकर कृष्ण महाराज का दयालु हृदय तडप उठा। वह सोचने लगे यह बूढा एक २ ईट उठा कर ईटो के इस विशाल ढेर को कैसे समाप्त करेगा? फिर इसकी शारीरिक दशा वडी दयनीय है, इस जरा-जीर्ण शरीर से यह काम कैसे होगा? कही ढेर समाप्त होने से पहले यही न समाप्त हो जाये। कृष्ण महाराज की अन्तर्चेतना गभीर हो गई। अन्त मे निश्चय किया इस बूढे की सहायता करनी चाहिए। इसे इस कष्ट से वचाना चाहिए। कृष्ण महाराज यह विचार ही कर रहे थे कि उनका हाथी ईटो के ढेर के पास आ गया। ईटो का ढेर इतना ऊचा था कि हाथी पर बैठे कृष्ण महाराज उसके वरावर आ गए। अपने वरावर ईटें देखकर कृष्ण महाराज ने तत्काल एक ईट उठा ली और हाथी पर बैठे बैठे ही वह ईट उस बूढे के घर मे डाल दी।

महाराज श्रीकृष्ण ने ईंट उठाकर जब बूढे के घर मे रखी, तब श्रीकृष्ण महाराज के साथ चलने वाले सभी लोगो को इनके अभिप्राय को समझने मे देर नही लगी, तत्काल सब समझ गये कि कृष्ण महाराज इस वृद्ध की सहायता करना चाह रहे हैं, फिर क्या था, "**महाजनो येन गत स पथा**" का अनुसरण करते हुए सभी लोगो ने ईंटें उठाली और कुछ ही क्षणो मे ईंटो का ढेर बूढे के घर मे पहुचा दिया गया।

कृष्ण महाराज के दर्शन से तथा इनके ईंटो के ढेर को घर मे पहुचाने के सद्व्यवहार से वृद्ध का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा, उसके नयन खुशी के मारे भर आए। उसका रोम-रोम अपने हृदय-सम्राट् महाराज कृष्ण के चरणो मे कृतज्ञता प्रकट करता हुआ उनके जयकारो से आकाश को गुंजाने लगा।

इस सूत्र मे सूत्रकार ने महाराज कृष्ण द्वारा एक वृद्ध और असहाय पुरुष पर की गई अनुकम्पा के उल्लेख से उनकी परोपकार-परायणता, सुहृदयता, दु खी जनो के प्रति वत्सलता का दिग्दर्शन कराने के साथ-साथ राजामहाराजा और धनाढ्य व्यक्तियो के कर्त्तव्य का भी भान करा दिया है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रकट कर दिया है कि महान पुरुष, देश के नेता, मुखिया लोग जिस कार्य मे प्रवृत्त होते हैं उनका अनुयायी वर्ग भी उनके आचरण मे अपना सौभाग्य समझता है, अत अधिकारी वर्ग को चाहिए कि वह देश-जाति के कल्याण का मार्ग अपनाये ताकि उनका अनुयायी वर्ग भी देश-जाति के कल्याण-मार्ग पर चलकर देश-जाति के भविष्य को समुज्ज्वल बना सके।

"पाउप्पभायाए जाव जलते" "ण्हाते जाव विभूसिए" तथा **"जरा-जज्जरिय-देह जाव किलत"** यहा पठित जाव पद अन्य सूत्रो मे पढे गए अवशिष्ट पदो के ससूचक है।

"सकोरेंटमल्लदामेण"—सकोरेण्ट माल्यदाम्ना-कोरण्ट-माल्यस्य दाम कोरण्टमाल्यदाम तेन सह वर्तते यत्तेन-पीतवर्णपुष्पमाला-सहितेन । यह पद छत्र का विशेषण है । इसका अर्थ है कोरण्टक वृक्ष के फूलो की मालाओ से युक्त। कोरण्ट वृक्ष के फूल पीतवर्ण के होते हैं। बात यह है कि महाराज कृष्ण के सर पर जो छत्र था उस मे पीले फूलो की मालाये लगी हुई थी।

"भड-चडगर-पहकर-परिक्खित्ते" भटाना ये **चटकरप्रहकरा—विस्तृतसमूहास्तेषा य वृन्द समुदाय तेन परिक्षिप्त सवेष्टित** । यहा प्रयुक्त भट शब्द का अर्थ योद्धा, चटकर का विस्तृत, प्रहकर का समूह, वृन्द का समुदाय और परिक्षिप्त शब्द का अर्थ है घिरा हुआ। जो व्यक्ति योद्धाओ के विस्तृत समूहो के समुदाय से घिरा हुआ हो उसे 'भट-चटकर-प्रहकर-वृन्द परिक्षिप्त' कहते हैं। बात यह है कि महाराज कृष्ण जब भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होने के लिये जा रहे थे उस समय उनके साथ बहुत बडी सख्या में योद्धा लोग थे।

"पहारेत्थ गमणाए"—**गमनार्थं प्राधारयत् य सप्रधारितवान् अरिष्टनेमिसन्निधौ गमनाय निश्चयमकरोत्**। यहा पढा गया **गमन** शब्द जाने तथा **पहारेत्थ** शब्द निश्चय करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है दोनो का सम्मिलित अर्थ है "जाने के लिये निश्चय किया"।

"जरा जज्जरिय-देह"—जराजर्जरितदेहम्, जरसा जर्जरीकृत देह यस्य तम्—अर्थात् वृद्धावस्था ने जिसके शरीर को जर्जरित कर दिया है उसे 'जरा-जर्जजरित देह' कहते हैं।

सूत्रकार को "महतिमहालयाओ"—महातिमहत —अर्थात् बहुत विशाल। ढेर आदि की जहा अत्यधिकता, महानता, विशालता अभिव्यक्त करनी इष्ट होती है, वहाँ यह विशालता "महति-महालयाओ" इस शब्द से प्रकट की जाती है।

'बहिया-रत्थ-पहातो—बहीरथ्यापथात्—बाह्यरथ्यापथात्।" रथ्या, गली का नाम है पथ शब्द मार्ग, प्रदेश तथा बहिर् शब्द बाह्य का बोधक है। इस तरह गली के बाह्य प्रदेश स्थान को 'बही-रथ्या-पथ' कहते है।

"अतोगिह"—अन्तर्गृह, गृहमध्ये—अर्थात् घरके मध्यमे। इस अर्थका बोधक अन्तर्गृहशब्द है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि महाराज कृष्ण ने एक ईंट उठाकर एक वृद्ध पुरुष की सहायता की। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते है।

मूल—तते ण कण्हे वासुदेवे बारवतीए नयरीए मज्झ मज्झेणणिगच्छति णिग-च्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागते, उवागित्ता जाव वदति णमसति वदित्ता णमसित्ता गयसुकुमाल अणगार अपासमाणे अरह अरिट्ठनेमि वदति णमसति, व दित्ता णमसित्ता एव वयासी—

कहि ण भते! से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे, जा ण अह वंदामि, नमसामि तते णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

"साहिए ण कण्हा! गयसुकुमालेण अणगारेण साहिते अप्पणो अट्ठे" तते ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासो—कहण्ण भते! गयकुसुमालेण अणगारेण साहिते अप्पणो अट्ठे? तते ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

एव खलु कण्हा! गयसुकुमालेण अणगारेण मम कल्ल पुव्वावरण्हकालसमयसि वदइ नमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—

इच्छामि ण जाव उवसपज्जित्ताण विहरइ। तए ण त गयसुकुमाल अणगार एगे पुरिसे पासति पासित्ता आसुरत्ते ५ जाव सिद्धे, त एव खलु कण्हा! गयसुकुमालेण अणगारेण साहिते अप्पणो अट्ठे।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेवो द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव अर्हन्नरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागत, उपागत्य यावद्, वदते नमस्यति, वदित्वा नमस्कृत्य गजसुकुमालमन-गारमपश्यन् (न दृष्ट्वा) अर्हन्तमरिष्टनेमि वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—क्व भदन्त! स मम सहोदर कनीयान् भ्राता गजसुकुमालोऽनगार यमह वन्दे, नमस्यामि? ततोऽर्हन् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—

साधित कृष्ण ! गजसुकुमालेन अनगारेण आत्मनोऽर्थ । तत स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तम-रिष्टनेमिमेवमवदत्—कथ भदन्त ! गजसुकुमालेन अनगारेण साधित आत्मनोऽर्थ ? ततोऽर्हन् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—एव खलु कृष्ण ! गजसुकुमालोऽनगार, मा कल्य पूर्वापराण्ह-कालसमये वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—इच्छामि यावद् उपसपद्य विहरति। ततस्त गजसुकुमालमनगारमेक पुरुष पश्यति, दृष्ट्वा आशुरुप्तो यावत् सिद्ध । तदेव खलु कृष्ण ! गजसुकुमालेनानगारेण साधित आत्मनोऽर्थ ।

पदार्थ—**तते**—उस के अनन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **से**—वह, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के, **मज्झमज्झेण**—बीचो बीच होते हुए, **णिगच्छति**—जाते हैं, **णिगच्छित्ता**—जाकर, **जेणेव**—जहा पर, **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्ट-नेमि थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागते**—आते हैं, आकर, **जाव**—यावत्, तीन बार परिक्रमा दे कर, **वदति नमसति**—वन्दना करते है नमस्कार करते है, **वदित्ता, णमसित्ता**—वदना नमस्कार करके, **गयसुकुमाल अणगार**—मुनि गजसुकुमाल को, **अपासमाणे**—न देखते हुए, **अरह अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमी को, **वदति नमसति**—वदना नमस्कार करते हैं, **वदित्ता, णमसित्ता**—वदना एव नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले,

भते ! भगवन्!, **कहि**—कहा है, **से**—वह, **मम**—मेरे, **सहोदरे**—सहोदर-माँ जाए, **भाया**—भाई, **कणीयसे**—छोटे, **गयसुकमाले अणगारे**—मुनि गजसुकुमाल, **अह**—मैं, **जाण**—जिन को, **वदामि णमसामि**—वन्दना-नमस्कार करू, **ततेण**—इसके बाद, **अरहाअरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्ट-नेमि **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासि**—इस प्रकार बोले—

कण्हा !—हे कृष्ण !, **गयसुकुमालेण अणगारेण**—मुनि गजसुकुमार ने, **अप्पणो**—अपना, **अट्ठे**—मोक्ष प्राप्ति रूप अर्थ—प्रयोजन, लक्ष्य, **साहिए**— **साधित**—सिद्ध कर लिया है, **ततेण**—तदनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **अरह अरिट्ठनेमि**—अरिन्त अरिष्टनेमी को, **एव वयासि**—इस प्रकार कहने लगे—

भते !—हे भगवन् !, **गयसुकुमालेण अणगारेण**—मुनि गजसुकुमाल ने, **अप्पणो अट्ठो**—अपना प्रयोजन, **कहण्ण**—किस प्रकार, **साहिते**— सिद्ध कर लिया ? **ततेण**—उसके पश्चात्, **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**— इस प्रकार बोले—

खलु—निश्चयार्थ बोधक है, यह अव्यय पद है, **एव**—इस प्रकार, **कण्हा**—हे कृष्ण, **गयसुकुमालेण अणगारेण**—मुनि गजसुकुमाल, **कल्ल**—दीक्षावाले दिन, गत दिन, **पुव्वावरण्हकालसमयसि**—सन्ध्याकाल के समय, **वदइ नमसति** वन्दना नमस्कार करते है, **वदित्ता, णमसित्ता**—वदना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

इच्छामि—हे भगवन् ! मैं चाहता हू एक रात्रि की महाप्रतिमा की—आराधना करना, **जाव**—यावत् महाकाल श्मशान मे एक रात्रिकी, **उवसपज्जित्ताण विहरति**—धारण करके वह विचरने लगा, ध्यानस्थ होगया, **त एण**—उसके अनन्तर, **त गयसुकुमाल अणगार**—उस गजसुकुमाल मुनि को, **एगे पुरिसे पासति**—एक पुरुष ने देखा, **पासित्ता**—देखकर वह, **आसुरुत्ते**—वह क्रोध से तमतमा उठा,

जाव—यावत्—उसने उसके सिर पर मिट्टी की पाल बाधी, उसमे जलते हुए अगारे रखे, ऐसा करने पर भी वह ध्यान से विचलित न हुए अन्त मे उसने, **सिद्धे**—सिद्ध गति को प्राप्त किया, **त**—सो, **खलु**—निश्चयार्थ मे, **एव**—इस प्रकार, **कण्हा**!—हे कृष्ण!, **गयसुकुमालेण अणगारेण**—गजसुकुमाल अनगार ने, **अप्पणो अट्ठो**—अपना का प्रयोजन, **साहिते**—सिद्ध कर लिया है।

मूलार्थ—वृद्ध पुरुष की सहायता करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मे से होते हुए जहा भगवन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे वहा पर आ गए। महाराज कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरभ करके तीन बार भगवान को प्रदक्षिणा-परिक्रमा दी, वदन नमस्कार किया। इसके पश्चात् मुनि गजसुकुमार को वहा न देखकर वे अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वदन नमस्कार करने के बाद निवेदन करने लगे—

भगवन्! मेरे मा जाए छोटे भाई मुनि गजसुकुमार कहा है? मैं उनको वन्दना नमस्कार करना चाहता हू।

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—कृष्ण! मुनि गजसुकुमार ने मोक्ष प्राप्त करने का अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है। गजसुकुमार मुक्ति मे चला गया है।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे फिर निवेदन करने लगे—भगवन्! मुनि गजसुकुमार ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया है? महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण! दीक्षा के अनन्तर कल ही सायकाल के समय मुनि गजसुकुमार ने वदना करने के अनन्तर मुझ से कहा—'हे भगवन्! यदि आप आज्ञा दे तो मैं साधु की १२वी पडिमा—एक रात्रि की महाप्रतिमा (महान प्रतिज्ञा) की आराधना करने के लिये महाकाल श्मशान मे जा कर ध्यान लगा लूं? मुनि जी की इस विनती को मैंने स्वीकार कर लिया, तब मुनि जी ने महाकाल श्मशान मे जाकर महाप्रतिमा की आराधना आरम्भ कर दी। महाकाल श्मशान मे ध्यानारूढ हो कर खडे हुए मुनि जी को वहा से जाते हुए एक पुरुष ने जब देखा, तब देखते ही वह क्रोध से तमतमा उठा, दात पीसने लगा, अन्त मे उसने गजसुकुमार के सिर पर आर्द्रमिट्टी की पाल बाध कर चिता से जलते हुए अगारे ला कर उसमे डाल दिए। स्वयं वहा से भाग गया, परन्तु

गजसुकुमाल मुनि ने उस अग्निजन्य भयकर दाह की असह्य वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करते हुए उस पुरुप पर अणुमात्र भी द्वेप नही किया। प्रत्युत शुभ भावना द्वारा आत्मगुण घातक कर्मो का नाश कर के केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। केवल ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर ही अवशिष्ट कर्मो का समूल घात करके सिद्ध पद को वह प्राप्त हो गया है। हे कृष्ण ! इस प्रकार मुनि गजसुकुमार ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे कृष्ण वासुदेव का भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर वन्दन नमस्कार करना अपने छोटे सहोदर भाई मुनि गजसुकुमार को मुनिमण्डल मे बैठे न देखकर उनके सम्बन्ध मे "वह कहा है ?" यह पूछना "मुनि गजसुकुमार ने अपना कार्य-प्रयोजन सिद्ध कर लिया है" ऐसा भगवान का उत्तर देने पर महाराज कृष्ण का फिर "एक रात मे ही प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया?" यह पूछना, भगवान द्वारा इस प्रश्न का भी समाधान करते हुए समस्त घटना का वर्णन करना, इन बातो का उल्लेख किया गया है। इस कथानक मे कृष्ण वासुदेव के द्वारा गजसुकुमार मुनि विपयक किये प्रयोजन-सिद्धि के प्रश्न का भगवान अरिष्टनेमि ने जो समाधान किया है वह कितना मार्मिक है ? उसमे साधुता के दिव्य आदर्श की कितनी झलक है ? इसके समझने या समझाने के लिये किसी प्रकार की व्याख्या की आवश्यकता नही है। सोमिल ब्राह्मण के इतने बडे अपकार को भी उपकार समझ कर उसका सहर्प स्वागत करके उस अग्निदाह द्वारा अपने अन्तरगमल को जलाकर सिद्ध गति को प्राप्त होनेवाले मुनि गजसुकुमार के विपय मे कृष्ण वासुदेव को उत्तर देते हुए करुणा-मूर्ति भगवान अरिष्टनेमि ने जिन शब्दो का प्रयोग किया है वे सचमुच ही शोक और सन्ताप से सतप्त हृदयो को शान्ति के अगाध समुद्र मे स्थापित कर सब प्रकार से शान्त कर देने वाले है। कृष्ण वासुदेव के पूछने पर भगवान यह नही कहते कि गजसुकुमार मुनि को एक ब्राह्मण ने आग लगाकर मार डाला, किन्तु वीतराग भगवान कहते हैं कि हे कृष्ण ! गजसुकुमार मुनि ने अपने अभीष्ट को सिद्ध कर लिया। जिस कार्य या जिस प्रयोजन के लिये उसने सासारिक वैभव को छोडकर दीक्षा को अगीकार किया था उसको उसने प्राप्त कर लिया, कर्म बन्धन को तोड कर वह परम-कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त हो गया है। अहा ! कितनी शान्ति है ? कितनी निर्द्वन्द्वता है ? अपकारी के अपकार की ओर ध्यान न देकर उसके अपकार मे भी उपकार के दर्शन करना समभाव की पराकाष्ठा है। वास्तव मे वीतरागता का यही सजीव चित्र है।

शास्त्रकारो ने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग् चारित्र इस रत्नत्रयी को आत्मा का धन या अर्थ या प्रयोजन माना है, इन्हे सम्यग् रूप से प्राप्त कर लेना ही आत्मा का वास्तविक प्रयोजन या कार्य की सिद्धि कहा गया है। जब यह जीव कर्म-मल से सर्वथा रहित होकर स्व-स्वरूप की यथार्थानुभूति करता है, कर्म-जन्य जन्म-मरण-परम्परा को विच्छेद करके परम आनन्द स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है। आत्मा से परमात्मा बन कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और निरजन आदि सज्ञाओ से अभिहित किया जाता है। तब उसके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं, उस समय वह कृत-

कृत्य बन जाता है । प्रत्येक साधक जब साधना के क्षेत्र मे उतरता है तब उसका ध्येय भी इसी प्रयोजन को सिद्ध करना होता है । यह सत्य है कि इस प्रयोजन को सिद्ध करना बच्चो का खेल नही है । इसके लिये भयकरातिभयकर कष्टो को झेलना होता है । जहर भरे प्याले पीने पडते है, सरसो की भाति कोल्हू मे अपने को पिलवाना पडता है, शरीर की खाल उतरवानी पडती है, अधिक क्या सिर पर अगीठी रखवानी होती है। यह सब कुछ होने पर भी मन को शात रखना पडता है, राग-द्वेष के झञ्झा-वातो से अपने को सर्वथा सुरक्षित रखना होता है । तब कही, साधक की साधना सफल होती है, तब उसे मुक्तपुरी के द्वार मिलते है तब वह जन्म-मरण के दु खो से छुटकारा प्राप्त करके सदा के लिये आत्मिक शाश्वत सुख मे निमग्न होता है। महामुनि गजसुकुमार का क्षमा-प्रधान सयमी जीवन इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है ।

"**उवागते उवागिती जाव वदति**" तथा "**इच्छामि ण जाव उवसपज्जित्ताण**" यहा पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर दिए अन्य अवशिष्ट पदो का ससूचक है ।

"**आसुरुत्ते ५** " यहा दिए गए ५ के अक से जिन अवशिष्ट पदो का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है, उनका वर्णन पीछे पृष्ठो पर दिया गया है तथा "**जाव सिद्धे**" यहा पठित **जाव** पद से सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमार के मस्तक पर माटी की पाल बनाकर तथा चिता से अगारे निकाल कर उस मे डाल दिए, इससे गजसुकुमार मुनि को असह्य वेदना हुई, तथापि मनमे किसी प्रकार का द्वेष न लाकर उस असीम वेदना को उन्होने शान्तिपूर्वक सहकर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त किया। इन भावो का परिचायक है । इन भावो का ससूचक आगम पाठ पीछे आ चुका है ।

"**साहिते अप्पणो अट्ठे**" **साधित आत्मनोऽर्थ , गजसुकुमाल आत्म-सिद्धिरूप स्वकीयमभि-लषित प्राप्तवानिति** । यहा पर प्रयुक्त **अर्थ** शब्द का अर्थ है—आत्म कल्याण या मोक्षप्राप्ति रूप प्रयोजन-लक्ष्य । साधित शब्द—सिद्ध कर लिया, पूर्ण कर लिया, इस अर्थ का बोधक है ।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि मुनि गजसुकुकार ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया ? इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है । इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हैं—

मूल—**तते ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासी—के सण भते ! से पुरिसे अपत्थिय—पत्थिए जाव परिवज्जिते जे ण मम सहोदरे कणीयस भायर गयसुकुमाल अणगारं अकाले चेव जीवियातो ववरोविते । तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेव एव वयासी—मा ण कण्हा! तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि, एव खलु कण्हा ! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ।**

छाया—तत स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवदत्—को भदन्त ! स पुरुष अप्रार्थित-प्रार्थित यावत् परिवर्जित , यो मम सहोदर कनीयस भ्रातर गजसुकुमालमनगारमकाले चैव जीवितात् व्यपरोपितवान् ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—मा कृष्ण ! त्व तस्य पुरुषस्य प्रद्वेषमाप द्यस्व, एव खलु कृष्ण ! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य अनगारस्य साहाय्य दत्तम् ।

पदार्थ—**तते**—तदनन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये, **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **एव वयासी**—इस प्रकार, कहनेलगे, **भते**—हे भगवन ! **अपत्थिय-पत्थिए**—मौत चाहनेवाला, **जाव**—यावत्, **परिवज्जिए**—लज्जा-विहीन, **से पुरिसे**—वह पुरुष, **के सणं**—कौन है ?, **जेण**—जिसने, **मम सहोदर कणीयस भायर**—मेरे सहोदर छोटे भाई को, **गयसुकुमाल अणगार**—मुनि गजसुकुमाल को, **अकाले चेव**—अकाल मे ही, **जीवियातो ववरोविते**—जीवन से रहित कर दिया, **तए ण**—उसके पश्चात्, **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमी, **कण्ह वासुदेव एव वयासी**—कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहने लगे, **कण्ह !**—हे कृष्ण !, **तुम**—आप, **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष पर, **मा ण पदोसमावज्जाहि**—द्वेष मत रखो, **कण्हा !**—हे कृष्ण !, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **तेण पुरिसेण**—उस पुरुष ने, **गयसुकुमालस्स अनगारस्स**—गजसुकुमाल मुनि को, **साहिज्जे दिन्ने**—सहायता दी है।

मूलार्थ—उसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे निवेदन किया—

भगवन् ! मृत्यु का इच्छुक, तथा लज्जाविहीन वह वह कौन पुरुष है ? जिसने मेरे माँजाए छोटे भाई गजसुकुमाल को अकाल मे ही जीवन से रहित कर दिया। कृष्ण महाराज की रोषपूर्ण यह बात सुन कर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित कर के कहने लगे—

कृष्ण ! तुम्हे उस पुरुष पर द्वेष नही रखना चाहिए, क्योंकि उस पुरुष ने मुनि गजसुकुमार को सहायता दी है।

व्याख्या—इष्ट वियोग और अनिष्ट-सयोग से क्षोभ का प्राप्त होना तथा प्रतिकार की भावना से वैर का प्रतिशोध करना सामान्य मानव-प्रकृति के नैसर्गिक कार्य हैं। तथापि इष्ट का वियोग होने पर जीवन में जो भूचाल आता है वह कुछ विलक्षण ही होता है। उस समय शान्ति और धीरता का ससार को सन्देश देनेवाली बडी से बडी मानव-प्रकृति भी क्षुब्ध हो उठती है यही कारण है कि भगवान अरिष्टनेमि के मुख से निर्वाण-प्राप्त मुनि गजसुकुमार के देहान्त का दुखद समाचार सुनते ही कृष्ण वासुदेव एकदम तिलमिला उठे और वैर प्रतिशोध के लिये तत्काल उद्यत हो गये। तभी तो उन्होने भगवान से सरोष भाषा मे कहा कि भगवन् ! वह लज्जाविहीन, अधमपुरुष कौन है, जिसने मेरे छोटे भाई मुनि गजसुकुमार को समाप्त कर दिया है ? उस दुष्ट ने यह नीच कार्य करके अपनी मृत्यु को आमन्त्रण दिया है। अब वह बच नही सकता। उसे प्राण दण्ड दिया ही जायेगा।

कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमार मुनि के हत्यारे को प्राण दड देने की जो बात कही है उसमे मानव-प्रकृति-सिद्ध-प्रतिकार की भावना के अतिरिक्त नीति का भी कुछ समावेश है। अपराधी को यदि किसी प्रकार का दण्ड न दिया जाये तो इससे लाभ की-अपेक्षा हानि की अधिक सभावना रहती

है। दण्ड न देने से उसको प्रोत्साहन मिलता है, उसकी अनर्थमूलक प्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है उसकी देखा-देखी अन्य उच्छृखल आततायी एव दुश्शील प्राणियो को भ्रष्टाचार मे प्रवृत्त होने का साहस होता है, परिणाम स्वरूप निर्बल और निरपराधी जीवो का सबल एव दुष्ट लोगो से सरक्षण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन सब दृष्टियो को आगे रख ही शान्तिप्रिय और नीतिज्ञ व्यक्तियो ने नीतिशास्त्र का निर्माण और उसके अनुसार शासन की व्यवस्थाका सूत्रपात किया। इस नीतिशास्त्र के निर्माण तथा शासनव्यवस्था के सूत्रपात के पीछे एक ही दृष्टि रही है, वह यह है कि प्रजा मे सुख शान्ति बनी रहे, सबल निर्बल को सताने से रुके, सामाजिक व्यवस्था और लोक-मर्यादा का भली भाति सचालन हो।

यह सत्य है कि नीतिशास्त्र या नीतिधर्म का शासन केवल लौकिक मर्यादा तक ही सीमित है और उसका क्षेत्र केवल सघव्यवस्था या ऐहिक अभ्युदय तक ही मर्यादित है। शुद्धधर्म या मुनिधर्म का सिंहासन इस से कही अधिक ऊ चा है। इसके हाथ मे पारलौकिक अभ्युदय और उसकी मर्यादा को स्थिर रखना होता है, इसलिये उसमे न तो प्रतिकार की भावना के लिये स्थान है और न ही प्रतिशोध के विचारो को अवकाश है। फिर वहा दूसरो को दण्ड देने की तो चर्चा ही व्यर्थ है।

मुनिधर्म का एकमात्र लक्ष्य आत्मा की शुद्धि करना है। आत्मा के साथ लगे हुए कर्ममल को जलाकर उसे शुद्ध, निर्मल निष्कर्म बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये जितने भी साधन अपेक्षित है उन सब का प्रयोग केवल अपने लिये ही किया जाता है किसी दूसरे के लिये नही। यदि प्रायश्चित रूप कोई दण्ड है तो वह अपनी आत्मा के लिए सयम है, यदि आत्मलिप्त कर्मों का कोई प्रतिशोध है तो वह आत्मगत-दोषो का ही है, किसी अन्य का नही।

मुनिधर्म की मर्यादा बडी विलक्षण है। उसके सभी विधि-विधान स्व-पर-कल्याण के ही निमित्त हैं। दूसरे को कष्ट देना वहा सर्वथा निषिद्ध है। मुनिधर्म का प्राणी मात्र के लिये सब से बडा आदेश, उपदेश एव सदेश मैत्री भावना की आराधना करना है। मुनिधर्म के शासन मे छोटे-बडे सभी जीवो के लिए समान स्थान है उसमे शत्रु या मित्र, ऊच या नीच, लघु या गुरु की विषमता के लिये अशमात्र भी अवकाश नही है। राग-द्वेष की पाषाणमयी दुर्गम भूमि को पार करके वीतरागता के सर्वोच्च समतलस्थान पर विराजमान आत्मा ही वास्तव मे मुनि अथवा मुनिधर्म का सच्चा अनुगामी, हो सकता है। इसलिये सच्चे मुनि की साम्यमयी दृष्टि मे उसके अगोपर * चन्दनादि का लेप करनेवाला तथा शस्त्र से उसके अगादि को काटने वाला, ये दोनो समान कोटि मे ही है। सच्चे मुनि कभी चन्दन-लेप करनेवाले से राग और

*—निम्ममो निरहकारो, निस्सगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु य थावरेसु य ॥९०॥
लाभालाभे सुहेदुक्खे, जीविए मरणे तहा,।
समो निंदा पससासु, तहा माणावमाणयो ॥९१॥
अणिस्सिओ इह लोए परलोए अणिस्सिओ।
वासी चदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९२॥
उत्तराध्ययन सूत्र अ० १९

शस्त्र से काटनेवाले पर द्वेष नही करते। वे तो अपकार करनेवाले को भी अपना उपकारी समझते हैं। लौकिक दृष्टि रखनेवाले जीवो को जिसमे अपकार या हानि दिखाई देती है, उनकी दिव्य दृष्टि मे वह उपकार की जीती जागती मूर्ति होती है, इसीलिये भगवान अरिष्टनेमी ने वासुदेव कृष्ण से कहा था कि हे कृष्ण! मुनि गजसुकुमाल के हत्यारे पर तू द्वेष मत कर, वह उसका घातक नही, किन्तु उपकारी है, जैसे कुबडे को मारी गई लात उसके लिये लाभदायक बन जाती है, इसी तरह उस पुरुष ने जो कार्य किया है वह गजसुकुमाल मुनि के निर्वाण-पद का कारण बन गया है, अत उसने उस मुनि के आत्मविकास मे बडी सहायता की है। यह समझ कर तुम्हे उस पर द्वेष नही करना चाहिए।

भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को गजसुकुमार के हत्यारे पर जो द्वेष न करने की बात कही है उससे मुनिधर्म की विशिष्टता का सहज मे ही बोध हो जाता है। मुनि-जीवन चन्दन के समान बतलाया गया है। चन्दन को जिस शस्त्र से काटा जाता है, चन्दन उस शस्त्र के मुख को भी सुगन्धित कर देता है, अपकारी पर भी उपकार करता है। इसी तरह मुनि भी अपने विरोधी का अनिष्ट न सोच कर इष्ट ही सोचता है, उसने जो दुख दिया है उसे भी आत्मशुद्धि मे सहायक मानता है, यही उस की वीतरागतापूर्ण विलक्षणता है।

एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि नीति-धर्म और विशुद्ध-धर्म दोनो सापेक्ष हैं, दोनो ही अपना अपना विशिष्ट स्थान रखते है। लौकिक मर्यादा को सुव्यवस्थित रखना नीतिधर्म का काम है और पारलौकिक अभ्युदय-निश्रेयस का सम्पादन करना विशुद्ध धर्म या मुनिधर्म का कार्य है। जो कर्मोत्तम पुरुष होते है उन की दृष्टि नीतिप्रधान होती है और जो धर्मोत्तम पुरुष होते हैं उनकी दृष्टि मे धर्म की प्रधानता रहती है। इसी कारण कर्मोत्तम पुरुष होने से वासुदेव कृष्ण तो मुनि गजसुकुमार के घातक को नीतिधर्म के अनुसार प्राणदण्ड देना उचित समझते हैं। इसके विपरीत मुनि-धर्म के सजीव आदर्श भगवान अरिष्टनेमि धर्मोत्तम पुरुष होने से उसको (मुनि गजसुकुमार के हत्यारे को) दण्ड के अयोग्य बतलाते हैं। जैनदर्शन अनेकान्तवादप्रधान दर्शन है। वस्तु मे स्थित सभी धर्मों पर दृष्टिपात करके सत्य का अन्वेषण करना, अनेकान्तवाद का प्रधान उद्देश्य है। इस व्यापक अनेकान्त दृष्टि के अनुसार पर्यालोचन करने पर उक्त दोनो ही विचारो मे अपेक्षाकृत सत्यता के दर्शन होते हैं। इसलिये दोनो ही विचार समुचित एव समादरणीय हैं।

"अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिते" यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदो का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"अकाले चेव जीवितातो ववरोविते" इन पदो का अर्थ है—अकाल मे ही जीवन से रहित कर दिया। अकाल शब्द असमय की मृत्यु के लिये प्रयुक्त होता है। जो मृत्यु समय पर हो व्यावहारिक दृष्टि मे अपना समय पूरा कर लेने पर हो, उसे अकाल मृत्यु नही कहते, वह कालमृत्यु है। अकाल मृत्यु क्यो होती है? इसका क्या कारण है? यह भी समझ लेना उचित रहेगा।

जैन-शास्त्रो ने आयु के दो प्रकार बतलाये हैं—

एक **अपवर्तनीय** और दूसरा **अनपवर्तनीय**। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले

ही शीघ्र भोगी जासके वह **अपवर्तनीय** और जो आयु बधकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके वह **अनपवर्तनीय है**। इस आयुद्वय का वन्ध स्वाभाविक नही है यह परिणामो के तारतम्य पर आधारित है। आयु बाधते समय अगर परिणाम मद हो तो आयु का बध शिथिल पडेगा, अगर परिणाम तीव्र हो तो आयु का बध तीव्र पडेगा। शिथिल बधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है—एक साथ ही भोग ली जाती है और तीव्र बधवाली आयु निमित्त मिलने पर भी नही घटती और न एक साथ भोगी जा सकती है। श्री स्थानागसूत्र मे आयुभेद के सात निमित्त बताए गये हैं जो इस प्रकार है—

१ **अज्झवसाण**-अध्यवसान—स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त हो जाती है।

२. **निमित्त**—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।

३. **आहार**—अधिक भोजन कर लेने पर आयु घट जाती है।

४. **वेदना**—किसी भी अग मे असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही आत्मा से झड जाते हैं।

५. **पराघात**—गड्ढे मे गिरना, छत्त का ऊपर गिर जाना आदि बाह्य आघात पाकर आयु का अन्त हो जाता है।

६ **स्पर्श**—सर्प आदि जहरीले जीवो के काट लेने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर मे विष फैल जाए, आयु असमय मे ही खतम हो जाती है।

७ **आण-पाण**—सास की गति वन्द होजाने पर आयु-भेद हो जाता है।

निमित्तो को पाकर जो आयु नियतकाल समाप्त होने मे पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र मे भोग ली जाती है, उस आयु का नाम **अपवर्तनीय** आयु है इसे सोपक्रम आयु भी कहते हैं। उपक्रमसहित सोपक्रम है, तीव्र शस्त्र, तीव्र विष, तीव्र अग्नि आदि जिन निमित्तो मे आयु घट जाती है उनका प्राप्त होना उपक्रम है। सोपक्रम आयु—अपवर्तन आयु ही अकाल मृत्यु है। इसमे आयु को शीघ्र भोग लिया जाता है। अत अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम इन भेदो से दो प्रकार की होती है। दूसरे शब्दो मे इस अनपवर्तनीय आयु को अकाल मृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तो का सनिधान होता भी है और नही भी होता। उक्त निमित्तो का सनिधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल मे पहले पूर्ण नही होती। सक्षेप मे कहे तो अपवर्तनीय आयुवाले प्राणियो को अध्यवसान आदि कोई न कोई निमित्त मिल ही जाता है, जिससे वे अकाल मे ही मर जाते है और अनपवर्तनीय आयुवाले को कैसा भी प्रबल निमित्त क्यो न मिले पर वे अकाल मे नही मरते। तीर्थंकर, चरमशरीरी, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि उत्तम पुरुष, असख्य वर्षजीवी मनुष्य और तिर्यञ्च अपवर्तनीय आयुवाले हो जाते है।

शास्त्र कहता है कि औपपातिक (नारक तथा देव) चरमशरीरी (इसी भव मे मुक्ति मे जाने वाला), उत्तमपुरुष (वासुदेव बलदेव) असख्य वर्षजीवी ये सब अनपवर्तनीय आयुवाले होते हैं। इस दृष्टि से गजसुकुमार चरमशरीरी होने से अनपवर्तनीय आयुवाले महापुरुष हैं, अत इनकी अकालमृत्यु

नही हो सकती, परन्तु श्री वासुदेव कृष्ण इनके जीवनान्त को **"गयसुकुमाल अणगार अकाले चेव जीवियातो ववरोविते"** इन पदो के द्वारा अकालमृत्यु कह रहे हैं ऐसा क्यो ? उत्तर मे निवेदन है कि सिद्धान्तानुसार मुनि गजसुकुमार की मृत्यु अनपवर्तनीय मृत्यु है, अकाल मृत्यु नही है। श्रीवासुदेव कृष्ण ने जो इनकी मृत्यु को अकाल मृत्यु कहा है वह व्यावहारिक प्रयोग है। सोमिल ब्राह्मण द्वारा इनको मारा गया था, इस दृष्टि से उन्होने इसे **"अकाल मृत्यु"** कह दिया है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण ! मुनि गजसुकुमार के घातक पर द्वेष न करो। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—कहण्ण भंते ! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स ण साहिज्जे दिन्ने ? तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—से नूण कण्हा ! ममतुम पाय वदए हव्व-मागच्छमाणे बारवतीए नयरीए पुरिस पाससि जाव अणुपविसिते, जहा ण कण्हा ! तुम तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिन्ने, एवमेव कण्हा ! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सय-सहस्स-सचिय कम्म उदीरमाणेण बहुकम्मणिज्जरत्थ साहिज्जे दिन्ने।

छाया—**कथ भदन्त ! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य साहाय्य दत्तम् ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—अथ नून कृष्ण ! मम त्व पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छत् द्वारवत्या नगर्य्या पुरुष पश्यसि यावत् अनुप्रवेशित, यथा कृष्ण ! त्वया तस्य पुरुषस्य साहाय्य दत्तमेव, कृष्ण ! तेन पुरुषेण गजसुकुमारस्य अनगारस्य अनेकभव शत सहस्र-सचित कर्म उदीरयता बहुकर्मनिर्जरार्थं साहाय्य दत्तम्।**

पदार्थ—**भन्ते**—हे भगवन् ! **तेण पुरिसेण**—उस पुरुष ने, **गयसुकुमालस्स ण**—मुनि गजसुकुमार को, **कहण्ण**—किस प्रकार, **साहेज्जे**—सहायता। **दिन्ने**—दी ? **अरहा अरिट्ठनेमि**—भगवान अरिहन्त अरिष्टनेमि, **तए ण**—तदनन्तर, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **कण्हा**—हे कृष्ण ! **से**—अब, **नूण**—निश्चय हो, **तुम**—तुम ने, **मम**—मेरे, **पायवदए**—पाद वन्दन के लिये, **हव्वमागच्छमाणे**—शीघ्र आते हुए, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी मे, **पुरिस**—एक पुरुष को, **पाससि**—देखा, **जाव**—यावत्, इटें उस के घर मे, **अणुपविसिते**—रख दी, **जहा ण**—जिस प्रकार, **कण्हा !**—हे कृष्ण ! **तुम**—तुम ने, **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष को **साहिज्जे**—सहायता, **दिन्ने**—दो है, **एवमेव**—ठीक इसी प्रकार, **कण्हा !**—हे कृष्ण ! **तेण पुरिसेण**—उस पुरुष ने, **गयसुकुमालस्स अणगारस्स**—गजसुकुमार अनगार को, **अणेग-भव-सय-सहस्स**—लाखो जन्मो के, **सचिय कम्म**—इकट्ठे किए हुए कर्म की, **उदीरमाणेण**—उदीरणा करने से, उदय मे न आये कर्म को उदय मे लाने से, **बहुकम्मनिज्जरत्थ**—अनेक कर्मों की निर्जरा के लिये, **साहिज्जे दिन्ने**—सहायता दी है।

मूलार्थ—भगवान अरिष्टनेमी की बात सुन कर कृष्ण वासुदेव ने उन के चरणो मे निवेदन किया—'भगवन् ! उस पुरुष ने मुनि गजसुकुमार को कैसे सहायता प्रदान की ? महाराज श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण ! अभी तुम मुझे चरण-वन्दन करने के लिये आ रहे थे तो द्वारिका नगरी के मध्य मे तुम ने एक वृद्ध पुरुष को ईटे उठाते हुए देखा, उस की दयनीय दशा से तुम्हारा हृदय दयार्द्र हो उठा, फलत ईटे उठा कर तुम ने उसके घर मे रख दी, तुम्हारे ईटे उठाने से तुम्हारे सेवक-पुरुषो ने तत्काल सारी ईटे उठा कर उस के घर मे रख दी। हे कृष्ण ! जैसे ईण्ट उठा कर तुमने उस पुरुष की सहायता की, ठीक उसी प्रकार उस पुरुष ने भी मुनि गजसुकुमार के लाखो जन्मो के सचित किए हुए कर्मों की उदीरणा (काल प्राप्त न होने पर भी प्रयत्न विशेष से किया जाता कर्म का अनुभव) द्वारा बहुत से कर्मों की निर्जरा करने मे सहायता दी है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे वासुदेव कृष्ण के प्रश्न के उत्तर मे भगवान अरिष्टनेमी ने जो कुछ कहा है उसका अभिप्राय इतना ही है कि ईटो के बडे भारी ढेर मे से एक-एक ईण्ट को उठा कर अन्दर रखने मे उस पुरुष को बहुत अधिक समय लगता और इतने भारी ढेर को अन्दर ले जा कर रखने मे उसे महान परिश्रम करना पडता, परन्तु हे कृष्ण ! तुम्हारी सहायता से वह ईण्टो का ढेर बहुत ही जल्दी समाप्त हो गया—उस वृद्ध के घर के अन्दर रखा गया। जैसे तुम्हारी सहायता से उस पुरुष का कार्य बहुत ही शीघ्र सिद्ध हो गया, ठीक वैसे ही अनेकानेक जन्मो के उपार्जित किए हुए कर्मों को क्षय करने मे गजसुकुमाल को बहुत समय लगाना पडता, जन्म-जन्मान्तर के सचित किए हुए कर्मों की निर्जरा के लिये उस को अत्यधिक समय तक परिश्रम करना पडता, परन्तु उस पुरुष ने अपने पूर्वोक्त आचरण से (सिर पर अगारे रख कर) मुनि गजसुकुमार के अनेक जन्मोपार्जित सत्तागत कर्मों को उदय मे लाकर समाप्त करवा दिया। भाव यह है कि कर्मों की निर्जरा के द्वारा जिस स्थिति को मुनि गजसुकुमाल ने बहुत समय के अनन्तर प्राप्त करना था, वह स्थिति उस को कल रात्रि को ही प्राप्त हो गई, अथवा यू कहे कि मोक्ष-प्राप्ति या आत्मकल्याण या निर्वाणपद की प्राप्ति रूप जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये गजसुकुमार मुनि को अनेकानेक वर्ष अपेक्षित थे, उस प्रयोजन को उस पुरुष के निमित्त ने कम से कम समय मे सिद्ध कर दिया, इसलिये हे कृष्ण ! वह पुरुष तुम्हारे रोष का पात्र नही होना चाहिये, किन्तु हमारी दृष्टि मे अभिलपित कार्य की सिद्धि मे सहायक होने से वह क्षमा का पात्र है।

भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को गजसुकुमार मुनि के घातक पुरुष पर द्वेष न रखने की जो बात कही है, वह उनकी वीतरागता के अनुरूप ही है। प्रतिद्वन्द्वी तथा जीवन-नाशक मनुष्य

पर भी समता की वर्षा करना, उसका अहित या अनिष्ट न सोच कर उस के हित ही चिन्तना करना, वीतरागता का वास्तविक स्वरूप होता है। भगवान अरिष्टनेमि मे इसी वीतरागता के स्पष्ट रूप से दर्शन हो रहे है।

अध्यात्म साधना का अन्तिम ध्येय वीतरागता की प्राप्ति करना होना है। वीतरागता प्राप्त किये बिना अध्यात्म-साधना सदा अपूर्ण ही रहती है। सम्भव है, इसीलिये जैनाचार्यों ने साधक-वर्ग को वीतरागता की समुच्च भूमि पर विराजमान होने के लिये निम्नोक्त भावना से भावित होने की मधुर प्रेरणा प्रदान की है —

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोद,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभाव विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

हे जिनेन्द्रदेव! मैं चाहता हू कि मेरी यह आत्मा सदैव प्राणिमात्र के प्रति मित्रता का भाव गुणिजनो के प्रति प्रमोद का भाव, दु खीजीवो के प्रति करुणाभाव और धर्म से विपरीत आचरण करने-वाले अधर्मी तथा विरोधी जीवो के प्रति राग द्वेष से रहित उदासीनता का भाव धारण करे।

सोमिल ब्राह्मण तथा मुनि गजसुकुमार के अतीत कालीन कर्म-सम्बन्ध को लेकर वृद्ध परम्परा मे एक कथा पाई जाती है, जिसका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है —

कहते हैं कि एक पुरुष की दो पत्नियाँ थी, एक की गोद मे बच्चा था दूसरी किसी बच्चे की मा नही थी। बच्चेवाली नारी साधारण थी वह विशेष चतुर न थी, परन्तु दूसरी नारी पटु थी और कुटिल भी। उसने मा बनने के लिये अनेको प्रयत्न किए, पर उसकी कामना पूर्ण नही हो सकी। उसने निश्चय किया कि यदि मैं मा बन गई तो ठीक है, अन्यथा अपनी सौत के बच्चे को भी जीवित नही रहने दू गी, उसके बच्चे को मार कर उसे अपने जैसी बना दू गी।

पुत्र-प्राप्ति की कामना पूर्ण न होने पर उसने अपनी सौत के बच्चे को मारने का निश्चय कर लिया। वह बच्चे को मारने का अवसर टटोलने लगी। दुर्भाग्य से बच्चे के सिर मे फु सियाँ निकल आईं, फु सियो से बच्चा बहुत दु खी था। वैद्यो का इलाज करने पर भी जब फु सिया ठीक न हो सकीं तब निराश होकर बच्चे की मा ने अपनी सौत को कहा—'बहिन! बच्चा बहुत दु खी हो रहा है इसका कोई इलाज तो बता?'

इलाज की बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई, बिल्ली के भाग्य से मानो छीका टूट गया। उसने बडी प्रसन्न मुद्रा मे कहा—'बहिन! यह तो साधारण सी बात है। फु सियो का इलाज मैं कर दू गी। बच्चे के सिर पर गरम पूडा बाधना पडेगा। पूडे को बाधने से फु सिया खतम हो जायेंगी। यदि तुझे स्वीकार है तो मैं इलाज कर देती हू। बच्चे की मां की ओर से स्वीकृति मिलते ही उसने सोचा, यह सुनहरी अवसर है इससे लाभ उठाना चाहिए। गर्म पूडा बच्चे के सिर पर बाध दू गी।

पूडे की गर्मी बच्चा सहन न सकने के कारण मर जायगा। बच्चे की मृत्यु का स्वप्न देखकर वह आनन्द-विभोर हो उठी।

बच्चे की मा जब इधर-उधर हुई, तब उसने पूडा पकाया और गरम-गरम पूडा बच्चे के सिर पर बाध दिया। एक तो बच्चे का सिर फुसियो से पहले ही पिलपिला हो रहा था, दूसरे पूडे की भयकर गर्मी थी। पूडा सिर पर रखने की देर थी कि बच्चा तडप उठा, बहुत रोया, बहुत चिल्लाया, पर उस निर्दयी को कोई तरस नही आया। बच्चा उस वेदना को सह न सका। अन्त मे उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। अपनी सौत को अपने जैसी बनाकर मानो उसे सब कुछ मिल गया। उसका रोम-रोम प्रसन्न हो उठा।

कथाकार कहते हैं उस बच्चे को मारकर उसने अत्यधिक हर्ष मनाया था, उसीसे उसने निकाचित कर्मों का बध बाध लिया था। हजारो जन्म-जन्मान्तर की घाटिया पार करती हुई वही नारी एक दिन माता देवकी के घर गजसुकुमाल के रूप मे पैदा हुई और जिस बच्चे के सिर पर गरम-गरम पूडा बाध कर मारा गया था, वह बच्चा द्वारिका नगरी मे सोमिल ब्राह्मण के रूप मे उत्पन्न हुआ। राजकुमार गजसुकुमार मुनि बनकर जब महाकाल श्मशान मे ध्यान लगाकर खडे थे, तब सोमिल ब्राह्मण ने उन्हे देखा, देखते ही वह तमतमा उठा, उस की आखो मे रक्त उतर आया, उसके रोम-रोम मे द्वेषाग्नि भडक उठी, अन्त मे उसने मुनि गजसुकुमार के सिर पर अगीठी बनाई और उस में अगारे डाल कर वह चला गया।

कथाकार कहते है कि निन्यानवे लाख जन्म पहले गजसुकुमार के जीव ने किसी समय सोमिल ब्राह्मण के जीव के सिरपर गरम-गरम पूडा बाधकर उसे मारा था। उसके बदले मे गजसुकुमाल के भव मे उसको सोमिल ब्राह्मण से अगीठी रखवानी पडी। उसके हाथो से मरणान्तिक कष्ट सहना पडा।

"पासंसि जाव अणुपविसिते"—यहा पठित जाव पद पीछे पढे गए—**"जुन्न जरा-जज्जरिय देह" "बहिया रत्थापहाओ अतोगिह"** इस पाठका परिचायक है। इसका अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"अणेग-भव-सय-सहस्स-सचितकम्म—अनेक-भव-शत-सहस्र-सचित कर्म, भवस्य शतसहस्राणि, भव-शतसहस्राणि, अनेकानि च भव शतसहस्राणि अनेकभवशतसहस्राणि तेषु सचित, अनेक भवशतसहस्रजन्मोपार्जित कर्म—अर्थात् अनेक शब्द एक से अधिक, अर्थ का, भव शब्द जन्म का, शत-सहस्र शब्द लाखो का और सचित शब्द उपार्जित किए हुए, अर्थ का बोधक है। कर्म उस पौद्गलिक शक्ति का नाम है जो आत्मा को ससार-अटवी मे भ्रमण करवाने वाली है। सब पदो का सम्मिलित अर्थ है—लाखो जन्मो मे उपार्जित किया हुआ कर्म।

"उदीरेमाणेण"—उदीरणा प्राप्तेन—अप्राप्तेऽपिकाले भोक्तुमुदयावलिकाया प्रवेशयता—अर्थात् उदीरणा करके। जैन-शास्त्रो मे कर्म की चार अवस्थायें बतलाई गई है—बध, उदय, उदीरणा और सत्ता। मिथ्यात्वादि के निमित्त से *ज्ञानावरणीय* आदि के रूप मे परिणत हो कर कर्म-पुद्गलो का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना बध है। उदय-काल—फलदान का समय आने पर

कर्मों का शुभाशुभ फल देना उदय है। अबाधाकाल (बधे हुए कर्मों का जब तक आत्मा को फल नही मिलता) वह काल व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दलिक पीछे से उदय मे आनेवाले हैं उनको प्रयत्न विशेष से खींच कर उदय-प्राप्त दलिको के साथ भोग लेना **उदीरणा** है। बधे हुए कर्मों का अपने स्वरूप को न छोड कर आत्मा के साथ लगे रहना सत्ता है।

प्रस्तुत प्रकरण मे उदीरणा अपेक्षित है। कर्मों के फल का समय न होने पर भी प्रयत्न विशेष से उन कर्मों का उपभोग करना उदीरणा है। उदय और उदीरणा मे इतना ही अन्तर होता है कि उदय मे किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना स्वभाविक क्रम से कर्मो के फल का भोग होता है और उदीरणा मे प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है। प्रस्तुत मे मुनि गजसुकुमाल ने जो कर्मफल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक क्रम से नही किया, किन्तु सोमिल ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष से कर्मो का उपभोग कराया गया है, अत यहा कर्मों की उदीरणा की गई है, ऐसा करना उचित भी है और शास्त्र-सम्मत भी है।

"बहु कम्मणिज्जरत्थ—बहु-कर्म निर्जरार्थम्—बहुकर्म विनाशाय अर्थात् बहुत कर्मों की निर्जरा —विनाश के लिये। इस अर्थ का बोधक **"बहुकर्म-निर्जरार्थं"** यह शब्द है।

प्रस्तुत सूत्र मे वासुदेव कृष्ण के प्रश्न का भगवान अरिष्टनेमि ने समाधान किया है। इस समाधान को सुन कर महाराज श्रीकृष्ण ने क्या कहा? अब सूत्रकार इस बात का वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—**तते ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं एव वयासी—**

सेण भते! पुरिसे मते कह जाणियव्वे? तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

जे ण कण्हा तुम बारवतीए नयरीए अणुपविसमाण पासेत्ता ठितए चेव ठितिभेएण काल करिस्सति, तण्ण तुम जाणेज्जासि एस ण से पुरिसे। तते ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं वन्दति नमसति, वन्दित्ता नमसित्ता जेणेव आभिसेय हत्थिरयण तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी जेणेव सते गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाय, तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्ल जाव जलते अयमेयारूवे अब्भत्थिए ४ समुप्पन्ने—एव खलु कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं पायवन्दए निग्गते त नायमेय अरहता, विन्नायमेय अरहता, सुतमेय अरहता सिट्ठमेय अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स त न नज्जइ ण कण्हे वासुदेवे ममं केणवि कुमारेण मारिस्सइ त्तिकट्टु भीए ४ सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स बारवति नयरिं अणुपविसमाणस्स पुरतो सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमागए।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवदत्—

सो भदन्त ! पुरुषो मया कथ ज्ञातव्य ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि' कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—य कृष्ण ! द्वारावत्या नगर्यामनुप्रविशन्त दृष्ट्वा स्थितश्चैव स्थितिभेदेन (आयुक्षयेण) काल करिष्यति ! त त्व ज्ञास्यसि, एष स पुरुष । तत स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं वदते नमस्करोति, वन्दित्वा नमस्कृत्य यत्रैव आभिषेक्य हस्तिरत्न तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य हस्तिनमारोहति, आरुह्य यत्रैव द्वारावती नगरी यत्रैव स्वक गृह, तत्रैव सप्रधारितवान् गमनाय, तस्य सोमिल-ब्राह्मणस्य कल्ये यावत् ज्वलति सति अयमेतद्रूप आध्यात्मिक समुत्पन्न – एव खलु कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमि पाद-वन्दनाय निर्गत , तदेव ज्ञातमेतद् अर्हता, विज्ञातमेतद् अर्हता, श्रुतमेतद् अर्हता, शिष्टम् (प्रतिपादितम्) एतद् भविष्यति कृष्णस्य वासुदेवस्य (कृष्णाय वासुदेवाय) तत् न ज्ञायते कृष्णो वासुदेवो मा केनापि कुमारेण मारयिष्यति इति कृत्वा भीत ४ स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य कृष्णस्य वासुदेवस्य द्वारावती नगरीमनुप्रविशत पुरत सपक्ष सप्रतिदिक् शीघ्रमागत ।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर, **ण**—वाक्य सुन्दरता के लिये, **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव प्रयोगशाला मे गये और, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले—

भते !—हे भगवन् !, **से**—वह (जिसने मुनि गजसुकुमार का प्राणान्त किया है), **पुरिसे**—पुरुष, **मते**—मेरे द्वारा, **कह**—किस प्रकार, **जाणियव्वे**—जाना जा सकेगा, **तएण**—उसके अनन्तर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे –

कण्हा !—हे कृष्ण !, **जेण**—जो, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी मे, **अणुपविसमाण**—प्रवेश करते हुए, **तुम**—तुमको, **पासेत्ता**—देखकर, ठितए एव—खडा खडा ही, **च**—पुन, **ठितिभेएण**—स्थिति-भेद—आयु की स्थिति समाप्त होने से, **काल करिस्सति**—काल करेगा, **तण्ण**—उसको, **तुम जाणेज्जासि**—तुम जान लेना कि, **से पुरिसे**—यह वही पुरुष है । **तते ण**—उसके पश्चात् **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **वदति-नमसति**—वन्दना-नमस्कार करते हैं, **वदित्ता नमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **जेणेव**—जहा पर, **आभिसेय**—आभिषेक्य—प्रधान, **हत्थिरयण**—हस्तिरत्न अर्थात् अपना उत्तम हाथी था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आते है, **उवागच्छित्ता**—और वहा आकर, **हत्थि दुरूहति**—हाथी पर सवार हो जाते हैं, **दुरूहित्ता**—और सवार होकर, **जेणेव**—जहा पर, **बारवती नयरी**—द्वारिका नगरी थी, **जेणेव सते गिहे**—जहा पर, अपना घर था, **तेणेव**—वहा पर, **गमणाए**—जाने का, **पहारेत्थ**—निश्चय किया। (दूसरी ओर), **तस्स सोमिलस्स माहणस्स**—उस सोमिल ब्राह्मण को, **कल्ल**—अगले दिन, **जाव**—यावत्, **जलते** सूर्योदय होने पर, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का, **अज्झत्थिए** ४—आध्यात्मिक-हृदयगत तर्क, **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ, "४"—इस अक से—**कप्पिए**—कल्पित, अनेक विध कल्पनाओ से युक्त, **चिन्तित**—चिन्तित, बार-बार किया गया विचार, **मनोगए**—मनोगत—जो विचार अभी प्रकट नही किया केवल मन मे ही है, **सकप्पे**—सकल्प—हृदयगत उतार-चढाव, इन

पदो का ग्रहण करना इष्ट है। **एव खलु**—इस प्रकार निश्चय ही, **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **पायवदते**—चरण-वन्दना के लिये, **णिग्गते**—गए है, **त**—सो, **अरहता**—अरिहन्त भगवान को, **एय**—यह, मुनि गजसुकुमार का मरण-वृत्तान्त, **नाय**—ज्ञात है, पता है, **अरहता**—अरिहन्त भगवान को, **एय**—यह, गजसुकुमार सम्बन्धी वृत्तान्त, **विन्नाय**—विज्ञात है, अच्छी तरह से पता है, **अरहता**—अरिहन्त भगवान् ने, **एयं**—यह वृत्तान्त, **सुय**—किसी देवता आदि से सुन लिया होगा, **अरहता**—अरिहन्त भगवान् ने, **कण्हस्स—वासुदेवस्य**—कृष्ण वासुदेव को, **एय**—यह वृत्तान्त, **सिट्ठ भविस्सइ**—कह दिया होगा, **त**—सो, **न नज्जइ**—पता नही है, **मम**—मुझको, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **केणावि कुमारेण**—किस कुमृत्यु—किस भयकर मरण से, **मारिस्सति**—मारेंगे, **त्ति कट्टु**—ऐसा विचार कर, **भीते**—डर गया, ४—इस अक से, **तत्थे**—त्रास को प्राप्त, **उव्विग्गे**—उद्विग्न—व्याकुल, **सजातभये**—भय के कारण कम्पन को प्राप्त, इन पदो का ग्रहण करना है। **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से, **पडिनिक्खमइ**—वाहिर निकलता है, **पडिनिक्खमित्ता**—वाहर निकल कर, **बारवति णयरिं**—द्वारिका नगरी मे, **अणुपविस्समाणस्स**—प्रवेश करते हुए, **पुरतो**—आगे, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव के, **सपक्खिं**—सामने, **सपडिदिसिं**—सप्रतिदिक अर्थात् अत्यन्त समुख, **हव्व**—शीघ्र, अचानक, **आगए**—आ गया।

मूलार्थ—भगवान अरिष्टनेमि द्वारा अपनें प्रश्न का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वासुदेव फिर भगवान के चरणो मे निवेदन करने लगे—

भगवन्! मैं उस पुरुष को किस तरह जान सकता हू? महाराज श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण! यहा से चलने के अनन्तर जब तुम द्वारिका नगरी मे प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हे देख कर भयभीत होगा, वह वहा पर खडा खडा ही गिर जायेगा। आयु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है जिस ने गजसुकुमार के प्राण लिये हैं।

भगवान अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर भगवान अरिष्टनेमि को वदन एव नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहा से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर बैठ कर अपने घर की ओर चलने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण अपने निश्चयानुसार इधर अपने घर की ओर आ रहे थे। उधर अगले दिन सूर्योदय होने पर सोमिल ब्राह्मण के हृदय मे यह विचार आया कि निश्चय ही सूर्योदय होने पर कृष्ण वासुदेव अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे वन्दन एव नमस्कार करने

गए है। भगवान वीतराग है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं, अत उनसे कुछ अनजाना नही। मुनि गजसुकुमार को मैने मार दिया है, इस बात का उनको पता है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि गजसुकुमार का जीवनान्त करनेवाला सोमिल ब्राह्मण है, ऐसा भी हो सकता है कि किसी देवादि से भगवान नें इस वृत्तान्त को सुन लिया हो।

सोमिल ब्राह्मण विचार करता हुआ फिर कहने लगा—'यह निश्चित है कि यह सब वृत्तान्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को बतला देगे। अपने छोटे भाई का हत्यारा मुझे जान कर कृष्ण वासुदेव न जाने मुझे किस प्रकार मरवायेगे! इतना विचार आते ही सोमिल ब्राह्मण भयभीत हो उठा, त्रास और उद्वेग की अधिकता के कारण वह कापने लगा। भय और त्रास से व्याकुल हुआ सोमिल अपने घर से निकला इधर वह घर से भागने के लिये निकल पडा, उधर द्वारिका नगरी मे प्रवेश करते हुए कृष्ण-वासुदेव उसके सामने आ गये, इस प्रकार सोमिल ब्राह्मण और कृष्ण वासुदेव का अचानक ही परस्पर सामना हो गया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने पाच बातो का विवेचन किया है—सर्व प्रथम सूत्रकार ने श्रीकृष्ण की उस जिज्ञासा का वर्णन किया है जिसमे उन्होने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा है कि मुनि गजसुकुमार के घातक पुरुष की मुझे जानकारी प्राप्त हो सकती है या नही ?

दूसरी बात—महाराज श्रीकृष्ण की उक्त जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—'कृष्ण! तुम्हारी यह इच्छा तब पूर्ण हो जाएगी जब द्वारिका नगरी मे प्रवेश करोगे। उस समय एक पुरुष तुम्हे देखते ही खडा-खडा मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। समाप्त होनेवाला वही मनुष्य गजसुकुमार का हत्यारा है, यह तुम समझ लेना।

तीसरी बात—श्री कृष्ण अपने प्रश्न का उत्तर पाकर भगवान् अरिष्टनेमि को वदन करने के अनन्तर वापिस अपने घर को लौट जाने का निश्चय करते हैं।

चौथी बात—गजसुकुमार का प्राणान्त करने के अनन्तर अगले दिन सूर्योदय होने पर सोमिल विचार करता है कि श्रीकृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे प्रतिदिन की तरह वन्दन करने आज भी गये हैं। भगवान अन्तर्यामी हैं, घट-घट के ज्ञाता हैं, उनसे ससार की कोई घटना अज्ञात नही है, वे जानते हैं कि सोमिल ब्राह्मण ने मुनि गजसुकुमार का प्राणान्त किया है, भगवान को ज्ञान-प्रकाश में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गजसुकुमार के सिर पर अगीठी रखकर उसकी जीवन-लीला समाप्त करनेवाला सोमिल के बिना और कोई नही है। ऐसा भी हो सकता है कि भगवान के चरण-कमलो के भ्रमर किसी देव ने भगवान के सामने मेरे पाप का भण्डाफोड किया हो। कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि भगवान अरिष्टनेमि को मेरे सब पापो का पूर्णतया बोध है। इसके साथ-साथ यह भी

निश्चित है कि भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को मेरे पाप की सब कथा सुना देगे। कृष्ण वासुदेव का छोटा भाई मारा गया है, उसका कृष्ण के सामने कथन न हो यह कभी हो नही सकता, अत भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण के सामने गजसुकुमार के घातक सोमिल ब्राह्मण की अवश्य चर्चा करेंगे।

पाचवी बात—कृष्ण वासुदेव को जब पता चलेगा कि सोमिल ने उनके माजाए सहोदर भाई मुनिराज गजसुकुमार को मार दिया है, उसके सिर पर अगीठी रखकर उसका निर्दयता से प्राणान्त कर दिया है तो कृष्ण अपने क्रोध पर नियन्त्रण नही कर सकेंगे, वे मेरे अपराध का मुझे दण्ड देने के लिये एक क्षण भी नही रुकेंगे। पता नही कैसे मरवायेंगे ? कुत्तो से मुझे नुचवायेंगे ? या भूमि में गडवायेंगे ? या अग्निकुण्ड मे फिकवायेंगे या वनस्पति की तरह मेरे शरीर के खण्ड करके मेरा प्राणान्त करेंगे ? या वृक्ष से उलटा बाध कर पत्थरो से मुझे मरवायेंगे ? इस तरह अपने भावी अनिष्ट का विचार करते हुए सोमिल ब्राह्मण की आंखो के आगे अधेरा छा गया, वह किंकर्तव्य-विमूढ हो गया। अन्त मे उसने घर से भाग जाने का निश्चय किया। उसने सोचा श्रीकृष्ण भगवान के पास से वापिस आते ही मुझे पकडने के लिये राजपुरुषो को भेजेंगे, अत मुझे यहा से भाग जाना ही उचित है। कृष्ण के क्रोध-प्रहारो से बचने का सर्वोत्तम उपाय भागना ही है। अन्त मे सोमिल ब्राह्मण अपने घर से भाग निकला, पर समय की बात समझिए कि सोमिल श्रीकृष्ण से बचने के लिये घर से भागा जा रहा था, पर जब वह द्वारिका नगरी के मध्य मे गया तो सामने क्या देखता है कि श्रीकृष्ण की सवारी आ रही है। उसने श्रीकृष्ण को देखा और श्रीकृष्ण ने उसे देखा।

'**ठितिभेएण**"—**स्थिति-भेदेन, आयुष स्थितिक्षयेण**—आयु की स्थिति के नाश का नाम स्थिति-भेद है। जिस प्रकार जल के सयोग से मिश्री या बताशा अपनी कठिनता को छोडकर जल मे विलीन हो जाता है तथा जैसे अग्नि का सम्पर्क पाकर घृत पतला हो जाता है, उसी प्रकार सोपक्रमी जीव का आयुष्यकर्म भी* अध्यवसान आदि निमित्त विशेष के मिलने पर क्षय हो जाता है, इसीलिये व्यवहार-नय के अनुसार ससारी जीवो के आयु-क्षय को अकाल मृत्यु के नाम से व्यवहृत किया जाता है।

भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को यह कहा है कि द्वारिका नगरी मे प्रवेश करते हुए तुम्हे देखकर तुम्हारे भय से एक पुरुष मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसमे उस पुरुष की मृत्यु मे निमित्त कारण भयाधिक्य ही प्रमाणित होता है, इसी भयाधिक्य के कारण इस पुरुष की स्थिति-भेद अर्थात् आयु की स्थिति का नाश होगा।

"**आभिसेय हत्थिरयण**"—यहा पठित **आभिषेक्य** शब्द का अर्थ है—मुख्य—प्रधान। जो हाथी विशिष्ट एव विलक्षण गुणोवाला हो उसे "हस्तिरत्न" कहते हैं। हस्तिरत्न हाथियो मे भी जो मुख्य हो वह **आभिषेक्य** कहलाता है। यहाँ हस्तिरत्न विशेष्य है और **आभिषेक्य** उसका विशेषण है।

"**कल्ल जाव जलते**"—यहा पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर दिये गये अवशिष्ट पाठ का ससूचक है।

---

* अध्यवसान आदि आयुभेदक निमित्तो की चर्चा पीछे पृष्ठ १८६ पर की जा चुकी है।

"अब्भत्थिए ५"—यहा के ५ अक से—"कप्पिय, चिन्तिय, पत्थिय, मणोगय, सकप्पे" इन पदो का ग्रहण करना अभीष्ट है। इस समस्त पाठ मे अब्भत्थिए आदि पाँचो पद सकप्पे के विशेषण हैं। इनका अर्थ-भेद इस प्रकार है—

आध्यात्मिक सकल्प—वह सकल्प जो आत्मगत है, आत्मा मे पैदा हुआ है। **कल्पित सकल्प**—वह संकल्प जिसकी कल्पना की गई है, जिसे सोचा गया है। **प्रार्थित सकल्प**—वह सकल्प जिस पर वार-वार विचार किया गया है। **मनोगत सकल्प**—वह सकल्प जो अभी मन मे ही है, जिसे प्रकट नहीं किया गया है।

नायमेय अरहता, विन्नायमेय अरहता सुतमेय अरहता, सिट्ठमेय अरहया"—प्रस्तुत पाठमे ज्ञात, विज्ञात, श्रुत और शिष्ट ये चार पद है। सामान्य रूप से यह जानना कि गजसुकुमार मुनि का प्राणान्त हो गया है, यह ज्ञात है। विशेप रूप से जानना कि सोमिल ब्राह्मण ने अमुक अभिप्राय से गजसुकुमार का अग्नि द्वारा घात किया है, विज्ञात है। भाव यह है कि सामान्य बोध और विशेष बोध के ससूचक ज्ञात और विज्ञात ये दोनो शब्द है। इन दोनो पदो का अर्थ वृत्तिकार अभयदेव-सूरि के शब्दो मे इस प्रकार है—

"त नायमेय अरहया" तदेव ज्ञात सामान्येन एतद् गजसुकुमालमरणमर्हता जिनेन विज्ञात विशेषत सोमिलेनैवमभिप्रायेण कृतमेतदित्येवम्।

'सुयमेय'—इस पद के सस्कृत-रूप दो वनते हैं—१—स्मृतमेतद्। २—श्रुतमेतद्। आचार्य अभयदेव सूरि ने प्रथम रूप अगीकार किया है, इसी कारण उन्होने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"सुयमेय" स्मृत पूर्वकाले ज्ञात सत् कथनावसरे स्मृत भविष्यति—अर्थात् सोमिल-ब्राह्मण ने विचार किया, भगवान अरिष्टनेमि सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, अत उन्हे गजसुकुमार मुनि का मरण-वृत्तान्त अवगत ही है। जव यह घटना सघटित हुई थी, उसी समय उन्होने इस घटना को अपने ज्ञान के प्रकाश मे देख लिया था। कृष्ण वासुदेव के आने पर जव गजसुकुमार मुनि का प्रसग आयेगा तव भगवान को प्रथम काल का जाना वृत्तान्त, सुय—स्मृत—स्मरण हो आएगा।

'सुय' शब्द का दूसरा सस्कृत रूप 'श्रुतम्' है। **"सुयमेय अरहया"** इन पदो की व्याख्या इस प्रकार है—

श्रुतमेतद् अर्हता कस्मादपि देवविशेषाद्वा भगवता श्रुतम् भविष्यति। इन पदो का भाव यह है कि सोमिल ब्राह्मण विचार करता हुआ कहता है कि मुनि गजसुकुमार का मरण-वृत्तान्त किसी देव विशेष से भगवान अरिष्टनेमि ने सुय—श्रुत—सुन लिया होगा।

'सिट्ठ'—**शिष्टम्**, शिप्ट शब्द का अर्थ है—कह दिया। भाव यह है कि सोमिल ब्राह्मण ने विचार किया कि भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को मुनि गजसुकुमार का देहान्त-वृत्तान्त सिट्ठ—**शिष्ट**—कह दिया होगा।

"भीते ४" यहा दिये गए ४ के अक से, **"तत्थे, उव्विग्गे, सजायभये"** इन अवशिष्ट पदो का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है। भीत आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

"भीत—डरा हुआ। त्रस्त—त्रास को प्राप्त, 'मेरे प्राण लूट लिये जाएंगे' इस विचार से, त्रस्त—घबराया हुआ। उद्विग्न—विचलित मनवाला। सजातभय—डर के मारे जिसका हृदय धड़क रहा हो।

"पुरतो सपक्खि सपडिदिसिं" पुरत अग्रत, सपक्ष सप्रतिदिशम्-सर्वथा समुखम्—अर्थात् 'पुरत' शब्द का अर्थ है—आगे। 'सपक्ष' सामने और 'सप्रतिदिक्' शब्द अत्यन्त निकट, बिल्कुल सामने, अर्थ का बोधक है।

"हव्वमागते—शीघ्रमागत, अकस्मादागत। यहा पढा गया 'हव्व' पद सामान्य रूप से 'शीघ्र' अर्थ मे प्रयुक्त होता है, परन्तु प्रस्तुत मे इसका अर्थ अकस्मात् अचानक यही उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि सोमिल ब्राह्मण श्रीकृष्ण से अपने जीवन को सुरक्षित रखने के विचार से द्वारिका नगरी से बाहिर भागा जा रहा था, परन्तु आगे मे श्रीकृष्ण की ही अचानक उससे भेंट हो गई। इस के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तते ण से सोमिले कण्ह वासुदेव सहसा पासित्ता भीते ४ ठिते य चेव ठितिभेय काल करेइ, धरणितलसि सव्वगेहि धस त्ति सनिवडिते, तते ण से कण्हे वासुदेवे सोमिल माहण पासति, पासित्ता एव वयासी—

एस ण देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिए, जेण मम सहोदरे कनीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए। त्तिकट्टु सोमिल माहण पाणेहि कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता भूमि पाणिएण अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सते गिहे तेणेव उवागते, सय गिह अणुपविट्ठे। एव खलु जबू! समणेण जाव सम्पत्तेण अन्तगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णते।

छाया—तत स सोमिलो ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव सहसा दृष्ट्वा भीत ४, स्थितश्चैव स्थितिभेद काल करोति। धरणितले सर्वाङ्गै धस इति सन्निपतित। तत स कृष्णो वासुदेव सोमिल ब्राह्मण पश्यति दृष्ट्वा चैवमवदत्—एष देवानुप्रिया! स सोमिलो ब्राह्मण, अप्रार्थित यावत् परिवर्जित, येन मम सहोदर कनीयान् भ्राता गजसुकुमालोऽनगारोऽकाले चैव जीविताद् व्यपरोपित। इति कृत्वा सोमिल ब्राह्मण पाणै—(चाण्डालै) कर्षयति, कर्षयित्वा ता भूमि पानीयेन अभ्युक्षयति, अभ्युक्ष्य च यत्रैव स्वकीय गृह तत्रैव उपागत, स्वक गृहमनुप्रविष्ट। एव खलु जबू! यावत् श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सम्प्राप्तेन अन्तकृद्दशाना तृतीयस्य वर्गस्य अष्टमाध्ययनस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त।

पदार्थ—तते—उसके अनन्तर, ण—वाक्य सौदर्य के लिये प्रयोग मे लाया जाता है, से सोमिले माहणे—वह सोमिल ब्राह्मण, कण्ह वासुदेव—कृष्ण वासुदेव को, सहसा—एकदम—अचानक,

पासित्ता—अपने सामने देखकर, **भीते**—डर गया, **य**—और, **ठिते एव**—खडा हुआ ही, **च**—समुच्चयार्थक है, **ठितिभेय**—आयुष्यकर्म की स्थिति का क्षय करके, **काल करोति**—मृत्यु को प्राप्त होता है, **धरणितलसि**—भूमि तल पर, **सव्वगेहि**—सब अगो से, **धस त्ति**—धस, ऐसा शब्द करता हुआ, अर्थात् धडाम से, **सनिवडिते**—गिर पडा, **तते ण**—इसके अनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव, (गिरते हुए) **सोमिल माहण**—सोमिल ब्राह्मण को, **पासति**—देखते हैं, **पासित्ता**—देखकर, **एव वयासी**—(साथियो से) इस प्रकार कहने लगे, **देवाणुप्पिया!**—हे भद्र पुरुषो, **एसण**—यह सामने भूमि पर गिरा हुआ व्यक्ति, **अपत्थिय-पत्थिए**—मृत्यु को चाहनेवाला, जाव—यावत् **परिवज्जिए**—श्री एव लज्जाविहीन, **से सोमिले माहणे**—वह सोमिल ब्राह्मण है, **जेण**—जिसने, **मम**—मेरे, **सहोदरे**—मा जाए, **कनीयसे भायरे**—छोटे भाई, **गयसुकुमाले अणगारे**—मुनि गजसुकुमार को, **अकाले चेव**—अकाल मे ही, **जीवियाओ**—जीवन से, **ववरोविए**—रहित कर दिया है, **त्ति कट्टु**—ऐसा कह कर, **सोमिल माहण**—सोमिल ब्राह्मण को, **पाणेहि**—चाण्डालो द्वारा, **कड्ढावेइ**—पैरो को रस्सी से बधवाकर तथा घसीटवा कर नगर से बाहिर गिरवा देते है, **कड्ढावित्ता**—गिरवाने के बाद, **त भूमि**—उस भूमि को जहा सोमिल ब्राह्मण का शव पडा था, **पाणिएण**—जल से, **अब्भोक्खावेइ**—शुद्ध करवाते हैं, **अब्भोक्खावेत्ता**—शुद्ध करवा कर, **जेणेव**—जहा पर, **सते गिहे**—अपना घर था, **तेणेव उवागते**—वहा पर आ गए, उसके अनन्तर वे, **सय**—अपने, **गिह**—घर मे, **अणुपविट्ठे**—प्रविष्ट हुए। **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू!**—हे जम्बू! **समणेण**—श्रमण, **जाव सम्पत्तेण**—यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, **अतगडदसाण**—अन्तकृद्दशा के, **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग के, **अट्ठमज्झयणस्स**—आठवें अध्ययन का, **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णते**—प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण श्रीकृष्ण को अचानक अपने सामने देखकर भय के मारे घबरा गया, उसका हृदय धडकने लगा। अधिक भय के कारण आयुष्यकर्म की समाप्ति होने पर वहा खडा-खडा ही समाप्त हो गया और धडाम से उसका शरीर भूमितल पर गिर पडा।

भूमितल पर गिरे सोमिल ब्राह्मण को देख कर श्रीकृष्ण ने अपने साथियो को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भद्रपुरुषो! सामने भूमितल पर पडा हुआ, मृत्यु का प्रार्थी श्री एव लज्जा से विहीन यह वही सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे माजाए छोटे भाई मुनि गजसुकुमाल को अकाल मे ही जीवन से रहित कर दिया है। ऐसा कहने के पश्चात् श्री वासुदेव कृष्ण चाण्डालो को बुलवाते है, सोमिल ब्राह्मण के पैरो को रस्सी से बधवा कर उनसे ही घसीटवा कर उसे द्वारिका नगरी के बाहिर फिकवा देते हैं। यह सब कुछ करने के अनन्तर जहा सोमिल ब्राह्मण का शव पडा था, उस भूमि को जल से साफ करवाते हैं और अन्त मे अपने घर चले जाते है।

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है ।

व्याख्या—पुण्य का आचरण न करना, परन्तु पुण्य के मधुर फल की आकाक्षा बनाए रखना और पापाचार मे निमग्न रहना एव पापो के दु खान्त परिणाम से सदा उन्मुक्त रहने का विचार रखना, यह जन साधारण का स्वभाव-सिद्ध सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की आराधना करनेवालो की सख्या थोडी नही है। द्वारिका नगरी का सोमिल ब्राह्मण भी इसी सिद्धान्त का अनुयायी था। उसने श्रीकृष्ण के माजाए छोटे भाई गजसुकुमार का प्राणान्त कर दिया। गजसुकुमार एक तो त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे, दूसरे एक महान तपस्वी थे। ऐसे उच्च महान् व्यक्तित्व के स्वामी महापुरुष के सिरपर अगीठी रखकर मरणान्तिक कष्ट पहुचाना—उनकी जीवन-लीला समाप्त कर देना कितना भयकर अक्षम्य अपराध है—पाप है ? तथापि सोमिल इसके फल से बचना चाहता है। उसका विचार है कि यदि द्वारिका नगरी से भाग जाऊगा तो श्रीकृष्ण को आखो से ओझल हो जाऊगा और इस प्रकार गजसुकुमार की हत्या के अपराध के फल से बच जाऊगा। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिये वह अपने घर से चल भी देता है, बडी शीघ्रता के साथ अपने पाव उठाता है, ताकि वह शीघ्र ही द्वारिका नगरी की सीमा से बाहिर होजाने मे सफल होजाये, पर लाखो प्रयत्न करलेने पर भी पाप-कर्म जीव का पिण्ड नही छोडता। जब पाप-कर्म का उदय आ जाए तो फिर वह अपने फल का भुगतान करके ही छोडता है। सोमिल ब्राह्मण के पाप कम का उदय-काल आ चुका था, परिणाम स्वरूप वह अपनी योजना को मूर्तरूप देने मे सफल नही हो सका। सूत्रकार कहते हैं कि जब सोमिल ब्राह्मण द्वारिका नगरी से बाहिर हो रहा था, तब उस समय श्रीकृष्ण द्वारिका नगरी मे प्रवेश कर रहे थे। इस तरह अचानक दोनो का मेल हो गया। श्रीकृष्ण को देखते ही उसकी आखो के आगे अधकार छा गया, जीवन सुरक्षा की सब योजनाए समाप्त हो गईं, श्रीकृष्ण को देखते ही वह जीवन से सर्वथा निराश हो गया। मृत्यु-भय के मारे उसका रोम-रोम काप उठा, उसके हृदय को ऐसा धक्का लगा, जिसे वह सहन नही कर सका, परिणाम स्वरूप वह खडा-खडा ही समाप्त हो गया। आयुष्य-कर्म की पूजी समाप्त होने से उसका प्राणान्त हो गया। निर्जीव होने से उसका शरीर मिट्टी के ढेले की तरह धडाम से भूमि पर गिर पडा। हिन्दी के एक अनुभवी विद्वान् कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

पाप छुपाया न छुपे, छुपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी न रहे, रुई लपेटी आग॥

कथाकारो की ऐसी भी मान्यता है कि श्रीकृष्ण जब वापिस द्वारिका नगरी की ओर आ रहे थे तो उस समय वे छोटे भाई गजसुकुमार की अकाल मृत्यु की दु खद घटना से बडे व्याकुल थे—अत्यधिक खिन्न थे। उसी खिन्नावस्था के कारण उन्होने राज-सेवको को आदेश दिया कि आज हम द्वारिका नगरी के मध्य मे से होकर नही जायेंगे, जिस मार्ग मे लोगो का यातायात कम है उसी एकान्त शान्त मार्ग से घर पहुचेंगे। आदेशानुसार सेवको ने मध्य मार्ग छोडकर एकान्त गली का मार्ग ले लिया।

श्रीकृष्ण गली मे से होकर जा रहे थे। समय की बात समझिए कि उधर भागते समय सोमिल ब्राह्मण के मन मे विचार आया कि श्रीकृष्ण द्वारिका के मध्य मार्ग से आया करते हैं, अत मैं मध्यमार्ग को छोडकर गली के मार्ग से चलता हू। यह सोचकर सोमिल गली के मार्ग से जाने लगा। आगे बढा तो महाराज श्रीकृष्ण के दर्शन हो गये। अपने ही पाप के कारण आज उसे महाराज श्रीकृष्ण यमराज दिखाई दिये। बस फिर क्या था, सोमिल भावी अनिष्ट की कल्पना से काप उठा, उसके रोम रोम में मृत्यु का भय नाचने लगा। अन्त मे, भयातिरेक से उसके प्राण पखेरू उड गये और वह धडाम से भूमि-तल पर गिर पडा।

कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से पूछा था कि प्रभो! मैं गजसुकुमार मुनि के घातक पुरुष को कैसे जान सकता हू। इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान ने कहा था कि हे कृष्ण जब तुम द्वारिका नगरी मे प्रवेश करोगे तब तुम्हे देखते ही एक मनुष्य का प्राणान्त हो जाएगा तब तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है, जिसने मुनि-गजसुकुमार की हत्या की है यह सब वार्ता श्रीकृष्ण को याद थी। इसीलिये अपने सन्मुख भूमि तल पर मरे पडे सोमिल को देखकर वे अपने साथियो को सम्बोधित करते हुए तत्काल बोल उठे—भद्र पुरुषो! भाग्यहीन, अधम लज्जा-विहीन तथा नीच यह वह सोमिल ब्राह्मण है, जिसने गजसुकुमार मुनि का अकाल मे जीवन समाप्त कर दिया है।

सोमिल ब्राह्मण के शव को देख कर श्रीकृष्ण को मार्मिक वेदना हुई। ब्राह्मण-कुल मे जन्म ले कर धर्म-शास्त्रो का ससार को सन्देश देनेवाला सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार का नीच कुकृत्य करेगा, उनको स्वप्न मे भी यह आशा नही थी। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जो भी व्यक्ति सोमिल ब्राह्मण द्वारा की गई मुनि गजसुकुमार की हत्या की बात सुनता वही आश्चर्य चकित रह जाता। सभी उसकी भर्त्सना करते और उसके शव पर थूकते। अन्त मे श्रीकृष्ण ने सोमिल ब्राह्मण के शव को चाण्डालो द्वारा खिचवा कर द्वारिका नगरी से बाहिर फिकवा दिया।

"भीते ४" यहा दिये गये ४ के अक से तथा **"अपत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिते"** यहा पठित **जाव**—यावत् पद से अभीष्ट पदो का वर्णन क्रमश पृष्ठ १९६ तथा पृष्ठ १६५ पर कर दिया गया है।

"एव खलु जम्बू! समणेण जाव सपत्तेण" यहा पठित जाव पद **भगवया महावीरेण आइगरेण तित्थगरेण सिवमयलमरुअ-मणत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगई नामधेय ठाण"** इन पदो का ससूचक है। इनका विवेचन पीछे पृष्ठ १३ पर किया जा चुका है।

"पाणेहिं कड्ढावेइ—पाणै—चाण्डालै कर्षयति, चरणे रज्जु बन्धयित्वा चाण्डालै नगराद् बहिर्निष्कासयति। यहा **प्रयुक्त पाण** शब्द चाण्डाल का बोधक है। सोमिल के पैरो को रस्सी से बधवाकर तथा घसीटवा कर नगर से बाहिर फिकवा दिया जाता है। इन भावो का ससूचक 'कड्ढा-वेइ' यह पद है।

"त भूमिं पाणिएण अब्भोक्खावेइ"—इन पदो का भावार्थ है—सोमिल के शव को उठाए जाने के पश्चात् उस भूमि को जल के द्वारा शुद्ध कराया जाता है।

सोमिल ब्राह्मण के शव को चण्डालो से खिचवाना तथा शववाले स्थान को जल से धुलवाना ये सब बाते जन साधारण को शिक्षित करने के लिये कही गई हैं। लोग यह समझ ले कि दुष्ट कर्म

का आचरण करने वाला व्यक्ति प्रत्येक दृष्टि से निन्दित होता है, उसका किसी भी दशा मे सम्मान नही हो सकता, उसे सर्वत्र अपमानित होना पडता है। नीति-धर्म के अनुसार आततायी व्यक्ति के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना उचित होता है ? इस प्रश्न का समाधान भी उक्त वर्णन मे प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त सोमिल ब्राह्मण के अन्य कुटुम्बी जनो के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न करना यह श्रीकृष्ण की न्याय-प्रियता का सुन्दर एव समर्थ उदाहरण है।

कहा जा चुका है कि पाच सौ शिष्यो के साथ आर्य सुधर्मा स्वामी चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक उद्यान मे विराजमान थे। इनके विनीत शिष्य आर्य जम्बू स्वामी ने इनके चरणो मे निवेदन किया था कि भगवन् ! अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के सातवें अध्ययन मे श्रमण भगवान महावीर ने जिस महापुरुष का जीवन-चरित वर्णित किया है उसका मैंने श्रवण कर लिया है। मेरी इच्छा है कि गुरुदेव ! अब आप अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवे अध्ययन का वर्णन सुनाए—भगवान महावीर ने इस अध्ययन मे किस महापुरुष की जीवनी वर्णित की है, उसे सुनाने की कृपा करे। अपने प्रिय शिष्य आर्य जबू की इस प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी ने इनको तृतीय वर्ग का आठवा अध्ययन सुनाना आरम्भ किया था। इसमे उन्होने गजसुकुमार मुनि का जीवन-चरित सुनाया। मुनि गजसुकुमार का जीवन-चरित समाप्त होने पर वे अपने शिष्य जम्बू से बोले—जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का वर्णन किया है। इसी बात को सूत्रकार ने 'एव खलु जम्बू !' आदि पदो से अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत अध्ययन मे मुख्यतया तीन बातो पर प्रकाश डाला गया है —

पहली बात मातृ-ममता की है। माता देवकी के हृदय मे बाल-क्रीडाए देखने की महान उत्कण्ठा उसके मातृ-हृदयगत ममत्वभाव का पर्याप्त परिचय करवा रही है।

दूसरी बात, मुनि गजसुकुमार की दृढता की है। सोमिल ब्राह्मण द्वारा सिर पर अगीठी रख देने पर भी उसके लिये मन मे जरा भी द्वेष नही आने दिया, प्रत्युत बडी शान्ति और धीरता से उस असीम सकट को सह कर मुनि गजसुकुमार ने अपनी सयम-साधनागत निष्ठा का आदर्श परिचय दिया है और ससार को बतला दिया है कि मोक्ष सम्पदा को हस्तगत करने के लिये अग्नि-दाह जैसे कष्टो को सहन करने की क्षमता भी अपेक्षित है।

तीसरी बात सोमिल ब्राह्मण के कर्मों के विपाक की है। सोमिल चाहता था कि मैं श्रीकृष्ण की आखो से ओझल हो जाऊ, द्वारिका नगरी से भाग कर ऐसे ठिकाने पर अपने को छिपा लू जो श्रीकृष्ण की पहुच से बहुत दूर हो, पर हुआ इससे बिल्कुल विपरीत। सोमिल अभी नगरी से बाहिर ही हुआ था कि श्रीकृष्ण उसे मिल गए। श्रीकृष्ण के रूप मे मानो यमराज उसके सामने आगए। श्रीकृष्ण उसके वध का कोई आदेश दें, इससे पहले ही उसके कर्म ने उसे दण्ड दे डाला और वह सदा के लिये मृत्यु की गोद मे सो गया। इससे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि कर्म-फल से मनुष्य बच नही सकता। कर्म जब उदयोन्मुख होते हैं तो उस समय स्थान, काल की चिन्ता किये बिना ही वे मनुष्य को अपना फल दे डालते हैं, अत सुखाभिलापी सहृदय मानव को दु खान्त कर्मों से सदा पृथक् रहना चाहिये।

आठवा अध्ययन समाप्त

नवम अध्ययन

तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन के अनन्तर नौवें अध्ययन का स्थान है। नौवें अध्ययन मे किन महापुरुषो के जीवन-चरित हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं .-

मूल—नवमस्स उ उक्खेवओ। एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएणं बारवतीए नयरीए जहा पढमए जाव विहरइ। तत्थ ण बारवतीए बलदेवे नाम राया होत्था। वण्णओ। तस्स ण बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। वण्णओ। तते ण सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, नवर सुमुहे नामं कुमारे पन्नास कन्नाओ पन्नासदाओ। चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जइ, बीसं वासाइ परियाओ, सेस तं चेव सेत्तुञ्जे सिद्धे ! निक्खेवओ।

छाया—नवमस्य तु उत्क्षेपक। एव खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवत्या नगर्या यथा प्रथमको यावद् विहरति। तत्र द्वारवत्या बलदेवो नाम राजा बभूव। वर्णक। तस्य बलदेवस्य राज्ञो धारिणी नाम्नी देवी बभूव। वर्णक। तत सा धारिणी सिंह स्वप्ने, यथा गौतम, नवर सुमुखो नाम्ना कुमार, पञ्चाशत् कन्या, पञ्चाशत् दाया, चतुर्दशपूर्वाणि अधीते, विंशति वर्षाणि पर्याय, शेष तच्चैव, शत्रुञ्जये सिद्ध। निक्षेपक।

पदार्थ—नवमस्स—नवम अध्ययन की, उ—समुच्चयार्थक है। उक्खेवओ—उत्क्षेपक—प्रस्तावना पहले की भाति जान लेना, एव खलु—इस प्रकार, निश्चय ही, जबू !—हे जम्बू !, तेण कालेण—उस काल, तेण समएण—उस समय, बारवतीए नयरीए—द्वारिका नगरी मे, जहा—जिस प्रकार, पढमए—प्रथम अध्ययन मे वर्णन किया जा चुका है। जाव—यावत् कृष्ण वासुदेव राज्य किया करते थे, तत्थण—उसी नगरी मे, बलदेवे नाम—बलदेव नाम का, राया—राजा, होत्था—था, वण्णओ—उसका वर्णन औपपातिक सूत्र की भाँति जानना, तस्स ण—उस, बलदेवस्स रन्नो—बलदेव राजा की, धारिणी नाम—धारिणी नाम की, देवी होत्था—रानी थी, वण्णओ—रानी का वर्णन भी पहले की भाति जान लेना, तते ण—इसके अनन्तर, सा धारिणी—उस धारणी देवी ने, सुमिणे—स्वप्न मे, सीह—सिंह देखा, जहा—जिस प्रकार, गोयमे—गौतम कुमार का जन्म हुआ था, वैसे ही इसका एक कुमार हुआ, नवर—अन्तर केवल इतना है कि इसका, नाम—नाम, सुमुहे कुमारे—सुमुख कुमार था, पन्नास—सुमुख कुमार का पचास, कन्नाओ—कन्याओ के साथ विवाह किया गया। तथा, पन्नास दाओ—पचास-पचास वस्तुओ का दहेज दिया गया। फिर दीक्षा ग्रहण की, फिर वह, चोद्दस पुव्वाइ—चौदह पूर्वों का, अहिज्जइ—अध्ययन करता है, बीस वासाइ—बीस वर्ष, परियाओ—दीक्षा का पालन

करता है, **सेस**—शेष वर्णन, **त चेव**—वैसा ही है, अन्त मे, **सेत्तुजे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर वह, **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त करता है, **निक्खेवओ**—निक्षेप—उपसहार पहले को तरह जानना।

मूलार्थ—नवम अध्ययन की प्रस्तावना पहले की तरह जान लेना। आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि जम्बू! उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी मे त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण राज्य किया करते थे, परन्तु द्वारिका नगरी के एक विभाग का आधिपत्य महाराज बलदेव कर रहे थे। औपपातिक सूत्र मे वर्णित राज्य-वैभव की भाँति महाराज बलदेव का भी राज्य-वैभव था।

महाराज बलदेव की रानी का नाम धारिणी था। धारिणी नारी स्त्री-उचित सभी गुणो की भण्डार थी। एक बार महारानी धारिणी ने स्वप्न मे सिह को देखा। समय आने पर उसने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजकुमार गौतम कुमार की भाति बालक का जन्मोत्सव मनाया गया। अन्तर केवल इतना है कि बालक का नाम सुमुख कुमार रखा गया। युवावस्था आने पर उसका पचास राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ। पचास-पचास प्रकार का इनको दहेज मिला। वैराग्य होने पर ये साधु बन गये। इन्होने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्षो की दीक्षा का पालन किया, अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर उन्होने कर्मों का आमूल-चूल क्षय करके सिद्ध-पद प्राप्त किया।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के इस नवम अध्ययन मे सूत्रकार ने राजकुमार सुमुख कुमार के जीवन का उल्लेख किया है। सुमुख कुमार द्वारिका नगरी मे पैदा हुए थे, पिता महाराज बलदेव और माता धारिणी देवी थी। कुमार जब गर्भ मे आए थे तो उस समय माता ने स्वप्न मे एक सिह को देखा था। सिह-दर्शन का अर्थ था—गर्भ मे आनेवाला जीव शौर्यादि गुणो मे सिह के समान होगा। स्वप्न-पाठको द्वारा स्वप्न का मगलमय सुखद फलादेश सुन कर माता-पिता को बहुत प्रसन्नता हुई थी। बालक के जन्म होने पर राज्य भर मे प्रसन्नता छा गई। माता-पिता ने दिल खोल कर याचको को दान दिया। बालक का नाम सुमुख कुमार रखा गया। जब राजकुमार सुमुख युवक हो गया तब माता-पिता ने उसका अनुपम सुन्दर कन्याओ के साथ विवाह कर दिया। पचास-पचास प्रकार का दहेज दिया। विवाहित होने पर राजकुमार सांसारिक सुखो का आनन्द भोगने लगा।

एक बार द्वारिका नगरी में विश्ववन्द्य मगलमूर्ति भगवान अरिष्टनेमि पधारे। राजकुमार सुमुख को भगवान के मगलमय उपदेश सुनने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ। भगवान की कल्याणमयी वाणी ने सुमुख की सोई हुई अन्तर्चेतना जगा डाली और उसे वैराग्य हो गया। माता-पिता के समझाने पर भी वह वैराग्य का महापथ छोड़ने को तैयार न हुआ। शुभ दिन देखकर एक दिन उसने भगवान

के चरणो मे दीक्षा व्रत अगीकार कर लिया। सयम-साधना की बडी कठोरता के साथ आराधना करने लगा, साथ मे चौदह पूर्वो का अध्ययन भी किया। इस तरह बीस वर्ष तक सयम-साधना तथा ज्ञानाराधना मे लगा रहा। अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर विराजमान होकर मुनि सुमुख ने निर्वाण-पद को प्राप्त कर लिया।

"उक्खेवओ"—उत्क्षेपक। उत्क्षेपक, प्रस्तावना, प्रारभिक वक्तव्य, या उपोद्घात का नाम है। सूत्रकार की भाषा मे प्रस्तुत नवम अध्ययन की प्रस्तावना इस प्रकार है—

जइ ण भते ! समणेण भगवया जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अन्तगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अन्तगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे निवेदन करते हैं कि हे भगवन् ! यदि मोक्षप्राप्त यावत् श्रमण भगवान ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवे अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! मोक्ष प्राप्त यावत्, श्रमण भगवान महावीर ने नवम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है ? यह नवम अध्ययन की प्रस्तावना है। जिसे सूत्रकार ने मूल सूत्र मे **"नवमस्स उक्खेवओ"** इन पदो से सूचित किया है।

"जहा पढमए जाव विहरइ" इन पदो का अर्थ है—जैसे पहले अध्ययन मे श्रीकृष्ण के वैभव का तथा आधिपत्य का वर्णन किया गया हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण तीन खण्ड पर अपना शासन चला रहे थे। अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे **तत्थ ण बारवतीए नयरीए कण्हे णाम वासुदेवे राया परिवसइ। महया राय वण्णतो। से ण तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाण आहेवच्च जाव विहरइ।"** यह पाठ आता है। प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने "बारवतीए नयरीए जहा पढमए जाव विहरइ" ये पद देकर प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे पठित उक्त पाठ के ग्रहण करने की ओर सकेत किया है।

"वण्णओ" का अर्थ है—वर्णन-प्रकरण या वर्णनप्रकार। सूत्रकार ने यह पद राजा तथा रानी दोनो के साथ जोडा है। पहला **"वण्णओ"** पद—**महया-हिमवत-महत-मलय-मन्दर-महिद-सारे पसन्तडिम्ब-डमर रज्ज पसासेमाणे विहरइ** इन पदो का ससूचक है। औपपातिक सूत्र मे इन पदो की व्याख्या देखी जा सकती है। द्वितीय **"वण्णओ"** पद औपपातिक सूत्र मे वर्णित "—**सुकुमाल-पाणिपाया, अहीण पडिपुण्ण-पचिदिय सरीरा पचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरति"** इन पदो का परिचायक है। इनकी व्याख्या भी औपपातिक सूत्र मे ही देखनी चाहिए।

"जहा गोयमे"का अर्थ है—जैसे प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे गौतम कुमार का जन्म-सम्बन्धी वर्णन पीछे किया गया है। वैसे ही सुमुख कुमार का जन्म-वर्णन भी समझ लेना चाहिए। स्वप्न-पाठको का बुलाना, समय पर गर्भ का धारण करना, नवमास पूर्ण होने पर बालक का जन्म लेना, माता-पिता का जन्मोत्सव मनाना, ये सब बाते जैसे राजकुमार गौतमकुमार के प्रकरण मे बतलाई गई है, ठीक उसी प्रकार सुमुख कुमार के प्रकरण मे भी जान लेनी चाहिए। उसी बात की सूचनार्थ सूत्रकार ने **'जहा गोयमे'** इन शब्दो का प्रयोग किया है।

'पन्नास दाओ' का अर्थ है, पचास-पचास का दहेज दिया गया। राजकुमार सुमुख का विवाह ५० राजकुमारियो के साथ सम्पन्न हुआ था, अत माता-पिता ने पुत्रवधुओ को कुण्डल आदि जो दहेज मे दिए उनकी सख्या पचास-पचास थी, ताकि प्रत्येक पुत्रवधू को प्रत्येक वस्तु मिल सके। यह सब कुछ देने के पीछे माता-पिता की यही भावना थी कि एक वस्तु एक के पास रहे और एक के पास न रहे ऐसी विषमता न हो, प्रत्युत एक जैसी वस्तु प्रत्येक पुत्रवधू को प्राप्त हो।

"चोद्दस पुव्वाइ" का अर्थ है—चौदह पूर्व। तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान जिस अर्थ का पहले-पहल गणधरो को उपदेश देते हैं, अथवा गणधर पहले-पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप मे गूथते हैं, उसे पूर्व कहते है। उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व आदि चौदह पूर्व है। इन्ही चौदह पूर्वों का मुनिराज सुमुख कुमार ने अध्ययन किया था।*

"सेस त चेव" इन पदो का अर्थ है—सुमुख मुनिवर का शेष वर्णन वही है। भाव यह है कि जैसे गौतम कुमार के प्रकरण मे गौतम मुनि के जोवन का अन्तिम भाग वर्णित हो चुका है, वही वर्णन सुमुख मुनि का भी समझ लेना चाहिए।

'निक्खेवओ'—निक्षेपक—इस पद का अर्थ है—उपसहार, समाप्ति-सूचक वाक्य। शास्त्रीय भाषा मे इस नवम अध्ययन का उपसहार वाक्य इस प्रकार है—

एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अन्तगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। अर्थात् हे जम्बू! इस प्रकार मोक्ष-प्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का यह (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हू।

नवम अध्ययन समाप्त
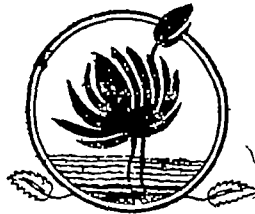
* चौदह पूर्वों का वर्णन पढिए पृ० ८५ पर।

चार अध्ययन

(१० से १३)

अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का वर्णन किया जा चुका है। अब क्रम प्राप्त अगले अध्ययनो का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है—

मूल—एव दुम्मुहेवि, कूवदारएवि तिन्निवि बलदेव-धारिणी सुया, दारुएवि एव चेव, नवर वसुदेवधारिणीसुते। एव अणाधिट्ठीवि वसुदेवधारिणीसुते। एव खलु जम्बू! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

छाया—एव द्विमुखोऽपि, कूपदारकोऽपि त्रयोऽपि बलदेवधारिणीसुता, दारुकोऽपि एव चैव नवर वसुदेवधारिणीसुत। एवमनाधृष्ट्यपि वसुदेवधारिणीसुत। एव खलु जम्बु! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशाना तृतीयस्य वर्गस्य त्रयोदशस्य अध्ययनस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त।

पदार्थ—एव—इसी प्रकार, दुम्मुहेवि—द्विमुख कुमार भी, कूवदारएवि—कूपदारक कुमार भी, तिन्निवि—तीनो ही, बलदेवधारिणीसुया—बलदेव और धारिणी के पुत्र थे, एव चेव—और इसी प्रकार, दारुएवि—दारुक कुमार का भी वर्णन समझ लेना, नवर—अन्तर केवल इतना है, वसुदेवधारिणीसुया—ये वसुदेव राजा और धारिणी देवी के पुत्र थे, एव—इसी प्रकार, अणाधिट्ठीवि—अनाधृष्टि कुमार का भी वर्णन है, वसुदेवधारिणीसुते—यह वसुदेव तथा धारिणी के पुत्र थे, एव खलु—इस प्रकार निश्चय ही, जबू!—हे जम्बू!, जाव सपत्तेण—यावत् मोक्ष सम्प्राप्त, समणेण—श्रमण, भगवया—भगवान, महावीरेण—महावीर ने, अट्ठमस्स अगस्स—आठवे अग, अन्तगडदसाण—अन्तकृद्दशा के, तच्चस्स वग्गस्स—तृतीय वर्ग के, तेरसमस्स—तेरहवे, अज्झयणस्स—अध्ययन का, अयमट्ठे—यह अर्थ, पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—जिस प्रकार सुमुख कुमार के जीवन का उल्लेख किया गया है, इसी प्रकार द्विमुख और कूपदारक इन दो राजकुमारो के विषय मे भी जान लेना चाहिये। सुमुख, द्विमुख और कूपदारक ये तीनो ही राजा बलदेव के पुत्र और माता धारिणी के आत्मज थे। इन की तरह ही दारुककुमार की जीवनी है, अन्तर केवल इतना है कि

पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। दारुक कुमार के भाई अनाधृष्टि कुमार के जीवन की भी ऐसी ही कथा है।

आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष सम्प्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के तृतीय वर्ग के तेरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे चार अध्ययनो का वर्णन किया गया है। इन मे क्रमश द्विमुख, कूपदारक, दारुक तथा अनाधृष्टि, इन चार राजकुमारो के जीवन-वृत्तो का उल्लेख है। इन मे द्विमुख और कूपदारक ये दोनो इसी वर्ग के नवम अध्ययन मे वर्णित सुमुख कुमार के मा जाए भाई थे। तीनो के पिता महाराज बलदेव थे। इनको जन्म देनेवाली माता धारिणी थी।

दारुक और अनाधृष्टि ये दोनो सगे भाई थे, पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। इन चारो कुमारो की जीवनी सुमुख की तरह जाननी चाहिये।

इनकी तथा सुमुख की जीवनी मे कोई विशेष अन्तर न होने के कारण सूत्रकार ने केवल इनका तथा इनके माता-पिता के नाम का उल्लेखमात्र कर दिया है। केवल नामोल्लेख करने के पीछे सूत्रकार की यही भावना प्रतीत होती है कि द्विमुख आदि राजकुमारो का जन्म, शैशवकाल, युवावस्था, विवाह, दीक्षा-ग्रहण, ज्ञान-प्राप्ति तथा निर्वाण-प्राप्ति आदि सभी बातें सुमुख कुमार की तरह ही जान लेनी चाहिए।

'दुम्मुहे' इस पद की सस्कृतच्छाया—**"दुर्मुख"** ऐसी भी देखने मे आती है।

"तिन्निवि" यह पद तीन का बोधक है। इसी सूत्र मे वर्णित श्री द्विमुखकुमार तथा श्री कूपदारक दो ये तथा तीसरे नवम अध्ययन मे वर्णित श्रीसुमुख कुमार हैं। इस प्रकार इन तीनो का सूचक **'तिन्नि'** यह पद है।

प्रस्तुत सूत्र का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि उस युग मे 'धारिणी' यह नाम अत्यधिक लोकप्रिय था। जनता मे राजकुमारियो का 'धारिणी' नाम रखने की अधिक प्रथा थी। इसीलिये वसुदेव राजा की रानी का नाम धारिणी था, तथा बलदेव राजा की रानी का नाम भी धारिणी था। प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के नायक राजकुमार गौतम कुमार की जननी का नाम भी धारिणी था। परन्तु धारिणी नाम की ये सभी रानिया अलग-अलग थी। नाम की समानता होने से इनको एक समझने की भूल कदापि नही करनी चाहिये।

"समणेण जाव सपत्तेण" यहा पठित **'जाव—यावत्'** पद से अभीष्ट पदो का सकेत पीछे पृष्ठ पर कर दिया गया है।

सूत्र का उपसहार सूत्रकार ने स्वय कर दिया है जिसका अर्थ स्पष्ट ही है।

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

चतुर्थ वर्ग

अब सूत्रकार चतुर्थ वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जंबू ! समणेण जाव संपत्तेण चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य, वारिसेणे य, पज्जुन्न, संब, अनिरुद्धे, सच्चनेमि य, दढनेमि ।

जइ ण भंते ! समणेण जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स ण अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जंबू ! तेण कालेणं तेण समएण बारवती नयरी, तीसे जहा पढमे कण्हे वासुदेवे आहेवच्च जाव विहरइ ।

तत्थ णं बारवतीए नयरीए वसुदेवे राया, धारिणी वण्णओ, जहा गोयमो, नवर जालिकुमारे । पन्नास दातो, बारसगी सोलस वासा परिताओ, सेस जहा गोयमस्स जाव सेतु जे सिद्धे ।

एव मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य । एवं पजुन्नेवित्ति, नवर कण्हे पिया, रुप्पिणी माता । एव संबेवि, नवरं जंबवती माता । एव अनिरुद्धेवि नवर पज्जुन्ने पिया वेदब्भी माया । एव सच्चनेमी, नवर समुद्दविजये पिता, सिवा माता । दढनेमीवि, सव्वे एग गमा । चउत्थवग्गस्स निक्खेवओ ।

छाया—यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन तृतीयस्य वर्गस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त, चतुर्थस्य कोऽर्थ प्रज्ञप्त ? एव खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, तस्यां यथा प्रथमे कृष्णो वासुदेव आधिपत्य यावद् विहरइ ।

तत्र द्वारवत्या नगर्या वसुदेवो राजा धारिणी । वर्णक । यथा गौतम , नवर जालिकुमार । पञ्चाशत् दाया । द्वादशागी । षोडश वर्षाणि पर्याय । शेष यथा गौतमस्य, यावत् शत्रुञ्जये सिद्ध ।

एव मयालि , उपयालि , पुरुषसेनश्च, वारिषेणश्च, एव प्रद्युम्नोऽपि इति, नवर कृष्ण पिता रुक्मिणी माता, एव शाम्बोऽपि नवर, जाम्बवती माता । एवमनिरुद्धोऽपि, नवर प्रद्युम्न पिता, वैदर्भी माता । एव सत्यनेमि , नवर समुद्रविजय पिता, शिवा माता, दृढनेमिरपि । सर्वे एकगमा , चतुर्थवर्गस्य निक्षेपक ।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **ण**—वाक्य सौंदर्यार्थ है, **भंते**!—हे भगवन्!, **समणेण**—श्रमण, **जाव**—यावत्, **सपत्तेण**—मोक्ष-सम्प्राप्त महावीर स्वामी ने, **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग का, **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है तो हे भगवन्!, **चउत्थस्स**—चतुर्थ वर्ग का, **के अट्ठे पण्णत्ते**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? (श्री सुधर्मा स्वामी बोले), **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **जबू**!—हे जम्बू!, **समणेण**—श्रमण, **जाव**—यावत्, **सम्पत्तेण**—मोक्ष-प्राप्त महावीर ने, **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—कथन किए हैं, **त जहा**—जैसे कि —

जालि—जालि कुमार, **मयालि**—मयालि कुमार, **उवयालि**—उपयालि कुमार, **पुरिससेणे य**—और पुरुषसेन, **वारिसेणे य**—और वारिषेण, **पजुन्न**—प्रद्युम्नकुमार, **सब**—शाम्बकुमार, **अनिरुद्धे**—अनिरुद्धकुमार,**सच्चनेमी य**—और सत्यनेमिकुमार, **दढनेमी**—दृढनेमिकुमार, **जइ ण**—यदि, **भंते**!—हे भगवन्!, **समणेण**—श्रमण,**जाव**—यावत्, **सपत्तेण**—मोक्षप्राप्त महावीरने,**चउत्थस्स वग्गस्स**—चौथे वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए है तो हे भगवन्!, **पढमस्स ण अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का, **के अट्ठे पण्णत्ते**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? (श्री सुधर्मा स्वामी बोले) **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू**!—हे जम्बू!, **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल तथा उस समय मे, **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **तीसे**—उस नगरी मे, **जहा**—जिस प्रकार, **पढमे**—प्रथम अध्ययन मे कहा जा चुका है, वैसे ही, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **आहेवच्च**—राज्य करते हुए, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—विहरण कर रहे थे।

तत्थ ण—वहा, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरीमे, **वसुदेवे राया**—राजा वसुदेव भी राज्य करते थे, उनकी, **धारिणी**—धारिणी नाम की रानी थी, **वण्णओ**—उस का वर्णन औपपातिक सूत्र की भाति समझ लेना चाहिये। (इन के घर एक बालक ने जन्म लिया), **जहा गोयमो**—जिस प्रकार गौतम कुमार का जन्मोत्सव मनाया गया था, (उसी प्रकार इसका भी जन्मोत्सव मनाया गया, **नवर**—इतना अन्तर है कि इस बालक का नाम, **जालिकुमारे**—जालिकुमार रखा गया। इसका पचास राजकन्याओ से विवाह किया गया, विवाह मे इनको, **पन्नासतो दातो**—पचास-पचास प्रकार का दहेज दिया गया। इन्होने भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली और, **बारसगी**—बारह अगो का अध्ययन किया, **सोलस वासा परितास्रो**—सोलह वर्षों तक दीक्षा पाली, **सेस जहा गोयमस्स**—शेष वर्णन गौतम कुमार के समान समझ लेना चाहिये, **जाव**—यावत्, **सेतुञ्जे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव—इसी प्रकार, **मयालि**—मयालि कुमार, **उवयालि**—उपयालि कुमार, **पुरिससेणे य**—और पुरुष सेन, **वारिसेण य**—और वारिषेण, **एव**—इसी प्रकार, **पज्जुन्नेवि**—प्रद्युम्न कुमार का जीवन भी समझ लेना चाहिये, **नवर**—अन्तर इतना है कि, **कण्हे पिया**—इन के पिता कृष्ण थे, **रुप्पिणी माता**—माता रुक्मिणी थी, **एव**—इसी प्रकार, **सबेवि**—शाम्ब कुमार का जीवन भी समझ लेना चाहिये, **नवर**—इतनी विशेषता है कि इनकी, **जबवती माता**—माता का नाम जाम्बवती था, **एव अनिरुद्धेवि**—इसी प्रकार राजकुमार अनिरुद्ध का जीवन भी जान लेना चाहिये, **नवर**—इतना

अन्तर है कि इनके, **पज्जुन्ने पिया**—पिता प्रद्युम्न थे, **वेदब्भी माया**—माता का नाम वैदर्भी था, **एव सच्चनेमी**—इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का कथानक है, **नवर**—अन्तर इतना है कि उनके, **समुद्दविजये पिता**—पिता समुद्रविजय थे और, **सिवा माता**—माता का नाम शिवा था, **दढनेमीवि**—इसी तरह दृढनेमि कुमार की जीवनी भी समझ लेनी चाहिये, **सव्वे**—इन सब का, **एगगमा**—एक जैसा पाठ अर्थात् वर्णन है, **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग का, **निक्खेवश्रो**—निक्षेपक उपसहार समझ लेना चाहिये।

मूलार्थ— अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे निवेदन करते हुए आर्य अनगार जम्बू बोले—'भगवन् ! यावत् मोक्ष सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के तीसरे वर्ग का यह अर्थ बताया है तो हे भगवन् । उन्होने चतुर्थ वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?'

अपने शिष्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे-

'जम्बू ! मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्गके दश अध्ययन कथन किये हैं। उन अध्ययनो के नाम इस प्रकार है-

१ जालिकुमार, २ मयालिकुमार, ३ उपयालिकुमार, ४ पुरुषसेण कुमार, ५ वारिषेण कुमार, ६. प्रद्युम्न कुमार, ७ शाम्ब कुमार, ८. अनिरुद्ध कुमार, ९ सत्यनेमि कुमार, १० दृढनेमि कुमार।

अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके आर्य जम्बू अनगार ने अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो में पुन निवेदन किया—

'भगवन् ! मोक्ष सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीरने यदि अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं तो भगवन्, उन्होने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?'

आर्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—

'जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे द्वारिका नगरी थी उसमे वासुदेव कृष्ण राज्य किया करते थे। नगरी की लम्बाई-चौडाई तथा कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव आदि का परिचय प्रथम अध्ययन मे दिया जा चुका है। इसी द्वारिका नगरी के एक भाग के शासक महाराज वसुदेव थे। महाराज वसुदेव की रानी का नाम धारिणी था। समय आने पर माता धारिणी ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का लालन-पालन प्रथम अध्ययन मे वर्णित राजकुमार गौतम के समान किया गया। अन्तर केवल इतना

है कि नामसस्कार करते समय इस बालक का नाम जालिकुमार रखा गया। युवक हो जाने पर जालिकुमार का पचास राजकन्याओ के साथ विवाह सम्पन्न हुआ, इनको पचास-पचास प्रकार का दहेज मिला।

एक बार द्वारिका नगरी मे भगवान अरिष्टनेमि पधारे, जालि कुमार भगवान की सेवा मे उपस्थित हुए, भगवान के धर्मोपदेश से उनके हृदय मे वैराग्यभाव जागा और वे माता पिता से आज्ञा लेकर भगवान के चरणो मे दीक्षित हो गए। इन्होने बारह अगो का अध्ययन किया। सोलह वर्ष तक सयम-साधना की आराधना की। जिस प्रकार प्रथम अध्ययन मे वर्णित गौतम मुनिराज ने भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षु-प्रतिमाओ का आराधन किया, गुणरत्न तप किया, स्थविरो के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर तपस्या की, उसी प्रकार मुनि जालिकुमार ने भी यह सब कुछ किया और अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध-पद को प्राप्त कर लिया।

जालिकुमार की भाति मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरिषसेन कुमार और वारिषेणकुमार ने भी सयम-साधना द्वारा सिद्ध-पद की प्राप्ति की। इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार, शाम्बकुमार, अनिरुद्धकुमार, सत्यनेमिकुमार तथा दृढनेमि कुमार भी सिद्ध-पद को प्राप्त हुए। अन्तर केवल इतना है कि प्रद्युम्न कुमार के पिता श्रीकृष्ण और माता रुक्मिणी थी। शाम्बकुमार की माता जाम्बवती, अनिरुद्ध के पिता प्रद्युम्न माता वैदर्भी तथा सत्यनेमि कुमार तथा दृढनेमि कुमार इन दोनो के पिता समुद्रविजय और माता शिवा थी। इन सब का शेष वर्णन समान ही है। सयम-साधना करके सभी शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हो गये।

आर्य सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि हे जम्बू! मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र का तृतीय वर्ग सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार के मन में चतुर्थ वर्ग के श्रवण करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होने अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो में विनयपूर्वक निवेदन करते हुए कहा—'गुरुदेव! मेरी प्रार्थना है कि अब आप मुझे अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का वर्णन सुनाने की कृपा करें। विश्ववन्द्य मगल-मूर्ति भगवान महावीर ने चतुर्थ वर्ग में जिन महापुरुषो के जीवन की व्याख्या की है उन्हे सुनाने का

अनुग्रह करे। अपने विनीत शिष्य जम्बू की जिज्ञासा भरी प्रार्थना को सुन कर महामहिम आर्य सुधर्मा स्वामी बोले कि जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग मे दस अध्ययन बतलाए हैं। जिस अध्ययन मे जिस महापुरुष के जीवन का उल्लेख किया गया है, उस अध्ययन का वही नाम रक्खा गया है। इन दस महापुरुषो मे जालि कुमार, मयालि कुमार, उपयालि कुमार, पुरुषसेन कुमार तथा वारिषेण कुमार ये पाच महापुरुष वासुदेव श्री कृष्ण के भाई थे। अन्तर केवल इतना है कि वासुदेव कृष्ण की माता देवकी थी और जालिकुमार आदि की माता का नाम धारिणी था। इन पाचो महापुरुषो का अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे वर्णित गौतम कुमार की भान्ति पालन-पोषण हुआ था, प्रत्येक का ५०-५० राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ था, इन को ५०-५० प्रकार का दहेज मिला था, इन पाचो ने भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षा ली थी। बारह अगो का अध्ययन किया था, सोलह वर्ष तक इन्होने सयम साधना की थी और अन्त मे शत्रुञ्जय पर्वत पर जप-तप के साथ निर्वाण-पद पाया था।

चतुर्थ वर्ग मे वर्णित छटे महापुरुष का नाम प्रद्युम्न कुमार था। ये वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे, इनकी माता का नाम रुक्मिणी था। सातवे महापुरुष शाम्ब कुमार थे, ये भी श्रीकृष्ण के पुत्र थे। इनकी माता का नाम जाम्बवती था। आठवे महापुरुष अनिरुद्ध कुमार थे, इन के पिता का नाम प्रद्युम्न* और माता का नाम वैदर्भी था। नौवें महापुरुष सत्यनेमि कुमार और दसवे दृढनेमि कुमार थे। ये दोनो श्रीकृष्ण के ताऊ महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे, इनकी माता का नाम शिवा देवी था। ये महापुरुष भी गौतम कुमार की तरह राजपाट छोड कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे साधु बने थे। तथा गौतम कुमार की भाति सयम-साधना की आराधना के अनन्तर शत्रुञ्जय पर्वत पर इन्होने निर्वाणपद प्राप्त किया था।

सूत्रकार ने चतुर्थ वर्ग मे वर्णित जालि कुमार आदि सभी महापुरुषो के जीवनो को एक समान बतलाया है। यह समानता केवल चारित्रपर्याय को ले कर ही समझनी चाहिये। ससारी जीवन सब का विभिन्न था, विभिन्न राजकुमारियो के साथ ही इनका विवाह हुआ था। यह सत्य है कि सूत्रकार ने प्रस्तुत वर्ग मे इन महापुरुषो के सासारिक जीवन का कोई उल्लेख नही किया, क्योकि शास्त्रकार का मुख्य ध्येय मोक्ष और उस के साधनो का वर्णन है, अत चारित्रवर्णन मे इसी की प्रधानता रखनेवाले अशो को ही शास्त्रकार मुख्य स्थान देते हैं। कही-कही पर गृहस्थ-जीवन का जो वर्णन प्राप्त होता है वह आनुषगिक है।

जालि कुमार आदि दसो महापुरुषो के जीवनो के अध्ययन से यह भली भान्ति प्रमाणित हो जाता है कि ये सब यदुवशी थे, राज-परिवार से सम्बन्धित थे, उच्च व्यक्तित्व के धनी पुरुष थे, ये बडे-बडे सम्पत्तिशाली गण्य-मान्य पुरुष भी अपने राज्यवैभव को त्याग कर साधना के कठोरतम

---

* श्री अनिरुद्ध कुमार के पिता श्री प्रद्युम्न कुमार भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होनेवाले तथा श्रीकृष्ण के पुत्र ही प्रतीत होते हैं। आज के युग मे भी पिता-पुत्र साधु बनते हैं, माता-पुत्री साध्वी बनती हैं। फिर भगवान अरिष्टनेमि का युग तो साक्षात् धर्म का युग था। उस समय पिता पुत्र का साधु बनना तो एक साधारण बात रही होगी।

मार्ग पर चलते है और मार्ग मे आनेवाले सभी परीषहो को सहर्ष सहन करते है। यह वर्णन भारतीय जनवृत्ति के आध्यात्मिकता के प्रति आकर्षण का ज्वलन्त उदाहरण है। वस्तुत ऐसे ऐसे अध्यात्म-निष्ठ महापुरुषो के प्रताप से ही धर्म जीवित रहा है और ससार मे धर्म की प्रभावना होती रही है। धन्य हैं वे महापुरुष ! जो आध्यात्मिकता के पावन मार्ग पर चलते हुए अपने परमसाध्य, मोक्ष को प्राप्त करते हैं, तथा अन्य ससारी जनो को इस महामार्ग पर चलने की प्रेरणा दे कर उन के जीवन को कल्याणोन्मुख बनाते हैं।

"समणेण जाव सपत्तेण" यहा पठित **'जाव'** पद से अभीष्ट पदो की सूचना पीछे पृष्ठ १३ पर दी जा चुकी है।

"आहेवच्च जाव विहरइ" यहा पठित जाव पद—**"पोरेवच्च, भट्टित्त, सामित्त, महत्तरगत्त आणा-ईसर सेणावच्च करेमाणे, पालेमाणे"** इन पदो का परिचायक है। उनका भाव यह है कि श्रीकृष्ण सब मे प्रधान एव अग्रसर थे सबका पालन-पोषण करने वाले थे, सबके साथ उनका स्वामी सेवक जैसा सबध था। (देखिए पृ० ३७)

"गोयमस्स जाव सिद्धे" यहा पठित **"जाव"** पद गौतम मुनि के प्रकरण मे निर्वाणपद प्राप्त करने के निमित्त शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण करने से पूर्व का जो वर्णन है, उसकी ओर सकेत करता है।

"तीसे जहा पढमे कण्हे" का अर्थ है—अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे द्वारिका नगरी तथा महाराज कृष्ण के राज्य-वैभव का जिस प्रकार वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहा भी समझ लेना। अर्थात् जिस प्रकार प्रथम अध्ययन मे वर्णित द्वारिका नगरी मे महाराज श्रीकृष्ण राज्य करते थे, उसी प्रकार उनके राज्य-वैभव का वर्णन यहा भी समझ लेना चाहिए।

"धारिणी" के साथ पठित वर्णक शब्द से अभीष्ट पदो के लिये पीछे पृष्ठ ४० देखिए।

"जहा गोयमो नवर जालि कुमारे" इन पदो का अर्थ है—जिस प्रकार गौतमकुमार का जन्मोत्सव मनाया गया, वैसे ही जालिकुमार का भी मनाया गया। अन्तर केवल इतना है कि नाम-सस्कार करते समय बालक का नाम जालिकुमार रखा गया।

"सेस जहा गोयमस्स जाव सेत्तुञ्जे सिद्धे" इन पदो का अर्थ है—जिस प्रकार सध्याकाल में गौतममुनि ने भगवान अरिष्टनेमि से भिक्षु-प्रतिमाओ की आराधना एव तपस्या की उपासना और शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण करने की आज्ञा लेकर स्थविर मुनियो के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण किया था, उसी प्रकार ये समस्त साधना-कार्य जालिकुमार ने भी किए।

"सव्वे एगगमा"—सर्वे एकगमा —सर्वाणि अध्ययनानि समानपाठानीति—अर्थात् चतुर्थ वर्ग के जो दश अध्ययन हैं, इनमे वर्णित राजकुमारो के जीवन की व्याख्या करनेवाले पाठ एक जैसे ही हैं। नाम आदि का जो अन्तर था उसे स्पष्ट करने के अनन्तर सूत्रकार कहते हैं कि जालिकुमार आदि राजकुमारो का शेष जीवन एक जैसा ही समझना चाहिए—सभी के घटनावृत्त एक समान हैं।

'**निक्खेवओ**" का अर्थ है—निक्षेपक। निक्षेपक उपसहार या समाप्ति-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा मे वह समाप्ति-वाक्य इस प्रकार है—

एव खलु जबू। समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। अर्थात् हे जम्बू! इस प्रकार निश्चय ही मोक्ष—सम्प्राप्त यावत् भगवान महावीर ने आठवें अग अन्तकृद्दशागसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। ऐसा मैं कहता हू।

चतुर्थ वर्ग समाप्त
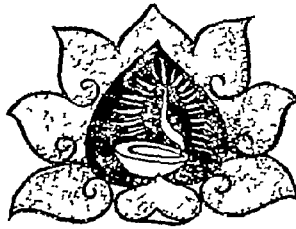
पञ्चम वर्ग

अब सूत्रकार पञ्चम वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं —

मूल—जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पचमस्स वग्गस्स अतगडदसाण समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जबू ! समणेण जाव संपत्तेण पचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

पउमावई य गोरी, गधारी लक्खणा सुसीमा य ।
जबवई सच्चभामा, रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता वि ॥१॥

जइ ण भते ! पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स भते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एव खलु जंबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवती णयरी, जहा पढमे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्च जाव विहरइ । तस्स ण कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावती नाम देवी होत्था । वण्णओ । तेण कालेण, तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमो समोसढे जाव विहरइ । कण्हे वासुदेवे णिग्गते, जाव पज्जुवासइ, तते ण सा पउमावती देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणो हट्ठ० जहा देवती जाव पज्जुवासइ । तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावतीए य धम्म कहा, परिसा पडिगया ।

छाया—यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन चतुर्थस्य वर्गस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त , पञ्चमस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थ प्रज्ञप्त ? एव खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन पञ्चमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

पद्मावती च गौरी, गन्धारी लक्ष्मणा, सुसीमा च ।
जाम्बवती सत्यभामा, रुक्मिणी मूलश्री मूलदत्तापि ॥१॥

यदि भदन्त ! पञ्चमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य कोऽर्थं प्रज्ञप्त ? एव खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, यथा प्रथमे यावत् कृष्णो वासुदेव , आधिपत्य यावद् विहरति । तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावती नाम्नी देवी बभव, वर्णक. ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हन्नरिष्टनेमि समवसृतो यावत् विहरति। कृष्णो वासुदेवो निर्गत, यावत् पर्युपासति। तत सा पद्मावती अस्या कथाया लब्धार्था हृष्ट-तुष्टा सती यथा देवकी यावत् पर्युपासति, ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावत्याश्च धर्मकथा, परिषत् प्रतिगता।

पदार्थ—**भते!**—हे भगवन्!, **जइ**—यदि, **ण**—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयुक्त है, **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान् महावीर ने, **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग का, **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है तो, **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र के, **पचमस्स वग्गस्स**—पचम वर्ग का, **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान ने, **के अट्ठे**—क्या अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है? **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जम्बू**—हे जम्बू! **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान ने, **पचमस्स**—पाचवें, **वग्गस्स**—वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं, **त जहा**—जैसेकि

पउमावती—पद्मावती देवी, **य**—और, **गोरी**—गौरी देवी, **गधारी**—गाधारी देवी, **लक्खणा**—लक्ष्मणा देवी, **य**—और, **सुसीमा**—सुसीमा देवी, **जववइ**—जाम्बवती देवी, **सच्चभामा**—सत्यभामा देवी, **रुप्पिणी**—रुक्मिणी देवी, **मूलसिरि**—मूलश्री देवी, **मूलदत्ता**—मूलदत्ता देवी, **वि**—यह अव्ययपद पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त होता है।

भते—हे भगवन्!, **जइ ण**—यदि, **पचमस्स वग्गस्स**—पाचवे वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं तो, **भते!**—हे भगवन्! **पढमस्स ण अज्झयणस्य**—पहले अध्ययन का, **के अट्ठे**—क्या अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू!**—हे जम्बू, **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **जहा**—जिस प्रकार, **पढमे**—प्रथम अध्ययन मे वर्णन किया है, **जाव**—यावत् वैसे ही, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **आहेवच्च**—राज्य, **जाव-विहरइ**—यावत् कर रहे थे, **तस्स ण**—उस, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को, **पउमावती नाम देवी**—पद्मावती देवी नाम की रानी, **होत्था**—थी, **वण्णओ**—उसका वर्णन अन्य सूत्रो मे वर्णित स्त्री वर्णन जैसा जानना चाहिए, **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **अरहा**—अरिहन्त, वीतराग भगवान, **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि, **समोसढे**—पधारे, **जाव**—यावत् नन्दनवन मे तप सयम से आत्मा को भावित करते हुए, **विहरइ**—विचरण करने लगे, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **णिग्गते**—द्वारिका से निकले, प्रभु चरणो मे वन्दन करने गये, **जाव**—यावत् भगवान की, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना—भक्ति करने लगे, **तते ण**—उसके अनन्तर, **सा पउमावती देवी**—वह पद्मावती देवी, **इमीसे कहाए**—इस कथा वृत्तान्त को, **लद्धट्ठा समाणी**—जानकर, **हट्ठ०**—बहुत प्रसन्न हुई, **जहा**—जिस प्रकार, **देवती**—देवकी देवी धार्मिक रथ पर चढ कर भगवान की सेवा मे गई थी उसी प्रकार पद्मावती भी गई और भगवान की, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना-भक्ति करने लगी, **तए ण**—उसके अनन्तर, **अरहा**—अरिहत **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को, **य**—और, **पउमावतीए**—पद्मावती देवी को, **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते हैं, धर्म कथा सुन कर, **परिसा पडिगता**—जनता चली जाती है।

मूलार्थ—आर्य जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के पचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जम्बू अनगार की इस प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मास्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए बोले—कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के पचम वर्ग के दस अध्ययन बताए है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—पद्मावती देवी २—गौरी देवी ३—गान्धारी देवी ४—लक्ष्मणा देवी ५—सुसीमा देवी ६—जाम्बवती देवी ७—सत्यभामा देवी ८—रुक्मिणी देवी ९—मूलश्री देवी १०—मूलदत्ता देवी ।

अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर अनगार आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे पुन निवेदन करते है कि 'भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने यदि पचम वर्ग के दस अध्ययन वतलाए हैं तो भगवन् ! भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ वताया है ?'

आर्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी कहने लगे—'हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे द्वारिका नगरी थी। प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे जैसे वर्णन किया गया था उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव वहा पर राज्य किया करते थे। कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी का नाम पद्मावती था। पद्मावती देवी नारी-योग्य सभी सद्‌गुणो से सम्पन्न थी। उस का गुण-वर्णन औपपातिक सूत्र की भाति समझ लेना चाहिये।

उस काल तथा उस समय वीतराग भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। नगरी के वाहिर नन्दनवन नामक उद्यान मे वे विराजमान हो गए। तप एव सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

"भगवान नगरी मे पधार गए हैं," इस बात की सूचना जब श्रीकृष्ण को मिली

तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हन्नरिष्टनेमि समवसृतो यावत् विहरति । कृष्णो वासुदेवो निर्गत, यावत् पर्युपासति । तत सा पद्मावती अस्या कथाया लब्धार्था हृष्ट-तुष्टा सती यथा देवकी यावत् पर्युपासति, ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावत्याश्च धर्मकथा, परिषत् प्रतिगता ।

पदार्थ—**भते** !—हे भगवन् !, **जइ**—यदि, **ण**—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयुक्त है, **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान् महावीर ने, **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग का, **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है तो, **अन्तगडदसाण**—अन्तगड सूत्र के, **पचमस्स वग्गस्स**—पचम वर्ग का, **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान ने, **के अट्ठे**—क्या अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है ? **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जम्बू**—हे जम्बू ! **जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान ने, **पचमस्स**—पाचवे, **वग्गस्स**—वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं, **त जहा**—जैसेकि

पउमावती—पद्मावती देवी, **य**—और, **गोरी**—गौरी देवी, **गधारी**—गाधारी देवी, **लक्खणा**—लक्ष्मणा देवी, **य**—और, **सुसीमा**—सुसीमा देवी, **जबवइ**—जाम्बवती देवी, **सच्चभामा**—सत्यभामा देवी, **रुप्पिणी**—रुक्मिणी देवी, **मूलसिरि**—मूलश्री देवी, **मूलदत्ता**—मूलदत्ता देवी, **वि**—यह अव्ययपद पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त होता है ।

भते—हे भगवन् !, **जइ ण**—यदि, **पचमस्स वग्गस्स**—पाचवे वर्ग के, **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं तो, **भते!**—हे भगवन् ! **पढमस्स ण अज्झयणस्य**—पहले अध्ययन का, **के अट्ठे**—क्या अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है ।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **जबू** !—हे जम्बू, **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **जहा**—जिस प्रकार, **पढमे**—प्रथम अध्ययन मे वर्णन किया है, **जाव**—यावत् वैसे ही, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **आहेवच्च**—राज्य, **जाव-विहरइ**—यावत् कर रहे थे, **तस्स ण**—उस, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव की, **पउमावती नाम देवी**—पद्मावती देवी नाम की रानी, **होत्था**—थी, **वण्णओ**—उसका वर्णन अन्य सूत्रो मे वर्णित स्त्री वर्णन जैसा जानना चाहिए, **तेण कालेण**—उस काल, **तेण समएण**—उस समय, **अरहा**—अरिहन्त, वीतराग भगवान, **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि, **समोसढे**—पधारे, **जाव**—यावत् नन्दनवन मे तप सयम से आत्मा को भावित करते हुए, **विहरइ**—विचरण करने लगे, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **णिग्गते**—द्वारिका से निकले, प्रभु चरणो मे वन्दन करने गये, **जाव**—यावत् भगवान को, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना—भक्ति करने लगे, **तते ण**—उसके अनन्तर, सा **पउमावती देवी**—वह पद्मावती देवी, **इमीसे-कहाए**—इस कथा वृत्तान्त को, **लद्धट्ठा समाणी**—जानकर, **हट्ठ०**—बहुत प्रसन्न हुई, **जहा**—जिस प्रकार, **देवती**—देवकी देवी धार्मिक रथ पर चढ कर भगवान की सेवा मे गई थी उसी प्रकार पद्मावती भी गई और भगवान की, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना-भक्ति करने लगी, **तए ण**—उसके अनन्तर, **अरहा**—अरिहत **अरिटठनेमी**—अरिष्टनेमि, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को, **य**—और, **पउमावतीए**—पद्मावती देवी को, **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते है, धर्म कथा सुन कर, **परिसा पडिगता**—जनता चली जाती है ।

मूलार्थ—आर्य जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के पचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जम्बू अनगार की इस प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मास्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए बोले—कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के पचम वर्ग के दस अध्ययन बताए है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—पद्मावती देवी २—गौरी देवी ३—गान्धारी देवी ४—लक्ष्मणा देवी ५—सुसीमा देवी ६—जाम्बवती देवी ७—सत्यभामा देवी ८—रुक्मिणी देवी ९—मूलश्री देवी १०—मूलदत्ता देवी।

अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर अनगार आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे पुन निवेदन करते है कि 'भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने यदि पचम वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं तो भगवन् ! भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?'

आर्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी कहने लगे—'हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे द्वारिका नगरी थी। प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे जैसे वर्णन किया गया था उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव वहा पर राज्य किया करते थे। कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी का नाम पद्मावती था। पद्मावती देवी नारी-योग्य सभी सद्गुणो से सम्पन्न थी। उस का गुण-वर्णन औपपातिक सूत्र की भाति समझ लेना चाहिये।

उस काल तथा उस समय वीतराग भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। नगरी के बाहिर नन्दनवन नामक उद्यान मे वे विराजमान हो गए। तप एव सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

"भगवान नगरी मे पधार गए हैं," इस बात की सूचना जब श्रीकृष्ण को मिली

तो वे भगवान के दर्शन करने के लिये अपने घर से चले और द्वारिका नगरी के बाहिर उद्यान मे विराजमान भगवान की सेवा मे उपस्थित हो कर उनकी सेवा-भक्ति करने लगे ।

श्रीकृष्ण की पट्टरानी पद्मावती देवी ने भी भगवान के आगमन के शुभ सवाद को सुना । इस शुभ समाचार को सुन कर पद्मावती आनन्दविभोर हो उठी । उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। उसने तत्काल अपने राजसेवको को धार्मिक रथ तैयार करने की आज्ञा प्रदान की । माता देवकी की तरह वह भी भगवान के चरणो मे उपस्थित होकर उनकी सेवा करने लगी ।

वासुदेव श्रीकृष्ण, महारानी पद्मावती तथा अन्य श्रद्धालु जनता के यथास्थान बैठ जाने पर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि ने सब को धर्म-कथा सुनाई। धर्मकथा सुनने के अनन्तर वासुदेव कृष्ण तथा महारानी पद्मावती को छोड कर अन्य श्रोता-मण्डल वहाँ से चला गया ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे पचम वर्ग के विषय का वर्णन किया गया है। इस वर्ग मे दस अध्ययन हैं जिनमे दस सन्नारियो के आध्यात्मिक जीवन की गाथाए प्रस्तुत की गई हैं। जिस अध्ययन मे जिस नारी के जीवन का वर्णन हुआ है, उस नारी के नाम से ही उस अध्ययन का नाम रखा गया है। जैसे पहले अध्ययन मे श्रीकृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती की जीवन कथा वर्णित हुई है, इसलिये सूत्रकार ने इस पहले अध्ययन का नाम 'पद्मावती' रखा है। इसी प्रकार आगे के नौ अध्ययनो का नाम-करण किया गया है। इस वर्ग मे जिन दस नारियो के जीवन का उल्लेख किया गया है। उनमे से आठ तो श्रीकृष्ण की रानिया हैं और दो इन की पुत्रवधुए है। इस प्रकार इस पचम वर्ग मे श्रीकृष्ण के ही नारी-परिवार की जीवन कथाए वर्णित की गई है।

"समणेण जाव सपत्तेण', जहा पढमे जाव कण्हे" तथा **"आहेवच्च जाव विहरइ"** इन वाक्यो मे पठित **जाव** पद और **' देवी होत्था वण्णओ"** यहा पठित वर्णक पद से अभिमत पाठ का सकेत पीछे किया जा चुका है।*

"समोसढे जाव विहरइ" "णिग्गते जाव पज्जुवासइ" इन वाक्यो मे पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर पढे गए अवशिष्ट पदो का बोधक है। (इन पदो की व्याख्या पृष्ठ १०० पर देखिए)

"हट्ठ०" यहा दिया गया बिंदु **तुट्ठचित्तमाणदिया पीइमणा, परमसोमणस्सिया, हरिस वस-विसप्पमाणहियया**—आदि पदो का सूचक है।‡

---

* देखिए पृष्ठ ४०-४१ पर देवी धारिणी का वर्णन।

‡ हृष्ट-तुष्ट-चित्तानन्दिता—हृष्टा हर्षिता, तुष्टा-सतुष्टा धन्याह द्वारिकाया भगवन्त समागतवन्त, इति कृतकृत्या, हृष्ट-तुष्ट-चित्तेन आनदिता, प्रीतिमना तृप्तचित्ता, परमसौमनस्यिता सातिशयप्रमोदभावमापन्ना, हर्षवश-विसर्पद्हृदया हर्षातिशय-प्रवर्द्धमान-मना।

"जहा देवती जाव पज्जुवासइ" इन पदो का अर्थ है—तृतीय वर्गीय आठवें अध्ययन मे जिस प्रकार माता देवकी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर उनकी सेवा-भक्ति करती है, ठीक उसी प्रकार महारानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर भगवान की सेवा-भक्ति करती है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि की धर्म-कथा समाप्त होने के अनन्तर श्रीकृष्ण और पद्मावती को छोडकर द्वारिका की अन्य जनता वापिस अपने-अपने घर को चली गई। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—तते ण कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि वदइ, णमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—

इमीसे ण भते ! बारवतीए णयरीए नवजोयणा जाव देवलोगभूयाए किं मूलाते विणासे भविस्सइ ?

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—एव खलु कण्हा ! इमीसे बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

कण्हस्स वासुदेवस्स अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए एव सोच्चा निसम्म एय अब्भत्थिए ४ समुप्पन्ने—

धन्ना ण ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पजुन्न-सब-अनिरुद्ध-दढनेमि-सच्चनेमिप्पभियओ कुमारा जेण चइत्ता हिरण्णं जाव परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिय मुडा जाव पव्वइया अहण्ण अधन्ने, अकयपुण्णे रज्जे य जाव अतेउरे य मणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए ४, नो सचाएमि अरहतो अरिट्ठनेमिस्स जाव पवइत्तए।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासीसे नूण कण्हा ! तव अय अब्भत्थिए ४ समुपन्ने—धन्ना ण ते जाव पव्वइत्तए। से नूण कण्हा ! अयमट्ठे समट्ठे ? हन्ता अत्थि। त नो खलु कण्हा ! त एव भूत वा भव्व वा भविस्सइ वा जन्न वासुदेवा चइत्ता हिरण्ण जाव पव्वइस्सन्ति।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—न एय भूय वा जाव पव्वतिस्सति ? कण्हाइ !

अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेव एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा, से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चति न एयं भूयं जाव पव्वइस्सति।

छाया—तत कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं वदन्ते, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवमवदत् अस्या भदन्त ! द्वारवत्या नगर्या नवयोजनाया यावत् देवलोकभूताया किं मूलको विनाशो भविष्यति ? कृष्ण ! इति, अर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—

एवं खलु कृष्ण ! अस्या द्वारवत्या नगर्या नवयोजनाया यावत् भूताया सुराग्निद्वैपायनमूलको विनाशो भविष्यति।

कृष्णस्य वासुदेवस्य अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके एतत् श्रुत्वा निशम्य अयमाध्यात्मिक ४ समुत्पन्न —धन्यास्ते जालि-मयालि-उपयालि-पुरुषषेण-वारिषेण-प्रद्युम्न-शाब-अनिरुद्ध-दृढनेमि-सत्यनेमि-प्रभृतय कुमारा, ये त्यक्त्वा हिरण्य यावत् परिभाज्य अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रजिता। अहमधन्य, अकृतपुण्य राज्ये च यावत् अन्त पुरे च मानुष्यकेषु च कामभोगेषु मूर्च्छित ४. न शक्नोमि अर्हतोऽरिष्टनेमे यावत् प्रव्रजितुम्।

कृष्ण इति, अर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—अथ नून कृष्ण ! तवायमाध्यात्मिक ४ समुत्पन्न —धन्यास्ते यावत् प्रव्रजितुम् ? अथ नून कृष्ण ! अयमर्थ समर्थ ? हन्त, अस्ति। तन्नो खलु कृष्ण ! तदेव भूत वा भव्य वा भविष्यति वा यद् वासुदेवा त्यक्त्वा हिरण्य यावत् प्रव्रजिष्यन्ति।

अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-न एतद् भूत वा यावत् प्रव्रजिष्यन्ति ? कृष्ण इति, अर्हन् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेवमेवमवदत्—एवं खलु कृष्ण ! सर्वेऽपि च वासुदेवा पूर्वभवे निदानकृता, अथ एतेनार्थेन कृष्ण ! एवमुच्यते न एतद् भूत यावत् प्रव्रजिष्यन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर, **ण**—वाक्य सौंदर्य के लिये है, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त-वीतराग अरिष्टनेमि भगवान को, **वंदइ णमसति**—वन्दन एव नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता णमसित्ता**—वन्दन एव नमस्कार कर के, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे।

भंते !—हे भगवन् !, **इमीसे णं**—इस, **नवजोयण**—नौ योजन चौडी, **जाव**—यावत्, **देवलोग भूयाए**—देवलोक के समान, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का, **विणासे**—विनाश, **किंमूलाते**—किंमूलक—किस कारण से, **भविस्सति**—होगा, **कण्हाइ !**—कृष्ण ! ऐसा कह कर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि, **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले—

एवं खलु—इस प्रकार, **कण्हा !**—हे कृष्ण !, **इमीसे**—इस, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का जो कि, **नवजोयण**—नौ योजन चौडी, **जाव**—यावत्, **भूयाए**—स्वर्ग लोक के समान है, **विणासे**—विनाश, **सुरग्गिदीवायणमूलाए**—सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण, **भविस्सइ**—होगा।

कण्हस्स वासुदेवस्स—कृष्ण वासुदेव को, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **अन्तिए**—पास, **एय**—यह बात, **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—विचार कर, **अय**—यह, **अज्झत्थिए**—आध्यात्मिक विचार, ४—यह चार का अक **कप्पिए**—कल्पना, **चिन्तिए**—पुन -पुन विचार किया, **मणोगए**—हार्दिक चिन्तन, **सकप्पे**—सकल्प इन पदो का ससूचक है, **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ—

ते—वे, **जालि**—जालिकुमार, **मयालि**—मयालिकुमार, **उवयालि**—उपयालिकुमार, **पुरिससेण**—पुरुषषेण कुमार, **वारिषेण**—वारिषेण कुमार, **पज्जुन्न**—प्रद्युम्न कुमार, **सब**—शाम्ब कुमार **अनिरुद्ध**—अनिरुद्ध कुमार, **दढनेमि**—दृढनेमि कुमार, **सच्चनेमि**—सत्यनेमि कुमार **पभियओ**—आदि, **कुमारा**—कुमार, **धन्ना ण**—धन्य हैं, **जेण**—जो, **हिरण्ण**—सोना आदि, **जाव**—यावत् अपने धन को, **चइत्ता**—छोड कर, **परिभाएत्ता**—अपने भाइयो तथा याचको मे बाट कर, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के, **अतिय**—पास, **मुडा**—मुण्डित साधु, **जाव**—यावत्, **पव्वइया**—प्रव्रजित अर्थात् दीक्षित हो गए है, **अह ण**—मैं, **अधन्ने**—अधन्य हू, **अकयपुण्णे**—पुण्य न करनेवाला हू, **रज्जे य**—और राज्य मे, **जाव**—यावत्, **अतेउरे**—अन्त पुर मे, **य**—समुच्चयार्थक है, **य**—और, **माणुस्सएसु**—मनुष्य जीवन सम्बन्धी, **कामभोगेसु**—काम भोगो मे, **मुच्छिए**—मूर्छित—उन्ही के ध्यान मे लगा हुआ, ४—इस अक से, **गिद्धे**—आकाक्षावाला, **गढिए**—स्नेह जाल मे बधा हुआ, **अज्झोवन्ने**—आसक्त, इन अवशिष्ट पदो का ससूचक है, **नो सचाएमि**—मैं समर्थ नही हू कि, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के पास, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—दीक्षित हो जाऊ।

कण्हाइ !—हे कृष्ण ! ऐसा कह कर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले, **से**—सो, **नूण**—निश्चय ही **कण्हा**—हे कृष्ण ! **तव**—तेरे हृदय मे, **अयमज्झत्थिए**—यह, आध्यात्मिक—विचार, **समुप्पन्ने** ?—उत्पन्न हुआ है कि, **धन्ना ण ते**—वे धन्य है, **जाव**—यावत् जालिकुमार आदि, **पव्वइत्तए**—जो दीक्षित हो गए हैं और मैं अधन्य हू जो दीक्षा नही ले सका, **से**—सो, **नूण**—निश्चय ही, **कण्हा** !—हे कृष्ण ! **अयमट्ठे**—यह बात, **समट्ठे** ?—ठीक है ? **हता अत्थि**—हा भगवन् ! यह ठीक है, **त**—सो, **खलु**—निश्चय ही, **कण्हा** ! हे कृष्ण !, **त**—यह, **एव**—इस प्रकार, **नो**—नही, **भूत वा**—पीछे हुआ है, **भव्व वा**—अथवा हो रहा है, **भविस्सइ वा**—अथवा भविष्य मे होगा, **जण्ण**—जो, **वासुदेवा**—वासुदेव, **हिरण्ण**—सुवर्ण आदि को, **चइत्ता**—छोडकर, **जाव**—यावत्, **पव्वइस्सन्ति**—दीक्षा लेंगे।

भते !—हे भगवन् !, **से**—वह, **केणट्ठेण**—किस कारण से, **एव**—इस प्रकार, **वुच्चइ**—कहा जाता है, **एय**—यह, **न भूय वा**—कभी पहले नही हुआ कि, **जाव**—यावत् वासुदेव, **पव्वइस्सति**—दीक्षित हो सकेंगे, **कण्हाइ**—हे कृष्ण ! ऐसा कह कर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले, **एव**—इस प्रकार **खलु**—निश्चय ही, **कण्हा** !—हे कृष्ण, **सव्वे वि य ण**—सभी, **वासुदेवा**—वासुदेव, **पुव्वभवे**—पूर्व भव में;

निदानकडा—निदान (किसी व्रतानुष्ठान की फल प्राप्ति की अभिलाषा—सकल्प विशेष) किए हुए होते हैं, **से**—सो, **एतेणट्ठेण**—इस कारण से, **कण्हा** !—हे कृष्ण, **एव**—इस प्रकार, **वुच्चति**—कहा जाता है कि, **एय**—यह, **न भूय**—पहिले कभी नही हुआ कि, **पव्वइस्सति**—वासुदेव दीक्षा ले सकेगे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वासुदेव कृष्ण अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना नमस्कार करने के पश्चात् उनसे यह निवेदन करने लगे—

भगवन् ! बारह योजन लबी और नौ योजन चौडी देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारिका नगरी का अन्त किस प्रकार होगा ? और इसके विनाश का कौन कारण बनेगा ?

वासुदेव कृष्ण के इस प्रश्न पर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित करते हुए बोले —

हे कृष्ण ! बारह योजन लबी, नौ योजन चौडी, देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारिका नगरी के विनाश के कारण १ सुरा, २ अग्नि तथा ३ द्वैपायन ऋषि ये तीनो होगे। सुरा-पान करके यदुवशीयुवक द्वैपायन ऋषि का अपमान करेगे, मारपीट करेगे, फिर द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार देव बन कर द्वारिका नगरी को अग्नि से दग्ध कर देगे।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर श्रीकृष्ण विचार मे पड गए, उनके हृदय मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि जालिकुमार, मयालि कुमार, पुरुषसेन कुमार, वारिषेणकुमार प्रद्युम्न कुमार, शाम्बकुमार, दृढनेमिकुमार तथा सत्य-नेमि कुमार आदि धन्य है, जिन्होने सुवर्ण आदि अपने वैभव को छोड कर तथा उसे अपने भाइयो और याचको मे बाँट कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षा ग्रहण कर ली है, परन्तु मेरे जीवन मे धन्य बनने का वह अवसर कहाँ ? मैं तो अकृत-पुण्य हू, राज्य-वैभव और अन्त पुर मे तथा मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो मे मूर्छित हो रहा हू। मेरी शक्ति कहा कि मै भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हो जाऊ ?

कृष्ण वासुदेव को इस तरह विचार-निमग्न देखकर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

कृष्ण ! अभी-अभी तुम्हारे हृदय मे यह सकल्प उठा है कि जालि, मयालि,

तथा पुरुषसेन आदि राजकुमार धन्य हैं, जो कञ्चन-कामिनी को छोडकर तथा अपनी सम्पत्ति को अपने भाइयो तथा याचको मे बाँट कर भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हो गए हैं, परन्तु मैं अधन्य हू, पुण्यरहित हू, जो राज्य एव रनिवास तथा काम-भोगो मे मूच्छित हो रहा हू। मुझ मे भगवान के पास दीक्षित हो जाने की शक्ति नही है। कृष्ण ! यह सत्य है, तुम्हारे हृदय मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है ?

भगवान अरिष्टनेमि की इस बात को सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण ने तत्काल उत्तर दिया—हा भगवन् ! यह सत्य है, आपने जो कुछ कहा है, वही विचार मेरे हृदय मे उत्पन्न हुआ है।

वासुदेव श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव कृष्ण को फिर कहने लगे कि कृष्ण ! यह निश्चय रखो, भूत, वर्तमान, और भविष्यत् इन तीन कालो मे ऐसा नही हो सकता कि वासुदेव राजपाट छोड कर साधु बन जाए, दीक्षा अगीकार कर ले।

भगवान अरिष्टनेमि की यह बात सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान के चरणो मे फिर निवेदन करने लगे कि भगवन् ! वासुदेव भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल मे दीक्षा नही ले सकते, यह किस कारण से कहा जाता है ?

वासुदेव श्रीकृष्ण का यह प्रश्न सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए फिर कहा—कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्वभव मे निदान किए हुए होते हैं, इस कारण भूत, वर्तमान और भविष्यत्काल मे कोई भी वासुदेव राजपाट छोडकर दीक्षित नही हो सकता।

व्याख्या—उदय के साथ अस्त तथा विकास के साथ ह्रास का अनादि कालीन सम्बन्ध है। जो वस्तु बनी है एक दिन उसका अन्त अवश्यभावी है। जन्म लेनेवाले को एक दिन मरना ही पडता है। जन्म के साथ मृत्यु के इस अटल नियम को ससार की कोई शक्ति खण्डित नही कर सकती। इस विश्वास को आगे रखकर द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से पूछा कि भगवन् ! जिस द्वारिका की आज ससार मे धाक है, स्वर्गपुरी भी जिसके सामने नगण्य है, ससार जिसके वैभव तथा रचनागत वैलक्षण्य को देखकर आश्चर्य-चकित हुए विना नही रहता, वह द्वारिका नगरी भी क्या एक दिन अतीत के गर्भ मे चली जाएगी ? इसका यह समस्त सौंदर्य नष्ट हो जाएगा ? ये ऊचे-ऊचे गगन-चवी प्रासाद भूमिसात् हो जाएगे ? भगवन् ! कृपा करके यह वतलाने का भी अनुग्रह करें कि

इस द्वारिका नगरी का अन्त कैसे होगा ? इसका विनाश किस कारण से होगा ? मेरी सानुरोध प्रार्थना है, कि आपश्री इस सम्बन्ध मे कुछ मार्ग दर्शन करे ?

वासुदेव श्रीकृष्ण की इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये भगवान अरिष्टनेमि ने उनके सामने तीन बातें रखी, भगवान बोले—'कृष्ण ! द्वारिका का अन्त तीन कारणो से होगा। इन कारणो का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान ने बताया कि कृष्ण ! द्वारिका के विनाश का सबसे पहला कारण मदिरा है, दूसरा कारण द्वैपायन ऋषि का क्रोध है, तीसरा कारण अग्नि है। इन कारणो से द्वारिका नष्ट हो जाएगी। इसका समस्त वैभव जलकर राख हो जाएगा।

द्वारिका नगरी के विनाश के तीन कारणो मे सर्व प्रथम कारण मदिरा है। इसे शराब भी कहते है। शराब शब्द दो पदो से बना है—शर और आब। शर शरारत अर्थात् धूर्तता का नाम है, आब पानी को कहते है। जो पानी पीनेवाले को इन्सान न रहने दे, उसे शरारती बना दे—शैतान बना दे, माँ और बहिन के अन्तर को भुलादे, हानि और लाभ के विवेक से शून्य कर दे तथा इन्सान को इन्सान के वेप मे हैवान बना दे उसे शराब कहते हैं। शराब शब्द की इस अर्थ-विचारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन का निर्माण एव कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को इससे सदा दूर ही रहना चाहिये।

आचार्य हरिभद्र ने मदिरा के अनिष्ट परिणामो का बडी सुन्दरता से वर्णन करते हुए कहा है —

"वैरूप्य व्याधिपिण्ड स्वजनपरिभव कार्यकालातिपातो।
विद्वेषो ज्ञाननाश स्मृतिमतिहरण विप्रयोगश्च सद्भि ॥
पारुष्य नीचसेवा कुलबलविलयो धर्मकार्यार्थहानि ।
कष्ट वै षोडशैते निरुपचयकरा मद्यपानस्य दोषा ॥"

—हरिभद्रीयाष्टक, १८ वां श्लोक टीका।

—मदिरा के सेवन से शरीर कुरूप और बेडोल हो जाता है, शरीर व्याधियो का घर बन जाता है, घर के लोग तिरस्कार करते हैं, कार्य का उचित समय हाथ से निकल जाता है, द्वेष की उत्पत्ति, ज्ञान का नाश, स्मरण-शक्ति एव बुद्धि का नाश हो जाता है, सज्जनो से जुदाई हो जाती है, वाणी मे कठोरता आती है, नीच लोगो की सेवा करनी पडती है, कुल की हीनता होती है, शक्ति का ह्रास होता है, धर्म, काम एव अर्थ की हानि होती है। इस प्रकार आत्म-पतन करनेवाले मद्यपान के सोलह दोष होते हैं। भक्तराज कबीर के शब्दो मे मदिरा-सेवन का दु खान्त परिणाम देखिए—

"औगुन कहौं शराब का, ज्ञानवन्त सुन लेय।
मानस से पसुआ करे, द्रव्य गाठ का देय ।।
अमला अहारी आतमा, कबहू न पावे पार।
कहे कबीर पुकार के, त्यागो ताहि विचार ॥"

मदिरा के अनिष्ट परिणामो की कहा तक चर्चा की जाये ? मदिरा वैयक्तिक, पारिवारिक, समाजिक तथा राष्ट्रीय सभी दृष्टियो से अहितकर एव हानिप्रद है। राजाओ को आपस मे लडानेवाली

यही मदिरा है, जिसने दैवी प्रकृतिवालो को भी राक्षसी प्रकृति का बना दिया। इसकी बदौलत असंख्य मनुष्य सुखमय जीवन से हाथ धो बैठे। अधिक क्या, इसीने स्वर्ग जैसी द्वारिका नगरी को जलाकर राख बना दिया था।

द्वारिका नगरी के विनाश का दूसरा कारण द्वैपायन ऋषि था। द्वैपायन ऋषि के सम्बन्ध में कोषो मे अनेकों अर्थ लिखे हैं।

१—महाभारत, पुराणो आदि के रचयिता वेदव्यास, इनका जन्म द्वीप मे हुआ था, इसीसे इनका नाम द्वैपायन पड गया।

२—एक प्राचीन ऋषि जिसने द्वारिका जलाने का निदान किया था और जो आगामी उत्सर्पिणी काल मे भरत क्षेत्र मे एक तीर्थकर होगा।

३—इस नाम का एक महर्षि जिसने यादव कुमारो की हसी दिल्लगी से उत्पन्न क्रोध के कारण नियाणा करते हुए अग्निकुमार देव के रूप मे उत्पन्न होकर द्वारिका पुरी को जलाकर भस्म कर दिया था। प्रस्तुत प्रकरण मे द्वैपायन ऋषि शब्द से अन्तिम दोनों अर्थों का ग्रहण करना चाहिये।

द्वारिका नगरी के विनाश का तीसरा कारण अग्नि है। भगवान कहते हैं कि अग्निकुमार द्वारिका को आग लगावेगा और उससे द्वारिका दग्ध हो जावेगी।

सुरा, द्वैपायन ऋषि तथा अग्नि किस तरह द्वारिका का नाश करेंगे? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है, इसका उत्तर देते हुए कथाकार कहते हैं कि जब वासुदेव श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से यह सुन लिया कि सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण द्वारिका नगरी का विनाश होगा, तब उन्होंने सुरा-निर्माण तथा सुरा-पान पर प्रतिबन्ध लगा दिया और द्वारिका नगरी मे जहा-कही सुरा पडी थी, उसे भी उठवा कर बाहिर फिकवा दिया। अधिक क्या खोजने पर भी द्वारिका मे सुरा प्राप्त नही की जा सकती थी। सुरा का सर्वथा बहिष्कार कर देने पर श्रीकृष्ण बिल्कुल निश्चिन्त हो गये।

समय की बात है कि एक बार कुछ यादव कुमार भ्रमणार्थ बाहिर जा रहे थे, मार्ग मे गिराई गई मदिरा को देखकर उनका मन मचल उठा, सब ने तृप्त होकर मदिरा पान किया। मदोन्मत्त राजकुमार जब आगे बढे तो सामने ही द्वैपायन ऋषि दिखाई दिए। द्वैपायन ऋषि एक विरक्त उदासीन तपस्वी सन्त थे। प्रभु-भक्ति तथा तपस्या की आराधना मे लगे रहते थे। मदोन्मत्त राजकुमार ऋषिराज का उपहास करने लगे, उनकी साधना-सामग्री को उठाकर इधर-उधर फेंकने लगे। समझाने पर भी जब नही समझे तो ऋषि क्रोध से तमतमा उठे। उन्होने राजकुमारो को बहुत बुरा भला कहा और मार भगाने की चेष्टा की। इस पर यादव कुमार बिगड गये और उन्होने ऋषि को मारना, पीटना आरम्भ कर दिया। इतना अधिक मारा कि उनकी हड्डिया तक तोड दी। अन्त मे ऋषि बेहोश हो गये लडको ने समझा कि ये मर गए है। वे भागे हुए सीधा द्वारिका मे गये। बडे हर्ष के साथ उन्होने द्वैपायन ऋषि को मारने का वृत्तान्त श्रीकृष्ण को सुनाया। यह सुनते ही श्रीकृष्ण सन्न रह गये और बोले—पागलो! तुमने यह क्या कर दिया, यह तो तुमने द्वारिका के नाश के बीज बो दिये। श्रीकृष्ण

तत्काल वहाँ से चल दिये। बलराम (बलदेव) को साथ लेकर द्वैपायन ऋषि के चरणो मे उपस्थित हुए। द्वैपायन उस समय होश मे आ चुके थे और मारणान्तिक कष्ट से कराह रहे थे। ऋषि की यह शोचनीय दशा देखकर श्रीकृष्ण को मार्मिक वेदना हुई। उन्होने उनसे क्षमा मागी, अनुनय-विनय की, पर ऋषि का दु खी मानस शान्त नही हुआ। श्रीकृष्ण की अधिक विनीतता देखकर उन्होने इतना ही कहा कि तुम दोनो पर मुझे कोई रोष नही है, तुम दोनो का मैं कोई अनिष्ट नही करूगा। श्रीकृष्ण निराश होकर लौट गये। ऋषि ने निदान किया कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारिका का नाश करू। परिणाम-स्वरूप ऋषि मर कर अग्निकुमार देव बने और समय आने पर उन्होने द्वारिका नगरी को आग लगा दी। कृष्ण बलराम को छोडकर वहा से किसी को जीवित नही जाने दिया। इस तरह द्वारिका के नाश मे सुरा, द्वैपायन ऋषि और अग्नि ये तीनो कारण बन गये।

द्वारिका नगरी का विनाश होगा और वह सुरा, द्वैपायन ऋषि तथा अग्नि के द्वारा होगा। यह सुन कर श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि यह ससार असार है, प्रभात के तारे की तरह क्षणभगुर है। प्रतिक्षण क्षीणता की ओर बढ रहा है। वे लोग धन्य हैं, जो इस असार ससार मे भी जीवन का सार प्राप्त कर लेते हैं। जालि कुमार, मयालि कुमार, उवयालि कुमार आदि यादव कुमार कितने अच्छे हैं, तरणहार जीव हैं, धन्य हैं, जिन्होने भरी जवानी में मोह-माया को छोड दिया है, कञ्चन-कामिनी को ठोकर मार कर वीतरागता के महापथ पर चलना आरभ कर दिया है—साधु बन गए हैं। श्री कृष्ण गभीर होते गए, अन्तर्मुखी होकर विचार करने लगे कि एक मैं हूँ, सब कुछ जानता हुआ भी अन्धकार मे फिर रहा हू। राज्य रनिवास एव कामभोगो मे आसक्त हो रहा हू, मोहमाया को छोड कर सयम-साधना को अपनाने का कभी विचार तक नही करता। अहह! मैं जीवन-कल्याण से बहुत दूर बैठा हू। मालूम होता है पिछले जन्म मे मैंने कोई पुण्य नही किया, अकृत पुण्य हू, अन्यथा परमसाध्य मोक्ष-मार्ग पर मैं अवश्य चलता, जालि कुमार आदि कुमारो की भाति आत्म-कल्याण कर लेता, ससार मे धन्य बन जाता। इस प्रकार विचार करते हुए श्री कृष्ण को कुछ ग्लानि की अनुभूति हुई और वे उदासीन हो गए। अन्दर की निराशा मुख पर झलकने लगी।

भगवान अरिष्टनेमि अपने ज्ञानालोक मे श्रीकृष्ण के अन्तर्जगत को अच्छी तरह देख रहे थे। कृष्ण को सर्वथा निराशा एव उदासीन देख कर उन्होंने अपना मौन भग किया। वे वासुदेव कृष्ण को कहने लगे—

कृष्ण! आज निराश हो रहे हो, दिल छोड बैठे हो, वासुदेव होकर इतनी उदासीनता? अपने हाथो से बीज बोलिए हैं, तो उनके फलो को देख कर व्याकुलता क्यो? विश्वास रखो, वासुदेव कभी सयमसाधना के मार्ग पर चल नही सकते, न कभी पहले ऐसा हुआ है और न भविष्य मे ऐसा कभी हो सकता है। पिछले जन्म मे निदान करने के कारण वासुदेव को सयम की साधना का अवसर नही मिल पाता। अनादि कालीन इस नियम को ससार की कोई शक्ति तोड नही सकती।

निदान जैन-जगत का अपना एक पारिभाषिक शब्द है। मोहनीय कर्म के उदय से काम-भोगो की इच्छा होने पर साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका का अपने चित्त मे सकल्प कर लेना कि मेरी तपस्या से मुझे अमुक फल की प्राप्ति हो, उसे निदान कहते हैं। जन साधारण मे इसे नियाणा कहा

जाता है। निदान को लेकर 'श्रीदशाश्रुतस्कध सूत्र' मे बडा सुन्दर विवेचन किया गया है। वहा लिखा है—

एक समय राजगृही नगरी मे भगवान महावीर पधारे। महाराज श्रेणिक तथा महारानी चेलना बडे समारोह के साथ भगवान को वन्दन करने आए। श्रेणिक नरेश की समृद्धि देख कर कुछ साधुओं ने विचार किया—'कौन जानता है, देवलोक कैसा है? श्रेणिक राजा सब तरह से सुखी है, देवलोक इससे वढ कर नही हो सकता। उन्होने मनमे निश्चय किया कि हमारी सयम-साधना का फल यही हो कि हम भी श्रेणिक के समान राजा बने।'

भगवान महावीर के पास विराजमान साध्वियो ने जव महारानी चेलना के नारी ऐश्वर्य को देखा तो उन्होंने विचार किया कि 'हमारी तपस्या का यदि कोई फल हो तो वह यही हो कि हम अगले जन्म मे चेलना रानी के समान नारी-ऐश्वर्य को प्राप्त करें।'

अन्तर्यामी भगवान महावीर ने साधु-साध्वियो की आन्तरिक स्थिति को देख कर उन्हे अपने पास बुलाया। उनको निदान का स्वरूप समझाते हुए भगवान कहने लगे—

आर्यो! निदान कल्याण-साधक नही, जो व्यक्ति निदान करके मरता है, उसका फल प्राप्त करने पर भी उसे निर्वाण नही मिलता। वह बहुत काल के लिये ससार मे भटक जाता है, निदान करने के ९ प्रकार हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ एक पुरुष किसी समृद्धिशाली पुरुष को देखकर निदान करता है।
२ स्त्री अच्छा पुरुष प्राप्त करने के लिये निदान करती है।
३ पुरुष सुन्दर स्त्री के लिये निदान करता है।
४ स्त्री किसी सुखी एव सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है।
५ कोई जीव देवगति में देवरूप से उत्पन्न हो कर अपनी तथा दूसरी देवियो को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है।
६ कोई जीव देवभव में सिर्फ अपनी देवी को वैक्रिय करके भोगने के लिये निदान करता है।
७ कोई जीव अगले भव मे श्रावक बनने का निदान करता है।
८ कोई जीव देवभव में अपनी देवी को बिना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है।
९ कोई जीव अगले भव में साधु बनने का निदान करता है।

भगवान महावीर अपने साधु-साध्वियों को बतला रहे हैं—'आर्यो! इनमे से पहले चार निदान करनेवाला जीव केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म को सुन भी नही सकता। पाचवा निदान करनेवाला जीव धर्म को सुन तो लेता है, पर दुर्लभबोधि होता है और बहुत काल तक ससार मे परिभ्रमण करता है। छठे निदानवाला जीव जिन-धर्म को सुनकर और समझ कर भी दूसरे धर्म की ओर रुचि रखता है। सातवे निदानवाला जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, धर्म पर श्रद्धा कर सकता है, किन्तु व्रत अगीकार नही कर सकता। आठवें निदानवाला श्रावक का व्रत ले सकता है, पर साधु नही हो सकता। नवें निदानवाला जीव साधु हो सकता है, पर उसी भव में मोक्ष प्राप्त नही कर सकता। *

* दशाश्रुतस्कध १०वी दशा।

"**कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा !**" इस पाठ मे **कण्हाइ, कण्हा** ! ये दो सम्बोधन पद है। जबकि एक ही सम्बोधन पद से काम चल सकता था। प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यह दो सम्बोधन पद क्यो ? उत्तर मे निवेदन है कि उस समय इसी तरह की पद्धति थी। सर्वप्रथम सामान्य रूप से मनुष्य को सम्बोधित किया जाता था। जब वक्ता अपनी बात कहनी आरम्भ करता था, फिर उस समय वह श्रोता को सम्बोधित किया करता था। '**कण्हाइ**' यह पद केवल प्राचीन शैली के कारण है, पुनरुक्ति की यहा कोई बात नही है।

"**नव जोयण जाव देवलोगभूयाए**" यहा पठित **जाव** पद प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में पठित —'**वित्थिण्णा धणवइमतिनिम्माया · पच्चक्खं**' इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ पृष्ठ २४-२५ पर किया जा चुका है।

प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन मे द्वारिका-वर्णन का जो पाठ आता है, उसको देखने से प्रतीत होता है कि प्रस्तुत सूत्र मे "**नव-जोअण जाव देवलोगभूयाए**" इस पाठ के स्थान पर यदि—**दुवालस जोयण-जाव देवलोगभूयाए**" यह पाठ होता तो यह अधिक उचित था, क्योकि द्वारिका-वर्णक पाठ मे **दुवालसजोयणायामा** यह पाठ पहले है और इसके बाद **नवजोअणवित्थिण्णा** यह पाठ है।

"**सुरग्गिदीवायणमूलए**"—**सुराग्निद्वैपायनमूलक , सुरा मदिरा, अग्नि अनल , द्वैपायन ऋषि-विशेष , एते मूल कारण यस्मिन् स सुराग्निद्वैपायननिमित्त इत्यर्थ** । जिसमे सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि ये कारण हो, उसे 'सुराग्नि-द्वैपायन-मूलक' कहते हैं। अर्थात् 'सुरापान से मदोन्मत्त हुए राज-कुमार द्वैपायन ऋषि को पीडित करेंगे और उनके पीडा-जन्य संताप से मृत्यु को प्राप्त हुआ द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार नाम का देव होगा और वह अग्नि द्वारा इस द्वारिका नगरी को भस्म करेगा। यह पद विनाश का विशेषण है।

"**अब्भत्थिए ४ समुपन्ने**" यहा दिए गये ४ के अंक से अभिमत पदो को पीछे पृष्ठ १९६ लिखा जा चुका है। "**हिरण्ण जाव परिभाएत्ता**" **मुडा जाव पव्वइया**" "**रज्जे य जाव अतेउरे**" "**अरिट्ठ जाव पव्वतित्तए**" "**हिरण्ण जाव पव्वइस्सति**" "**भूय वा जाव पव्वतिस्सति**" इन वाक्यो मे पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर पढे गए अवशिष्ट पाठो के द्योतक हैं।

"**परिभाएत्ता**"—**परिभाज्य—वान्धवेभ्यो याचकेभ्यश्च दत्त्वा।**" का अर्थ है—भाइयो और याचको मे वाटकर।

"**मुच्छिए ४**" यहा दिए ४ के अक से अभीष्ट पदो की सूचना पीछे पृष्ठ २२१ पर दी जा चुकी है।

"**निदाण कडा**" का अर्थ है—जिस ने निदान कर रखा है। किसी प्रकार के अच्छे या बुरे फल की इच्छा से क्रियानुष्ठान करने का नाम निदान कर्म है। दूसरे शब्दो मे सकाम कर्म का नाम सनिदान कर्म और निष्काम कर्म को निदान-रहित कर्म कहते है। जैन-शास्त्रो मे सनिदान का सार्व-त्रिक निषेध है। जिनधर्म मे साधु अथवा गृहस्थ दोनो के लिये ही सकाम कर्म को त्याज्य वतलाया गया है। यद्यपि गृहस्थ के लिये पापानुवन्धी पुण्य का ही अधिकतया निषेध देखने मे आता है, पुण्या-नुवन्धी पुण्य का नही, परन्तु वह भी निदान रहित अर्थात् निष्काम ही प्रशस्त माना गया है, सनिदान

अर्थात्-सकाम नही। साधु के लिये तो पुण्यानुबन्धी पुण्य कर्म भी त्याज्य ही है। अशुभ कर्म की तरह शुभ कर्म को भी शास्त्रकारो ने बन्धन का ही हेतु कहा है, अत सर्व-विरतिरूप साधुधर्म का अनुष्ठान करनेवाले व्यक्ति का जितना भी क्रियानुष्ठान है वह सब शुभाशुभ दोनो प्रकार के कर्मों की निर्जरा के लिये है, उसका एक मात्र प्रयोजन कर्मों की निर्जरा करना है, ऐसी अवस्था मे उसके लिये निदान कर्म की तो कोई चर्चा ही शेष नही रह जाती।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने साधक-वर्ग के लिये दो बातो को छोड देने की प्रेरणा प्रदान की है। एक है—मदिरा सेवन, यदि विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार किया जाये तो मद्यपान अनर्थों का मूल है, इसी के प्रभाव से द्वारिका जेसी स्वर्गतुल्य विशाल नगरी का विनाश हुआ, यद्यपि अन्य मादक पदार्थो का भी मनुष्य की बुद्धि पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है, परन्तु इन सब मे मदिरा विशेष है, अत विचारशील पुरुषो को मदिरा जैसे विनाशकारी पदार्थ से सदा ही दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

सूत्रकार ने जिस दूसरी बात को छोडने पर बल दिया है, वह है निदान। निदान चारित्र-धर्म की प्राप्ति मे बाधक माना गया है। निदान की प्रतिबन्धकता भगवान अरिष्टनेमि के कृष्ण वासुदेव को दिये गए उत्तर से स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है। भगवान कहते हैं कि सभी वासुदेव पूर्वभव मे निदान किये हुए होते हैं, यही कारण है कि वासुदेव को सर्वविरति रूप चारित्रधर्म की कभी प्राप्ति नही हो सकती। पिछले निदान कर्म के प्रताप से उसे चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षय करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता और बिना चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम किये चारित्र उदय मे नही आता, इसलिये मुमुक्षु जनो को सनिदान कर्म से सदा दूर ही रहना चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र मे कृष्ण वासुदेव तथा भगवान अरिष्टनेमि के मध्य मे हुए प्रश्नोत्तरो का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार श्रीकृष्ण महाराज द्वारा कृत एक अन्य प्रश्न तथा भगवान द्वारा दत्त उस के उत्तर का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—ततेणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—अहं णं भंते! इतो कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि? कहिं उववज्जिस्सामि?

ततेणं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा! बारवतीए नयरीए सुरदीवायणकोवनिद्दड्ढाए अम्मापिइनियगविप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेलाए अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पचण्हं पडवाणं पडुरायपुत्ताणं पासं पडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीतवत्थपच्छाइयसरीरे जरकुमारेण तिक्खेणं कोदंडविप्पमुक्केण इसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।

तते ण कण्हे वासुदेवे अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंन्तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव झियाइ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

मा ण तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि। एव खलु तुम देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणतर उवट्टित्ता इहेव जम्बूदीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुडेसु जणवतेसु सयदुवारे बारसमे अममे नाम अरहा भविस्ससि, तत्थ तुम बहूइ वासाइ केवल-परियाय पाउणित्ता सिज्झिहिसि।

तते ण से कण्हे वासुदेवे अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गई, वग्गइत्ता तिवति छिदइ, छिदइत्ता सीहनाय करेइ, करित्ता अरह अरिट्ठनेमि वदति णमसति, वदित्ता, णमसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थि दुरूहई, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी, जेणेव सते गिहे तेणेव उवागए, अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चारूहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सते सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासवरसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

छाया—तत खलु स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवादीत्—

अहं भदन्त ! इत कालमासे (मृत्युसमये) काल कृत्वा कुत्र गमिष्यामि ? कुत्र उत्पत्स्ये ?

ततोऽर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव (प्रति) एवमवदत्—

एव खलु कृष्ण ! द्वारवत्या नगर्या सुराद्वैपायनकोपनिदग्धायामम्बापितृनिजकविप्रहीन रामेण बलदेवेन सार्द्धं दक्षिणवेलाया· अभिमुख युधिष्ठिरप्रमुखाना पञ्चाना पाण्डवानां पाण्डुराजपुत्राणा पार्श्वे पाण्डु-मथुरां सम्प्रस्थित कौशाम्बवनकानने न्यग्रोधवरपादपस्य अध पृथिवीशिलापट्टके पीतवस्त्रप्रच्छादितशरीर जराकुमारेण तीक्ष्णेन कोदण्डविप्रमुक्तेन इषुणा वामे पादे विद्ध सन् कालमासे काल कृत्वा तृतीयां बालुकाप्रभाया पृथिव्यामुज्ज्वलिताया नरके नैरयिकत्वेन उत्पत्स्यसे।

तत कृष्णो वासुदेवोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकात् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य उपहतो यावद् ध्यायति।

कृष्ण ! इति, अर्हन्नरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव (प्रति) एवमवदत्—

मा त्व देवानुप्रिय ! उपहत यावद् ध्यायस्व। एव खलु त्व देवानुप्रिय ! तृतीयाया पृथिव्या उज्ज्वलिताया अनन्तरमुद्वर्त्य इहैव जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे द्वादशमो अमम नाम्ना अर्हन् भविष्यसि। तत्र त्व बहूनि वर्षाणि केवलपर्याय प्राप्य सेत्स्यसि।

तत. कृष्णो वासुदेवोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकाद् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट-तुष्ट० आस्फोटयति, आस्फोटित्वा वल्गति, वल्गित्वा त्रिपदीं छिनत्ति, छित्त्वा सिंहनाद करोति, कृत्वा अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य तमेव आभिषेक्य हस्तिनमारोहति, आरुह्य यत्रैव द्वारवती नगरी यत्रैव स्वकीय गृह तत्रैव उपागत , आभिषेक्यहस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव बाह्यउपस्थानशाला, यत्रैव स्वक सिंहासन तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरे पूर्वाभिमुख निषीदति, निषद्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त वीतराग अरिष्टनेमि भगवान को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **भते !**—हे भगवन् !, **अह ण**—मैं, **इतो**—यहा से, **कालमासे**—मृत्यु के समय, **काल किच्चा**—काल करके, **कहिं**—कहा पर, **गमिस्सामि ?**—जाऊगा ?, **कहिं**—कहा पर, **उववज्जिस्सामि**—उत्पन्न होऊगा ।

तते ण—इसके अनन्तर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले—

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **कण्हा !**—हे कृष्ण !, **बारवतीए**—द्वारिका, **नयरीए**—नगरी के, **सुरवीवायणकोपनिद्दड्ढाए**—अग्निकुमार देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध से भस्म हो जाने पर, **अम्मापिइनियगविप्पहूणे**—माता-पिता तथा निजक सम्बन्धियो से वियुक्त होकर, **रामेण बलदेवेण**—राम बलदेव के साथ—अपने बडे भाई राम के साथ, **दाहिणवेलाए अभिमुहे**—दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर, **जोहिट्ठिल्लपामोक्खाण**—जिन मे युधिष्ठिर बडे हैं, ऐसे, **पडुरायपुत्ताण**—पाण्डु राजा के पुत्र, **पचण्ह पाडवाण**—पाच पाण्डवो के, **पास**—पास, **पडुमहुर**—पाण्डु मथुरा—पाण्डवो की राजधानी मथुरा की ओर, **सपत्थिते**—जाते हुए, **कोसबवनकाणणे**—कौशाम्ब नामक फलो के वृक्षो के वन मे, **नग्गोहवरपायवस्स**—अत्यन्त विशाल न्यग्रोध नामक वृक्ष के, **अहे**—नीचे, **पुढवि-सिलापट्टए**—पृथ्वी पर पडी हुई तखत जैसी शिला पर, **पीतपत्थपच्छाइयसरीरे**—शरीर पर पीत वस्त्र को ओढे हुए, **जरकुमारेण**—जरा कुमार के, **कोदडविप्पमुक्केण**—धनुष से निकले हुए, **तिक्खेण**—तीक्ष्ण, **इसुणा**—बाण से, **वामपादे**—बाए पाव के, **विद्धे समाणे**—बिंध जाने पर, **कालमासे**—मृत्यु के समय, **काल किच्चा**—मर कर, **उज्जलिए**—उज्ज्वलित—भयकर अथवा तीसरी नरक भूमि का सातवा नरकेन्द्र नरक स्थान विशेष, **वालुयप्पभाए**—बालुका प्रभा नामक, **तच्चाए पुढवीए**—तीसरी पृथ्वी रूप, **नरए**—नरक मे, **नेरइयत्ताए**—नरक रूप से, **उववज्जिहिसि**—उत्पन्न होवोगे, **तते ण**—उसके अनन्तर, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **अरहतो**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि भगवान के, **अन्तिए**—पास से, **एयमट्ठ**—इस बात को, **सोच्चा**—सुनकर, **निसम्म**—उस पर विचार करके, **ओहय**—निराश हो गए, **जाव**—यावत्, **झियाइ**—आर्तध्यान करने लगे ।

कण्हाइ—'हे कृष्ण !' ऐसा कह कर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे,

देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिय ! हे भद्र !, **तुम**—तुम्हे, **मा ण**—नही, **ओहय**—निराश होना चाहिये, **जाव**—यावत्, **झियाहि**—आर्तध्यान नही करना चाहिये, **एव खलु**—इस प्रकार निश्चय ही, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **तुम**—तुम, **उज्जलियाओ**—उज्ज्वलित, **तच्चाओ**—तीसरी, **पुढवीओ**—पृथ्वी—नरक से, **अणतर**—अनन्तर, बिना व्यवधान के सीधे, **उवट्टित्ता**—निकल कर, **इहेव**—इसी, **जंबूदीवे**—जम्बू द्वीप के अन्तर्गत, **भारहे वासे**—भारतवर्ष मे, **आगमेसाए**—आनेवाले, **उस्सप्पिणीए**—उत्सर्पिणी काल मे, **पुण्डेसु जणवतेसु**—पुण्ड्र नामक जनपद मे, **सयदुवारे**—शतद्वार नामक नगर मे, **बारसमे**—बारहवाँ, **अममे**—अमम, **नाम**—नाम का, **अरहा**—अरिहन्त—तीर्थकर, **भविस्ससि**—होवोगे, **तत्थ**—वहा पर, **तुम**—तुम, **बहूइ**—बहुत, **वासाइ**—वर्ष, **केवलपरियाय**—केवलपर्याय अर्थात् केवलज्ञान की अवस्था को, **पाउणित्ता**—प्राप्त कर के, **सिज्झिहिसि**—सिद्ध हो जावोगे, ५—इस अक से, **बुज्झिहिसि**—केवल ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानोगे, **मुच्चिहिसि**—सपूर्ण कर्मों से रहित हो जावोगे, **परिनिव्वहिसि**—सकल कर्म-जन्य सतापो से मुक्त हो जावोगे और **सव्वदुक्खाणमत करिहिसि**—सब प्रकार के दु खो का अन्त कर दोगे, इन पदो का ग्रहण किया जाना चाहिये,

तते ण—उस के अनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **अन्तिए**—पास, **एयमट्ठं**—यह बात, **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—उस पर विचार कर, **हट्ठ-तुट्ठ०**—अत्यधिक प्रसन्न हुए, **अप्फोडेइ**—अगो का आस्फोटन करते हैं, अपनी भुजा फडकाते है, **अप्फोडित्ता**—फडका कर, **वग्गइ**—जोर से आवाज करते हैं, **वग्गइत्ता**—शब्द करके, **तिवतिं**—त्रिपदी—भूमि मे तीन बार पाव का न्यास, या गति विशेष अर्थात् मल्ल की भाति—वहा पर तीन बार पैरो को मारते हैं उछलते हैं, **सीहनाय**—सिंह के समान गर्जन, **करेइ**—करते है, **करित्ता**—गर्जन करके, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को, **वदति णमसति**—वन्दना नमस्कार करते हैं, **वदित्ता णमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **तमेव**—उसी (जिस पर सवार हो कर आए थे), **अभिसेक्क**—सर्व प्रधान, **हत्थि**—हाथी पर, **दुरूहइ**—चढते हैं, **दुरूहित्ता**—चढ कर, **जेणेव**—जहा पर, **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **जेणेव**—जहा पर **सिते गिहे**—अपना घर था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागए**—आ गए, **अभिसेयहत्थिरयणाओ**—प्रधान हस्ति-रत्न से, **पच्चोरुहति**—उतरते हैं, **पच्चोरूहित्ता**—उतर कर, **जेणेव**—जहा पर, **बाहिरिया**—बाहिर की, **उवट्ठाणसाला**—सभास्थान था, **जेणेव**—जहा पर, **सते सीहासणे**—अपना सिंहासन था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आते हैं, **उवागच्छित्ता**—आ कर, **सिहासणवरसि**—उत्तम सिंहासन पर, **पुरत्थाभिमुहे**—पूर्वाभिमुख हो कर—पूर्व दिशा की ओर मुंह कर के, **निसीयति**—बैठ जाते हैं, **निसीइत्ता**—बैठ कर, **कोडु बिय पुरिसे**—राज-सेवकों को, **सद्दावेइ**—बुलाते है, **सद्दावित्ता**—बुला कर, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

मूलार्थ—अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त कर के कृष्ण वासुदेव अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे निवेदन करने लगे—

भगवन् ! मृत्यु की घडी आने पर, काल करके मैं किस दिशा मे जाऊगा और किस स्थान पर जन्म लूंगा ?

कृष्ण वासुदेव के प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगें—कृष्ण ! सुर और देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध-रूप अग्नि से द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर, माता-पिता और निज सम्बन्धियो से रहित केवल राम अर्थात् वलदेव के साथ, दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर युधिष्ठिर-प्रधान, पाण्डुराज के पुत्र पाच पाण्डवो के पास पाण्डु-मथुरा (पाण्डवो की राजधानी) की ओर जाते हुए कोशाम्रवृक्षो के वन मे न्यग्रोध-वट वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला के पट्ट पर पीतवस्त्र से अपने शरीर को ढापे हुए जराकुमार के द्वारा धनुष से छोडे तीक्ष्ण बाण से बाँए पाव के विंध जाने पर मृत्यु के समय काल करके तीसरी बालुकाप्रभा के उज्जवलित (नरक-स्थान विशेष) नरक मे नारक रूप मे उत्पन्न होवोगे ।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर महाराज कृष्ण विचार मे पड गए । नरक का विचार आते ही हृदय मे निराशा जाग उठी, आर्तध्यान से वे विह्वल हो गए ।

कृष्ण वासुदेव की यह दशा देखकर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित करते हुए पुन बोले—

कृष्ण ! निराश क्यो होते हो ? आर्तध्यान करने की कोई आवश्यकता नही है । इससे आगे का काल सुन्दर ही सुन्दर है । उज्ज्वलित तीसरे नरक से बिना व्यवधान के निकल कर अनागतकालीन उत्सर्पिणी मे इसी जम्बू द्वीपान्तर्गत भारतवर्षीय पुण्ड्र-देश के शतद्वार नामक नगर मे अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर वनोगे, वहा पर अनेको वर्षों तक केवली दशा को प्राप्त करके तुम सिद्ध बन जावोगे, ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानजावोगे, सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जावोगे, सकल कर्म-जन्य सतापो से छूट जाओगे, जन्म-मरण-जन्य समस्त दु खो का अन्त कर डालोगे ।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास से भविष्यत् कालीन निर्वाणपद की प्राप्ति की सुखद वार्ता सुन कर कृष्ण वासुदेव आनन्दविभोर हो उठे, उनकी भुजाएं फडकने

लगी, हर्षाधिक्य के कारण वे उच्च स्वर से बोलते हुए, मल्ल की भाति उछलने लगे, सिंहनाद कर उठे। इस तरह आन्तरिक प्रमोदातिरेक को अभिव्यक्त करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन एव नमस्कार करते है, तत्पश्चात् जिस उत्तम हाथी पर चढ कर आए थे, उसी पर बैठ कर द्वारिका नगरी मे जहा अपना घर था, वहा आ जाते है। आकर पूर्व-दिशा की ओर मुख कर के बैठ जाते हैं और राज-सेवको को बुलवा कर वे इस प्रकार कहते हैं—

व्याख्या—शुभाशुभ कर्म के विपाक की अवश्यभाविता से इन्कार नही किया जा सकता। शुभ और अशुभ दोनो ही प्रकार के कर्मों का फल अवश्य मिलता है, ये उदय मे आए हुए अपनी स्थिति के अनुसार फल दिये बिना कभी निवृत्त नही होते। कर्मों की फल-प्रदायक शक्ति का वर्णन जैन एव जैनेतर सभी शास्त्रो मे बडे विस्तार के साथ मिलता है। जैनागम श्रीउत्तराध्ययन सूत्र मे भगवान महावीर कर्मों की शक्ति का मनोहारी शब्दो मे विवेचन करते हुए कहते हैं—

"कडाण कम्माण न मुक्खु अत्थि"

भगवान कहते हैं, कृत-कर्मों को भोगे विना किसी का छुटकारा नही हो सकता, राजा हो या रक, योगी हो या भोगी, कर्म सभी को भोगने ही पडते हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का निम्नलिखित श्लोक भी इसी सत्य का पूर्णरूप से समर्थन कर रहा है—

"अवश्यमेव भोक्तव्य, कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्त क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि॥"

अर्थात्—उपार्जन किया हुआ अथवा अशुभ कर्म बिना भोगे कभी क्षय नही होता, किन्तु उसका फल अवश्यमेव भोगना ही पडता है। कर्म तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि किसी का पक्ष-पात नही करते, सभी को ये अपना प्रभाव दिखलाते हैं। तीर्थंकर भगवान को भी इनके प्रहार सहन करने पडते हैं। भगवान महावीर के जीवन मे आनेवाली दु ख पूर्ण घडिया इस सत्य की ज्वलन्त उदाहरण हैं। प्रस्तुत सूत्र के अनुसार द्वारिकाधीश वासुदेव श्रीकृष्ण भी इनके दु खद प्रहारो से नही वच सके। वे आज भी तीसरी नरक मे कर्मों के अनिष्ट परिणाम का फलभोग रहे हैं।

यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है, वह कृष्ण कौन है? वैदिक परम्परा के अनुयायी सनातनधर्मी वन्धु जिस कृष्ण को मानते हैं, क्या ये कृष्ण वही हैं या उनसे भिन्न हैं?

उत्तर मे निवेदन है कि माता-पिता आदि सम्बन्धियो के नामो की दृष्टि से जब प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित श्रीकृष्ण का अध्ययन करते हैं तो सनातन धर्मावलवियो और प्रस्तुत प्रकरण के कृष्ण मे कोई अन्तर दिखाई नही देता, परन्तु पौराणिक-परम्परा तथा जैन-परम्परा दोनो के कृष्णो का जब

सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो इन मे महान अन्तर दिखाई देता है और यह विना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि ये दोनो कृष्ण भिन्न हैं। जहा तक नामो की एकता का सम्बन्ध है, यह भी कोई महत्वपूर्ण बात नही है, एक नाम के सैकडो हजारो मनुष्य आज भी उपलब्ध होते हैं।

वैदिक शास्त्रो का अध्ययन करने से पता चलता है कि मनु नाम के कई महापुरुष हो चुके हैं। सनातनधर्मी परम्परा मे श्रीशकराचार्य की गद्दी पर जो भी बैठता है, उसे अब भी शकराचार्य के नाम से ही स्मरण किया जाता है। इसी तरह और भी कई गद्दिया हैं, जिन पर विराजमान होनेवाले महात्मा अपने पूर्व पुरुष के नाम से ही व्यवहृत होते हैं।

कृष्ण नाम के अनेको महापुरुष हो गये हैं।* पौराणिक परम्परा के श्रीकृष्ण तथा जैन परम्परा के वासुदेव श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न है उनमे क्या-क्या अन्तर है? इसके सम्बन्ध मे नीचे पक्तियो मे निवेदन कर रहे हैं—

१—हमारे सनातनधर्मी बन्धुओ की दृष्टि मे कृष्ण भगवान, विष्णु भगवान के आठवें अवतार हैं। अवतार का अर्थ है—ईश्वर का मनुष्यादि रूप मे जन्म लेना। इस तरह सनातनधर्मी कृष्ण को पुरुष या मनुष्य न मानकर पुरुष के रूप मे साक्षात् भगवान मानते हैं, किन्तु जैन-दर्शन अवतारवाद को नही मानता है। उसका विश्वास है—भगवान इन्सान के रूपमे अवतरित नही होता—जन्म नहीं लेता, प्रत्युत इन्सान ही तप एव सयम की अखण्ड साधना द्वारा भगवत्स्वरूप हो जाता है—भगवान बन जाता है। इन्सान का भगवान बनना ही जैन दर्शन का अवतारवाद है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सनातनधर्मी बन्धु भगवत्स्वरूप कृष्ण को मानते हैं, उसका स्वरूप जैन दर्शन द्वारा वर्णित कृष्ण मे प्राप्त नही होता है। जैन दर्शन का कृष्ण मनुष्य है, महामनुष्य है, तीन खण्ड का शासक एक नीतिज्ञ वासुदेव है। यह दर्शन कृष्ण को भगवत्स्वरूप स्वीकार नही करता, अत पौराणिक परम्परा द्वारा माने गए भगवत्स्वरूप कृष्ण पृथक् हैं और जैन-दर्शन द्वारा मान्य महान् तेजस्वी कृष्ण पृथक् हैं।

२—सनातनधर्मी बन्धुओ का विश्वास है कि महाभारत के युद्ध को हुए पाच हजार वर्ष हो गए हैं, इससे स्पष्ट है कि जो कृष्ण महाभारत के काल मे थे, अर्जुन के सारथी बने थे, उनको भी हुए पाच हजार वर्ष ही हुए है। अब हमे यह देखना है कि जैन-शास्त्रो मे जिस कृष्ण का उल्लेख मिलता है उनका समय कौनसा है? जैन-दर्शन का परिशीलन करने से पता चलता है कि श्रीकृष्ण २२वे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के चाचा के लडके थे, अत दोनो आपस मे भाई-भाई थे। जैन-दृष्टि से भगवान अरिष्टनेमि के ८३७५० वर्षों के अनन्तर भगवान पार्श्वनाथ हुए हैं। भगवान पार्श्वनाथ

* इस सम्बन्ध में लाहौर (वर्तमान में पाकिस्तान) से निकलनेवाले दैनिक प्रभात के १३, १४, १६, १७, १८ और १६ अगस्त सन् १६४४ के अकों मे एक लेखमाला निकली थी पाठकों को उस लेखमाला का अवश्य अध्ययन करना चाहिये। इस लेखमाला को धर्मप्रेमी ला० काशीराम जी चावला ने एक पुस्तिका के रूप में सम्पादित किया है। पुस्तिका का नाम 'एक भूल का सुधार" है। यह पुस्तिका एस० एस० जैन सभा लुधियाना ने प्रकाशित की है और यह लाला काशीराम जी चावला, सिविल लाइन लुधियाना से प्राप्त की जा सकती है।

से २५० वर्षो के पश्चात् भगवान महावीर का जन्म हुआ था। भगवान महावीर का निर्वाण सम्वत् आजकल २४९३ चल रहा है। इस तरह जिस कृष्ण का जैन-शास्त्रो मे वर्णन मिलता है, उनको हुए छियासी हजार चार सौ वर्ष हो गए हैं। इसके विपरीत महाभारत के कृष्ण को पाचहजार वर्ष हुए हैं। इस तरह काल की दृष्टि से महाभारत और जैन-शास्त्र के दोनो कृष्णो मे इक्कासी हजार चार सौ वर्षो का अन्तर मिलता है। यह काल सम्बन्धी अन्तर समुचित रूप से प्रकट कर रहा है कि दोनो कृष्ण एक नही थे, पृथक्-पृथक् थे। अन्तगड सूत्र मे जिस कृष्ण के तीसरे नरक मे जाने का उल्लेख किया गया है वे कृष्ण महाभारत काल के कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं। जिनके काल मे इक्कासी हजार वर्षो का अन्तर हो उन्हे एक कहा भी कैसे जा सकता है ?

३—कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता हैं। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—**'वसुदेवस्य अपत्य पुमान् वासुदेव'** वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, इसलिये इनको वासुदेव कहते हैं। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जैन-दर्शन मे वासुदेव नौ हैं—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुष-पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण। इनमे कृष्ण का अन्तिम स्थान है। वासुदेव का अर्थ है—जो सात रत्नो, तीन खण्डो का स्वामी हो तथा जो अनेक विध ऋद्धियो से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एव मारकर तीन खण्ड पर राज्य किया करते है। इसके अतिरिक्त जैन-दर्शन ने २८लब्धियो मे से वासुदेव की एक लब्धि मानी है। तीन खण्ड तथा सात रत्नो के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव मे महान बल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि कूप मे बैठे हुए वासुदेव को जजीरो से बाध कर यदि हाथी, घोडे, रथ और पैदल रूप चतुरगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा भी खीचने लगे तो भी उसे वे खीच नही सकते, किन्तु उसी जजीर को बाए हाथ से पकड कर वासुदेव अपनी ओर आसानी से खीच सकता है।

जैन-दर्शन मे जिस कृष्ण का उल्लेख है वे यही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न है। वासुदेव अपने युग के सर्वोत्कृष्ट योद्धा होते हैं। चक्रवर्ती स्वय नही लडता, उसकी सेना लडती हैं, पर वासुदेव स्वय लडते है। अकेले कृष्ण वासुदेव ने ३६० युद्ध लडे थे और उनमे विजय प्राप्त की थी। इन्ही वासुदेव कृष्ण का वर्णन अन्तगड सूत्र मे किया गया है। सनातनधर्मियो के साहित्य मे वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने मे नही आती। वैदिक साहित्य मे वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नही मिलता। इससे भी जैन साहित्य मे वर्णित कृष्ण वैदिक साहित्य मे वर्णित कृष्ण से विभिन्न ही प्रमाणित होते हैं।

४—अन्तगडसूत्र का परिशीलन करने से प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु थे, उपासक थे, यही कारण है कि भगवान के द्वारिका मे पधारने पर वे वडी

सजधज के साथ स्वय उनके दर्शनार्थ उनकी सेवा मे उपस्थित होते है, अपने परिवार को साथ लेजाते हैं, उनकी धर्म-देशना सुनते है। भगवान से द्वारिकादाह की बात सुनकर स्वय भगवान के चरणो मे दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते है, आर्तध्यान करते है। जालिकुमार आदि राजकुमारो के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने से उनकी प्रशसा करते हैं। इन सब वातो से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान के अनुयायी थे वे उनके विश्वास को अपना विश्वास समझते थे, उनके मार्ग पर चलनेवालो को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वय चलने की अभिलाषा रखते थे। सक्षेप मे कहा जाय तो ये कृष्ण महाराज जैनधर्मावलम्वी थे। जैनदर्शन को अपना आराध्य मान कर अपनी जीवन-यात्रा चला रहे थे, परन्तु वैदिक साहित्य मे ऐसा कोई वर्णन नही है। वैदिक साहित्य कृष्ण को जैन धर्मानुयायी नही मानता और न ही उनको भगवान अरिष्ट-नेमि का भक्त मानता है। इससे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि जैन साहित्य मे वर्णित कृष्ण वैदिक साहित्य मे वर्णित कृष्ण नही है। आचार-विचार को लेकर दोनो मे महान अन्तर दिखाई देता है।

५—अन्तगड सूत्र मे लिखा है कि भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के छ पुत्र जो भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे साधु बने थे, ये छहो भाई वासुदेव कृष्ण के माजाए भाई थे तथा गजसु-कुमार भी वासुदेव कृष्ण के भाई ही थे, ये भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हो गए थे। इस तरह महाराज कृष्ण के मा जाए ये सात भाई भगवान अरिष्टनेमि के पास जैन साधु बने थे। इनमे से किसी का उल्लेख वैदिक साहित्य मे नही मिलता।

जालिकुमार, मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरिषषेणकुमार और वारिसेनकुमार ये पाचो महाराज वसुदेव के पुत्र थे, अत वासुदेव कृष्ण के भाई थे, इनकी माता धारिणी थी, राजकुमार सत्य-नेमी तथा दृढनेमी ये दोनो राजकुमार वासुदेव कृष्ण के ताऊ के लडके थे। प्रद्युम्नकुमार तथा शाम्ब कुमार ये दोनो वासुदेव कृष्ण के अपने लडके थे। राजकुमार अनिरुद्ध वासुदेव कृष्ण का पोता था। ये सभी राजकुमार भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे जैन साधु बने थे। पर इनके जैन साधु बनने का किसी भी वैदिक ग्रन्थ मे उल्लेख देखने मे नही आता।

महारानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाववती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठो महाराज कृष्ण की रानिया थी। मूलश्री तथा मूलदत्ता ये दोनो कृष्ण महाराज के पुत्र शाम्ब-कुमार की रानिया थी। ये सब भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होकर जैन साध्वी बन गई थी। दीक्षामहोत्सवादि का सव कार्य कृष्ण महाराज ने अपने नेतृत्व मे करवाया था। अथवा यू कहे इन्होने स्वय इनको दीक्षा दिलवाई थी। पर इनके जैन साध्वी बनने का कोई वर्णन वैदिक साहित्य मे देखने मे नही आता।

महाराज कृष्ण की रानिया, पुत्रवधुए साध्वी बन रही है, इनके पुत्र जैन साधु हो रहे है, इनके पोते मोह-माया के वधनो को तोड कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों मे दीक्षा अगीकार कर रहे है, ऐसी दशा मे महाराज कृष्ण के जैनधर्मानुयायी होने मे सन्देह के लिये कोई स्थान नही रह जाता है, यही सत्य जैन साहित्य के कृष्ण को वैदिक साहित्य के कृष्ण से पृथक् सिद्ध करता है।

६—अन्तगड सूत्र मे लिखा है कि वासुदेव कृष्ण अपने राजसेवको द्वारा द्वारिका नगरी के सभी प्रदेशो मे एक उद्घोषणा कराते है। घोषणा मे कहा जाता है कि द्वारिका निवासियो! बारह योजन लम्बी और नव योजन चौडी स्वर्गपुरी के समान हमारी यह द्वारिका नगरी एक दिन द्वैपायनऋषि द्वारा जला दी जायेगी, अत जो भी व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होकर अपना कल्याण करना चाहे, उसे महाराज कृष्ण की आज्ञा है कि वह दीक्षित हो सकता है, साधु बन कर परम साध्य निर्वाणपद की आराधना कर सकता है। यदि किसी को पीछे की कोई चिन्ता हो तो उसे वह छोड देनी चाहिए, पीछे की सब व्यवस्था महाराज कृष्ण स्वय करेगे। इसके अतिरिक्त घोषणा मे यह भी कहा गया था कि जो भी व्यक्ति साधु बन कर अपना कल्याण करना चाहे, उसके दीक्षा-समारोह की सब व्यवस्था महाराज श्रीकृष्ण की ओर से होगी। यह घोषणा एक बार नही, तीन-तीन बार की गई थी।

इस घोषणा से स्पष्ट ध्वनित होता है कि वासुदेव कृष्ण परम धर्मात्मा एव श्रद्धालु व्यक्ति थे और अपने नगर-निवासियो को धर्म मे दीक्षित करने के लिये सभी प्रयत्न कर रहे थे। ध्यान रहे जिस धर्म मे द्वारिका निवासियो को दीक्षित करवाने की योजना हमारे सामने आ रही है यह कोई अन्य धर्म नही, जैन धर्म ही है, भगवान अरिष्टनेमि का निर्ग्रन्थ धर्म है। द्वारिका-निवासियो को जैन-धर्म मे दीक्षित करवाने का यह उल्लेख वैदिक साहित्य के किसी ग्रन्थ मे देखने मे नही आता। जैन शास्त्रो के इन स्पष्ट उल्लेखो के अनन्तर भी यदि कोई जैन-साहित्य मे वर्णित कृष्ण वासुदेव को, वैदिक साहित्य का कृष्ण समझने का प्रयास करे, तो इस से बढ कर अन्य कोई भ्रान्ति नही हो सकती।

७—श्रीमद्भागवत के **'समुद्र सप्तमेऽह्न्येना पुरीञ्च प्लावयिष्यति'**—इस वाक्य से सिद्ध होता है कि वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण की द्वारिका को समुद्र ने डुबोया था और उसकी पूर्व सूचना स्वय श्रीकृष्ण ने दी थी। जब जैन श्रीकृष्ण की द्वारिका को द्वैपायन ऋषि की क्रोधाग्नि ने जलाया था और इस अग्नि-दाह की पूर्व सूचना भगवान अरिष्टनेमि ने दी थी।

कुछ लोग यह कहते हैं कि जैन साहित्य मे कृष्ण को नरकवासी बतला कर सनातनधर्मी कृष्ण एव उनके भक्तो का अपमान किया गया है, उन के मानस को परिपीडित करने का यह ढग अपनाया गया है।

परन्तु कृष्ण भक्तो का ऐसा सोचना व्यर्थ है, क्योकि जैनधर्म का अनुयायी कहलानेवाला कोई भी व्यक्ति अपमान करने की बुद्धि से किसी का अपमान करे, यह सर्वथा असम्भव है। जैनधर्म और पर-अपमान का कोई सम्बन्ध नही है। जैनधर्म प्राणिमात्र के मानस को परिपीडित करने का निषेध करता है तो स्वय किसी का अपमान करे यह कैसे हो सकता है?

दूसरी बात—जैन साहित्य कृष्ण के केवल नरक-गमन की बात कह कर मौन नही हो जाता वह उनके भावी तीर्थकर बनने की भी बात बतलाता है। तीर्थकर का अर्थ है—जैन जगत् का सब से बड़ा आध्यात्मिक नेता, जैन जगत् मे इस से बडा कोई पद नही है। जैन-जगत् जैसे श्रीऋषभदेव,

शान्तिनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर को तीर्थंकर मान कर उन का सम्मान करता है, यही सम्मान वह भावी तीर्थंकर होने से श्रीकृष्ण को देता है। इसी दृष्टि से अन्तगड सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव कृष्ण को कहते है कि हे कृष्ण! आगामी उत्सर्पिणी मे तुम भारतवर्ष के शतद्वार नगर मे अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण वासुदेव को जहा नरकगामी बतलाया गया है वहा उन्हे तीर्थंकर बन जाने के अनन्तर मोक्षगामी बतला कर परम सम्मान भी प्रदान किया गया है।

तीसरी बात—जिस कृष्ण को जैनशास्त्रो ने नरकगामी बतलाया है, वह कृष्ण जैनशास्त्रो का कृष्ण है, जैनधर्मानुयायी कृष्ण है। हजारो नर-नारियो को जैनसाधु तथा जैनसाध्वी बनवानेवाला कृष्ण है। वह वैदिक परम्परा का भगवत्स्वरूप कृष्ण नही है। भगवान से इन्सान बन कर जगत् को अपनी लीला दिखलानेवाला कृष्ण नही है।

"कालमासे"—इस पद मे काल और मास इन दो शब्दो का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से **काल** शब्द समय और **मास** शब्द महीने का बोधक है, पर प्रस्तुत मे **काल** शब्द मृत्यु और **मास** शब्द समय का सूचक है। इस तरह मृत्यु के समय को **'कालमास'** कहते हैं।

"सुरदीवायणकोवनिद्दड्ढाए"—सुर-द्वैपायणन-कोप-निदग्धायाम् का अर्थ है—देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध के कारण (द्वारिका के) दग्ध हो जाने पर।

कहा जा चुका है, कि मदोन्मत्त यादवकुमारो से प्रताडित द्वैपायन ऋषि ने निदान कर लिया था कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारिका नगरी को जला कर भस्म कर दू। निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार नाम के देव बने। इधर वे पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारिकादाह का अवसर देख रहे थे, उधर द्वारिकानिवासियो ने अग्निकुमार देव से अपनी सुरक्षा के लिये अमल तपस्या आरम्भ करदी। कोई घर ऐसा नही था जिसमे अमल तप का अनुष्ठान न होता हो, सर्वत्र अमलतप की ही आराधना चल रही थी। कथाकार कहते हैं कि अग्निकुमार द्वैपायन ऋषि द्वारिका-नगरी मे प्रतिदिन चक्कर लगाता था, परन्तु अमल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई वश नही चलता था, वह द्वारिका नगरी को जलाने मे असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नही छोडा, लगातार बारह वर्षों तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा।

नीतिकार कहते हैं कि मनुष्य के जब दुर्दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि बिगड जाती है, उसको कितनी भी हितदायक बात समझा दी जाये, पर उसकी समझ मे वह नही बैठती। सत्पथ छोडकर कुपथ पर चलना ही उसे प्रिय लगता है। यही दशा द्वारिका-निवासियो की हुई। बारह वर्षों के बाद द्वारिका के कुछ लोग सोचने लगे—अमल तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए हैं, अब अग्निकुमार हमारा क्या बिगाड सकता है? दूसरी बात कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि—

द्वारिका के सभी लोग तो अमल कर ही रहे है, यदि हम लोग न भी करें तो इससे क्या अन्तर पडता है ? समय की बात समझिए कि द्वारिका मे एक दिन ऐसा आ गया जब किसी ने भी अमल तप नही किया। आपसी स्वार्थ के कारण सकट-मोचक अमल-तप से सभी विमुख हो गए। अग्नि-कुमार द्वैपायन ऋषि के लिये इससे बढकर और कौन सा अवसर हो सकता था, उसने द्वारिका को आग लगा दी। चारो ओर भयकर शब्द होने लगे, जोर की आधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि ने सारी द्वारिका को अपनी लपेट मे ले लिया। वासुदेव कृष्ण ने आग शान्त करने के अनेको यत्न किए, पर कर्मो का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेल का काम कर रहा था। पानी डालने से आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यो-ज्यो पानी डाला जाता था त्यो-त्यो अग्नि और अधिक भडकती थी, अग्नि की भीषण ज्वालाये मानो गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थी। कृष्ण वासुदेव, बलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारिका जल गई, पर ये उसे बचा नही सके।

द्वारिका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और बलराम वहा से जाने की तैय्यारी करने लगे इसी बात को सूत्रकार ने **"सुर-दीवायण-कोवनिद्दड्ढाए"** इस पद से अभिव्यक्त किया है।

"अम्मा-पिइ-नियग-विप्पहूणे"—अम्बापितृ-निजक-विप्रहीण मातृपितृभ्या स्वजनेभ्यश्च विहीन'—अर्थात् माता-पिता और अपने सम्बन्धियो से रहित व्यक्ति को **'अम्बापितृ-निजक-विप्रहीण'** कहते हैं। कथाकारो का कहना है कि जब द्वारिका नगरी जल रही थी तो उस समय कृष्ण वासुदेव और इनके बडे भाई बलराम दोनो आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब ये सफल नही हुए तब ये अपने महलो मे पहुचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे। बडी कठिनाई से माता-पिता को महल मे से निकालने मे ये सफल हुये। इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर बैठा कर किसी सुरक्षित जगह पर पहुचा दिया जाये, अपने विचार की पूर्ति के लिये वासुदेव श्रीकृष्ण जब अश्वशाला मे पहुचे तो देखते है, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है। ये वहा से चले रथशाला मे आए रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हे सुरक्षित दिखाई दिया। वे तत्काल उसी को बाहिर ले आये, उस पर अपने माता-पिता को बैठाया, घोडो के स्थान पर दोनो भाई लगे, पर जैसे ही सिहद्वार को पार करने लगे, उस समय रथ का जूआ और दोनो भाई द्वार से बाहिर आये ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पडा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए और उनका देहान्त हो गया। वासुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक, भयकर दृश्य देखा नही गया, वे माता-पिता के वियोग से ये अधीर हो उठे। जैसे-तैसे इन्होने अपने मन को सभाला, माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियो के वियोग से उत्पन्न महान सताप को धैर्यपूर्वक सहन किया। माता-पिता तथा अन्य निज सम्बन्धियो की इसी विहीनता को सूत्रकार ने **"अम्मापिइ-नियग-विप्पहूण"** इस पद से ससूचित किया है।

"रामेण बलदेवेण सद्धि"—का अर्थ है—राम बलदेव के साथ। महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था, रोहिणी ने एक पुण्यवान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह परम अभिराम

सुन्दर था, इसलिये उसका नाम "राम" रखा गया। आगे चलकर अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होने के कारण **राम** के साथ **बल** विशेषण और लग गया और ये राम, बलराम, बलभद्र और बल आदि अनेक नामो से प्रसिद्ध हो गये। जैनशास्त्रो के अनुसार बलदेव एक पद विशेष भी है। वासुदेव के बडे भाई बलदेव कहलाते हैं, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते है। बलराम नौवें बलदेव थे। बलदेव और वासुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है। महाराज कृष्ण के बडे भाई बलदेव राम को ही सूत्रकार ने **"रामेण बलदेवेण"** इन पदो से व्यक्त किया है।

"दाहिणवेलाए अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाण", "पचण्ह पाडवाण पडुरायपुत्ताण पास पडु-महुर सपत्थिए" का अर्थ है—दक्षिणसमुद्र के किनारे पाडुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रधान पाचो पाडवो के पास पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये।

कथाकार कहते हैं कि महाभारत के युद्ध के अनन्तर पाडवो का समय आनन्दपूर्वक हस्तिनापुर मे व्यतीत हो रहा था। एक बार वहा नारद मुनि आगए, भाग्यवश वह सीधे द्रौपदी देवी के महल मे पहुच गये, परन्तु अव्रती समझ कर द्रौपदी देवी ने उनका सम्मान नही किया, जिससे क्रुद्ध होकर और बदले की भावना से नारदमुनि वहा से लौट गए। बहुत सोच विचार के बाद वे धातकीखण्ड की अमर-कका नगरी मे पहुचे। वहाँ के नरेश पद्मनाभ ने उनका स्वागत किया। वे भोजनार्थ जब उनको महल मे लाए तब उन्होने अपने अन्त पुर का उनसे परिचय कराया। अवसर देखकर नारद बोले—'राजन्! भरत क्षेत्रीय हस्तिनापुर मे पाडव राज्य करते है, उनकी द्रौपदी के सामने तुम्हारा यह रनिवास नगण्य है। एक बार भी उसे देख लो तो आश्चर्यचकित रह जाओ। भरतक्षेत्र मे स्वय जाना असम्भव समझ कर परस्त्री लपट पद्मनाभ ने द्रौपदी को लाने के लिये अपने मित्र देव की आराधना आरम्भ कर दी। देव के प्रसन्न होने पर उसने द्रौपदी को लाने को कहा। 'द्रौपदी महासती है, इस से तुम्हारी कामना पूर्ण नही हो सकेगी', यह सब समझाने पर भी जब पद्मनाभ नही माना, तब उस देव ने सोई हुई द्रौपदी को पलग सहित उठा कर पद्मनाभ के महल मे पहुचा दिया। प्रात काल होने पर द्रौपदी ने जब आखें खोली तो वह चकित रह गई। पद्मनाभ ने अपने हृदय की सारी बातें सुना कर उसके आश्चर्य को दूर करते हुए उसे अपनी अर्धांगिनी बनाने का प्रस्ताव रखा। द्रौपदी समझदार थी, उसने समय देख कर एक मास के बाद निर्णय देने को कहा।

इधर हस्तिनापुर मे द्रौपदी को न देखकर पाण्डव घबरा गए। चप्पा-चप्पा छान मारा, जब द्रौपदी नही मिली तो कुन्ती द्वारिका पहुची और महाराज कृष्ण को सब घटना सुनाई। घटना को सुनते ही महाराज कृष्ण विचार मे पड गए। इतने मे अचानक नारद मुनि के आने की सूचना मिली। महाराज कृष्ण ने उनका स्वागत किया।

कृष्ण को उदास देख कर नारद बोले—वासुदेव! उदास क्यो हो? उत्तर मे कृष्ण बोले—द्रौपदी का पता नही लग रहा, आप ही कुछ बतलाने की कृपा करें?

कृष्ण की बात सुन कर नारद ने कहा—धातकी खण्ड-की अमरकका नगरी मे पद्मनाभ नरेश के महल मे द्रौपदी जैसी एक नारी देखी तो थी, मैं भी विस्मित था कि द्रौपदी यहा कैसे आ गई?

नारद मुनि की बात सुनकर कृष्ण समझ गए, यह सब माया नारद मुनि की है। उन्होने तत्काल पाण्डवो को सूचना दी। समुद्र के तट पर आ जाओ, मैं भी वहा आरहा हू। सब के एकत्रित हो जाने पर श्री कृष्ण ने तेला करके समुद्र के अधिनायक का स्मरण किया और उससे द्रौपदी-हरण की सब घटना सुन कर कहा—'हमारे रथ पृथ्वी के समान ही समुद्र को लाघ जाये।' देव ने 'तथास्तु' कहा। छहो रथ अमरकका नगरी के उद्यान मे जा पहुँचे।

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा द्रौपदी को वापिस करने का पद्मनाभ को सदेश भिजवाया। अभिमानी पद्मनाभ नही माना, लडाई आरम्भ हो गई। पाँडव लडाई मे हार गए, फिर महाराज कृष्ण स्वय मैदान मे आ गए। महाराज कृष्ण के पराक्रम को देख कर पद्मनाभ घबरा गया। इनके प्रहारो के सामने वह टिक न सका। रणभूमि से भाग कर अपनी नगरी के द्वार बन्द करा कर वह दुर्ग मे जा पहुचा, पर महाराज कृष्ण के पाद-प्रहार ने नगरी की दीवारें तोड दी और वे नगरी मे प्रविष्ट हो गए। किसी भी तरह अपनी रक्षा का उपाय न देख कर पद्मनाभ ने द्रौपदी की शरण मे जा कर उससे जीवनरक्षा की भिक्षा मागी। द्रौपदी ने एक ही उपाय बताया—वह था—"स्त्री का वेष बना कर वासुदेव के चरणो मे गिर पडो।" पद्मनाभ के ऐसा करने पर महाराज कृष्ण शान्त हो गए और द्रौपदी को ले कर वापिस लौट गए। समुद्र के किनारे आने पर कृष्ण समुद्र के अधिनायक देव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे और पाचो पाडव महानदी गगा के तट पर आकर नाव के द्वारा उसे पार कर के महाराज कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे। पाण्डवो को चाहिये था कि महाराज कृष्ण के लिये वह नाव वापिस भेज देते, पर उन्होने महाराज कृष्ण के बल की परीक्षा के लिये नाव वापिस नही भेजी।

महाराज कृष्ण देव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के अनन्तर सहर्ष गगा तट पर पहुचे। वहा नाव नही थी, बडी टेढी समस्या थी, पर महाराज कृष्ण को समाधान करते कोई देर नही लगी। एक हाथ से उन्होने अश्वसहित सग्रामी रथ उठाया, दूसरे हाथ से गगा महानदी को तैरना आरभ किया। नदी विशाल थी, अत मध्य मे महाराज कृष्ण थक गए। 'पाण्डव इस विशाल नदी को कैसे पार कर गए', यह सोच कर वे उनकी प्रशसा करने लगे। अपनी थकावट से उन्हे कुछ दुविधा नजर आने लगी। अभी-अभी युद्ध भूमि लौटने के कारण एव पाण्डवो के व्यवहार से समुत्पन्न विक्षोभ के कारण श्री कृष्ण की थकान अस्वाभाविक नही। तभी नदी की अधिष्ठात्री देवी सहायता उनकी के लिये आ गई। उसने उनके विश्राम के लिये शुष्क स्थल बना दिया, विश्राम करने के अनन्तर महाराज कृष्ण फिर तैरने लगे और किनारे पर पहुच गए। पाण्डवो ने उन का स्वागत किया।

महाराज कृष्ण बोले—'मैं समझ नही सका महानदी गगा के विशाल महाप्रवाह को बिना साधन के पार करनेवाले पाडव पद्मनाभ से कैसे हार गए ? यह सुन कर पाडव बोले—'हमने भुजाओ से गगा पार नही की, हमे नाव मिल गई थी, उसी से हम पार हो गए थे।'

पाडवो की बात सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे—फिर तुम ने यह नाव मेरे लिये क्यो नही भेजी ? इसका उत्तर देते हुए पाण्डव कहने लगे—हमने सोचा कृष्ण के भुजबल की परीक्षा ली जाये, इसी कारण हमने नाव वापिस नही भेजी।

इतना सुनना था कि महाराज श्रीकृष्ण क्रोध से तमतमा कर बोले—'तुमने अमरकका मे मेरा भुजवल नही देखा ? मेरे जीवन के साथ खिलवाड करते हुए तुम्हे लज्जा नही आई ? कृष्ण ने आवेश मे आकर अपने लोह-दण्ड से पाचो पाडवो के रथो को खण्ड-खण्ड कर दिया और पाडवो को आदेश दिया कि तुम जैसे नीच मेरे राज्य मे नही रह सकते अत मेरे राज्य से बाहिर हो जाओ ।'

पाण्डवो को अपनी भूल का वडा दु ख था, पर कृष्ण का भयकर रूप देखकर वह डर गये और वापिस हस्तिनापुर पहुचे, और माता कुन्ती को सब वृत्तान्त सुनाया । कु ती ने पाडवो के इस अपराध को अक्षम्य-अपराध वताया, तथापि वह द्वारिका मे श्रीकृष्ण के पास पहुची । द्रौपदी को वापिस लाने की उनके सामने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने श्रीकृष्ण से कहा—'बेटा ! पाण्डवो को जो तुमने दण्ड दिया है वह तो उनके अपराध के अनुरूप ही है, परन्तु यह तो वताओ कि वे रहे कहाँ ? तीन खण्ड से बाहिर जाने की उनकी क्षमता नही है ।

महाराज श्रीकृष्ण कु ती का बडा मान करते थे, कु ती वासुदेव की वहिन थी, अत श्रीकृष्ण इन्हे माता तुल्य ही समझते थे । कु ती की बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'माता ! आपके होते हुए कोई समस्या सुलझे बिना नही रह सकती । आप पाण्डवो से कह दें कि दक्षिण-समुद्र के तट पर 'पाण्डुमथुरा' नाम की नगरी बसा लें और उसीमे निवास करें, मैं उस प्रदेश को आज से तीन खण्ड से पृथक् घोषित कर देता हू ।

कु ती सन्तोषजनक उत्तर पाकर बडी प्रसन्न हुई और उसने हस्तिनापुर जाकर सारी बात कह दी । पाण्डव कृष्ण के आदेशानुसार दक्षिण-समुद्र के तट पर पाण्डुमथुरा नाम की नगरी वना कर सानन्द रहने लगे ।

द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बडे चिन्तत थे, उसी दशा मे उन्होने बलराम से कहा कि औरो को शरण देनेवाला कृष्ण आज किस की शरण मे जाये ? इसके उत्तर मे वलराम कहने लगे—पाण्डवो की आपने सदा सहायता की है, उन्ही के पास चलना ठीक है ।

यह सुनकर कृष्ण वोले—जिनको सहारा दिया हो, उनसे सहारा लेना लज्जास्पद है, फिर सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) अपनी बहिन है । बहिन के घर रहे ये भी शोभास्पद नही हैं ।

कृष्ण की तर्क-सगत बात सुनकर बलराम कहने लगे—भाई ! कुती तो अपनी बूआ है, बूआ के घर जाने मे अपमान जनक कोई बात नहीं । अन्त में कृष्ण अनिच्छा होने पर भी बलराम कृष्ण को साथ लेकर दक्षिण समुद्र के तट पर बसाई पाडवो की राजधानी पाण्डुमथुरा की ओर चल दिए । सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र मे जो **"दाहिणवेलाए अभिमुहे पांडुमहुर सपत्थिए"** ये पद दिये है ये उक्त कथानक की ओर ही सकेत कर रहे हैं ।

'कोसव-वण-काणणे"—कोशाम्रवन-कानने, कोशाम्रनामकफलविशेषवृक्षाणामारण्ये—अर्थात् कोशाम्र एक फल विशेप का नाम है, उस फल के वृक्ष-समुदाय के जगल मे ।

"पुढविसिलापट्टए"—पृथ्वीशिलापट्टके, भूमिस्थित-शिलापट्टके अर्थात्—जमीन पर पडी शिलारूप पट्ट अर्थात् तख्त पर ।

"पीत-वत्थ-पच्छाइय-सरीरे"—पीतवस्त्र प्रच्छादित शरीर पीताम्बरेणप्रच्छादित शरीर यस्य—अर्थात् जिसका शरीर पीतवस्त्र से ढका हुआ हो उसे पीतवस्त्र प्रच्छादित शरीर कहते है। भाव यह है कि जिस समय महाराज श्रीकृष्ण कोशाम्रवन मे वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिलापट्टक पर विश्राम कर रहे थे, उस समय उन्होने शरीर पर एक पीला वस्त्र ओढ रखा था।

"जरा कुमारेण—का अर्थ है जरा कुमार ने। जरा कुमार यादव वशीय एक राजकुमार था, जो महाराज श्रीकृष्ण का भाई था। भगवान अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी करते हुए यह कहा था कि जराकुमार के बाण से आहत होने पर वासुदेव श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। जराकुमार को महाराज श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से बडा दु ख था। अन्त मे, उसने निश्चय किया कि मैं द्वारिका छोड कर कोशाम्रवन मे चला जाता हू, वहाँ जीवन के शेष क्षण व्यतीत कर दूगा, इससे श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से मै बच जाऊगा। अपने निश्चय के अनुसार वह कोशाम्रवन मे रहने लगा था। पर भवितव्यता को कौन टाल सकता था। द्वारिका के जल जाने पर श्री कृष्ण अपने बडे भाई बलराम के साथ पाण्डुमथुरा जा रहे थे। रास्ते मे कोशाम्रवन आया। महाराज श्रीकृष्ण को प्यास लगी, बलराम पानी लेने चले गये। पीछे श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे पीतवस्त्र ओढकर विश्राम करने लगे। उन्होने एक पाव पर दूसरा पाव रखा हुआ था। वासुदेव के पाव मे पद्म चिन्ह होता है, इनका यह चिन्ह अपनी छटा दिखला रहा था, दूर से जैसे मृग की आँख चमकती है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के पाँव मे पद्म-चिन्ह चमक रहा था। इधर इस दशा मे ये विश्राम कर रहे थे, उधर जराकुमार उसी वन मे भ्रमण कर रहा था, उसे किसी शिकार की खोज थी। जब वह वट वृक्ष के निकट आया तो उसे दूर से ऐसे लगा जैसे कोई मृग बैठा है। उसने तत्काल धनुष पर एक बाण चढाया, मृगनयन का लक्ष्य करके जोर से खीचकर वह बाण छोड दिया। बाण लगते ही कृष्ण छटपटा उठे। महाराज श्रीकृष्ण को ध्यान आया कि बाण कही जराकुमार का तो नही? जराकुमार को सामने देख कर उनका विचार सत्य प्रमाणित हुआ। जराकुमार के क्षमा मागने पर वे बोले—

जराकुमार! तुम्हारा इसमे क्या दोष है? भवितव्यता ही ऐसी थी। भगवान अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी अन्यथा कैसे हो सकती थी? बलराम के आने का समय निकट देखकर कृष्ण बोले—जराकुमार! तुम यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा बलराम के हाथो से तुम बच नही सकोगे। जिस अधम कार्य से जराकुमार बचना चाहता था, जिस पाप से बचकर उसने द्वारिका नगरी का वास छोडकर कोशाम्रवन का वास अगीकार किया था, उसी पाप को अपने हाथो से होते देखकर उसका हृदय रो पडा, पर क्या कर सकता था? श्रीकृष्ण की वेदना उग्र हो गई, साथ ही उनकी शान्ति भग हो गई। कहने लगे—मेरा घातक मेरे हाथो से बचकर निकल गया, मुझे तो उसे समाप्त कर ही देना चाहिए था, रौद्रध्यान अपने यौवन पर आ गया और उसी रौद्रध्यानपूर्ण स्थिति मे महाराज श्रीकृष्ण का देहान्त हो गया। वे प्यासे ही इस पार्थिव शरीर को छोडकर नरकधाम मे चले गये।

"कोदडविप्पमुक्केण"—कोदण्ड-विप्रमुक्तेन, कोदण्डात् विप्रमुक्तस्तेन—अर्थात् कोदण्ड धनुष का नाम है, विप्रमुक्त—छूटे हुए को कहते हैं, अत इसका अर्थ है धनुष से छूटे हुए।

"तच्चाए बालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए"—तृतीयस्या बालुकाप्रभाया पृथिव्यामुज्ज्वलिते नरके—अर्थात् बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक मे।

जैन दृष्टि से यह जगत् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक इन तीन लोको मे विभक्त है। अधोलोक मे सात नरक है। अधोलोक के जिन स्थानो मे पैदा होकर जीव अपने पापो का फल भोगते है, वे स्थान नरक कहलाते हैं। ये सात पृथ्वियो मे विभक्त है जिनके नाम हैं—घम्मा, वसा, शैला, अजना, रिट्ठा, मघा तथा माघवइ। इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातमप्रभा ये सात गोत्र हैं।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखनेवाली अनादि काल से प्रचलित सज्ञा को नाम कहते हैं और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है वह गोत्र कहलाता है। प्रस्तुत मे वालुकाप्रभा, तीसरी भूमि का प्रसग है। वालु—रेत अधिक होने से इसका नाम वालुकाप्रभा है। क्षेत्र-स्वभाव से इसमे उष्ण वेदना होती है। यहा की भूमि जलते हुए अगारो से भी अधिक तप्त होने से भयकर उष्ण वेदना का कारण बनती है। इस तीसरी पृथ्वी मे नौ प्रतर (नरक के एक-एक परदे के बाद जो स्थान होता है—उसी तरह के स्थान) हैं। पहले प्रतर की प्रत्येक दिशा मे पच्चीस और विदिशा मे चौवीस आवलिका प्रविष्ट (जो नरकावास चारो दिशाओ मे पक्तिरूप से अवस्थित है वे) नरकावास हैं। बीच मे एक नरकेन्द्रक है। कुल मिलाकर एक सौ सतानवे नरकावास हैं। बाकी आठ प्रतरो मे क्रम से आठ-आठ कम होते है। सभी प्रतरो में कुल मिलाकर एक हजार चार सौ पच्चासी नरकावास हैं, शेष चौदह लाख, अट्ठानवें हजार पाच सौ पन्द्रह प्रकीर्णक (इधर उधर बिखरे हुए नरकावास) हैं। दोनो को मिलाकर तीसरी नरक मे १५ लाख नरकावास हैं।

प्रस्तुत सूत्र के वर्णन से पता चलता है कि कृष्ण वासुदेव बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी मे पैदा हुए है। उज्ज्वलित शब्द के दो अर्थ होते हैं—पहला तीसरे भूमि का सातवा नरकेन्द्रक नरकस्थान विशेष और दूसरा भीषण-भयकर। उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है।

पौरणिक साहित्य मे भी कृष्ण महाराज के प्राणान्त का वर्णन किया गया है। वहा भी भगवान कृष्ण जीवन-लीला समाप्त करने के अनन्तर पाताललोक मे वलि के द्वार पर चले जाते है। सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करे तो जैन-साहित्य तथा वैदिक-साहित्य के इस वर्णन मे कोई महत्व पूर्ण अन्तर दिखाई नही देता है। वैदिक साहित्य जिसे पाताल लोक कहाता है, जैन साहित्य उसे अधोलोक कहता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य जिसे बलि का द्वार कहता है जैन साहित्य उसे वालुकाप्रभा कहता है अन्तर केवल नरक का है तथा उसमे उपभुक्त की जानेवाली वेदना का है।

"उस्सप्पिणीए"—उत्सर्पिण्याम्—अर्थात् उत्सर्पिणीकाल मे। जैन शास्त्रकारो ने काल को दो विभागो मे विभक्त किया है, एक का नाम अवसर्पिणी और दूसरे का उत्सर्पिणी है, जिस काल मे जीवो के सहनन (अस्थियो की रचनाविशेष) और सस्थान (शरीर का आकार) क्रमश हीन होते चले जायें आयु और अवगहना घटती चली जाए वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल मे पुद्गलो के वर्ण, रस, गध और स्पर्श हीन होते चले जाते जाते हैं। शुभ भाव घटते है, अशुभ भाव बढते हैं। यह काल दस कोडा-कोडी सागरोपम है।

इसके विपरीत जिसकाल मे जीवो के सहनन और सस्थान क्रमश अधिकाधिक शुभ होते चले जाते है, आयु और अवगाहना बढती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है। जीवो की तरह पुद्गलो के वर्ण, गध, रस और स्पर्श भी इस काल मे क्रमश शुभ होते जाते है। यह काल भी दस कोडाकोडी सागरोपम का है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा, कृष्ण! आने वाली उत्सर्पिणी काल मे पुण्ड्र देश के शतद्वार नगर मे अमम नाम के बारहवे तीर्थंकर बनोगे।

प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद मे भारतवर्ष मे साढे २५ देशो को आर्य माना गया है। तथा आर्य देश मे ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, और वासुदेव को उत्पत्ति बताई गई है। यहा प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन साढे २५ देशो के नाम शास्त्रा मे बतलाए गए हैं उनमे पुण्ड्र देश का नाम देखने को नही मिलता, ऐसी दशा मे उसको आर्यदेश कैसे कह सकते है? भगवान अरिष्टनेमि के कथनानुसार वहा कृष्ण वासुदेव बारहवे तीर्थंकर बनेगे, इस दृष्टि से विचार करते है तो उस पुण्ड्र देश को अनार्य भी नही कह सकते। इस तरह प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार साढे २५ देशो को आर्य माने तो उनमे पुण्ड्र देश का नाम नही आता तो फिर वहा तीर्थंकर का जन्म कैसे ? यदि तीर्थंकर की उत्पत्ति होने से उस आर्य देश माने तो फिर साढे २५ की गणना असगत हो जाती है। यह पूर्वापर का विरोध सगति चाहता है। उत्तर मे निवेदन है कि जहा पर तीर्थंकर आदि महापुरुषो का जन्म होता है, वे देश आर्य हैं, यह सिद्धान्त युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत प्रतीत होता है। रही बात, साढे २५ देशो की गणना को, वह तो भगवान महावीर स्वामी के समय की अपेक्षा से की गई प्रतीत होती है। अत पुण्ड्र देश को आर्य देश मानने मे किसी प्रकार का विरोध दिखाई नही देता।

"अरहा"—शब्द का सामान्य रूप से अर्थ होता है अरिहन्त। राग-द्वेष आदि आत्म-शत्रुओ का हनन करनेवाले, महापुरुष अरिहन्त कहलाते है। प्रत्येक अरिहन्त तीर्थंकर हो यह आवश्यक नही। तीर्थंकर का अरिहन्त होना तो सुनिश्चित है, पर अरिहन्त तीर्थंकर हो भी सकता है और नही भी, अत प्रस्तुत सूत्र मे जो "अरहा" शब्द उपयुक्त है, वह सामान्य रूप से अरिहन्त का बोधक नही है, प्रत्युत इस शब्द से प्रस्तुत मे तीर्थंकर शब्द का ही ग्रहण होना चाहिये।

"ओहय जाव झियाइ—यहा पठित जाव पद **"मणसकप्पे, करतल-पल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए"**—इन पदो का बोधक है। जिसके मनोगत सकल्प-विकल्प रह जाए वह—**'उपहतमन-सकल्प.'**, जिसका मुख हाथ पर स्थापित हो वह **'कर-तल पर्यस्तमुख'** और आर्तध्यान करनेवाले को **आर्तध्यानोपगत** कहते हैं।

"अप्फोडेइ, अप्फोडइत्ता वग्गइ, वग्गइत्ता तिवर्ति छिदइ, छिदित्ता सीहनाय करेइ"—आस्फोटयति—हृष्ट-तुष्ट-हृदय सन् बाहुमास्फालयति, **आस्फोट्य—बाहुमास्फाल्य वल्गति—उच्चै शब्द करोति, वल्गित्वा त्रिपदीं छिनत्ति, त्रयाणा पदानां समहारस्त्रिपदी, मल्लस्येव रगभूमौ पदत्रयविन्यासविशेषता छिनत्ति करोति, अथवा त्रिपदीं छिनत्ति पश्चात् पादत्रयमुल्लघते समवसरणे पदत्रय समुच्छलतीत्यर्थ । सिहनाव सिंहस्य नाद. गर्जन करोति, कृत्वेति**—अर्थात् इस पाठ से सूत्रकार ने चार बातें ध्वनित की

हैं। महाराज कृष्ण भविष्य मे बारहवें तीर्थंकर बनने की शुभ वार्ता सुनकर आनन्द विभोर हो उठते हैं, अपनी अनेक विध चेष्टाओ द्वारा अपने आन्तरिक हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी वे चेष्टाए चार भागो मे विभाजित की गई हैं—१ भविष्य मे तीर्थंकर जैसे महान आध्यात्मिक पद को प्राप्त करू गा यह सुनकर श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अपनी भुजाए फडकाते है, उनके अगो मे स्फुरणा आरम्भ हो जाती है। २ श्रीकृष्ण उच्च स्वर से प्रसन्नता प्रकट करनेवाले शब्दो का उच्चारण करते है। ३ पहलवानो की तरह भूमि पर तीन बार पैतरे बदलते है या भगवान के समवसरण मे तीन बार उछलते हैं। ४ शेर की तरह गर्जते है।

"सिज्झिहिइ ५" यहा दिए गए ५ के अक से अभिमत पदो का निर्देश पदार्थ मे कर दिया गया है।

"हट्ठतुट्ठ" यहा का बिदु **चित्तमाणदिए, पीइमणे, परमसोमणस्सिये हरिसवसविसप्पमाण-हियये"** इन पदो का ग्राहक है। भाव यह है कि महाराज श्रीकृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हुए। कहने लगे कि मैं धन्य हू जो भविष्य मे तीर्थंकर पद को प्राप्त करू गा, इस कारण सन्तुष्ट चित्त होने से वे आनन्द विभोर हो उठते हैं, उनका हृदय तृप्त हो गया, उन्हें अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगा। हर्षातिरेक से उनका हृदय उछलने लगा।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि श्री कृष्ण सिंहासन पर बैठकर अपने राजसेवको को बुलाते हैं। इसके अनन्तर क्या हुआ, अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए सिंघाडग जाव उवघोसे-माणे एव वयह—

एव खलु देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए, सुरग्गि-दीवायणमूलए विणास भविस्सइ। त जो ण देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवतीए णएरीए राया वा, जुवराया वा, ईसरे, तलवरे, माडबिये, कोडुबिये, इब्भे, सेट्ठी वा, देवी वा, कुमारो वा, कुमारी वा, अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डे जाव पव्वइत्तए, त ण कण्हे वासुदेवे विसज्जेति। पच्छातुरस्सवि य से अहापवित्त विति अणुजाणइ, महया इड्ढि-सक्कारसमुदऐण य से निक्खमण करेइ। दोच्चपि तच्चपि घोसणाय घोसेह, घोसइत्ता मम एव माणत्तिय पच्चप्पिणह। तए ण ते कोडुबिय जाव पच्चपिणति।

छाया—एव खलु देवानुप्रिया! द्वारवत्या नगर्या सुराग्निद्वैपायनमूलक विनाशो भवि-ष्यति। तस्माद् यो देवानुप्रिया! इच्छति द्वारवत्या नगर्या राजा वा, युवराट् वा, ईश्वर, तलवर, माण्डविक, कौटुम्बिक इभ्य श्रेष्ठी वा, देवी वा, कुमारो वा, कुमारी वा अर्हतोऽरिष्टनेमे अन्तिके मुण्डो यावत् प्रव्रजितुम्, त कृष्णो वासुदेव विसर्जयति, पश्चादातुरस्यापि च तस्य यथाप्रवृत्ता वृत्तिमनु-

जानाति, महता ऋद्धि-सत्कार-समुदयेन च तस्य निष्क्रमण करोति, द्वितीयवारमपि, तृतीयवारमपि घोषणा घोषयत, घोषयित्वा ममैतत् प्रत्यर्पयत--निवेदयत । ततस्ते कौटुम्बिका यावत् प्रत्यर्पयन्ति ।

पदार्थ—**देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रियो !, **तुब्भे**—तुम, **गच्छह**—जाओ, **ण**—वाक्यसौन्दर्य के लिये, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी के, **सिंघाडग**—सिंघाटक (त्रिकोण मार्ग), **जाव**—यावत्, **उवघोसेमाणे**—उद्घोषणा करते हुए, **एव**—इस प्रकार, **वयह**—बोलो—

खलु—निश्चय ही, **देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रियो !, **नवजोयण**—नवयोजन चौडी, **भूयाए**—सुरपुरी के समान, **जाव**—यावत्, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का, **विणासे**—विनाश, **सुरग्गिदीवायणमूलए**—सुरा अग्नि और द्वैपायान ऋषि के कारण अथवा अग्निकुमार नामक सुररूप द्वैपायन ऋषि के कारण, **भविस्सइ**—होगा, **त**—सो, **देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रियो !, **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी मे, **जो ण**—जो कोई, **राया**—राजा हो, **वा**—अथवा, **जुवराया**—युवराज हो (राजा का उत्तराधिकारी हो), **वा**—अथवा, **ईसरे**—ईश्वर—ऐश्वर्ययुक्त हो, **तलवरे**—तलवर—राजा ने सन्तुष्ट हो कर जिसे पट्टबध दिया हो। **माडबिय**—माडम्बिक—मडम्ब (जो वस्ती भिन्न-भिन्न हो), **कौटुम्बिक**—कुटुम्बो का पालन करनेवाला, **इब्भ**—इभ्य हो (हाथी के बराबर जिस के पास धन हो), **सेट्ठी**—नगर का प्रधान व्यापारी हो, **वा**—अथवा, **देवी**—महारानी हो, **वा**—अथवा, **कुमारी**—कुमारी—लडकी हो, **कुमारो**—कुमार—लडका हो, **वा**—अथवा, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के, **अन्तिए**—पास, **मुंडे**—मुण्डित, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—प्रव्रजित—दीक्षित होना, **इच्छइ**—चाहता हो, तो, **त**—उस को, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **विसज्जेइ**—आज्ञा देते हैं, **य**—समुच्चयार्थक है, **पच्छातुरस्स वि**—पीछे आतुर-रोगी-निराश्रित की भी, **से**—वे, **अहापवित्त**—यथायोग्य, **वित्ति**—आजिविका का, **अणुजाणाइ**—प्रवन्ध करेगे, **महता**—बडे **इड्ढी**—ऋद्धि, **सक्कार**—सत्कार के, **समुदएण**—समुदाय के साथ, **से**—उसका, **निक्खमण**—निष्क्रमण अर्थात् दीक्षा-सत्कार, **करेइ**—करेगे, **दोच्चपि**—दो वार, **तच्चपि**—तीन वार, **घोसणाय**—घोषणा को, **घोसेह**—उद्घोषणा करो, , **घोसेइत्ता**—घोषणा करके, **मम**—मुझे, **एय**—इसकी, **पच्चप्पिणह**—सूचना दो, **तए ण**—तदनन्तर, **ते कोडुविय**—वे सेवक पुरुष, **जाव**—यावत्—उद्घोषणा करके, उसकी, **पच्चप्पिणति**—सूचना दे देते हैं।

मूलार्थ—कृष्ण वासुदेव अपने सेवको को कहने लगे कि—हे भद्र पुरुषो ! आप लोग जाये और द्वारिका नगरी के त्रिकोणमार्ग त्रिपथ (जहा तीन मार्ग मिलते है) चत्वर (जहा पर चार से अधिक मार्गों का सगम हो) आदि सभी मार्गों पर जाकर लोगो को सूचना दे कि बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौडी देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के हाथो से विनाश होगा, अत द्वारिका नगरी का कोई भी निवासी राजा,युवराज,ईश्वर (ऐश्वर्य युक्त) तलवर (राजा सन्तुष्ट होकर जिन्हे पट्ट बध देता है) माडम्बिक (मडम्ब—बिखरी हुई वस्ती का अधिनायक) इभ्य (जिस के

पास हाथी के बराबर घन हो) श्रेष्ठी (नगरी का प्रधान व्यापारी) देवी—रानी, कुमार अथवा कुमारी अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास मुण्डित एव प्रव्रजित होना चाहे तो कृष्ण वासुदेव की ओर से उनको मुण्डित एव प्रव्रजित होने की आज्ञा है, किसीके पीछे यदि कोई उसका सम्बन्धी आतुर—निराश्रित होगा, तो उसकी रक्षा तथा आजीविका का यथोचित प्रबध किया जावेगा। प्रव्रजित होनेवाला कोई भी अपने पीछे की चिन्ता न करे। इसके अतिरिक्त प्रव्रजित होनेवाले व्यक्तियो का दीक्षा-सस्कार कृष्ण वासुदेव सम्मानपूर्वक बडे समारोह के साथ स्वय करायेगे। इस प्रकार यह दो बार, तीन बार घोषणा करके मुझे उसकी सूचना दो।

कृष्ण वासुदेव का आदेश सुनकर राज-सेवको ने द्वारिका नगरी के सभी प्रदेशो मे महाराज श्रीकृष्ण का आदेश घोषणा द्वारा पहुचा दिया और वापिस आकर उसकी सूचना वासुदेव श्रीकृष्ण को दे दी।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे श्रीकृष्ण वासुदेव की धार्मिकश्रद्धा की महानता का उल्लेख किया गया है। श्रीकृष्ण ने जबसे भगवान अरिष्टनेमि द्वारा द्वारिका-दाह की बात सुनी है तभी से उनका मन विरक्त हो गया। उनकी इच्छा थी कि जब द्वारिका ने एक दिन जल ही जाना है तो द्वारिका-निवासी क्यो न सयम-साधना मे लग कर अपने जीवन को सफल बनाए ? इसी विचार से उन्होने अपने राज-सेवको द्वारा द्वारिका-निवासियो को भावी अनिष्ट की सूचना देते हुए उनको आत्म-कल्याण सम्पादन के लिये कल्याणकारी प्रेरणा प्रदान की श्रीकृष्ण ने द्वारिका-निवासियो को यहा तक कहलवा दिया कि किसी व्यक्ति को पीछे की कोई चिंता नही रखनी चाहिये। दीक्षित व्यक्ति के पीछे जो कोई बाल, वृद्ध, रोगी होगा उसकी देख-रेख की सब व्यवस्था राज्य की ओर से होगी। किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। श्रीकृष्ण ने यह सूचना एक बार नही, दो बार नही, बल्कि तीन-तीन बार देने का आदेश राजसेवको को दिया था। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने सेवको को यह भी आज्ञा दी कि यह सूचना द्वारिका के सभी प्रदेशो मे दी जाए। सघाटक (त्रिकोणमार्ग), त्रिक (जहा तीन मार्ग मिलते हैं), चतुष्क (जहा चार मार्ग एकत्रित होते हैं), चत्वर (जहा चार से अधिक मार्ग मिलते है), महापथ (राजमार्ग) आदि किसी भी मार्ग को छोडा न जाये। सभी मार्गों पर यह सूचना प्रसारित कर दी जाए, ताकि द्वारिका का कोई व्यक्ति भावी अनिष्ट से अज्ञात रह कर आत्म-कल्याण की पावन-सम्पदा से वञ्चित न रह जाये।

कुछ विचारक कहते हैं कि भगवान अरिष्टनेमी को द्वारिका के विनाश का कारण श्रीकृष्ण को नही बतलाना चाहिए था। क्यो नही बतलाना चाहिये था ? उस प्रश्न का वे उत्तर देते हैं कि द्वारिका-दाह की बात जान कर लोगो को बहुत दुःख हुआ था।

वस्तुत यहा दु खवाली कोई बात नही है, क्योकि श्रीकृष्ण के मुख से द्वारिका-दाह की वात सुन कर भयभीत द्वारिका-निवासियो ने सुरा-पान करना छोड दिया और हज़ारो व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे दीक्षित हो कर सयम-साधना के महापथ पर चलते हुए जीवन को कल्याण-कारी बना पाए थे। अत यह जानकारी समाज और राष्ट्र तीनो के लिये वरदान बन गई थी।

"सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा"—इस वाक्य मे पठित **जाव** पद **तिय-चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु-महया सद्देण"** इन पदो का बोधक है। इन का अर्थ है—**त्रिक**—जहा तीन रास्ते मिलते हो। **चतुष्क**—जहा चार रास्ते मिलते हो। **चत्वर**—जहा चार से अधिक रास्ते मिलते हो। **महापथ**—राजमार्ग—जहा बहुत से मनुष्यो का यातायात हो और **पथ**—साधारण मार्ग, इन पर 'महान' शब्द से घोषणा करते हुए।

"नव-जोयण जाव भूयाए"—इस वाक्य के **जाव** पद से गृहीत पदो का सकेत पीछे पृष्ठ २४-२५ पर किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे पठित राजा आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—किसी देश के शासक को राजा, राजा के उत्तराधिकारी को युवराज और ऐश्वर्यवाले को ईश्वर कहते हैं। राजा सन्तुष्ट हो कर जिसे पट्टबन्ध देता है, वे राजा के समान पट्टबन्ध से विभूषित लोग तलवर कहलाते हैं अथवा नगररक्षक कोतवाल को तलवर कहते हैं। जो बस्ती भिन्न-भिन्न स्थानो पर बसी हो उसे मडब और उसके अधिकारी को माडबिक कहा जाता है। जो कुटुम्ब का पालन-पोषण करते हैं या जिन के द्वारा बहुत से कुटुम्बो का पालन होता है, उन्हे कौटुम्बिक कहा जाता है। इभ हाथी का नाम है, हाथी के समान धन या हाथी आदि जिस के पास हो वह इभ्य कहलाता है, जो नगर का प्रधान व्यापारी हो वह श्रेष्ठी। राजमहिषी, पट्टरानी, शील एव सदाचार से युक्त स्त्री देवी, युवावस्था या उस से पहले की अवस्था का पुरुष राजकुमार, अविवाहित लडका कुमार तथा १० से १२ वर्ष तक की अविवाहिता कन्या, कुमारी कहलाती है।

मुडे जाव पव्वइत्तए—यहा पठित **जाव** पद से विवक्षित पदो की सूचना पीछे पृष्ठो पर दी जा चुकी है। **अहापवित्त —यथाप्रवृत्त**, का अर्थ है यथायोग्य, यथोचित।

"इड्ढी-सक्कार-समुदएण—"ऋद्धया वस्त्रसुवर्णादिसम्पदा, सत्कार पूजाविशेषस्तस्य समुदाय.। ऋद्धि शब्द वस्त्र सुवर्ण आदि सम्पत्ति का, सत्कार पूजाविशेष एव आदर विशेष का तथा समुदाय शब्द समूह का बोधक है। भाव यह है कि महाराज कृष्ण ने लोगो को सूचना दी है कि जो लोग दीक्षित होगे उन के दीक्षा-सस्कार मे वस्त्र, सुवर्ण आदि अपेक्षित पदार्थों की सत्कार सहित पूर्ति की जाएगी। दूसरे शब्दो मे पूरे समारोह के साथ दीक्षा सस्कार सम्पन्न किया जायेगा।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार द्वारिका नगरी में घोषणा कर दी गई। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते ण सा पउमावई देवी अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया अरह अरिट्ठनेमिं वदति णंमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—

सद्दहामि ण भते ! णिग्गथ पावयण, से जहेत तुब्भे वदह, ज नवर देवाणुप्पिया ! कण्ह वासुदेव आपुच्छामि । तते ण अह देवाणुप्पियाणा अतिए मुडा जाव पव्वयामि ।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह ।'

तते ण सा पउमावई देवी धम्मिय जाणप्पवर दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी जेणेवसते गिहे तेणेव, उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरूहइ, पच्चोरूहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल कट्टु एव वयासी—

इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाता समाणी अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुडा जाव पव्वयामि । अहासुह० ।

छाया—तत सा पद्मावती देवी अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके धर्म श्रुत्वा, निशम्य हृष्टा-तुष्टा यावत् हृदया, अर्हन्तमरिष्टनेमिं वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवैवमवादीत्—

श्रद्दधे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन, तद् यथा यूय वदथ, यन्नवर देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव-मापृच्छामि । ततोऽह देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डिता यावत् प्रव्रजामि ।

'यथा सुख देवानुप्रिये ! मा प्रतिबध कुरुष्व ।

तत सा पद्मावती धार्मिक यानप्रवरमारोहति, आरुह्य च यत्रैव द्वारिका नगरी, यत्रैव स्वक गृह, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकाद् यानात् प्रत्यारोहति, प्रत्यारुह्य, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपा-गच्छति, करतल० कृत्वा एवमवादीत्—

इच्छामि देवानुप्रिय ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्डिता यावत् प्रव्रजामि । यथा सुखम्० ।

पदार्थ—**तते ण**—उसके अनन्तर, **सा पउमावई देवी**—वह पद्मावती देवी, **अरहतो अरिट्ठ-नेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के, **अतिए**—पास, **धम्म**—धर्म-कथा, **सोच्चा**—सुनकर और, **निसम्म**—उस पर विचार करके, **हट्ठ तुट्ठ०**—आनन्द विभोर हो उठी, **जाव**—यावत्, **हियया**—प्रसन्न हृदयवाली होकर, **अरह अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **वदति णमसति**—वन्दना-नमस्कार करती है, **वदिता णमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगी—

भते !—हे भगवन् !, **णिग्गथ पावयण**—निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् आप की वाणी पर, **सद्दहामि ण**—मैं श्रद्धा रखती हू, **से**—वह, **जहेत**—जैसे, **तुब्भे**—आप, **वदह**—प्रतिपादन करते हैं,

वह सब सत्य है, **ज**—जो, **नवर**—इतना विशेष है कि, **देवाणुप्पिया**—देवानुप्रिय !, **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **आपुच्छामि**—पूछती हू, **तते ण**—उसके पश्चात्, **अह**—मैं, **देवाणुप्पियाण**—आपश्री के, **अतिए**—पास, **मुडा**—मुण्डित, **जाव**—यावत्, **पव्वयामि**—दीक्षा ग्रहण करूगी। भगवान बोले—

देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिये, **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **मा पडिबध करेह**—विलब मत करो !

तते ण—उसके पश्चात्, **सा पउमावई देवी**—वह पद्मावती देवी, **धम्मिय**—धार्मिक, जिसका प्रयोग केवल धार्मिक कार्य मे ही होता हो, **जाणप्पवर**—उस प्रधान रथ पर, **दुरूहइ**—चढती है, **दुरूहित्ता**—और रथ पर चढ कर, **जेणेव**—जहा पर, **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **सते गिहे**—अपना घर था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—जाती है, **उवागच्छिता**—और जाकर, **धम्मियाओ**—धार्मिक, **जाणाओ**—रथ से, **पच्चोरुहइ**—उतरती है, **पच्चोरुहित्ता**—और उतर कर, **जेणेव**—जहा पर, **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आती है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **करयल कट्टु**—दोनो हाथ जोड कर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगी, **इच्छामि**—मैं चाहती हू कि, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **तुब्भेहि**—आपके द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त हो जाने पर, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के, **अतिए**—पास, **मु डा**—मुण्डित, **जाव**—यावत्, **पव्वयामि**—दीक्षा ग्रहण कर लू (कृष्ण वासुदेव बोले—) **अहासुह**—जैसे तुम्हें सुख हो।

मूलार्थ—कृष्ण वासुदेव के चले जाने के अनन्तर महारानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि के पास धर्म-प्रवचन सुनकर उस पर चिन्तन करने के अनन्तर बडी प्रसन्न हुई। प्रसन्न हृदय हो वह अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे वदना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगी—

भगवन् ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् आपकी वाणी पर श्रद्धा है, आपके कथन पर पूर्ण आस्था है, केवल आस्था ही नही, भगवन् ! मैं आपके चरणो मे दीक्षित होना चाहती हू, पर यह सब कुछ कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेने के अनन्तर करना चाहती हू।

महारानी पद्मावती का श्रद्धापूर्ण निवेदन सुनकर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि उसे कहने लगे—देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर एक बात का ध्यान रखना, शुभ कार्य मे विलब नही करना चाहिए।

भगवान अरिष्टनेमि की यह आज्ञा सुन कर महारानी पद्मावती वहाँ से चल दी अपने धार्मिक—धर्म-स्थानो पर जाने के लिये ही उपयोग मे आनेवाले प्रधान रथ पर सवार होकर द्वारिका नगरी मे जहाँ अपना घर था, वहा आई और रथ से उतर

कर कृष्ण वासुदेव के पास पहुची और उनके चरणो मे दोनो हाथ जोड कर उसने निवेदन किया—

देवानुप्रिय ! यदि आप मुझे आज्ञा दे तो मेरी इच्छा है कि मै वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर दीक्षित हो जाऊ ?

महारानी पद्मावती का निवेदन सुनकर कृष्ण वासुदेव कहने लगे—देवानुप्रिये ! जिस तरह तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो, वैसा करो ! मेरी ओर से तुम्हे दीक्षित होने की आज्ञा है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे, भगवान के प्रवचनो से प्रभावित महारानी पद्मावती देवी का अपने पतिदेव कृष्ण वासुदेव से महामहिम भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे दीक्षित होने के लिये आज्ञा प्राप्त करने की प्राथना करना तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उसकी वैराग्य-भावना का स्वागत करते हुए उसे दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करना, इन दो बातो का उल्लेख किया गया है।

द्वारिका-वासियो को द्वारिका-दाह की सूचना दी जा चुकी है। साथ ही उन्हे यह भी कह दिया गया था कि जो व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे दीक्षित होना चाहे, वह सहर्ष दीक्षा अगीकार कर सकता है, परन्तु कहना जितना आसान होता है करना उतना ही कठिन हुआ करता है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति सामान्य जन-जीवन मे अधिकतर देखी जाती है। उपदेश को स्वय अपने जीवन मे उतारनेवाले विरले ही होते है। वासुदेव श्रीकृष्ण जो कहते थे वह करते भी थे, अत उन्होने अपनी प्रिय पत्नी को भगवान अरिष्टनेमी के चरणो मे दीक्षित होने की सहर्ष आज्ञा देदी, इससे श्रीकृष्ण की धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा व्यक्त होने के साथ-साथ अपने और पराए के भेद के प्रति उपरामता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। धर्म के महापथ पर चलने के लिये कोई भी तैयार हो कृष्ण महाराज उसी का स्वागत करते थे और पूर्णप्रसन्नता के साथ उसे पूर्ण अभिलषित सहयोग देते थे। यही कृष्ण वासुदेव की महत्ता और लोक-प्रियता का कारण है।

"हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया"—यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदो का सकेत पीछे पृष्ठ १०० पर कर दिया गया है।

"णिग्गथ पावयण०" यहां दिया गया बिंदु—"**पत्तियामि ण भते ! णिग्गथ पावयण, एव रोएमि ण भते ! णिग्गथ पावयण, अब्भुट्ठेमि ण भते ! णिग्गथ पावयण, एवमेय भते ! तहमेय भते ! अवितहमेय भते ! असदिद्धमेय भते, पडिच्छियमेय भते ! इच्छियपडिच्छियमेय भते !** इन पदो का बोधक है। इन का अर्थ है—

हे भगवन् ! मैं निर्गन्थ प्रवचन पर प्रीति रखती हू, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे अच्छा लगता है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता हू हे भगवन् ! जैसा आपने

कहा है वैसा ही है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन "जैसी वस्तु है" उसी के अनुसार है। हे भगवन् ! आपका प्रवचन सत्य है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन सन्देह-रहित है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन इष्ट है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन वारम्वार इष्ट है, हे भगवन् ! आप जो कहते हैं वह इष्ट तथा अत्यधिक इष्ट है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा गया है कि श्रीकृष्ण ने महारानी पद्मावती देवी को दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। उसके अनन्तर क्या हुआ ? अव सूत्रकार इस सम्वन्ध मे वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तए ण से कण्हे वासुदेवे कोडुबिए सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थ निक्खमणाभिसेय उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । तए ण ते जाव पच्चप्पिणति । तए ण से कण्हे वासुदेवे पउमावइ देवि पट्टय दुरूहेइ, अट्ठसतेण सोवण्णकलसेण जाव महानिक्खमणाभिसेएण अभिसिचइ, अभिसिचित्ता सव्वालकारविभूसिय करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणि सिविय रयावेइ, बारवतीए णयरीए मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता, जेणेव रेवतए पव्वते, जेणेव सहसबवणे उज्जाणे तेणेव गच्छइ, उवागच्छित्ता सीय ठवेइ, पउमावई देवी सीताओ पच्चोरूहइ । तए ण से कण्हे वासुदेवे पउमावइ देवि पुरओ क ट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ, णमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

एस ण भते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नाम देवी, इट्ठा-कता-पिया-मणुन्ना-मणामा-अभिरामा जाव किमग पुण-पासणायाए ? तन्न अह देवाणुप्पिया ! सिस्सिणी-भिक्खं दलयामि, पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया ! सिस्सिणी-भिक्ख । अहा सुह ०।

छाया—तत स कृष्णो वासुदेव कौटुम्बिकान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—

क्षिप्रमेव देवानुप्रिया ! पद्मावत्यै महार्थ-महार्हं निष्क्रमणाभिषेकमुपस्थापयत, उपस्थाप्य एतामज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत ।

ततस्ते यावद् (निष्क्रमणाभिषेक समुपस्थाप्य) प्रत्यर्पयन्ति । तत स. कृष्णो वासुदेव पद्मावतीं देवीं पट्टकमारोहयति, अष्टशतै सौवर्णकलशै यावत् महानिष्क्रमणाभिषेकमभिषिञ्चति, अभिषिच्य, सर्वालिकारविभूषिता करोति, कृत्वा पुरुष-सहस्रवाह्या शिविकां रचयति, रचयित्वा द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव रैवतक पर्वत यत्रैव सहस्राम्रवनमुद्यान तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, शिविकां स्थापयति, पद्मावती देवी शिविकाया प्रत्यारोहति । तत स कृष्णो वासुदेव पद्मावती देवीं पुरत कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमि त्रिकृत्व आदक्षिण प्रदक्षिण करोति, वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवादीत्—

एषा भदन्त ! मम अग्रमहिषी पद्मावती देवी इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा, अभिरामा, यावत् किमग पुन द्रष्टुम् ? तन्निश्चयमह देवानुप्रिय ! शिष्याभिक्षा ददामि, प्रतीच्छन्तु देवानुप्रिया ! शिष्याभिक्षां । यथासुखम्० ।

पदार्थ—तए ण—उसके अनन्तर, से—वे, कण्हे-वासुदेवे—कृष्ण वासुदेव, कोडु बियपुरिसे—राजसेवको को, सद्दावेइ—बुलाते हैं, सद्दावित्ता—और बुलाकर, एव वयासी—इस प्रकार कहने लगे, देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रियो ! खिप्पामेव—शीघ्र ही, पउमावइए—पद्मावती के लिये, महत्थ—विशाल, निक्खमणाभिसेय—निष्क्रमणाभिषेक—दीक्षामहोत्सव की, उवट्ठवेह—तैय्यारी करो, उवट्ठवित्ता—तैयारी करके और, एयमाणत्तिय—इस आज्ञा का पालन करके, पच्चप्पिणेह—मुझे सूचित करो ।

तते ण—उसके अनन्तर, ते—वे दास पुरुष, जाव—यावत् महाराज कृष्ण की आज्ञा का पालन करके उसकी उन्हे, पच्चप्पिणति—सूचना दे देते है, तए ण—उसके अनन्तर, से कण्हे वासुदेवे—वह कृष्ण वासुदेव, पउमावइ देविं—पद्मावती देवी को, पट्टय—स्नान पाट पर दुरूहइ—विठलाते हैं, अट्ठसतेण—एक सौ आठ, सोवण्णकलसेण—सोने के घडो से, जाव—यावत् महानिक्खमणाभिसेएण—महानिष्क्रमणाभिषेक—दीक्षा महोत्सव सम्बन्धी स्नान, अभिसिंचइ—अभिषेक कराते हैं, अभिसिंचित्ता—स्नान करा कर, सव्वालकारविभूसिय—सब प्रकार के अलकारो—आभूषणो से आभूषित—शृङ्गारित, करेइ—करते हैं, करित्ता—करके, पुरिससहस्सवाहिणि—पुरुष सहस्र-वाहिनी नामवाली, सिविय—शिविका—पालकी मे, रयावेइ—विठलाते है, बारवतीए णयरीए—द्वारिका नगरी के, मज्झमज्झेण—बीचो बीच, णिग्गच्छइ—निकलते हैं, णिग्गच्छित्ता—निकलकर, जेणेव—जहा पर, रेवतए पव्वए—रैवतक पर्वत था, जेणेव—जहा पर, सहसबवणे—सहसाम्र वन नामक, उज्जाणे—बाग था, तेणेव—वहा पर' उवागच्छइ—आते हैं, उवागच्छित्ता—आकर, सीय—पालकी को, ठवेति—रखवा देते हैं पउमावई देवी—पद्मावती देवी, सीतातो—पालकी से, पच्चोरूहइ—उतरती है, तए ण—उसके अनन्तर, से कण्हे वासुदेवे—वे कृष्ण वासुदेव, पउमावइ देविं—पद्मावती देवी को, पुरओ—अपने आगे, कट्टु—करके, जेणेव—जहा पर, अरहा—अरिहन्त वीतराग, अरिट्ठनेमी—भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, तेणेव—वहा पर, उवागच्छइ—आते हैं, उवागच्छित्ता—आकर, अरह—अरिहन्त, अरिट्ठनेमिं—भगवान अरिष्टनेमि को, तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण—तीन वार दक्षिण की ओर से प्रारभ की गई प्रदक्षिणा-परिक्रमा, करेइ—करते हैं, करित्ता—करके, वदइ णमसइ—वन्दना एव नमस्कार करते हैं, वदित्ता णमसित्ता—वदन। नमस्कार करके, एव वयासी—इस प्रकार निवेदन करने लगे—

भते !—हे भगवन् !, एस ण—यह (पद्मावती की ओर सकेत कर के), अग्गमहिसी—अग्रमहिषी—पट्टरानी, पउमावई नाम देवी—पद्मावती देवी नाम वाली, इट्ठा—इष्ट है, इच्छित है, कता—कान्त है, सुन्दर है, पिया—प्रिया है, प्रीति की उत्पादिका है, मणुन्ना—मनोज्ञ है, मणामा—मनोऽमा है, (जिस की सुन्दरता को बारबार स्मरण किया जाय) ऐसी है, अभिरामा—अभिरामा

है, **जाव**—यावत् उदुम्बर पुष्प की तरह इसका तो सुनना भी कठिन है, **किमग पुण पासणयाए**—फिर देखना तो बड़ा ही दुर्लभ है, **तण्ण**—उसे ही, **अह**—मैं, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **सिस्सिणीभिक्ख**—शिष्या के रूप मे भिक्षा, **दलयामि**—देता हूँ, **देवाणुप्पिया !**—आपश्री, **सिस्सिणीभिक्ख**—शिष्या रूप भिक्षा को, **पडिच्छतु ण**—स्वीकार करे। कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर भगवान बोले, **अहासुह**—हे कृष्ण ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो अर्थात् हम इस भिक्षा को स्वीकार करते है।

मूलार्थ—महारानी पद्मावती को दीक्षित हो जाने की आज्ञा देने के अनन्तर वासुदेव कृष्ण राजसेवको को बुला कर कहने लगे—

भद्र पुरुषो ! आप लोग शीघ्र ही पद्मावती के विशाल दीक्षामहोत्सव के लिये अपेक्षित सब सामग्री एकत्रित करके यावत् उसकी सूचना मुझे दे। दीक्षामहोत्सव की पूरी तैयारी हो जाने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव पद्मावती को एक स्नान-पाट (जिस पट्टे पर बैठ कर स्नान किया जाता है) पर बिठलाते है और एक सौ आठ सोने के घडो से उस को स्नान कराते हैं। अन्य अनेक प्रकारो से दीक्षा-स्नान हो जाने के अनन्तर उन्होने उसे सब प्रकार के आभूषणो से आभूषित किया, सहस्रपुरुष-वाहिनी नामक पालिका पर बिठलाया तथा द्वारिका नगरी के मध्य मे से निकल कर रैवतक पर्वत पर जहा सहस्राम्र वन नामक उद्यान था वहा आए, पालकी को रख दिया, तब पद्मावती देवी उससे नीचे उतरी।

कृष्ण वासुदेव पद्मावती देवी को आगे करके जहाँ वीतराग भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहा पर आए। आकर उन्होने दक्षिण ओर से आरम्भ करके तीन बार भगवान की प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया, अन्त मे वे भगवान अरिष्टनेमि की सेवा मे निवेदन करने लगे—

भगवन् ! यह पद्मावती नाम की देवी मेरी पट्टरानी है। मेरे लिये यह इष्ट-इच्छित है, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, सुन्दर, मणाम, सस्मरणीय तथा अभिराम है। कहा तक निवेदन करू ? उदुम्बर पुष्प के समान इसका सुनना भी दुर्लभ है देखने की तो बात ही कहा ? भगवन् ! उसी पद्मावती देवी की शिष्या के रूप मे आपको भिक्षा देने लगा हू। आप इसे स्वीकार करने की कृपा करे।

कृष्ण वासुदेव के द्वारा पद्मावती देवी की शिष्या के रूप मे भिक्षा देने की बात सुन कर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि बोले—

देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो अर्थात् यदि तुम्हारी आत्मा को इसी तरह शान्ति है तो तुम्हारे द्वारा दी गई भिक्षा मुझे स्वीकार है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी श्रीमती पद्मावती देवी के दीक्षा समारोह का उल्लेख किया गया है। दीक्षा एक सस्कार विशेष है। किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये आत्म-समर्पण करना ही दीक्षा है, इसीलिये इसके उपलक्ष्य मे किया गया उत्सव बडे हर्ष से मनाया जाता है। इसमे विवाह की भाति आनन्द की सर्वतोमुखी लहर दौड जाती है, अन्तर केवल इतना ही होता है कि विवाह मे सासारिक जीवन की प्रधानता होती है, जबकि इसमे आत्मकल्याण एव परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने की मगलमय भावना प्रधान रहा करती है। यही कारण है कि इस मे सभी लोग बिना भेदभाव के सम्मिलित होकर पुण्योपार्जन करते हैं और यथाशक्ति अपना-अपना सहयोग देकर इसको सफल बनाने का प्रयास करते हैं।

दीक्षा-समारोह किस तरह किया जाना चाहिए ? प्रस्तुत सूत्र मे इसका सक्षिप्त, किन्तु सुन्दर निर्देश किया गया है। दीक्षा-समारोह मे सर्वप्रथम दीक्षार्थी को एक सुन्दर पाट पर बिठलाकर स्नान कराया जाता है, स्नान में सैकडो सोने-चादी के कलशो का प्रयोग होता है। दीक्षानिमित्त कराये गये स्नान के अनन्तर दीक्षार्थी को सब प्रकार के आभूषणो से आभूषित किया जाता है। दीक्षा-गुरु के निकट जाने पर दीक्षार्थी पालकी से उतरकर उन्हे वन्दन-नमस्कार करता है, फिर ईशानकोण मे जाकर अपने हाथो से आभूषणो को उतारकर अपने केशो की लोच करता है। साधुवेष धारण करने के अनन्तर गुरुदेव से दीक्षा।मन्त्र पढकर साधु-जीवन अगीकार करता है। इस तरह इस सूत्र तथा अग्रिम सूत्र में दीक्षा-विधिका सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है।

महारानी पद्मावती का दीक्षा-समारोह इसी विधि से सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुत सूत्र के कठिन पदो की अर्थ-विचारणा इस प्रकार है—

"महत्य निक्खमणाभिसेय"—इस वाक्य मे पठित **महत्थ** शब्द विशाल का तथा **निक्खमणा-भिसेय** शब्द दीक्षा महोत्सव का बोधक है।

"सोवण्णकलस जाव महानिक्खमणाभिसेएण"—इस वाक्य मे पठित **जाव** पद अन्य सूत्रो मे दीक्षा-स्नान को लेकर जो वर्णन किया गया है, उसकी ओर सकेत करता है।

"सव्वालकार-विभूसिय"—सर्वालकारै विभूषिताम्—अलकृताम्—अर्थात् सर्वप्रकार के अल-कारो—आभूषणो से विभूषित।

'पुरिससहस्सवाहिणि'—सहस्रपुरुषै उह्यमानाम्। इस पद के दो अर्थ किये जाते है—१ पुरुष-सहस्रवाहिनी नाम की एक पालकी विशेष। २ वह पालकी जिसको एक हजार पुरुषो द्वारा उठाया जावे। प्रथम अर्थ मे पालकी को उठाने के लिये हजार पुरुष ही आवश्यक नही है, दूसरे अर्थ मे हजार पुरुष आवश्यक हैं।

"इट्ठा, कंता, पिया, मणुन्ना, मणामा, अभिरामा"—इन पदो का अर्थ भेद इस प्रकार है—जिसे चाहा जाये उसे **इष्टा** कहते हैं। किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी हो सकती है, इष्टता के निवारणार्थ कान्त पद दिया गया है। जो देखने मे कमनीय है, सुन्दर है, वह **कांत** है। सुन्दर होने पर भी कर्म के प्रभाव से कोई दूसरे मे प्रीति उत्पन्न करने मे असमर्थ रह सकता है, इस बात का परिहार करने के लिये प्रिय पद दिया गया है। जिस मे प्रेमोत्पादन करने की क्षमता है, वह **प्रिय** है। कुछ लोग व्यावहारिक तौर पर प्रेम उत्पन्न करते हैं, पर उनमे वास्तविकता नही होती, इस आशका को दूर करने के लिये मनोज्ञ शब्द का प्रयोग किया है, जिसकी सु दरता, प्रियता, व्यावहारिक न हो, आन्तरिक हो, उसे **मनोज्ञ** कहते हैं। किसी की मनोज्ञता तात्कालिक भी हो सकती है, महारानी पद्मावती के विषय मे यह न समझ लिया जाए, इसलिए कृष्ण महाराज ने उसे मनोऽमा कहा, जिसकी सुन्दरता का बार-बार स्मरण किया जाये, उसे **मनोऽमा** कहते हैं। मनोऽमा शब्द से ससूचित अर्थ की अधिक पुष्टि करने के लिये अभिराम पद का प्रयोग किया गया है। जो सदा हृदय मे रमण करती रहे वह **अभिराम** है।

"अभिरामा जाव किमग पुण"—इस वाक्य मे पठित **जाव** पद—**जीवियऊसासा हिययाणदजणिया,उबरपुप्फ पिव दुल्लभा सवणयाए"**—**जीवितोच्छ्वासा प्राणसमाना, हृदयानन्दजनिका, उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभा श्रवणतायै,** इन पदो का परिचायक है। इन का अर्थ है—

१ **जीवित-उच्छ्वासा**—जीवन मे श्वासोच्छ्वास के समान प्रिय।

२ **हृदयानन्दजनिका**—हृदय मे आनन्द उत्पन्न करनेवाली।

३ उदुम्बर पुष्प की तरह जिसका सुनना भी दुर्लभ हो, उदुम्बर पुष्प का अर्थ है गूलर का फूल। "गूलर का फूल है" यह सुनना भी दुर्लभ है, क्योकि गूलर का फूल होता ही नही है। पद्मावती के पास भी वह सौन्दर्य था जो अन्यत्र हो ही नही सकता है।

श्री कृष्ण भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे यह व्यक्त करना चाहते हैं कि पद्मावती जैसी सुन्दर एव सद्गुणो से युक्त पत्नी का पाना अत्यन्त कठिन है, फिर भी मैं पद्मावती की आप को भिक्षा देता हूँ, उसे व्यर्थ समझ कर दीक्षा नही दिलवाई जा रही है, यह दीक्षाकार्य तो केवल उसकी धर्म भावना की पूर्ति के लिये किया जा रहा है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि श्री कृष्ण द्वारा दी गई शिष्या-भिक्षा को भगवान अरिष्टनेमि ने स्वीकार कर लिया। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं सा पउमावई उत्तरपुरच्छिमं दिसीभाग अवक्कमति, अवक्कमित्ता सयमेव आमरणालकार ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, करित्ता

जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—

आलित्ते जाव धम्ममाइक्खित्त । तते ण अरहा अरिट्ठनेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मु डा० सय०, जक्खिणीते अज्जाते सिस्सिणि दलयति । तए ण सा जक्खिणी अज्जा पउमावइ देविं सयमेव पव्वावइ जाव सजमियव्व ।

तए ण सा पउमावई जाव सजमइ । तए णं सा पउमावई अज्जा जाता ईरियासमिया जाव गुत्तबभयारिणी । तए ण सा पउमावई अज्जा जक्खिणीते अज्जाते अतिए-समाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइं अहिज्जइ । बहूहिं चउत्थ छट्ठ० विविह तव० भावेमाणा विहरइ । तए ण सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं बीस वासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता, मासियाए सलेहणाए अप्पाण झोसेइ, झोसित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेवेइ छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठ आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा५ ।

छाया—तत सा पद्मावती उत्तरपौरस्त्य दिग्भागमपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेवाभरणालकाराणि उन्मुञ्चति, उन्मोच्य स्वयमेव पचमौष्टिक लोच करोति, कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवादीत्—

आदीप्तो भदन्त ! यावद् धर्ममाख्यातम् । ततोऽर्हन् अरिष्टनेमि. पद्मावतीं देवीं स्वयमेव प्रव्राजयति, स्वयमेव मुण्डापयति, स्वयमेव यक्षिण्यै आर्यायै शिष्या ददाति । तत सा यक्षिणी आर्या पद्मावतीं देवीं स्वय प्रव्राजयति यावद् सयमितव्यम् । तत सा पद्मावती यावत् सयमयति । तत सा पद्मावती आर्या जाता, ईर्यासमिता यावद् गुप्त ब्रह्मचारिणी । तत सा पद्मावती आर्या यक्षिण्या आर्याया अन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते । बहुभि चतुर्थ षष्ठ० विविध तप कर्मभिरात्मान भावयन् विहरति ।

तत सा पद्मावती आर्या बहुप्रतिपूर्णानि विंशति वर्षाणि श्रामण्य पर्याय पालयित्वा मासिक्या सलेखनया आत्मान जोषयति, जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्वा यस्यार्थं क्रियते नग्नभाव यावत् तमर्थमाराधयति, चरमोच्छ्वासै सिद्धा ५ ।

पदार्थ—तए ण—उसके अनन्तर, सा पउमावई—वह पद्मावती देवी, उत्तरपुरच्छिम—उत्तर पश्चिम ईशानकोण के, दिसीभाग—प्रदेश में, अवक्कमति—जाती है, अवक्कमित्ता—जा करके, सयमेव—स्वय ही, आभरणालकार—छोटे-बडे सभी आभूषणो को, ओमुयइ—उतारती है, ओमुइत्ता—उतारकर, सयमेव—स्वय ही, पचमुट्ठिय—पञ्च मुष्टिक, पञ्च मुष्टियो से पूर्ण होने वाला, लोय—लोच, करेइ—करती है, करित्ता—लोच करके, जेणेव—जहाँ पर, अरहा—अरिहन्त;

अरिट्ठनेमी—अरिष्टनेमि थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आती है; **उवागच्छित्ता**—और वहा आकर, **अरह अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **वदइ णमसइ**—वन्दना-नमस्कार करती है, **वदित्ता, नमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगी—भगवन्!,

आलित्ते—आदीप्त—यह ससार जरा-मरण आदि दु ख रूप अग्नि से जल रहा है, **जाव**—यावत्—मैं आपसे दीक्षा अगीकार करना चाहती हू। आप मुझे, **धम्ममाइक्खित्त**—धर्म का उपदेश सुनाये, **तए ण**—उसके अनतर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—भगवान अरिहन्त अरिष्टनेमि, **पउमावइ देविं**—पद्मावती देवी को, **सयमेव**—स्वय ही, **पव्वावेइ**—प्रव्रजित—दीक्षित करते हैं, **सयमेव**—स्वय ही, **मुडा०**—भाव से मुण्डित करते हैं,**सयमेव**—स्वय ही,**अज्जाते जक्खिणीते**—यक्षिणी आर्या को, **सिस्सिणि**—शिष्या रूप से, **दलयति**—देते है, **तए ण**—उसके अनन्तर, **सा जक्खिणी अज्जा**—वह यक्षिणी आर्या **पउमावइ देविं**—पद्मावती देवी को, **सयमेव**—स्वय ही, **पव्वावेइ**—प्रव्रजित—केशलुञ्चन रूप दीक्षा देती है, **जाव**—यावत्—उसे समझाती है कि, **सजमियव्व**—सयम-यात्रा मे पूर्णरूपेण प्रयत्नशील रहना चाहिए।

तए ण—उसके अनन्तर, **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी, **जाव**—यावत्, **सजमइ**—सयम साधना मे यत्न करती है, **तए ण**—उसके बाद, **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी, **अज्जा**—आर्या, महासती, **जाता**—हो गई, **ईरियासमिया**—ईर्यासमिति का पालन करनेवाली, **जाव**—यावत्, **गुत्ता**—जितेन्द्रिय एव, **बभचारिणी**—ब्रह्मचारिणी बन गई, **तए ण**—उसके पश्चात्, **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी, **अज्जा**—आर्या, साध्वी, **जक्खिणीते अज्जाते**—यक्षिणी आर्या के, **अतिए**—पास, **सामाइमाइयाइ**—सामायिक आदि; **एक्कारस**—ग्यारह, **अगाइ**—अगो का, **अहिज्जइ**—अध्ययन करती है, **बहूहिं**—अनेक, **चउत्थछट्ठ०**—व्रत-बेले आदि, **विविह तव**—अनेक प्रकार के तप से अपनी आत्मा को, **भावेमाणा**—भावित करती हुई, **विहरइ**—विचरण करती है, **तए ण**—उसके अनन्तर, **सा पउमावइ अज्जा**—वह पद्मावती आर्या, **बहुपडिपुण्णाइ**—पूरे, **बीस वासाइ**—बीस वर्ष, **सामण्णपरियाग**—साधुवृत्ति—श्रामण्यपर्याय, **पाउणित्ता**—पालकर, **मासियाए**—मासिक—एक मास की, **सलेहणाए**—सलेखना, अनशन व्रत से शरीर-त्याग के अनुष्ठान द्वारा, **अप्पाण**—आत्मा को, **झोसेइ**—आराधित करती है, **झोसेइत्ता**—आराधित करके, **सट्ठि भत्ताइ**—साठ भोजनो को, **अणसणाए**—अनशन—व्रत द्वारा, **छेदेइ**—छोडती है, **छेदित्ता**—छोडकर, **जस्सट्ठाये**—जिस उद्देश्य के लिये, **नग्गभावे**—नग्नभाव-साधुजीवन अगीकार किया था, **जाव**—यावत्, **तमट्ठ**—उस उद्देश्य को, **आराहेइ**—सिद्ध कर लेती है, **चरिमुस्सासेहिं**—अन्तिम श्वासो द्वारा, **सिद्धा**—सिद्ध गति को प्राप्त होती है। "५" इस अक से, केवलज्ञान के द्वारा सर्वपदार्थो को जान लेती है, सम्पूर्ण कर्मों से रहित हो जाती है, सकल कर्मजन्य सतापो से मुक्त हो जाती है, सब दुखो का अन्त कर देती है, इन भावो का ग्रहण किया जाता है।

मूलार्थ—वीतराग भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पद्मावतीदेवी को शिष्यारूप मे भिक्षा स्वीकार करनेकी अनुमति मिलजाने पर पद्मावतीदेवी ईशानकोण मे जाकर अपने छोटे-

बडे समस्त आभूषणो को उतारती है, उतार कर अपने हाथो से पचमुष्टि लोच करती है। साध्वी वेष धारण करने के अनन्तर वह अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होकर उन्हे वदन एव नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करने के अनन्तर उसने भगवान के चरणो मे निवेदन किया—

भगवन् ! यह जगत् जरा और मरण की अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। मेरी इच्छा है कि आपके चरणो मे दीक्षित हो जाऊ, आप मुझे धर्म का उपदेश देने की कृपा करे। धर्माचरण की विधि का बोध कराने का अनुग्रह करे।

पद्मावती देवी को सर्वथा योग्य देखकर भगवान अरिष्टनेमि उसे स्वय दीक्षित करते हैं—दीक्षा-पाठ पढाते है। भावरूप से मुण्डित करने के अनन्तर शिष्यारूप से यक्षिणी नामक साध्वी को उसे सौप देते है।

भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पद्मावती देवी के सौप देने पर यक्षिणी साध्वी पद्मावती आर्या को अपने हाथो से दीक्षित करती है—केशलुञ्चन रूप दीक्षा देती है और सयमाराधना मे प्रयत्नशील होने की उसे शिक्षा देती है।

यक्षिणी साध्वी से शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर आर्या पद्मावती शिक्षानुसार सयम का पालन करती है। इस प्रकार आर्या पद्मावती ईर्या, भाषा, एषणा आदि समितियो का पालन करके जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारिणी बन जाती है।

आर्या पद्मावती ने आर्या यक्षिणी के पास रहकर सामायिक–आचाराग आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया, अनेको व्रत, बेले-तेले आदि का तप किया, अन्य अनेकविध तपो-कर्म से अपनी आत्मा को भावित करती हुई वह जीवन व्यतीत करने लगी।

आर्या पद्मावती ने पूरे बीस वर्षो तक सयम की आराधना की, एक मास की सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित किया। अनशन द्वारा साठ भोजनो का परित्याग किया, जिस प्रयोजन के लिये उसने दीक्षा ली थी, अत मे उसे सिद्ध कर लिया और वह सिद्ध, मुक्त, सकल कर्मजन्य सतापो से रहित एव सब प्रकार के दुखो से विमुक्त हो गई।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव की प्रिय महारानी पद्मावती देवी की दीक्षा-साधना का, निर्वाण-पद की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। चारित्र-शुद्धि में ज्ञानाराधना की कितनी आवश्य-

कता है ? और ज्ञानपूर्वक किया गया तपोऽनुष्ठान कितनी शीघ्रता से फलप्रद होता है इस सत्य ज्ञान पर भी यहा प्रकाश डाला गया है।

"उत्तरपुरच्छिम"—का अर्थ है—उत्तर और पूर्व दिशा के बीच का प्रदेश—ईशान कोण।

आभरणालकार—इस पद मे आभरण और अलकार ये दो शब्द हैं। दोनो समानार्थक हैं, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण मे ये सामान्य और विशेष के बोधक प्रतीत होते हैं।

"पचमुट्ठिय"—का अर्थ है—पचमौष्टिक। यह लोच का विशेषण है। जो लोच पाच मुष्टियो से पूर्ण किया जाये, या सिर के चारो ओर के केशो को चार बार और बीच के केशो को एक बार इस प्रकार पाच मुष्टियो से किया जानेवाला लोच पञ्चमौष्टिक लोच कहलाता है।

"आलित्ते जाव धम्ममाइक्खित्त—इस वाक्य मे पठित जाव पद ज्ञातासूत्रीय अग्रिम पाठ का ससूचक है—

आलित्ते ण भते ! लोए, पलित्ते ण भते ! लोए, आलित्त—पलित्ते ण भते ! लोए, जराए मरणेण य, से जहानामए केई गाहावती आगारसि झियायमाणसि जे तत्थ भडे भवति, अप्पभारे मोल्लगुरुए, त गहाय, आयाए एगत अवक्कमति, एस मे नित्थारिए समाणे पच्छापुरा हियाए, सुहाए, खमाए, णिस्सेसाए, आणुगामियत्ताए, भविस्सति। एवामेव ममवि एगे आयाभडे इट्ठे, कते, पिए, मणुन्ने, मणामे, एस मे नित्थारिए समाणे ससार वोच्छेयकरे भविस्सति। त इच्छामि ण देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वाविय, सयमेव मु डाविय, सेहाविय, सिक्खाविय, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-माया वत्तिय। इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

भगवन् ! यह ससार जरा और मरण की आग से जल रहा है। जैसे कोई गृहस्थ घर मे आग लगने पर भार मे हलके और मूल्य मे भारी पात्रो को अलग निकाल कर रखता है ताकि वह उसके सुख-हित-क्षेम आदि मे काम आसकें। इसी प्रकार आत्मा रूपी मेरा एक पात्र है, यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन-आम है, इसे मैं बाहिर निकलना चाहती हू ताकि मैं जन्म-मरण का अन्त कर सकू । अत भगवन् ! मेरी इच्छा है कि आप मुझे स्वय दीक्षित करे, स्वय ही मुण्डित करे, स्वय ही शिक्षित और स्वय ही आचार-गोचर ज्ञानादि आचार या साधुवृत्ति सम्बन्धी विनय-वैनयक—विनयफल, चरण-सयम करण-पिण्डविशुद्धि-आदि ७० बोल यात्रा—मात्रा सयम-निर्वाह की मर्यादा रूप धर्म का व्याख्यान सुनाए।

"पउमावइ देविं सयमेव पव्वावइ जाव सजमियव्व" इस वाक्य मे जाव पद पद्मावती की गुरुणी महासती श्री यक्षिणीजी महाराज ने उसे सयम सम्बन्धी जो शिक्षाए दी थी, उन सबका बोधक हैं।

अज्जा—का अर्थ है आर्या। जैनागमो मे कर्मभूमि के मनुष्यो को आर्य और अनार्य इन दो विभागो मे विभक्त किया गया है। इन मे जो अहिसा आदि शुभ कार्यो मे प्रवृत्त हो रहे हैं, वे आर्य तथा जो दुष्ट भावनाओ से प्रेरित हुए हिंसा आदि जघन्य कार्यो मे प्रवृत्त हो रहे हैं वे अनार्य कहलाते हैं। अहिंसकता, आर्यत्व की विभूति है और हिंसापरायणता, अनार्यता का चिन्ह है। वास्तविक आर्यत्व तो विद्या तथा चरित्र-सम्पन्न सयमशील व्यक्ति मे ही चरितार्थ होता है। इसी

लिये संयम ग्रहण करने के अनन्तर सती धुरीणा पद्मावती को अज्जा आर्या शब्द से अलंकृत किया गया है।

"ईरियासमिया जाव गुत्तबभयारिणी"—यहा पठित जाव—"भासासमिया, एसणासमिया, आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणा-समिय, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणियासमिया, मणसमिया, वयसमिया, कायसमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया" इन पदो का परिचायक है। इनका अर्थ इस प्रकार है—

१ **ईर्यासमिति**—युगप्रमाण भूमि को एकाग्रचित्त से देखकर जीवो को बचाते हुए यतनापूर्वक गमन करने का नाम ईर्यासमिति है।

२ **भाषा समिति**—सदोष वाणी को छोडकर निर्दोष वाणी अर्थात्—हित-मित-सत्य एव स्पष्ट वचन बोलने का नाम **भाषा समिति** है।

३ **एषणा-समिति**—आहार के बयालीस दोषो को टाल कर शुद्ध आहार तथा वस्त्र-पात्र आदि सामग्री का ग्रहण करना—एषणा (गवेषणा) द्वारा भिक्षा एव वस्त्र पात्र आदि को ग्रहण करने का नाम **एषणा समिति** है।

४ **आदान-भण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति**—आसन-सस्तारक, पाट, वस्त्र, पात्र आदि उपकरणो को उपयोग पूर्वक देखकर एव रजोहरण से पूंछ कर लेना एव उपयोगपूर्वक देखी हुई और प्रतिलेखित (जिस भूमि को जीवो से रहित कर दिया गया हो) भूमि पर रखने का नाम—**आदान-भण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति** है।

५ **उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति**—उच्चार—मल, प्रस्रवण—मूत्र, खेल—थूक, सिंघाण—नाक का मल, जल्ल—शरीर का मल, इनकी परिष्ठापना अर्थात् परित्याग करने मे सम्यक् प्रवृत्ति का नाम **उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्लपरिष्ठापनिका समिति** है।

६ **मन-समिति**—पापो से निवृत्त रहने के लिये एकाग्रता पूर्वक की जानेवाली आगमोक्त, सम्यक् एव प्रशस्त मानसिक प्रवृत्ति का नाम **मन-समिति** है।

७ **वच-समिति**—पापो से वचने के लिये एकाग्रतापूर्वक की जानेवाली, आगमोक्त सम्यक् एव प्रशस्त वाचनिका-प्रवृत्ति का नाम **वच-समिति** है।

८ **काय-समिति**—पापो से सुरक्षित रहने के लिये एकाग्रतापूर्वक की जानेवाली, आगमोक्त-सम्यक् एव प्रशस्त कायिक प्रवृत्ति का नाम—**काय-समिति** है।

९ **मनोगुप्ति**—आर्त्त तथा रौद्र ध्यान रूप मानसिक अशुभ व्यापार को रोकने का नाम **मनोगुप्ति** है।

१० **वचनगुप्ति**—वाचनिक अशुभ व्यापार को रोकना, विकथा न करना, झूठ न बोलना, निंदा चुगली आदि दूषित वचन विषयक व्यापार को रोक देना **वचन गुप्ति** कही गई है।

११. **काय गुप्ति**—काया के अशुभ व्यापारो को रोकना, उठने, बैठने, हिलने, चलने, सोने आदि मे अविवेक न करने का नाम **काय-गुप्ति** है ।

पूर्वोक्त आठ समितियो और तीन गुप्तियो मे युक्त और गुप्ता, मन, वचन और काया की सावद्य प्रवृत्तियो से इन्द्रियो को रोकने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भान्ति इन्द्रियो को वश मे करनेवाली ।

"सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ"—का अर्थ है सामायिक है आदि मे जिनके, ऐसे ग्यारह अगो का अध्ययन करती है । जैनवाड्मय अग, उपाग, मूल और छेद इन चार विभागो मे विभक्त है । इनमे आचाराग सूत्रकृताग आदि ग्यारह अग, औपपातिक, राजप्रश्नीय, आदि बारह उपाग उत्तराध्ययन सूत्रादि चार मूल और दशाश्रुतस्कन्ध आदि चार छेद सूत्र हैं । ग्यारह अग, बारह उपाग, चार मूल, और चार छेद ये सब मिलकर इकतीस सूत्र होते हैं इन मे आवश्यक सूत्र का सयोजन होने से इनकी सख्या बत्तीस होती है । प्रस्तुत मे सामायिक का अर्थ आचाराग सूत्र है । ग्यारह अगो मे अन्तगडसूत्र का भी निर्देश मिलता है । उसके पचम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे पद्मावती रानी की जीवनी का उल्लेख किया गया है । तो क्या वह पद्मावती यही थी या कोई अन्य थी ? यदि यही थी और उसीने अन्तगड सूत्र पढा, इसका क्या मतलब ? जिस जीवन की रचना ही बाद मे हुई हो उसका अध्ययन कैसे सभव हो सकता है ?

उत्तर मे निवेदन है कि अन्तगडसूत्र के पचम वर्गीय पचम अध्ययन मे जिस पद्मावती का जीवन वर्णित है, वह यही कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती है । उसके द्वारा अन्तगड नामक अग पढने की बात का समाधान यह है कि भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे, उनकी नौ वाचनाए (आगमसमुदाय) थी, जो इन्ही अगो उपागो आदि के नाम से प्रसिद्ध थी, प्रत्येक मे विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न था। वर्तमान काल मे जो वाचना उपलब्ध है, वह भगवान महावीर स्वामी के पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी की है । प्रस्तुत सूत्र मे जिन अग-शास्त्रो का वर्णन किया गया है वे महावीर के काल के नही हैं ये तो २२वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि के काल के हैं । अग-शास्त्रो के नाम उस समय भी यही थे, पर उनमे वर्णित विषय भिन्न था, अत आर्या पद्मावती ने जो ग्यारह अग पढे थे, वे वर्तमान मे उपलब्ध श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के नही थे, प्रत्युत वे इससे भिन्न थे । तात्कालिक किसी गणधर की वाचना के थे । नाम के अतिरिक्त इनमे कोई सम्बन्ध नहीं था ।

प्रस्तुत सूत्र मे जो यह लिखा है कि पदमावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से एकादश अगो का अध्ययन किया । इससे यह प्रकट होता है कि—पुरुषो की भाति स्त्री-जाति को भी अग-शास्त्रो के पढ़ने और पढाने का अधिकार प्राप्त था । वैदिक दर्शन की **"न स्त्री शूद्रो वेदमधीयेताम्"** इस मान्यता के लिये जैन-दर्शन मे कोई अवकाश नही था ।

"चउत्थ छट्ठ० विविह तव० भावेमाणा"—यहा के बिंदू—**छट्ठम-दसम-दुवालसेहि मासद्ध-मासखमणेहिं, विविहेहिं तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणा"** इस अवशिष्ट पाठ के सूचक हैं । इस

का अर्थ है—तेला, चौला, पचौला, पन्द्रह-पन्द्रह और महीने-महीने तक की विविध तपस्याओ से आत्मा को भावित करती हुई।

"मासियाए सलेहणाए अप्पाण झोसेइ"—का अर्थ है—मासिक सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित करती है। जिस तप के द्वारा शरीर तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कपायोको निर्बल किया जाता है उस तप के अनुष्ठान को सलेखना कहते हैं। सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित करने का तात्पर्य है—सलेखना द्वारा अपने को मोक्षमार्ग के अनुकूल बनाना। एक महीने की सलेखना को स्पष्ट करने के लिये सूत्रकार ने **"सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेइ"** ये पद दिये है—अर्थात् एक महीने की सलेखना का अर्थ है—साठ भक्तो—भोजनो का परित्याग।

यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने **"मासियाए सलेहणाए"** इन पदो का उल्लेख करके फिर **"सट्ठि भत्ताइ"** ये पद क्यो दिये हैं? जब कि पहले पदो से ही काम चल सकता था। मासिक सलेखना और साठ भोजनो का परित्याग दोनो एक ही अर्थ के तो सूचक हैं?

उत्तर मे निवेदन है—शास्त्र का कोई वचन व्यर्थ नही होता, केवल अपने समझने की त्रुटि होती है। प्रत्येक ऋतु मे मासगत दिनो की सख्या एक नही होती विभिन्न होती है। कभी मास के दिन ३१, कभी ३० और कभी २६ होते हैं। जिस मास के दिन २९ हो उसका ग्रहण करने की सूचना देने के लिये सूत्रकार ने **"मासियाए सलेहणाए"** ये पद दे कर भी **"सट्ठि भत्ताइ"** ये पद प्रयुक्त किये हैं, क्योकि २६ दिनो के व्रतो मे ही ६० भोजन छोडे जा सकते है अन्य मे नही।

"जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठ"—यहा पठित जाव पद वृत्तिकार के मतानुसार—**मुडभावे, केसलोए, बभचेरवासे, अण्हाणग, अच्छत्तय, अणुवाहणय, भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइ माणावमाणाइ, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा वावीस परीसहोवसग्गा-गामकटगा अहियासिज्जति"**। इन पदो का परिचायक है। इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव-साधुवृत्ति मुण्डभाव द्रव्य से सिर को मुडित करना, भाव से परिग्रह का त्याग करना, केशलोच अर्थात् बालो का हाथो से उखाडना, ब्रह्मचर्यवास—ब्रह्मचर्य की आराधना, अस्नानक—स्नान न करना, अछत्रक—छत्र का प्रयोग न करना, अनुवाहनक—सवारी का उपयोग न करना, भूमिशय्या—भूमिपर शयन करना, फलक शय्या—तख्त पर शयन करना, पर घर प्रवेश—दूसरो के घरो मे भिक्षार्थ प्रवेश करना, लाभालाभ—किसी समय वस्तु का प्राप्त होना किसी समय न होना, मानापमान—कही मान प्राप्त होना, कही अपमान। दूसरो द्वारा की गई हीलना-अवहेलना, निंदा, खिसना—लोगो के सामने जाति आदि का गुप्त रहस्य प्रकट करना, ताडना—मारना गर्हा, गुरु के सम्मुख अपने अतिचारो-दोपो की निंदा करना, पश्चात्ताप करना, ऊच-नीच नाना प्रकार के २२ परीपह इन्द्रियो के दु खदायक उपसर्ग सहन किए।

इन विवरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधुमार्ग मे प्रवृत्त होनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को इन पूर्वोक्त नियमो का यथाविधि, यथाशक्ति समतापूर्वक पालन करना होता है और साधनाकाल मे

उपस्थित होनेवाले दैविक, मानुषिक या पाशविक सभी उपसर्गों को शान्ति पूर्वक सहन करना पडता है। सयम-मार्ग मे प्रवृत्त हुआ पुरुष इन्ही नियमो के सम्यग् अनुष्ठान से निर्वाण-पद प्राप्त करने मे समर्थ हो सकता है, अन्यथा नही।

"सिद्धा ५"—यहा के ५ के अक से ससूचित अवशिष्ट पाठ का सकेत पदार्थ मे कर दिया गया है।

प्रस्तुत पचमवर्गीय प्रथम अध्ययन मे वासुदेव श्रीकृष्ण की अग्रमहिषी पद्मावती देवी के सयम प्रधान जीवन का उल्लेख किया गया है। श्री कृष्ण जैसे पतिदेव के प्यार भरे—आमोद-प्रमोद को छोड देना, किसी भी प्रकार की वस्तु की कमी न होने पर भी त्याग भावना से ओत-प्रोत हो कर समस्त ऐश्वर्य का परित्याग कर देना साधारण बात नही है। सच्चे त्याग का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। मोह-माया की दल-दल मे सदा फसे रहनेवाले व्यक्तियो को महासती पद्मावती के जीवनरूप-प्रकाशस्तम्भ मे प्रकाश ले कर अपने अन्तर्जगत के अन्धकार को दूर करने का प्रयास करना चाहिये। यही इस प्रथम अध्ययन के पठन-पाठन का पवित्र सार है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥
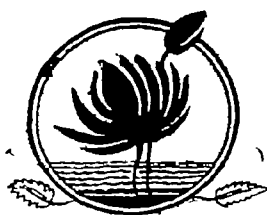
सात अध्ययन

(दो से आठ तक)

अब पञ्चम वर्ग के दूसरे अध्ययन का आरभ करते हुए सूत्रकार कहते है—

मूल—उक्खेवओ य अज्झयणस्स। तेण कालेण तेण समएण बारवई णयरी, रेवतए, उज्जाणे नदणवने। तत्थ ण बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था। तस्स ण कण्हस्स वासुदेवस्स गोरीदेवी, वण्णओ। अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए, गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया। धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए। तए ण सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खता जाव सिद्धा।

एव गधारी लक्खणा, सुसीमा, जबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, अट्ठ वि पउमावई सरिसाओ अट्ठ अज्झयणा।

छाया—उत्क्षेपकश्च अध्ययनस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, रैवतक (पर्वत) उद्यान नदनवनम्। तत्र द्वारवत्या नगर्या कृष्णो वासुदेवो राजाऽभूत्तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य गौरीदेवी वर्णक। अर्हन्नरिष्टनेमि समवसृत। कृष्णो निर्गत। गौरी यथा पद्मावती तथा निर्गता। धर्मकथा। परिषत् निर्गता। कृष्णोऽपि प्रतिगत। तत सा गौरी यथा पद्मावती तथा निष्क्रान्ता यावत् सिद्धा।

एव गाधारी-लक्ष्मणा-सुसीमा-जाम्बवती-सत्यभामा-रुक्मिणी अष्टावपि पद्मावती सदृशानि (जीवन-चरितानि) एवम् अष्ट अध्ययनानि (समाप्तानि)।

पदार्थ—अज्झयणस्स—इस द्वितीय अध्ययन के, उक्खेवओ य—प्रारभ वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये, तेण कालेण तेण समएण—उस काल तथा उस समय मे, बारवई णयरी—द्वारिका नाम की नगरी थी, रेवतए—वहा रैवतक नाम का एक पर्वत था, नदणवने—नदन वन नाम का, उज्जाणे—उद्यान था। तत्थ ण—वहा, बारवईए णयरीए—द्वारिका नगरी मे, कण्हे वासुदेवे—कृष्ण सुदेव, राया होत्था—राजा होता था, तस्स ण कण्हस्स वासुदेवस्स—उस कृष्ण वासुदेव को, गोरीदेवी, वण्णओ—गौरी देवी नाम की रानी थी, औपपातिक—सूत्र के नारीवर्णन की तरह उस का वर्णन जानना, अरहा अरिट्ठनेमी—अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि, समोसढे—द्वारिका

नगरी मे पधारे, **कण्हे णिग्गए**—कृष्ण वासुदेव दर्शनार्थ नगरी से बाहिर निकले, **जहा पउमावई**—जिस प्रकार पद्मावती भगवान के दर्शनार्थ गई थी, **तहा गोरी णिग्गया**—उसी प्रकार रानी गौरी भी दर्शनार्थ गई, **धम्मकहा**—भगवान ने धर्मकथा सुनाई, **परिसा पडिगया**—जनता धर्मकथा सुन कर चली गई, **कण्हे वि पडिगए**—कृष्ण वासुदेव भी चले गए, **तए ण सा गोरी**—उस के अनन्तर वह गौरी रानी, **जहा पउमावई**—जिस प्रकार पद्मावती दीक्षित हुई थी, **तहा णिक्खता**—उसी प्रकार दीक्षित हो गई, **जाव**—यावत्, उसने, सयम-साधना करके अन्त मे, **सिद्धा**—सिद्ध-पद प्राप्त किया, **एव**—इसी प्रकार, **गधारी-लक्खणा-सुसीमा-जववई, सच्चभामा**—गाधारी देवी, लक्ष्मणा देवी सुसीमा देवी, जाम्बवती, सत्यभामा देवी, **रुप्पिणी**—रुक्मिणी देवी, **अट्ठ वि**—पद्मावती सहित ये आठो ही जीवन-चरित, **पउमावई सरिसाओ**—पद्मावती के समान है, **अट्ठ अज्झयणा**—ये आठो ही अध्ययन समाप्त हुए।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्रीय पचम वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर के द्वारा निरूपित पचम वर्गीय प्रथम अध्ययन के अर्थ का श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन् ! भगवान महावीर ने पचमवर्गीय द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ वर्णित किया है अब उसे सुनाने की कृपा करें।

आर्य जम्बू अणगार की अभ्यर्थना सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस काल एव उस समय मे द्वारिका नगरी थी। उस के बाहिर रैवतक नामक एक पर्वत था। उस पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। द्वारिका नगरी मे वासुदेव कृष्ण राज्य किया करते थे। इनकी गौरी नाम की एक सुन्दर रानी थी। रानी की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-सम्पदा के समान समझना चाहिये।

एक बार द्वारिका नगरी मे वीतराग भगवान अरिष्टनेमि पधारे। वासुदेव कृष्ण इनके चरणवंदन के लिये सेवा मे उपस्थित हुए। महारानी पद्मावती की भाति गौरीदेवी भी भगवान की सेवा मे पहुची। भगवान ने सब को धर्म-कथा सुनाई। धर्म-कथा सुनने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव तथा अन्य लोग अपने-अपने स्थानो को वापिस चले गए।

गौरी देवी ने महारानी पद्मावती की तरह भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होने को प्रार्थना की और महाराज श्रीकृष्ण द्वारा दीक्षा-समारोह सम्पन्न करने पर उसने भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षा अगीकार करके पद्मावती की भाति सिद्ध-पद प्राप्त किया।

गौरी देवी की तरह गाधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी नामक रानियो ने भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हो कर सिद्धगति प्राप्त की। पद्मावती गौरी तथा गाधारी आदि इन आठो सन्नारियो के जीवन-चरित एक जैसे ही है। इनमे अन्तरवाली कोई विशेप बात नही है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने सक्षेप से सात अध्ययनो का उल्लेख किया है। गौरी, गाधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी इन सात देवियो की जीवनियो को पचमवर्गीय प्रथम अध्ययन मे वर्णित पद्मावती देवी की जीवनी के समान ही बताया गया है। इस प्रकार पद्मावती से ले कर रुक्मिणी पर्यन्त इन आठ देवियो का दीक्षा से ले कर सिद्ध-गति को प्राप्त करने तक का समस्त वृत्तान्त एक समान ही है। ये आठो ही कृष्ण वासुदेव की पट्टरानिया थी। दीक्षित होने के अनन्तर इन्होने एक जैसी सयम-साधना की थी, एक जैसी तपस्या की थी, एक जैसी त्याग-भावना से प्रेरित हो कर धर्माराधना की थी, इसलिये सूत्रकार ने इन आठो के जीवन-चरितो को एक समान बतला दिया है।

'उक्खेवओ'—उत्क्षेपक—यह पद प्रस्तावना का ससूचक है। शास्त्रीय भाषा मे प्रस्तावना की रूपरेखा इस प्रकार है —

"जइ ण भते! समणेण जाव सपत्तेण अतगडदसाण पचमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते! अज्झयणस्स अतगडदसाण पचमस्स वग्गस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते?"

इन पदो का अर्थ मूलार्थ मे दे दिया गया है।

वण्णओ—यह वर्णक पद गौरी देवी की गुण-सम्पदा का औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा जैसा होने का सकेत कर रहा है।

प्रस्तुत सूत्र मे **"जहा पउमावई तहा"** इस प्रकार जो **जहा** और **तहा** शब्दों का प्रयोग किया गया है वह गौरी और पद्मावती की जीवन-गत समानता का ससूचक है।

"णिक्खता जाव सिद्धा" यहा पठित **जाव** पद पद्मावती ने दीक्षित होने के अनन्तर जैसी सयम साधना की थी, गौरी ने भी दीक्षित होने के अनन्तर वैसी ही साधना की इस तथ्य को अभिव्यक्त कर रहा है।

"अट्ठ वि पउमावई सरिसयाओ-अट्ठ अज्झयणा"—अष्टावपि पद्मावतीमारभ्य रुक्मिण्यन्ता अष्टावपि कृष्णपट्टमहिष्य. समानचरिता । एव अष्टाध्ययनानि समाप्तानि। अर्थात् यहा पठित प्रथम **अष्ट** पद पद्मावती आदि आठो कृष्ण की रानियो की ओर सकेत करता है।

"समाप्तानि" इस पद का अध्याहार किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे सात अध्ययनो का निर्देश प्राप्त होता है।

॥ सात अध्ययन समाप्त ॥
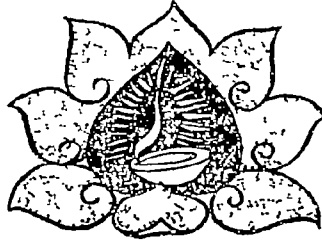
दो अध्ययन

(नौ और दस)

अब सूत्रकार नवम अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—उक्खेवओ य नवमस्स। तेण कालेण तेण समएण बारवईए णयरीए रेवयए पव्वए, नदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया। तत्थ ण बारवईए णयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्तए जंबवइए देवीए अत्तए सब नाम कुमारे होत्था। अहीण०। तस्स ण सबस्स कुमारस्स मूलसिरी नाम भारिया होत्था। वण्णओ। अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए मूलसिरी वि णिग्गया। जहा पउमावई, नवर, देवाणुप्पिया! कण्ह वासुदेव आपुच्छामि, जाव सिद्धा। एव मूलदत्ता वि।

छाया—उत्क्षेपकश्च नवमस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवत्या नगर्या रैवतक पर्वत, नन्दनवनमुद्यानम्, कृष्णो राजा। तत्र द्वारवत्यां नगर्यां कृष्णस्य वासुदेवस्य पुत्रो जाम्बवत्या देव्या आत्मज शाम्बो नाम कुमार आसीत्। अहीन ०। तस्य शाम्बस्य कुमारस्य मूलश्री नाम्नी भार्याऽऽसीत्, वर्णक। अर्हन् अरिष्टनेमि समवसृत। कृष्णो निर्गत, मूलश्रीरपि निर्गता, यथा पद्मावती, नवर-देवानुप्रिय! कृष्ण वासुदेवमापृच्छामि, यावत् सिद्धा। एव मूलदत्ताऽपि।

पदार्थ—**नवमस्स य**—और नवम अध्ययन के, **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये। **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल एव उस समय मे, **बारवईए णयरीए**—द्वारिका नगरी के, **रेवयए पव्वए**—रैवतक नामक पर्वत पर, **नदणवण उज्जाणे**—नदनवन नाम का उद्यान था। **तत्थ**—वहा, **कण्हे राया**—कृष्ण वासुदेव राजा थे, **बारवईए णयरीए**—द्वारिका नगरी के राजा, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव के, **पुत्तए**—पुत्र, **जबवतीए देवीए**—जाम्बवती देवी के, **अत्तए**—आत्मज, **सब नाम**—शाम्ब कुमार नाम का, **कुमारे होत्था**—कुमार था—जो कि, **अहीण०**—निर्दोष—पञ्चेन्द्रिय शरीरवाला था। **तस्स ण**—उस, **सबस्स कुमारस्स**—शाब कुमार के, **मूलसिरी नाम**—मूलश्री नाम की, **भारिया होत्था**—भार्या (धर्मपत्नी) थी, उसकी गुण-सम्पदा **वण्णओ**—औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी गुण सम्पदा के समान जाननी चाहिए। **अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे**—अरिहन्त अरिष्टनेमि वहा पधारे, **कण्हे णिग्गए**—कृष्ण वासुदेव (भगवान के दर्शनार्थ) नगर से निकले, **मूलसिरी वि**— मूल श्री भी; **जहा**—जिस प्रकार, - **पउमावई णिग्गया**—पद्मावती नगरी से दर्शनार्थ गई थी उसी प्रकार वह भी गई, **नवर**—इतना अन्तर है, (वह भगवान से बोली),

देवानुप्पिया !—हे भगवन् !; **कण्ह वासुदेव**—कृष्ण वासुदेव को, **आपुच्छामि**—पूछती हूँ, **जाव**—यावत्, **सिद्धा**—सिद्ध गति प्राप्त की, **एव**—इसी प्रकार, **मूलदत्ता वि**—मूलदत्ता का भी वर्णन समझ लेना चाहिए।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्र के पचम वर्गीय अष्टम अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! अन्तगड सूत्र के पचम वर्गीय अष्टम अध्ययन का मैं अर्थ श्रवण कर चुका हू, अत अब आप कृपा करके बताए कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के पचमवर्गीय नवम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जम्बूकुमार का निवेदन सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी के रैवतक नामक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक सुन्दर उद्यान था। नगरीमे महाराज कृष्ण राज्य करते थे। इसी नगरी मे कृष्ण वासुदेव के पुत्र जाम्ववती देवी के आत्मज शाम्ब नाम के राजकुमार थे। ये सर्वाङ्ग सुन्दर थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम मूलश्री था। मूलश्री की गुणसम्पदा औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-गुणसम्पदा के समान थी।

एक बार वीतराग भगवान अरिष्टनेमि नन्दनवन मे पधारे। कृष्ण वासुदेव भगवान के दर्शनार्थ गए, मूलश्री भी वहा पहुची। पद्मावती की तरह उन्होने दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की। केवल अन्तर इतना है कि वह कहने लगी—भगवन् ! मै कृष्ण वासुदेव से पूछकर दीक्षाव्रत अगीकार करूगी। अन्त मे दीक्षित हो कर उसने सिद्ध-गति प्राप्त की।

मूलश्री की तरह मूलदत्ता ने भी दीक्षित होकर सिद्ध-गति उपलब्ध की।

व्याख्या—जिस प्रकार गत अध्ययनो मे वर्णित पद्मावती आदि आठो सन्नारिया द्वारिकाधीश कृष्ण वासुदेव की पट्टरानिया थी, उसी प्रकार मूलश्री और मूलदत्ता ये दोनो सन्नारिया कृष्ण वासुदेव के सुपुत्र तथा जाम्बवती के आत्मज शाम्बकुमार की धर्मपत्निया थी।

पद्मावती आदि आठो महासतियो का जैसे सयम-प्रधान जीवन एक समान था, उसी प्रकार इन दोनो महासतियो का सयमी जीवन भी मिलता-जुलता है।

पञ्चम वर्ग के दस अध्ययनो मे दस नारियो के जीवनो का उल्लेख किया गया है। नारी-जीवन के वर्णन के पीछे शास्त्रकारो का यही आशय प्रतीत होता है कि जिस प्रकार सयमाराधन द्वारा

पुरुष मोक्ष की साधना सम्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार नारी भी अहिंसा, सयम एव तप के आचरण से इस पद को प्राप्त करने की योग्यता एव क्षमता रखती है। पद्मावती आदि राजरानियो के जीवन इस सत्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

यहां एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह जीव शरीर से चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री अथवा नपुसक हो, वह उसी लिंग से मोक्ष मे जा सकता है। मोक्ष-साधना मे लिंग की कोई बाधा नही है। मोक्ष का बाधक तो वेद है। जीव मे जब तक वेद का उदय भाव रहता है, तब तक वह मोक्षाधिकारी नही बन सकता। स्त्री-वेद, पुरुष-वेद और नपुंसक-वेद ये तीनो मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं, अत जब तक मोहनीय कर्म की सत्ता रहती है, तब तक केवल ज्ञान की उत्पत्ति नही हो सकती। केवल ज्ञान प्राप्त किए बिना मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती, इसलिये जिस जीव का वेद क्षीण नही हुआ वह कभी मोक्ष को प्राप्त नही कर सकता।

शास्त्र कहता है कि स्त्री-पुरुष और नपुंसक के शरीर की जो आकृति है वह नामकर्मजन्य है। उसका निर्माण नामकर्म के उदय से होता है। यह नामकर्म केवल ज्ञान की उत्पत्ति मे कोई बाधा नही डालता। इस विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीव कोई भी लिंग रखता हो, वह निरतिचार चारित्र का सम्यक् पालन करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान-दर्शन तथा चारित्ररूप रत्नत्रय की सम्यक्तया आराधना करते हुए सभी जीव मुक्त हो जाते हैं। पहले हो चुके है, वर्तमान मे हो रहे हैं और भविष्य मे होते रहेगे।

'उक्खेवओ'—का अर्थ है—उत्क्षेपक। उत्क्षेपक प्रस्तावना का नाम है। शास्त्रीय भाषा मे प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है—

"जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण अतगडदसाण पचमस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ? नवमस्स ण भते ! अज्झयणस्स अन्तगडदसाण पचमस्स वग्गस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?" इन पदो का अर्थ पदार्थ मे दिया जा चुका है।

'अहीण०' यहा का बिन्दु—**पडिपुण्ण-पचिंदिय-सरीरे' लक्खण-वजणगुणोववेये माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वगसुदरगे, ससिसोमाकारे, कते, पियदसणे, सुरूवे**—इन पदो का बोधक है, अर्थात् शाम्बकुमार की पाचो इन्द्रिया निर्दोष थी, उसका शरीर लक्षण (स्वस्तिक आदि), व्यजन (शरीरगत मस्सा, तिल आदि चिन्ह) और विनय आदि अन्य गुणो से युक्त, मान (जिसके द्वारा पदार्थ मापा जाए), उन्मान (मान से अधिक या अर्द्धभार) और प्रमाण (अपनी अगुली से एक सौ आठ अगुली पर्यन्त ऊचाई) से परिपूर्ण एव अगोपागो के सौन्दर्य से भरपूर था। वह चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त (मनोहर) और प्रियदर्शन (जिसके देखने से मन मे आकर्षण पैदा हो) था।

"वण्णओ"—पद औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी गुण-सम्पदा की ओर सकेत करता है।

"जहा पउमावई" मे **'जहा'** पद समानता का बोधक है। जिस प्रकार पद्मावती भगवान का उपदेश सुनकर उससे प्रभावित हुई और उसने दीक्षित होने का सकल्प किया उसी प्रकार मूलश्री भी प्रभावित होकर दीक्षित हो गई। यही इनकी समानता है।

"नवर"—का अर्थ है—इतना अन्तर है। यह अन्तर किस कारण हुआ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है? पद्मावती के प्रकरण मे लिखा है, **"णवर देवाणुपिया! कण्ह वासुदेव आपुच्छामि"** तथा मूलश्री के प्रकरण मे भी यही शब्द प्रयुक्त हुए है, फिर अन्तर किस बात का?

उत्तर मे निवेदन है कि पद्मावती कृष्ण वासुदेव की धर्मपत्नी थी, अत उसका अपने पतिदेव से आज्ञा प्राप्त करना न्यायसगत है, इसी प्रकार मूलश्री यदि अपने पतिदेव शाम्बकुमार से आज्ञा प्राप्त करती तो यह न्यायसगत था, पर उसने अपने पतिदेव से आज्ञा प्राप्त न करके अपने श्वसुर कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त की, यही पद्मावती से इसका अन्तर है। यह अन्तर क्यो हुआ? इसका कारण यह है कि शाम्बकुमार पहले ही भगवान के चरणो मे दीक्षित हो गये थे, इसलिये उनसे आज्ञा प्राप्त करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। फलत मूलश्री ने अपने श्वसुर कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त करके भगवान के चरणो मे दीक्षा अगीकार की थी।

"जाव सिद्धा" यहा पठित जाव पद कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त करना, दीक्षा समारोह के अनन्तर भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होकर सयम-आराधना करना, व्रत, बेले, तेले आदि के रूप मे तपस्या करना और सलेखना द्वारा आत्मा को भावित करके अन्त मे निष्कर्मता प्राप्त करना, इन सभी बातो का ससूचक है।

॥ दो अध्ययन समाप्त ॥

॥ पचम वर्ग सम्पूर्ण ॥

षष्ठ वर्ग

सूत्रकार अब छठे वर्ग का आरम्भ करते हैं। उसका आदिम सूत्र इस प्रकार है—

मूल—जइ णं भंते ! छट्ठस्स उक्खेवओ। नवरं सोलस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—

मंकाई किंकम्मे चेव, मोग्गरपाणी य कासवे।
खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे ॥१॥
वारत्त-सुदंसण-पुण्णभद्द-सुमणभद्द-सुपइट्ठे मेहे।
अइमुत्ते अ अलक्खे, अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए। सेणिय राया। तत्थ णं मंकाई नामं गाहावई परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे गुणसिलए जाव विहरइ। परिसा निग्गया। तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव। इमो वि जेट्ठपुत्तं कुटुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव अणगारे जाए। ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी। तते णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदगस्स, गुणरयणं तवोकम्मं। सोलस वासाइं परियाओ तहेव विपुले सिद्धे।

दोच्चस्स उक्खेवओ। किंकम्मेवि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे।

छाया—यदि षष्ठस्य उत्क्षेपकः। नवरं षोडशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

मंकाति किङ्कर्माचैव मुद्गरपाणिश्च काश्यपः।
क्षेमको धृतिधरश्चैव, कैलाशो हरिचन्दनः ॥१॥

वारत्त-सुदर्शनपुण्यभद्रसुमनोभद्रसुप्रतिष्ठा मेघ· ।
अतिमुक्तश्च अलक्षोऽध्ययनाना तु षोडशकम् ।।२।।

यदि षोडशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य अध्ययनस्य कोऽर्थं प्रज्ञप्त ।

एव खलु जबू । तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नगर गुणशिलक चैत्यम्, श्रेणिको राजा, मकातिर्नाम गाथापति परिवसति, आढ्यो यावदपरिभूत । तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीर आदिकर गुणशिलके यावत् विहरति । परिषत् निर्गता । तत सो मकातिर्गाथापति अस्या कथाया लब्धार्थ यथा प्रज्ञप्तौ गगदत्त तथैव अयमपि ज्येष्ठपुत्र कुटुम्बे स्थापयित्वा पुरुष-सहस्रवाहिन्या शिविकया निष्क्रान्त, यावदनगारो जात, ईर्यासमित यावद् गुप्तब्रह्मचारी। तत स मकातिरनगार श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणा स्थविराणामन्तिके सामायिकादिकानि एकादशागानि अधीते, शेष यथा स्कन्दकस्य, गुणरत्न तप कर्म, षोडशवर्षाणि पर्याय । तथैव विपुले सिद्ध ।

द्वितीयस्य उत्क्षेपक । किंकर्मापि एव चैव यावत् विपुले सिद्ध ।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ, **भते**—हे भगवन् !, **छट्ठस्स**—छठे वर्ग का क्या अर्थ है, **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना करलेना, **नवर**—अन्तर इतना है कि, **सोलस अज्झयणा**— सोलह अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं, तजहा—जैसे कि—

मकाइ—मङ्काति, **च**—और, **एव**—निश्चयार्थक है, **किंकम्मे**—किंकर्मा, **य**—और, **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि (जिस के हाथ मे मुद्गर हो अर्थात् अर्जुनमाली), **कासवे**—काश्यप, **खेमए**—क्षेमक, **धितिधरे**—धृतिधर, **एव**—निश्चयार्थक है। **च**—और, **केलासे**—कैलाश, **हरिचदणे**—हरिचन्दन, **वारत्त**—वारत्त, **सुदसण**—सुदर्शन, **पुण्णभद्द**—पूर्णभद्र, **सुमणभद्द**—सुमनभद्र, **सुपइट्ठे**—सुप्रतिष्ठ, **मेहे**—मेघ, **अइमुत्ते**—अतिमुक्त, **अ**—और, **अलक्खे**—अलक्ष, **तु**—पादपूर्ति मे है। **अज्झयणाण**—यह अध्ययनो का, **सोलसय**—षोडशक है—अर्थात् ये १६ अध्ययन हैं। **जइ**—यदि (छठे वर्ग के), **सोलस अज्झयणा**—सोलह अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं, **पढमस्स अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का, **के अट्ठे पण्णत्ते** ?—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? ।

एव खलु—इस प्रकार, **जबू** !—हे जम्बू !, '**तेण कालेण, तेण समएण**—उस काल, उस समय मे, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर था, **गुणसिलए चेइए**—गुणशिलक नामक चैत्य था। **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा था , **तत्थ ण**—वहा पर, **मकाई नामे**—मकाति नाम का, **गाहावई**—गाथापति—गृहस्थ, **अड्ढे**—समृद्ध, **परिवसइ**—रहता था जो कि, **जाव**—यावत्, **अपरिभूए**—अपरिभूत—तिरस्कार से रहित, सम्मानित समझा जाता था।

तेण कालेण तेण समएण—उस काल, उस समय मे, **समणे भगव**—श्रमण-तपस्वी भगवान, ऐश्वर्यादि गुण सम्पन्न, **महावीरे आइगरे**—महावीर, आदिकर—धर्मतीर्थ का आरभ करनेवाले, **गुणसिलए**—गुणशिलक नाम उद्यान मे पधारे, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—विचरण करने लगे, **परिसा-णिग्गया**—परिषद् (जनता) भगवान के दर्शनार्थ निकली, **तए ण से मकाई**—उसके अनन्तर, वह

मकाति नामक, **गाहावई, इमीसे कहाए**—गाथापति गृहस्थ-इस कथा वृत्तान्त को, **लद्धट्ठे**—जान कर **जहा**—जिस प्रकार, **पण्णत्तीए**—प्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्र मे, **गगदत्ते**—गगदत्त का वर्णन किया गया है, **तहेव**—उसी प्रकार, **इमो वि**—यह भी अर्थात् मकाति भी, **जेट्ठपुत्त**—अपने वडे लडके को, **कुडुबे ठवेत्ता**—कुटुम्ब मे स्थापित कर, कुटुम्ब का मुख्य बना कर, **पुरिससहस्सवाहिणीए**—पुरुषसहस्रवाहिनो नामक, या हजार पुरुषो द्वारा उठाई जानेवाली, **सीयाए**—शिविका—पालकी में बैठ कर, **णिक्खते**—दीक्षा के वास्ते नगर से निकला, **जाव**—यावत्, **अणगारे जाए**—साधु बन गया, **ईरियासमिए**—ईरिया समिति की, पालना करनेवाला, **जाव**—यावत्, **गुत्त, बभयारी**—गुप्त जितेन्द्रिय बना और ब्रह्मचर्य महाव्रत की आराधना करने लगा, **तते ण**—उस के बाद, **से मकाइ अणगारे**—वह मकाति नामक अनगार साधु, **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के, **तहारूवाण**—तथारूप शास्त्रानुसार साधुमर्यादा का पालन करनेवाले, **थेराण**—स्थविरो—ज्ञानवृद्ध महापुरुषो के, **अतिए**—पास, **सामाइयमाइयाइ**—जिनके आदि, आरम्भ मे सामायिक—आचाराग सूत्र है, **एक्कारस्स अगाइ**—११ अगो का अध्ययन करता है; **सेस जहा**—शेष—अवशिष्ट, जिस प्रकार, **खदगस्स**—भगवती सूत्र मे वर्णित स्कदक मुनि का वर्णन है वैसा ही इनका भी जान लेना, **गुणरयण**—उसने गुणरत्न नामक, **तवोकम्म**—तप की आराधना की, **सोलस वासाइ**—सोलह वर्षों तक, **परियाओ**—दीक्षा का पालन किया, **तहेव**—स्कन्दक कुमार की भाति, **विपुले**—विपुल नामक पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

दोच्चस्स—द्वितीय अध्ययन का, **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये, **किकम्मे वि**—किकर्मा गाथापति का जीवन भी, **एवं चेव**—इसी प्रकार मकाति जी के समान जान लेना चाहिये, **जाव-विपुले-सिद्धे**—यावत् वे विपुल गिरि पर्वत पर, सिद्ध हो गए।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्र का पचम वर्ग सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अतगड सूत्र के पचम वर्ग का जो अर्थ बतलाया है, उसका श्रवण मैंने कर लिया है। अब भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, उसका श्रवण करना चाहता हू।

आर्य जम्बू अनगार की प्रार्थना सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करके कहने लगे—

जम्बू! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के सोलह अध्ययन बताए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. मकाति, २ किंकर्मा, ३ मुद्गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७ कैलाश, ८. हरिचदण, ९ वारत्त, १० सुदर्शन, ११. पूर्णभद्र, १२ सुमनभद्र १३. सुप्रतिष्ठ, १४. मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष।

छठे वर्ग के इन सोलह अध्ययनो के नाम सुनकर आर्य जम्बू अनगार आर्यसुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन्! यदि श्रमण भगवान महावीर ने छटे वर्ग मे सोलह अध्ययन बताए हैं तो भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है?

आर्य जम्बू अनगार की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू! उस काल उस समय मे राजगृह नाम का एक नगर था, वहा पर गुणशिलक नामक एक (चैत्य) उद्यान था। नगर-नरेश का नाम श्रेणिक था। इस नगर मे मंकाति नाम का एक गृहस्थ रहता था। यह बडा धनवान था, उसकी नगर मे बडी प्रतिष्ठा थी।

एक बार उस नगर मे धर्मतीर्थ के सस्थापक श्रमण भगवान महावीर पधारे और गुणशिलक उद्यान मे विराजमान हो गए। भगवान के दर्शनार्थ नगर-निवासी लोग नगर से चले। सेठ मकाति भी भगवान के आने के शुभ समाचार को सुनकर भगवती सूत्र मे वर्णित गगदत्त की भाति भगवान के चरणो मे उपस्थित हुआ। प्रभु-चरणो मे वन्दन-नमस्कार करने के अनन्तर उसने भगवान की वाणी सुनी, वाणी सुनकर उसके हृदय मे वैराग्य हो गया। गगदत्त की तरह भगवान के चरणो मे उसने निवेदन किया—

भगवन्! आपकी वाणी सुनकर मेरे हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया है, मैं अपने बडे पुत्र को कुटुम्ब का सब दायित्व सभाल कर आप के चरणो मे दीक्षित होना चाहता हू। भगवान् ने कहा—'भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो।' यह उत्तर सुनकर मकाति अपने घर लौट गए। उन्होने अपने बडे पुत्र को घर का मुखिया बनाया और इसके अनन्तर पुरुष-सहस्रवाहिनी नामक पालकी मे बैठकर दीक्षाग्रहण करने के लिये नगर से प्रस्थान किया। वह साधु बन गया। ईर्या, भाषा आदि समितियो की आराधना करने लगा। इन्द्रियो का दमन कर ब्रह्मचर्य की साधना मे लग गया।

मकाति मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप—शास्त्रोक्त मर्यादा के परि-पालक, स्थविरो—ज्ञानवृद्धो के पास आचाराग आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। भगवती सूत्र मे वर्णित श्री स्कन्दक मुनि के समान गुणरत्न तप का आराधन किया। सोलह वर्ष तक दीक्षा-पर्याय का पालन करके अन्त मे स्कन्दक मुनि की तरह विपुल नामक पर्वत पर उसने सिद्ध पद प्राप्त किया। जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

छठे वर्ग के प्रथमाध्ययन आ अर्थ सुनकर आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के प्रथम अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, वह मैंने सुन लिया है। अब भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन का जो अर्थ बताया है, उसे सुनना चाहता हू। आर्य जम्बू अनगार की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन मे किंकर्मा नामक गृहस्थ का वर्णन किया गया है। इसकी सयम-साधना तथा निर्वाण-पद की प्राप्ति मकाति मुनि के समान ही जाननी चाहिए। मकाति की तरह ही गाथापति किंकर्मा गृहस्थ ने विपुल गिरि पर सिद्ध-पद को प्राप्त किया था।

व्याख्या—इस छठे वर्ग मे सोलह अध्ययन वर्णित हुए हैं। जिस महापुरुष का जिस अध्ययन मे वर्णन किया गया है उसीके नाम से उस अध्ययन का नाम रखा गया है। इनमे से मकाति और किंकर्म इन दो महापुरुषो का जीवन प्रस्तुत सूत्र में वर्णित हुआ है। मकाति राजगृह नगर के एक मान्य सेठ थे। व्यापारी समाज मे इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। वे धनी होने पर भी धार्मिक कार्यो मे खूब रस लेते थे। सन्तो की मगलमयी वाणी सुन कर तो वे झूम उठते थे। एक बार इनको विश्ववन्द्य मगलमूर्ति भगवान महावीर की कल्याणकारिणी वाणी सुनने का सुअवसर मिला, बस फिर क्या था, जीवन की दिशा ही वदल गई। ससार की मोहमाया वधन दिखाई देने लगी, अन्त में उन्होंने भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होने का दृढ निश्चय कर लिया। फिर घर का सब दायित्व अपने लडकेको सौंपकर पारिवारिक एव सामाजिक सभी जिम्मेदारियो से मुक्त होकर भगवान महावीर से दीक्षा अगीकार की। साधु वन कर तप-सयम का ठाठ लगा दिया। गुणरत्न तप किया। तपस्या के साथ-साथ विद्या के क्षेत्र मे भी खूब प्रगति की। ग्यारह अग पढे, शास्त्रो मे विद्वत्ता प्राप्त की। इस प्रकार ज्ञान तथा सयम-साधना मे सोलह वर्ष व्यतीत किए और एक दिन विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध-पद को प्राप्त कर लिया।

इनकी तरह किंकर्मा गाथापति ने भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर विपुल गिरि पर्वत पर जाकर निर्वाण पद प्राप्त किया था। इन दोनो महापुरुषो का सयमी जीवन एक जैसा ही है।

"छट्ठस्स उक्खेवओ"—का अर्थ है—छठे वर्ग के उत्क्षेपक की पहले की भाति कल्पना कर लेना। उत्क्षेपक प्रस्तावना वाक्य का नाम है। शास्त्रीय भाषा मे प्रस्तावना वाक्य इस प्रकार है—

जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स पचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। छट्ठस्स ण भते ! वग्गस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता—यह प्रस्तावना वाक्य है। इसकी कल्पना पहले की तरह करनी, है पर जो अन्तर है उसे सूत्रकार ने "नवर" इस पद से अभिव्यक्त कर दिया है।

"अड्ढे जाव अपरिभूए" इस वाक्य मे पठित जाव पद **दित्ते, वित्थण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहु धन-बहु-जायरूव-रयए, आओग-पओग-सपउत्ते, विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूए, बहुजणस्स**—इन पदो का ससूचक है। इनका अर्थ इस प्रकार है—मकाति गाथापति दीप्त—तेजस्वी,विस्तृत-विपुल, भवन, शयन, आसन (चौकी आदि) यान—गाडी आदि, वाहन—घोडे आदि धन-सुवर्ण और रजत आदि चादी की बहुलता से युक्त था। अधमर्णो (ऋण लेने वाले) को वह अनेक प्रकार का ऋण व्याज पर दिया करता था। उसके घर पर भोजन करने के अनन्तर भी बहुत सा अन्न बाकी बच जाता था। उसके घर मे दास-दासी आदि पुरुष और गाय, भैस, बकरी आदि पशु थे तथा वह बहुतो से भी पराभव को प्राप्त नही हो पाता था तथा जनता मे वह सशक्त तथा सम्माननीय था।

"आइगरे" का अर्थ है आदिकर" जैनशास्त्रानुसार प्रत्येक उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती नौ बलदेव और नौ वासुदेव होते हैं। इनमे तीर्थंकर धर्म के प्रवर्तक और धर्म नीति के सस्थापक होते हैं। तदनुसार इस वर्तमान अवसर्पिणी काल मे भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। इनमे पहले ऋषभदेव अन्तिम श्री महावीर स्वामी हैं। प्रत्येक तीर्थंकर अपने शुभतम अध्यवसाय से उपार्जित किये तीर्थंकर नाम कर्म के अनुसार तीर्थ की स्थापना अवश्य करते है, इसीलिये प्रत्येक तीर्थंकर ने अपने-अपने समय मे धर्म की मर्यादा को सुव्यवस्थित किया है। यही उनकी धर्मप्रवर्तना तीर्थ-प्रवृत्ति के नाम से प्रख्यात है। इसी उद्देश्य से तीर्थंकर को आदिकर अर्थात् धर्म के आदि प्रवर्तक कहा जाता है।

गुणसिलए जाव विहरइ—यहा पठित जाव पद—**चेइए अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हइ, अहा-पडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे**—इन पदो का बोधक है अर्थात् साधुवृत्ति के अनुकूल अवग्रह, आश्रय, उपलब्ध कर, सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए भावनायुक्त करते हुए।

"जहा पण्णत्तीए गगदत्ते तहेव"—का अर्थ है—भगवती सूत्र मे जैसे गगदत्त का वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन मकाति गाथापति का समझना चाहिये। गगदत्त भगवान के पास गए, उपदेश सुना, वैराग्य भावना उत्पन्न हुई, दीक्षित होने का सकल्प भगवान के सामने व्यक्त किया साथ मे यह भी कहा कि 'भगवन्! मैं अपने बडे पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर दीक्षा अगीकार करूगा।'

गगदत्त की बिनती सुन कर भगवान बोले—'भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।'

इस के अनन्तर गगदत्त घर गए। अपने वडे लडके को उन्होने अपने घर का मुखिया बनाया आदि सभी बातें ज्यो की त्यो मकाति के जीवन मे भी जान लेनी चाहियें। इसी समानता को सूत्रकार ने **"जहा पण्णत्तीए"** आदि पदो द्वारा ध्वनित किया है।

"णिक्खते जाव अणगारे"—यहाँ पठित **जाव** पद दीक्षार्थ शहर से निकले और भगवान की सेवा मे उपस्थित हुए, भगवान से दीक्षित होने की प्रार्थना की, ईशानकोण मे वस्त्राभूषण उतारकर केशलुञ्चन करने के अनन्तर दीक्षा-व्रत अगीकार किया आदि सभी बातो का परिचायक है।

"तहा रूवाण थेराण"—का अर्थ है—तथारूप स्थविर। शास्त्रोक्त विधिविधान का सम्यग् रूपेण पालन करनेवाले महान सन्तो को तथारूप कहते हैं। स्थविर के तीन रूप है—वय स्थविर, सूत्रस्थविर, प्रव्रज्या-स्थविर। साठ वर्ष की अवस्था के साधु को वय स्थविर, स्थानांग और समवायाग सूत्र के ज्ञाता को सूत्र-स्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा-पर्यायवाले साधु को प्रव्रज्या-स्थविर कहा जाता है। इस सूत्र मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरो के द्वारा नवदीक्षित मकाति मुनि को आचारागादि अग-शास्त्रो का विधिपूर्वक अध्ययन कराने का जो उल्लेख किया गया है वह वर्तमान काल के साधु-समुदाय और गच्छनायको को ज्ञानाभ्यास की ओर अग्रसर होने की पावन-प्रेरणा प्रदान कर उन्हे ज्ञानालोक से आलोकित होने का शुभ सन्देश दे रहा है।

"सामाइयमाइयाइ"—का अर्थ है—सामायिक आदि मे जिन के अनगार-धर्म मे दीक्षित होनेवाले साधक को आचार-विधि को यथावत् समझने और यथाविधि उसका पालन करने के लिये आचार-प्रधान आध्यात्मिक शास्त्रो के ज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता होती है, इससे उसकी आचार-सम्बन्धी समस्त क्रियाए ज्ञानपूर्वक अनुष्ठित होती हैं और उसके आत्म-विकास मे सहायक बनती हैं। इसी अभिप्राय से यहा पर मकाति के अधिकार मे अनगार होने के अनन्तर आचारागादि एकादश अगो के अध्ययन का उल्लेख किया गया है। **"सामाइयमाइयाइ"** मे सामायिक शब्द से आचार नाम के प्रथम अग का ग्रहण अभीष्ट है। आचाराङ्गसूत्र मे आचार-सम्बन्धी नियमो का बडा ही सुन्दरता से प्रतिपादन किया गया है।

"सेस जहा खदगस्स"—का अर्थ है—मकाति मुनिवर का शेष वर्णन स्कन्दक कुमार के समान बताया गया है। उनकी जीवन-गाथा श्रीभगवती सूत्र मे वर्णित हुई है। ग्यारह अगो का अध्ययन करने के अनन्तर स्कन्दक मुनि ने जिस पद्धति से साधना-यात्रा सम्पन्न की थी उसी प्रकार मकाति मुनि ने भी की।

"गुणरयण"—का अर्थ है गुण-रत्न। यह एक तप विशेष है, इसमे सोलह मास लगतें हैं। इसके प्रथम मास मे एक-एक उपवास दूसरे मे दो-दो, यावत् सोलहवे मास मे सोलह उपवास करने पड़तें हैं। जिनमे दिन को उकुडु आसन पर सूर्य के सम्मुख व रात्रि को वीरासन से वस्त्ररहित बैठते का विधान है।

"विपुले"—का अर्थ है विपुल। यह एक पर्वत विशेष का नाम है। इस पर्वत पर आरोहण करके मकाति मुनि ने सिद्ध-पद प्राप्त किया था।

"दोच्चस्स उक्खेवओ"—का अर्थ है—द्वितीय अध्ययन के उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये। शास्त्रीय भाषा मे यह प्रस्तावना वाक्य इस प्रकार है—

"जइ णं भते! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स छट्ठस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। दोच्चस्स ण भते! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते?" इन पदो का अर्थ स्पष्ट ही है।

"एव चेव जाव विपुले"—यहा पठित जाव पद मकाति मुनिवर के समस्त सयमी जीवन की ओर सकेत कर रहा है। जिस प्रकार मकाति गाथापति ने भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हो कर धर्मकथा सुनी, दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की, अपने बडे पुत्र को कुटुम्ब का सारा दायित्व सभाल कर दीक्षा-व्रत अगीकार करके सयम-साधना द्वारा अन्त मे विपुल पर्वत पर सिद्ध-पद प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार किंकर्मा गाथापति ने भी अपने बडे पुत्र को अपने घर का सारा भार सम्भाल कर, दीक्षा अगीकार की थी और अन्त मे विपुलगिरि पर निर्वाणपद प्राप्त किया था। इसी समानता को सूत्रकार ने **"एव चेव जाव विपुले"** इन पदो द्वारा अभिव्यक्त किया है।

। दो अध्ययन समाप्त ।

तृतीय अध्ययन

अब सूत्रकार तृतीय अध्ययन का आरभ करते हुए कहते है कि—

मूल—तच्चस्स उक्खेवओ। एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेणं समएण रायगिहे, गुणसिलए चेतिए, सेणिए राया, चेल्लणा देवी। तत्थ ण रायगिहे अज्जुणए नाम मालागारे परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूते। तस्स ण अज्जुणयस्स मालागारस्स बधुमती णाम भारिया होत्था, सूमालपाणिपाया। तस्स ण अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स नगरस्स बहिया, एत्थ ण मह एगे पुप्फारामे होत्था। कण्हे जाव निउरबभूते, दसद्ध-वण्ण-कुसुम-कुसुमिते पासादीए ४।

तस्स ण पुप्फारामस्स अदूरसामते तत्थ ण अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जत-पज्जत-पिति-पज्जयागए अणेगकुलपुरिसपरपरागते मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ ण मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं मह पल-सहस्स-णिप्फण्ण अयोमय मोग्गर गहाय चिट्ठइ।

तए ण से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिति चेव मोग्गरपाणिजक्खभत्ते यावि होत्था, कल्लाकल्लि पच्छिपिडगाइ गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चय करेइ, करित्ता अग्गाइ वराइ पुप्फाइ गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मुग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिह पुप्फच्चणय करेइ, करित्ता जन्नुपायवडिए पणाम करेइ, ततो पच्छा रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणे विहरइ।

छाया—तृतीयस्योत्क्षेपक। एव खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह, गुणशिलक चैत्य, श्रेणिको राजा, चेलना देवी। तत्र राजगृहे अर्जुनको नाम मालाकार परिवसति। आढ्यो यावद् अपरिभूत। तस्यार्जुनकस्य मालाकारस्य बधुमती नाम्नी भार्याऽऽसीत्, सुकुमारपाणिपादा। तस्यार्जुनकस्य मालाकारस्य राजगृहाद् नगराद् बहि तत्र महानेक पुष्पाराम आसीत्। कृष्णो यावद् निकुरबभूत। दशार्द्धवर्णकुसुमकुसुमित प्रासादीय ४।

तस्य पुष्पारामस्य अदूरसामत तत्र अर्जुनकस्य मालाकारस्य आर्यकप्रार्यकपितृपर्यायागतम् अनेककुलपुरुषपरम्परागत मुद्गरपाणे. यक्षस्य यक्षायतनमासीत् । पुराण दिव्य सत्य यथापूर्णभद्र । तत्र मुद्गरपाणे प्रतिमा एक महान्त पल-सहस्र-निष्पन्नमयोमयं मुद्गर गृहीत्वा तिष्ठति । तत सोऽर्जुनको मालाकार बालप्रभृति चैव मुद्गरपाणियक्षभक्तश्चाप्यभूत् । कल्याकल्यि (प्रतिदिन) पच्छिपिटकान् गृह्णाति, गृहीत्वा राजगृहनगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पुष्पारामस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुष्पोपचय करोति, कृत्वा अग्र्याणि वराणि पुष्पाणि गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव मुद्गरपाणे यक्षस्यायतन तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मुद्गरपाणे यक्षस्य महार्हं पुष्पार्चन करोति, कृत्वा जानुपादपतित प्रणाम करोति, तत. पश्चात् राजमार्गे वृत्ति कल्पयन् विहरति ।'

पदार्थ—**तच्चस्स**—तृतीय अध्ययन के, **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **जंबू !**—हे जम्बू !, **तेण कालेणं तेण समएण**—उस काल उस समय मे, **रायगिहे**—राजगृह नाम का नगर था, **गुणसिलए चेतिए**—गुणशिलक नामक चैत्य था, **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा था, **चेल्लणा देवी**—चेलना नाम की रानी थी, **तत्थ ण रायगिहे**—उस राजगृह नगर मे, **अज्जुणए णाम मालागारे परिवसइ**—अर्जुन नामक माली रहता था, **अड्ढे जाव अपरिभूए**—धनवान एव जनता मे सम्मानित था; **तस्स ण अज्जुणयस्स मालागारस्स**—उस अर्जुन माली का, **रायगिहस्स नगरस्स बहिया**—राजगृह नगर के बाहिर, **एत्थ ण मह एगे पुप्फारामे होत्था**—एक महान पुष्पो का उद्यान था, **कण्हे**—वृक्षो की कृष्ण प्रभा से युक्त था, **जाव**—यावत्, **निउरबभूते**—महामेघो के समुदाय के समान उस मे वृक्षो का आधिक्य था, **दसद्ध-वण्ण-कुसुम-कुसुमिते**—पाच प्रकार के फूलो से सुशोभित हो रहा था, **पासादीए**—हृदय मे प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला था, ४—यह चार का अक, **दरिसणिज्जे**—जिसे देख कर देखनेवाले की आखें न थके, **अभिरूप**—जिसे एक बार देखने पर भी पुन पुन देखने की इच्छा निरन्तर बनी रहे, **प्रतिरूप**—जिस मे देखनेवाले को सदा कुछ नवीनता ही दिखाई दे, इन अवशिष्ट पदो का बोधक है, **तस्स ण पुप्फारामस्स**—उस पुष्पोद्यान के, **अदूरसामते**—न अति दूर और न अति निकट, **तत्थ ण अज्जुणयस्स**—वहाँ पर अर्जुन, **मालागारस्स**—माली का, **अज्जत-पज्जत-पिति-पज्जयागए**—आर्यक—दादा, प्रार्यक—पडदादा तथा पिता इनके पर्यायक्रम अर्थात् परम्परा से आया हुआ, **अणेगकुलपुरिस-परपरागते**—अनेक कुलपुरुषो की परम्परा से चला आ रहा, **मोग्गर-पाणिस्स**—मुद्गरपाणि (जिस के हाथ मे मुद्गर हो) नामक, **जक्खस्स**—यक्ष का; **जक्खायथणे होत्था**—यक्षायतन अर्थात् यक्षमन्दिर था, **पोराणे**—प्राचीन था, **दिव्वे**—दिव्य—मनोहर, **सच्चे**—सत्य, उस की वाणी यथार्थ रहती थी, **जहा पुण्णभद्दे**—जिस प्रकार पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था उसी तरह का था, **तत्थ ण मुग्गरपाणिस्स**—वहा पर मुद्गरपाणि यक्ष की, **पडिमा एग मह**—प्रतिमा—मूर्ति, एक महान, **पलसहस्सणिप्फण्ण**—हजार पल (परिमाण विशेष) से बने हुए, **अयोमयं**—लोहे का, **मोग्गर**—मुद्गर, **गहाय चिट्ठइ**—ग्रहण किये खडी थी ।

तए णं—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली, **बालप्पभिति चेव**—बचपन से ही, **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि, **जक्खभत्ते यावि होत्था**—यक्ष का भक्त था, **कल्लाकल्लि**—प्रतिदिन, **पच्छिपिडगाइ**—अनेक विध टोकरियो को, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **रायगिहाओ नगराओ**—राजगृह नगर से, **पडिणिक्खमइ**—निकलता है, **पडिणिक्खमित्ता**—निकल कर, **जेणेव पुप्फारामे**—जहा पर पुष्पोद्यान था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा पर आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **पुप्फच्चय करेइ**—पुष्पो का चयन करता है, **करित्ता**—पुष्प चयन करके, **अग्गाइ**—खिले हुए, **वराइ पुप्फाइ**—श्रेष्ठ पुष्पो फूलो को, **गहाइ गहित्ता जेणेव**—ग्रहण करता है और ग्रहण करके जहा पर, **मोग्गरपाणिस्स जक्खायणे**—मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा पर आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **मुग्गरपाणिस्स जक्खस्स**—मुद्गरपाणि यक्ष की, **महरिह**—महार्ह—बडों के योग्य, **पुप्फुच्चयणं**—पुष्पो द्वारा पूजा, **करेइ**—करता है, **करित्ता**—पूजा करके, **जन्नुपायवडिए**—भूमि पर दोनो घुटने और पाव टेक कर (यक्ष-प्रतिमा को), **पणाम करेइ**—प्रणाम करता है, **करित्ता**—प्रणाम करके, **ततो पच्छा**—उसके पश्चात्, **रायमग्गसि**—राजमार्ग—राजपथ पर, **वित्तिं**—आजीविका, **कप्पेमाणे विहरइ**—करता हुआ समय विताता है।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्रीय छठे वर्ग के द्वितीय अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है उसका श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है अब मैं उसे सुनना चाहता हू।

जम्बू अनगार की प्रार्थना सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस समय उस काल मे राजगृह नगर था, उसके बाहिर गुणशिलक नामक एक उद्यान था, नगर मे महाराज श्रेणिक राज्य किया करते थे। इनकी पट्टरानी का नाम चेलना था।

राजगृह नगर मे अर्जुन नाम का एक माली रहता था जो बडा धनवान था। नगर मे उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। उसकी धर्मपत्नी का नाम बधुमती था। बधुमती के हाथ-पाव बडे कोमल थे। राजगृह नगर के बाहिर अर्जुनमाली का एक महान पुष्पोद्यान था, वृक्षो की कृष्णप्रभा उसकी शोभा बढ़ा रही थी। वृक्षो का उसमें इतना आधिक्य था

कि वह महामेघो का समुदाय ही दिखाई देता था। उसमें पाँच वर्ण के पुष्प खिल रहे थे, उसे देखकर हृदय मे अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, एक बार देख लेने पर भी दर्शको की आखे उसे देखकर थकती नही थी, एक बार देख लेने पर भी उसे देखने की लालसा निरन्तर बनी रहती थी। जब भी उसे देखा जाता था तभी देखनेवालो को उसमे कुछ नवीनता ही दिखलाई देती थी।

पुष्पोद्यान के पास मुद्गरपाणि नामक यक्ष का एक मन्दिर था। वह अर्जुनमाली के दादा, परदादा एवं पिता—इस प्रकार अनेक कुल-पुरुषो की परपरा से चला आ रहा था। यह मन्दिर प्राचीन, दिव्य मनोहर और सत्य प्रभाववाला था। औपपातिक सूत्र मे जैसे पूर्णभद्र का वर्णन किया गया है, वैसा ही इसका वर्णन समझ लेना चाहिए। इस मन्दिर मे मुद्गरपाणि नामक यक्ष की एक मूर्ति थी। उस मूर्ति के हाथ मे लोहे का एक मुद्गर था जिसका परिमाण हजार पल था।

अर्जुनमाली बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था। वह प्रतिदिन बैत की बनी टोकरिया लेकर राजगृह नगर से निकलता और अपने पुष्पोद्यान मे पहुचता, वहा फूलो का चयन करके एक ढेर लगा लेता। उस ढेर मे जो फूल विशेष रूप से खिले हुए तथा श्रेष्ठ होते थे उनको उठा लेता और मुद्गरपाणि के मन्दिर मे जाकर मुद्गरपाणि यक्ष की महार्ह—बडो के योग्य, फूलो से पूजा करता था और भूमि पर घुटनो और पावो को टेक कर नतमस्तक हो प्रणाम करता था, उसके अनन्तर राजपथ पर जाकर अपनी आजीविका किया करता था।

व्याख्या—इस सूत्र से प्रस्तुत छठे वर्ग के तृतीय अध्ययन का आरभ होता है। इसमे अर्जुनमाली के जीवन का उल्लेख किया गया है। अर्जुनमाली राजगृह नगर का एक वैभव-सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वह पुष्पो का व्यापार किया करता था। उसके पास एक बहुत विशाल पुष्पवाटिका थी। जिसमें पाचो वर्णो के पुष्प पैदा होते थे। वह प्रतिदिन प्रात उठता था अपनी पुष्पवाटिका मे जाकर पुष्प तोडकर उनका ढेर लगा लेता था, उनमें जो सुन्दर फूल होते थे उनको लेकर वह अपने इष्टदेव के मन्दिर मे जाता था। उसका इष्टदेव मुद्गरपाणि नाम का एक यक्ष था जो उसका कुल देवता था। इसी यक्ष का पुष्पवाटिका मे एक मन्दिर था। मन्दिर प्राचीन, सुन्दर और सत्य प्रभाव वाला था। इसी मन्दिर मे अर्जुनमाली फूल लेकर पहुचता और अपने इष्टदेव की उन फूलो से पूजा करता, भूमि पर घुटने टेक कर वह नतमस्तक होकर उसको नमस्कार करता। यह सब कुछ करने के अनन्तर फिर वह फूलों से भरी टोकरिया लेकर बाजार मे जाता और उन फूलो को वेचकर अपनी

आजीविका चलाता। अर्जुनमाली के विवरण से यह पता चलता है कि उस समय कुल-परम्परागत देवो—कुलदेवो की पूजा का विशेष प्रचार था और लोग कुलदेवो की पूजा करने के अनन्तर ही अपने व्यापार आदि कार्यों मे प्रवृत्त होते थे। यह सब कुछ करने के पीछे लोगो की केवल लोकेषणा ही होती थी। कोई धन की इच्छा से देव-पूजा करता था, कोई पुत्र की इच्छा से, किसी के मन मे सम्मान की लालसा होती थी तो किसी के मन में ऐहिक सुखो की। इस तरह ससारी जीवन के उत्कर्ष के लिये ही देवपूजा की जाती थी। आत्मा के उत्थान एव कल्याण के साथ इसका कोई सम्बन्ध नही था। यही कारण है कि आत्म-कल्याण का ससार को सन्देश देनेवाला जैनधर्म आत्म-कल्याण की दृष्टि से देवपूजा को कोई महत्व नही देता। इसे यह ससार का मार्ग कहता है। मोक्षमार्ग को तो अहिसा सयम और तप की आराधना तथा सम्यग्-दर्शन ज्ञान एव चारित्र की उपासना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

"**उक्खेवओ**"—का अर्थ है—उत्क्षेपक, प्रस्तावना-वाक्य की कल्पना। शास्त्रीय भाषा मे प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है—

"**जइ ण भते! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स छट्ठस्स वग्गस्स दोच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स ण भते! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते?**" इन पदो का भावार्थ मूलार्थ मे दिया जा चुका है—

"**अड्ढे जाव अपरिभूते**"—यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदों का सकेत पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर दिया गया है।

पुप्फारामे—का अर्थ है—पुष्पो का आराम अर्थात् उद्यान।

"**किण्हे जाव निउरबभूते**"—इस वाक्य में पठित जाव पद औपपातिक सूत्र मे पठित—**किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए, सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए नीले, नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण कडिय कडिच्छाए रम्मे महामेहे**—इन पदो का सूचक है। इन का अर्थ है—वह पुष्पोद्यान कही कृष्ण वर्ण का था, श्याम कान्तिवाला था, कही मोरके गले की तरह नील कान्तिवाला था, कही तोते की चोच की तरह हरी कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कही शीत कान्तिवाला, कही स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणो की अधिकता के कारण कही तीव्र कान्तिवाला, कही कृष्ण छायावाला, कही नील हरित स्निग्ध शीत एवं तीव्र छायावाला, शाखाओ के आपस मे अधिक मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघो के समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था।

"**दसद्धवण्ण-कुसुम-कुसुमिते**"—**दशार्द्ध वर्णानि पञ्चवर्णानि यानि कुसुमानि तै कुसुमित पुष्पित** अर्थात् दशार्द्ध (दश का अर्धभाग) पाँच वर्ण के कुसुमो से युक्त था।

"**पासातीए ४**"—यहा के चार के अक से सूत्रकार ने जिन पदों की ओर सकेत किया है, उनको पदार्थ मे दे दिया गया है।

"**अदूरसामते**"—**नातिदूरे नातिनिकटे**—अर्थात् जो न अति दूर हो और न अधिक निकट हो उसे अदूर-सामन्त कहते हैं।

कि वह महामेघो का समुदाय ही दिखाई देता था। उसमे पाँच वर्ण के पुष्प खिल रहे थे, उसे देखकर हृदय मे अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, एक बार देख लेने पर भी दर्शकों की आखे उसे देखकर थकती नही थी, एक बार देख लेने पर भी उसे देखने की लालसा निरन्तर बनी रहती थी। जब भी उसे देखा जाता था तभी देखनेवालो को उसमे कुछ नवीनता ही दिखलाई देती थी।

पुष्पोद्यान के पास मुद्गरपाणि नामक यक्ष का एक मन्दिर था। वह अर्जुनमाली के दादा, परदादा एवं पिता—इस प्रकार अनेक कुल-पुरुषो की परपरा से चला आ रहा था। यह मन्दिर प्राचीन, दिव्य मनोहर और सत्य प्रभाववाला था। औपपातिक सूत्र मे जैसे पूर्णभद्र का वर्णन किया गया है, वैसा ही इसका वर्णन समझ लेना चाहिए। इस मन्दिर मे मुद्गरपाणि नामक यक्ष की एक मूर्ति थी। उस मूर्ति के हाथ मे लोहे का एक मुद्गर था जिसका परिमाण हजार पल था।

अर्जुनमाली बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था। वह प्रतिदिन बैंत की बनी टोकरिया लेकर राजगृह नगर से निकलता और अपने पुष्पोद्यान मे पहुचता, वहा फूलो का चयन करके एक ढेर लगा लेता। उस ढेर मे जो फूल विशेष रूप से खिले हुए तथा श्रेष्ठ होते थे उनको उठा लेता और मुद्गरपाणि के मन्दिर मे जाकर मुद्गरपाणि यक्ष की महार्ह—बडों के योग्य, फूलो से पूजा करता था और भूमि पर घुटनो और पावो को टेक कर नतमस्तक हो प्रणाम करता था, उसके अनन्तर राजपथ पर जाकर अपनी आजीविका किया करता था।

व्याख्या—इस सूत्र से प्रस्तुत छठे वर्ग के तृतीय अध्ययन का आरभ होता है। इसमे अर्जुन-माली के जीवन का उल्लेख किया गया है। अर्जुनमाली राजगृह नगर का एक वैभव-सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वह पुष्पो का व्यापार किया करता था। उसके पास एक बहुत विशाल पुष्पवाटिका थी। जिसमे पाचो वर्णों के पुष्प पैदा होते थे। वह प्रतिदिन प्रात उठता था अपनी पुष्पवाटिका मे जाकर पुष्प तोडकर उनका ढेर लगा लेता था, उनमे जो सुन्दर फूल होते थे उनको लेकर वह अपने इष्टदेव के मन्दिर मे जाता था। उसका इष्टदेव मुद्गरपाणि नाम का एक यक्ष था जो उसका कुल देवता था। इसी यक्ष का पुष्पवाटिका मे एक मन्दिर था। मन्दिर प्राचीन, सुन्दर और सत्य प्रभाव वाला था। इसी मन्दिर मे अर्जुनमाली फूल लेकर पहुचता और अपने इष्टदेव की उन फूलो से पूजा करता, भूमि पर घुटने टेक कर वह नतमस्तक होकर उसको नमस्कार करता। यह सब कुछ करने के अनन्तर फिर वह फूलों से भरी टोकरिया लेकर बाजार में जाता और उन फूलो को बेचकर अपनी

आजीविका चलाता। अर्जुनमाली के विवरण से यह पता चलता है कि उस समय कुल-परम्परागत देवो—कुलदेवो की पूजा का विशेष प्रचार था और लोग कुलदेवो की पूजा करने के अनन्तर ही अपने व्यापार आदि कार्यों मे प्रवृत्त होते थे। यह सब कुछ करने के पीछे लोगो की केवल लोकेषणा ही होती थी। कोई धन की इच्छा से देव-पूजा करता था, कोई पुत्र की इच्छा से, किसी के मन मे सम्मान की लालसा होती थी तो किसी के मन मे ऐहिक सुखो की। इस तरह ससारी जीवन के उत्कर्ष के लिये ही देवपूजा की जाती थी। आत्मा के उत्थान एव कल्याण के साथ इसका कोई सम्बन्ध नही था। यही कारण है कि आत्म-कल्याण का ससार को सन्देश देनेवाला जैनधर्म आत्म-कल्याण की दृष्टि से देवपूजा को कोई महत्व नही देता। इसे यह ससार का मार्ग कहता है। मोक्षमार्ग को तो अहिंसा सयम और तप की आराधना तथा सम्यग्-दर्शन ज्ञान एव चारित्र की उपासना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

"**उक्खेवओ**"—का अर्थ है—उत्क्षेपक, प्रस्तावना-वाक्य की कल्पना। शास्त्रीय भाषा मे, प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है—

"**जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स छट्ठस्स वग्गस्स दोच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?**" इन पदो का भावार्थ मूलार्थ मे दिया जा चुका है—

"**अड्ढे जाव अपरिभूते**"—यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदो का सकेत पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर दिया गया है।

पुप्फारामे—का अर्थ है—पुष्पो का आराम अर्थात् उद्यान।

"**किण्हे जाव निउरबभूते**"—इस वाक्य में पठित जाव पद औपपातिक सूत्र मे पठित—**किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए, सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए नीले, नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण कडिय कडिच्छाए रम्मे महामेहे**—इन पदो का सूचक है। इन का अर्थ है—वह पुष्पोद्यान कही कृष्ण वर्ण का था, श्याम कान्तिवाला था, कही मोरके गले की तरह नील कान्तिवाला था, कही तोते की चोच की तरह हरी कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कही शीत कान्तिवाला, कही स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणो की अधिकता के कारण कही तीव्र कान्तिवाला, कहीं कृष्ण छायावाला, कहीं नील हरित स्निग्ध शीत एव तीव्र छायावाला, शाखाओ के आपस मे अधिक मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघो के समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था।

"**दसद्ध वण्ण-कुसुम-कुसुमिते**"—**दशार्द्ध वर्णानि पञ्चवर्णानि यानि कुसुमानि तै कुसुमित पुष्पित** अर्थात् दशार्द्ध (दश का अर्धभाग) पांच वर्ण के कुसुमो से युक्त था।

"**पासातीए ४**"—यहा के चार के अक से सूत्रकार ने जिन पदों की ओर संकेत किया है, उनको पदार्थ में दे दिया गया है।

"**अदूरसामते**"—**नातिदूरे नातिनिकटे**—अर्थात् जो न अति दूर हो और न अधिक निकट हो उसे अदूर-सामन्त कहते हैं।

"अज्जत-पज्जत-पिति-पज्जयागए"—आर्यक पितामह, प्रार्यक प्रपितामहः, पिता जनकः, **आर्यकश्च प्रार्यकश्च पिता च आर्यक-प्रार्यक-पितर, तेषां पर्याय क्रम, तेन आगतम्**—अर्थात् आर्यक दादा को कहते हैं, प्रार्यक परदादे को कहते हैं। इनके क्रम से अर्थात् पहले परदादे से, फिर दादे से, फिर पिता से इस प्रकार के क्रम से जो चला आ रहा हो उसे 'आर्यक-प्रार्यक-पितृ-पर्यायागत कहते हैं।

"अणेगकुलपुरिस-परंपरागते" अनेक पूर्वपुरुष-परम्परया समागतं—यह पद यक्ष के यक्षायतन का विशेषण है। यह विशेषण **"अज्जय"** इस विशेषण का ही स्पष्टीकरण कर रहा है। इसका भाव यह है कि जो अनेक पूर्व पुरुषो की परम्परा से चला हुआ हो उसे 'अनेक-पुरुष परम्परागत' कहा जाता है।

"मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स"—का अर्थ है—मुद्गरपाणि नामक यक्ष। यक्ष एक प्रकार का व्यन्तर देव माना जाता है जिसके हाथ मे मुद्गर (एक प्राचीन अस्त्र) हो उसे मुद्गरपाणि कहते हैं। अर्जुन-माली के उपवन मे जिस यक्ष का मन्दिर था उस यक्ष की प्रतिमा के हाथ मे हजार पल का एक मुद्गर था। प्रतीत होता है इसी कारण से इस यक्ष का नाम **मुद्गरपाणि** विख्यात हो गया था।

"पोराणे-दिव्वे-सच्चे"—ये तीनो शब्द यक्ष-मन्दिर के विशेषण हैं। पुराण शब्द प्राचीन का बोधक है, दिव्य—सुन्दर और सत्य शब्द सत्यता से युक्त को कहते है। इन विशेषणो से ध्वनित होता है कि अर्जुनमाली के उपवन मे जो यक्ष का मन्दिर था वह बहुत पुराना था, उसका निर्माण बहुत सुन्दर ढग का था तथा उस यक्ष के समक्ष जो मनौती मानी जाती थी वह पूर्ण हो जाती थी।

"जहापुण्णभद्दे"—का अर्थ है—जिस प्रकार पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था वैसा ही मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था। औपपातिक सूत्र मे पूर्णभद्र यक्ष के यक्षायतन का बडा विस्तृत वर्णन किया गया है।

"पलसहस्सणिप्पण्ण—पलसहस्र-निष्पन्नम्" इसका अर्थ है—जिसका निर्माण हजार पलो से किया गया है। पल शब्द के निम्नोक्त अर्थ हैं—दो कर्ष प्रमाण (कर्ष १० माशे का होता है) **कर्षाभ्यां पल प्रोक्तं, कर्ष स्याद्दशमाषक**। शार्ङ्गधरसहिता। ४ कर्ष [कर्ष १६ माशे का एक मान] मान का एक प्राचीन तोल (बृहत् हिन्दी कोष)। एक बहुत छोटी तोल, चार तोला (प्राकृत शब्द महार्णव—पाइयसद्दमहण्णवो) एक तोल—मान विशेष—अर्द्धमागधी कोष)। इसमे चार तोले का यदि एक पल माना जाय तो यक्ष के हाथ मे १ मन १० सेर का विशाल मुद्गर था।

"पच्छिपिडगाइ"—**पच्छिपिटकान्-वेत्रनिर्मित-पिटकान्**, यहा पच्छि और पिटक ये दो शब्द है। पच्छी यह देशीय भाषा का शब्द है। जो छोटी टोकरी के लिये प्रयुक्त होता है। पिटक शब्द भी पिटारी का बोधक है। दो समानार्थक पदो का प्रयोग अनेकविध पिटारियो अर्थात् टोकरियो का बोधक है। भाव यह है कि अर्जुनमाली अनेक प्रकार की टोकरिया लेकर पुष्पवाटिका मे जाया करता था।

"पुप्फुच्चय"—पुष्पोच्चय—पुष्पराशि। यहां प्रयुक्त **पुष्पोच्चय** शब्द पुष्पो की राशि अर्थात् पुष्पो के ढेर का बोधक है।

"अग्गाइ वराइ"—अग्र्याणि अग्रे भवानि विकसितानि, वराणि श्रेष्ठानि । आगे होनेवाले को अग्र्य कहते हैं, यह पुष्प का विशेषण है । इसके दो अर्थ हो सकते हैं— १ जो पहले चुने हुए हो या खिले हुए हो । प्रस्तुत मे दोनो ही अर्थ सगत हैं । वर उत्तम को कहते हैं ।

"महरिह पुप्फच्चणय"—महार्हं पुष्पार्चनकम्—महर्हं, शब्द का अर्थ है बडो के योग्य । पुष्पो द्वारा की गई पूजा को पुष्पार्चनक कहते हैं ।

"जन्नुपायवडिए"—जानुपादपतित —भूमौ उभे जानुनी पादौ च पातयित्वा प्रणत सन्—अर्थात् जो भूमि पर दोनो घुटने और पाव टेककर नतमस्तक हो रहा है उसे 'जानुपादपतित' कहते है ।

"वित्ति कप्पेमाणे"—वृत्ति जीविका कल्पयन्—जीविकार्थ पुष्पविक्रय कुर्वाण, अर्थात् वृत्ति जीविका, रोजी का नाम है । पुष्प-विक्रय करता हुआ इस अर्थ का बोधक कल्पयन् शब्द है ।

प्रस्तुत सूत्र मे अर्जुनमाली का जीवन परिचय कराने के साथ-साथ उसकी आजीविका के साधन का उलेख भी किया गया है । अब उससे आगे के जीवन का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—तत्थ ण रायगिहे नगरे ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ । अड्ढा जाव अपरिभूता, जकयसुकया यावि होत्था । तए ण रायगिहे णयरे अन्नदा कदाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था । तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्ल पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जमिति कट्टु पच्चूसकालसमयसि बधुमईए भारियाए सद्धि पच्छियपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिह णगर मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बन्धुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चय करेइ । तए ण तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागता अभिरममाणा चिट्ठति ।

छाया—तत्र राजगृहे नगरे ललिता नाम्नी गोष्ठी परिवसति । आढ्या यावदपरिभूता । यत्कृतसुकृता चाप्यासीत् । तत्र राजगृहे नगरे अन्यदा कदाचिद् प्रमोद घुष्टश्चाप्यभवत् । ततोऽर्जुनको मालाकार कल्ये प्रभूततरै पुष्पै कार्यमिति कृत्वा, प्रत्यूषकालसमये बन्धुमत्या भार्यया सार्धं पच्छिपिटकान् गृह्णाति, गृहीत्वा स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहन्नगरात् मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पुष्पारामस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य बन्धुमत्या भार्यया सार्धं पुष्पोच्चय करोति । ततस्तस्या ललितगोष्ठ्या षट् गोष्ठिका पुरुषा यत्रैव मुद्गरपाणे यक्षस्य यक्षायतन तत्रैवोपागता अभिरममाणास्तिष्ठन्ति ।

पदार्थ—तत्थ ण—वहा रायगृहे णयरे—राजगृह-नगर मे, ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ—ललित नामक समान आयुवाले मित्रो की मण्डली निवास करती थी, अड्ढा—यह मण्डली

अत्यन्त समृद्ध थी आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न थी, **जाव अपरिभूता**—यावत् नगर मे उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। कोई उसका तिरस्कार न कर सकता था, **य**—और राजा का अनुग्रह प्राप्त होने से, **जकयसुकया**—यत्कृतसुकृता—जो कर लिया जाए उसे ही ठीक समझनेवाली, **होत्था**—थी, **तए ण रायगिहे णयरे**—उस के अनन्तर राजगृह नगर मे, **अन्नदा कदाइ**—किसी अन्य समय, **पमोदे घुट्ठे यावि होत्था**—एक प्रमोद महोत्सव की घुष्ट—घोषणा हुई, **तए ण से अज्जुणए—माला-गारे**—उसके बाद, वह अर्जुन माली सोचने लगा कि, **कल्ल**—आगामी दिन, **पभूयतराएहिं**—अधिक, **पुप्फेहिं कज्ज**—फूलो की आवश्यकता होगी, **इति कट्टु**—ऐसा विचार करके, **पच्चू-सकालसमयसि**—प्रात काल ही, **बधुमईए भारियाए**—अपनी बधुमती पत्नी के, **सद्धि**—साथ, **पच्छिपिडगाइ**—अनेक विध टोकरिया, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से, **पडिनिक्खमइ**—निकलता है, **पडिनिक्खमित्ता**—और निकल कर, **राय-गिह णयर मज्झमज्झेण**—राजगृह नगर के बीचो बीच से, **णिगच्छइ**—निकलता है, **णिगच्छित्ता**—निकल कर, **जेणेव**—जहा पर, **पुप्फारामे**—पुष्पोद्यान था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—और वहा आकर, **बधुमईए भारियाए**—बधुमती पत्नी के, **सद्धि**—साथ, **पुप्फुच्चय करेइ**—पुष्पो का सचय करता है, **तए ण**—उस के अनन्तर, **तीसे ललियाए गोट्ठीए**—उस ललित नामक मित्र मण्डली के, **छ**—छ, **गोट्ठिल्ला पुरिसा**—मण्डली के साथी पुरुष, **जेणेव**—जहा पर, **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि, **जक्खस्स**—यक्ष का, **जक्खाययणे**—यक्षायतन अर्थात् मन्दिर था, **तेणेव उवागता**—वहा पर आते है, **अभिरममाणा चिट्ठति**—और क्रीडा करते हुए ठहरते हैं।

मूलार्थ—राजगृह नगर मे ललित नामक एक मित्र-मण्डली निवास करती थी। इसकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी तथा नगर मे उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। कोई इस मण्डली का अपमान न कर सकता था। यह मडली जो कुछ कर दे उसे ही यथार्थ माना जाता था। उस पर किसी द्वारा की गई आलोचना को वह अनधिकार चेष्टा मानती थी।

एक बार राजगृह नगर मे एक महोत्सव की घोषणा हुई। इस घोषणा को सुन कर अर्जुन माली ने विचार किया—उत्सव के कारण कल बहुत से पुष्पो की आवश्यकता होगी। ऐसा विचार कर अपनी धर्मपत्नी बधुमती के साथ अनेको टोकरिया ले कर अर्जुनमाली प्रात काल ही अपने घर से चला, राजगृह नगर के बीचो-बीच होता हुआ अपने पुष्पोद्यान मे पहुचा और अपनी धर्मपत्नी बधुमती के साथ पुष्प-सचय करने लगा।

इधर उस ललित नामक मित्रमण्डली के छ गोष्ठिक अर्थात् सदस्य पुरुष मुद्-गरपाणि यक्ष के मन्दिर मे आये और यथेच्छ क्रीडा करने लगे ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे राजगृह नगर की ललित नामक एक मित्रमण्डली द्वारा महोत्सव की घोषणा, तदर्थ पुष्पो की अधिक आवश्यकता के कारण अर्जुनमाली का अपनी भार्या के साथ पुष्प-सचयार्थ पुष्प-वाटिका मे जाना पुष्प-सचय करना तथा वहा मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास राज-गृह नगर की विख्यात मित्र मण्डली के छ सदस्यो का पहुँच कर यथेच्छ क्रीडा करना, इन बातो का उल्लेख किया गया है ।

इस सूत्र में पठित कठिन पदो की व्याख्या इस प्रकार है—

"ललिया नाम गोट्ठी"*—की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

"ललिय त्ति—दुर्ललितगोष्ठी, भुजगसमुदाय"—दुर्ललित—शब्द लाड-प्यार से बिगडा हुआ, दुलार से खराब किया हुआ, नटखट, उपद्रवी, दुष्ट इन अर्थों का बोधक है । भुजग शब्द जार, आशिक इस अर्थ का तथा समुदाय समूह का परिचायक है । इस तरह वृत्तिकार अभयदेव सूरी के शब्दो मे राजगृह की ललित-गोष्ठी व्यभिचारी पुरुषो की एक टोली थी । यदि केवल 'ललित' शब्द की ओर देखते हैं तो इसका अर्थ—क्रीडाशील, कामी, सुन्दर रमणीय, सरल, निर्दोष, ईप्सित, प्रिय, ऐसा मिलता है ।

अर्द्धमागधी-कोषकार ललिता शब्द का अर्थ करते हैं—राजगृह की छ मनुष्यो की एक मण्डली का नाम ।

जिस राजगृह नगरी मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी का शासन रहा हो, जिसमे महात्मा गौतम बुद्ध की मधुर वाणी मुखरित हुई हो और जिस नगरी मे गोशाल के व्याख्यानो की धाक जमी हो, उस नगरी मे व्यभिचारी पुरुषो की निरकुश मण्डली का होना नितान्त असम्भव जान पडता है । यह सत्य है कि मनुष्य भूल कर सकता है, वह आचार-विचार से किसी समय भटक सकता है, अक्षम्य अपराध भी उससे बन सकते हैं, पर उसकी दोष-मूलक प्रवृत्ति का नागरिको की ओर से सर्वत्र सम्मान एव समर्थन होना यह असभव ही प्रतीत होता है ।

किसी-किसी हस्तलिखित प्रति मे **"ललिया नाम गोट्ठी"** के स्थान पर **"ललिया नाम छ गोट्ठी"** यह पाठ देखने मे आता है, परन्तु यह पाठ ठीक प्रतीत नही होता, क्योकि प्रस्तुत सूत्र मे आगे चल कर—**"तीसे ललियाते गोट्ठीते छ गोट्ठिल्ला"** ऐसा पाठ आता है । यहा प्रयुक्त 'छ' शब्द की फिर आवश्यकता ही नही रहती ।

---

* विद्वद्वय श्रीघासीलाल जी महाराज अपने अन्तगडसूत्र मे **'ललियानाम गोट्ठी'** इन पदो का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"ललिता नाम्नी गोष्ठी—समानवयस्कमित्रमण्डली"—अर्थात् ललिता नाम की समान आयुवाले मित्रो की एक मण्डली ।

"अड्ढा जाव अपरिभूता"—यहा पठित जाव पद से अभिप्रेत पदो की सूचना पीछे पृष्ठ ७७ ७८ पर दी जा चुकी है। अन्तर केवल लिग का है। वहा पुल्लिग पदो का प्रयोग हुआ है और प्रस्तुत मे स्त्रीलिंग शब्दो का ग्रहण किया गया है।

"जकयसुकया"—यत्कृत तदेव सुकृत श्रेष्ठ यस्या' सा यत्कृतसुकृता, राजाज्ञावशात् स्वविचारानुकूलाचरणपरायणेत्यर्थ—जिसके सभी कार्य श्रेष्ठ समझे जाते हो उसे **यत्कृत-सुकृता** कहते हैं, यह मित्रमण्डली का विशेषण है। टीकाकार कहते हैं कि राजा की ओर से उसे पूरी छूट मिली हुई थी, अत वह मण्डली अपने विचारो के अनुकूल मनमाने कार्य करनेवाली थी। आचार्य अभयदेव के शब्दो मे इस पद की व्याख्या इस प्रकार है—

"जकयसुकयत्ति—यदेव कृत तदेव शोभन व तदेव सुष्ठु-कृतमित्यभिन्यते, पितृपौरादिभिर्यस्या सा यत्कृतसुकृता"—अर्थात् वह मित्र मण्डली जो कुछ भी अच्छा-बुरा काम करती थी उनके माता-पिता तथा नगर वालो की ओर से उसको अच्छा ही माना जाता था।

एक दल किसी नगर मे अच्छा बुरा जो चाहे करता रहे, उस पर कोई आपत्ति न करे, उसकी कोई आलोचना न करे, उसकी दुष्प्रवृत्तियो को शान्तिपूर्वक सब देखते रहे, या उसका समर्थन करते रहे या बिल्कुल मौन रहे, इस के दो ही कारण हो सकते है—पहला यह कि वह इतनी विश्वास पात्र एव प्रामाणिक है कि उस पर किसी को सन्देह हो ही नही सकता। दूसरा कारण यह हो सकता है कि—वह दल आचार-विचार से गिरा हुआ हो, परन्तु उस दल के सदस्य शासन से सम्बन्धित हैं, उनकी पहुच बहुत दूर तक है, जन, धन, बल के प्रकर्ष से उस दल का सर्वत्र आतक छाया हुआ है, परिणामस्वरूप भावी अनिष्ट के भय के कारण कोई व्यक्ति उसका विरोध नही करता और दल की सन्तुष्टि के लिये समय-समय पर उसका समर्थन भी कर देता है।

राजगृह नगरी की मित्रमण्डली के प्रभाव मे उक्त दोनो कारणो मे से कौन-सा कारण काम कर रहा है, इसके सम्बन्ध मे असदिग्ध रूप मे कुछ कहना कठिन है। अर्जुनमाली की धर्मपत्नी वधुमती के साथ जब अनाचार सेवन की घटना को देखते हैं तब तो यह मित्रमण्डली व्यभिचारी ही दिखाई देती है, पर इस घटना के अतिरिक्त इस प्रकार की अन्य किसी घटना का उल्लेख नही मिलता। केवल एक भूल को लेकर एक मण्डली को सर्वथा व्यभिचारिणो, भ्रष्टाचारिणी कहना न्याय-सगत नही है।

"पमोदे"—प्रमोद—सामान्य रूप से इस शब्द का अर्थ 'हर्ष' किया जाता है, परन्तु यहा 'प्रमोद' शब्द महोत्सव का बोधक है।

"पच्छियपडियाइ"—पच्छिपिटकान्—यहा पर भी **पच्छिक-पिटक** शब्द टोकरियो के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

"पुप्फुच्चय"—पुष्पोच्चयम्—एकत्र स्थले पुष्पपुञ्जम्—अर्थात् एक स्थान पर एकत्रित पुष्पो के समुदाय को 'पुष्पोच्चय' कहते हैं।

"अभिरममाणा"—अभिरममाणा—क्रीडन्त, अर्थात् क्रीडा करते हुए।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अर्जुन माली अपनी बधुमती भार्या के साथ पुष्पोद्यान मे पुष्प-सग्रह कर रहा था और उधर राजगृह नगर की ललित नामक प्रसिद्ध मित्रमण्डली के ६ सदस्य वहा आकर क्रीडा मे लग गए। इस के अनन्तर क्या हुआ ? इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—तए ण से अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चय करेइ, करित्ता अग्गाइ वराइ पुप्फाइ गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए ण छ गोट्ठिला पुरिसा अज्जुणय मालागार बधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाण पासति, पासित्ता अन्नमन्न एवं वयासी—

एस णं देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि इह हव्वमागच्छइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह अज्जुणय मालागार अवओडयबधणय करित्ता बधुमईए भारियाए सद्धि विपुलाइ भोगभोगाइ भुंजमाणा विहरित्तए, त्ति कट्टु, एयमट्ठ अन्नमन्नस्स पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता कवाडतरेसु निलुक्कति, निच्चला, निप्फदा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठति। तए ण से अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोग्गरपाणि-जक्खाययणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता आलोए पणाम करेइ, करित्ता महरिह पुप्फुच्चण करेइ, जन्नुपायपडिए पणाम करेइ। तए ण छ गोट्ठिला पुरिसा दवदवस्स कवाडतरेहिंतो णिग्गच्छति, णिग्गच्छित्ता अज्जुणय मालागार गेण्हति गेण्हित्ता अवओडयबधण करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धि विपुलाइ भोग-भोगाइ भुजमाणा विहरति।

छाया—तत सोऽर्जुनको मालाकार बधुमत्या भार्यया सार्द्धं पुष्पोच्चय करोति, कृत्वा अग्र्याणि वराणि पुष्पाणि गृहीत्वा यत्रैव मुद्गरपाणे यक्षस्य यक्षायतन तत्रैव उपागच्छति। तत षट् गोष्ठिका पुरुषा अर्जुनक मालाकार बधुमत्या भार्यया सार्धमागच्छन्त पश्यन्ति, दृष्ट्वा अन्योन्यमेवमवदन्—

एष देवानुप्रिया ! अर्जुनको मालाकार बधुमत्या भार्यया सार्द्धमिह शीघ्रमागच्छति, तच्छ्रेय खलु देवानुप्रिया ! अस्माकम् अर्जुनक मालाकारमवकोटकबधनक कृत्वा बधुमत्या भार्यया सार्धं विपुलानि भोगभोगानि भुजमानाना विहर्तुम्, इति कृत्वा एतमर्थमन्योन्य प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य कपाटन्तरेषु निलीयन्ते, निश्चला निष्पन्दा तूष्णीका प्रच्छन्नास्तिष्ठन्ति। तत सोऽर्जुनको मालाकार बन्धुमत्या भार्यया सार्धं यत्रैव मुद्गरपाणियक्षायतन तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आलोकयन् प्रणाम करोति, कृत्वा महार्हां पुष्पार्चनिकां करोति, कृत्वा जानुपादपतित प्रणाम करोति। ततस्ते गोष्ठिका पुरुषा द्रुत द्रुत कपाटान्तरेभ्य निर्गच्छन्ति, निर्गत्य अर्जुनक मालाकार गृह्णन्ति, गृहीत्वा अवकोटक-बन्धन कुर्वन्ति, कृत्वा बन्धुमत्या मालाकारिण्या सार्धं विपुलान् भोगभोगान् भुजाना विहरन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली अपनी, **भारियाए बधुमईए सद्धि**—भार्या बधुमती के साथ, **पुप्फुच्चय करेइ**—पुष्पो को एकत्रित करता है, **करित्ता**—करके, **अग्गाइ वराइ**—अग्र-खिले हुए एव श्रेष्ठ, **पुप्फाइ गहाय**—फूलो को ग्रहण करके, **जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स**—जहा पर मुद्गरपाण यक्ष का, **जक्खायणे**—यक्षायतन था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा पर आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **तए ण छ गोट्ठिला पुरिसा**—उसके बाद ६ गोष्ठिक पुरुष, **अज्जुणय मालागार**—अर्जुनमाली को, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **एज्जमाण पासति**—आते हुए को देखते है, **पासित्ता**—देखकर, **अन्नमन्न**—एक दूसरे को, **एव**—इसप्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

देवाणुप्पिया !—साथियो !, **एस अज्जुणए मालागारे**—यह अर्जुनमाली, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—वधुमती भार्या के साथ, **इह् हव्वमागच्छइ**—यहा पर शीघ्र आ रहा है, **त खलु देवाणुप्पिया !** अत दोस्तो !, **अम्ह सेय**—हमे चाहिए कि, **अज्जुणय मालागार**—अर्जुनमाली को, **अवओडय-बधण**—अवकोटक बधन से बाध, **करित्ता**—करके, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **विपुलाइ भोगभोगाइ**—भोगने योग्य भोगोको यथेच्छ, **भुजमाणाण विहरित्तए**—उपभोग करते हुए विहरण करे, **त्तिकट्टु एयमट्ठ**—ऐसा विचार करके, इस **अर्थ**—बात को, **अन्नमन्नस्स पडिसुर्णेति**—परस्पर स्वीकार करते हैं, **पडिसुणित्ता**—स्वीकार करके, **कवाडतरेसु**—मन्दिर के दरवाजे के पीछे, **निलुक्कन्ति**—छुप जाते है, **निच्चला**—निश्चल रूप से, **निप्फदा**—निष्पन्द—कम्पन रहित, **तुसिणीया**—बिल्कुल मौन, **पच्छण्णा**—छिपकर, **चिट्ठन्ति**—खडे हो जाते हैं। **तते ण**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली, **बधुमतीए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **जेणेव मोग्गरपाणि जक्खायणे**—जहा पर मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था, वहा पर, **उवागच्छइ**— आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **आलोए पणामे करेइ**—यक्ष की मूर्ति को देखकर, नमस्कार करता है, **करित्ता**—नमस्कार करके, **महरिह**—महार्ह—बडो के योग्य, **पुप्फुच्चण**—पुष्पार्चन, पुष्पो द्वारा पूजन, **करेइ**—करता है, **करित्ता**—करके, **जन्नुपायपडिए**—घुटने और पाव टेक कर, **पणाम करेइ**—प्रणाम करता है, **करित्ता**—करके, **तए ण**—उसके बाद, **छ गोट्ठिल्ला पुरिसा**—६ गोष्ठिक पुरुष, **दवदवस्स**—बडी शीघ्रता से, **कवाडतरेहितो**—दरवाजो के पीछे से, **णिग्गच्छति**—निकलते है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर, **अज्जुणय मालागार गेण्हत्ति**—अर्जुनमाली को पकड लेते हैं, **गेण्हित्ता**—पकडकर, **अवओडगबधण**—अवकोटक बधन (जिस बधन मे गली मे रस्सी डालकर पीठ के पीछे से ले जाकर भुजाओ को बाधा जाये) से युक्त, **करेंति**—करते है, **करित्ता**—करके, **बधुमईए मालागरीए सद्धि**—बधुमतीमालन के साथ, **विपुलाइ-भोगभोगाइ**—विपुल यथेच्छ शब्दादि विषयो का, **भुंजमाणा विहरति**—भोग करने लगे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर अपनी धर्मपत्नी बधुमती के साथ अर्जुनमाली ने पुष्पो का सग्रह किया, उसमे जो पुष्प प्रधान एव श्रेष्ठ थे, उनको लेकर वह मुद्गरपाणि यक्ष

के मन्दिर की ओर चल पडा। बधुमती भार्या के साथ अर्जुनमाली को आते देखकर मित्रमण्डली के सदस्य आपस मे इस प्रकार कहने लगे।

मित्रो! अर्जुनमाली अपनी बधुमती पत्नी के साथ इधर आ रहा है सो आज हमे अर्जुनमाली को अवकोटक-बधन से बाधकर उसकी बंधुमती पत्नी के साथ यथेच्छ भोग भोगने चाहिए। सभी साथियो ने इस बात को स्वीकार किया और वे सब के सब यक्ष-मन्दिर के दरवाजे के पीछे छुपकर निश्चल, निष्पन्द और मौन भाव-से खडे हो गए। अर्जुनमाली ने बधुमती भार्या के साथ यक्ष-मन्दिर मे प्रवेश किया और यक्षमूर्ति के दर्शन और उसे प्रणाम करके पुष्पो द्वारा उसका पूजन करने लगा। पूजासे निवृत्त होकर घुटने और पाव टेककर उसने यक्ष को नमस्कार किया, जब अर्जुनमाली घुटने एव पाव टेक कर यक्ष-मूर्ति को प्रणाम कर रहा था तब वे छ पुरुष बडी शीघ्रता से दरवाजो के पोछे से निकले और उन्होने अर्जुनमाली को पकडकर अवकोटकबधन से बाध दिया। अर्जुनमाली से सर्वथा निश्चिन्त हो जाने पर वे छहो साथी बधुमती मालिन के साथ यथेच्छ विषयभोग करने लगे।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे अर्जनमाली का पुष्पो को चुनकर मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर में अपनी बधुमती भार्या को साथ लेकर यक्ष-पूजा करने के लिये आना, उसके पूजन मे सलग्न होजाने पर राज-गृह नगरी के प्रसिद्ध मित्रमण्डल के ६ साथियो द्वारा अवकोटकबधन द्वारा उसका बाधा जाना तथा उसकी बधुमती पत्नी के साथ उनका अनाचार सेवन करना, इन बातो का उल्लेख किया गया है। नीति-शास्त्र मे लिखा है—

"यौवन धनसम्पत्ति, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

यौवन, धन, सम्पत्ति प्रभुत्व तथा अविवेक, यह एक एक बात भी अनर्थों का कारण है फिर जहा ये चारो ही एकत्रित हो जायें, वहा तो कहना ही क्या है? वहा तो सर्वतोमुखी विनाश अवश्यभावी होता है।

राजगृह नगर के प्रसिद्ध मित्रमण्डल का परिचय दिया जा चुका है। इसी मण्डल के छ साथी अर्जुनमाली के पुष्पोद्यान में पहुचे हुए थे, इन्होंने जब बधुमती को देखा तो उन पर वासना का भूत सवार हो गया, परिणाम स्वरूप उन्होने बधुमती को पकड कर उसके साथ अनाचार का सेवन करना आरभ कर दिया। मन्दिर जैसे पवित्र धार्मिक स्थान में किसी नारी पर बलात्कार करना कितनी

पदार्थ—**तते**—उसके अन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली अपनी, **भारियाए बधुमईए सद्धि**—भार्या बधुमती के साथ, **पुप्फुच्चय करेइ**—पुष्पो को एकत्रित करता है, **करित्ता**—करके, **अग्गाइ वराइ**—अग्र-खिले हुए एव श्रेष्ठ, **पुप्फाइ गहाय**—फूलो को ग्रहण करके, **जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स**—जहा पर मुद्गरपाण यक्ष का, **जक्खायणे**—यक्षायतन था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा पर आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **तए ण छ गोट्ठिला पुरिसा**—उसके बाद ६ गोष्ठिक पुरुष, **अज्जुणय मालागार**—अर्जुनमाली को, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **एज्जमाण पासति**—आते हुए को देखते है, **पासित्ता**—देखकर, **अन्नमन्न**—एक दूसरे को, **एव**—इसप्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

देवाणुप्पिया !—साथियो !, **एस अज्जुणए मालागारे**—यह अर्जुनमाली, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **इह हव्वमागच्छइ**—यहा पर शीघ्र आ रहा है, **त खलु देवाणुप्पिया !** अत दोस्तो !, **अम्ह सेय**—हमे चाहिए कि, **अज्जुणय मालागार**—अर्जुनमाली को, **अवओडय-बधण**—अवकोटक बधन से बाध, **करित्ता**—करके, **बधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **विपुलाइ भोगभोगाइ**—भोगने योग्य भोगोको यथेच्छ, **भुजमाणाण विहरित्तए**—उपभोग करते हुए विहरण करे, **त्तिकट्टु एयमट्ठ**—ऐसा विचार करके, इस **अर्थ**—बात को, **अन्नमन्नस्स पडिसुर्णेति**—परस्पर स्वीकार करते हैं, **पडिसुणित्ता**—स्वीकार करके, **कवाडतरेसु**—मन्दिर के दरवाजे के पीछे, **निलुक्कन्ति**—छुप जाते है, **निच्चला**—निश्चल रूप से, **निप्फदा**-निष्पन्द—कम्पन रहित, **तुसिणीया**—बिलकुल मौन, **पच्छण्णा**—छिपकर, **चिट्ठन्ति**—खडे हो जाते हैं। **तते ण**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली, **बधुमतीए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ, **जेणेव मोग्गरपाणि जक्खायणे**—जहा पर मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था, वहा पर, **उवागच्छइ**— आता है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **आलोए पणामे करेइ**—यक्ष की मूर्ति को देखकर, नमस्कार करता है, **करित्ता**—नमस्कार करके, **महरिह**—महार्हं—बडो के योग्य, **पुप्फुच्चण**—पुष्पार्चन, पुष्पो द्वारा पूजन, **करेइ**—करता है, **करित्ता**—करके, **जन्नुपायपडिए**—घुटने और पाव टेक कर, **पणाम करेइ**—प्रणाम करता है, **करित्ता**—करके, **तए ण**—उसके बाद, **छ गोट्ठिल्ला पुरिसा**—६ गोष्ठिक पुरुष, **ववदवस्स**—बडी शीघ्रता से, **कवाडतरेहिंतो**—दरवाजो के पीछे से, **णिग्गच्छति**—निकलते है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर, **अज्जुणय मालागार गेण्हत्ति**—अर्जुनमाली को पकड लेते हैं, **गेण्हित्ता**—पकडकर, **अवओडगबधण**—अवकोटक बधन (जिस बधन मे गली मे रस्सी डालकर पीठ के पीछे से ले जाकर भुजाओ को बाधा जाये) से युक्त, **करेंति**—करते है, **करित्ता**—करके, **बधुमईए मालागरीए सद्धि**—बधुमतीमालन के साथ, **विपुलाइ -भोगभोगाइ**—विपुल यथेच्छ शब्दादि विषयो का, **भुंजमाणा विहरति**—भोग करने लगे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर अपनी धर्मपत्नी बधुमती के साथ अर्जुनमाली ने पुष्पो का सग्रह किया, उसमे जो पुष्प प्रधान एव श्रेष्ठ थे, उनको लेकर वह मुद्गरपाणि यक्ष

के मन्दिर की ओर चल पडा। बधुमती भार्या के साथ अर्जुनमाली को आते देखकर मित्रमण्डली के सदस्य आपस मे इस प्रकार कहने लगे।

मित्रो! अर्जुनमाली अपनी बधुमती पत्नी के साथ इधर आ रहा है सो आज हमे अर्जुनमाली को अवकोटक-बधन से बाधकर उसकी बधुमती पत्नी के साथ यथेच्छ भोग भोगने चाहिए। सभी साथियो ने इस बात को स्वीकार किया और वे सब के सब यक्ष-मन्दिर के दरवाजे के पीछे छुपकर निश्चल, निष्पन्द और मौन भाव से खडे हो गए। अर्जुनमाली ने बधुमती भार्या के साथ यक्ष-मन्दिर मे प्रवेश किया और यक्षमूर्ति के दर्शन और उसे प्रणाम करके पुष्पो द्वारा उसका पूजन करने लगा। पूजासे निवृत्त होकर घुटने और पाव टेककर उसने यक्ष को नमस्कार किया, जब अर्जुनमाली घुटने एव पाव टेक कर यक्ष-मूर्ति को प्रणाम कर रहा था तब वे छ पुरुष बडी शीघ्रता से दरवाजो के पीछे से निकले और उन्होने अर्जुनमाली को पकडकर अवकोटकबधन से बाध दिया। अर्जुनमाली से सर्वथा निश्चिन्त हो जाने पर वे छहो साथी बधुमती मालिन के साथ यथेच्छ विषयभोग करने लगे।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे अर्जनमाली का पुष्पो को चुनकर मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर मे अपनी बधुमती भार्या को साथ लेकर यक्ष-पूजा करने के लिये आना, उसके पूजन में सलग्न होजाने पर राजगृह नगरी के प्रसिद्ध मित्रमण्डल के ६ साथियो द्वारा अवकोटकबधन द्वारा उसका बाधा जाना तथा उसकी बधुमती पत्नी के साथ उनका अनाचार सेवन करना, इन बातो का उल्लेख किया गया है। नीति-शास्त्र मे लिखा है—

"यौवन धनसम्पत्ति, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

यौवन, धन, सम्पत्ति प्रभुत्व तथा अविवेक, यह एक एक बात भी अनर्थों का कारण है फिर जहा ये चारो ही एकत्रित हो जायें, वहा तो कहना ही क्या है? वहा तो सर्वतोमुखी विनाश अवश्यभावी होता है।

राजगृह नगर के प्रसिद्ध मित्रमण्डल का परिचय दिया जा चुका है। इसी मण्डल के छ साथी अर्जुनमाली के पुष्पोद्यान मे पहुचे हुए थे, इन्होने जब बधुमती को देखा तो उन पर वासना का भूत सवार हो गया, परिणाम स्वरूप उन्होंने बधुमती को पकड कर उसके साथ अनाचार का सेवन करना आरभ कर दिया। मन्दिर जैसे पवित्र धार्मिक स्थान में किसी नारी पर बलात्कार करना कितनी

अधम एव जघन्य चेष्टा है ? पर जहा अधी जवानी हो, धन का नशा हो, अधिकारो का घमण्ड हो तथा हानि-लाभ के लिये सोचने की शक्ति का अभाव हो वहा यह सब कुछ हो जाता है।

"अगाइ वराइ"—इन शब्दो का अर्थ पीछे पृष्ठ २८१ पर दिया जा चुका है।

"अवओडयबधणय—अवकोटकबधनम्" गले रज्जु कृत्वा बाहू पृष्ठदेशे आनीय यद् बन्धन तदवकोटकमुच्यते, तादृश बन्धन यस्य स —अर्थात् गले मे रस्सी डालकर उसे पीछे मोडना तथा दोनो भुजाओ को पीठ के पीछे ले जाकर बाँधना **अवकोटक** बन्धन कहलाता है। जन साधारण की भाषा मे इसी को मुश्कें बाधना कहते हैं।

"अवओडय"—इस शब्द के सस्कृत भाषा मे—अवमोटन और अवकोटक ये दोनो ही प्रतिरूप बन सकते हैं।

"भोग-भोगाइ"—शब्द मे भोग शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है इनमे प्रथम भोग शब्द भोगार्ह—'भोग के योग्य' इस अर्थ का बोधक है तथा दूसरा भोग शब्द 'शब्द-रूप-रस-गध आदि विषय' इस अर्थ का परिचायक है।

"कवाडतरेसु"—कपाटान्तरेषु—यक्षायतनकपाटपृष्ठभागेषु—अर्थात् यक्ष के मन्दिर के कपाटो—दरवाजो के पिछले भागो मे। इस शब्द से प्रकट होता है कि यक्ष का मन्दिर बडा विशाल था और उसके दरवाजे इतने विशाल थे कि उनके पीछे छ आदमी छिप कर बैठ गये। इसके अतिरिक्त इससे यह भी पता चलता है कि अर्जुनमाली का पुष्पोद्यान और यक्ष-मन्दिर सभी के लिये खुले थे, उनमे किसी के आने जाने पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबध नही था।

"निच्चला, निप्फदा, तुसिणीया, पच्छण्णा—निश्चला शरीरव्यापाररहिता, निष्पन्दा स्पन्दनरहिता अवरुद्धश्वासोच्छ्वासा, तूष्णीका. मौना, प्रच्छन्ना कपाटान्तर्हिता। यहा निश्चल, निष्पद, तूष्णीक और प्रच्छन्न, ये चार शब्द हैं। शरीर के व्यापार से रहित को निश्चल, कम्पन से रहित को निष्पन्द, मौन रहनेवाले व्यक्ति को तूष्णीक और छिपे हुए को प्रच्छन्न कहा जाता है। तो इन छ गोष्ठी-पुरुषो ने अपने आप को ऐसा बना रखा था मानो मन्दिर मे हैं ही नही।

"आलोए"—आलोकयन्—मुद्गरपाणि यक्ष पश्यन्—अर्थात् यक्ष को देखते ही। अर्जुन माली जब यक्ष-मन्दिर मे गया तो अपने आराध्य यक्ष को देखते ही उसके चरणो मे अपना मस्तक झुका दिया। इस से अर्जुन माली की यक्ष के प्रति अगाध निष्ठा एव श्रद्धा की अभिव्यक्ति हो रही है।

'दवदवस्स"—द्रुतद्रुतेन, अतित्वरया गत्या, अर्थात् 'दवदव' शब्द का प्रयोग अत्यधिक शीघ्रता-पूर्ण गति के लिये किया जाता है। जब अर्जुन माली अपने इष्टदेव की पूजा करके तथा घुटने टेक कर उसे प्रणाम कर रहा था उस समय दरवाजो के पीछे छुपे हुए छहो पुरुष बडी शीघ्र गति से निकले। उन्होने अर्जुन माली को मुश्कें बांध दी और बन्धुमती को पकड कर कुकृत्य मे प्रवृत्त हो गए।

यहा पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि उक्त घटना से पूर्व अर्जुनमाली की बन्धुमती मालिन का मित्र-मडल के पुरुषो के साथ कोई उचित या अनुचित सम्बन्ध नही था, यह तो जब वह

पुष्पोद्यान से यक्ष मन्दिर की ओर आ रही थी, उस समय उसे देख कर ही उन गोष्ठी पुरुषो के हृदय मे उस के प्रति दुष्ट भाव उत्पन्न हुआ। इस कथानक से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि नगरो से बाहिर निर्जन प्रदेशो मे स्त्रियो का भ्रमण करना ठीक नही होता। वहा अनेक प्रकार के उपद्रवो की सम्भावना रहती है, अत निर्जन प्रदेश मे स्त्रियो को साथ ले कर जाना अनेकविध आपदाओ को निमन्त्रण देना है।

प्रस्तुत मे लिखा है कि अर्जुन माली की धर्मपत्नी बधुमती के सतीत्व पर ६ पुरुषो ने आक्रमण कर दिया। इस के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते हैं —

मूल—तए ण तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए ४ समुप्पण्णे। एवं खलु अह बालप्पभिति चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव कप्पेमाणे विहरामि। त जइ ण मोग्गरपाणी जक्खे इह सनिहिए होते से ण किं मम एयारूव आवइ पावेज्जमाण पासते? त नत्थि ण मोग्गरपाणी जक्खे इह सनिहिए। सुव्वत्त त एस कट्ठे। तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरय अणुपविसति, अणुपविसित्ता तडतडस्स बधाइ छिदइ, त पलसहस्सनिप्फण्ण अयोमय मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएइ। तए ण अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेण अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरंतेण कल्लाकल्लि छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ। रायगिहे णयरे सिघाडग जाव महापहपहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ ४—

एव खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे णयरे बहिया छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ।

छाया—ततस्तस्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य अयमाध्यात्मिक ४ समुत्पन्न—एव खलु अह बालप्रभृति चैव मुद्गरपाणेर्भगवत कल्याकल्यि (प्रतिदिन) यावत् वृत्ति कल्पमान विहरामि। तद्यदि खलु मुद्गरपाणियक्ष इह सन्निहितो भवेत्, स किं मामेतद् रूपामापत्ति प्राप्नुवन्त पश्येत्? तस्माद् नास्ति मुद्गरपाणिर्यक्ष इह सन्निहित। सुव्यक्त तदेतत् काष्ठम्। तत स मुद्गरपाणिर्यक्ष, अर्जुनकस्य मालाकारस्य इममेतद्रूपमाध्यात्मिक यावद् विज्ञाय अर्जुनकस्य मालाकारस्य शरीरकमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य तड-तड इति शब्देन बन्धनानि छिनत्ति, छित्त्वा त पलसहस्र-निष्पन्नमयोमुद्गर गृह्णाति, गृहीत्वा तान् स्त्रीसप्तान् पुरुषान् हन्ति, तत सोऽर्जुनको मालाकार मुद्गरपाणिना यक्षेण अन्वाविष्ट (अधिष्ठित) सन् राजगृहस्य नगरस्य परिपर्यन्ते कल्याकल्यि षट् स्त्रीसप्तान् पुरुषान् घातयन् विहरति। राजगृहे नगरे शृ गाटकयावद्महा-पथ-पथेषु बहुजनोऽन्योऽन्यस्य एवमाख्याति-४—

एव खलु देवानुप्रिया ! अर्जु नको मालाकार' मुद्गरपाणिना अन्वाविष्ट सन् राजगृहाद् नगराद् बहि षट् स्त्रीसप्तमान् पुरुषान् घातयन् विहरति ।

पदार्थ—**तए ण**—उस के अनन्तर, **तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स**—उस अर्जुन माली के, **अयमज्झत्थिए**—यह आध्यात्मिक आत्मगत विचार, **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ, ४—इस अक से, १ **कप्पिए**—कल्पित हृदय मे उठनेवाली अनेकविध कल्पनायें, **चिंतिए**—चिंतित—बार बार किया गया चिंतन, **पत्थिए**—प्रार्थित—मूल कारण को ढूढने की जिज्ञासा का पुन पुन होना, **मणोगए**—मनोगत—वह विचार जिसको अभी प्रकट नही किया गया, **सकप्पे**—सकल्प—सामान्य विचार, इनका ग्रहण होता है, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **अह**—मैं, **बालप्पभिंति चेव**—बचपन से ले कर ही, **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि, **भगवओ**—भगवान इष्टदेव की, **कल्लाकल्लि**—प्रतिदिन, **जाव**—यावत् पूजा करता आ रहा हू और पूजा करने के अनन्तर, **वित्ति कप्पेमाणे**—पुष्पो की विक्री रूप आजीविका कमाता हुआ, **विहरामि**—विहरण करता हूँ, **त**—सो, **जइ ण**—यदि, **मोग्गरपाणि जक्खे**—मुद्गरपाणि नामक यक्ष, **इह**—यहा पर, **सनिहिए होते**—मूर्ति मे साक्षात् रूप से विद्यमान होते तो, **से किं**—वह क्या, **एया रूव**—इस प्रकार की, **आवइ**—प्रापत्ति मे, **पाविज्जमाण**—प्राप्त हुए को, **पासते**—देखते ? **त**—अत, **मोग्गरपाणि जक्खे**—मुदगरपाणि यक्ष, **इह सनिहिए**—यहा विद्यमान **नत्थि ण**—नही है, **सुव्वत्त त**—अत सुव्यक्त स्पष्ट रूप से, **एस कट्ठे**—यह काष्ठ मात्र है।

तए ण—उसके पश्चात्, **से मोग्गरपाणि जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष, **अज्जुणयस्स**—अर्जुन, **मालागारस्स**—माली का, **अयमेयारूव**—इस प्रकार का, **अज्झत्थिय**—आत्मगत विचार को, **जाव**—यावत्, **वियाणेता**—जान कर, **अज्जुणयस्स मालगारस्स**—अर्जुन माली के, **सरीरय**—शरीर मे, **अणुपविस्सइ**—प्रवेश करता है, **अणुपविसित्ता**—और प्रवेश करके, **तडतडस्स**—तड तड करके, **बधाइ**—बन्धनो को, **छिंदइ**—तोड देता है, फिर, **त पलसहस्स-निप्फण्ण**—हजार पल से रचित उस **अयोमय मोग्गर**—लोहमय मुद्गर को, **गेण्हइ**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **ते इत्थिसत्तमे**—जिनमे सातवी स्त्री है ऐसे उन, **पुरिसे**—छ पुरुषो को, **घाएइ**—मार देता है, **तए ण से अज्जुणए**—उसके बाद, वह अर्जुन, **मालागारे**—माली, **मोग्गरपाणिणा**—मुद्गरपाणि यक्ष से, **अणाइट्ठे समाणे**—देवता के प्रवेश से परवश हुआ, **रायगिहस्स नगरस्स**—राजगृह नगर के, **परिपेरतेण**—बाह्य प्रदेश मे, **कल्लाकल्लि**—प्रतिदिन, **इत्थिसत्तमे**—स्त्री है सातवी जिनमे ऐसे छ **पुरिसे**—छह पुरुषो को, **घाएमाणे विहरइ**—मारता हुआ विचरण कर रहा था, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर मे, **सिंघाडग**—शृ गाटक, सिंघाडे के समान त्रिकोण मार्गो पर, **महापहपहेसु**—सामान्य मार्गो पर, **बहुजणो**—बहुत से व्यक्ति, **अन्नमन्नस्स**—एक दूसरे को, **एवमाइक्खइ**—इस प्रकार कहते हैं कि, **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुषो !, **एव खलु**—इस प्रकार निश्चय ही, **अज्जुणए मालागारे**—अर्जुन माली, **मोग्गरपाणिणा**—मुद्गरपाणि यक्ष के द्वारा, **अण्णाइट्ठे समाणे**—अविष्ट होकर, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर के, **बहिया**—बाहिर, **इत्थिसत्तमे**—स्त्री है सातवी जिनमे ऐसे, **छ पुरिसे**—छह पुरुषो को, **घाएमाणे**—मारता हुआ, **विहरइ**—विहरण कर रहा है।

मूलार्थ—राजगृह नगर की मित्र-मडली के छ पुरुषो द्वारा अपनी धर्मपत्नी बन्धुमती की दुर्दशा होती देखकर अर्जुनमाली के मन मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं बालपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त रहा हू। इसे अपना भगवान मानता आ रहा हू, प्रतिदिन घर से निकल कर पुष्पोद्यान मे पहुचना, वहा से उत्तम और सुन्दर फूल ले कर इसका पूजन करना, इसके अनन्तर बाज़ार मे जाकर पुष्पविक्रय करना, यह मेरा सदा का कार्य रहा है, परन्तु यदि इस मन्दिर मे मुद्गरपाणि यक्ष होता तो क्या इस प्रकार की आपत्ति मे मुझे फसे हुए देख सकता था ? मालूम पडता है कि मुद्गरपाणि नाम का कोई यक्ष नही है, यह केवल काष्ठ ही है।

मुद्गरपाणि यक्ष ने जब अर्जुन माली की आन्तरिक स्थिति को देखा तो उसने उसी समय अर्जुनमाली के शरीर मे प्रवेश किया। यक्ष के प्रविष्ट होते ही अर्जुनमाली के तडाक-तडाक करके सब बन्धन टूट गए और हजार पल के लोहमय मुद्गर को हाथ मे पकड कर उसने उन छहो पुरुषो और सातवी बधुमती को मार डाला। यह सब कुछ होने के अनन्तर मुद्गरपाणि यक्ष से अधिष्ठित परवश हुआ वह अर्जुनमाली प्रतिदिन छ मनुष्य और एक स्त्री इस प्रकार सात प्राणियो को मारता हुआ राजगृह नगर के बाहिर भ्रमण करने लगा। राजगृह नगर के त्रिकोण, चतुष्कोण, चत्वर, महापथ तथा सामान्य मार्गों पर लोग एक दूसरे से कहने लगे—'भद्र पुरुषो ! अर्जुनमाली मे मुद्गर-पाणि यक्ष प्रविष्ट हो गया है और वह राजगृह नगर के बाहिर छ आदमी और एक स्त्री इस प्रकार से वह सात प्राणियो का घात करता हुआ घूम रहा है।

व्याख्या—राजगृह नगर की विख्यात ललित नामक मित्रमण्डली के ६ पुरुषो ने अर्जुन माली को बांधकर उसकी धर्मपत्नी बन्धुमती के साथ अनाचार करना आरम्भ कर दिया, यह सब कुछ देखकर अर्जुनमाली का हृदय रो उठा। मुद्गरपाणि यक्ष के सम्बन्ध मे उसकी जो आस्था थी वह डांवाडोल हो गई।

जो पुरुष दिनरात श्रद्धा तथा आस्था के साथ देवता की पूजा भक्ति करनेवाला हो, फिर उस पर किसी घोर सकट के आजाने पर यदि वह देवता उसकी किसी प्रकार की कोई सहायता नही करता तो उसके लिये वह देवमूर्ति पत्थर या काठ के अतिरिक्त कुछ नही रह जाती। अर्जुनमाली बचपन से ही भगवान समझ कर यक्ष की पूजा किया करता था, किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले वह यक्ष के मन्दिर में उपस्थित होकर उसकी आराधना किया करता था। पर आज उसी मन्दिर मे और उसी यक्षमूर्ति के सन्मुख उसकी पत्नी पर अत्याचार और उसकी शक्ति पर प्रहार

हो रहा है। राजगृह के ६ पुरुष उसकी बधुमती स्त्री के सतीत्व को भग कर रहे हैं तथापि यक्ष की ओर से उसे कोई सहायता प्राप्त नही हो रही, इससे बढकर और दुखद घटना क्या हो सकती है? ऐसी दशा मे उसका निराश होना और मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा को काष्ठमात्र कहना स्वाभाविक ही है।

परन्तु जब उसकी पत्नी पर बलात्कार हो रहा था और यक्ष के प्रति उसके हृदय मे अश्रद्धा जाग रही थी तो अपने परमभक्त अर्जुनमाली की यह दुर्दशा और उसकी आस्था को डावाडोल होते देखकर यक्ष ने तत्काल अर्जुनमाली के शरीर मे प्रवेश किया और उसके बधनो को तोड दिया और अपनी शक्ति से अर्जुनमाली के द्वारा अत्याचारियो को समाप्त करवाकर देव-शक्ति की सत्यता को प्रमाणित कर दिया।

राजगृह नगर के ६ पुरुषो और सातवी अपनी पत्नी को मार देने के अनन्तर भी अर्जुनमाली का क्रोध शान्त नही हुआ। वह मुद्गर लेकर राजगृह नगर के बाहर घूमने लगा। वह प्रतिदिन ६ पुरुष और एक स्त्री को मार देता था। नगर के बाहिर हो रहे इस हत्याकाण्ड को देख व सुनकर नगर-निवासी लोग घबरा गये, सर्वत्र हाहाकार मच गया, नगर के कोने-कोने मे हत्याकाण्ड की चर्चा फैल गई।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अर्जुनमाली ने आततायी ६ पुरुषो को मार दिया वह तो उचित था, परन्तु बेचारी बधुमती का क्या अपराध था? उसको क्यो मार दिया गया?

इसके तीन कारण हो सकते है—अर्जुनमाली ने सोचा बधुमती को इन नीच पुरुषो ने भ्रष्ट कर दिया है, अत ये मेरे योग्य नही रही, इसे रखकर अब क्या करना है, अत इसे भी साथ ही समाप्त कर देना उचित है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अर्जुनमाली को जब उन ६ पुरुषो ने अवकोटक-बधन मे बाध दिया तब उस बधुमती ने अपने पति के पकडे जाने के पश्चात् तथा अपने पकडे जाने पर किसी प्रकार का कोई भी विरोध या कोलाहल नही किया, किन्तु उन व्यभिचारी ६ पुरुषो की इच्छा के अनुकूल ही आचरण करना आरम्भ कर दिया, इस कारण व्यभिचारिणी जानकर उसे भी मार डाला होगा।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि अपनी बधुमती पत्नी के साथ हो रहे बलात्कार को देखकर अर्जुनमाली क्रोध से उत्तेजित होकर इतना विवेकहीन हो गया कि उसने क्रोधावेश मे अपने आपे से बाहिर होकर निर्दोष अपनी पत्नी को भी मार डाला।

"अज्झत्थिए-५"—यहा के ५ अक से **कप्पिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे**—इस पाठ का ग्रहण किया जाता है। इसकी व्याख्या पृ० १०९ पर की जा चुकी है।

"कल्लाकल्लि जाव कप्पेमाणे"—यहा पठित **जाव** पद पीछे पढे गए—**'पच्छिमपिडगाइ गेण्हइ रायमग्गसि वित्ति'** इस पाठ का ससूचक है। इसका अर्थ पीछे पृ० २८८ पर लिखा जा चुका है।

"इह सनिहिते होंते"—**इह सन्निहितो भवेप** का अर्थ है—यहा पर सनिहित—समीपवर्ती अर्थात् विद्यमान होता । अर्जुनमाली अपनी दु खावस्था को देखकर सोचते है कि जिस यक्ष की मैं बचपन से लेकर आज तक पूजा करता आ रहा हू यदि वह यहा पर होता तो वह—**मम एयारूव आवइ-पावेज्जमाण पासते ?—मा एतद् रूपामापत्ति प्राप्नुवन्त पश्येत्"**—मेरी इस सकटापन्न अवस्था को देखता ? उत्तर स्पष्ट है कि कभी नही । अर्जुनमाली के कहने का भाव यह है कि आराध्यदेव का आराधक को सकटाग्रस्त देखकर मौन रहना असम्भव है, वह अपने आराधक की अवश्य सहायता करता है ।

"सुव्वत्त ते एस कट्ठे"—**सुव्यक्त स्फुट एष यक्ष प्रतिमारूप काष्ठ दारु तन्मयत्वाद्देवताशून्यत्वे-नाकिञ्चित्करत्वादिति**—अर्थात् यह स्पष्ट है इसमे सन्देहवाली कोई बात नही है कि प्रतिमारूप यह यक्ष केवल काष्ठ ही है । देवत्व शक्ति का इसमे सवथा अभाव है और इसीलिये यह सब कुछ करने मे सर्वथा असमर्थ है ।

"अज्झत्थिय जाव वियाणेत्ता"—यहा पठित जाव पद प्रस्तुत सूत्र के ही एव **"खलु अह बालप्प-भिंत्ति चेव—त एस कट्ठे"** इस पाठ का ससूचक है ।

"तडतडस्स"—यहा पठित तडतड शब्द उस ध्वनि का ससूचक है जो अर्जुनमाली के शरीर मे मुद्गरपाणि यक्ष के प्रविष्ट होने पर बन्धनो के टूटते समय हुई थी ।

"पल-सहस्स-णिप्फण्ण"—**पलसहस्रनिष्पन्न, पलाना सहस्र पलसहस्र, पल च आधुनिकरूप्य-पचकपरिमित भवति । षोडशभि पलैरेक शेटको भवति, एकपलसहस्र सार्द्धद्विषष्टिशेटकपरि-मित भवति । तेन पलसहस्रेण निष्पन्न—निर्मितम्**—अर्थात् आजकल के पाच रुपयो के प्रमाण जितना एक पल होता है, १६ पलो का एक सेर होता है, इस तरह १००० पल के साढे ६२ सेर बनते हैं । इन से बने हुए को पलसहस्र-निष्पन्न कहते है ।

"इत्थिसत्तमे पुरिसे"—**स्त्रीसप्तमान् पुरुषान् । स्त्री सप्त सख्याया पूरणी येषा तान् स्त्री-सप्तमान् पुरुषान् इदमत्रहार्दम्, षड् गौष्ठिकपुरुषान् एका बन्धुमती स्त्रिय च, एव स्त्रीसप्तमान् पुरुषान्**—अर्थात् जहाँ स्त्री सात की सख्या को पूर्ण करनेवाली हो उसे "स्त्रीसप्तम" कहते हैं । यह पुरुष का विशेषण है । इस तरह स्त्री है सातवी जिन मे ऐसे ६ पुरुष यह अर्थ सम्पन्न होता है ।

"अण्णाइट्ठे समाणे"—**अन्वाविष्ट सन्,** यहा प्रयुक्त अन्वाविष्ट शब्द का अर्थ है—देवता के प्रवेश के कारण परवश ।

प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह पता चलता है कि देवपूजा मे बडी शक्ति है और वह पुजारी की कामना को पूरी करती है । ऐसी दशा मे प्रश्न उपस्थित होता है कि स्थानकवासी जैन-परम्परा मे मूर्तिपूजा का विरोध क्यो किया जाता है ? प्रश्न विचारणीय है ।

उत्तर मे निवेदन है कि जैन-धर्म निवृत्ति-प्रधान धर्म है, वह आध्यात्मिकता की प्राप्ति का ही ससार को सदेश देता है । आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम लक्ष्य परम साध्य मोक्ष को प्राप्त करना

है। ससार की मोह ममता उसके लिये वन्धन रूप होती है, उसे वह अपनी प्रगति मे वाधक समझना है। जन्म-मरण वढानेवाली सभी प्रवृत्तिया उसके लिये त्याज्य एव हेय होती हैं। वह सदा उन से दूर रहता है। देवी देवताओ की पूजा, मढी-मसानी आदि की उपासना सासारिकता का सम्वर्धन करती है, इसीलिये जैनधर्म देवी-देवता मढी-मसानी आदि की पूजा पर वल नही देता, आध्यात्मिक दृष्टि से उसका विरोध करता है।

शास्त्र कहता है कि धन-जन परिवार आदि की लालसा मोह को जन्म देती है, मोह का सम्वर्धन करती है। मोह से ससार की वृद्धि होती है। ससार की वृद्धि का अर्थ है—जन्म, मरण रूप दु खो का वढ जाना। मुमुक्षु प्राणी को जन्म-मरण की वृद्धि कभी इष्ट नही हो सकती। वह तो आत्मा को मोह-माया की वेडियो मे जकडनेवाली प्रत्येक प्रवृत्ति से दूर भागता है, कोई भी ऐसा काम नही करता जो उसकी आत्मा को मोक्ष से दूर ले जाए। इसीलिये आध्यात्मिक दृष्टि से मढी-मसानी को पूजा मोह-रूप एव मोह-वर्धक होने से त्याज्य मानी जाती है।

यह सत्य है कि शुभाशुभ कर्म-फल की प्राप्ति मे अनेको निमित्त होते हैं—उनमे एक देव भी है। देव की निमित्तता के शास्त्रो मे अनेको उदाहरण मिलते है। कल्पसूत्र के अनुसार हरिनैगमेषी देव ने गर्भस्थ भगवान महावीर को देवानन्दा की कुक्षि से निकाल कर महारानी त्रिशला के गर्भ मे पहुचाया था। अन्तगडसूत्र का कहना है कि देव ने सेठानी सुलसा की सन्तति को माता देवकी के यहा, माता देवकी की सन्तति को सेठानी सुलसा के यहाँ पहुँचाया। श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र मे लिखा है कि राजा श्रेणिक के प्रधान मत्री श्री अभयकुमार की मित्रदेव ने अकाल मे मेघ वना कर मेघ कुमार की माता धारिणी का दोहदपूर्ण किया था। सगम देव भगवान महावीर को लगातार ६ महीने कष्ट देता रहा। ऐसे अन्य भी अनेको उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे देव की कर्मफलगत निमित्तता सुचारु रूपेण स्पष्ट होती है। देव को कर्मफल मे निमित्त मान कर यदि कोई देवपूजा करता है तो भी उसका आध्यात्मिक दृष्टि से कोई मूल्य नही है, क्योकि देवपूजा—साँसारिक मोह-ममता को वढाती है, उसका पोषण करती है, अत मोक्ष का साधक देवपूजा को मोह सवर्धिका मान कर उससे दूर ही रहता है।

प्रस्तुत सुत्र मे लिखा है कि यक्ष के प्रविष्ट होने से परवश हुए अर्जुनमाली के द्वारा होने वाले हत्याकाण्ड की राजगृह नगर के कोने-कोने मे चर्चा फैल गई। इसके अनन्तर क्या हुआ उसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं —

मूल—तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

एग खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ। त मा ण तुब्भे केइ तणस्स वा, कट्ठस्स वा, पाणियस्स वा पुप्फफलाण वा अट्ठाए सइर णिगच्छतु, मा ण तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ, त्ति कट्टु दोच्चपि तच्चपि घोसण घोसेह, घोसित्ता

खिप्पामेव ममेय पच्चप्पिणह । तए ण ते कोडुबिय-पुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

छाया—तत स श्रेणिको राजा अस्या कथाया लब्धार्थ सन् कौटुम्बिकान् पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—

एव खलु देवानुप्रिया ! अर्जुनको मालाकारो यावत् विहरति । तस्माद् मा यूय कोऽपि तृणस्य वा काष्ठस्य वा पानीयस्य वा, पुष्पफलाना वार्थाय स्वैर निर्गच्छतु । मा तस्य शरीरस्य व्यापत्तिर्भविष्यति । इति कृत्वा द्विवार त्रिवारमपि घोषणा घोषयत, घोषयित्वा क्षिप्रमेव मा प्रत्यर्पयत । ततस्ते कौटुम्बिका पुरुषा यावत् प्रत्यर्पयन्ति ।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अन्तर, **से सेणिए राया**—वह श्रेणिक राजा, **इमीसे कहाए**—इस कथा (बात) से, **लद्धट्ठे समाणे**—अवगत होने पर, **कोडुबियपुरसे**—सेवक पुरुषो को, **सद्दावेइ**—बुलाते हैं, **सद्दावित्ता**—बुलाकर, **एव वयासी**—इस प्रकार करने लगे, **एव खलु**—इस प्रकार (तुम्हे भी ज्ञात होगा), **देवाणुप्पिया** !—हे भद्र पुरुषो !, **अज्जुणए मालागारे**—अर्जुनमाली, **जाव**—यावत्—प्रतिदिन सात प्राणियो को, **घाएमाणे विहरइ**—मारता हुआ भ्रमण कर रहा है, **त मा तुब्भे केइ**—इसलिए (यह घोषणा कर दो कि नगर निवासियो) मत तुम मे से कोई भी, **कट्ठस्स वा तणस्स वा**—काठ लकडी अथवा-तृण-घास फूस, **पाणियस्स वा पुप्फफलाण वा**—अथवा जल-पानी एव फल-फूल के, **अट्ठाए सइर**—वास्ते यथेच्छ, **णिग्गच्छतु**—नगर से बाहिर निकले, इससे, **तस्स सरीरस्स**—उसके शरीर को, **वावत्ती मा ण भविस्सइ**—कष्ट नही होगा । **त्ति कट्टु दोच्चपि तच्चपि**—ऐसा कह कर दो बार, तीन बार, **घोसणय**—घोषणा को, **घोसेह**—प्रचारित करो, **घोसित्ता**—घोषणा करके, **खिप्पामेव**—शीघ्र ही, **ममेय पच्चप्पिणह**—मुझे इसकी सूचना दो, **तए ण**—उसके अनन्तर, **ते कोडुबियपुरिसा**—वे सेवक पुरुष, **जाव**—यावत्—नगर मे सर्वत्र घोषणा करने के अनन्तर **पच्चप्पिणन्ति**—महाराज को सूचना दे देते हैं ।

मूलार्थ—यक्ष-प्रवेश के कारण परवश अर्जुनमालो नगर से बाहिर लोगो की हत्या कर रहा है, इस वृत्तान्त का पता लगते हो नगर-नरेश श्रेणिक अपने राज-सेवको को बुलाते हैं और उन्हें आदेश देते हैं कि भद्रपुरुषो ! (यह सर्वत्र घोषणा कर दो कि) नगर के बाहिर अर्जुन माली लोगो की हत्या कर रहा है, इसलिये लकडी, तृण, पानी फूल तथा फलो के लिये तुम मे से कोई भी व्यक्ति नगर के बाहर मत जाये । ऐसा न हो कि बाहिर जाने से किसी के शरीर को कोई हानि पहुच जाये । यह घोषणा दो बार, तीन बार करदो ताकि कोई इस सूचना से अज्ञात न रह जाये । तथा मेरी इस आज्ञा का पालन करके मुझे इस की सूचना दो । महाराज श्रेणिक की आज्ञा के अनुसार राज-सेवको ने नगर मे घोषणा करके उसकी सूचना उनको दी ।

व्याख्या—जैन-शास्त्रो की मान्यता के अनुसार अनेक विध-शक्तियो मे दैवी-शक्ति का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। अपने को छुपा लेना, किसी दूसरे व्यक्ति मे प्रवेश कर जाना, अपने शरीर को बहुत छोटा बना लेना, छोटे शरीर को बहुत बडा बना लेना आदि ऐसी अनेको शक्तिया हैं जो दैवी-शक्तियो के द्वारा उपलब्ध होती हैं। दैवी-शक्ति के मनुष्य के सामने बडी से बडी भौतिक शक्ति भी कुण्ठित हो जाती है। प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित कथानक इस सत्य का पूर्णतया समर्थक है। राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक के पास सैनिक बल की कोई कमी नही थी, अपने युग के वे शक्तिशाली शासक माने जाते थे, तथापि वे इस सैनिक शक्ति से यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का दमन न कर सके। अत सैनिक शक्ति का प्रयोग न करके उन्होने नगर-निवासियो का नगर से बाहिर जाना बद कर दिया। मनुष्य की भौतिक शक्ति ने दैवी शक्ति के आगे मस्तक झुका दिया।

यह सत्य है कि मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति देव-जगत् को सदा-सर्वदा नतमस्तक करती आई है, परन्तु भौतिक शक्ति की दृष्टि से देव सदा ही मनुष्य से ऊपर रहा है।

उत्तराध्ययन सूत्र के १२वे अध्ययन मे लिखा है कि देव-शक्ति ने तप की सजीव मूर्ति हरि-केशीबल जी मुनि पर आक्रमण करने वाले ब्राह्मण छात्रो को नीचे गिरा कर उनकी उदण्डता के लिये उनको दण्ड दिया। श्री भगवती सूत्र कहता है कि महाराजा कूणिक की सहायता ने विपक्षियो के अपार सैनिक दल को नष्ट भ्रष्ट-कर दिया। इस प्रकार के उदाहरण शास्त्रो मे यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं जो दैवी शक्ति का प्राबल्य प्रमाणित करते हैं। प्रस्तुत कथानक भी दैवी शक्ति की इस प्रबलता एव महत्ता को अभिव्यक्त कर रहा है।

दैवी शक्ति की इस महत्ता को श्रेणिक नरेश खूब समझते थे। यही कारण है कि अर्जुन माली मे मुद्गरपाणि यक्ष की शक्ति को काम करते देख कर नगर की जनता को उसके समीप न जाने देने की घोषणा करा कर महाराजा श्रेणिक ने जनता की भलाई के लिये एक अच्छी नीति का अनुसरण किया। वास्तव मे वही नीति सराहनीय एव श्लाघनीय होती है जिसमे प्रजा का हित सुरक्षित हो और उसे किसी भी प्रकार की पारिवारिक आर्थिक तथा सामाजिक क्षति न उठानी पडे।

'मालागारे जाव घाएमाणे"—यहा पठित **जाव** पद **मोग्गरपाणिणा जक्खेण अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नगरस्स परिपेरतेण कल्लाकल्लि छ इत्थिसत्तमे पुरिसे**—इन पदो का सूचक है। इनका अर्थ पिछले सूत्र मे लिखा जा चुका है।

"सइर णिग्गच्छतु'—स्वैर—यथेष्ट निर्यातु, अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार जाओ। भाव यह है कि महाराजा श्रेणिक ने नगरनिवासियो को यह सूचना दी कि नगर के बाहिर यक्षाविष्ट हुआ अर्जुन माली घूम रहा है। वह जिस को देखता है उसी को मुद्गर मार कर समाप्त कर देता है इसलिये कोई भी व्यक्ति लकडियो, घासफूस, पानी और फलो एव फूलो के लिये अपनी इच्छानुसार नगर से बाहिर न जायें।

"वावत्ती—"व्यापत्ति"—यहा प्रयुक्त व्यापत्ति शब्द का अर्थ है—कष्ट। महाराज श्रेणिक ने नगरनिवासियो को सावधान कर दिया कि नगर से बाहिर जाने से अर्जुनमाली का मुद्गर शारी-रिक कष्ट पहुँचा सकता है, अत इस कष्ट से बचने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि नगर से बाहिर

कोई न जाये। शास्त्रकारो ने शरीर को धर्माराधन का आदि साधन बताया है। इसी अभिप्राय से श्रेणिक नरेश ने शरीर-सुरक्षा का यह सरल उपाय किया था।

"कोडुबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणन्ति"—यहा पठित **जाव** पद 'कौटुम्बिक पुरुषो ने राजगृह नगर के सभी ठिकानों पर घोषणा कर दी कि श्रेणिक महाराज आदेश देते हैं कि मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट हुआ अर्जुनमाली लोगो का घात करता फिर रहा है, अत नगर का कोई भी व्यक्ति काष्ठ आदि के लिये नगर से बाहिर न जाये। यह घोषणा करने के अनन्तर कौटुम्बिक पुरुषो ने वापिस आकर महाराज श्रेणिक को सूचना दे दी,' इन भावो का परिचायक है।

राजा श्रेणिक की आज्ञा के अनुसार राज-सेवको ने नगर मे घोषणा कर दी। इस के अनन्तर क्या हुआ ? उसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—तत्थ ण रायगिहे णयरे सुदसणे नाम सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे ०। तए ण से सुदसणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

छाया—**तत्र खलु राजगृहे नगरे सुदर्शनो नाम श्रेष्ठी परिवसति। आढ्यस्तत खलु स सुदर्शन श्रमणोपासकश्चाप्यासीत्। अधिगतजीवाजीव यावत् विहरति।**

पदार्थ—**तत्थ रायगिहे णयरे**—उस राजगृह नामक नगर मे, **सुदंसणे नाम सेट्ठी परिवसइ**—सुदर्शन नामक सेठ रहता था, **अड्ढे**—आढ्य अर्थात् अत्यन्त धनवान था, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे समणोवासए**—वह सुदर्शन श्रमणोपासक जैन गृहस्थ, **य**—और, **अभिगयजीवाजीवे**—जीव एव अजीव का ज्ञाता, **अवि**—भी, **होत्था**—था, **जाव**—यावत्—श्रमणोपासक की मर्यादा का पालन करता हुआ, **विहरइ**—जीवन व्यतीत कर रहा था।

मूलार्थ—राजगृह नगर मे सुदर्शन नाम का एक सेठ निवास करता था, वह बडा धनवान, जन-गण-मान्य, प्रतिष्ठित तथा श्रमणोपासक था। उसे जीव-अजीव का सम्यग् बोध था। यह श्रावक-धर्म की मर्यादा का सम्यक् पालन करता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा था।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे राजगृह नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी श्रीसुदर्शन का परिचय कराया गया है। सुदशन सेठ जैन जगत् में दो प्रसिद्ध हैं—एक वे जिन्होने अपनी सदाचार की शक्ति से सूली को सिंहासन बना दिया था। दूसरे वे जिन्होने अर्जुन माली के शरीर मे प्रविष्ट मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी आध्यात्मिक साधना से निस्तेज बना दिया था। प्रस्तुत सूत्र मे जिस सेठ सुदर्शन का वर्णन किया गया है ये दूसरे अर्जुन माली के शरीर मे प्रविष्ट यक्ष को पराजित करानेवाले सेठ सुदर्शन हैं। सूत्रकार कहते हैं कि ये सेठ सुदर्शन राजगृह नगर के एक जाने-माने धनी व्यक्ति थे। पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। इन्हे सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से ही देखा जाता था।

सेठ सुदर्शन श्रमणोपासक थे, श्रमण-जगत् की उपासना करने मे इनको बडा आनन्द आता था। जहाँ श्रमणो की सेवा करने का यह सौभाग्य प्राप्त किया करते थे, वहा ये उनसे तात्त्विक ज्ञान भी ग्रहण किया करते थे। यही कारण है कि इन को जीव-अजीव आदि तत्वो की पूरी-पूरी जानकारी थी। इस तरह सेठ सुदर्शन जहा सासारिक सम्पदा के स्वामी थे वहा वे आध्यात्मिक गुण-सम्पत्ति के भी सजीव भडार थे, इनमे लक्ष्मी और सरस्वती का मानो मधुर सगम हो रहा था।

"अड्ढे"०—यहा के बिन्दु से—**वित्ते वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णे बहु-जणस्स अपरिभूए"** इस पाठ को ग्रहण करने की ओर सकेत कराया गया है। इस का अर्थ पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर लिखा जा चुका है।

समणोवासए—श्रमणोपासक —का अर्थ है—श्रमण का उपासक। जो धर्म-श्रवण की इच्छा से साधुओ के पास बैठता है वह उपासक कहलाता है। जैनशास्त्रो मे उपासक—द्रव्य, तदर्थ, मोह और भाव ये चार प्रकार के बताए गए हैं।

जिसका शरीर उपासक होने के योग्य है, जिसने उपासक—भाव के आयुष्य कर्म का बध कर लिया है, तथा जिस के नाम-गोत्रादि कर्म उपासक भाव के सन्मुख आ गए हैं, वह **द्रव्योपासक** है।

जो सचित्ताचित्त और मिश्रित पदार्थों के मिलने की इच्छा रखता है, उनकी प्राप्ति के लिये उपासना (प्रयत्न विशेष) करता है, वह **तदर्थोपासक** है।

अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये युवती युवक की और युवक युवती की उपासना-सेवा कर, अन्धभाव से परस्पर एक दूसरे की आज्ञा का पालन करें तथा मिथ्यात्व की उत्तेजना आदि करें उन्हे **मोहोपासक** कहते है।

जो सम्यग् दृष्टि जीव शुभ परिणामो से ज्ञान, दर्शन और चारित्र के उपासक श्रमण-साधु की उपासना भक्ति करता है, उसे **भावोपासक** कहा गया है। यही भावोपासक श्रमणोपासक कहलाता है। भावोपासक और श्रमणोपासक ये दोनो शब्द समानार्थक ही समझने चाहिये। श्रमणोपासक की गुण-सम्पदा का वर्णन "श्रीसूत्रकृताग", "श्री भगवती" और "श्री औपपातिक" आदि सूत्रो मे विस्तार-पूर्वक किया गया है।

"अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ"—यहा पठित जाव पद से **उवलद्धपुण्णपावे, आसवसवर-निज्जरकिरियाहिगरणबधमोक्खकुसले, असहेज्जदेवतासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिस गरुलगधव्वमहोरगाइएहिं, देवगणेहिं णिग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गथे पावयणे निस्स-किए निक्कखिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिज्ज पेमाणुरागरत्ते। अयमाउसो! निग्गथे पावयणे अट्ठे, अय परमट्ठे सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवगुय-दुवारे, चियत्ततेउरघरप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोपवासेहिं चाउद्दस्सट्ठमुद्दिट्ठ पुण्णमासिणीसु पडिपुण्ण पोसह सम्म अणुपालेमाणे समाणे निग्गथे फासुएसणिज्जेण असणपाणखाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गहकबलपायपुच्छणेण पीढफलगसिज्जासथारएण ओसहभेसज्जेण य पडिलाभे-**

माणे अहापरिग्गहिएहि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणे"— इन पदो का ग्रहण करना होता है। इन का अर्थ इस प्रकार है—

राजगृह नगर के सेठ सुदर्शन जीव-अजीव के अतिरिक्त पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव, सवर, निर्जरा, क्रिया (कर्मबध की कारण भूत पच्चीस प्रकार की क्रिया चेष्टा), अधिकरण (कर्मबध का साधन-उपकरण या शस्त्र), बध और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञाता थे। किसी भी कार्य मे वह दूसरो की सहायता की आशा नही रखते थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे इतने दृढ थे कि देव, असुर, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किपुरुष, गरुड, गधर्व, महोरगादि देव विशेष भी उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित नही कर सकते थे। उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन मे शका, काक्षा (इच्छा) और विचिकित्सा (फल मे सन्देह) नही थी। उन्होने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था। वे शास्त्र का अर्थ-रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होने शास्त्र के मन्देह-जनक स्थलो को पूछ लिया था, उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था। उनकी हड्डिया और मज्जा सर्वज्ञ देव के अनुराग से अनुरक्त हो रही थी। निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर उनका अट्ट प्रेम था। हे आयुष्मन्! वे सोचा करते थे कि वह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है परम सत्य है, इसके बिना अन्य सब अनर्थ (असत्यरूप) है। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊची रहती थी, उनका द्वार सब के लिये खुला रहता था। वे जिसके घर मे या अन्त पुर मे जाते उसमे प्रीति उत्पन्न किया करते थे। वे शीलव्रत (पाचो अणुव्रत) गुणव्रत विरमण (रागादि से निवृत्त प्रत्याख्यान), पौषध, उपवास, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषध-व्रत किया करते थे। श्रमणो-निर्ग्रन्थो को निर्दोष ग्राह्य अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, सस्तार, औषध और भेषज आदि देते हुए, महान लाभ प्राप्त करते थे, तथा यथागृहीत तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित—वासित करते हुए विहरण कर रहे थे।

प्रस्तुत सूत्र में राजगृह नगर के मान्य सेठ सुदर्शन का जीवन परिचय कराया गया है। अब सूत्रकार इनसे सम्बन्धित आगे के प्रकरण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे समोसढे जाव विहरइ। तए ण रायगिहे णयरे सिघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव किमग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए? एव तस्स सुदसणस्स बहुजणस्स अतिए एय-मट्ठ सोच्चा, निसम्म अय अज्झत्थिए ५ समुप्पण्णे—एव खलु समणे भगव महावीरे जाव विहरइ, त गच्छामि ण समण भगव महावीर वदामि णमसामि। एव सपेहेइ, सपे-हित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव एव वयासी—

एव खलु अम्मताओ ! समाणे भगव महावीरे जाव विहरइ, त गच्छामि ण भगवं महावीर वदामि णमसामि जाव पज्जुवासामि ।

तए ण त सुदसण सेट्ठि अम्मापितरो एव वयासी–एव खलु पुत्ता ! अज्जुणे मालागारे जाव घायमाणे विहरइ । त मा ण तुम पुत्ता ! समण भगवं महावीर वदए णिग्गच्छाहि, मा ण तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । तुमण्ण इह गए चेव समण भगव महावीर वंदाहि णमसाहि।

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापितर एव वयासी–किण्णं अह अम्मयाओ ! समण भगव महावीरं इहमागय, इह पत्त, इह समोसढं इहगते चेव वदिस्सामि ? णमसिस्सामि ? त गच्छामि ! त अहं वदामि जाव पज्जुवासामि ।

तए ण त सुदसण सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो सचायति बहूहिं आघवणाहिं ४ जाव परुवेत्तए ताहे एव वयासी—'अहासुह देवाणुप्पिया !'

तए ण से सुदसणे सेट्ठी अम्मापिइहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइ जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेण रायगिह णयर मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामतेणं जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीर समवसृतो यावद् विहरति । तत राजगृहे नगरे शृङ्गाटक० बहुजनोऽन्योन्यस्मै एवमाख्याति—यावत् किमग पुनर्विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणेन । एव तस्य सुदर्शनस्य बहुजनस्यान्तिके एतमर्थ श्रुत्वा निशम्य अयमाध्यात्मिक ५ समुत्पन्न — एव खलु श्रमणो भगवान् महावीरो यावद् विहरति । तद् गच्छामि श्रमण भगवन्त महावीर वन्दे, नमस्यामि । एव सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीत यावद् एवमवादीत्—

एव खलु अम्बातातौ ! श्रमणो भगवान् महावीरो यावद् विहरति, तद् गच्छामि श्रमण भगवन्त महावीर वन्दे, नमस्यामि यावद् पर्युपासते ।

ततस्त सुदर्शन श्रेष्ठिनमम्बापितरौ एवमवदताम्—एव खलु पुत्र ! अर्जुनो मालाकारो यावद् घातयन् विहरति । तन्मा त्व पुत्र ! श्रमण भगवन्त महावीर वन्दनाय निर्गच्छ । मा तव शरीरकस्य व्यापत्तिर्भविष्यति । त्वमिहागते चैव श्रमण भगवन्त महावीर वन्दस्व, नमस्य ।

तत सुदर्शन श्रेष्ठी अम्बापितरौ एवमवदत्-किमहमम्बातातौ ! श्रमण भगवन्त महावीर-मिहागतम्, इह प्राप्तम्, इह समवसृतम् इहगते चैव वन्दिष्ये ? नमस्यिष्यामि ? तद्गच्छामि अहमम्बातातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् श्रमण भगवन्त महावीर वन्दे यावत् पर्युपासते।

ततस्त सुदर्शन श्रेष्ठिनमम्बापितरौ यदा नो शक्नुत बहुभि आख्यापनाभि यावद् प्ररूपयितुम् तदा एवमवदताम्—'यथासुख देवानुप्रिय !'

तत स सुदर्शन श्रेष्ठी अम्बापितृभ्यामभ्यनुज्ञात सन् स्नात शुद्धप्रावेश्यानि यावच्छरीर स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण राजगृह नगर मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य मुद्गरपाणे यक्षस्य यक्षायतनस्य अदूरसामतेन यत्रैव गुणशिलक चैत्य, यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैव प्राधारयत् गमनाय।

पदार्थ—**तेण कालेण तेण समएण**—उस काल एव उस समय, **समणे भगव**—श्रमण (तपस्वी) भगवान्, **महावीरे**—महावीर स्वामी, **समोसढे**—नगर मे पधारे, **जाव**—यावत् गुणशिलक उद्यान मे, **विहरइ**—विहरण करने लगे, **त एण**—उसके अनन्तर, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर मे, **सिघाडग**—शृङ्गाटक अर्थात् त्रिकोण आदि मार्गों पर, **बहुजणो**—बहुत से व्यक्ति, **अन्नमन्नस्स**—एक दूसरे से, **एवमाइक्खइ**—इस प्रकार कहते हैं, **जाव**—यावत् जिनके नाम गोत्र श्रवण से भी महाफल होता है, **किमग पुण**—तो फिर, **विपुलस्स**—विपुल-महान्, **अट्ठस्स**—अर्थ के, **गहणाए**—ग्रहण करने से जो फल प्राप्त होता है, उसका तो कहना ही क्या है ? **एव**—इस प्रकार, **बहुजणस्स**—अनेक पुरुषो के, **अतिए**—पास से, **एय**—इस वृत्तान्त को, **सोच्चा**—सुनकर, **निसम्म**—हृदय मे धारण कर, **तस्स सुदसणस्स**—उस सुदर्शन सेठ के हृदय मे, **अय**—यह, **अज्झत्थिए** ४—आध्यात्मिक, आत्मगत, चार के अक से कल्पित, चिन्तित, मनोगत तथा प्रार्थित सकल्प, **समुप्पण्णे**—उत्पन्न हुए, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **समणे**—श्रमण, **भगव महावीरे**—भगवान महावीर, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—गुण शिलक उद्यान मे विहरण कर रहे हैं, **त**—सो, **गच्छामि ण**—मैं जाता हू, **समण**—श्रमण, **भगव महावीर**—भगवान महावीर को, **वंदामि**—वन्दन करता हू, **णमसामि**—नमस्कार करता हू, **एव सपेहेइ**—इस प्रकार विचार करता है, **सपेहित्ता**—विचार करके, **जेणेव** जहा पर, **अम्मापियरो**—माता-पिता थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—आकर **करयलपरिग्गहिय**—दोनो हाथ जोडकर, **जाव**—यावत्, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगा—

एव खलु—निश्चय ही, **अम्मताओ** !—हे माता-पिता ! **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—महावीर, **जाव**—यावत् गुण शिलक उद्यान मे, **विहरइ**—विहरण कर रहे हैं, **त**—अत, **गच्छामि ण**—मैं जाता हू, **समण**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीर**—महावीर को, **वदामि**—वदना करू, **णमसामि**—नमस्कार करू, **जाव**—यावत्, **पज्जुवासामि**—पर्युपासना अर्थात् सेवा भक्ति करू, **तए ण**—उसके अनन्तर, **त**—उस, **सुदसण सेट्ठि**—सुदर्शन सेठ को, **अम्मापियरो**—माता-पिता, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **पुत्ता !**—हे पुत्र ! **अज्जुणे मालागारे**—अर्जुनमाली, **जाव**—यावत् लोगो का, **घाएमाणे**—घात करता हुआ, **विहरइ**—विहरण कर रहा है, **त**—अत, **पुत्ता !**—हे पुत्र !, **तुम**—तुम, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदए**—वन्दना करने के लिये, **मा ण**—मत, **णिग्गच्छाहि**—निकलो, **तव सरीरस्स**—तेरे शरीर को, **वावत्ती**—कष्ट, **मा ण भविस्सइ**—मत हो, अर्थात् वहा जाने से तेरे शरीर को कष्ट होगा, इसलिये वहा जाने का विचार न करो, **तुम ण**—तुम, **इहगए**—यहा बैठे, **चेव**—ही, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदाहि**—वन्दन करलो, **णमसाहि**—नमस्कार कर लो।

तए ण—उसके अनन्तर, **से सुदसणे सेट्ठी**—वह सुदर्शन सेठ, **अम्मापियर**—माता-पिता को, **एव वयासी**— इस प्रकार कहने लगा—

किण्ण—क्या, **अह**—मैं, **अम्मायो !**—माता-पिता ! **इहमागय**—यहा पधारे हुए, **इहपत्त**—इस नगर को प्राप्त हुए—नगर मे विराजमान हुए, **इह समोसढे**—यहाँ समवसरण लगाए हुए, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **इहगते चेव**—यहा घर मे बैठा हुआ ही, **वदिस्सामि**—वदन करू ? **णमसिस्सामि**—नमस्कार करू ? (ऐसा कभी नही हो सकता), **त**—इसलिये, **अम्मताओ !**—हे माता-पिता !, **अह गच्छामि ण**—मैं जाता हू, परन्तु **तुब्भेहि**—आप लोगो द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—अभ्यनुज्ञात होने पर आज्ञा प्राप्त करने पर, **भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदामि**—वदन करू, **जाव**—यावत् उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उनकी, **पज्जुवासामि**—पर्युपासना—भक्ति करू, **तए ण**—उसके अनन्तर; **अम्मापियरो**—माता-पिता, **जाहे**—जब, **त सुदसण सेट्ठि**—उस सुदर्शन सेठ को, **बहूहि**—अनेको, **आघवणाहि**—वचनो से, **जाव**—यावत् विशिष्ट वचनो से, **परुवित्तए**—समझाने मे, **नो सचायति** समर्थ नहीं हुए, **ताहे**—तब, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र ! **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे सेट्ठी**—उस सुदर्शन सेठ ने, **अम्मापिईहि**—माता-पिता द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त करके, **ण्हाते**—स्नान किया, **सुद्धप्पावेसाइ**—शुद्ध वस्त्रो को धारण किया, **जाव**—यावत्, **सरीरे**—अनेक विध भूषणो से शरीर को अलकृत करके, **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से, **पडिणिक्खमइ**—निकलता है, **पडिणिक्खमित्ता**—घर से निकलकर, **पायविहारचारेण**—पैदल ही, **रायगिह णगर**—राजगृह नगर के, **मज्झमज्झेण**—बीचो बीच, **णिग्गच्छइ**—निकलता है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर, **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि नामक, **जक्खस्स**—यक्ष के, **जक्खाययणस्स** मन्दिर के, **अदूरसामतेणं**—न दूर न अति निकट, **जेणेव**—जहा पर, **गुणसिलए चेतिए**—गुण शिलक नामक उद्यान था, **जेणेव**—जहा पर, **समणे भगव महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर थे, **तेणेव**—वही पर, **पहारेत्थ गमणाए**—उसने जाने का निश्चय किया।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय मे राजगृह नगरके गुणशिलक उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे और तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए

विहरण करने लगे। भगवान के पधार जाने पर राजगृह नगर के त्रिकोण, चत्वर आदि सभी मार्गों पर नगरनिवासी लोग आपस मे कहने लगे—

भद्र पुरुषो ! नगर के बाहिर उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं, जिन के नाम गोत्र का श्रवण करने से भी महाफल होता है, तो फिर उनके दर्शन करने तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है, उसका तो कहना ही क्या है ?

नगर निवासियो मे हो रही उक्त बातो को सुन कर सेठ सुदर्शन ने विचार किया—श्रमण भगवान महावीर नगर के बाहिर गुणशिलक उद्यान मे विराजमान है, तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं, अत मुझे श्रमण भगवान महावीर को वदन एव नमस्कार करने के लिये उनकी सेवा मे जाना उचित है। ऐसा विचार करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन अपने माता-पिता के पास आए, दोनो हाथ जोड कर उनसे कहने लगे—

मात-पिता ! श्रमण भगवान महावीर गुणशिलक उद्यान मे विराजमान हैं, वहा तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे है, अत मै श्रमण भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार तथा उनकी भक्ति करने के लिये उनके पास जाना चाहता हू। आप मुझे आज्ञा दीजिए।

अपने पुत्र सेठ सुदर्शन की बात सुन कर माता-पिता कहने लगे—पुत्र ! नगर के बाहिर अर्जुन माली लोगो का घात करता हुआ भ्रमण कर रहा है, अत पुत्र ! श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करने के लिये मत जाओ। अन्यथा तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा। यहा बैठ कर ही तुम्हे श्रमण भगवान महावीर को वदन एव नमस्कार कर लेना चाहिए।

अपने माता-पिता की यह बात सुन कर सेठ सुदर्शन उनसे कहने लगा—माता-पिता ! क्या मैं यहा पधारे, यहा विराजित तथा यहा आए हुए श्रमण भगवान महावीर को यहा घर मे बैठ कर ही वदन एव नमस्कार करू ? ऐसा कभी नही हो सकता, अत आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं वहा जा कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करू, तथा उनकी सेवा-भक्ति का लाभ उठाऊ।

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **पुत्ता** !—हे पुत्र ! **अज्जुणे मालागारे**—अर्जुनमाली, **जाव**—यावत् लोगो का, **घाएमाणे**—घात करता हुआ, **विहरइ**—विहरण कर रहा है, **त**—अत, **पुत्ता** !—हे पुत्र !, **तुम**—तुम, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदए**—वन्दना करने के लिये, **मा ण**—मत, **णिग्गच्छाहि**—निकलो, **तव सरीरस्स**—तेरे शरीर को, **वावत्ती**—कष्ट, **मा ण भविस्सइ**—मत हो, अर्थात् वहा जाने से तेरे शरीर को कष्ट होगा, इसलिये वहा जाने का विचार न करो, **तुम ण**—तुम, **इहगए**—यहा बैठे, **चेव**—ही, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदाहि**—वन्दन करलो, **णमसाहि**—नमस्कार कर लो।

तए ण—उसके अनन्तर, **से सुदसणे सेट्ठी**—वह सुदर्शन सेठ, **अम्मापियर**—माता-पिता को, **एव वयासी**— इस प्रकार कहने लगा—

किण्ण—क्या, **अह**—मैं, **अम्मायो** !—माता-पिता ! **इहमागय**—यहा पधारे हुए, **इहपत्त**—इस नगर को प्राप्त हुए—नगर मे विराजमान हुए, **इह समोसढे**—यहां समवसरण लगाए हुए, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **इहगते चेव**—यहा घर मे बैठा हुआ ही, **वदिस्सामि**—वदन करू ? **णमसिस्सामि**—नमस्कार करू ? (ऐसा कभी नही हो सकता), **त**—इसलिये, **अम्मताओ** !—हे माता-पिता !, **अह गच्छामि ण**—मैं जाता हू, परन्तु **तुब्भेहिं**—आप लोगो द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—अभ्यनुज्ञात होने पर आज्ञा प्राप्त करने पर, **भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **वदामि**—वदन करू, **जाव**—यावत् उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उनकी, **पज्जुवासामि**—पर्युपासना—भक्ति करू, **तए ण**—उसके अनन्तर; **अम्मापियरो**—माता-पिता, **जाहे**—जब, **त सुदसण सेट्ठि**—उस सुदर्शन सेठ को, **बहूहिं**—अनेको, **आघवणाहिं**—वचनो से, **जाव**—यावत् विशिष्ट वचनो से, **परुवित्तए**—समझाने मे, **नो सचायति** समर्थ नही हुए, **ताहे**—तब, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र ! **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे सेट्ठी**—उस सुदर्शन सेठ ने, **अम्मापिईहिं**—माता-पिता द्वारा, **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त करके, **ण्हाते**—स्नान किया, **सुद्धप्पावेसाइ**—शुद्ध वस्त्रो को धारण किया, **जाव**—यावत्, **सरीरे**—अनेक विध भूषणो से शरीर को अलकृत करके, **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से, **पडिणिक्खमइ**—निकलता है, **पडिणिक्खमित्ता**—घर से निकलकर, **पायविहारचारेण**—पैदल ही, **रायगिह णगर**—राजगृह नगर के, **मज्झमज्झेण**—बीचो बीच, **णिग्गच्छइ**—निकलता है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर, **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि नामक, **जक्खस्स**—यक्ष के, **जक्खाययणस्स** मन्दिर के, **अदूरसामतेण**—न दूर न अति निकट, **जेणेव**—जहा पर, **गुणसिलए चेतिए**—गुण शिलक नामक उद्यान था, **जेणेव**—जहा पर, **समणे भगव महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर थे, **तेणेव**—वही पर, **पहारेत्थ गमणाए**—उसने जाने का निश्चय किया।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय मे राजगृह नगरके गुणशिलक उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे और तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए

विहरण करने लगे। भगवान के पधार जाने पर राजगृह नगर के त्रिकोण, चत्वर आदि सभी मार्गों पर नगरनिवासी लोग आपस मे कहने लगे—

भद्र पुरुषो ! नगर के बाहिर उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर पधारे है, जिन के नाम गोत्र का श्रवण करने से भी महाफल होता है, तो फिर उनके दर्शन करने तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है, उसका तो कहना ही क्या है ?

नगर निवासियो मे हो रही उक्त बातो को सुन कर सेठ सुदर्शन ने विचार किया—श्रमण भगवान महावीर नगर के बाहिर गुणशिलक उद्यान मे विराजमान है, तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं, अत मुझे श्रमण भगवान महावीर को वदन एव नमस्कार करने के लिये उनकी सेवा मे जाना उचित है। ऐसा विचार करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन अपने माता-पिता के पास आए, दोनो हाथ जोड कर उनसे कहने लगे—

मात-पिता ! श्रमण भगवान महावीर गुणशिलक उद्यान मे विराजमान हैं, वहा तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं, अत मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार तथा उनकी भक्ति करने के लिये उनके पास जाना चाहता हू। आप मुझे आज्ञा दीजिए।

अपने पुत्र सेठ सुदर्शन की बात सुन कर माता-पिता कहने लगे—पुत्र ! नगर के बाहिर अर्जुन माली लोगो का घात करता हुआ भ्रमण कर रहा है, अत. पुत्र ! श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करने के लिये मत जाओ। अन्यथा तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा। यहा बैठ कर ही तुम्हे श्रमण भगवान महावीर को वदन एव नमस्कार कर लेना चाहिए।

अपने माता-पिता की यह बात सुन कर सेठ सुदर्शन उनसे कहने लगा—माता-पिता ! क्या मैं यहा पधारे, यहा विराजित तथा यहा आए हुए श्रमण भगवान महावीर को यहा घर मे बैठ कर ही वदन एव नमस्कार करू ? ऐसा कभी नही हो सकता, अत आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं वहा जा कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करू, तथा उनकी सेवा-भक्ति का लाभ उठाऊ।

सेठ सुदर्शन के विचार सुनकर उसके माता-पिता ने उसको खूब समझाया, पर वे मानने को तैयार नही हुए। इस तरह अनेक सामान्य तथा विशिष्ट वचनो द्वारा जब वे सुदर्शन सेठ को समझाने मे असफल रहे, तब उन्होने उस से कह दिया—'भद्र! जैसे तुम्हे सुख हो।'

अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त कर लेने पर सेठ सुदर्शन ने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने, अनेक आभूषणो से शरीर को अलकृत किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर अपने घर से निकल कर पैदल ही राजगृह के मध्यमार्ग से होते हुए उसने मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास जहा गुणशिलक उद्यान था और जहा श्रमण भगवान महावीर थे, वहा जाने का निश्चय किया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे माता-पिता का सम्मान तथा धर्म पर विश्वास इन दो बातो को लेकर प्रकाश डाला गया है। पुत्र को अपने माता-पिता का आदर करना चाहिये, उनका कहना मानना चाहिये, उनसे पूछे विना किसी कार्य को नही करना चाहिये। इस प्रकार माता-पिता का सम्मान सुरक्षित रखने मे ही पुत्र गौरवास्पद बन सकता है। ऐसा पुत्र ही वास्तव मे भाग्यवान एव यशस्वी पुत्र कहला सकता है। राजगृह नगर के सुदर्शन सेठ अपने माता-पिता के ऐसे ही एक यशस्वी एव सुयोग्य पुत्र थे। इन्हे जब पता चला कि नगर के बाहिर गुण शिलक उद्यान मे भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं और वहा तप-सयम की भावना से भावित होते हुए जनता का कल्याण कर रहे हैं, तो उन्होने भगवान के चरणो मे उपस्थित होकर उनको वन्दन-नमस्कार करने का विचार किया। अपने विचार को क्रियात्मक रूप देने के लिये उन्होने सर्व प्रथम अपने माता-पिता से निवेदन किया कि नगर के बाहिर श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं, मेरी इच्छा है कि मैं उनके चरणो मे उपस्थित होकर उनके चरणो मे वन्दन एव नमस्कार करू, पर यह सब कुछ आपकी आज्ञा प्राप्त करके ही करना चाहता हू। अत आप मुझे आज्ञा प्रदान करे, ताकि मैं भगवान को वन्दन करने का अपना सकल्प पूर्ण कर सकूं।

अपने माता-पिता से आज्ञा मिलने पर ही सुदर्शन सेठ का भगवान महवीर को वन्दना एव नमस्कार करने के लिये जाना। उनकी अनुकरणीय पितृ-भक्ति का ही निदर्शन है।

मनुष्य में कितनी धर्म-प्रियता है और कितनी दृढ़ता है, धर्म मे कितना विश्वास है? इस बात की परीक्षा सकट-काल मे ही होती है। इस परीक्षा मे जो खरा उतरता है, वही सच्चा धार्मिक है, ऐसे धार्मिक व्यक्तियो में सेठ सुदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सेठ सुदर्शन ने जब अपने माता-पिता से भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित होने के लिये आज्ञा प्राप्त करने के लिये निवेदन किया था, उस समय उसको राजगृह नगर के बाहिर यक्षाविष्ट अर्जुन माली द्वारा किए जा रहे उपद्रवो का पूर्ण ज्ञान था, उसे यह भी पता था कि नगर-नरेश महाराज श्रेणिक ने नगर-निवासियो को नगर से बाहिर न जाने का आदेश दे रखा है। इन सब बातों के होने

पर भी सेठ सुदर्शन ने भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित होकर उनके वन्दन एव नमस्कार करने का सकल्प किया और इसके लिये उसने अपने माता-पिता से आज्ञा प्रदान करने के लिये सानुरोध विनती की। यह सेठ सुदर्शन की धार्मिक दृढता तथा गुरुजनो के लिये सच्ची निष्ठा का एक जीता जागता उदाहरण है।

"समोसढे जाव विहरइ" यहा पठित जाव पद—**"अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे"** इन पदो का परिचायक है इनका अर्थ है—साधु-वृत्ति के अनुकूल अवग्रह एव उपाश्रय उपलब्ध कर सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए।

"सिघाडग० बहुजणो" यहा का बिंदु—**तिग-चउक्क चच्चर महापहपहेसु"** इस पाठ का बोधक है। शृ गाटक आदि शब्दो का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"एवमक्खाइ जाव" यहा पठित **जाव** पद—राजगृह नगर के लोग कहते हैं कि 'भद्र पुरुषो! भगवान महावीर प्रभु इस नगर के बाहिर पधारे हैं, जिनके नाम व गोत्र के सुनने मात्र से भी महाफल होता है तो उनके दर्शन करने से जो फल होता है उसका तो वर्णन नही किया जा सकता, वह तो अवर्णनीय है।' इन भावो का परिचायक है।

"किमग" यह अव्ययपद है जिसका अर्थ है—'क्या कहे', 'इसमे तो कहने की कुछ बात ही नही हैं।'

"महावीरे जाव विहरइ" यहा का **जाव** पद 'भगवान महावीर की गुण-सम्पदा के वर्णक पाठ तथा साधु-वृत्ति के अनुकूल स्थान प्राप्त करके तप सयम से आत्मा को भावित करते हुए' इन भावो का बोधक है। भगवान महावीर की गुण-सम्पदा का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र मे देखना चाहिये।

"अज्जुणे मालागारे जाव घाएमाणे" यहा पठित जाव पद **"मोग्गरपाणिण जक्खेण अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नगरस्य परिपेरतेण कल्लाकल्लि छ इत्थीसत्तमे पुरिसे"** इन पदो का ससूचक है। इस पाठ का अर्थ पीछे पृष्ठ ३०४ पर लिखा जा चुका है।

तुमण्ण इहगते चेव समण महावीर वदाहि नमसाहि"—अर्थात् तुम यहा अपने घर मे ही श्रमण भगवान महावीर को वदना एव नमस्कार करलो। सूत्रकार के इस उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि उस समय जिन-मन्दिरो का अस्तित्व नही था, यदि उस समय जिन-मन्दिर होते तो सेठ सुदर्शन के माता-पिता उसे "तुम यहां बैठे ही भगवान को वन्दन नमस्कार कर लो" यह कहने की अपेक्षा यह कहते कि हे पुत्र! तुम यही जिन-मन्दिर मे जाकर भगवान को वन्दना नमस्कार करलो। मूर्ति-पूजकों की दृष्टि मे जिन-प्रतिमा जिन भगवान के समान ही समझी जाती है, अत माता-पिता सुदर्शन को जिन-मन्दिर मे जाने के लिये नही कहते, इससे प्रमाणित होता है कि जिन-मन्दिरो की रचना उनके बहुत पीछे की है।

'किण्ण' यह अव्ययपद है। यह प्रश्न और आक्षेप अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सेठ सुदर्शन के माता-पिता ने जब उसे घर मे बैठ कर ही भगवान महावीर को वन्दन एव नमस्कार कर लेने के लिये कहा तब सुदर्शन सेठ आक्षेप-प्रधान प्रश्न की भाषा मे बोलते हुए अपने मातापिता से कहते हैं—

'भगवान महावीर मेरी नगरी मे विराजमान हो और मैं यही घर बैठा उन को वदन कर लू ? यह कैसे हो सकता है ? आप स्वय ही विचार करें, मगलमूर्ति भगवान ने यहा पधारने का अनुग्रह किया हो और मैं यहा बैठा ही उन को नमस्कार करू ? ऐसा कभी नही हो सकता।'

"इहमागय, इह पत्त" तथा **"इह समोसढ"** ये तीनो पद समानार्थक से प्रतीत होते हैं। पर टीकाकार ने इस सम्बन्ध मे कुछ अर्थ-भेद ससूचित किया है जो इस प्रकार है—

"इहआगय",-मित्यादि, इह नगरे आगत प्रत्यासन्नत्वेऽप्येव व्यपदेश स्यात्, अत उच्यते—इह सम्प्राप्त प्राप्तावपि विशेषाभिधानमुच्यते, इह समवसृत धर्म-व्याख्यान प्रवर्तनया व्यवस्थितम् अथवा इह नगरे पुनरिहोद्याने पुनरिह साधूचितावग्रहे इति। टीकाकार कहते हैं कि **इहमागय** का अर्थ है इस नगर मे आए हुए। पर यह तो नगर के पास पहुचने पर भी कहा जा सकता है, अत सूत्रकार ने **इहपत्त** —यह लिखा है। इस का अर्थ है—इस नगर मे पहुँचे हुए। इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये—**इह समोसढे** यह लिखा है। इस का भाव है—धर्म-व्याख्यान मे लगे हुए अथवा—**इहमागय** का अर्थ है—इस नगर मे आए हुए। **इह पत्त** का—इस उद्यान मे आए हुए तथा **इह समोसढ** का अर्थ है—साधुओ के योग्य स्थान पर ठहरे हुए।

"बहूहिं आघवणाहिं जाव परूवित्तए"—बहुभिराख्यापनाभि सामान्यकथनै, जाव पदेन— —पण्णवणाहिं प्रज्ञापनाभि —विशेषत कथनै, परूवणाहिं प्ररूपणाभि —युक्तिप्रयुक्ति रूपाभि आघवित्तए—आख्यापयितु सामान्यतया बोधयितु, पण्णवित्तए—प्रज्ञापयितु विशेषतो बोधयितु, परूवित्तए-प्ररूपयितु युक्तिप्रयुक्तिभि प्रतिबोधयितु —अर्थात्—आख्यापना शब्द सामान्य कथन को कहते हैं और **जाव** पद से **पण्णवणाहिं** आदि पदो का ग्रहण करना अभीष्ट है। प्रज्ञापना शब्द विशेष कथन प्ररूपना शब्द सामान्य युक्तियो तथा विशिष्ट युक्तियो से युक्त कथन **आख्यापयितु** यह क्रिया पद सामान्य रूप से बोध कराने के लिये **प्रज्ञापयितु** यह पद विशेष रूप से बोध कराने के लिये तथा **प्ररूपयितु** यह क्रियापद सामान्य तथा विशेष युक्तियो से बोध कराने के लिये, इन अर्थों का परिचायक है।

"सुद्धप्पवेसाइ जाव सरीरे" यहा पठित **जाव** पद—**मगलाइ वत्थाइ पवरपरिहिए अप्प-महग्घाभरणालकिय**—इन पदो का ससूचक है। **"सुद्धप्पवेसाइ"** इस पद के टीकाकार ने दो अर्थ लिखे हैं। **शुद्धात्मा—स्नानेन शुचिकृतदेह, वेश्यानि वेशे साधूनि अथवा शुद्धानि च तानि प्रवेश्यानि च धर्मसभाप्रवेशोचितानि चेति विग्रह।** अर्थात्—स्नान से शरीर शुद्ध कर लिया और शुद्ध वस्त्र धारण कर लिये, अथवा सभा मे जाने योग्य शुद्ध वस्त्रो को धारण किया। **जाव** पद से विवक्षित पदो का अर्थ इस प्रकार है—मगल रूप प्रधान वस्त्रो को पहर कर भार मे हलके तथा मूल्य मे अधिक आभरणो से शरीर को अलकृत किया।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर के सेठ सुदर्शन ने भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित होने का निश्चय कर लिया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे सुदसण समणोवासय अदूरसामतेण वीतीवयमाण २ पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते ५। तं पलसहस्सनिप्फन्न अयोमय मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणि जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुविग्गे अक्खुभिए अचलिए असभते वत्थं तेणं भूमि पमज्जइ, करयल० एव वयासी—

नमोऽत्थु ण अरिहताण जाव सपत्ताणं। नमोऽत्थु णं समणस्स जाव सपाविउकामस्स। पुव्वि च ण मते समणस्स भगवतो महावीरस्स अन्तिए थूलए पाणातिवाते पच्चक्खाते जावज्जीवाते, थूलते मुसावाते, थूलते अदिन्नादाणे, सदारसतोसे कते जावज्जीवाते, इच्छापरिमाणे कते जावज्जीवाते। त इदाणिपि ण तस्सेव अतिय सव्वं पाणातिवात पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावाय, अदत्तादाण, मेहुण, परिग्गह पच्चक्खामि जावज्जीवाए। सव्व कोहं जाव मिच्छादसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्व असण पाण खाइम साइम चउव्विहपि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ ण एत्तो उवसग्गातो मुच्चिस्सामि तो मे कप्पेति पारेत्तते, अह णो एत्तो उवसग्गातो मुच्चिस्सामि, ततो मे तहा पच्चक्खाते चेव त्ति कट्टु सागार पडिम पडिवज्जइ।

छाया—तत स मुद्गरपाणिर्यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासकमदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन्त पश्यति, दृष्ट्वा आसुरोक्त (आशुरुष्ट, आशुरुप्तो वा) त पलसहस्रनिष्पन्नमयोमय मुद्गरमुल्लालयन्नुल्लालयन् यत्रैव सुदर्शन श्रमणोपासकस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय। तत स सुदर्शन श्रमणोपासक मुद्गरपाणि यक्षमागच्छन्त पश्यति, दृष्ट्वा अभीत, अत्रस्त, अनुद्विग्न, अक्षुभित, अचलित असभ्रान्त वस्त्रप्रान्तेन (वस्त्रांचलेन) भूमि प्रमार्जयति, प्रमृज्य करतल० परिगृहीत एवमवादीत्—

नमोऽस्तु अर्हद्भ्य यावत् सम्प्राप्तेभ्य। नमोऽस्तु श्रमणाय यावत् सम्प्राप्तकामाय। पूर्वं च मया श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अतिके स्थूल प्राणातिपात प्रत्याख्यात यावज्जीव स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्वदारसन्तोष कृत यावज्जीवम्। इच्छापरिमाण कृत यावज्जीवम्। तदिदानीमपि तस्यैवान्तिके सर्वं प्राणातिपात प्रत्याख्यामि, यावज्जीव मृषावादमदत्तादान, मैथुन, परिग्रह प्रत्याख्यामि यावज्जीव। सर्वं क्रोध यावद् मिथ्यादर्शनशल्य प्रत्याख्यामि यावज्जीव, सर्वमशन, पान, खादिम, स्वादिम चतुर्विधमप्याहार प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्। यदि एतस्माद् उपसर्गाद् मोक्ष्यामि, तत मे कल्पते पारयितुम्, अथ नो एतस्माद् उपसर्गाद् मोक्ष्यामि ततो मम तथा प्रत्याख्यातमिति कृत्वा साकारां प्रतिमा प्रतिपद्यते।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अनन्तर, **ण**—वाक्य सौन्दर्य के लिये, **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि नामक यक्ष, **समणोवासय**—श्रमणोपासक साधुग्रो की सेवा करनेवाले, **सुदसण**—सुदर्शन को, **अदूरसामतेण**—न अति दूर और न अति निकट, **वीतीवयमाण २**—आते हुए को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—देखकर, **आसुरुत्ते**—आशुरुप्त—जिसे बहुत शीघ्र क्रोध चढ जाता है, ५ इस अङ्क से, **रुट्ठे**—रोस वाला, **कुविए**—कोपवाला, **चडिक्किए**—कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, **मिसिमिसीमाणे**—क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, या दात पीसता हुआ इन पदो का ग्रहण किया जाता है, ऐसा होकर, **त**—उसने, **पलसहस्सनिप्फन्न**—हजार पल से बने हुए, **अयोमय**—लोहे के, **मोग्गर**—मुद्गर को, **उल्लालेमाणे २**—उछाल-उछालकर, **जेणेव**—जहा पर, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **सुदसणे**—सुदर्शन था, **तेणेव**—वहा पर, **पहारेत्थ गमणाए**—जाने का निश्चय किया, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे समणोवासए**—वह श्रमणोपासक सुदर्शन, **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि, **जक्ख**—यक्ष को, **एज्जमाण**—अपनी ओर आते हुए को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—और देखकर, **अभीए**—भय रहित रहा, **अतत्थे**—त्रास रहित रहा, **अणुव्विग्गे**—अनुद्विग्न रहा, **अक्खुभिते**—क्षोभ रहित रहा, **अचलिए**—स्थिर रहा, **असभते**—असभ्रान्त रहा, **वत्थतेण**—वस्त्र के अग्र भाग से, **भूमि**—भूमि को, **पमज्जइ**—शुद्ध करता है, **करयल०**—दोनो हाथ जोडकर, **एव वयासी**—इस प्रकार बोला—

नमोऽत्थु ण—नमस्कार हो, **अरिहताण**—अरिहन्त भगवान को, **जाव**—यावत्, **सपत्ताण**—मोक्ष को प्राप्त हुए महापुरुषो को, **नमोऽत्थु ण**—नमस्कार हो, **समणस्स**—श्रमण, **जाव**—यावत् भगवान महावीर स्वामी को, **सपाविउकामस्स**—मोक्ष को प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालो को, जाव—यावत्, **पुव्वि च ण**—और पहले, **मते**—मैंने, **समणस्स भगवतो महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के, **अन्तिए**—पास, **थूलते पाणातिपाते**—स्थूल प्राणातिपात अर्थात् हिंसा का, **जावज्जीवाते**—जीवन पर्यन्त, **पच्चक्खाते**—नियम कर रखा है, **थूलते मुसावाते**—स्थूल मृषावाद का, **थूलते अदिन्नादाणे**—स्थूल अदत्तादान—चौर्य कर्म का परित्याग कर रखा है, **सदारसतोसे कते**—स्वदार-सन्तोष अर्थात् अपनी स्त्री मे ही सतुष्ट रहने का व्रत ग्रहण कर रखा है, **जावज्जीवाते**—जीवनभर के लिये, **इच्छापरिमाणे कते**—इच्छाओ को सीमित एव मर्यादित कर रखा है, **जावज्जीवाते**—जीवन भर के लिये, **त**—सो, **इदाणि पि ण**—इस समय भी, **तस्सेव अतिए**—उसी के पास, उसी भगवान महावीर को साक्षी बनाकर, **सव्व**—सर्व प्रकार का, **पाणातिवात**—प्राणातिपात—प्राणो के विनाश का, **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हू, **जावज्जीवाए**—जीवनभर के लिये, **मुसावाय**—मृषावाद अर्थात् असत्य भाषण का, **अदत्तादाण**—आज्ञा के बिना वस्तु को ग्रहण करने का, **मेहुण**—मैथुन, व्यभिचार का, **परिग्गह**—परिग्रह—लोभ का, **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हू, **जावज्जीवाए**—जीवनभर के लिये, **सव्व**—सभी प्रकार के, **कोह**—क्रोध का, **जाव**—यावत्, **मिच्छादसणसल्ल**—मिथ्यादर्शन शल्य—मिथ्यात्व रूप काटो का, **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हू, **सव्व**—सभी प्रकार के, **असण**—अशन—अन्न, **पाण**—पानी, **खाइम**—खादिम अर्थात् खाद्य पदार्थ द्राक्षा-अगूर आदि, **साइम**—स्वादिम अर्थात् मुख को स्वादिष्ट

बनानेवाले पान सुपारी आदि, इस प्रकार, **चउव्विहंपि—आहार**—चारो प्रकार के आहारो का भी, **जावज्जीवाय**—जीवन भर के लिये, **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हू, **जइ ण**—यदि, **एत्तो**—इस, **उवसग्गातो**—उपसर्ग अर्थात् आपत्ति से, **मुच्चिस्सामि**—मुक्त हो जाऊ, **तो**—तब, **मे**—मुझे, **कप्पति**—उचित है, **पारेत्तते**—पारण करना, **अह**—अथ—यदि, **एत्तो उवसग्गातो**—इस उपसर्ग से, **णो मुच्चिस्सामि**—मुक्त न हो सकू, **ततो**—उसके अनन्तर, **मे**—मेरा, **पच्चक्खाते**—प्रत्याख्यान भी, **तहा चेव**—उसी प्रकार रहेगा अर्थात् मैं पूर्वोक्त सभी बातो का त्यागी रहूगा, **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कह कर, **सागार पडिम**—सागार—छूट सहित प्रतिमा अर्थात् प्रतिज्ञा, **पडिवज्जइ**—धारण कर लेता है।

मूलार्थ—राजगृह नगर के सुदर्शन सेठ जब गुणशिलक उद्यान की ओर आ रहे थे, तब मुद्गरपाणि यक्ष श्रमणोपासक सुदर्शन को आता हुआ देखकर क्रोध से तमतमा उठा, क्रोधाधिक्य के कारण वह दात पीसने लगा और तत्काल हजार पल के लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ वह श्रमणोपासक सुदर्शन की ओर चल पडा। लोह-मुद्गर को उठाए हुए मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आते हुए देखकर श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ जरा भी डरा नही, वह सर्वथा निर्भय बना रहा। उसने भय, त्रास उद्वेग, क्षोभ, चाञ्चल्य तथा सभ्रान्ति को निकट नही आने दिया। शान्तभाव से उसने वस्त्र के अग्र-भाग से भूमि को शुद्ध किया और दोनो हाथ जोडकर वह कहने लगा—

मोक्ष को प्राप्त हुए श्री अरिहन्त को तथा मोक्ष को प्राप्त करनेकी कामना रखने-वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो। मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास जीवन भर के लिये स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद तथा स्थूल अदत्तादान का परित्याग कर दिया था। जीवन पर्यन्त स्वदार-सन्तोष-व्रत अगीकार किया और जीवन भर के लिये इच्छाओ को मर्यादित करके अपरिग्रह-अणुव्रत धारण किया था, सो अब भी इन्ही की साक्षी से सर्वविध प्राणातिपात, मृषावाद, चौर्य, मैथुन तथा परिग्रह का जीवन भर के लिये परित्याग करता हू तथा आजीवन सर्वविध क्रोध, मान यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य का परित्याग करता हू एव जीवन पर्यन्त, अशन, पान, खादिम और स्वादिम इस चतुर्विध आहार का परित्याग करता हू। यदि इस उपसर्ग अर्थात् सकट से छूट जाऊ तो मैं पारणा कर लूंगा और यदि इस आपत्ति से मैं मुक्त न हो सका तब मेरी यह प्रतिज्ञा आजीवन रहेगी। इस प्रकार कह कर सेठ सुदर्शन सागार (छूट सहित) प्रतिज्ञा को ग्रहण कर लेते है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि राजगृह नगर के मान्य सेठ सुदर्शन को गुणशिलक उद्यान की ओर आते देखकर मुद्गरपाणि यक्ष क्रोध के मारे दात पीसते हुए उसे मारने के लिये मुद्गर को उछालता हुआ आता है, पर यक्ष की इस क्रोध पूर्ण भयकर दशा को देख लेने पर भी सेठ सुदर्शन सर्वथा शान्त एव निर्भय रहता है, उसने शान्त भाव से भूमि पर बैठकर सागारी सथारा अगीकार किया।

प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित इस कथानक से निम्नलिखित शिक्षाए प्राप्त होती हैं—

१ जिस प्रकार श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन मुद्गरपाणि यक्ष के द्वारा उपस्थित आपत्ति मे जरा भी कम्पित नही हुआ, भय और सत्रास से बिलकुल दूर रह कर उसने अपनी मानसिक, वाचिक एव शारीरिक शान्ति सुरक्षित रखी, उसी प्रकार धर्मप्रिय मुमुक्षु मनुष्य को आपत्ति मे भी भयभीत नही होना चाहिये। सकट-काल मे सर्वथा सुदृढ रह कर आनेवाले सकट का शान्ति से सामना करना चाहिये।

२ जिस प्रकार भय, त्रास या कम्पन से ऊपर उठ कर सेठ सुदर्शन ने विधिपूर्वक सागारी सथारा अगीकार करके अपनी धार्मिक निष्ठा अभिव्यक्त की है, उसी प्रकार प्रत्येक कल्याणाभिलाषी आध्यात्मिक व्यक्ति को कष्ट के उपस्थित होने पर एक मात्र धर्म को शरण्य समझ कर उसके पालन मे तल्लीन हो जाना चाहिये, क्योकि धर्म मे रक्षा की अक्षय शक्ति है।

३ जिस प्रकार मृत्यु-सकट को सामने देखकर भी सेठ सुदर्शन ने मन वचन तथा काया इन तीन योगो से हिंसा आदि आस्रवो तथा क्रोध आदि पापो का सर्वथा त्याग कर श्रावक-धर्म से साधु-धर्म मे प्रवेश कर लिया, इसी प्रकार घोर कष्ट की प्राप्ति के समय परम-साध्य निर्वाण के प्राप्त करने की कामना रखनेवाले साधक मनुष्य को गृहीत श्रावक धर्म को सर्वविरति धर्म अर्थात् साधुधर्म के रूप मे बदलकर अपनी आत्मा को निष्पाप बनाने का स्तुत्य प्रयास करना चाहिये।

"**आसुरुत्ते ५**" यहा के अक से—**रुट्ठे, कुविए, चण्डिक्किए मिसिमिसिमाणे**" इन पदो का ग्रहण किया जाता है। आसुरुत्ते के आशुरुष्त तथा आसुरोक्त ये दो सस्कृत रूप बनते है, इसलिये इस पद के दो अर्थ किये जाते हैं।

१ जो शीघ्र ही क्रोध से विमोहित हो जाए, कृत्य और अकृत्य के विवेक से रहित हो जाए।

२ जिसकी वाणी क्रोधी राक्षसो जैसी है।

रोष करनेवाला रुष्ट, हृदय से क्रोध करनेवाला कुपित, क्रोधातिरेक के कारण भीषणता को प्राप्त करनेवाला चाण्डिक्यित तथा क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, दात पीसता हुआ "मिसिमिसीमाण" कहलाता है।

"**पलसहस्सनिप्फण्ण अयोमय मोग्गर**" इन पदो की व्याख्या पीछे पृष्ठ २०१ मे की जा चुकी है।

"**समणोवासए**" इस पद की व्याख्या भी पृष्ठ ३०६ पर कर दी गई है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि राजगृह नगर के मान्य सेठ सुदर्शन को गुणशिलक उद्यान की ओर आते देखकर मुद्गरपाणि यक्ष क्रोध के मारे दात पीसते हुए उसे मारने के लिये मुद्गर को उछालता हुआ आता है, पर यक्ष की इस क्रोध पूर्ण भयकर दशा को देख लेने पर भी सेठ सुदर्शन सर्वथा शान्त एव निर्भय रहता है, उसने शान्त भाव से भूमि पर बैठकर सागारी सथारा अगीकार किया।

प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित इस कथानक से निम्नलिखित शिक्षाए प्राप्त होती हैं—

१ जिस प्रकार श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन मुद्गरपाणि यक्ष के द्वारा उपस्थित आपत्ति मे जरा भी कम्पित नही हुआ, भय और सत्रास से बिल्कुल दूर रह कर उसने अपनी मानसिक, वाचिक एव शारीरिक शान्ति सुरक्षित रखी, उसी प्रकार धर्मप्रिय मुमुक्षु मनुष्य को आपत्ति मे भी भयभीत नही होना चाहिये। सकट-काल मे सर्वथा सुदृढ रह कर आनेवाले सकट का शान्ति से सामना करना चाहिये।

२ जिस प्रकार भय, त्रास या कम्पन से ऊपर उठ कर सेठ सुदर्शन ने विधिपूर्वक सागारी संथारा अगीकार करके अपनी धार्मिक निष्ठा अभिव्यक्त की है, उसी प्रकार प्रत्येक कल्याणाभिलाषी आध्यात्मिक व्यक्ति को कष्ट के उपस्थित होने पर एक मात्र धर्म को शरण्य समझ कर उसके पालन मे तल्लीन हो जाना चाहिये, क्योकि धर्म मे रक्षा की अक्षय शक्ति है।

३ जिस प्रकार मृत्यु-सकट को सामने देखकर भी सेठ सुदर्शन ने मन वचन तथा काया इन तीन योगो से हिंसा आदि आस्रवो तथा क्रोध आदि पापो का सर्वथा त्याग कर श्रावक-धर्म से साधु-धर्म मे प्रवेश कर लिया, इसी प्रकार घोर कष्ट की प्राप्ति के समय परम-साध्य निर्वाण के प्राप्त करने की कामना रखनेवाले साधक मनुष्य को गृहीत श्रावक धर्म को सर्वविरति धर्म अर्थात् साधुधर्म के रूप मे बदलकर अपनी आत्मा को निष्पाप बनाने का स्तुत्य प्रयास करना चाहिये।

"आसुरुत्ते ५" यहा के अक से—**रुट्ठे, कुविए, चडिक्किए मिसिमिसिमाणे"** इन पदो का ग्रहण किया जाता है। आसुरुत्ते के आशुरुष्ट तथा आसुरोक्त ये दो सस्कृत रूप बनते है, इसलिये इस पद के दो अर्थ किये जाते हैं।

१ जो शीघ्र ही क्रोध से विमोहित हो जाए, कृत्य और अकृत्य के विवेक से रहित हो जाए।

२ जिसकी वाणी क्रोधी राक्षसो जैसी है।

रोष करनेवाला रुष्ट, हृदय से क्रोध करनेवाला कुपित, क्रोधातिरेक के कारण भीषणता को प्राप्त करनेवाला चाण्डिक्यित तथा क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, दात पीसता हुआ "मिसिमिसी माण" कहलाता है।

"पलसहस्सनिप्फण्णं अयोमय मोग्गर" इन पदो की व्याख्या पीछे पृष्ठ ३०१ मे की जा चुकी है।

"समणोवासए" इस पद की व्याख्या भी पृष्ठ ३०६ पर कर दी गई है।

पैसे पास होने पर भी बच्चो को इन्कार कर देना, ये सब सूक्ष्म मृषावाद हैं। कन्या, भूमि, गौ को लेकर झूठ बोलना, धरोहर के सम्बन्ध मे झूठ बोलना तथा झूठी गवाही देना यह सब स्थूल मृषावाद है।

"थूलते अदिन्नादाणे–स्थूलमदत्तादानम्। खात खनना, गाठें काटना, ताले तोड़ना, मालिक की आज्ञा विना किसी वस्तु का उठाना, स्थूल अदत्तादान कहलाता है।

"तस्सेव अतिय—तस्यैव भगवतो महावीरस्य अन्तिकम्, भगवन्त "साक्षी कृत्वे-त्यर्थ."—उसी भगवान महावीर के पास अर्थात् भगवान को साक्षी बना कर।

"सव्व पाणातिवात"—अर्थात् प्राणो का अतिपात—नाश प्राणातिपात कहलाता है। यह मनसा वचसा, कर्मणा तीन प्रकार का होता है, अत मानसिक वाचिक तथा कायिक प्राणातिपात को सर्व-प्राणातिपात कहते हैं।

"कोह जाव मिच्छादसण"—यहा पठित **जाव** पद मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (झूठा कलक लगाना), पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अरति (अनुकूल विषयो के प्राप्त होने पर चित्त मे होनेवाला आनद रति है तथा प्रतिकूल विषयो को प्राप्त होने मे उत्पन्न होनेवाले खेद को अरति कहते हैं), माया मृषा इन अवशिष्ट पापो का सग्राहक है।

"मिथ्यादर्शनशल्य"—का अर्थ है—श्रद्धा का विपरीत होना।

यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रमणोपासक के जो बारह व्रत हैं वे सम्यक्त्वपूर्ण ही ग्रहण किये जाते हैं, उनमे मिथ्यात्व का परित्याग स्वत· ही हो जाता है तो फिर सागार प्रतिमा (सागारी सथारा) ग्रहण करते समय सेठ सुदर्शन ने मिथ्यादर्शनशल्य रूप मिथ्यात्व का जो परित्याग किया है इसकी उपपत्ति कैसे होगी? श्रावक-धर्म को धारण कर लेने के अनन्तर मिथ्यात्व के परित्याग करने की आवश्यकता ही नही रह जाती, वह तो चतुर्थ गुणस्थान मे ही समाप्त हो जाता है। उत्तर मे निवेदन है कि यद्यपि बारह व्रतधारी श्रावक के लिये मिथ्यात्व का परित्याग सबसे पहले करना होता है और मिथ्यात्व के परिहार पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तथापि देशविरति (श्रावक) का जो त्याग है, वह आशिक है, सर्वत नही है। मिथ्यादर्शन के देश-शका, सर्वशका आदि अनेको उपभेद हैं। उन सबका सर्वथा परित्याग करना ही यहाँ पर मिथ्यादर्शन शल्य के त्याग का लक्ष्य है। भाव यह है कि देशविरति धर्म के अगीकार मे लेश मात्र रहे हुए शका आदि दोषो का भी उक्त प्रतिज्ञा मे परित्याग कर दिया गया है।

"असण पाण खाइम साइम"—का अर्थ है—अशन, पान, खादिम और स्वादिम ये चार प्रकार का आहार। आर्य और अनार्य भेद से आहार दो प्रकार का बतलाया गया है। सात्त्विक आहार को आर्य और तामस आहार को अनार्य कहते हैं। मास, अण्डा, मदिरा आदि तामस आहार माना गया है। यह आहार आध्यात्मिक सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से निषिद्ध है। विवेक शील दयालु व्यक्ति

को इस आहार का कभी सेवन नही करना चाहिए । अशन, पान आदि सात्विक आहार कहे गए हैं। रोटी, चावल आदि खाने योग्य पदार्थों को अशन, दूध पानी आदि पीने योग्य पदार्थों को पान, बादाम किसमिस मेवा और फल आदि को खादिम तथा सुपारी लौग और इलायची आदि मुखको स्वादिष्ट बनानेवाले पदार्थ को स्वादिम कहते हैं। सागारी सथारा करते समय सेठ सुदर्शन ने इसी चतुर्विध सात्विक आहार का भी परित्याग किया था।

"सागार पडिम पडिवज्जइ"—साकारां प्रतिमां सस्तारकरूपा प्रतिज्ञा प्रतिपद्यते—स्वीकरोति। यहा पठित साकार शब्द का अर्थ है—अपवाद युक्त छूट सहित। प्रतिमा-सथारा आमरण अनशन का नाम है। **प्रतिपद्यते** यह क्रियापद स्वीकार करने अर्थ मे प्रयुक्त होता है। छूट रख कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसे साकार-प्रतिमा कहते हैं। कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा करते समय उसमे जब किसी वस्तु या समय विशेष की छूट रख लेता है और "यह काम हो गया तो मैं अनशन खोल लूगा। यदि काम न बना तो मैं अपना अनशन नही खोलूगा, उसे लगातार चलाऊगा', इस प्रकार का सकल्प कर के यदि कोई नियम लिया जाता है तो उस नियम को साकार प्रतिमा कहा जाता है।

राजगृह नगर के सेठ सुदर्शन ने जब अर्जुनमाली को मुद्गर उछालते हुए अपनी ओर आते देखा, तो उन्हो ने 'सागारी सथारा' ग्रहण कर लिया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे त पलसहस्सनिप्फन्न अयोमयं मोग्गर उल्लाले-माणे २ जेणेव सुदसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नो चेव णं सचाएइ सुदसणं समणोवासय तेयसा समभिपडित्तए। तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदसणं समणोवासय सव्वओ समताओ परिघोलेमाणे २ जाहे णो चेव ण सचाएइ सुदसणं समणोवासय तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरतो सपक्खिं, सपडिदिसिं ठिच्चा सुदसण समणोवासय अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिर णिरिक्खइ, णिरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीर विप्पजहइ, विप्पजहित्ता पलसहस्सनि-प्फन्न अयोमय मोग्गरं गहाय जामेव दिस पाउब्भूते, तामेव दिस पडिगते।

तए ण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेण विप्पमुक्के समाणे धसत्ति धरणितलसि सव्वगेहिं निवडिए। तएण से सुदसणे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिम पारेइ।

छाया—तत स मुद्गरपाणिर्यक्ष त पलसहस्रनिष्पन्नमयोमय मुद्गरमुल्लालयन् २ यत्रैव सुदर्शन श्रमणोपासकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य नो चैव शक्नोति सुदर्शन श्रमणोपासक तेजसा समभि-पतितुम् तत स मुद्गरपाणिर्यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक सर्वत समन्तात् परिघोलयन् २ यदा नो चैव

शक्नोति सुदर्शन श्रमणोपासकं तेजसा समभिपतितु, तदा सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य पुरत सपक्ष सप्रतिदिश स्थित्वा सुदर्शनमनिमेषया दृष्ट्या सुचिर निरीक्षते, निरीक्ष्य अर्जुनकस्य मालाकरस्य शरीर विप्रजहाति, विप्रहाय तं पलसहस्रनिष्पन्नमयोमय मुद्गर हित्वा यस्या दिश प्रादुर्भूत तामेव दिश प्रतिगत । तत स अर्जुनको मालाकार मुद्गरपाणिना यक्षेण विप्रमुक्त सन् धस् इति कृत्वा सर्वांगै धरणितले निपतित । तत स सुदर्शन श्रमणोपासक. निरुपसर्गमिति कृत्वा प्रतिमां पारयति ।

पदार्थ—**तए ण**—उस के अनन्तर, **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष, **त पलसहस्सनिप्फन्न**—उस हजार पल के बने हुए, **अयोमय मोग्गर**—लोहमय मुद्गर को, **उल्लालेमाणे २**—उछाल उछाल कर, **जेणेव**—जहा पर, **सुदसणे समणोवासए**—सुदर्शन श्रमणोपासक था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **सुदसण**—सुदर्शन , **समणोवासय**—श्रमणोपासक को, **तेयसा**—तेज अर्थात् अपनी दिव्य शक्ति से, **समभिपडित्तए**—आक्रात करने मे, **नो सचाएइ**—समर्थ नही हो सका, **च**—और, **एव**—निश्चयार्थक है, **तए ण**—उस के अनन्तर, **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष, **सुदसण समणोवासय**—सुदर्शन श्रमण-उपासक को,—**सव्वओ**—सब तरह, **समताओ**—चारो ओर से, **परिघोलेमाणे २**—चक्कर पर चक्कर लगा लगा कर, **जाहे**—जब, **सुदसण समणोवासय**—सुदर्शन श्रमणोपासक को, **तेयसा**—अपने तेज से, **समभिपडित्तए**—आक्रान्त करने मे, **नो चेव सचाएइ**—समर्थ नही हो सका, **ताहे**—तब, **सुदसणस्स समणोवासयस्स**—सुदर्शन श्रमणोपासक के, **पुरओ**—आगे, **सपक्खि**—बराबर, **सपडिदिस**—ठीक सामने, अत्यन्त सन्मुख, **ठिच्चा**—खडा होकर, **सुदसण**—सुदर्शन, **समणोवासय** श्रमणोपासक को, **अणिमिसाए**—निर्निमेष—बिना पलक गिराए, स्थिर, **दिट्ठीए**—दृष्टि से, **सुचिर**—बडी देर तक, **णिरिक्खइ**—देखता है, **णिरिक्खित्ता**—देख कर, **अज्जुणयस्स**—अर्जुन, **मालागारस्स**—माली के, **सरीरय**—शरीर को, **विप्पजहइ**—छोड देता है, **विप्पजहित्ता**—छोड कर, **तं पलसहस्सनिप्फन्न**—उस हजार पल से बने, **अयोमय मोग्गर**—लोहमय मुदगर को, **गहाय**—ले कर, **जामेव दिस**—जिस दिशा से, **पाउब्भूते**—आया था, **तामेव दिस**—उसी दिशा मे; **पडिगते**—चला गया, **तए णं**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन, **मालागारे**—माली, **मोग्गरपाणिणा जक्खेण**—मुद्गरपाणि यक्ष से, **विप्पमुक्के समाणे**—मुक्त होने पर, **धसिति**—धम ऐसे शब्द से या धडाम से, **सव्वगेहिं**—समस्त अगो से, **धरणितलसि**—भूमि तल पर, **निविडए**—गिर पडा, **तए ण**—उस के अनन्तर, **से सुदसणे**—वह सुदर्शन, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **निरुवसग्गमिति कट्टु**—विघ्न खत्म हो गया, ऐसा जान कर, **पडिम**—प्रतिज्ञा, **पारेइ**—पार लेता है ।

मूलार्थ—उस के अनन्तर वह मुद्गरपाणि यक्ष हजार पल के बने लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ श्रमणोपसक सुदर्शन के पास आया, उसने उस पर अक्रमण किया, परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक के आध्यात्मिक तेज के सामने उसका दैविक तेज (बल) सफल नही

हो सका—वह सुदर्शन को कोई कष्ट नही पहुचा सका, फलत उसका मुद्गर उछलता ही रह गया।

श्रमणोपासक सुदर्शन के चारो ओर मुद्गरपाणि यक्ष का दिव्य तेज जब उसकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण उस पर आक्रमण करने मे निष्फल हो गया, तब श्रमणोपसक सुदर्शन के आगे बराबर बिल्कुल सामने खडा होकर निर्निमेष (बिना पलक हिलाए) दृष्टि से चिरकाल तक देखने के अनन्तर अर्जुनमाली के शरीर को छोड कर हजार पल से बने लोहे के मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे चला गया।

मुद्गर-पाणि यक्ष के शरीर से चले जाने पर वह अर्जुनमाली भूमितल पर धडाम् से गिर पडा। अर्जुनमाली को भूमि पर गिरा देख कर श्रमणोपासक सुदर्शन ने "आया हुआ उपसर्ग चला गया—विपत्ति टल गई"—यह जान कर अपने सागारी सथारे को पार लिया। जिस छूट को लेकर उसने नियम अगीकार किया था उस छूट के पूर्ण होने पर अपना व्रत समाप्त कर दिया।

व्याख्या—धार्मिक विश्वास मनुष्य को कितना निर्भय बना देता है तथा धार्मिक बल के समक्ष दैवी बल भी किस प्रकार कुण्ठित हो जाया करता है, इस सत्य को प्रस्तुत प्रकरण प्रमाणित करता है। मुद्गरपाणि यक्ष की जो शक्ति हजारो मनुष्यो को क्षण भर मे विनष्ट कर देने की क्षमता रखती थी, वह एक धार्मिक व्यक्ति के सन्मुख सर्वथा निस्तेज हो गई, यह सब मगलमय धर्म शक्ति की अचिन्त्य महिमा का ही शुभ परिणाम है। सभव है इसीलिये पच्चीस सौ वर्ष पहले मानव जगत के सन्मुख धर्ममहिमा का मजुल गान करते हुए विश्ववन्द्य भगवान महावीर ने यह उद्घोष किया था—

"धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो॥"

दशवै० अ० १/१

अहिंसा, संयम तथा तप रूप धर्म सर्वोत्कृष्ट मगल है, जिस व्यक्ति के हृदय मे यह निवास करता है उस को देवता भी नमस्कार करते हैं।

"देवदाणवगधव्वा, जक्खरक्खस-किन्नरा।
बभयारिं नमसति, दुक्कर जे करन्ति त॥

उत्तरा० अ० १६/१६

जो मनुष्य दुष्कर—कठोर ब्रह्मचर्य व्रत की आराधन किया करता है उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर ये सब दैवी शक्तिया प्रणाम करती हैं।

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के सवरद्वार मे मगलमूर्ति भगवान महावीर ने सत्यधम के परिपालक मनुष्य को अत्यन्त सुन्दर रूप मे देव-वन्दनीय अभिव्यक्त किया है—

"सादेव्वाणि य देवयाओ करेन्ति सच्चवयणे रताण"† अर्थात्— सत्यनिष्ठ पुरुष की देवगण भी रक्षा करते हैं। इन सब शास्त्रीय उदाहरणो से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि धर्म महान है, उसका आचरण करनेवाला महान है तथा उस के आराधक मनुष्य को देवता लोग भी वन्दन करते हैं, उसकी प्रत्येक कामना पूर्ण करते हुए उसकी रक्षा का पूर्ण ध्यान रखते हैं।

आध्यात्मिकता के शिखर पर विराजमान महापुरुषो ने धर्म को एक विशिष्ट अग्नि के रूप मे भी स्वीकार किया है। उनका विश्वास है कि इसके तेज के सामने देव, दानव और गन्धर्व आदि का बल भी फीका पड जाता है तथा उस की धधकती हुई लपटें कर्ममल का सर्वनाश करने के साथ-साथ दैविक उपसर्गों (सकटो) को भी समीप आने नही देती। इसका जीवित उदाहरण प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित राजगृह नगर का धर्मप्रिय श्रावक सेठ सुदर्शन है। मुद्गरपाणि यक्ष का उसके सामने निस्तेज होकर भाग जाना, धर्मशक्ति का सजीव प्रमाण उपस्थित करता है।

"तेजसा समभिपडित्तए"—तेजसा समापतितुम् समाक्रमितुम्। इस का अर्थ है—तेज से आक्रमण करना। प्रस्तुत मे तेज शब्द दैविक शक्ति का परिचायक है। भाव यह है—मुद्गरपाणि यक्ष ने अपने दिव्य तेज से सुदर्शन सेठ पर आक्रमण किया, परन्तु वह उसे नुकसान क्यो नही पहुचा सका? उत्तर स्पष्ट है कि सेठ सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति प्रबल थी, अत यक्ष की दैविक शक्ति सेठ सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति को निस्तेज नही बना सकी, प्रत्युत स्वय ही निस्तेज हो गई।

प्रस्तुत पाठ मे पठित तेज शब्द वृत्तिकार अभयदेव सूरि के विचार मे सेठ सुदर्शन के आध्यात्मिक प्रभाव का बोधक है। वे लिखते हैं—

"न शक्नोति सुदर्शन समभिपतितुम्—आक्रमितुमित्यर्थ, केन? तेजसा—प्रभावेन सुदर्शनसम्बधिनेति।

अर्थ स्पष्ट है। यहा वृत्तिकार ने तेज का अर्थ प्रभाव किया है और वह सेठ सुदर्शन सम्बन्धी बतलाया है, पर यदि ऐसा ही होता तो—**"सुदसण समणोवासय तेयसा समभिपडित्तए"**—यहा सुदर्शन श्रमणोपासक शब्द द्वितीयान्त न होकर षष्ठयन्त होता। षष्ठयन्त होने पर ही तेज का सम्बन्ध सुदर्शन श्रमणोपासक से जुड सकता है। अन्यथा द्वितीयान्त पद तेज से कैसे सम्बन्ध स्थापित करेगा? यह प्रश्न समाहित नही हो पाता।

"सव्वओ समताओ"—सर्वत—सर्व प्रकारेण, समन्तात्–सर्वदिक्षु—अर्थात् **सव्वओ** यह पद 'सब प्रकार से' इस अर्थ का तथा **समताओ** यह पद 'सब दिशाओ मे, चारो तरफ' इस अर्थ का बोधक है।

---

† सादेव्यानि—सान्निध्यानि देवता कुर्वन्ति सत्यवचनरतानाम् वृत्तिकारोऽभयदेवसूरि।

"पुरतो सपक्खि सपडिदिसि"—पुरत—अग्रे, सपक्ष—समानौ पक्षौ—वामदक्षिणपार्श्वौ यस्य आगमनस्य तत्सपक्षम्, सप्रतिदिक् समाना प्रतिदिशो यस्य तत् सप्रतिदिक्—अभिमुख यथा स्यात्तथा—अर्थात् **पुरओ** यह पद 'आगे' इस अर्थ का 'सपक्खि' यह पद 'जिस आगमन मे बाया और दाया भाग समान हो', इस अर्थ का तथा **"सपडिदिस"** यह पद बिल्कुल सामने इस अर्थ का बोधक है। अर्धमागधी कोषकार के शब्दो मे—**"सपक्खि तथा सपडिदिस"** इन दोनो शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

सपक्ष—वह स्थिति जब कि एक वस्तु के सामने दूसरी वस्तु इस तरह रखी जाय कि दोनो के पक्ष बराबर समकक्ष मे रहें।

सप्रतिदिक्—वह स्थिति जब दो वस्तुओ की आमने सामने की दिशा-विदिशा एक सरीखी हो।

"सुचिर णिरिक्खइ"—सुचिर निरीक्षते—बहुकाल पर्यन्त पश्यति। यहा प्रयुक्त सुचिर शब्द "बहुत समय तक" इस अर्थ का बोधक है।

"निरुवसग्गमिति कट्टु" निरुपसर्गम्, उपसर्गाभाव, इति कृत्वा इति ज्ञात्वा। यहा **'निरुवसग्ग'** का अर्थ है उपसर्ग का अभाव हो गया, संकट टल गया, यह कृत्वा—अर्थात् जानकर।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि मुद्गरपाणि यक्ष के भागजाने के अनन्तर जब अर्जुनमाली भूमि पर गिर पडा तब सेठ सुदर्शन ने 'सकट टल गया' यह समझ कर अपना व्रत समाप्त कर दिया इसके अनन्तर क्या हुआ अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तए ण से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्ततरेण आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदसण समणोवासय एव वयासी—**

तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! के कहिं वा सपत्थिया ? तए ण से सुदसणे समणोवासए अज्जुणय मालागार एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! अह सुदसणे नाम समणोवासए, अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेतिए समण भगव महावीर वदिउ सपत्थिए, तए ण से अज्जुणए मालागारे सुदसण समणोवासय एव वयासी—

'त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! अहमवि तुब्भए सद्धि समणं भगव महावीर वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए। 'अहासुह देवाणुप्पिया !'

तए ण से सुदसणे समणोवासए अज्जुणएण मालागारेण सद्धि जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएण मालागारेण सद्धि समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तए ण समणे भगवं

महावीरे सुदसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य० धम्मकहा सुदंसणे पडिगए ।

छाया—तत सोऽर्जुनको मालाकारस्ततो मुहूर्त्तान्तरेण आस्वस्थ सन् उत्तिष्ठति, उत्थाय च सुदर्शनं श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

यूय देवानुप्रिया ! के कुत्र वा सप्रस्थिता ? तत स. सुदर्शन श्रमणोपासकः अर्जुनक मालाकारमेवमवादीत् ।

एव खलु देवानुप्रिय ! अह सुदर्शनो नाम श्रमणोपासकोऽभिगतजीवाजीव· गुणशिलके चैत्ये श्रमण भगवन्त महावीर वन्दितु सम्प्रस्थित । तत सोऽर्जुनको मालाकार सुदर्शन श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

तदिच्छामि देवानुप्रिय ! अहमपि त्वया सार्द्धं श्रमण भगवन्त महावीर वन्दितु यावत् पर्युपासितुम् । 'यथासुख देवानुप्रिय !'

तत. स· सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनकेन मालाकारेण सार्द्धं यत्रैव गुणशिलक चैत्य यत्रैव श्रमणो भगवान महावीर तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य, अर्जुनकेन मालाकारेण श्रमण भगवन्त महावीर त्रिकृत्व यावत् पर्युपासते, तत श्रमणो भगवान् महावीर सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य तस्याश्च धर्मकथा० सुदर्शन पडिगत ।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली, **तत्तो**—उसके पश्चात्, **मुहुत्ततरेण**—अन्तर्मुहूर्त्त के बाद, **आसत्थे समाणे**—आस्वस्थ होने पर, **उट्ठेइ**—उठता है, **उट्ठित्ता**—और उठ कर, **सुदसण**—सुदर्शन, **समणोवासय**—श्रमणोपासक को, **एव वयासो**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष !, **तुब्भे**—आप, **के**—कौन हैं, **वा**—और, **कहिं**—कहा पर, **सपत्थिया**—जा रहे हो । **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे**—वह सुदर्शन, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **अज्जुणय**—अर्जुन, **मालागार**—माली को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले—

एव—इस प्रकार, खलु—निश्चयार्थक है, **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुष !, **अह**—मैं, **सुदसण नाम**—सुदर्शन नाम का, **समणोवासए**—श्रमणोपासक हूँ, **अभिगयजीवाजीवे**—जीव और अजीव का ज्ञाता हू, मैं, **गुणसिलए**—गुणशिलक नामक, **चेतिए**—उद्यान मे, **समण**—श्रमण—तपस्वी, **भगव**—**महावीर**—महावीर स्वामी को, **वदिउ**—वन्दन करने के लिये, **सपत्थिए**—जा रहा हू, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से**—वह, **अज्जुणए**—अर्जुन, **मालागारे**—माली, **सुदसण**—सुदर्शन, **समणोवासय**—श्रमणोपासक को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष ! **त**—सो, **अहमवि**—मैं भी, **इच्छामि**— चाहता हू, **तुमए**—तुम्हारे, **सद्धि**—साथ, **समण**—श्रमण—तपस्वी, **भगव**—भगवान, **महावीर**—महावीर को, **वदित्तए**—वन्दन करने के लिये, **जाव**—यावत्, **पज्जुवासित्तए**—पर्युपासना—भक्ति करने के

लिये (यह सुनकर सेठ सुदर्शन कहने लगा), **ग्रहासुह-देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुष ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।

तए ण—उसके अनन्तर, **से**—वह, **सुदसणे**—सुदर्शन, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **अज्जुणएण**—अर्जुनक, **मालागारेण**—माली के, **सद्धि**—साथ, **जेणेव**—जहा पर, **गुणसिलए चेतिए**—गुणशिलक नामक उद्यान था और, **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—महावीर स्वामी विराजमान थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **अज्जुणएण**—अर्जुन, **मालागारेण**—माली के, **सद्धि**—साथ, **समण**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीर**—महावीर स्वामी को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार दक्षिण ओर से आरभ करके प्रदक्षिणा करता है, **जाव**—यावत् वन्दना एव नमस्कार करता है, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना अर्थात् सेवा-भक्ति करता है, **तए ण**—उसके अनन्तर, **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—महावीर स्वामी, **सुदसणस्स**—सुदर्शन, **समणोवासयस्स**—श्रमणोपासक को, **य**—और, **अज्जुणयस्स**—अर्जुन, **मालागारस्स**—माली को, **तीसे य०**—और उस परिषद्—नगर निवासियो को, **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते हैं, धर्म कथा सुनकर, **सुदसणे**—सेठ सुदर्शन, **पडिगए**—चले गए।

मूलार्थ—उसके अनन्तर पृथ्वी पर गिरा हुआ वह अर्जुनमाली एक मुहूर्त के बाद स्वस्थ होने पर उठा और उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार कहने लगा—

'हे देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहा पर जा रहे हो ?' अर्जुनमाली के इस प्रश्न को सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'हे देवानुप्रिय ! जीव और अजीव का ज्ञाता मैं सुदर्शन नाम का श्रमणोपासक हू और गुणशिलक उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन एव नमस्कार करने के लिये जा रहा हूं ।'

श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन से अपने प्रश्न का उत्तर पाकर अर्जुन माली सेठ से बोला—हे देवानुप्रिय ! मैं भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार एव उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करने के लिये आपके साथ जाना चाहता हू । यह सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली से कहने लगे—देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो ।

उसके अनन्तर वह श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को अपने साथ लेकर गुणशिलक नामक उद्यान मे जहा पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे

महावीरे सुदसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य० धम्मकहा सुदसणे पडिगए ।

छाया—तत सोऽर्जुनको मालाकारस्ततो मुहूर्त्तान्तिरेण आस्वस्थ सन् उत्तिष्ठति, उत्थाय च सुदर्शन श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

यूय देवानुप्रिया. ! के कुत्र वा संप्रस्थिता ? तत स सुदर्शन श्रमणोपासकः अर्जुनक मालाकारमेवमवादीत् ।

एव खलु देवानुप्रिय ! अह सुदर्शनो नाम श्रमणोपासकोऽभिगतजीवाजीव. गुणशिलके चैत्ये श्रमण भगवन्त महावीर वन्दितु सम्प्रस्थित । तत. सोऽर्जुनको मालाकार सुदर्शन श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

तदिच्छामि देवानुप्रिय ! अहमपि त्वया सार्द्धं श्रमण भगवन्तं महावीर वन्दितु यावत् पर्युपासितुम् । 'यथासुख देवानुप्रिय !'

तत स सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनकेन मालाकारेण सार्द्धं यत्रैव गुणशिलक चैत्य यत्रैव श्रमणो भगवान महावीर तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य, अर्जुनकेन मालाकारेण श्रमण भगवन्त महावीर त्रिकृत्व यावत् पर्युपासते, तत श्रमणो भगवान् महावीर सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य तस्याश्च धर्मकथा० सुदर्शन पडिगत ।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली, **तत्तो**—उसके पश्चात्, **मुहुत्ततरेण**—अन्तर्मुहूर्त्त के बाद, **आसत्थे समाणे**—आस्वस्थ होने पर, **उट्ठेइ**—उठता है, **उट्ठित्ता**—और उठ कर, **सुदसण**—सुदर्शन, **समणोवासय**—श्रमणोपासक को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष !, **तुब्भे**—आप, **के**—कौन हैं, **वा**—और, **कहिं**—कहा पर, **सपत्थिया**—जा रहे हो । **तए ण**—उसके अनन्तर, **से सुदसणे**—वह सुदर्शन, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **अज्जुणय**—अर्जुन, **मालागार**—माली को, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले—

एव—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुष !, **अह**—मैं, **सुदसण नाम**—सुदर्शन नाम का, **समणोवासए**—श्रमणोपासक हूँ, **अभिगयजीवाजीवे**—जीव और अजीव का ज्ञाता हू, मैं, **गुणसिलए**—गुणशिलक नामक, **चेतिए**—उद्यान मे, **समण**—श्रमण—तपस्वी, **भगव**—**महावीर**—महावीर स्वामी को, **वदिउ**—वन्दन करने के लिये, **सपत्थिए**—जा रहा हू, **तए ण**—उसके अनन्तर, **से**—वह, **अज्जुणए**—अर्जुन, **मालागारे**—माली, **सुदसण**—सुदर्शन, **समणोवासय**—श्रमणोपासक को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष ! **त**—सो, **अहमवि**—मैं भी, **इच्छामि**— चाहता हू, **तुमए**—तुम्हारे, **सद्धिं**—साथ, **समण**—श्रमण—तपस्वी, **भगव**—भगवान, **महावीर**—महावीर को, **वदित्तए**—वन्दन करने के लिये, **जाव**—यावत्, **पज्जुवासित्तए**—पर्युपासना—भक्ति करने के

लिये (यह सुनकर सेठ सुदर्शन कहने लगा), **अहासुह-देवाणुप्पिया!**—हे भद्र पुरुष ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।

तए ण—उसके अनन्तर, **से**—वह, **सुदसणे**—सुदर्शन, **समणोवासए**—श्रमणोपासक, **अज्जुणएण**—अर्जुनक, **मालागारेण**—माली के, **सद्धि**—साथ, **जेणेव**—जहा पर, **गुणसिलए चेतिए**—गुणशिलक नामक उद्यान था और, **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—महावीर स्वामी विराजमान थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **अज्जुणएण**—अर्जुन, **मालागारेण**—माली के, **सद्धि**—साथ, **समण**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीर**—महावीर स्वामी को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार दक्षिण ओर से आरभ करके प्रदक्षिणा करता है, **जाव**—यावत् वन्दना एव नमस्कार करता है, **पज्जुवासइ**—पर्युपासना अर्थात् सेवा-भक्ति करता है, **तए ण**—उसके अनन्तर, **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—महावीर स्वामी, **सुदसणस्स**—सुदर्शन, **समणोवासयस्स**—श्रमणोपासक को, **य**—और, **अज्जुणयस्स**—अर्जुन, **मालागारस्स**—माली को, **तीसे य०**—और उस परिषद्—नगर निवासियो को, **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते हैं, धर्म कथा सुनकर, **सुदसणे**—सेठ सुदर्शन, **पडिगए**—चले गए।

मूलार्थ—उसके अनन्तर पृथ्वी पर गिरा हुआ वह अर्जुनमाली एक मुहूर्त के बाद स्वस्थ होने पर उठा और उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार कहने लगा—

'हे देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहा पर जा रहे हो ?' अर्जुनमाली के इस प्रश्न को सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'हे देवानुप्रिय ! जीव और अजीव का ज्ञाता मैं सुदर्शन नाम का श्रमणोपासक हू और गुणशिलक उद्यान मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन एव नमस्कार करने के लिये जा रहा हू ।'

श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन से अपने प्रश्न का उत्तर पाकर अर्जुन माली सेठ से बोला—हे देवानुप्रिय ! मैं भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार एव उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करने के लिये आपके साथ जाना चाहता हू । यह सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली से कहने लगे—देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो।

उसके अनन्तर वह श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को अपने साथ लेकर गुणशिलक नामक उद्यान मे जहा पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे

वहा पर आते है। आकर अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को दक्षिण से आरम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते है, वन्दन एव नमस्कार करने के अनन्तर उनकी पर्युपासना करते है।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली तथा नगर से आई श्रद्धालु जनता को धर्मोपदेश सुनाया। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन भगवान को वन्दन करने के अनन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चला गया।

व्याख्या—पिछले सूत्र मे बताया गया है कि मुद्गरपाणि यक्ष द्वारा होनेवाले उपद्रव के समाप्त होने पर सुदर्शन ने अपने आमरण अनशन को समाप्त कर दिया। अनशन के समाप्त करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन ने बडी गभीरता एव दूरदर्शिता से काम लिया। वे अर्जुनमाली को मूर्च्छित दशा मे देखकर भयभीत नही हुए और इन्होने वहा से जाने का भी प्रयत्न नही किया, प्रत्युत वे वहा बडी शान्ति के साथ बैठे रहे। कारण स्पष्ट है उनका हृदय दयालु था, सहानुभूति पूर्ण था। अर्जुनमाली को अचेत दशा मे छोडकर वे जाना नही चाहते थे। उनका विचार था कि अर्जुनमाली अब परवशता से उन्मुक्त हो गया है, अत इसकी देखभाल करना तथा इसका मार्गदर्शन करना मेरा कर्तव्य है। इसी कर्तव्यपालन की बुद्धि से उन्होने वहा से प्रस्थान नही किया।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अर्जुनमाली अन्तर्मुहूर्त्त तक बेसुध पडा रहा, सचेत होने के अनन्तर उसने अपने सामने एक व्यक्ति को बैठे देखा, उससे वह अपरिचित था। वह राजगृह नगर का एक जन-गण-मान्य सेठ था, तथापि अर्जुनमाली उसको नही जानता था। इसी कारण उसने उससे पूछा—भद्र पुरुष! आप कौन हैं? किधर जाने का विचार है आपका? अर्जुनमाली के इस प्रश्न का समाधान करते हुए उस व्यक्ति ने कहा—भाई! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं श्रमणोपासक हू, साधु-सन्तो का सत्सगी हू। मैंने जीव-अजीव का भी अध्ययन कर रखा है। अब मैं यहा से गुणशिलक उद्यान की ओर जा रहा हू। वहाँ मेरे धर्माचार्य मगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान हैं। मुझे उनके दर्शन करने हैं और उनका धार्मिक प्रवचन सुनना है।

यह सुनकर अर्जुनमाली बोला—भाई! यदि आज्ञा हो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलू? मेरी भी इच्छा है कि मैं भी प्रभु के दर्शन करू, उनकी वाणी सुनू और अपने जीवन को धन्य बनाऊ। अर्जुनमाली का यह प्रस्ताव सुनकर सेठ सुदर्शन बडे खुश हुए, वे आनन्द विभोर हो उठे। उससे बोले—भाई! इससे बढकर और अच्छी बात क्या हो सकती है? अवश्य चलो। मैं और आप दोनो साथ ही भगवान महावीर के चरणो उपस्थित हो कर प्रभु को वन्दन करेंगे और उनकी मगलमयी वाणी सुनकर जीवन सफल बनायेंगे।

सेठ सुदर्शन की ओर से स्वीकृति मिलते ही अर्जुनमाली तत्काल खडा हो गया और सेठ सुदर्शन को साथ लेकर गुणशिलक उद्यान मे भगवान महावीर के चरणो मे पहुच गया। दोनो ने विधिपूर्वक प्रभु का वदन किया, नमस्कार करने के अनन्तर दोनो ही भगवान की सेवा मे बैठ गये। इन दोनो तथा अन्य नागरिक लोगो के यथास्थान बैठ जाने पर भगवान ने सबको धर्मोपदेश सुनाया। धर्मोपदेश सुनकर सेठ सुदर्शन अपने परम आराध्य भगवान महावीर को वदन करने के अनन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चला गया।

"**मुहुत्ततरेण–मुहूर्त्तान्तरेण—स्तोककालेन**"—इस वाक्य मे पठित मुहूर्त शब्द का अर्थ है—४८ मिंट। दो घडियो को मुहूर्त कहते हैं और दो घडी से न्यून काल को अन्तर्मुहूर्त कहा जाता है। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि अर्जुनमाली के शरीर से जब यक्ष निकल कर भाग गया, उसके अनन्तर अर्जुनमाली धडाम से भूमि तल पर गिर पडा और वहा पर वह अन्तर्मुहूर्त तक बेहोश पडा रहा। कुछ कम दो घडी का समय हो जाने के अनन्तर उसे होश आया।

"**आसत्थे**" —**आस्वस्थ सचेष्ट** —यहा पठित आस्वस्थ शब्द "**आ-समन्तात्**—हर तरह से, **आस्वस्थ**—स्वास्थ्य को प्राप्त, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुन माली बेसुध होने से वृक्ष के कटे तने की तरह निष्क्रिय पडा हुआ था, पर उसे जब होश आया तो उसका शरीर क्रियाए करने लगा और धीरे-धीरे वह अपनी वास्तविक दशा मे आ गया। उसका वास्तविक दशा को प्राप्त होना ही उस का आस्वस्थ होना है।

"**समणोवासय**" इस पद का अर्थ पृष्ठ २०४ पर तथा अभिगयजीवाजीवे इस पद का अर्थ पृष्ठ २०६ पर लिखा जा चुका है।

"**वदित्तए जाव पज्जुवासित्तए**" "**तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ**" यहा पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर पढे गए अवशिष्ट पाठो के ससूचक हैं।

"**तीसे य० धम्मकहा**" यहा का बिन्दु 'विशाल परिषद्—जनता को' इस अर्थ का बोधक है।*

कहा जा चुका है कि "**तीसे य०**" आदि पदो द्वारा सूत्रकार ने भगवान महावीर की धर्म-सभा मे उपस्थित विशाल जनसमूह की ससूचना दी है परन्तु यहा एक प्रश्न-उपस्थित होता है कि अर्जुन माली के भय के कारण राजगृह नगर के लोग बाहिर नही जा रहे थे, फिर भगवान की धर्म-देशना में इतनी जनसख्या कहा से आ गई ? उत्तर मे निवेदन है कि अर्जुन माली का उपद्रव शान्त होने की सूचना विद्युत् की भाति नगर मे चारो ओर फैल गई, परिणामस्वरूप अर्जुनकृत किसी उपद्रव की आशका न रहने के कारण नागरिक शीघ्रता से भगवान की धर्मदेशना मे उपस्थित हो

विद्वद्वर्य श्री घासीलाल जी महाराज इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"तस्या च धमकथा" तस्या च महातिमहत्याम्—अतिविशालाया परिषदि भगवान् उभाभ्यामपि धर्म-कथामबोचत्। इन पदो का अर्थ है, उस अत्यधिक विशाल परिषद्—सभा मे भगवान महावीर ने सेठ सुदर्शन और अर्जुन माली इन दोनो को उपदेश सुनाया।

गए। यह भी हो सकता है कि राजगृह नगर के पार्श्ववर्ती ग्रामो तथा नगरो से जनता भगवान के दर्शनार्थ तथा उनकी धर्मदेशना के श्रवणार्थ वहा उपस्थित हो रही थी। इसके अतिरिक्त भगवान की धर्मदेशना मे सुर, असुर, देवी, देवता, मनुष्य आदि सभी उपस्थित हुआ करते थे, ऐसी दशा में वहा विशाल जनसमूह का हो जाना स्वाभाविक ही है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के धर्मोपदेश को सुन कर तथा सुदर्शन श्रावक के चले जाने पर उस धर्मोपदेश का अर्जुन माली के हृदय पर जो प्रभाव पडा, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा, निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० एव वयासी—

सद्दहामि ण भते ! णिग्गथ पावयण जाव अब्भुट्ठेमि। 'अहासुह देवाणुप्पिया !'

तए ण से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पचमुट्ठियं लोय करेइ, करित्ता जाव अणगारे जाते जाव विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे ज चेव दिवस मुंडे जाव पव्वइए, त चेव दिवस समणं भगव महावीरं वदइ, णमसइ वदित्ता णमंसित्ता इम एयारूव अभिग्गह उग्गिण्हइ-कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेणं अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणस्स विहरित्तए, त्ति कट्टु अयमेयारूव अभिग्गह ओगेण्हइ, ओगेण्हित्ता जावज्जीवाय जाव विहरइ। तए ण से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयसि पढम पोरिसीए सज्झाय करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ।

छाया—तत सोऽर्जुनको मालाकार श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्म श्रुत्वा, निशम्य हृष्ट-तुष्ट० एवमवादीत्—

श्रद्दधे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन यावत् अभ्युत्तिष्ठामि। यथासुख देवानुप्रिय ! तत सोऽर्जुनको मालाकार उत्तरपौरस्त्यदिग्भागमपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेव पचमौष्टिक लोच करोति, यावद् अनगारो जातो यावद् विहरति। तत सोऽर्जुनकोऽनगार यस्मिश्चैव दिवसे मुण्डो यावद् प्रव्रजित तस्मिश्चैव दिवसे श्रमण भगवन्त महावीर वदते णमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमुद्-गृह्णाति—कल्पते मम यावज्जीव षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तप कर्मणा आत्मान भावयत विहर्तुमिति कृत्वा, अयमेतद्रूपमभिग्रहमुद्गृह्णाति, उद्गृह्य यावज्जीव यावद् विहरति। तत सोऽर्जुनकोऽनगार षष्ठक्षमणकपारणके प्रथमपौरुष्यां स्वाध्याय करोति यथा गौतम स्वामी अटति।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुनमाली, **समणस्स**—श्रमण, **भगवओ**—भगवान, **महावीरस्स**—महावीर के, **अन्तिए**—पास, **धम्म**—धर्म को, **सोच्चा**—सुनकर, **निसम्म**—हृदय मे धारण कर, **हट्ठ-तुट्ठ०**—अत्यन्त हर्षित होकर, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भते !—हे भगवन् !, **सद्दहामि ण**—श्रद्धा करता हू, **निग्गथ पावयण**—निर्ग्रन्थ प्रवचन पर, **जाव**—यावत् इसकी आराधना के लिये, **अब्भुट्ठेमि**—उपस्थित होता हू। तब भगवान ने कहा, **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !, **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो—

तए ण—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन, **मालागारे**—माली, **उत्तरपुरत्थिमे**—उत्तर और पूर्व दिशा के मध्यवर्ती, **दिसिभाए**—दिग् भाग मे, **सयमेव**—स्वय ही, **पचमुट्ठिय**—पाँच मुट्ठियो से किया जानेवाला, **लोय**—लोच—केश-लुचन, **करेति**—करता है, **करित्ता**—लोच करके, **जाव**—यावत्, **अणगारे जाते**—साधु बन जाता है। **जाव**—यावत् सयम पूर्वक, **विहरइ**—विहरण करने लगता है।

तए ण—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन माली, **अणगारे**—मुनि, **ज चेव दिवस**—जिस दिन से ही, **मुडे**—मुण्डित, **जाव**—यावत्, **पव्वइए**—प्रव्रजित—दीक्षित हुए थे, **त चेव दिवस**—उस दिन से ही, **समण**—श्रमण, **भगव**—भगवान **महावीरे**—महावीर को, **वदइ णमसइ**—वदना नमस्कार करते हैं, **वदित्ता णमसित्ता**—नमस्कार करके, **एयारूव**—इस प्रकार का, **इम**—यह, **अभिग्गह**—अभिग्रह—नियम विशेष, **उग्गिण्हइ**—ग्रहण करते हैं, **मे कप्पइ**—मुझे कलपता है, **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त, **अनिक्खित्तेण**—लगातार, **छट्ठ छट्ठेण**—बेले-बेले, **तवो कम्मेण**—तपस्या से, **अप्पाण**—आत्मा को, **भावेमाणस्स**—भावित करते हुए, **विहरित्तए**—विहरण करना, **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर, **अयमेयारूव**—इस प्रकार का यह, **अभिग्गह**—अभिग्रह (नियम विशेष) **ओगिण्हइ**—धारण करता है, **ओगेण्हित्ता**—धारण करके, **जावज्जीवाए**—जीवन भर के लिये, **जाव**—यावत् बेले-बेले पारणा करता हुआ, **विहरइ**—विहरण करता है। **तए ण**—इसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन, **अणगारे**—अनगार—मुनि, **छट्ठक्खमण-पारणयसि**—बेले बेले के पारणे मे, **पढम पोरिसीए**—प्रथम प्रहर मे, **सज्झाय**—स्वाध्याय, **करेइ**—करता है। **जहा**—जिस प्रकार, **गोयमसामी**—गौतम स्वामी भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षार्थ नगर मे भ्रमण करते हैं, **जाव**—यावत्—अर्जुन मुनि भी भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षार्थ, **अडइ**—नगर मे भ्रमण करते हैं।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह अर्जुनमाली श्रमण भगवान महावीर के मुख से धर्म-कथा सुनकर तथा हृदय मे धारण कर परम सन्तोष एव हर्ष को प्राप्त हुआ भगवान महावीर के चरणो मे निवेदन करने लगा—

भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हू और उसकी आराधना के लिये सयम-मार्ग मे उपस्थित होता हू । अर्जुनमाली की इस बात को सुनकर श्रमण भगवान महावीर बोले—भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो ।

श्रमण भगवान महावीर के स्वीकृति-सूचक उत्तर को सुनकर अर्जुनमाली ईशान कोण मे जाकर अपने आप ही पंचमुष्टिक लोच करके यावत् साधु बन कर जीवन व्यतीत करने लगा ।

अर्जुन मुनि जिस दिन से दीक्षित हुए थे उसी दिन से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वदना एव नमस्कार करके उन्होने यह अभिग्रह (नियम विशेष) अगीकार कर लिया था कि भगवन् ! आज से लेकर जीवन-पर्यन्त मैं निरन्तर बेले-बेले तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ जीवन व्यतीत करूगा । इस प्रकार कहकर इन्होने यह अभिग्रह धारण करके जीवन व्यतीत करना आरभ कर दिया ।

अर्जुन मुनि पारणे के दिन प्रथम पहर मे स्वाध्याय करते है । फिर श्री गौतम स्वामी की तरह क्रिया-कलाप करते हुए उच्च, मध्यम और साधारण सभी कुलो मे आहारार्थ भ्रमण करते है ।

व्याख्या—वीतराग महापुरुष की आध्यात्मिक वाणी मे एक अपूर्व प्रभाव निवास करता है । पारस का स्पर्श पाकर जैसे लोहा स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही वीतराग महापुरुषो की कल्याणकारिणी वाणी का स्पर्श पाते ही पापी से पापी व्यक्ति का हृदय भी निर्मल बन जाता है । अर्जुनमाली जैसा खूनी व्यक्ति भी मुनिराज बन जाता है, ससार की मोह ममता से मुक्त होकर आध्यात्मिक साधना के दिव्य आलोक को प्राप्त कर लेता है । भगवान महावीर की कलमषहारिणी वाणी ने अर्जुनमाली के जीवन की दिशा ही बदल दी ।

महापुरुषो की वाणी कल्याण-कारिणी, कलमष-हारिणी, एव जगत्-तारिणी है, परन्तु जो जीव भव्य हैं, चरम शरीरी है, उन्हीके हृदयो पर उसका तत्काल प्रभाव पडता है । अभव्य जीव तो इस वाणी के फल से वञ्चित ही रह जाता है । पाषाण पर वर्षों वर्षा होते रहने पर भी जैसे उस पर कोई असर नही होता, वैसे ही भाग्य-हीन जीव पर भी वीतराग की वाणी का कोई प्रभाव नही पडता । राजगृह नगर का अर्जुनमाली भव्य जीव था, अत एव श्रमण भगवान महावीर के समवसरण मे पहुचते ही उनके आध्यात्मिक उपदेश को सुनते ही कचन-कामिनी का परित्याग कर वह अपने आपको उनके चरणो मे अर्पित कर देता है ।

"हट्ठ०" यहां का बिन्दु 'तुट्ठे, उट्ठाए उट्ठइ, उट्ठित्ता समण भगवन्त महावीर वदइ वदित्ता णमसइ, नमसित्ता एव वयासी'—इन पदोका बोधक है। इनका अर्थ है—अत्यन्त प्रसन्न हुए अर्जुनमाली सन्तुष्ट हो कर उठते हैं, उठकर श्रमण भगवान महावीर को वदन नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

"पावयण जाव अब्भुट्ठेमि" यहा पठित जाव पद "पत्तियामि ण भते ! निग्गथ पावयण एव रोएमि ण भते ! निग्गथ पावयण" इन पदो का बोधक है। अर्थात्—भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मुझे विश्वास है निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मैं रुचि रखता हूँ।

"अभिग्गह"—यह अभिग्रह शब्द नियम-विशेष का बोधक है। वैसे अभिग्रह शब्द जैन-सस्कृति का एक पारिभाषिक शब्द है। उपवास आदि तप के बाद या विना उपवास आदि के अपने मन मे इस बात की प्रतिज्ञा कर लेना कि अमुक पदार्थ या व्यक्ति के मिलने पर ही आहार ग्रहण करूगा, यदि अमुक बात नही होगी, तो सकल्पित अवधि तक आहार ग्रहण नही करूगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहते हैं।

एक बार इसी प्रकार का एक अभिग्रह भगवान महावीर ने किया था कि—राजकन्या हो, अविवाहिता हो, बाजार मे बिकी हो, निरपराध होने पर भी उसके पावो मे बेडिया तथा हाथों में हथकडिया पडी हुई हो, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हो, हाथ मे छाज हो, न घर मे हो न बाहिर हो—एक पैर देहली के अन्दर एक बाहिर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्नमुख हो आखो मे आसू हो, ऐसी राजकुमारी मुझे दान दे तो मैं पारणा करूगा, नही तो छ मास तक व्रत रखूगा। यही अभिग्रह था, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में अभिग्रह शब्द सामान्य प्रतिज्ञा का सूचक है, क्योकि इसे तो अर्जुनमुनि ने स्वय स्पष्ट कर दिया है कि जीवन पर्यन्त बेले-बेले पारणा करूगा। दूसरे अर्थ मे तपस्वी का सकल्प किसी की जानकारी मे नही होता, यही दोनो मे अन्तर है।

"छट्ठ छट्ठेण"—षष्ठषष्ठेन, यह शब्द बेले का बोधक है। जैन सस्कृति मे उपवास को चतुर्थ भक्त कहते हैं, किन्तु इस मे और सामान्य उपवास मे थोडा सा अन्तर है। इसमे उपवास करने से पहले और पिछले दिन एकाशना करना पडता है। यदि उपवास से पहले और पिछले दिन एकाशना करना हो तो चतुर्थ भक्त (जिस मे चार भोजनों का परित्याग हो) सम्पन्न होता है। इसी प्रकार दो व्रतो को षष्ठभक्त कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र मे षष्ठ का ग्रहण किया गया है।

"अनिक्खित्तेण"-अनिक्षिप्तेन-अन्तररहितेन—अर्थात् अनिक्षिप्त शब्द अन्तर रहित लगातार-बिना व्यवधान के इस अर्थ का परिचायक है।

"जहा गोयमसामी जाव अडइ"—यहा पठित जाव शब्द से निम्नलिखित पाठ अभिप्रेत है—

पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, बीयाए पोरिसीए झाण झियाइ, तइयाए पोरिसिए अतुरिय-मचलमसभते मुहपोत्तिय पडिलेहेइ भायणाणि पडिलेहेइ, भायणाणि पमज्जइ भायणाणि उग्गाहेइ, जेणेव समणे भगव महावीर तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदइ, वदित्वा एव वयासी—

इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाते समाणे छट्ठक्खमणपारणयसि वाणियग्गामे णयरे उच्चनीयमज्झिमकुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए। अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडि-बध करेह। तए ण भगव गोयमे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाते समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियचवलमसभते जुगतर पलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियसोहेमाणे" इस पाठ का बोधक है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

गौतम स्वामी पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते, दूसरे मे ध्यानारूढ होते, तीसरे प्रहर मे कायिक और मानसिक चापल्य से रहित हो कर मुखवस्त्रिका की तथा पात्रो एव वस्त्रो की प्रतिलेखना करते है। तदनन्तर पात्रो को झोली मे रखकर और झोली ग्रहण कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित होकर वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करते हैं कि भगवन ! आपकी आज्ञा से बेले के पारणे के निमित्त भिक्षार्थ वाणिजग्राम के सभी घरो मे जाना चाहता हू। प्रभु के—"जैसा तुम को सुख हो करो, परन्तु विलम्ब मत करो।" ऐसा कहने पर वे गौतम स्वामी भगवान के पास से चल कर ईर्यासमिति का पालन करते हुए वाणिजग्राम मे पहुच जाते हैं। वहा साधु-वृत्ति के अनुसार, धनी, निर्धन आदि घरो मे भ्रमण करते हुए राजमार्ग मे पधार जाते हैं।

इस पाठ मे "वाणिजग्राम" का उल्लेख किया गया है। परन्तु प्रस्तुत मे वाणिजग्राम के स्थान पर राजगृह का उल्लेख किया जाएगा और गौतम स्वामी के स्थान पर अर्जुन मुनि पढा जाएगा।

पारणे के दिन राजगृह नगर मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए अर्जुन अणगार के साथ वहा के नागरिक लोग जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तए ण अज्जुणय अणगार रायगिहे णयरे उच्च जाव अडमाण बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एव वयासी—**

इमे णं मे पिया मारित्ते, माया मारिया, भगिणी मारिया, भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए, धूया मारिया, सुण्हा मारिया, इमेणं मे अन्नयरे सयणसबधिपरिजणे मारिए, त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसति, अप्पेगइया हीलति, निदति, खिसति, गरिहति, तज्जेंति तालेंति।

तए ण से अज्जुणए अणगारे तेहि बहूहि इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि-य जुवाणएहि य आकोज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसि मणसावि अपउस्समाणे सम्म सहइ, सम्म खमइ, सम्म तितिक्खइ, अहियासेइ। सम्म सहमाणे, खममाणे, तितिक्खमाणे अहियासमाणे रायगिहे णयरे उच्चणीयमज्झिम-कुलाइ अडमाणे जइ भत्त लभइ, तो पाणं न लभइ, जइ पाण लभइ तो भत्त न लभइ।

तए ण से अज्जुणए अदीणे, अविमणे, अकलुसे अणाइले, अविसाई, अपरित तजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए जेणेव समणे भगव महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदसेइ, पडिदसित्ता समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए अमुच्छिए ४ विलमिव पण्णगभूएण अप्पाणेण तमाहार आहारेइ ।

तए ण समणे भगव महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहि जणवयविहार विहरइ । तए ण से अज्जुणए अणगारे तेण ओरालेण विउलेण पयत्तेण पग्गहिएण महानुभागेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणे बहुपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियाय पाउणइ, अद्धमासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेइ, तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाते कीरइ जाव सिद्धे ।

छाया—ततोऽर्जुनकमनगार राजगृहे नगरे उच्च० यावद् अटन्त बहव स्त्रियश्च, पुरुषाश्च, डहराश्च (बालकाश्च) महान्तश्च, युवानश्च, एवमवादिषु —

अनेन मे पिता मारित , माता मारिता, भगिनी मारिता, भार्या मारिता, पुत्रो मारित दुहिता मारिता, स्नुषा मारिता, अनेन मे अन्यतर स्वजन-सम्बधिपरिजनो मारित , इति कृत्वा अप्येके आक्रोशन्ति, अप्येके हीलन्ति, निन्दन्ति, खिसन्ति, गर्हन्ते, तर्जयन्ति, ताडयन्ति । तत सोऽर्जुनकोऽनगार तै बहुभि स्त्रीभिश्च, पुरुषैश्च, डहरैश्च, महद्भिश्च, युवाभिश्च आक्रोश्यमानो यावत् ताड्यमान तेषा मनसापि अप्रद्विषन् सम्यक् सहते, सम्यक् क्षमते, तितिक्षते, अधिसहते, सम्यक् सहमान क्षममाण , तितिक्षमाण , अधिसहमाण राजगृहे नगरे उच्च-नीच मध्यम-कुलानि अटन् यदि भक्त लभते तदा पान न लभते, यदि पान लभते तदा भक्त न लभते । तत सोऽर्जुनको दीन , अविमना , अकलुष , अनाविल , अविषादी, अपरितान्तयोगी अटति, अटित्वा राजगृहान्नगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य, यत्रैव गुणशिलक चैत्य, यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीर यथा गौतमस्वामी यावत् प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञात अमूर्च्छित ४ बिलमिव पन्नगभूतेनाऽऽत्मना आहारमाहारयति ।

तत श्रमणो भगवान महावीरोऽन्यदा कदाचित् राजगृहान्नगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य वहि जनपदविहार विहरति । तत सोऽर्जुनकोऽनगारस्तेन औदारिकेन विपुलेन प्रदत्तेन प्रगृहीतेन महानुभागेन तप कर्मणा आत्मान भावयन् बहुपूर्णान् षण्मासान् श्रामण्यपर्याय पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिक्या सलेखनया आत्मान जोषयति (शोधयति) त्रिशद् भक्तानि अनशनया छिन्दति, छित्वा यदर्थं क्रियते यावत् सिद्ध ।

पदार्थ—तए ण—उस के अनन्तर, त अज्जुणय—उस अर्जुन, अणगार—मुनि को, रायगिहे—राजगृह, णयरे—नगर मे, उच्च—धनी, जाव—यावत्—मध्यम निर्धन तथा सामान्य कुलो

मे आहारार्थ, **अडमाण**—भ्रमण करते हुए को, **बहवे**—बहुत से, **इत्थीओ**—स्त्रिया, **य**—और, **पुरिसा**—पुरुष, **य**—और, **डहरा**—बालक, **य**—और, **महल्ला**—वृद्ध पुरुष, **य**—तथा, **जुवाणा य**—युवक व्यक्ति भी, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

इमे ण—इसने, **मे**—मेरा, **पिया**—पिता, **मारिते**—मार दिया, **माया**–माता, **मारिया**-मारदी, **भगिणी**-बहिन, **मारिया**—मारदी, **भज्जा**—भार्या, **मारिया**—मारी, **पुत्ते**—पुत्र, **मारिए**—मार दिया, **धूया मारिया**-लड़की मार दी, **सुण्हा मारिया**—पुत्रवधू मार दी। **इमेण**—इसने, **मे**—मेरे, **अन्नयरे**—दूसरे, **सयण**—स्वजन–पारिवारिक व्यक्ति, भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी, **सबधि**—सम्बन्धी-रिश्तेदार, **परिजणे**—परिजन—दासदासी आदि, **मारिए**—मार दिए, **त्तिकट्टु**"—ऐसा कहकर, **अप्पेगइया**—कई एक, **अक्कोसति**—कटु वचनो से भर्त्सना करते है, **अप्पेगइया**—कई एक, हीलति—अनादर करते हैं, **निंदति**—निन्दा करते हैं, **खिसति**—दुर्वचन कहकर उसमे क्रोध पैदा कराने की कोशिश करते हैं, **गरिहति**—दोष निकालते हैं, **तज्जेंति**—तिरस्कार करते हैं, **तालेंति**—लाठी ईंट आदि से ताडना करते हैं।

तए ण—उसके अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन, **अणगारे**—मुनि, **तेहिं**—उन, **बहूहिं** बहुत से, **इत्थीहिं**—स्त्रियो से, **य**—और, **पुरिसेहिं**—पुरुषो से, **य**—और, **डहरेहिं**—बालको से, **य**—और, **महल्लेहिं**—वृद्धो से, **य**—और, **जुवाणएहिं**—युवको से, **य**—समुच्चयार्थक है, **आकोसेज्जमाणे**—आक्रोशित हुआ, **जाव**—यावत्, **तालेज्जमाणे**—ताडित हुआ, **तेसिं**—उन पर, **मणसावि**—मन से भो, **अपउस्समाणे**—द्वेष न करता हुआ, **सम्म**—भली प्रकार से, **सहइ**—सहन करता है, **सम्म**—सम्यक् प्रकार से, **खमइ**—क्षमा करता है, **तितिक्खइ**—अदीन भाव से सहन करता है, **अहियासेइ**—निर्जरा की भावना से शुद्धान्त करणपूर्वक सहन करता है। **सम्म सहमाणे**—सम्यक् प्रकार से सहन करता हुआ, **खममाणे**—क्षमा करता हुआ, **तितिक्खमाणे**—सहन करता हुआ, **अहियासमाणे**—निर्जरा की भावना से सहन करता हुआ, **रायगिहे**—राजगृह, **णयरे**—नगर मे, **उच्च**—धनी, **नीय**—निर्धन, **मज्झिम**—मध्यम आय वाले, **कुलाइ**—कुलो मे, **अडमाणे**—भ्रमण करते हुए, **जइ**—अगर, **भत्त**—भक्त—अन्न, **लहइ**—प्राप्त करता है, **तो**—तब, **पान**—जल, **ण लभइ**—प्राप्त नही होता, **जइ**—यदि, **पाण**—जल, **लभइ**—प्राप्त होता है, **तो**—तब, **भत्त**—भक्त, अन्न, **न लभइ**—प्राप्त नही होता।

तए ण—उस के अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन मुनि, **अदीणे**—अदीन—दीनता से रहित, **अविमणे**—अविमन—वैमनस्य-नाराजगी से रहित, **अकलुसे**—अकलुष—क्रोध से रहित, **अणाइले**—अनाविल—जिस का अन्त करण स्वच्छ है, **अविसाई**—अविषादी—विषाद—निराशा से रहित, **अपरितंतजोगी**—अपरितान्त योगी—थकावट रहित योग समाधि वाला होकर, **अडइ**—भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं। **अडित्ता**—भ्रमण करके, **राय गिहाओ**—राजगृह, **नगराओ**—नगर मे, **पडिनिक्खमइ**—निकलते हैं, **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर, **जेणेव**—जहा पर, **गुणसिलए**—गुणशिलक नामक, **चेतिए**—उद्यान था, **जेणेव**—जहाँ पर, **समणे**—श्रमण, **भगव**—भगवान, **महावीरे**—

—महावीर स्वामी विराजमान थे, वहा आए, **जहा**—जिस प्रकार, **गोयमसामी**—श्री गौतम स्वामी जी महाराज, **जाव**—यावत् भगवान को आहार दिखलाते हैं, उसी प्रकार अर्जुन मुनि भी अपना लाया हुआ आहार भगवान को, **पडिदसेइ**—दिखलाते हैं, **पडिदसित्ता**—दिखला कर, **समणेण भगवया महावीरेण**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी से, **अब्भणुण्णाए**—आज्ञा प्राप्त कर के, **अमुच्छिए**—अमूच्छित—मूर्च्छाभाव से रहित, ४—यह अक, **अगिद्धे**—गृद्धि-रहित, **अगढिए**—भोजन में राग से रहित, **अणज्झोववन्ने**—आसक्ति से रहित इन पदो का वोधक है, **बिलमिव**—जैसे बिल मे, **पन्नगभूएण**—सर्प प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार, **अप्पाणेण**—अपने आत्मा के द्वारा अर्थात् स्वय, **त आहार**—उस आहार को, **आहारेइ**—खाते हैं।

तए ण—उस के अनन्तर, **समणे भगव महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी, **अन्नदा कयाइ**—किसी अन्य समय, **रायगिहाओ नगराओ**—राजगृह नगर से, **पडिनिक्खमइ**—विहार कर जाते हैं, विहार कर के, **बहिं**—राजगृह से वाहिर किसी, **जणवयविहार**—जनपद—देश मे विहार कर के, **विहरइ**—विहरण करते हैं। **तए ण**—उस के अनन्तर, **से अज्जुणए अणगारे**—वह अर्जुन मुनि, **तेण**—उस, **ओरालेण**—प्रधान, **विउलेण**—विशाल, **पयत्तेण**—भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त, **पग्गहिएण**—उत्कृष्ट भावना से अगीकृत, **महाणुभागेण**—महान अनुभाग—प्रभाववाले, **तवो कम्मेण**—तपस्या रूप कर्म के आचरण से, **अप्पाणे भावेमाणे**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **बहुपुण्णे**—प्राय परिपूर्ण, **छम्मासे**—छ महीनो तक, **सामण्णपरियाय**—श्रमणपर्याय—साधु-वृत्ति, **पाउणइ**—पालन करते हैं, **अद्धमासियाए**—अर्ध मासिक—आधे महीने की, **सलेहणाए**—सलेखना—शरीर, कषाय का शोषण अथवा अनशनव्रत से शरीर-त्याग के अनुष्ठान द्वारा, **अप्पाण**—अपनी आत्मा को, **झूसेइ**—शुद्ध करते हैं, **तीस भत्ताइ**—तीस भोजनो को, **अणसणाए**—अनशन के द्वारा, **छेदेइ**—छोड देते हैं, **छेदित्ता**—छोड कर, **जस्सट्ठाते**—जिस प्रयोजन के लिये, **कीरइ**—साधु जीवन अगीकार किया था, **जाव**—यावत् उस को सिद्ध कर के, **सिद्धे**—सिद्ध हो गए—मुक्ति मे चले गए।

मूलार्थ—उस के अनन्तर राजगृह नगर मे धनी, निर्धन तथा मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए अर्जुन अनगार—मुनि को देख कर बहुत सी स्त्रिया अनेको पुरुष, वालक, वृद्ध तथा युवक इस प्रकार कहने लगे—

इसने मेरे पिता को मार दिया, माता को मार दिया, बहिन, स्त्री, पुत्र लडकी और मेरी पुत्रवधू को मार दिया है। इसने मेरे दूसरे स्वजनो सगे-सबधियो, रिश्तेदारो तथा परिजन—दास-दासियो आदि का घात कर दिया है। इस प्रकार कहते हुए उन मे से कई एक उस को कटु वचनो से फटकार देते थे, कई एक उस की अवहेलना करते थे। निन्दा (वदनामी या दोपो का वर्णन या झूठमूठ किसी के दोष निकालना) करते थे, कई एक देखते ही खीजते थे, झुझलाते थे, कुढते थे, कई एक गर्हा (दोषो को प्रकट

करना), तर्जना (डाटना, डपटना, भय उत्पन्न करना) तथा ताडना (मारपीट) आदि भी करते थे।

उसके अनन्तर अर्जुन मुनि इन अनेको स्त्रियो, पुरुषो, बालको, वृद्धो तथा युवको द्वारा आक्रोशित (जिस की कटु वचनो से भर्त्सना की गई है), अवहेलित (जिस की अवहेलना की गई है), निंदित (जिस को निंदा की गई है), खिंसित (जिस पर झुँझलाया गया है), गर्हित (जिस की गर्हा की गई है), तर्जित (जिसकी तर्जना की गई है), एव ताडित (जिस की मारपीट की गई है) होने पर भी, उनपर मन से भी द्वेष नही करते, प्रत्युत बडी शान्ति के साथ उस सकट को सहन करते है। क्रोध को निकट नही आने देते, दोनता प्रकट नही करते, आत्मशुद्धि की भावना से मन मे कोई विकार नही आने देते। इस प्रकार शान्ति, क्षमा, तितिक्षा द्वारा आपत्तियो को सहन करते हुए राजगृह नगर मे धनी, निर्धन तथा मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं, परन्तु यदि कही अन्न मिल जाता है तो पानी नही मिलता, यदि पानी मिल जाता है, तो अन्न प्राप्त नही होता।

पारणे के निमित्त यथेच्छ अन्न पानी न मिलने पर भी अर्जुन मुनि के हृदय मे दीनता नही आई, वैमनस्य-नाराज़गी पैदा नही हुई, कालुष्य-क्रोध नही आया, वे निराशा से सर्वथा दूर रहे। उन्होने अन्त करण को सर्वथा स्वच्छ रखा तथा अपने मन मे सयम के प्रति कोई घबराहट नही आने दी, सयम-साधना के प्रति ये प्रतिपल जागरूक ही रहे। इस तरह अदीन, अविमन, अकलुष, अनाविल, अविषादी तथा अपरितान्त योगी भाव से भिक्षार्थ नगर मे भ्रमण करते रहे।

व्याख्या—श्री समवायाङ्ग सूत्र मे परिषह बाईस बतलाए गये हैं। आपत्ति आने पर सयम मे स्थिर रहने के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये जो मानसिक तथा शारीरिक कष्ट साधु-साध्वियो को सहने चाहिये, उन्हे परिषह कहते हैं। परिषह बाईस हैं—

१ **क्षुधापरिषह**—भूख का परिषह। सयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर भूख का कष्ट सहन करना।

२ **पिपासा-परिषह**—प्यास का परिषह। ३ **शीत-परिषह**—ठण्ड का परिषह, ४ **उष्ण-परिषह**—गरमी का परिषह, ५ **दशमशक-परिषह**—डास और मच्छरो का परिषह, खटमल, जू, चीटी आदि का कष्ट भी इसी मे अन्तर्हित हो जाता हैं। ६ **अचेल-परिषह**—वस्त्र न मिलने पर होने वाला कष्ट। ७ **अरति-परिषह**—मन मे अरति—उदासी से होनेवाला कष्ट, स्वीकृत मार्ग म कठि-

नाइयो के आने पर मन न लगे तो उसके प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है, ऐसी दशा मे उसमे धैर्य-पूर्वक मन लगाना। ८ **स्त्री-परिषह्**—स्त्रियो द्वारा होने वाला कष्ट। ६ **चर्या-परिषह्**—ग्राम नगर आदि के विहार मे होने वाला कष्ट। १० **नैषेधिकी-परिषह**—स्वाध्याय आदि के स्थान पर कष्ट। ११ **शय्या-परिषह्**—रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होनेवाला कष्ट। १२ **आक्रोश-परिषह्**—किसी के द्वारा धमकाए जाने पर दुर्वचनो से होनेवाला कष्ट। १४ **याचना-परिषह्**—भिक्षा-मागने पर होनेवाला कष्ट। १५ **अलाभ-परिषह्**—वस्तु के न मिलने पर होनेवाला कष्ट। १६ **रोग-परिषह्**—रोग के कारण होनेवाला कष्ट। १७ **तृण-स्पर्श-परिषह**—तिनको पर सोते समय या मार्ग मे चलते समय तृण आदि के पाव मे चुभ जाने से होनेवाला दु ख। १८ **जल्ल-परिषह्**—शरीर एव वस्त्र के समल होनेपर मन में उत्पन्न उद्वेग। **सत्कार-पुरस्कार परिषह**—जनता द्वारा सम्मान मिलने पर हर्ष न करना तथा मान न मिलने पर अप्रसन्न न होना। २० **प्रज्ञा-परिषह्**—प्रज्ञा होने पर गव न करना। २१ **अज्ञान-परिषह्**—अज्ञान के कारण होनेवाला कष्ट। २२ **दर्शन-परिषह्**—दूसरे मतवालो की ऋद्धि तथा आडम्बर को देखकर भी अपने मत में दृढ रहना।

परिषह् जीवन की एक बहुत बडी कडी परीक्षा है, साधक के लिये इसमे उत्तीर्ण होना अनि-वार्य है। इस मे उत्तीर्णता प्राप्त किये बिना साधना सफल नही हो पाती। जिस प्रकार अग्नि मे डाला हुआ सुवर्ण मल को त्याग कर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार परिषह् रूप भट्टी मे तपाने से ही यह आत्मा शुद्ध हो सकता है। सयम-मार्ग की ओर प्रस्थित होनेवाले मानव के लिये उक्त बाईस परिषह् एक दुर्गम घाटी हैं, जो इसको पार कर लेता है, वह ससार-सागर को पार कर लेता है। इतिहास इस का साक्षी है। अर्जुनमाली ने साधु-जीवन अगीकार कर लेने के अनन्तर सर्व प्रथम इसी दुर्गम घाटी को पार किया था। बेले के पारणे के निमित्त जब वे राजगृह् नगर मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते है, तो उस समय गालिया उनको दी गई, अपमान-जनक शब्दो के प्रहार उन पर किए गये, अधिक क्या मारपीट तक की गई। इस प्रकार अपमान के विष भरे प्याले उनको पीने पडे। पर यह सब कुछ परवशता से नही किया गया। सयम-साधना की भावना को आगे रख कर किया गया। बडी शान्ति तथा धीरता के साथ इन्होने परिषहो पर विजय प्राप्त की। परिषहो की वर्षा होने पर भी अपने मुनि-जनोचित कर्तव्य से अणुमात्र भी विचलित न होना उपस्थित हुए कष्ट को अपने प्राक्तन कर्म का फल समझते हुए उसके विपाक मे किसी प्रकार का भी आर्त्तध्यान न करना, यही परिषहो पर विजय प्राप्त करना है। यही विजय अर्जुनमाली मुनि ने प्राप्त की थी। यही कारण है कि राजगृह् नगर मे भिक्षा के निमित्त घूमते हुए अर्जुन मुनि को यहा की जनता के द्वारा जो कष्ट प्राप्त हुए उनके होते हुए भी वे अपनी साधु-जनोचित वृत्ति मे स्थिर रहे, मन से भी किसी पर द्वेष नही किया, प्रत्युत जो कुछ भी कष्ट प्राप्त हुआ, उसको समभाव मे रहते हुए बडी शान्ति और धैर्य से सहन किया। इसी समभाव का यह सत्परिणाम है कि वे समस्त कर्म-बधनो का विच्छेद करके अपने अभीष्ट परम कल्याण स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

"णयरे उच्च जाव अडमाणे"—जहा पठित जाव पद **"नीयमज्झिम कुलाइ"** इस अवशिष्ट

पाठ का बोधक है। यहा उच्च, नीच, मध्यम ये तीन शब्द हैं और ये कुल के विशेषण हैं। कुल शब्द के अनेको अर्थ पाये जाते है। 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' नामक कोष मे कुल शब्द के ये अर्थ लिखे हैं—वश, जाति, पैतृक वश, परिवार, सजातीय समूह, गोत्र, घर, गृह। प्रस्तुत प्रकरण मे कुल शब्द परिवारार्थक प्रतीत होता है। उच्च शब्द धन प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से असाधारण परिवार का, नीच शब्द धन आदि की हीनता की दृष्टि से साधारण परिवार का तथा मध्यम शब्द न विशेष प्रतिष्ठित और न विशेष अप्रतिष्ठित परिवार का बोधक है।

"डहरा य महल्ला य"—डहरा बाला, महान्त. वृद्धा। यहा पठित डहर शब्द बालक का तथा 'महल्ल' शब्द वयोवृद्ध व्यक्ति का बोधक है।

"इमेण मे अण्णयरे सयणसबधिपरियणे मारिए"—अनेन मेऽन्यतर स्वजनसबधिपरिजनो मारित। यहा पठित स्वजन शब्द चाचा, भाई पुत्र आदि पारिवारिक व्यक्तियो का, सम्बन्धी शब्द श्वसुर, साला, बहनोई आदि रिश्तेदारो का तथा परिजन शब्द दास, दासी आदि व्यक्तियो का परिचायक है।

"अक्कोसति, हीलति, निंदति, खिसंति, गरिहति, तज्जेंति"—आक्रोशन्ति—कटुवचनैर्भर्त्सयन्ति, हेलयन्ति—अनादर कुर्वन्ति, निन्दन्ति—निंदा कुर्वन्ति, खिसति—दुर्वचनं कृत्वा तस्मिन् क्रोधमावेशयितु प्रयतन्ते, गरिहति—दोषमाविष्कुर्वन्ति, तर्जयन्ति—तर्जना कुर्वन्ति, तर्जनी प्रभृत्यऽगुल्यादिभिर्भीतिमुत्पादयितु प्रयतन्ते, तर्जयन्ति, ताडयन्ति—यष्ट्यादिना ताडना कुर्वन्ति।

इन क्रियापदो का अर्थ इस प्रकार है—

अक्कोसति—कटु वचनो से भर्त्सना करते हैं। भर्त्सना का अर्थ है—लानत मलामत, फटकार, बुरा भला। **हीलन्ति**—अनादर-अपमान करते हैं। **निन्दन्ति**—निन्दा करते हैं, निन्दा का अर्थ है—किसी के दोषो का वर्णन करना, झूठमूठ किसी मे दोष निकालना, किसी मे ऐसा दोप बतलाना जो वास्तव मे न हो, अपवाद, शिकायत तथा बदनामी। **खिसति**—खीजते है, झुझलाते है, कुढते है, दुर्वचन कहकर क्रोधावेश मे लाने का प्रयत्न करते हैं। **गरिहति**—दोपो को प्रकट करते हैं। **तज्जेंति**—तर्जना करते हैं, डाटते हैं डपटते हैं, तर्जनी आदि अगुलियो द्वारा भयोत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। **तालेंति**—लाठियो और पत्थरो आदि से मारते हैं।

"आकोसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे"—यहा पठित जाव पद **"हीलेमाणे, निंदेमाणे, खिसेमाणे, गरिहेमाणे, तज्जेज्जमाणे"** इन पदो का बोधक है। अर्थ स्पष्ट ही है।

"सम्म सहति, सम्म खमति, तितिक्खइ, अहियासेति*"—इन पदो की व्याख्या करते हुए टीकाविद्वद्वय श्री घासीलाल जी महाराज 'सहते' आदि क्रिया पदो का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

"सम्यक् सहते मुखाद्यविकारकरणेन मर्षति, सम्यक् क्षमते क्रोधाभावेन, सम्यक् तितिक्षते अदीनभावेन, सम्यक् अधिसहते निर्जरा भावनया शुद्धान्त करणेन सहते। इस का अर्थ है—

१—**सम्यक् सहते**—सम्यक् रीति से सहन करते है, मुख पर विकार का चिन्ह भी नही आने देते।

२—**सम्यक् क्षमते**—हृदय मे पूर्णतया क्षमाभाव रखते हैं, क्रोध को निकट नही आने देते। **सम्यक तितिक्षते**—दीनता छोड कर सम्यक्तया मध्यस्थ भाव रखते हैं। **सम्यक् अधिसहते**—निर्जरा की भावना से पवित्र अन्त करण होने के कारण परिषहो को बिना किसी सकोच के सहन करते हैं।

कार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

'सहते इत्यादीनि एकार्थानि पदानीति केचित्। अन्ये तु सहते भयाभावेन, क्षमते कोपाभावेन, तितिक्षते दैन्याभावेन, अधिसहते आधिक्येन सहते इति।' इसका अर्थ इस प्रकार है—

कुछ आचार्य **सहते** आदि चारो पदो को एकार्थक मानते हैं, कुछ इनका अर्थभेद करते हुए कहते हैं—**सहते**—बिना किसी भय से सकट सहन करते हैं। **क्षमते**—क्रोध से दूर रह कर शान्त रहते हैं। **तितिक्षते**—किसी प्रकार की दीनता दिखलाये बिना परिषहो को सहन करते हैं। **अधि-सहते**—अच्छी तरह सहन करते हैं।

इन क्रियापदो से ध्वनित होता है कि अर्जुन मुनि की सहनशीलता क्षमा तथा तितिक्षा मे भय, कोप और दीनता का अश नही था। वास्तव मे देखा जाय तो जो सहनशीलता, भय को लेकर होती है, वह वास्तविक सहनशीलता नही है। जिस क्षमा मे क्रोध का अश विद्यमान है, हृदय मे क्रोध छिपा हुआ है, उसे क्षमा नही कहा जा सकता है और दीनतापूर्वक की गई तितिक्षा (बिना प्रतिकार या विकलता के सभी दु खो को सहन करने की शक्ति) वास्तविक तितिक्षा नही कही जा सकती।

आक्रोश आदि परिषहो के सहन करने मे यदि अन्त करण मे अशतया भी कषायो का उदय हो जाता है, तो विकास के बदले यह आत्मा पतन की ओर प्रवृत्त हो जाता है, इसलिये सयम-मार्ग में प्रवृत्त होनेवाले साधक व्यक्ति परिषहो के उपस्थित होने पर भी अपने साधु-जनोचित क्षमा आदि गुणो में किसी प्रकार की भी विकृति नही आने देते। अर्जुनमुनि का पवित्र जीवन इस सत्य का जीवित उदाहरण है। इन्होने समतापूर्वक आक्रोश आदि परिषहो को सहन करते हुए अपनी अपूर्व सयमनिष्ठा का परिचय दिया है। यही कारण है कि राजगृह नगर की जनता द्वारा तर्जना तथा ताडना-जन्य परिषह को सहन करते हुए इन्होने मन से भी किसी पर द्वेष नही किया।

'अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरिततजोगी'* इन पदो की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरी लिखते हैं—

'अदीणे' त्यादि तत्रादीन शोकाभावात्, अविमना न शून्यचित्त, अकलुषो द्वेषवर्जितत्वात्, अनाविल जनाकुलो वा नि क्षोभत्वात्, अविषादी किं मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहित, अत एवापरि-तान्त—अविश्रान्तो योग—समाधिर्यस्य स तथा स्वार्थिकेनन्तत्त्वाच्चापरितान्तयोगी।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन मे किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन—दीनता से रहित था, समाहित चित्त होने से अविमन था, द्वेष-रहित होने से मन मे किसी प्रकार की कलुषता-मलिनता और आकु-लता नही थी। क्षोभ-शून्य होने से मन मे किसी प्रकार का विषाद—दु ख नही था। 'मेरा इस प्रकार के तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है', ऐसी ग्लानि उनके मन मे नही थी, अत एव वह निरन्तर समाधि मे लीन हो रहे थे। समाधि मे सतत लगे रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्त

*अदीन—दीनतामप्राप्त, अविमना—वैमनस्यमप्राप्त, अकलुष—कलुषभावरहित, अनाविल—स्वच्छान्त करण, अविषादी—विषादरहित, अपरितान्तयोगी—अपरितान्तश्चासौ योगश्च अपरितान्तयोग, सोऽस्यास्तीति तथा भूतश्च सन्।

योगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द से स्वार्थ मे 'इन' प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

जैनाचार्यों ने क्षमा, निर्ममत्व, आर्जव और मार्दव ये चार धर्म के द्वार माने हैं अथवा ये धर्म रूप प्रासाद के मूल पाए बताये हैं। इन्ही के आधार पर धर्म का भव्य प्रासाद खडा है, अत जिन महान आत्माओ ने इन चारो को अपनाया है वे ही सच्चे अर्थों मे साधु कहलाने के योग्य होते हैं और ऐसे साधु ही मोक्षमन्दिर के अधिकारी हो सकते हैं। अर्जुन मुनि के जीवन का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्होने उक्त चारो को जीवन मे भली भाति अपना लिया था। अनेकानेक भयकर सकटो के आने पर भी इन्होने इनकी आराधना मे कभी उदासीनता या शिथिलता नही दिखलाई। यही कारण है कि अर्जुनमुनि ने छ मास की साधना द्वारा ही मुक्तिपुरी के द्वार खोल लिये और उसमे जा विराजे।

"जहा गोयमसामी जाव पडिदसेति"—का अर्थ है अर्जुनमुनि आहार लाकर गौतमस्वामी की तरह भगवान महावीर को दिखलाते है। श्री गौतम स्वामी जी के जीवन मे लिखा है कि अनगार गौतम आहार लाकर श्रमण भगवान महावीर के निकट आते हैं, पास बैठकर आने-जाने मे होनेवाले दोषो की निवृत्ति के लिये प्रतिक्रमण करते है, तदनन्तर उन्होने एषणीय (निर्दोष) और अनेषणीय (सदोष) आहार की आलोचना (विचारणा, अथवा प्रायश्चित्त के लिये अपने दोषो को गुरु के सन्मुख निवेदन करना) की, तदनन्तर वे भगवान को पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार दिखलाते हैं। सूत्रकार—**जहा गोयमसामी जाव पडिदसेति"** ये पद देकर यह प्रकट कर रहे हैं कि जिस विधि से गौतम स्वामी ने भगवान महावीर को आहार दिखलाया था, उसी विधि से अर्जुन मुनि अपना लाया हुआ आहार भगवान महावीर को दिखलाते है।

"अमुच्छिए ४"—यहा पर दिए गए ४ के अक से अभीष्ट पदो का सकेत पदार्थ मे कर दिया गया है।

"बिलमिव पण्णगभूएण अप्पाणेण तमाहार आहारेइ"—का अर्थ है, जिस प्रकार साप बिल मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदो का अर्थ वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—

"बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति यथा भुजगो बिलस्य पार्श्वभागद्वयमसस्पृशन् मध्यमार्गत एवात्मान बिले प्रवेशयति तथा मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहार कण्ठनालाभिमुख प्रवेश्याऽऽहारयतीति भाव ।'

अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनो भागो का स्पर्श किए बिना केवल बिल के मध्यभाग से ही बिल मे प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन माली मुख के दोनो भागो का स्पर्श किए बिना केवल मुख मे आहार रख कर गले के नीचे उतार लेते है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल मे प्रवेश करते समय सर्प अपने अगो का उस से स्पर्श नही करता, बडे सकोच से उस मे प्रवेश करता है, उसी

प्रकार किसी प्रकार के आस्वाद की अपेक्षा न करते हुए रागद्वेष से रहित हो कर मुख मे जैसे स्पर्श ही नही हुआ, इस प्रकार से केवल क्षुधा की निवृत्ति के उद्देश्य से अर्जुन मुनि आहार सेवन करते है। इस कथन से इनकी रसविषयक मूर्च्छा के आत्यन्तिक अभाव का ससूचन किया गया है। सयमी व्यक्ति की सर्वोत्कृष्ट साधना रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस साधना के रहस्य को भली भान्ति समझ लिया था और उसे जीवन मे उतार भी लिया था।

"तेण ओरालेण विउलेण पयत्तेण पग्गहिएण महाणुभागेण तवोकम्मेण"—तेन पूर्वभणितेन उदारेण—प्रधानेन, विपुलेन—विशालेन भगवतादत्तेन, प्रगृहीतेन उत्कृष्टभावत स्वीकृतेन, महानुभागेन —महान् अनुभाग प्रभावो यस्य यत्तेन तप कर्मणा। यहा पर अर्जुनमुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महानता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ मे तप कर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण हैं। इनकी अर्थ विचारणा इस प्रकार है—

तेण—यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर सकेत करता है। अर्जुन माली के साधना-प्रकरण मे वताया गया था कि अर्जुनमुनि जब नगर मे भिक्षार्थ जाते थे तब इनको लोगो की ओर से बहुत बुरा-भला कहा जाता था, इनका अपमान किया जाता था, इनकी मार-पीट की जाती थी तथापि ये सब यातनाए शान्तिपूर्वक सहन करते थे। इसके अतिरिक्त इनको कही अन्न मिल जाता था तो पानी नही मिलता था, यदि कही पानी मिल गया तो अन्न नही मिलता था। यह सब कुछ होने पर भी अर्जुन मुनि कभी अशान्त नही हुए, दो दिनो के उपवास के पारणे मे भी सन्तोषजनक भोजन न पाकर इन्होने कभी ग्लानि अनुभव नही की। इस प्रकार के तप को ही सूत्रकार ने **तेण** इस पद से ध्वनित किया है।

उदार—शब्द का अर्थ है—प्रधान। प्रधान सब से बडे को कहते है। भूखा रहना आसान है, रसनेन्द्रिय पर नियत्रण भी किया जा सकता है, भिक्षा द्वारा जीवन का निर्वाह करना भी सभव है पर लोगो से अपमानित हो कर तथा मार-पीट सहन कर तपस्या की आराधना करते चले जाना वच्चो का खेल नहीं है। यह वडा मुश्किल कार्य है, वडी कठोर साधना है, इसी कारण सूत्रकार ने अर्जुनमुनि के तप को उदार अर्थात् सव से वडा कहा है।

विपुल—विशाल को कहते हैं। एक वार कष्ट सहन किया जा सकता है दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जासकता है, परन्तु लगातार छ महीने तक कष्टो की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है? यह समझना कोई कठिन वात नही है। जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर मे प्रवेश करो वहा अनादर की वर्षा, सम्मान का कही चिन्ह भी नही तो ऐसी दशा मे मन को शान्त रखना क्रोध को निकट न आने देना वडा विलक्षण साहस है और वडी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। सभव है इसीलिये सूत्रकार ने अर्जुनमाली की तप-साधना को विपुल—विशाल वडी, कहा है।

प्रदत्त—का अर्थ है—दिया हुआ। अर्जुनमाली जिस तप की साधना कर रहे हैं, यह तप उन्होने बिना किसी से पूछे अपने आप ही आरम्भ नही किया, प्रत्युत इस तप को भगवान महावीर के आदेश से तथा उनसे आज्ञा प्राप्त करके आरम्भ किया था। अतएव सूत्रकार ने इस तप को प्रदत्त कहा है, अर्थात् यह तप भगवान द्वारा दिया हुआ है, भगवान की आज्ञा से आरम्भ किया है।

प्रगृहीत—का अर्थ है—ग्रहण किया हुआ। किसी भी व्रतग्रहण करनेवाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति एक जैसी नही रहती। किसी समय मन मे श्रद्धा का अतिरेक होता है और किसी समय श्रद्धा कमजोर पड जाती है और किसी समय लोकलज्जा के कारण बिना श्रद्धा के ही व्रत का परिपालन किया जाता है। इन सब बातो को आगे रखकर सूत्रकार ने मुनि द्वारा कृत तप को प्रगृहीत विशेषण से विशेषित किया है जो उत्कृष्ट भावना से ग्रहण किया हुआ, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुनमाली की आस्था सकट काल मे शिथिल नही हुई, वे सुदृढ साधक बन कर साधना-जगत् मे आए थे और अन्त तक सुदृढ साधक ही बने रहे। उन्होने अपने मन को कभी डाँवाडोल नही होने दिया।

यदि **पयत्तेण** का सस्कृत रूप **प्रयत्नेन** किया जाय तो उदार और विपुल ये दोनो प्रयत्न के विशेषण बन जाते हैं, तब इनका अर्थ होगा—प्रधान विशाल प्रयत्न से ग्रहण किया गया है। उसके लिये बडे बडे ऐहिक स्वार्थो प्रलोभनो को ठुकराया गया है, तब कही जाकर इसे अगीकार किया गया है। तप करना साधारण बात नही है इसके लिये बडे पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी महान पुरुषार्थ को प्रधान विशाल प्रयत्न कहा गया है।

"महानुभाग" शब्द जिसका प्रभाव हो, प्रभावशाली, इस अर्थ का बोधक है। जिस तप के प्रताप से अर्जुनमुनि ने जन्म जन्मान्तर के कर्मों को नष्ट कर दिया, परम साध्य निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया, उसकी प्रभावगत महानता मे क्या आशका हो सकती है?

जैनाचार्यों का विश्वास है कि आत्मा के साथ लगे हुए कर्म-मल को जलाने के लिये तप रूप अग्नि की नितान्त आवश्यकता होती है, तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मल के भस्मसात् होने पर यह आत्मा शुद्ध स्फटिक की भाति निर्मल हो जाती है। इसलिये अर्जुनमुनि ने सयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा को निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। उसके द्वारा आत्म-लिप्त कर्म-मल को जलाकर उसे निर्मल बना डाला। जिसके परिणामस्वरूप वे कैवल्य-प्राप्ति के अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हो गये।

"सलेहणाए" आदि सभी पदो की व्याख्या पीछे की जा चुकी है।

श्रेणिक-चरित्र मे लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर मे मुद्गरपाणि यक्ष का पाच मास १३ दिनो तक प्रवेश रहा, उससे उसने ११४१ व्यक्तियो का प्राणान्त किया, इनमे ९७८ पुरुष और १६३ स्त्रियाँ थी। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियो की हत्या करता रहा। यहा एक आशका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बडा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान पतन किया उस व्यक्ति को केवल ६ मास की साधना से मुक्ति प्राप्त हो गई? यह एक विलक्षण बात है। स्थानाग सूत्र के चतुर्थ स्थान के नरकायु-बन्ध प्रकरण मे जीव-वध को नरकायु के

बन्ध का कारण माना है तो फिर ११४१ जीवो का घात होने पर अर्जुनमुनि मुक्त कैसे हो गए ? उत्तर मे निवेदन है कि ११४१ जीवो के घात का सभी दायित्व मुद्‌गरपाणि यक्ष पर है, अर्जुनमाली के साथ उसका कोई विशेष सम्बन्ध नही है। अर्जुनमाली की धर्मपत्नी बधुमती को जब पकडा गया और उसके साथ व्यभिचार-प्रधान बलात्कार किया गया तो उस समय अर्जुनमाली के हृदय मे इतना विचार आया कि मैं वर्षों से मुद्‌गरपाणि यक्ष का पुजारी हू, परन्तु मेरे पर इतनी वडी आपत्ति आने पर भी वह कुछ नही कर पा रहा, इसका मतलब यह है कि यह केवल काष्ठ ही है, इसमे कोई शक्ति नही है। अर्जुनमाली की इस विचारणा मे कही भी ऐसा कोई शब्द नही आया जिससे बधुमती तथा उस पर बलात्कार करनेवाले पुरुषो का प्राणान्त कर दिया जाये। वह तो अपनी धर्मपत्नी के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को देखकर मुद्‌गरपाणि यक्ष के प्रति अपनी अश्रद्धा तथा अविश्वास प्रकट कर रहा है। इसके अतिरिक्त उसने प्राणिवध जैसी कोई बात नही सोची और न उसने इस प्राणिवध के लिये यक्ष को ही प्रेरित किया। अत ११४१ व्यक्तियो के वध का दायित्व अर्जुनमाली पर डालना, शास्त्र-सम्मत या तर्क-सगत प्रतीत नही होता। इसका यह भी अर्थ नही समझ लेना चाहिये कि बधुमती के साथ बलात्कार करनेवाले व्यक्तियोके लिये अर्जुनमाली के हृदयमे कोई द्वेष नही था वह उन्हें उनके इस कुकृत्य के लिये कोई दण्ड नही देना चाहता था। नारी-सम्मान के साथ खिलवाड करनेवाले तथा उसके सतीत्व को भग करनेवाले व्यक्तियो को दण्डित करने की भावना का पैदा होनी स्वाभाविक है, तथापि अर्जुनमाली द्वारा अपनी शक्ति या अपनी स्ववशता से ११४१ प्राणियों के वध होने का उल्लेख शास्त्र मे नही है और ऐसा सम्भव भी नही है जो व्यक्ति अपने बन्धन खोलने मे असमर्थ रहा हो वह इतना बडा हत्याकाण्ड कैसे कर सकेगा ? यह सर्वथा असभव है। वस्तुत इतना बडा हत्याकाण्ड अर्जुन-माली मे प्रविष्ट हुए मुद्‌गरपाणी यक्ष ने ही किया था यदि यक्ष उसमे प्रवेश न करता तो इस हत्या-काण्ड की सभावना भी नही हो सकती थी ?

अन्तगडसूत्र के छठे वर्ग के प्रस्तुत तृतीय अध्ययन मे अर्जुनमाली के हिंसा-प्रधान जीवन का उल्लेख किया गया है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से इस जीवन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति बुरा नही होता, वस्तुत व्यक्ति मे अवस्थित बुराई ही बुरी होती है। जब तक व्यक्ति का बुराई से सम्पर्क रहता है तब तक वह बुरा है, जब बुराई से वह किनारा कर लेता है तब वही बुरा व्यक्ति अच्छा बन जाता है। यदि बुराई छोडने के साथ-साथ वह धर्माराधन में लग जाता है, सयम-साधन को अपना लेता है, साधना-काल मे उपस्थित होनेवाले सकटों को सहर्ष बिना किसी उद्देश्य के सहन कर लेता है, फिर तो वह मुक्ति पुरी के द्वार भी खोल लेता है। अर्जुनमाली का त्याग-प्रधान जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है।

जाति को काम नही जिन मार्ग ।
सयम को प्रभु आदर दीने ॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

ग्यारह अध्ययन

(चार से ग्यारह तक)

मूल—तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णयरे गुणसिलए चेतिए। तत्थ ण सेणिए राया, कासवे णाम गाहावई परिवसइ, जहा संकाति, सोलस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एव खेमतेऽवि गाहावई, नवर कागदी णयरी, सोलस वासा परियाओ, विपुले पव्वए सिद्धे।

एव धितिहरेवि गाहावई, कामदी णयरी सोलस वासा पारियाओ जाव विपुले सिद्धे।

एव केलासेवि गाहावई, नवर सागेए णयरे, बारस वासाइ परियाओ, विपुले सिद्धे।

एव हरिचदणे वि गाहावई, सागेए बारस वासाइ परियाओ, विपुले सिद्धे।

एव वारत्तते वि गाहावई, नवर रायगिहे णयरे, बारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एव सुदसणे वि गाहावई, नवर वाणियगामे णयरे, दूतिपलासए चेतिए, पच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एव पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणियगामे णयरे, पच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं सुमणभद्दे वि गाहावई, नवर सावत्थी णयरी, बहुवासपरियाओ, विपुले सिद्धे।

एव सुपइट्ठे वि गाहावई, सावत्थी णयरी, सत्तावीस वासाइ परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं मेहे वि गाहावई, रायगिहे णयरे, बहूइ वासाइ परियाओ, विपुले सिद्धे।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नगर, गुणशिलक चैत्य। तत्र श्रेणिको राजा, काश्यपो नाम गाथापति परिवसति। यथा मकाति षोडश वर्षाणि पर्याय, विपुले सिद्ध।

एव क्षेमकोऽपि गाथापति , नवर काकदी नगरी, षोडश वर्षाणि पर्याय , विपुले पर्वते सिद्ध ।
एव धृतिधरोऽपि गाथापति , कामदी नगरी, षोडश वर्षाणि पर्याय , यावत् विपुले सिद्ध ।
एव कैलाशोऽपि गाथापति , नवर साकेतनगर द्वादशवर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव हरिचन्दनोऽपि, गाथापति साकेते द्वादश वर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव वारत्तकोऽपि गाथापति , नवर राजगृह नगर, द्वादश वर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव सुदर्शनोऽपि गाथापति , नवर वाणिज्यग्रामनगर, दूतिपलाशक चैत्य पचवर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।

एव पूर्णभद्रोऽपि गाथापति , वाणिज्यग्रामनगरं, पचवर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव सुमनगा भद्रोऽपि, थापति श्रावस्ती नगरी, बहुवर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव सुप्रतिष्ठितोऽपि गाथापति , श्रावस्ती नगरी, सप्तविंशतिवर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।
एव मेघ , राजगृह नगर, बहूनि वर्षाणि पर्याय , विपुले सिद्ध ।

पदार्थ—**तेण कालेण तेण समएण**—उस काल तथा उस समय मे, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर था, **तत्थ ण गुणसिलए चेतिए**—वहाँ पर गुणशिलक चैत्य अर्थात् उद्यान था, **सेणिए राया**—श्रेणिक नामक राजा राज करता था, **कासवे नाम गाहावई परिवसइ**—काश्यप नामक गाथापति रहता था, **जहा मकाती**—जिस प्रकार सेठ मकाति का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सेठ काश्यप का भी समझ लेना। उस की तरह इस ने भी, **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और, **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर सिद्ध पद पाया।

एव खेमतेऽवि गाहावई—इसी प्रकार क्षेमक सेठ भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो कर सिद्ध बने, **नवर**—इतना अन्तर है कि, **काकदी नगरी**—नगरी का नाम काकदी था। काश्यप की तरह इन्होने भी, **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्ष दीक्षा पर्याय पाली, **विपुले पव्वए सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध हुए।

एव धितिहरेऽवि गाथावई—इसी प्रकार से धृतिधर सेठ का वर्णन भी जानना, **कामदी नगरी**—कामदी नाम की नगरी थी, **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्षों की दीक्षा पाली। **जाव**—यावत् भगवान से आज्ञा लेकर तथा स्थविर सन्तो को साथ लेकर, **जाव विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर गए और सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव केलासेवि गाहावई—इसी प्रकार कैलाश गाथापति का जीवन चरित भी समझें, **नवर सागेए नगरे**—अन्तर इतना है कि नगरी का नाम साकेत था, **बारस वासाइ परियाओ**—बारह वर्ष तक दीक्षा की पर्याय पाली, **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव हरिचदणे वि गाहावई—इसी प्रकार सेठ हरिचन्दन की भी साधना समझनी चाहिये **सागेए**—साकेत नगरी मे, **बारस वासा परियाओ** बारह वर्ष की दीक्षा का पालन किया और, **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव वारत्तते वि गाहावई—इसी प्रकार वारत्तक नामक गाथापति का जीवन भी समझ लेना चाहिये। **नवर रायगिहे नगरे**—अन्तर इतना है कि नगरी का नाम राजगृह था, **बारस वासा परियाओ**—बारह वर्ष तक दीक्षा का पालन किया, **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव सुदसणे वि गाहावई—इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति का भी जीवन समझ लेना चाहिए। **नवर वाणिय गामे णयरे**—अन्तर इतना है वाणिज्य नाम का नगर था, **दूतिपलासए चेतिए**—दूति पलाश नामक चैत्य था, **पच वासा परियाओ**—दीक्षा पर्याय पच वर्ष तक पालन की, **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव पुण्णभद्दे वि—इसी प्रकार पूर्णभद्र का जीवन भी जानना, **वाणिय गामे णयरे**—वाणिज्य ग्राम नामक नगर था, **पच वासा परियाओ**—पच वर्ष तक दीक्षा का पालन किया। **विपुले सिद्धे**—विपुल गिरि पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव सुमणभद्दे वि—इस प्रकार सेठ सुमनभद्र का भी जीवन जानना। **सावत्थी णयरी**—श्रावस्ती नामक नगर था, **बहुवास परियाओ**—बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय पाली, **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध हुए।

एव सुपइट्ठे वि—इसी प्रकार सेठ सुप्रतिष्ठित का जीवन जानना, **सावत्थी णयरी**—श्रावस्ती नगरी थी, **सत्तावीस वासाइं परियाओ**—सत्ताईस वर्ष तक दीक्षा पर्याय पाली, **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एव मेहे विगाहावई—इसी प्रकार मेघ गाथापति का भी जीवन जानना, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नाम का नगर था, **बहूइ वासाइं परियाओ**—बहुत वर्षों तक दीक्षा पालन किया, **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—उस काल एव उस समय मे राजगृह नामक एक नगर था, उसमे गुणशिलक नामक उद्यान था। नगर मे महाराजा श्रेणिक राज्य किया करते थे। वहा काश्यप नामक एक धनिक सेठ रहता था। सेठ मकाती की तरह इन्होने भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षा अगीकार की सोलह वर्षों तक सयम का पालन करते हुए अन्त मे विपुल गिरि पर कर्म-निर्जरा करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

सेठ काश्यप की तरह क्षेमक ने भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षा अगीकार की, सोलह वर्ष तक सयम-साधना का पालन करके अन्त मे विपुल गिरि पर सिद्ध पद प्राप्त किया। अन्तर केवल इतना था कि—इनकी नगरी काकदी थी।

सेठ क्षेमक की तरह सेठ धृतिधर ने भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो कर सोलह वर्ष तक सयम पालकर अन्त मे विपुल गिरि पर सिद्ध पद पाया। काम्‌दी इनकी नगरी थी।

इसी प्रकार सेठ धृतिधर की भाति सेठ कैलाश ने भी दीक्षित हो विपुल गिरि पर निर्वाण पद पाया। अन्तर केवल इतना है कि इनका नगर साकेत था (अयोध्या थी) और बारह वर्षों तक सयम पाला।

सेठ कैलाश की तरह सेठ हरिचन्दन ने भी भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर बारह वर्षों तक सयम पालन करके सिद्ध पद पाया। इनका भी नगर साकेत था।

सेठ हरिचन्दन की भान्ति सेठ वारत्तक ने भी दीक्षित होकर बारह वर्षो तक सयम पाल कर विपुल गिरि पर सिद्धपद पाया, अन्तर केवल इतना है कि इनका नगर राजगृह था।

सेठ वारत्तक की तरह सेठ सुदर्शन ने भी दीक्षित होकर विपुल पर्वत निर्वाण पद पाया। अन्तर केवल इतना है कि वे वाणिज्य नामक ग्राम के निवासी थे। दीक्षा-पर्याय पाच वर्ष तक पाली और दूतिपलाश नामक उद्यान था।

सेठ सुदर्शन की तरह सेठ पूर्णभद्र भी वाणिज्य नामक ग्राम मे पाच वर्षों की दीक्षा-पर्याय पाल कर विपुल गिरि पर्वत पर सिद्ध हुए।

सेठ पूर्णभद्र की तरह सेठ सुमन भद्र ने भी श्रावस्ती नगरी मे दीक्षित हो कर अनेको बर्षो तक दीक्षा का पालन करके विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया।

सेठ सुमनभद्र की तरह सेठ सुप्रतिष्ठित भी श्रावस्ती नगरी मे सत्ताईस वर्षों तक दीक्षा का पालन करके विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

सेठ सुप्रतिष्ठित की तरह सेठ मेघकुमार ने भी राजगृह नगर मे दीक्षित हो कर अनेक वर्षों तक सयमपाल का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्धावस्था पाई।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे ग्यारह श्रावको के जीवनो का उल्लेख किया गया है। ये सब मोह-ममत्व के बन्धन तोड कर तथा वैराग्य से नाता जोडकर मगलमय करुणासागर भगवान महावीर के चरणो मे पहुचकर साधु बन गये थे, अहिंसा, सयम और तप की त्रिवेणी मे गोते लगाकर एक दिन सब

ने निर्वाण पद प्राप्त कर लिया था। इनके जीवन मे जो-जो अन्तर है वह निम्नोक्त तालिका मे दिया जा रहा है—

	नाम	नगर	उद्यान	दीक्षापर्याय	निर्वाण-स्थान
१	श्री काश्यप जी	राजगृह नगरी	गुणशिलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
२	श्री क्षेमक जी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३	श्री धृतिधर जी	कामदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४	श्री कैलाश जी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५	श्री हरिचन्दन जी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६	श्री वारत्तक जी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७	श्री सुदर्शन जी	वाणिज्य नगर ग्राम	दूतीपलाश	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८	श्री पूर्णभद्र जी	वाणिज्य ग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९	श्री सुमनभद्र जी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१०	श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११	श्री मेघकुमार जी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

इन सभी श्रावको के साधु-जीवन को सूत्रकार ने सेठ मकाति के समान बतलाया है। सेठ मकाति राजगृह नगर के वैभवशाली और जनगण-मान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे अपने बडे पुत्र को अपने परिवार का सारा उत्तरदायित्व सभाल कर तथा पुरुष-सहस्रवाहिनी पालकी मे बैठकर भगवान महावीर की सेवा मे उपस्थित हुए थे और साधु बन गये थे। भगवान महावीर के तथारूप (शास्त्रोक्त मर्यादा के परिपालक) स्थविरो के पास उन्होने ग्यारह अग-शास्त्र पढे थे। विद्याध्ययन के साथ-साथ इन्होने **गुणरत्न** नाम का तप भी किया था। सोलह वर्ष तक सयम-साधना करने के अनन्तर वे विपुलगिरि पर्वत पर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए थे। सेठ मकाति की इस जीवन-चर्या के साथ समानता अभिव्यक्त करने के लिये ही सूत्रकार ने सेठ काश्यप के जीवन मे **"जहा मकाति"** ये पद दिए हैं।

'विपुले'—का अर्थ है—विपुल पर। विपुल एक पर्वतविशेष का नाम है। इसी पर्वत पर आरोहण करके मुनिवर मकाति तथा अन्य काश्यप आदि मुनिराजो ने आमरण अनशन करके सिद्ध पद उपलब्ध किया था।

'नवर'—यह अव्यय पद है। इसका अर्थ है—यह अन्तर है। जैसे क्षेमक का जीवन सेठ काश्यप के समान बताया है, पर इसमे कुछ अन्तर भी है। इसी अन्तर को **नवर** इस अव्ययपद से ध्वनित किया गया है।

"परियाश्रो जाव विपुले सिद्धे"—यहा पठित जाव पद मुनिवर धृतिधर ने जीवन के सन्ध्या-काल मे भगवान महावीर स्वामी से पूछकर तथारूप स्थविरो के साथ विपुल गिरि पर आरोहण किया और वहा सलेखना द्वारा आत्मशुद्धि की' आदि सभी अवशिष्ट साधना की ओर सकेत करता है।

"बहुवासपरियाश्रो"—का अर्थ है—बहुत वर्षों तक सयम का पालन किया। सूत्रकार ने जैसे

काश्यप आदि मुनिराजो की दीक्षा-पर्याय का निश्चित रूप से संकेत किया है वैसे श्री सुमनभद्र जी तथा श्री मेघकुमार जी मुनिराजो की दीक्षापर्याय का निर्देश नही किया। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यो ? उत्तर मे निवेदन है कि भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग ९८० वर्षों के अनन्तर वलभी नगरी मे देवर्द्धिगण क्षमाश्रमणो के नेतृत्व मे एक मुनिसम्मेलन हुआ, उसमे इन्होने मुनिराजो को जो आगम-पाठ स्मरण थे, उनका संकलन किया और उनको अनेको प्रतियां लिखवाकर उनको सदा के लिये सुरक्षित कर दिया। इनमे वे ही पाठ लिखे गये जो मुनियो को याद थे। जो पाठ उनको याद नही थे उनको लिखने का प्रश्न ही नही उपस्थित होता। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित मुनिराज सुमनभद्र तथा मेघकुमार की दीक्षा-पर्याय का काल-विस्मृत हो जाने के कारण ही लिखा नही जा सका होगा।

इस सूत्र मे ११ श्रावकों की जीवनी है इनका गृहस्थ जीवनियां हैं, वैभव को छोडकर दीक्षित होना और अनगार-धर्म का यथाविधि पालन करके अक्षय सुख को प्राप्त करना, इनके हृदय मे अवस्थित उत्कृष्ट धर्म-श्रद्धा का ही शुभ परिणाम है। जैन-शास्त्रो ने धर्म-श्रद्धा का बडा सुन्दर फल बतलाया है। उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वे अध्ययन मे भगवान महावीर धर्म श्रद्धा-जनित फल का कितनी मोहक पद्धति से निर्देश करते हैं—

*** धम्म सद्धाए ण भंते ! जीवे किं जणयइ ?**

धम्मसद्धाए ण जीवे सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ। आगार-धम्म चयइ, अणगारिए ण जीवे सरीरमाणसाण दुक्खाण छेयणभेयणसजोगाईण वोच्छेयं करेइ अव्वाबाहं च ण सुहनिव्वत्तेइ।

इन पदो का अर्थ इस प्रकार है—

प्रश्न—भगवन ! धर्मश्रद्धा से इस जीव को क्या फल मिलता है ?

उत्तर—धर्म-श्रद्धा से जीव सातावेदनीय कर्म-जनित सुख से विरक्त हो जाता है। फिर गृहस्थ आश्रम को छोडकर अनगार बन जाता है। अनगार बनकर शारीरिक और मानसिक दुःखो का छेदन-भेदन कर देता है तथा संयोग आदि जन्य दुःखो का विच्छेद करके शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है।

धर्म-श्रद्धा की महिमा अपरम्पार है, धर्म-श्रद्धा से ही मनुष्य के अन्तर्जगत मे वैराग्य के दीप जलते हैं और वैराग्यवान पुरुष ही संयम के महापथ पर चलकर अपने परमसाध्य मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेता है।

वैराग्य अवस्था को नही देखता। साधक चाहे बालक हो, युवा हो, या वृद्ध हो, इससे कोई अन्तर नही पडता। साधक मे वैराग्य होना चाहिये, यदि वह बढता ही चला जाय तो बस बेडा पार है।

॥ ग्यारहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

---

* धर्मश्रद्धया भदन्त ! जीव किं जनयति ? धर्मश्रद्धया सातासुखेषु रज्यमाणो विरज्यते। आगारधर्म च त्यजति, अनगारो जीव शारीरमानसाना दुःखाना छेदन भेदन संयोगादीना उच्छेद करोति अव्याबाध च सुख निर्वतयति।

पन्द्रहवां अध्ययन

अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के चौदह अध्ययनो का वर्णन पीछे के पृष्ठो पर किया जा चुका है अब पन्द्रहवें अध्ययन का स्थान है, अत सूत्रकार उसका आरभ करते हुए कहते हैं—

मूल—**तेण कालेण तेण समएणं पोलासपुरे णयरे, सिरिवणे उज्जाणे, तत्थ ण पोलासपुरे णयरे विजये नाम राया होत्था। तस्स ण विजयस्स रन्नो सिरी नाम देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रन्नो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नाम कुमारे होत्था, सूमाले।**

तेण कालेणं तेणं समएण समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेण कालेणं तेण समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूती, जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे णयरे उच्च जाव अडइ। इम च ण अइमुत्ते कुमारे ण्हाते जाव विभूसिए बहूहि दारएहि य दारियाहि य, डिभएहि य डिभियाहि य, कुमारएहि य कुमारयाहि य सद्धि सपरिवुडे सतो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव इदट्ठाणे तेणेव उवागए, तेहि बहूहि दारएहि य ५ संपरिवुडे अभिरममाणे २ विहरइ। तते ण भगव गोयमे पोलासपुरे णयरे उच्चनीय जाव अडमाणे इदट्ठाणस्स अदूरसामतेण वीतीवयइ, तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम अदूर सामतेण वीतीवयमाण पासइ, पासित्ता जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता भगव गोयम एव वयासी।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पोलासपुर नगर, श्रीवनमुद्यानम्। तत्र हि पोलासपुरे नगरे विजयनामा राजाऽभूत्। तस्य विजयस्य राज्ञ श्रीनाम्नी देव्यभूत्, वर्णक, तस्य विजयस्य राज्ञ पुत्र श्रिया देव्या आत्मज अतिमुक्तो नाम कुमारोऽभूत्, सुकुमार।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो यावत् श्रीवने विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूति, यथाप्रज्ञप्तौ यावत् पोलासपुरे नगरे उच्च यावत् अटति। अयञ्चातिमुक्त कुमार स्नातो यावत् विभूषित बहुभि दारकैश्च दारिकाभिश्च, डिभकैश्च, डिबिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं सम्परिवृत स्वकाद् गृहाद् प्रतिनिष्क्रमति प्रतिनिष्क्रम्य, यत्रैव इन्द्रस्थान तत्रैव उपागत, तै बहुभि दारकैश्च ५ अभिरममाणोऽभि रममाणो विहरति।

तत भगवान् गौतम पोसासपुरे नगरे उच्चनीच० यावत् अटन् इन्द्रस्थानस्य अदूर-

सामन्ते व्यतिव्रजति। तत सोऽतिमुक्त भगवन्त गौतममदूरसामन्ते व्यतिव्रजन्त पश्यति, दृष्ट्वा यत्रैव भगवान् गौतमस्तत्रैव उपागत उपागत्य, भगवन्त गौतमसेवमवदत्।

पदार्थ—**तेण कालेण**—उस काल तथा, **तेण समएण**—उस समय, **पोलासपुरे**—पोलासपुर नाम का, **नगरे**—नगर था वहा, **सिरिवणे**—श्रीवन नामक, **उज्जाणे**—उद्यान था, **तत्थ ण**—वहा, **पोलासपुरे नगरे**—पोलासपुर नगर मे, **विजय नाम**—विजय नाम का, **राया**—राजा, **होत्था**—था, **तस्स ण**—उस, **विजयस्स रण्णो**—विजय राजा की, **सिरी नाम**—श्री नाम की, **देवी होत्था**—पट्टरानी थी, **वण्णग्रो**—इस की गुण-सम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-गुणसम्पदा के समान जानना चाहिये, **तस्स ण**—उस, **विजयस्स रण्णो**—विजय राजा के, **पुत्ते**—पुत्र, **सिरीए देवीए**—श्री देवी के, **अत्तए**—आत्मज, **अतिमुत्ते नाम कुमारे**—अतिमुक्त नाम का कुमार, **होत्था**—था, **सूमाले**—जो सुकुमार हाथ पांवो वाला था।

तेण कालेण तेण समएण—उस काल एवं उस समय मे, **समणे भगव महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर, **जाव सिरीवणे**—यावत् श्रीवन नामक उद्यान मे, **विहरइ**—विहरण कर रहे थे, **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल एव उस समय, **भगवो महावीरस्स**—भगवान् महावीर के, **जेट्ठे अतेवासी**—प्रधान शिष्य **इदभूती**—इन्द्रभूति, **जहा पण्णत्तीए**—जिस प्रकार भगवती सूत्र मे वर्णित किया गया है, **जाव**—उसी प्रकार, **पोलासपुरे णयरे**—पोलासपुर नगर मे, **उच्च जाव**—सामान्य तथा मध्यम परिवारो मे भिक्षार्थ, **अडइ**—भ्रमण करते हैं, **इम च ण**—और इधर, **अइमुत्ते कुमारे**—अतिमुक्त कुमार, **ण्हाते**—स्नान करके, **जाव**—यावत्, **विभूसिए**—सर्वविध आभूषणो से विभूषित हो कर, **बहूहिं**—बहुत से, **दारएहिं य**—दारको—सामान्य बालको—अच्छी आयु के बच्चो के, **दारियाहिं य**—और सामान्य बालिकाओ के, **डिंभएहिं य**—और डिंभो—लघु बालको, छोटी आयु के बच्चो के, **डिंभियाहिं य**—और छोटी आयु की लडकियो के, **कुमारएहिं य**—और कुमार अविवाहित लडको के, **कुमारियाहिं य**—और अविवाहित लडकियो के, **सद्धि**—साथ, **सपरिवुडे**—घिरा हुआ, **सतो गिहाओ**—अपने घर से, **पडिनिक्खमइ**—निकलता है, **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर, **जेणेव**—जहा पर, **इ दट्ठाणे**—इन्द्रस्थान (बच्चो के खेलने का स्थान था), **तेणेव**—वहा पर, **उवागए**—गया, वहा पर, **तेहिं**—उन, **बहूहिं**—बहुत से, **दारएहिं य**—दारको अच्छी आयु के लडको और, ५—यह अक अच्छी आयु वाली लडकियो के, छोटी आयु के बालको के, छोटी आयु की बालिकाओ के, अविवाहित लडको तथा अविवाहित लडकियो के साथ इस अवशिष्ट पाठ का ससूचक है, **सपरिवुडे**—घिरा हुआ, **अभिरममाणे २**—क्रीडाए करता हुआ, **विहरइ**—विहरण करने लगा, **तए ण**—उसके अनन्तर, **भगव**—भगवान, **गोयमे**—गौतम, **पोलासपुरे नगरे**—पोलास पुर नामक नगर मे, **जाव**—यावत् मध्यम परिवारो मे, **अडमाणे**—भ्रमण करते हुए, **इ दट्ठाणस्स**—इन्द्र स्थान के, **अदूरसामतेण**—न अति निकट और न ही अति दूर, **वीतीवयइ**—जाते हैं, **तए ण**—उस के अनन्तर, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार, **भगव गोयम**—भगवान गौतम जी महाराज को, **अदूरसामतेण**—पास मे, **वीतीवयमाण**—जाते हुए को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—देख कर, **जेणेव**—जहा पर, **भगव गोयमे**—भगवान गौतम थे,

तेणेव—वहा पर; **उवागते**—आता है, **उवागच्छित्ता**—आ कर, **भगव गोयम**—भगवान गौतम को **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय मे पोलासपुर नामक एक नगर था, वहा श्रीवन नामक उद्यान था। नगर मे महाराजा विजय राज्य किया करते थे। रानी का नाम श्रीदेवी था। औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी गुण-सम्पदा के समान इसकी गुण-सम्पदा थी। महाराज विजय के पुत्र, श्रीदेवी के आत्मज अतिमुक्त कुमार नाम का एक कोमलागी लडका था।

उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी वहा पधारे और नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान मे विराजमान हो गये। भगवान महावीर के प्रधान शिष्य श्री इन्द्रभूति जी महाराज जिस प्रकार भगवती सूत्र मे वर्णित हुआ है, उसी प्रकार बेले के पारणे के निमित्त पोलासपुर नगर मे गये। वहा उच्च (असाधारण), नीच (साधारण) तथा मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ भ्रमण करने लगे।

जिस समय भगवान गौतम भिक्षार्थ नगर मे भ्रमण कर रहे थे, उसी समय स्नानादि से निवृत्त होकर एव सर्वविध आभूषणो से अलकृत होकर श्री अतिमुक्त कुमार अनेको लडके-लडकियो, बालक-बालिकाओ, कुमार तथा कुमारियो के साथ एकत्रित होकर अपने घर से निकले और इन्द्रस्थान (वह स्थान जहा बच्चे क्रीडा करते हैं) मे पहुचे। वँहा अपने सभी साथी लडके-लडकियो, बालक-बालिकाओ, कुमार-कुमारियो के साथ क्रीडा मे व्यस्त हो गए।

भगवान गौतम पोलासपुर नगर के, उच्च, नीच तथा मध्यम परिवारो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए जब इन्द्रस्थान के पास से निकले तब उन्हे अतिमुक्त कुमार ने देख लिया। देखते ही वह भगवान गौतम के पास आया और भगवान गौतम से निवेदन करने लगा।

व्याख्या—इस सूत्र से अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन का आरम्भ होता है, इसमे राजकुमार अतिमुक्त के जीवन का परिचय करवाया गया है। अतिमुक्त कुमार पोलासपुर नरेश महाराजा विजय के पुत्र थे, इनकी माता का नाम श्रीदेवी था, राजकुमार के अग बडे कोमल थे, वह विनीत था, साधु-सन्तो के दर्शन से उसे बचपन से ही प्यार था, यही प्यार आगे चलकर उसके लिये वरदान बन गया था।

एक बार अतिमुक्त कुमार अपने समवयस्क लडके-लडकियो के साथ पोलासपुर के सुप्रसिद्ध क्रीडा-स्थान मे खेल रहा था, अचानक उसकी दृष्टि पास से जाते हुए एक मुनिराज पर पड गई, यह मुनिराज भगवान महावीर के प्रधान शिष्य तपोमूर्ति भगवान गौतम थे। वे अपने धर्माचार्य भगवान महावीर की आज्ञा से बेले की तपस्या के पारणे के लिये भिक्षार्थ नगर मे भ्रमण कर रहे थे। जब वे क्रीडा-स्थान के समीप होकर निकले तो अतिमुक्तकुमार ने इनको देख लिया, देखते ही उसने खेलना बन्द कर दिया और वह क्रीडा-स्थान से निकलकर सीधा भगवान गौतम के पास चला आया, भगवान गौतम के निकट पहुँचकर वह उनसे कहने लगा।

"वण्णओ"—**वर्णक**—का अर्थ है वर्णन करने योग्य प्रकरण। भाव यह है कि पोलासपुर नरेश महाराजा विजय की पट्टरानी श्रीदेवी के शरीर तथा उसके गुणो का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-योग्य-गुण-सम्पदा के समान समझ लेना चाहिये।

"सूमाले"—**सुकुमार, यो हि सुकोमलसर्वावयव स**—इसका अर्थ है जिसके हाथ-पाव अगुलिया आदि सभी शारीरिक अवयव कोमल हो उसे सुकुमार कहते हैं।

महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ"—यहा पठित **जाव** पद "महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जहा पर पोलासपुर नगर था और जहां श्रीवन उद्यान था वहा आ जाते हैं। अनगार वृत्ति के अनुसार उपाश्रय स्वीकार करके तप और सयम के द्वारा आत्म-भावना से भावित होते हुए" इस अवशिष्ट अश का बोधक है।

"जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे" का अर्थ है जिस प्रकार प्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्र मे भगवान गौतम का वर्णन किया गया है,वैसा यहा भी समझ लेना। भगवती सूत्रमे लिखा है कि इन्द्रभूति गौतम बिना किसी व्यवधान के बेले बेले तप किया करते थे। पारणे वाले दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते थे, दूसरे प्रहर ध्यान लगाते, तीसरे प्रहर कायिक तथा मानसिक चपलता से रहित होकर मुख-वस्त्रिका, पात्रो और वस्त्रो की प्रति लेखना करते, फिर पात्रो को झोली मे रखकर भगवान महावीर को वन्दना करके उनसे बेले के पारणे के निमित्त नगर मे भिक्षार्थ जाने की आज्ञा प्राप्त करते। भगवान से आज्ञा मिल जाने पर नगर में भिक्षार्थ चले जाते थे।

"उच्च जाव अडइ"—यहा का "जाव पद **णीयमज्झिम कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए**" इन पदो का परिचायक है, अर्थ स्पष्ट ही है।

"ण्हाते जाव विभूसिए"—यहा का जाव पद—**"कयबलिकम्मे कयकोउयमगलपायच्छित्ते सव्वालकार"** इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ है—**कृतबलिकर्मा**—शरीर की स्फूर्ति के लिये जिसने तैलादि का मर्दन कर रखा है या काकादि पक्षियो को अन्नादि दान रूप बलिकर्म से निवृत्त होने वाला, या जिसने कुल देवता के निमित्त किया जानेवाला कर्म कर लिया है। **कृतकौतुकमगलप्रायश्चित्त** दुष्ट स्वप्नादि के फल को निष्फल करने के लिये जिसने प्रायश्चित्त रूप मे कौतुक-कपाल पर तिलक तथा अन्य मागलिक कार्य कर लिया है।

"दारएहि य, डिभएहि य, कुमारएहि य"—यहा दारक, डिभक तथा कुमार इन तीन शब्दो

का प्रयोग किया गया है, ये तीनो समानार्थक ही प्रतीत होते है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से चिंतन करने वाले विद्वानो ने १. दारक—सामान्य बालक अच्छी आयु वाला, २ डिंभक—छोटी आयुवाला, ३. कुमार—जिसका विवाह नही हुआ—अविवाहित यह अर्थ-भेद ससूचित किया है।

"*इदट्ठाणे"—इन्द्रस्थानम्, बालक्रीडास्थानमिति—अर्थात् बालको का वह क्रीडास्थान इन्द्रस्थान, कहलाता है जहां पर इन्द्रस्तम्भ नामक एक मोटा सा खभा गाड कर बालक और बालिकाए खेलते है।

"दारएहिं य ५—"यहा का ५ का अक "दारियाहिं, डिंभएहिं, डिंभियाहिं य, कुमारएहिं य, कुमारियाहिं य सद्धिं"—इस पाठ का बोधक है। अर्थ पहले की ही तरह है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अनगार गौतम अपने पारणे के लिये स्वय भिक्षार्थ नगर मे जाते हैं। चौदह हजार साधुओ के नायक होने पर भी किसी अन्य साधु को न भेजकर स्वय ही गोचरी के लिये जाना, भगवान गौतम की महानता का द्योतक है और साथ मे साधक वर्ग को यह शिक्षा भी प्राप्त होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम के पास जाकर जो कुछ कहा तथा उन्होने जो कुछ उसे उत्तर दिया, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—के ण भते! तुब्भे? कि वा अडह? तए णं भगव गोयमे अइमुत्त कुमार एव वयासी—अम्हे ण देवाणुप्पिया! समणा णिग्गथा ईरियासमिया जाव बभयारी उच्चनीय जाव अडामो। तए ण अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी—

एह णं भते! तुब्भे जा ण अह तुब्भ भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगव गोयम अगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सते गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरी देवी भगवं गोयम एज्जमाण पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया, भगव गोयमं तिखुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता, वंदइ णमसइ, वदित्ता णमंसित्ता विउलेण असण-पाण-खादिमसादिमेण पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेई।

तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एवं वयासी—कहि ण भते! तुब्भे परिवसह? तए ण भगव गोयमे अइमुत्त कुमार एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए भगव महावीरे आदिकरे जाव सपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया सिरीवणे उज्जाणे अहापडिरूव

* इदट्ठाणेत्ति यत्रेन्द्रयष्टि रूर्ध्वी क्रियते (वृत्तिकारो अभयदेवसूरि)।

उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण जाव अप्पाण भावेमाणे विहरइ, तत्थ ण अम्हे परिवसामो । तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयम एव वयासी--

गच्छामि ण भते ! अह तुब्भेहिं सद्धि समण भगव महावीर पायवदए ? 'अहासुह देवाणुप्पिया !'

तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेण सद्धि जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ करित्ता वदइ जाव पज्जुवासइ । तए ण भगव गोयमे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागए जाव पडिदसेइ पडिदसित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

छाया--के भदन्त ! यूयम् ? किं वा अटथ ? तत खलु भगवान् गौतमोऽतिमुक्त कुमार एवमवदत्--वय देवानुप्रिय ! श्रमणा निर्ग्रन्था ईरियासमिता यावद् ब्रह्मचारिण उच्चनीच यावद् अटाम, ततोऽतिमुक्तकुमार भगवन्त गौतममेवमवदत्--

इत भदन्त ! यूय, येनाह युष्मभ्य भिक्षां दापयामि, इति कृत्वा भगवन्त गौतममगुल्या गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वक गृह तत्रैव उपागत । तत सा श्रीदेवी भगवन्त गौतममायान्त पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा यावद् आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय यत्रैव भगवान गौतम तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य भगवन्त गौतम त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणा करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा, नमस्यित्वा विपुलेन अशन-पान-खादिम-स्वादिमेन प्रतिलाभयति यावत् प्रतिविसर्जयति ।

तत सोऽतिमुक्त कुमार भगवन्त गौतममेवमवदत्--क्व भदन्त ! यूय परिवसथ ? ततो भगवान् गौतम अतिमुक्त कुमारमेवमवदत् ।

एव खलु देवानुप्रिय ! मम धर्माचार्य धर्मोपदेशको भगवान् महावीर --आदिकरो यावत् सम्प्राप्तुकाम, इहैव पोलासपुराद् नगराद् बहि श्रीवने उद्याने यथाप्रतिग्रहमवगृह्य सयमेन यावद् आत्मान भावयन् विहरति, तत्र वय परिवसाम । तत सोऽतिमुक्त कुमार भगवन्त गौतममेवमवदत् ।

गच्छामि भदन्त ! अह युष्माभि सार्धं श्रमण भगवन्त महावीर पादवन्दनाय । यथासुख देवानुप्रिय ! तत सोऽतिमुक्त कुमार भगवता गौतमेन सार्द्ध यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीर तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमण भगवन्त महावीर त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते यावत् पर्युपास्ते । ततो भगवान् गौतमः यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैव उपागत यावत् प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य सयमेन-तपसा आत्मान भावयन् विहरति ।

पदार्थ--भते !--भगवन् ?, तुब्भे के--आप लोग कौन हैं ? ण--वाक्यसौन्दर्यार्थ प्रयुक्त किया जाता है, वा कि--अथवा, किसलिये, अडह-- भ्रमण कर रहे हो, तए ण--उसके अनन्तर,

भगव गोयमे—भगवान गौतम, **अइमुत्त कुमार एव वयासी**—अतिमुक्त कुमार को इस प्रकार कहने लगे, **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र ! **अम्हे ण**—हम, **समणा**—श्रमण—तपस्वी, **निग्गथा**—निर्ग्रन्थ—राग-द्वेष की ग्रन्थियो से रहित, **ईरियासमिया**—ईरिया समिति के पालक, **जाव बभयारी**—यावत्, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य के पालन कर्ता, **उच्चनीय**—उच्च तथा नीच, **जाव**—यावत् मध्यम परिवारो मे भिक्षार्थ, **अडामो**—भ्रमण करते है, **तए ण**—उसके बाद, **अइमुत्ते कुमारे**—अतिमुक्त कुमार, **भगव गोयम**—भगवान गौतम को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भते !—हे भगवन् !, **तुब्भ एह ण**—आप इधर आए, **जा ण अह**—मैं, **तुब्भ**—आपको, **भिक्खा**—भिक्षा, **दवावेमि**—दिलवाऊ, **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कह कर, **भगव गोयम**—भगवान गौतम को, **अगुलियाए**—अगुली से, **गेण्हइ**—पकड लेता है, **गेण्हित्ता**—पकड कर, **जेणेव**—जहा पर, **सते गिहे**—अपना घर था, **तेणेव**—वहा पर, **उवागए**—आ गया। **तए ण**—उसके अनन्तर, **सा सिरी देवी**—वह श्रीदेवी, **एज्जमाण**—आते हुए, **भगव गोयम**—भगवान गौतम को, **पासइ**—देखती है, **पासित्ता**—देखकर, **हट्ठतुट्ठ**—अत्यन्त हर्षित हुई, **जाव**—यावत्, **आसणाओ**—आसन से, **अब्भुट्ठेइ**—उठती है, **अब्भुट्ठित्ता**—उठकर, **जेणेव**—जहा पर, **भगव गोयमे**—भगवान गौतम थे, **तेणेव**—वहा पर, **उवागया**—आ गई, **भगव गोयम**—भगवान गौतम को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार, **आयाहिणपयाहिण**—दक्षिण ओर से लेकर प्रदक्षिणा, **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **वदइ**—वन्दना करती है, **णमसइ**—नमस्कार करती है, **वदित्ता णमसित्ता**—वदना नमस्कार करके, **विउलेण**—विपुल, **असण-पाण-खादिम-सादिमेण**—अशन—अन्न, पान—पानी, खादिम—मेवा मिठाई आदि, स्वादिम—मुख को स्वादिष्ट बनानेवाले लौग चूर्ण आदि इस चतुर्विध आहार से, **पडिलाभेइ**—प्रतिलाभित करती है, उनको आहार बहराती है। **जाव**—यावत् उन्हे सम्मानपूर्वक, **पडिविसज्जेइ**—विदा करती है,

तए ण भगव गोयमे—उसके बाद, भगवान गौतम को, **से अइमुत्ते कुमारे एव वयासी**—वह अतिमुक्त कुमार इस प्रकार कहने लगा—

भते !—हे भगवन् ! **तुब्भे**—आप, **कहि ण**—कहा पर, **परिवसह**—रहते हैं ? **तए ण**—उसके बाद, **भगव गोयमे**—भगवाम गौतम, **अइमुत्त**—अति मुक्त, **कुमार**—कुमार को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे, **एव खलु देवाणुप्पिया !**—हे भद्र ! इस प्रकार निश्चय ही, **मम धम्मायरिए**—मेरे धर्माचार्य, **धम्मोवतेसए**—धर्मोपदेशक, **भगव महावीरे**—भगवान-महावीर स्वामी, **आइगरे**—आदिकर—धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले, **जाव**—यावत्, **सपाविउकामे**—मोक्ष प्राप्त करने की कामना रखनेवाले, **इहेव**—इसी, **पोलास पुरस्स**—पोलासपुर, **णयरस्स**—नगर के, **बहिया**—बाहिर, **सिरिवणे**—श्री वन, **उज्जाणो**—उद्यान मे, **अहापडिरूव**—साधुवृत्ति के अनुकूल, **उग्गह**—अवग्रह—आश्रय, **उग्गिण्हित्ता**—स्वीकार करके, **सजमेण**—सयम से, **जाव**—यावत्, **अप्पाण**—अपनी आत्मा को, **भावेमाणे**—भावित करते हुए, **विहरइ**—विहरण करते हैं, **तत्थ ण**—वहा पर, **अम्हे**—हम, **परिवसामो**—रहते हैं।

तए ण—उस के अनन्तर, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार, **गोयम**—गौतम को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भते !—हे भगवन् !, **अहं**—मैं, **तुब्भेहिं सद्धि**—तुम्हारे साथ, **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर को, **पायवदए**—चरण-वन्दन के लिये, **गच्छामि**—चलू ? (भगवान गौतम बोले), **अहासुह देवाणुप्पिया !** जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, हे भद्र !, **तए ण**—उस के अनन्तर, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार, **भगवया**—भगवान, **गोयमेण**—गौतम के, **सद्धि**—साथ, **जेणेव**—जहा पर, **समणे**—श्रमण, **भगव महावीरे**—भगवान महावीर विराजमान थे, **तेणव उवागच्छइ**—वहा पर आता है, **उवागच्छित्ता**—आकर **समण भगव महावीर**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार, **आयाहिण-पयाहिण**—दक्षिण की ओर से प्रदक्षिणा, **जाव**—यावत्, **करेइ**—करता है, **करित्ता**—करके, **वदइ**—वन्दना करता है, **पज्जुवासइ**—भगवान की पर्युपासना—भक्ति करता है।

तए ण—उस के बाद, **भगव गोयमे**—भगवान गौतम जी महाराज, **जेणेव समणे भगव महावीरे**—जहा पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे, **तेणेव उवागए**—वहा पर आ गए, **जाव**—यावत् वहा आकर पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार, भगवान महावीर स्वामी को, **पडिदसेइ**—दिखलाते हैं, **पडिदसित्ता**—दिखला कर, **सजमेण**—सयम तथा, **तवसा**—तप से, **अप्पाण**—अपनी आत्मा को, **भावेमाणे**—भावित करते हुए, **विहरइ**—विचरण करने लगे।

मूलार्थ—अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम से पूछा—भगवन् ! आप कौन है ? तथा किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ?

राजकुमार अतिमुक्तकुमार का प्रश्न सुनकर भगवान गौतम अतिमुक्त कुमार से कहने लगे—भद्र ! 'हम श्रमण है, साधु हैं, निर्ग्रन्थ है, जैन सन्त हैं, ईर्यासमिति आदि पचविध समितियो का पालन करना हमारा धर्म है, हम इन्द्रियदमन तथा ब्रह्मचर्य के साधक हैं, सामान्य असामान्य तथा मध्यम परिवारो मे भिक्षार्थ परिभ्रमण कर रहे है।'

अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके राजकुमार अतिमुक्त भगवान गौतम से निवेदन करने लगे— 'भगवन् ! आप इधर आइए, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हू।' यह कहकर राजकुमार ने भगवान गौतम की अगुली पकड ली और इनको अपने घर ले गया। जब घर के निकट पहुचे तो राजकुमार की माता श्रीदेवी ने भगवान गौतम को आते हुए देखा तो वह भगवान गौतम को देखकर आनन्द-विभोर हो उठी, वह तत्काल आसन से उठी और भगवान गौतम के पास आई। दक्षिण की ओर से आरभ करके

उनको तीन बार प्रदक्षिणा की। वदन एव नमस्कार किया तदनन्तर उत्तम अन्न-पानी, खादिम (मिष्टान्न) तथा स्वादिम उनको वहराया और सम्मानपूर्वक उनको विदा दी।

भोजन लेकर भगवान गौतम जब जाने लगे तो राजकुमार अतिमुक्त उनसे कहने लगा—'भगवन्! आप कहा रहते हो?' राजकुमार का यह प्रश्न सुनकर उसको उत्तर देते हुए भगवान गौतम कहने लगे—'हे वत्स! धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, यावत् मोक्ष की कामना करनेवाले धर्मोपदेशक मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर स्वामी इसी पोलासपुर नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान मे साधु-वृत्ति के अनुकूल अवग्रह स्थान लेकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं। वही पर हम निवास करते है। अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके राजकुमार अतिमुक्त भगवान गौतम से फिर निवेदन करने लगे—'भगवन्! मैं आपके साथ चलता हू मैं भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वदना कर लूंगा'। राजकुमार अतिमुक्त की दर्शनेच्छा देख कर भगवान गौतम ने उससे कहा—'वत्स! जैसे तेरी आत्मा को सुख हो।'

भगवान गौतम से स्वीकृति मिल जाने के अनन्तर अतिमुक्त कुमार भगवान गौतम के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे पहुच जाते है और भगवान को विधिपूर्वक दाहिनी ओर से आरभ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते है, वन्दना, नमस्कार करते है।

भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे उपस्थित होकर भगवान के पास बैठकर गमनागमन सम्बन्धी दोषो के लिये प्रतिक्रमण करके सदोष तथा निर्दोष आहार का विचार करते हे। तदनन्तर भगवान को भोजन दिखलाते हैं। सयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा को भाविन करते हुए विहरण करते हैं।

व्याख्या—बाल क्रीडा मे लगे हुए अतिमुक्त कुमार का भगवान गौतम को देखकर उनकी ओर झुकना, सेवा मे आना, उनसे विनयपूर्वक वार्तालाप करना, आहार का निमन्त्रण देकर उनको अपने घर ले जाना आहार दिलवाने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित हो जाना, ये सब वर्णन उनके पूर्वोपार्जित शुभ कर्म-तथा क्षयोपशम भाव को अभिव्यक्त कर रहा है। अन्यथा इतनी छोटी अवस्था के बालक में इस प्रकार की विनीतता का होना और एक अपरिचित महात्मा को अगुली से पकड कर अपने घर ले जाकर भिक्षा दिलाना बडा कठिन कार्य है।

बालक के अच्छे सस्कारो का सारा दायित्व माता पर रहा करता है, माता यदि अच्छे सस्कारो वाली है तो उसकी सतति उन सस्कारो से अवश्य प्रभावित होती है। छोटी अवस्था के बच्चो मे जो विनयशीलता एव साधु-सन्तो को देखकर नतमस्तक होकर उनके पात्र मे कुछ डालने की जो भावना दृष्टिगोचर होती है, उसका सारा श्रेय माता को ही होता है। भारतीय सस्कृति मे तो माता को बच्चे का सबसे पहला गुरु माना गया है। मातृ-शक्ति की लोकोपकारिता को शब्दो की सीमित रेखाओ मे बाधा नही जा सकता, वह असीम है।

राजकुमार अतिमुक्त की माता श्रीदेवी नारी-जगत् मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनकी धर्म-श्रद्धा, गुरु-भक्ति तथा अतिथिजनो के प्रति सेवा-भावना अनुपम है, विलक्षण है। राज्यश्री का उसे अहकार नही था, वह सदा विनम्र भाव से रहा करती थी, साधु-सन्तो को देखकर तो उसका मानस मोर की भाति नाच उठता था। यही कारण है कि जब उसने अपने प्रियपुत्र अतिमुक्त कुमार के साथ आते हुए भगवान गौतम को देखा तो उसका मानस पुलकित हो उठा, उसे अवर्णनीय हर्षानुभूति हुई, बडी प्रसन्नता से वह अपने आसन से उठी और भगवान गौतम के चरणो मे उपस्थित होकर सादर वन्दना नमस्कारादि के द्वारा उनका अभिनन्दन किया। अन्त मे अशनादि चारो प्रकार का शुद्ध आहार देकर अपने आपको कृतकृत्य किया।

प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि बालक अतिमुक्त कुमार नें भगवान गौतम से तीन प्रश्न किये थे। वे प्रश्न हैं—आप कौन हैं? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं? आप कहा पर रहते हैं? प्रस्तुत सूत्र मे इन तीनो प्रश्नो का उत्तर भी दिया गया है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है। **श्रमण निर्ग्रन्थ ईरियासमित** और **ब्रह्मचारी** ये चारो शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक हैं।

तपस्वी अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करनेवाले महापुरुष **श्रमण** कहलाते हैं।

जो परिग्रह से रहित हैं अथवा जिनमे राग द्वेष की ग्रन्थि न हो वे **निर्ग्रन्थ** हैं।

ईरियागमन मे जो समिति-विवेक से काम लेता है, जो आगे देखकर तथा सावधानी से चलता है, उसका नाम **ईरियासमित** है। ब्रह्मचर्य नामक असिधारा व्रत के परिपालक साधक को **ब्रह्मचारी** कहते हैं।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान गौतम ने राजकुमार अतिमुक्त से कहा—'वत्स! आज मेरा बेले का पारणा है, पारणे के निमित्त मैं इस नगर के सम्पन्न, साधारण और मध्यम परिवारो मे आहार के लिये भ्रमण कर रहा हू।

तीसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान गौतम राजकुमार से कहने लगे—'हे भद्र! मेरे गुरुदेव भगवान महावीर हैं, वे ही मेरे धर्माचार्य हैं, धर्मदाता गुरु हैं, धर्म के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार हैं, वर्तमान युग को धर्म का व्यवस्थित और समाहित रूप बतलानेवाले हैं, वे ही मोक्ष-प्राप्ति की कामना

लेकर सयम-साधना के महापथ पर चल रहे हैं, वे पोलासपुर नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान मे विराज मान है। इन्ही के पवित्र चरणो मे मै निवास करता हूँ।

तीसरे प्रश्न के उत्तर मे गौतम ने श्रमण भगवान महावीर का परिचय देते हुए अपनी अनुपम गुरु-भक्ति को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर दिया है। अतिमुक्त के पूछने पर वे कह सकते थे कि हम श्रीवन नामक उद्यान मे रहते हैं, पर उन्होने ऐसा नही कहा। उन्होने सर्वप्रथम अपने आराध्य गुरुदेव का स्मरण किया और उनके पास अपना निवास बतलाया है। इससे गौतम स्वामी की उच्चतम गुरु-निष्ठा का सहज मे ही बोध हो जाता है।

"ईरियासमिया जाव बभयारी"—यहा का जाव पद भासासमिया, एसणासमिया, **आयाणभड-मत्तनिक्खेवणासमिया, उच्चारपासवणखेलसिघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिया, मणसमिया, वयसमिया, कायसमिया। मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्तिन्दिया गुत्त** —इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ पीछे लिखा जा चुका है

"उच्चनीय जाव अडामो"—यहा पठित जाव पद से विवक्षित अवशिष्ट पदो का सकेत पीछे पृष्ठ ३३९ पर कर दिया गया है।

"जा ण"—का अर्थ है—येन—जिससे।

"गोयम अगुलीए गेण्हइ"—का अर्थ है—भगवान गौतम को अगुली से पकड लेता है। इस पाठ से यह स्पष्ट है कि भगवान गौतम ने राजकुमार की अगुली नही पकडी, प्रस्तुत राजकुमार ने भगवान गौतम की अगुली पकडी है। इसके अतिरिक्त इस वर्णन से यह भी स्पष्ट है कि अतिमुक्त कुमार के द्वारा अगुली पकडने पर न गौतमस्वामी ने उसका निषेध किया और न ही गौतम स्वामी के इस आचरण पर भगवान महावीर ने उनको (गौतम स्वामी को) किसी प्रकार का कोई उपालभ दिया। इससे उत्सर्ग और अपवाद ये दोनो ही मार्ग शास्त्र-सम्मत हैं।

अगुली को पकडकर चलने से अतिमुक्त कुमार की अवस्था अत्यन्त छोटी प्रमाणित होती है, क्योकि इस प्रकार की प्रवृत्ति प्राय छोटी आयु के बालको मे ही पाई जाती है, वे ही अगुली पकड कर साथ-साथ चला करते है।

इसके अतिरिक्त भगवान गौतम ने अतिमुक्त कुमार से अपनी अगुली नही छुडाई, इसका यही कारण प्रतीत होता है कि वे चार ज्ञान के धारक थे परिणाम स्वरूप वे जानते थे कि मेरी अगुली पकडनेवाला अतिमुक्त कुमार साधारण बालक नही है। यह तो चरम शरीरी तरणहार जीव है। इसने भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर इसी जन्म मे मोक्ष को प्राप्त कर लेना है, अत इसने जो मेरी अगुली पकडी है, यह इसे कभी छोडेगा नही। एक बार अगुली पकड कर उसे जो सदैव पकडे रखे, ऐसे पुण्यात्मा तरणहार बालक से अगुलि छुडा भी कौन सकता है?

"हट्ठ तुट्ठ जाव आसणाओ"— यहा पठित जाव पद **चित्तमाणदिया पीइमणा परमसोमण-**

स्सिया, हरिसवसविसप्पमाणहियया खिप्पामेव"- इन अवशिष्ट पदो का सूचक है। इन पदो का अर्थ पीछे पृष्ठ १०० पर किया जा चुका है।

"विउलेण-असण-पाण-खादिम-सादिमेण"—यहा पठित **विपुल** शब्द के अनेको अर्थ पाए जाते हैं— प्रभूत, प्रचुर, विस्तीर्ण, विशाल, उत्तम, श्रेष्ठ आदि। प्रस्तुत मे "उत्तम", इस अर्थ को ग्रहण करना चाहिए। यदि विपुल का अर्थ प्रचुर ही कर दिया जाये तो यह प्रस्तुत मे सगत नही बैठता, क्योकि साधु-धर्म के विधि-विधान के अनुसार आवश्यकता से अधिक भोजन को साधु-ग्रहण नही कर सकता फिर भगवान गौतम प्रचुर भोजन कैसे ले सकते थे ?

दूसरी बात, एक ही घर से प्रचुर भोजन लेना अशास्त्रीय है। दाता के भाव चाहे कितने भी उदार हो तथा वह कितना भी अधिक आहार पानी देने के लिये प्रस्तुत हो, परन्तु सयम-शील साधु अपनी साधुमर्यादा के अनुसार ही अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही ले सकता है अधिक नही।

उत्तम शब्द के भी "सब से अच्छा, श्रेष्ठ, प्रधान, सब से बडा आदि अनेको अर्थ पाए जाते है। पर प्रस्तुत मे उत्तम शब्द गौतम स्वामी के पारणे के लिये उपयुक्त उसका तथा स्वास्थ्य-वर्धक, श्रेष्ठ, इस अर्थ का बोधक है।

"पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ"— यहा का **जाव** पद **'पडिलाभित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता"** इन पदो का परिचायक है। **"धम्मायरिए धम्मोवतेसते"** का अर्थ है— धर्माचार्य, धर्मोपदेशक। आचार्य शब्द "गुरु, शिक्षक, किसी विषय का असाधारण पण्डित, पूज्यपुरुष, आदि अर्थो का बोधक है। धर्म की शिक्षा देनेवाले या धर्म के असाधारण पण्डित, धर्माचार्य कहलाते हैं। जो धर्म का उपदेश करता है, जनता को धम का स्वरूप समझाता है, उसे धर्मोपदेशक कहते हैं।

"धम्मोवतेसते"— **धर्मोपदेशक** यह पैशाची भाषा का प्रयोग है। इस मे जो दकार को तकार का आदेश कर रखा है वह पैशाची भाषा के नियमानुसान किया गया है। सिद्धहैमशब्दानुशासन के अष्टमाध्याय के चतुर्थ पाद का ३०७ वा सूत्र इस नियम का इस तरह वर्णन करता है—

तदोस्त —८। ४।३०७। पैशाच्या तकार-दकारयो तो भवति। तस्य—भगवती, पव्वती, सत। दस्य-मतन-परवसो, सतन, तामोतरो, पतेसो, वतनक। होतु, रमतु। तकारस्यापि तकारविधानमादेशान्तरव धनार्थम्, तेन पताका, वेतिसो, इत्याद्यपि सिद्ध भवति।

इस का अर्थ है—पैशाची भाषा मे तकार और दकार को तकार हो जाता है। प्रस्तुत मे **धर्मोपदेशक** यह शब्द है, जो प्राकृत भाषा के नियमानुसार **धम्मोववेसते** उस रूप मे बदल जाता है, परन्तु पैशाची भाषा के विधानानुसार जब दकार को तकार हो गया तब इस का **धम्मोवतेसते** ऐसा रूप बनता है।

"आदिकरे जाव सपाविउकामे"— यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदो का उल्लेख पीछे पृष्ठ ४७ पर कर दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि वहा पर ये पद षष्ठयन्त है। जबकि प्रस्तुत मे प्रथमान्त। इस के अतिरिक्त अन्य कोई अन्तर नही है। **"सपाविउकामे"**— का अर्थ है— मोक्ष को

प्राप्त करने की कामना रखने वाले। भगवान गौतम ने भगवान महावीर का जो यह विशेषण दिया है—इस से वे ये प्रकट करना चाहते है कि भगवान महावीर चार अघाती कर्मो के क्षय के लिये प्रयत्नशील हैं। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु ये चार अघाति कर्म हैं। तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म है। भगवान महावीर ने इन घातिकर्मो को पहले ही नष्ट कर रखा है और शेष अघाति कर्मो को नष्ट करने का वे प्रयत्न कर रहे है। घाति कर्मो के क्षय से जीवन-मुक्ति का सुख तो इस आत्मा को प्राप्त हो जाता हे, परन्तु विदेह मुक्ति अर्थात निर्वाणपद की प्राप्ति तो आघाति कर्मों के नष्ट होने पर ही हो सकती है। इसके लिये उनके क्षय की इच्छा अस्वाभाविक नही है। ध्यान रहे कि यह कामना निदान रूप नही होती क्योकि निदानकर्म सकषाय योग से होता है और यह कामना कषाय-रहित अयोगी बनने के लिये हाती, हे। अत. इस कामना को निदान नही कह सकते।

"सजमेण जाव अप्पाण"— यहा का जाव पद **नमसइ, वदित्ता नमसित्ता"**— आदि पदो का ससूचक है।

"उवागए जाव पडिदसेइ"—यहा पठित जाव पद **समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणे आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाण"** इन पदो का ससूचक हैं। इन पदो का अर्थ प्रस्तुत सूत्र के मूलार्थ मे दिया जा चुका है।

गौतम स्वामी का आहार लाकर भगवान महावीर स्वामी को दिखलाना और उनकी आज्ञा मिलने पर खाना इत्यादि जितना भी वर्णन आगमो मे पढने को मिलता है, वह केवल लौकिक मर्यादार्थ ही समझना चाहिए। सन्त-मर्यादा का एक विधान है कि शिष्य आहार-पानी आदि जो कुछ भी लाए उसको गुरुजनो या वृद्धजनो को दिखलाए विना और उनकी आज्ञा विना अपने काम मे न लावे। केवल इस विधान के परिपालनार्थ ही अनगार गौतम भगवान महावीर के पारणे के निमित्त लाया आहार दिखलाते हैं। अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती, क्योकि भगवान महावीर स्वय सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं, ससार का कोई तत्त्व उनसे अज्ञात नही है, फिर गौतम स्वामी द्वारा लाया आहार उनके ज्ञान प्रकाश से कैसे अछूता रह सकता है?

दूसरी बात गौतम स्वामी भी चार ज्ञान के धारक हैं, वे अपने ज्ञानातिशय से लोकवर्ती सभी रूपी पदार्थों को जानते हैं। ऐसी दशा मे आहार दिखलाने का क्या प्रयोजन? उत्तर स्पष्ट है, कोई नही। तथापि जो आहार दिखलाया गया है, वह केवल लौकिक मर्यादा को स्थिर रखने के लिये दिखलाया गया है, ताकि छद्मस्थ साधुओ मे इस विनयमूलक व्यवहार का उच्छेद न हो जाये।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे उपस्थित हो कर उनकी सेवा मे लग जाते है और श्री गौतम पोलासपुर नगर मे पारणे के निमित्त लाए आहार को भगवान को दिखला कर आत्मभावना मे सलग्न हो जाते हैं। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं।—

मूल—तए णं समणे भगव महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ

तुट्ठ० ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए जाव पव्वयामि। अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडि बध करेह।

छाया— तत श्रमणो भगवान् महावीर अतिमुक्तस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा। तत सोऽतिमुक्त कुमार श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्म श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट० यन्नवर देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि। यथासुख देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्ध कुरु !

पदार्थ— **तए ण**—उस के अनन्तर, **समणे भगव महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर ने, **अइमुत्तस्स कुमारस्स**—अतिमुक्त कुमार को, **य**—और, **तीसे**—उस महान परिषद जनता को, **धम्मकहा**—धर्मकथा सुनाई, **तए ण**—उस के वाद, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार, **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान् महावीर के, **अतिए धम्म**—पास धर्म कथा को, **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—उस पर विचार कर, **हट्ठ तुट्ठ**—अत्यन्त प्रसन्न एव सतुष्ट हुआ, **ज नवर**—जो विशेष है वह यह है कि अतिमुक्त कुमार ने भगवान से कहा, **देवाणुप्पिया !**—भगवन् **अम्मापियरो**—माता पिता को, **आपुच्छामि**—पूछता हू, **तए ण अह**—उस के अनन्तर मैं, **देवाणुप्पियाण**—देववन्द्य भगवान के, **अतिए**—आपके पास, **जाव**—यावत्, **पव्वयामि**—दीक्षित हो जाऊगा, भगवान बोले,— **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र !, **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **मा पडिबध**—मत प्रमाद, **करेह**—करो।

मूलार्थ—उस के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार तथा पास बैठे विशाल जन-समूह को धर्मकथा सुनाई। श्रमण भगवान महावीर स्वामी की धर्मकथा सुनकर अतिमुक्त कुमार को बडा हर्ष एव सन्तोष प्राप्त हुआ, तब उसने भगवान से निवेदन किया कि भगवन् ! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आप के चरणों मे दीक्षा अगीकार करूगा। अतिमुक्त कुमार की विनती सुनकर भगवान बोले–भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर इस शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।

व्याख्या— प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण भगवान महावीर के धर्मोपदेश का अतिमुक्त कुमार के हृदय पर पडनेवाले प्रभाव का तथा उसके द्वारा ज्ञानगर्भित वैराग्य से प्रेरित होकर माता पिता से पूछ कर भगवान महावीर के पास दीक्षित होने की भावना को व्यक्त करना, आदि बातो का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से यह प्रमाणित हो जाता है कि धर्म मे दीक्षित होने के लिये किसी अवस्था विशेष को कोई महत्त्व प्राप्त नही होता, प्रत्युत जिस प्राणी को कचन कामिनी से जब भी वैराग्य उत्पन्न हो जाए, वही समय उसको धर्म मे उपयुक्त करने का माना गया है। वास्तव मे देखा जाये तो ससार की मोह-ममता के त्याग मे मुख्य स्थान वैराग्य का है, किसी अवस्था विशेष का नही। अवस्था तो बालक युवा और वृद्ध इन में से कोई भी हो सकती है इससे कोई अन्तर नही पडता, पर वैराग्य का होना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र में वर्णित राजकुमार अतिमुक्त अवस्था की दृष्टि से तो बहुत छोटे दिखाई देते

प्राप्त करने की कामना रखने वाले। भगवान गौतम ने भगवान महावीर का जो यह विशेपण दिया है—इस से वे ये प्रकट करना चाहते है कि भगवान महावीर चार अघाती कर्मो के क्षय के लिये प्रयत्नशील है। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु ये चार अघाति कर्म हैं। तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म है। भगवान महावीर ने इन घातिकर्मों को पहले ही नष्ट कर रखा है और शेप अघाति कर्मों को नष्ट करने का वे प्रयत्न कर रहे है। घाति कर्मों के क्षय से जीवन-मुक्ति का सुख तो इस आत्मा को प्राप्त हो जाता है, परन्तु विदेह मुक्ति अर्थात निर्वाणपद की प्राप्ति तो आघाति कर्मों के नष्ट होने पर ही हो सकती है। इसके लिये उनके क्षय की इच्छा अस्वाभाविक नही है। ध्यान रहे कि यह कामना निदान रूप नही होती क्योकि निदानकर्म सकषाय योग से होता है और यह कामना कषाय-रहित अयोगी बनने के लिये होती, है। अत इस कामना को निदान नही कह सकते।

"सजमेण जाव अप्पाण"— यहा का जाव पद **नमसइ, वदित्ता नमसित्ता"**— आदि पदो का ससूचक है।

"उवागए जाव पडिदसेइ"—यहा पठित जाव पद **समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणे आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाण"** इन पदो का ससूचक हैं। इन पदो का अर्थ प्रस्तुत सूत्र के मूलार्थ मे दिया जा चुका है।

गौतम स्वामी का आहार लाकर भगवान महावीर स्वामी को दिखलाना और उनकी आज्ञा मिलने पर खाना इत्यादि जितना भी वर्णन आगमो मे पढने को मिलता है, वह केवल लौकिक मर्यादार्थ ही समझना चाहिए। सन्त-मर्यादा का एक विधान है कि शिष्य आहार-पानी आदि जो कुछ भी लाए उसको गुरुजनो या वृद्धजनो को दिखलाए विना और उनकी आज्ञा बिना अपने काम मे न लावे। केवल इस विधान के परिपालनार्थ ही अनगार गौतम भगवान महावीर के पारणे के निमित्त लाया आहार दिखलाते हैं। अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती, क्योकि भगवान महावीर स्वय सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, ससार का कोई तत्त्व उनसे अज्ञात नही है, फिर गौतम स्वामी द्वारा लाया आहार उनके ज्ञान प्रकाश से कैसे अछूता रह सकता है ?

दूसरी बात गौतम स्वामी भी चार ज्ञान के धारक है, वे अपने ज्ञानातिगम से लोकवर्ती सभी रूपी पदार्थों को जानते हैं। ऐसी दशा मे आहार दिखलाने का क्या प्रयोजन ? उत्तर स्पष्ट है, कोई नही। तथापि जो आहार दिखलाया गया है, वह केवल लौकिक मर्यादा को स्थिर रखने के लिये दिखलाया गया है, ताकि छद्मस्थ साधुओ मे इस विनयमूलक व्यवहार का उच्छेद न हो जाये।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे उपस्थित हो कर उनकी सेवा मे लग जाते हैं और श्री गौतम पोलासपुर नगर मे पारणे के निमित्त लाए आहार को भगवान को दिखला कर आत्मभावना मे सलग्न हो जाते हैं। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं।—

मूल—तए ण समणे भगव महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ

तुट्ठ० ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए जाव पव्वयामि। अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडि बध करेह।

छाया— तत श्रमणो भगवान् महावीर अतिमुक्तस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा। तत सोऽतिमुक्त कुमार श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्म श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट० यन्नवर देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि। यथासुख देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्ध कुरु!

पदार्थ— तए ण—उस के अनन्तर, समणे भगव महावीरे—श्रमण भगवान महावीर ने, अइमुत्तस्स कुमारस्स—अतिमुक्त कुमार को, य—और, तीसे—उस महान परिषद जनता को, धम्मकहा—धर्मकथा सुनाई, तए ण—उस के बाद, से अइमुत्ते कुमारे—वह अतिमुक्त कुमार, समणस्स भगवओ महावीरस्स—श्रमण भगवान् महावीर के, अतिए धम्म—पास धम कथा को, सोच्चा—सुन कर, निसम्म—उस पर विचार कर, हट्ठ तुट्ठ—अत्यन्त प्रसन्न एव सतुष्ट हुआ, ज नवर—जो विशेष है वह यह है कि अतिमुक्त कुमार ने भगवान से कहा, देवाणुप्पिया !—भगवन् अम्मापियरो—माता पिता को, आपुच्छामि—पूछता हू, तए णं अह—उस के अनन्तर मैं, देवाणुप्पियाण—देववन्द्य भगवान के, अतिए—आपके पास, जाव—यावत्, पव्वयामि—दीक्षित हो जाऊगा, भगवान बोले,— देवाणुप्पिया !—हे भद्र !, अहासुह—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, मा पडिबध—मत प्रमाद, करेह—करो।

मूलार्थ—उस के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार तथा पास बैठे विशाल जन-समूह को धर्मकथा सुनाई। श्रमण भगवान महावीर स्वामी की धर्मकथा सुनकर अतिमुक्त कुमार को बडा हर्ष एव सन्तोष प्राप्त हुआ, तब उसने भगवान से निवेदन किया कि भगवन् ! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आप के चरणों मे दीक्षा अगीकार करूगा। अतिमुक्त कुमार की विनती सुनकर भगवान बोले-भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर इस शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।

व्याख्या— प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण भगवान महावीर के धर्मोपदेश का अतिमुक्त कुमार के हृदय पर पडनेवाले प्रभाव का तथा उसके द्वारा ज्ञानगर्भित वैराग्य से प्रेरित होकर माता पिता से पूछ कर भगवान महावीर के पास दीक्षित होने की भावना को व्यक्त करना, आदि बातो का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से यह प्रमाणित हो जाता है कि धर्म में दीक्षित होने के लिये किसी अवस्था विशेष को कोई महत्त्व प्राप्त नही होता, प्रत्युत जिस प्राणी को कचन कामिनी से जब भी वैराग्य उत्पन्न हो जाए, वही समय उसको धर्म मे उपयुक्त करने का माना गया है। वास्तव मे देखा जाये तो ससार की मोह-ममता के त्याग मे मुख्य स्थान वैराग्य का है, किसी अवस्था विशेष का नही। अवस्था तो बालक युवा और वृद्ध इन मे से कोई भी हो सकती है इससे कोई अन्तर नही पडता, पर वैराग्य का होना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित राजकुमार अतिमुक्त अवस्था की दृष्टि से तो बहुत छोटे दिखाई देते

प्राप्त करने की कामना रखने वाले। भगवान गौतम ने भगवान महावीर का जो यह विशेषण दिया है—इस से वे ये प्रकट करना चाहते है कि भगवान महावीर चार अघाती कर्मों के क्षय के लिये प्रयत्नशील है। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु ये चार अघाति कर्म हैं। तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म है। भगवान महावीर ने इन घातिकर्मो को पहले ही नष्ट कर रखा है और शेष अघाति कर्मो को नष्ट करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। घाति कर्मों के क्षय से जीवन-मुक्ति का सुख तो इस आत्मा को प्राप्त हो जाता है, परन्तु विदेह मुक्ति अर्थात निर्वाणपद की प्राप्ति तो आघाति कर्मों के नष्ट होने पर ही हो सकती है। इसके लिये उनके क्षय की इच्छा अस्वाभाविक नही है। ध्यान रहे कि यह कामना निदान रूप नही होती क्योकि निदानकर्म सकषाय योग से होता है और यह कामना कषाय-रहित अयोगी बनने के लिये होती, है। अत इस कामना को निदान नही कह सकते।

"सजमेण जाव अप्पाण"— यहा का जाव पद **नमसइ, वदित्ता नमसित्ता"**— आदि पदो का ससूचक है।

"उवागए जाव पडिदसेइ"—यहा पठित जाव पद **समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणे आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाण"** इन पदो का ससूचक हैं। इन पदो का अर्थ प्रस्तुत सूत्र के मूलार्थ मे दिया जा चुका है।

गौतम स्वामी का आहार लाकर भगवान महावीर स्वामी को दिखलाना और उनकी आज्ञा मिलने पर खाना इत्यादि जितना भी वर्णन आगमो मे पढने को मिलता है, वह केवल लौकिक मर्यादार्थ ही समझना चाहिए। सन्त-मर्यादा का एक विधान है कि शिष्य आहार-पानी आदि जो कुछ भी लाए उसको गुरुजनो या वृद्धजनो को दिखलाए विना और उनकी आज्ञा विना अपने काम मे न लावे। केवल इस विधान के परिपालनार्थ ही अनगार गौतम भगवान महावीर के पारणे के निमित्त लाया आहार दिखलाते हैं। अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती, क्योकि भगवान महावीर स्वय सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, ससार का कोई तत्त्व उनसे अज्ञात नही है, फिर गौतम स्वामी द्वारा लाया आहार उनके ज्ञान प्रकाश से कैसे अछूता रह सकता है?

दूसरी बात गौतम स्वामी भी चार ज्ञान के धारक हैं, वे अपने ज्ञानातिशय से लोकवर्ती सभी रूपी पदार्थों को जानते हैं। ऐसी दशा मे आहार दिखलाने का क्या प्रयोजन? उत्तर स्पष्ट है, कोई नही। तथापि जो आहार दिखलाया गया है, वह केवल लौकिक मर्यादा को स्थिर रखने के लिये दिखलाया गया है, ताकि छद्मस्थ साधुओ मे इस विनयमूलक व्यवहार का उच्छेद न हो जाये।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे उपस्थित हो कर उनकी सेवा मे लग जाते हैं और श्री गौतम पोलासपुर नगर मे पारणे के निमित्त लाए आहार को भगवान को दिखला कर आत्मभावना में सलग्न हो जाते हैं। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है।—

मूल—तए णं समणे भगव महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ

तुट्ठ० ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए जाव पव्वयामि। अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडि बध करेह।

छाया— तत श्रमणो भगवान् महावीर अतिमुक्तस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा। तत सोऽतिमुक्त कुमार श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्म श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट० यन्नवर देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि। यथासुख देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्ध कुरु !

पदार्थ— तए ण—उस के अनन्तर, समणे भगव महावीरे—श्रमण भगवान महावीर ने, अइमुत्तस्स कुमारस्स—अतिमुक्त कुमार को, य—और, तीसे—उस महान परिषद जनता को, धम्मकहा—धर्मकथा सुनाई, तए ण—उस के बाद, से अइमुत्ते कुमारे—वह अतिमुक्त कुमार, समणस्स भगवओ महावीरस्स—श्रमण भगवान् महावीर के, अतिए धम्म—पास धम कथा को, सोच्चा—सुन कर, निसम्म—उस पर विचार कर, हट्ठ तुट्ठ—अत्यन्त प्रसन्न एव सतुष्ट हुआ, ज नवर—जो विशेष है वह यह है कि अतिमुक्त कुमार ने भगवान से कहा, देवाणुप्पिया !—भगवन् अम्मापियरो—माता पिता को, आपुच्छामि—पूछता हू तए ण अह—उस के अनन्तर मैं, देवाणुप्पियाण—देववन्द्य भगवान के, अतिए—आपके पास, जाव—यावत्, पव्वयामि—दीक्षित हो जाऊगा, भगवान बोले,— देवाणुप्पिया !—हे भद्र !, अहासुह—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, मा पडिबध—मत प्रमाद, करेह—करो।

मूलार्थ—उस के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार तथा पास बैठे विशाल जन-समूह को धर्मकथा सुनाई। श्रमण भगवान महावीर स्वामी की धर्मकथा सुनकर अतिमुक्त कुमार को बडा हर्ष एव सन्तोष प्राप्त हुआ, तब उसने भगवान से निवेदन किया कि भगवन् ! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आप के चरणों मे दीक्षा अगीकार करूगा। अतिमुक्त कुमार की विनती सुनकर भगवान बोले—भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर इस शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।

व्याख्या— प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण भगवान महावीर के धर्मोपदेश का अतिमुक्त कुमार के हृदय पर पडनेवाले प्रभाव का तथा उसके द्वारा ज्ञानगर्भित वैराग्य से प्रेरित होकर माता पिता से पूछ कर भगवान महावीर के पास दीक्षित होने की भावना को व्यक्त करना, आदि बातो का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से यह प्रमाणित हो जाता है कि धर्म मे दीक्षित होने के लिये किसी अवस्था विशेष को कोई महत्त्व प्राप्त नही होता, प्रत्युत जिस प्राणी को कचन कामिनी से जब भी वैराग्य उत्पन्न हो जाए, वही समय उसको धर्म मे उपयुक्त करने का माना गया है। वास्तव मे देखा जाये तो ससार की मोह-ममता के त्याग मे मुख्य स्थान वैराग्य का है, किसी अवस्था विशेष का नही। अवस्था तो बालक युवा और वृद्ध इन मे से कोई भी हो सकती है इससे कोई अन्तर नही पडता, पर वैराग्य का होना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित राजकुमार अतिमुक्त अवस्था की दृष्टि से तो बहुत छोटे दिखाई देते

हैं, पर वैराग्य को जब देखते है तो वृद्ध पुरुष भी इन की समानता नही कर सकते। बहुत लोग जीवन भर साधु-सन्तो के व्याख्यान सुनते हैं, पर आचार की दृष्टि से जीवन भर वे खाली ही रहते है, व्याख्यान मे सुनी एक भी शिक्षा उन के जीवन का स्पर्श नही कर पाती। इसके विपरीत अतिमुक्त कुमार के जीवन को देख लीजिये, एक धर्म-व्याख्यान सुनकर ही वैरागी बन गए, राज्य-वैभव का मोह छोड कर भगवान महावीर के चरणो मे साधु बनने के लिये तैयार हो गए। इस से बढ कर महानता की और क्या बात हो सकती है?

प्रस्तुत सूत्र के अध्ययन करने से यह भी अवगत हो जाता है कि दीक्षार्थी को दीक्षित होने के लिये माता-पिता की आज्ञा लेना भी अनिवार्य है। बच्चे के जीवन की अवस्था का जितना बोध माता-पिता को होता है, उतना किसी अन्य को नही हो सकता। दीक्षा जैसे कठोर भीष्म व्रत को पालन करने की क्षमता बालक मे है या नही, यह माता-पिता ही अच्छी तरह समझ सकते है, इसीलिये दीक्षार्थी को दीक्षित होने से पहले माता-पिता से दीक्षा के सम्बन्ध मे आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए, ऐसा विधान निश्चित किया गया है।

दीक्षार्थी अतिमुक्त कुमार ने उत्सुकता व्यक्त करते हुए जो दीक्षाग्रहण के लिये भगवान महावीर से विनती की और इसका जो उन्होने उत्तर दिया वह भी रहस्यपूर्ण है। भगवान् कहते हैं—"**अहासुह देवाणुप्पिया!**"

सुख दो तरह के होते हैं— ससार-सुख और मोक्ष-सुख। इन दोनो सुखो के स्वरूप का विचार कर लेना चाहिये। इस मे कौन सा प्रसादान्त है और कौन सा विषादान्त है? कौन जीवन को कल्याणोन्मुख बनाता है और कौन उसे अधोमुखी करता है? इस तरह हानि-लाभ को निर्णय करने के अनन्तर ही मनुष्य को कोई दिशा निश्चित करनी चाहिए। भगवान के इस कथन मे विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्णतया ध्यान रखा गया है। वस्तुत जो बात विचार-पूर्ण और अपनी इच्छा से ग्रहण की जाती है उस के अनुसरण मे विचार-शील को प्राय स्खलित होने का अवसर कभी नही मिलता, इसलिये जहा कही भी ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ, वहा पर ही भगवान ने उसको आज्ञा देने से पहले उस पर स्वय विचार करने की अनुमति प्रदर्शित की है, क्योकि परिस्थिति के अनुसार उपस्थित विषय का पूरा-पूरा अध्ययन कर लेने के बाद जो विचार निश्चित होता है। वह चिरस्थायी और सुखप्रद होता है।

"**अन्तिए जाव पव्वयामि**"— यहा पठित जाव पद "**मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय**" इन पदो का परिचायक है। अर्थ स्पष्ट ही है। अतिमुक्त की विनती के अनन्तर भगवान के "जैसा तुम्हे सुख हो, पर विलब मत करो" ऐसा कहने पर अतिमुक्त कुमार ने क्या कुछ किया? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल——तए ण से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागते जाव पव्वइत्तए। अइमुत्त कुमार अम्मापियरो एव वयासी—

बालेसि ताव तुम पुत्ता ! असबुद्धेसि तुम पुत्ता ! किण्ण तुम जाणासि धम्म ? तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एव वयासी—एव खलु अम्मयाओ ! ज चेव जाणामि, त चेव न जाणामि, ज चेव न जाणामि, त चेव जाणामि ।

तए ण त अइमुत्त कुमार अम्मापियरो एव वयासी—कह ण तुम पुत्ता ! जं चेव जाणासि जाव त चेव न जाणासि ? तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एव वयासी—

जाणामि अह अम्मयाओ ! जहा जाएण अवस्समरियव्व, न जाणामि अह अम्मताओ ! काहे वा, कहिं वा, कह वा, केच्चिरेण वा ? न जाणामि अम्मताओ ! केहि कम्मायणेहिं जीवा नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेसु उववज्जति, जाणामि ण अम्मताओ ! जहा सएहि कम्मायणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जति, एव खलु अह अम्मताओ ! ज चेव जाणामि त चेव न जाणामि, ज चेव न जाणामि, त चेव जाणामि ।

इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए । तए ण त अइमुत्त कुमारं अम्मापियरो जाहे नो सचाएति बहूहिं आघवणाहि जाव त इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमपि रायसिरि पासित्तए । तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए सचिट्ठइ । अभिसेओ जहा महाबलस्स निक्खमण जाव सामाइमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, बहूइ वासाइ सामण्णपरियाओ । गुणरयण जाव विपुले सिद्धे ।

छाया—तत सोऽतिमुक्त कुमारो यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैवोपागतो यावत् प्रव्रजितुम् । अतिमुक्त कुमारमम्बापितरौ एवमवादिष्टाम्—बालोऽसि तावत्त्व पुत्र ! असबुद्धोऽसि त्व पुत्र ! कि त्व जानासि धर्मम् ! तत सोऽतिमुक्त कुमारोऽम्बापितरौ एवमवादीत्—

एव खलु अम्बातातौ ! यच्चैव जानामि, तच्चैव न जानामि, यच्चैव न जानामि, तच्चैव जानामि । तत तमतिमुक्त कुमारमम्बापितरौ एवमवादिष्टाम्—कथ त्व पुत्र ! यच्चैव जानासि यावत् तच्चैव न जानासि ?

तत सोऽतिमुक्त कुमार, अम्बापितरौ एवमवादीत्—जानाम्यहमम्बातातौ ! यथा जातेन अवश्य मर्तव्य, न जानामि अहमम्बातातौ ! कदा वा, कुत्र वा, कथ वा, कियच्चिरेण वा ?

न जानामि अह अम्बातातौ ! कै कर्मायतनै जीवा नैरयिकतिर्यग्योनिकमनुष्यदेवेषु उपपद्यन्ते ? जानाम्यम्बातातौ ! यथा स्वकै कर्मायतनै नैरयिक यावद् उपपद्यन्ते । एव खल्वहमम्बातातौ ! यच्चैव जानामि, तच्चैव न जानामि । यच्चैव न जानामि तच्चैव जानामि ।

इच्छाम्यम्बातातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातो यावत् प्रव्रजितुम् । ततस्तमतिमुक्त कुमारमम्बापितरौ यदा नो शक्नुत बहुभिराख्यापनाभिर्यावत्, तदिच्छावस्ते जात ! एकदिवसमपि राज्यश्रिय द्रष्टुम् । तत

सोऽतिमुक्त कुमारो अम्बापितृवचनमनुवर्तयन् तूष्णीक सतिष्ठते। अभिषेको यथा महाबलस्य, निष्क्रमण यावत् सामायिकादीनि एकादशागानि अधीते। बहूनि वर्षाणि श्रामण्य-पर्याय, गुणरत्न यावत् विपुले सिद्ध ।

पदार्थ—**तए ण**—उसके अनन्तर, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार, **जेणेव अम्मापियरो**—जहा पर माता-पिता थे, **तेणेव उवागए**—वहा पर चले गए, **जाव**—यावत्, माता-पिता से, **पव्वइत्तए**—दीक्षित होने के लिये निवेदन किया, यह सुन कर, **अम्मापियरो**—माता-पिता **अइमुत्त कुमार**—अतिमुक्त कुमार को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—, **ताव पुत्ता ! तुम**—हे पुत्र तुम अभी, **बालेसि**—बालक हो, **तुम पुत्ता ! असबुद्धेसि**—हे पुत्र ! तुम अभी असबुद्ध हो। तुझे अभी धर्मतत्त्व का बोध नही है, **तुम धम्म कि जाणासि ?**—तुम धर्म को अभी क्या जानते हो ?

तए ण से अइमुत्ते कुमारे—उस के बाद वह अतिमुक्त कुमार, **अम्मा पियरो एव वयासी**—माता-पिता को इस प्रकार कहने लगा, **अम्मताओ !**—हे मातापिता !, **एव, खलु**—इस प्रकार, निश्चयार्थक है, **अह ज चेव जाणामि**—मैं जिस को जानता हू, **त चेव न जाणामि**—उसी को नही जानता हू, **ज चेव न जाणामि**—जिस को नही जानता हू, **त चेव जाणामि**—उस को जानता हूँ।

तए ण त अइमुत्त कुमार—उसके बाद, उस अति-मुक्त कुमार को, **अम्मापियरो एव वयासी**—माता पिता, इस प्रकार कहने लगे, **पुत्ता ! तुम कह ण**—हे पुत्र ! तू कैसे, **ज चेव जाणासि ?**—जिस को जानता है, **त चेव न जाणासि**—उसी को नही जानता है, **ज चेव न जाणासि**—जिस को नही जानता है, **त चेव जाणासि**—उसी को जानता है अर्थात् जिसको तू जानता है उसी को नही जानता, जिसको तू नही जानता है उसी को जानता है, यह क्या बात हुई ?

तए ण, से अइमुत्ते कुमारे,—उसके बाद, वह अतिमुक्त कुमार, **अम्मापियरो**—माता पिता को, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **अम्मताओ**—हे माता-पिता ! **अह जाणामि**—मैं जानता हू, **यथा**—जैसे, **जाएण**—जो पैदा हुआ है उसे, **अवस्स मरियव्व**—अवश्य मरना पडेगा, **अम्मताओ !**, **अह न जाणामि**—हे माता पिता ! मैं नही जानता हू, **काहे वा**—कब किस समय अथवा **कहि वा**—कहा पर, किस स्थान पर अथवा, **कह वा**—कैसे ? किस प्रकार, अथवा, **केच्चिरेण वा**—कितने समय के बाद मरूगा, **अह न जाणामि**—मैं नही जानता हू, **जीवा, केहि, कम्माययणेहि**—जीव किन, कर्मायतनो अर्थात् जीव किन कर्मबन्ध के कारणो से, **नेरइयतिरिक्खजोणिय**—नारकियो मे, पशुयोनि मे, **मणुस्स**—मनुष्यो मे तथा, **देवेसु**—देवयोनियो मे, **उववज्जति**—उत्पन्न होते हैं, **अम्मताओ ! जाणामि ण**—हे माता-पिता जी ! मैं जानता हू कि, **जहा सएहि कम्माययणेहि**—जिस प्रकार, अपने कर्मायतनो—कर्मबन्ध के कारणो से, **नेरइय जाव उववज्जति**—जीव नारकियो, यावत्, पशुओ, मनुष्यो, और देवो मे उत्पन्न होते हैं, **अम्मताओ !**—हे माता पिता, **एव खलु अह**—इस प्रकार, मैं निश्चय ही, **ज चेव जाणामि**—जिसे जानता हू, **त चेव न जाणामि**—उसे ही नही जानता हू, **ज चेव न जाणामि**—जिसको नही जानता हू, **त चेव जाणामि**—उसे ही जानता हू, **अम्मताओ !**—हे माता पिता,

तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए—आप लोगो द्वारा आज्ञा प्राप्त करने पर, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—दीक्षा ग्रहण करना, **इच्छामि ण**—चाहता हू ।

तए ण—उसके अनन्तर, **त अइमुत्त कुमार**—उस अतिमुक्त कुमार को, **अम्मापियरो**—माता पिता, **जाहे बहूहिं**—जब अनेक, **आघवणाहिं**—व्याख्यानो—मृदु-कठोर वचनो द्वारा, **जाव**—यावत सयम लेने के विचार से रोकने मे, **नो सचाएति**—समर्थ नही हुए तब निराश होकर माता पिता ने अतिमुक्त कुमार से कहा, **त**—यदि तेरी दीक्षित होने की ही इच्छा है तो, **जाया**—हे पुत्र ! **एगदिवसमपि**—एक दिन की ही, **ते रायसिरिं**—तेरी राज्य-शोभा को, तेरी राज्यश्री को, **पासित्तए इच्छामो**—देखना चाहते हैं ।

तए ण, से अइमुत्ते कुमारे—उसके बाद वह अतिमुक्त कुमार, **अम्मापिउवयण-मणुयत्तमाणो**—माता-पिता के वचन को मानते हुए, **तुसिणीए सचिट्ठइ**—मौन हो गए, **अभिसेओ**—राज्याभिषेक राज्य-सिंहासन पर बैठने का उत्सव, **जहा महाबलस्स**—जिस प्रकार महाबल कुमार का वर्णित हुआ है उसी प्रकार अतिमुक्त कुमार का भी समझ लेना, **निक्खमण**—दीक्षाग्रहण के निमित्त अर्थात् दीक्षा-यात्रा महाबल की भाति जान लेनी, **जाव**—यावत—भगवान महावीर के पास दीक्षित हो जाते हैं, तदनन्तर स्थविर सन्तो के पास, **सामाइयमाइयाइ**—सामायिकादि (आचाराग सूत्रादि) **एक्कारस**—ग्यारह, **अगाइ**—अगो का, **अहिज्जइ**—अध्ययन करता है, **बहूइ वासाइ**—बहुत वर्षों तक, **सामण्ण परियाओ**—श्रामण्य—साधुवृत्ति का पालन कर, **गुणरयण**—"गुण-रत्न" नामक तप की आराधना करके, **जाव**—यावत्, **विपुले**—विपुल गिरि नामके पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध पद पाया ।

मूलार्थ—उसके अनन्तर अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास आ गए और उन्होने उनसे भगवान महावीर के पास दीक्षित होने का विचार व्यक्त किया तथा दीक्षा लेने की आज्ञा के लिये उनसे अनुरोध किया । पुत्र दीक्षित होना चाहता है, यह जानकर माता-पिता अपने पुत्र अतिमुक्त से इस प्रकार कहने लगे—

पुत्र ! तुम अभी बालक हो ! तुम्हे अभी धर्म के तत्त्व का बोध नही है, तुम धर्म को क्या समझ सकते हो ? अत दीक्षित होने का सकल्प हृदय से निकाल दो ।

माता-पिता की बात सुनकर अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता से पुन निवेदन करने लगे- 'माता-पिता जी ! जिसे मैं जानता हू उसे नही जानता तथा जिसे मैं नही जानता उसे जानता हू ।'

अपने पुत्र की बात सुनकर माता-पिता उससे फिर कहने लगे-'पुत्र ! यह तुम क्या कह रहे हो ? जिस को तुम जानते हो उसे नही जानते और जिसे तुम नही जानते उसे जानते हो, जरा यह स्पष्ट करो कि इसका क्या अभिप्राय है ?'

अपने माता-पिता का प्रश्न सुनकर अतिमुक्त कुमार उनसे निवेदन करने लगे—'माता-पिता जी ! मैं जानता हू कि जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा, परन्तु मैं यह नही जानता हू कि कब, किस समय, कहा, किस स्थान पर, कैसे, किस प्रकार तथा कितने समय के अनन्तर प्राणान्त होगा ।'

'माता-पिता जी ! मैं यह नही जानता कि कर्मबन्धन के किन कारणो से जीव नारकी, पशु, मनुष्य एवं देवयोनि मे उत्पन्न होते है, परन्तु मैं यह जानता हू कि जीव अपने-अपने कर्मों के कारण नरकादि गतियो मे पैदा होते हैं, अत माता-पिता जी ! मैं कहता हू कि जिसे मैं जानता हू उसे नही जानता और जिसे नही जानता उसे जानता हू ।' 'माता-पिता जी ! मैं चाहता हू कि आप मुझे आज्ञा प्रदान करे ताकि मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षित हो जाऊ ।'

उसके अनन्तर अतिमुक्त कुमार के माता-पिता उसे अनेकविध कठोर और मृदु वचनो से समझाने का प्रयास करने लगे, परन्तु जब वे उसे प्रव्रजित होने से रोक न सके—रोकने मे समर्थ न हो सके तब उन्होने कहा कि 'पुत्र ! हम केवल एक दिन की ही तेरी राज्यश्री को देखने की इच्छा रखते है ।' तब अतिमुक्तकुमार माता-पिता के उक्त वचनो का अनुसरण करता हुआ कुछ भी उत्तर न देकर बैठ गया ।

अतिमुक्त कुमार का राज्याभिषेक और निष्क्रमण आदि शेष वृत्तान्त महाबल कुमार के समान जानना चाहिए । महाबलकुमार की भाति दीक्षित होकर अतिमुक्त मुनि ने आचाराग आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया, गुणरत्न नामक तप किया, बहुत वर्षों तक साधुवृत्तिका पालन करके यावत् विपुलगिरि पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त करके सिद्ध पद उपलब्ध किया ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा उनके माता-पिता इन सब के मध्य मे हुए प्रश्नोत्तरो का बडा सुन्दर विवरण प्राप्त होता है । अतिमुक्त कुमार ने जब अपने माता-पिता से एक ही विषय को जानने और न जानने की बात कही तो माता-पिता का आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक ही था । इसी कारण माता-पिता ने अपने पुत्र को उसका स्पष्टीकरण करने का आदेश दिया ।

राजकुमार अतिमुक्त से जब यह कहा गया कि तू अभी बच्चा है, तुझे धर्म का बोध नही, तब उसने अपने माता-पिता के सन्मुख दो बातें रखी वह कहने लगा—

१ मैं जिसे जानता हू, उसे नही जानता ।

२ जिसे नही जानता, उसे जानता हू ।

अपने प्रिय पुत्र राजकुमार अतिमुक्त की ये दो वाते सुनकर माता-पिता को वडा आश्चर्य हुआ । वे सोचने लगे—'जिसे जान लिया गया है, उसे न जानने का क्या मतलब ? और जिसे नही जाना, उसे जानने का क्या अर्थ ? जब ज्ञान अज्ञान और अज्ञान ज्ञान नही कहलाता तो अतिमुक्त कुमार के ऐसा कहने का क्या प्रयोजन हो सकता है ?' अपने सन्देह को दूर करने के लिये अन्त मे उन्होने अपने पुत्र अतिमुक्त कुमार से कहा—पुत्र ! अपने वक्तव्य को कुछ स्पष्ट करो । तुम्हारी यह प्रहेलिका हमारी समझ मे नही आई ।

राजकुमार अतिमुक्त ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा कि धर्म के सम्बन्ध मे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हू ऐसी बात नही है, धर्म का मुझे भी कुछ ज्ञान है परन्तु धर्म की पूर्ण परिभाषा मैं नही जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ । मुझे नन्हा सा वालक समझ कर ऐसा नही जान लेना चाहिए कि धर्म-तत्त्व से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ । धर्म के सम्बन्ध मे मुझे कुछ जानकारी है ? यह भी निवेदन किये देता हू कि मुझे इस वात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन सम्बन्ध है । जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास वनना ही पडता है । यह मैं अच्छी तरह समझता हू , पर मुझे यह नही पता कि कव ? कहां ? और कैसे ? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पडेगा ?

अपनी बात को चालू रखते हुए अतिमुक्त कुमार फिर कहने लगे—मैं यह नही समझता कि जीव बिना कर्मबन्ध के कारणो से चारो गतियो (नरक, मनुष्य, तिर्यञ्च, देव) मे जन्म लेते हैं, परन्तु मैं यह अवश्य जानता हू कि अपने किए हुए कर्मो के कारण ही जीव नरकादि गतियो मे पैदा होता है ।

अल्पज्ञ और सर्वज्ञ मे क्या अन्तर है ? इस प्रश्न का समाधान अतिमुक्त कुमार के कथानक मे स्पष्ट रूप से प्राप्त हो जाता है । सर्वज्ञ को तो वस्तु के समस्त पर्यायो का सम्पूर्ण रूप से करामलकवत् ज्ञान होता है और अल्पज्ञ व्यक्ति तो मात्र कार्य-कारण-भाव के नियमानुसार पदार्थ को सामान्य रूप से ही जान सकता है । अल्पज्ञ को—जन्म के वाद मृत्यु के होने का ज्ञान अनुमान प्रमाण के द्वारा अवश्य-भावी है—यह सामान्य ज्ञान ही होता है, परन्तु मृत्यु कब और किस स्थान मे तथा किस प्रकार होगी, यह उसके ज्ञान का विषय नही है, इसलिये वह उससे अज्ञात ही रहता है ।

इसी प्रकार कार्य-कारण-भाव के नियम को लेकर नरक, 'तिर्यञ्च, मनुष्य और देवयोनि मे स्वोपार्जित उच्चावच कर्मो का फल रूप होने से छद्मस्थ जीव इतना ही समझ सकता है कि इन योनियो का प्राप्त होना उसके किसी शुभाशुभ कर्म का परिणाम है, परन्तु किस प्रकार के कर्मबध से किस प्रकार की योनि प्राप्त होती है तथा प्रत्येक योनि में भी जो तारतम्य दिखाई देता है उसका कारण भूत कौन-सा कर्म है ? इस प्रकार का विशेष ज्ञान उसको नही होता । इसके विपरीत सर्वज्ञ आत्मा को इन सब वातो का यथार्थ रूप मे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है,क्योकि उसका जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष एव सम्पूर्ण

रूप से लोकालोक व्यापी होता है, तथा छद्मस्थ का परोक्ष विषयाधीन होने से एक देशी हुआ करता है। इसी अभिप्राय से अतिमुक्त कुमार ने कहा है कि 'मैं जानता भी हू और नही भी जानता हू।'

अतिमुक्त कुमार के माता पिता ने अपने पुत्र को धर्म-तत्त्व से अपरिचित जानकर जो उसके सयम विषयक प्रस्ताव का विरोध किया था, अतिमुक्त कुमार ने अपनी ज्ञान-चर्चा के द्वारा उसको समाप्त कर दिया। उसने बोधपूर्ण भाषा मे अपनी बात कहकर माता-पिता को यह बतला दिया कि आप निश्चिन्त रहे और मुझे धर्म से सर्वथा अनभिज्ञ न समझे।

अतिमुक्त कुमार की ज्ञानमयी बातें सुनकर इनके माता-पिता का मन पूर्णतया समाहित हो गया, उनकी अन्तरात्मा को विश्वास हो गया कि अतिमुक्त कुमार को धर्म-तत्त्व का बोध है, यह उससे अपरिचित नही है और यह जो कुछ कहता है वह सब सत्य है, बुद्धि-सगत है। तथापि पुत्र की ममता के कारण उन्होने दीक्षित होने का विचार छोडने के लिये बडा आग्रह किया, उसे मृदु और कठोर बातो से समझाने का प्रयत्न किया, पर अतिमुक्त कुमार को उसके विश्वास से विचलित नही किया जा सका। सयम के महापथ पर चलने की उसकी विचार धारा मे कोई अन्तर नही आ पाया।

अतिमुक्त कुमार को बहुत ऊच-नीच प्रकार से समझाया गया, कि वह दीक्षित होने के विचारो का परित्याग कर दे, इसके लिये पूरा प्रयत्न किया गया, परन्तु जब वह किसी भी तरह अपने पथ से पीछे हटने के लिये तैय्यार न हुआ तो विवश हो माता-पिता ने सानुरोध उससे कहा कि पुत्र! यदि तू किसी भी तरह घर मे रहने के लिये तैय्यार नही है तो कम से कम एक बात हमारी अवश्य मान ले। हमारी हार्दिक इच्छा है कि पोलासपुर के सिंहासन पर विठला कर तेरा राज्याभिषेक किया जाये, यदि अधिक नही तो एक दिन के लिये राज्यशोभा दिखाकर हमारी कामना पूर्ण कर। माता-पिता की इस कामना के आगे अतिमुक्त कुमार को नतमस्तक होना पडा और उन्होने एक दिन के लिये राज्य-शोभा दिखाने का प्रस्ताव मौन रूप से स्वीकार कर लिया।

अतिमुक्त कुमार की स्वीकृति हो जाने के अनन्तर माता-पिता ने बडे समारोह के साथ अपने प्रिय पुत्र का राज्याभिषेक किया, उसे पोलासपुर के सिंहासन पर विठलाया। माता-पिता को विश्वास था कि अतिमुक्त कुमार राजसिंहासन के मोह मे फस जायेगा, पर उनका विश्वास सत्य प्रमाणित नही हुआ। अतिमुक्त कुमार ने तो केवल अपने माता-पिता की कामना ही पूर्ण करनी थी, उसके पूर्ण होते ही अतिमुक्त कुमार राजसिंहासन छोडकर भगवान महावीर के चरणो में पहुँच कर दीक्षित हो गये। इन्होने ग्यारह अगो का अध्ययन किया, गुणरत्न नामक तप किया, अन्त मे विपुल गिरि पर्वत पर जा कर सिद्ध हो गये।

"उवागए जाव पव्वइए"—यहा पठित जाव पद अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास पहुँच कर उन से कहने लगे—माता-पिता जी! आज मैंने भगवान महावीर की वाणी सुनी है, वाणी क्या थी सचमुच अमृत था, मैं तो आनन्द-विभोर हो गया। मेरी इच्छा है यदि आप मुझे आज्ञा प्रदान करे तो मैं भगवान के चरणो मे दीक्षित हो जाऊ। इन भावो का परिचायक है।

"वालेसि असबुद्धेसि"—का अर्थ है—तू वाल है, असवुद्ध है। वाल का अर्थ है—छोटी अवस्था-वाला, जिसे तत्त्वो का अभी ज्ञान न हो उसे असबुद्ध कहते है। वाल शब्द आयुगत स्वल्पता का तथा असबुद्ध शब्द ज्ञान के अभाव का ससूचक है।

'ण'—यह अव्ययपद है। यह ननु (शकावाची) इस अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है।

"जाणासि जाव त चेव" —यहा का जाव पद "त चेव न जाणासि ज चेव जाणासि" इन पदो का वोधक है। इनका अर्थ पदार्थ मे किया गया है।

"काहे वा, कहिं वा, कह वा, केच्चिरेण वा," इन पदो की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभय देव सूरि लिखते हैं—

"काहे व त्ति, कस्या वेलाया प्रभातादिकाया, कहिं व त्ति, क्व क्षेत्रे, कह वत्ति, केन प्रकारेण कियच्चिरेण ? कियति कालेऽतिक्रान्ते इत्यर्थ" अर्थात् काहे यह पद प्रभात, मध्याह्न या साय आदि समयो मे से 'किस समय' इस अर्थ का बोधक है। कहिं यह पद 'कौन से स्थान पर' इस अर्थ का तथा कह यह पद 'किस प्रकार किस दिशा मे' इस अर्थ का तथा 'कियच्चिरेण' यह पद 'कितने समय के व्यतीत हो जाने पर' इस अर्थ के परिचायक हैं।

* कम्मायणेहिं" का अर्थ वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—कम्माययणेहिं त्ति, कर्मणा—ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि बघहेतव इत्यर्थ। पाठान्तरेण "कम्मावयणेहिं त्ति' तत्र कर्मा-पतनानि यै कर्मापतति—आत्मनि सभवति तानि तथा।" अर्थात् कर्म शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मो का ससूचक है और आयतन शब्द वध-कारणो (जिन कारणो से कर्मो का वध होता है) का परिचायक है। कही-कही कम्मायणेहिं के स्थान पर कम्मावयणेहिं ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणो से कर्म आत्मसरोवर मे गिरते हैं, आत्म-प्रदेशो से सम्वन्धित होते हैं, उन्हे कर्मापतन कहते हैं।

"नेरइय जाव उववज्जति"—यहा पठित जाव पद तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेसु—इन पदो का ससूचक है।

"अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए"—यहा पठित जाव पद 'आज्ञा प्राप्त होने पर भगवान महावीर के चरणो में दीक्षित हो जाऊगा' इन भावो का वोधक है।

"बहूहिं आघवणाहिं जाव त इच्छामि"—यहा पठित जाव पद अन्य स्थानो पर पढे गए अव-शिष्ट पाठ का बोधक है।

"अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे"—अम्मापितृवचनम् अनुवर्तमान मन्यमान —अर्थात् माता-पिता के वचनो को मानता हुआ।

"अभिसेओ जहा महावलस्स"—यहा पठित जहा शब्द का अर्थ है जिस प्रकार। महावल

---

* कर्मायतनै कर्मवन्धकारणै। शतक ११ उद्देशक ११

कुमार का वर्णन व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) मे किया गया है। अतिमुक्त कुमार का निष्क्रमण, दीक्षा यात्रा-समारोह महाबल के समान सम्पन्न हुआ था, इसलिये सूत्रकार ने **"जहा महाबलस्स"** ये पद दिए है। इनका अर्थ है जिस प्रकार महाबल का निष्क्रमण हुआ था उसी प्रकार अतिमुक्त कुमार का भी समझ लेना चाहिये।

"निक्खमण जाव सामाइयमाइयाइ"— यहाँ का जाव पद दीक्षा-यात्रा सम्पन्न होने के अनन्तर अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित होकर वदन, नमस्कार करते हैं। ईशान कोण मे जाकर अपने वस्त्र उतार कर पचमुष्टिक लोच करते हैं और उसके पश्चात् भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो जाते है, तथारूप स्थविर सन्तो के पास—इन भावो का ससूचक है।

"गुणरयण" का अर्थ है—गुणरत्न, नाम का तप विशेष। इस मे १६ मास लगते हैं। इस के प्रथम मास मे एक-एक उपवास, दूसरे मे दो दो, इसी प्रकार सोहलवे मास मे १६ उपवास करने पडते हैं। इस मे दिन को अकुडु आसन पर सूर्य के सामने व रात्रि को वीरासन से वस्त्र-रहित बैठने का विधान है*।

"गुणरयण जाव विपुले"—यहाँ पठित जाव पद 'गुणरत्न तप किया, भगवान महावीर से आज्ञा ले कर स्थविर सन्तो के साथ विपुल-गिरि पर आरोहण किया, वहा आमरण अनशन किया, निर्वाण पद प्राप्त करके' इन भावो का परिचायक है।

भगवती सूत्र मे मुनिराज अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बडा सुन्दर विवेचन मिलता है। प्रस्तुत मे अतिमुक्त मुनि की जीवनी का वर्णन होने से उसका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। भगवती सूत्र मे लिखा है कि—

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर के मुनि अतिमुक्त नाम के एक शिष्य थे, उनकी अवस्था छोटी थी। वे प्रकृति से भद्र, सरल एव विनयवान थे। एक बार वर्षा ऋतु आ गई। मुनि-राज अतिमुक्त बाहर गये, बाहर इन्होने पानी को बहते देखा और मिट्टी लेकर उसमे पाल बाध दी अवरुद्ध हुए पानी मे इन्होने अपना पात्र छोड दिया, जब यह पात्र तैरने लगा तब ये कहने लगे,— "मेरी नाव तैर रही है, मेरी नाव तैर रही है।" इस प्रकार यह क्रीडा करने लगे। यह सब दृश्य प्रवृद्ध मुनियो ने देखा। तत्काल वे श्रमण भगवान महावीर के पास गये, उनकी सेवा मे निवेदन करने लगे, भगवन्! आप के शिष्य मुनि श्री अतिमुक्त कुमार कितने जन्म लेकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगे? कब तक जन्म-मरण-जन्य दुखो का अत कर देगे? स्थविर मुनि-राजो के इस प्रश्न को सुनकर श्रमण भगवान महावीर उनसे कहने लगे —

"आर्यो! मेरा शिष्य प्रकृति से भद्र है, सरल है, विनयवान् है, वह इसी भव मे सिद्ध पद को प्राप्त कर लेगा। जन्म-मरण-जन्य दुखो का अन्त कर देगा, अत आर्यो! मुनि अतिमुक्त कुमार की अवहेलना गर्हा एव निन्दा मत करो, प्रत्युत बिना किसी ग्लानि के इसकी सेवा करो।" श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ऐसा कहने पर स्थविर मुनिराज श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर मुनि अतिमुक्त की बिना किसी सकोच के सेवा करने लगे।

*गुणरत्न तप का विशेष विवरण पृष्ठ न० ६५ पर देखिए।

प्रस्तुत अध्ययन अतगड सूत्र के छठे वर्ग का १५ वा अध्ययन है। इस मे पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त के जीवन का उल्लेख किया गया है, अतिमुक्त कुमार, छोटी अवस्था से ही साधु-मतो के प्रेमी श्रद्धालु एव सेवक थे। भिक्षार्थ नगर मे भ्रमण कर रहे भगवान गौतम की अगुली पकड कर उन्हें अपने घर ले जाना, उन्हे आहार दिलवाना और फिर उनके साथ भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे उपस्थित होकर श्रद्धा पूर्वक उनका उपदेश सुनना, सुने उपदेश को जीवन मे उतार कर दिखलाना ये सब बातें अतिमुक्त कुमार के विशुद्ध प्रेम, पावन श्रद्धान तथा अनिर्विकार सयमानुराग की परिचायक है।

जिसने जन्म लिया है उसने एक दिन मरना है तथा कृत कर्मों का उपभोग अवश्यमेव करना है, इन दो बातो ने अतिमुक्त कुमार के जीवन की दिशा को बदल दिया। इसी ज्ञान-प्रकाश ने उनके आन्तरिक अन्धकार को दूर करके उन्हें प्रकाशमय बना डाला था। वस्तुत ये दो बातें जीवन का वास्तविक ज्ञान हैं, यही ज्ञान जब आचरण का स्थान ले लेता है तो जीवन की नैय्या किनारे लग जाती है। सभव है इसी सत्य को अभिव्यक्त करने के लिये अतिमुक्त मुनि ने अपने पात्र की नौका बनाकर उसे जलमे तैराया था, मानो उन्हे विश्वास हो गया था कि अब मेरी जीवन-नौका ससार-सागर मे तैर रही है। और एक दिन यह निश्चित ही पार हो जाएगी।

॥ पन्द्रहवा अध्ययन समाप्त ॥
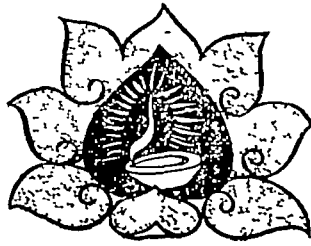
सोलहवां अध्ययन

अथ सूत्रकार क्रम-प्राप्त सोलहवे अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तेण कालेण तेण समएण वाणारसीए णयरीए काममहावणे चेइए । तत्थ ण वाणारसीए अलक्खे नाम राया होत्था । तेण कालेण तेणं समएण समणे भगव महावीरे जाव विहरइ । परिसा णिग्गया । तए ण अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ । धम्मकहा । तए ण अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए जहा उदायणे तहा णिक्खते, णवर जेट्ठ पुत्त रज्जे अहिसिंचइ । एक्कारस अगाइं, बहु वासा परियाओ, जाव विपुले सिद्धे । एवं खलु जम्बू ! समणेण जाव छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये वाराणस्यां नगर्यां काममहावन चैत्यम् । तत्र वाराणस्यामलक्षो नाम राजाऽऽसीत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो यावत् विहरति । परिषद् निर्गता । ततो अलक्षो राजा अस्या कथाया लब्धार्थ सन् हृष्टस्तुष्टो यथा कूणिको यावत् पर्युपास्ते । धर्मकथा । तत सो लक्षो राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके यथा उदायनस्तथा निष्क्रान्त , नवर ज्येष्ठपुत्र राज्येऽभिषिंचति । एकादशागानि, बहूनि वर्षाणि पर्याय यावत् विपुले सिद्ध एव खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् षष्ठस्य अयमर्थ प्रज्ञप्त ।

पदार्थ—तेण कालेण—उस काल तथा, तेण समएण—उस समय, वाणारसीए णयरीए—वाराणसी नामक नगरी के वाहिर, काममहावणे चेइए—काम महावन नामक, चैत्य—उद्यान था । तत्थ ण वाणारसीए णयरीए—वहा वाराणसी नामक नगरी मे, अलक्खे णाम राया होत्था—अलक्ष नामक राजा था, तेण कालेण तेण समएण—उस काल तथा उस समय, समणे भगव महावीरे—श्रमण-तपस्वी, भगवान, महावीर स्वामी, जाव—यावत्, वाराणसी नगरी मे पधारे वहा के काम महावन नामक उद्यान मे साधुवृत्ति के अनुकूल स्थान लेकर, विहरइ—विचरण करने लगे, परिसा णिग्गया—भगवान के दर्शनार्थ जनता, नगरी से वाहिर आई, तए ण—उसके अनन्तर, अलक्खे राया—अलक्ष राजा, इमीसे कहाए—इस कथा—वृत्तान्त को, लद्धट्ठे समाणे—जानकर, हट्ठतुट्ठे—प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुए, जहा—जिस प्रकार, कूणिए—महाराजा कूणिक, जाव—यावत्—भगवान महावीर के दर्शन करने गए, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी गए, वदना और नमस्कार करने के अनन्तर वे भगवान की, पज्जुवासइ—पर्युपासना करने लगे, धम्मकहा—भगवान महावीर ने जनता तथा अलक्ष नरेश को धर्म सुनाया ।

तए ण अलक्खे राया—उस के वाद अलक्ष राजा, **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के, **अंतिए**—पास, उपदेश सुन कर, **जहा**—जिस प्रकार, **उदायणे**—उदायन नरेश दीक्षित हुए थे, **तहा**—उसी प्रकार, **निक्खते**—दीक्षित हो गए, **णवर**—इतना अन्तर है कि, **जेट्ठ पुत्त**—अपने बडे पुत्र को, **रज्जे**—राज्य मे, **अहिसिचइ**—अभिषिक्त करते हैं अर्थात् अपने लडके को राज्य दे देते हैं, **एक्कारस्स अगाइ**—तथारूप स्थविर सन्तो के पास ११ अगो का अध्ययन किया, **बहुवासा परियाओ**—अनेक वर्षों तक सयम-पर्याय का पालन किया, **जाव**—यावत्—सयम तप की सम्यग् आराधना के अनन्तर, **विपुले**—विपुलगिरि पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध-पद प्राप्त किया, **एव खलु**—इस प्रकार निश्चित ही, **जम्बू !**—हे जम्बू !, **समणेण**—श्रमण—तपस्वी, **जाव**—यावत् भगवान महावीर ने, **छट्ठस्स वग्गस्स**—छठे वर्ग का, **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ, प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ- उस काल तथा उस समय मे वाराणसी नामक नगरी थी, उस के बाहिर काम महावन नाम का एक उद्यान था। वाराणसी नगरी के नरेश का नाम महाराजा अलक्ष था।

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगरी मे पधारे और नगरी के बाहिर काम महावन उद्यान मे विराजमान हो गए। भगवान के आगमन की सूचना पाकर नगरनिवासी लोग धर्म-व्याख्यान श्रवणार्थ भगवान के चरणो मे उपस्थित हो गए। भगवान महावीर के आगमन का समाचार जब अलक्ष नरेश को मिला, तो उन्हे बडा हर्ष एव सन्तोष हुआ। वे भी महाराजा कूणिक की भाति बडे समारोह के साथ भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हुए और वदना नमस्कार करने के अनन्तर भगवान के चरणो मे बैठ कर उनकी सेवा करने लगे।

वाराणसी नगरी की जनता तथा अलक्ष नरेश सब के यथोचित स्थान पर बैठ जाने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने सब को धर्म का उपदेश दिया, धर्म का तत्त्व समझाया। धर्म-कथा सुनने के अनन्तर अलक्ष नरेश श्रमण भगवान महावीर के पास महाराजा उदायन की भाति दीक्षित हो गए। अन्तर केवल इतना ही है कि अलक्ष नरेश ने दीक्षित होने से पूर्व अपने बडे लडके को राजसिंहासन पर बिठला कर उसे राज्यसत्ता सौप दी थी।

अलक्ष नरेश ने दीक्षित हो जाने के अनन्तर तथारूप स्थविरो के पास रह कर ग्यारह अगो का अध्ययन किया, अनेक वर्षों तक सयम का पालन किया और भगवान

महावीर से आज्ञा प्राप्त करके स्थविर मुनिराजो के साथ विपुलगिरि पर पहुच कर सिद्ध पद को पाया।

इस प्रकार छठे वर्ग के १६ अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के छठे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सोलहवें अध्ययन मे वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणो के परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु-चरणो मे निष्ठा एव आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चम्पा-नरेश कूणिक की ओर सकेत किया है। औपपातिक सूत्र का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि कूणिक को मगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे अगाध श्रद्धा थी। अनुपम एव अत्यन्त प्रेम था। इसी असीम प्रेम के कारण वह भगवान के दर्शन या उनके शुभ समाचार प्राप्त किये विना अन्न-जल तक ग्रहण न करता था। भगवान महावीर का शुभ समाचार प्राप्त करने के लिये इस ने विशेष रूप से कुछ व्यक्ति नियुक्त किये हुए थे जो उसे निरन्तर भगवान के विहार एव उपदेश आदि की सूचना देते रहते थे। इसी प्रकार की परम श्रद्धा अलक्ष नरेश के हृदय मे भी थी, इसी बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने इनकी तुलना कोणिक नरेश से की है। सूत्रकार कहते हैं भगवान महावीर के पधारने पर जितने श्रद्धान एव समारोह के साथ कूणिक भगवान के चरणो मे उपस्थित हुआ करते थे, उतने ही श्रद्धान एव समारोह के साथ अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हुए।

भगवान महावीर की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर अलक्ष नरेश को वैराग्य हो गया। वैराग्य के अनन्तर दीक्षा-ग्रहण करना, स्थविर मुनिराजो से अग शास्त्रो का अध्ययन करना, सलेखना द्वारा विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध-पद की प्राप्ति करना, आदि समस्त वृत्तान्तो को सूत्रकार ने महाराजा उदायन के समान बताया है। जैसे महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी अग-शास्त्र पढे थे, वैसे ही अलक्ष नरेश ने भी दीक्षा ग्रहण की, अग-शास्त्र पढे। यही इन दोनो महापुरुषो की साधुजीवन-गत समानता है। इन दोनो के जीवन मे जो अन्तर है सूत्रकार ने उसे भी स्पष्ट करने का अनुग्रह किया। सूत्रकार कहते हैं—दोनो महापुरुषो ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने राज्य का जो उत्तराधिकारी निश्चित किया था उसमे अन्तर है। महाराजा उदायन ने तो अपने भागिनेय (भानजे) को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की थी और महाराजा अलक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर प्रव्रजित हुए थे। यही इन के जीवन मे भिन्नता है।

सोहलवे अध्ययन के उत्क्षेप अर्थात् आरभवाक्य का सूत्रकार ने कोई निर्देश नही किया है। इसका कारण केवल सक्षेप की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा प्रारभ-वाक्य के विना अध्ययन को

आरभ नही किया जा सकता । सोहलवे अध्ययन के प्रारभ-वाक्य की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है—

जइ ण भते ! समणेण अन्तगडदसाण छट्ठस्स वग्गस्स पन्नरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सोलमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! भगवान महावीर ने छठे वर्ग के सोहलवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

"भगव महावीरे जाव विहरइ" यहा पठित जाव पद से विवक्षित **"आइगरे'** आदि अवशिष्ट पदो का निर्देश अनेक स्थलो पर किया जा चुका है ।

"जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ" यहा पठित जाव पद कूणिक नरेश की दर्शन-यात्रा - समारोह का ससूचक है । चम्पा-नरेश कूणिक का विस्तृत वर्णन श्री औपपातिक सूत्र मे किया गया है ।

"जहा उदायणे तहा निक्खते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराज उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए उदायन भूप कौन थे ? कहा तथा किस के पास दीक्षित हुए ? आदि अनेको प्रश्न उपस्थित होते है, परन्तु यहा टीकाकार बिल्कुल मौन है । वैसे कथा-ग्रन्थो में उदायन नरेश की कथा आती है, जो इस प्रकार है—

सिन्धु देश मे वितभयपुर नामक नगर था, उदायण‡ वहा का राजा था । रानी का नाम पद्मावती, कुमार का नाम अभीच कुमार और भानजे का नाम केशीकुमार था । उदायन भूप छोटे-बडे सोलह देशो का स्वामी था । उसका जैन धर्म पर अटूट विश्वास था । एक दिन वह पौषधशाला मे पौषध करके बैठा हुआ था । धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान महावीरकी स्मृति आ गई, वह सोचने लगा— वह नगर, कानन धन्य है जहा भगवान विहार करते है, वे राजा, सेठ नागरिक लोग कितने धन्य हैं जो भगवान की वाणी सुनते हैं, उनकी सेवा करते हैं, अपने हाथ से उन्हे निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते है । मेरा ऐसा सौभाग्य कहा ? मुझे तो उस महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नही मिलता । चिन्तन की धारा उर्ध्वमुखी होने लगी, उसने सोचा यदि भगवान मेरी नगरी मे पधार जाए तो मैं उनकी सेवा करू, और साथ ही इस असार ससार को छोड कर दीक्षित हो जाऊ ।

उस समय भगवान चम्पा के पूर्ण भद्र उद्यान मे विराजमान थे । वीतभयपुर और चम्पा मे सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणा-सागर, भक्त-वत्सल भगवान महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी मे पधार गये । अन्धे को मानो दो नयन मिल गये, भगवान के पधार जाने का शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे । बडे समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब

‡ इसे उदाई भी कहा जाता है ।

महावीर से आज्ञा प्राप्त करके स्थविर मुनिराजो के साथ विपुलगिरि पर पहुच कर सिद्ध पद को पाया।

इस प्रकार छठे वर्ग के १६ अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के छठे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सोलहवें अध्ययन मे वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणो के परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु-चरणो मे निष्ठा एव आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चम्पा-नरेश कूणिक की ओर सकेत किया है। औपपातिक सूत्र का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि कूणिक को मगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे अगाध श्रद्धा थी। अनुपम एव अत्यन्त प्रेम था। इसी असीम प्रेम के कारण वह भगवान के दर्शन या उनके शुभ समाचार प्राप्त किये बिना अन्न-जल तक ग्रहण न करता था। भगवान महावीर का शुभ समाचार प्राप्त करने के लिये इस ने विशेष रूप से कुछ व्यक्ति नियुक्त किये हुए थे जो उसे निरन्तर भगवान के विहार एव उपदेश आदि की सूचना देते रहते थे। इसी प्रकार की परम श्रद्धा अलक्ष नरेश के हृदय मे भी थी, इसी बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने इनकी तुलना कोणिक नरेश से की है। सूत्रकार कहते हैं भगवान महावीर के पधारने पर जितने श्रद्धान एव समारोह के साथ कूणिक भगवान के चरणो मे उपस्थित हुआ करते थे, उतने ही श्रद्धान एव समारोह के साथ अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हुए।

भगवान महावीर की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर अलक्ष नरेश को वैराग्य हो गया। वैराग्य के अनन्तर दीक्षा-ग्रहण करना, स्थविर मुनिराजो से अग शास्त्रो का अध्ययन करना, सलेखना द्वारा विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध-पद की प्राप्ति करना, आदि समस्त वृत्तान्तो को सूत्रकार ने महाराजा उदायन के समान बताया है। जैसे महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी अग-शास्त्र पढे थे, वैसे ही अलक्ष नरेश ने भी दीक्षा ग्रहण की, अग-शास्त्र पढे। यही इन दोनो महापुरुषो को साधुजीवन-गत समानता है। इन दोनो के जीवन मे जो अन्तर है सूत्रकार ने उसे भी स्पष्ट करने का अनुग्रह किया। सूत्रकार कहते हैं—दोनो महापुरुषो ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने राज्य का जो उत्तराधिकारी निश्चित किया था उसमे अन्तर है। महाराजा उदायन ने तो अपने भागिनेय (भानजे) को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की थी और महाराजा अलक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर प्रव्रजित हुए थे। यही इन के जीवन मे भिन्नता है।

सोहलवे अध्ययन के उत्क्षेप अर्थात् आरभवाक्य का सूत्रकार ने कोई निर्देश नही किया है। इसका कारण केवल सक्षेप की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा प्रारभ-वाक्य के बिना अध्ययन को

आरभ नही किया जा सकता । सोहलवे अध्ययन के प्रारभ-वाक्य की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है—

जइ ण भते ! समणेण अन्तगडदसाण छट्ठस्स वग्गस्स पन्नरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सोलमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के पन्दरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! भगवान महावीर ने छठे वर्ग के सोहलवे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

"भगव महावीरे जाव विहरइ" यहा पठित जाव पद से विवक्षित "आइगरे' आदि अवशिष्ट पदो का निर्देश अनेक स्थलो पर किया जा चुका है ।

"जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ" यहा पठित जाव पद कूणिक नरेश की दर्शन-यात्रा - समारोह का ससूचक है । चम्पा-नरेश कूणिक का विस्तृत वर्णन श्री औपपातिक सूत्र मे किया गया है ।

"जहा उदायणे तहा निक्खते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराज उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए उदायन भूप कौन थे ? कहा तथा किस के पास दीक्षित हुए ? आदि अनेको प्रश्न उपस्थित होते है, परन्तु यहा टीकाकार बिल्कुल मौन है । वैसे कथा-ग्रन्थो मे उदायन नरेश की कथा आती है, जो इस प्रकार है—

सिन्धु देश मे वितभयपुर नामक नगर था, उदायण‡ वहा का राजा था । रानी का नाम पद्मावती, कुमार का नाम अभीच कुमार और भानजे का नाम केशीकुमार था । उदायन भूप छोटे-बडे सोलह देशो का स्वामी था । उसका जैन धर्म पर अटूट विश्वास था । एक दिन वह पौषधशाला मे पौषध करके बैठा हुआ था । धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान महावीरकी स्मृति आ गई, वह सोचने लगा— वह नगर, कानन धन्य है जहा भगवान विहार करते हैं, वे राजा, सेठ नागरिक लोग कितने धन्य हैं जो भगवान की वाणी सुनते हैं, उनकी सेवा करते हैं, अपने हाथ से उन्हे निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते हैं । मेरा ऐसा सौभाग्य कहा ? मुझे तो उस महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नही मिलता । चिन्तन की धारा उर्ध्वमुखी होने लगी, उसने सोचा यदि भगवान मेरी नगरी मे पधार जाए तो मैं उनकी सेवा करू, और साथ ही इस असार ससार को छोड कर दीक्षित हो जाऊ ।

उस समय भगवान चम्पा के पूर्ण भद्र उद्यान मे विराजमान थे । वीतभयपुर और चम्पा मे सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणा-सागर, भक्त-वत्सल भगवान महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी मे पधार गये । अन्धे को मानो दो नयन मिल गये, भगवान के पधार जाने का शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे । बडे समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब

‡ इसे उदाई भी कहा जाता है ।

भगवान के चरणो मे उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को वैराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये वह वापिस महलो मे आ गया। शासन-व्यवस्था का सारा दायित्व अभीच कुमार को सभाल देना चाहिये था, पर उदायन ने सोचा—राज्य को बन्धन का कारण समझ कर मैं त्याग रहा हू, फिर अपने पुत्र अभीच कुमार को इस बन्धन मे क्यो फसाऊ ? अपना बन्धन कुमार के गले मे डालू यह तो उस के साथ अन्याय होगा। अन्त मे राजा ने सारे राज्य मे घोषणा कर दी—कि मेरा उत्तराधिकारी मेरा भानजा केशीकुमार है, उसका राज्याभिषेक करके मैं दीक्षित हो जाऊगा। इस घोषणा से उत्तराधिकारी राजकुमार को महान दुःख हुआ और वह रुष्ट होकर अपने राज्य से बाहर चला गया। इधर उदायन भानजे को राजा बना कर भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गये।

एक बार मुनि उदायन अस्वस्थ हो गये। वे भ्रमण करते हुए अपनी नगरी वीतभयपुर मे आए, पर केशी-कुमार बदल चुका था, उसको भय हो गया था कि कही उदायन पुन राज्य न लेना चाहते हो अत उसने नगर मे सब को आदेश दे दिया कि कोई व्यक्ति उदायन को आहार न दे और न विश्राम करने को स्थान ही दे, जो भी इस आदेश की अवहेलना करेगा उसे राजा परिवार सहित मौत के घाट उतार देगा। मृत्यु के भय से किसी भी नागरिक ने उसे आश्रय नही दिया। उदायन सारे नगर मे घूमे, तब कही एक कुम्हार को दया आ गई, उसने उन्हे स्थान दिया। अपने गुप्तचरो से यह सूचना पाकर राजा ने उदायन को मरवाने के लिये एक वैद्य को भेजा। वैद्य ने उपचार के निमित्त उदायन को विष खिला दिया। शरीर मे अपार वेदना हुई पर उदायन मुनि ने विष-वेदना को शान्तिपूर्वक सहन किया। भावना की निर्विकारता से उदायन मुनि को अवधिज्ञान हो गया। ज्ञान-प्रकाश होते ही स्थिति समझने मे देर न लगी, पर इन्होने अपने मन को विक्षुब्ध नही होने दिया। धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान की सीढिया पार करके अन्त मे इन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्तिधाम मे जा विराजमान हुए।

"परियाओ जाव विपुले सिद्धे" यहा पठित **जाव** पद अलक्ष मुनि ने भगवान महावीर स्वामी से पूछ कर स्थविर सन्तो के साथ विपुल गिरि पर आरोहण किया, सलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध किया, आमरण अनशन किया, अन्त मे सर्व कर्मों को क्षय करके सिद्ध बुद्ध अमर पद को उपलब्ध किया।

"समणेण जाव छट्ठस्स"—यहा पठित **जाव** पद **"भगवया महावीरेण"** इन पदो का ससूचक है।

॥ छठा वर्ग समाप्त ॥
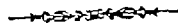
सातवां वर्ग

अब सूत्रकार सप्तम वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते है—

मूल—जइ ण भते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ। जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा —-

नदा तह नदवई, नदोत्तर नदसेणिया चेव।
मरुया सुमरुया, महमरुया मरुदेवीय अट्ठमा ॥१॥
भद्दा य सुभद्दा य, सुजाया सुमणातिया।
भूयदिन्ना य बोद्धव्वा, सेणियभज्जाण नामाइ ॥२॥

जइ ण भते० ! तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, वण्णओ। तस्स ण सेणियस्स रण्णो नदा नाम देवी होत्था वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। तए ण सा नदादेवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठा कोडुबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाण जहा पउमावई, जाव एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता वीसं वासाइ परियाओ जाव सिद्धा।

एव तेरस वि देवियो णदागमेण णेयव्वाओ। निक्खेवओ।

छाया— यदि खलु भदन्त ! सप्तमस्य वर्गस्य उत्क्षेपक यावत् त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा—

नन्दा तथा नन्दवती, नन्दोत्तरा नन्दश्रेणिका चैव।
मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुद्देवी च अष्टमी ॥१॥
भद्रा च सुभद्रा च, सुजाता सुमनातिका।
भूतदत्ता च बोद्धव्या, श्रेणिक-भार्याणां नामानि ॥२॥

यदि भदन्त ! त्रयोदश अध्ययनि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महावीरेण कोऽर्थ प्रज्ञप्त.। एव खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह

नगरम्, गुणशिलक चैत्यम्, श्रेणिको राजा, वर्णक । तस्य श्रेणिकस्य राज्ञ नदा नाम्नी देव्यासीत्, वर्णक ।

स्वामी समवसृत, परिषन्निर्गता । तत सा नन्दादेवी अस्या कथाया लब्धार्था सती हृष्ट-तुष्टा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा, यान यथा पद्मावती यावत् एकादश अगानि अधीत्य विंशतिवर्षाणि पर्यायो यावत् सिद्धा ।

एव त्रयोदश्योऽपि देव्यो नन्दागमेन नेतव्या । निक्षेपक ।

पदार्थ— **भते !**—हे भगवन्, **जइ ण**—यदि, **सत्तमस्स वग्गस्स**—सातवे वर्ग के, **उक्खेवग्रो**—उत्क्षेपक—प्रारभ वाक्य की कल्पना कर लेना, **जाव**—यावत—सातवे वर्ग मे, **तेरस**—तेरह, **अज्झयणा**—अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किये है, **त जहा**—जैसे कि, **नदा**—नन्दा देवी, **तह**—तथा, **नदवई**—नन्दवती, **नन्दोत्तर**—नन्दोत्तरा देवी, **च**—और, **नदसेणिया** नन्दश्रेणिका देवी, **एव**—निश्चयार्थक है, **मरुया**—मरुता देवी, **सुमरुया**—सुमरुता देवी, **महमरुया**—महामरुता देवी, **य**—और, **अट्ठमा**—आठवी, **मरुद्देवी**—मरुद्देवी, **य**—और, **भद्दा**—भद्रा देवी, **य**—और, **सुभद्दा**—सुभद्रा देवी, **सुजाया**—सुजाता देवी, **सुमणातिया**—सुमनातिका देवी, **य**—और, **भूयदिन्ना**—भूतदत्ता, ये, **सेणिय-भज्जाण**—महाराजा श्रेणिक की रानियो के, **नामाइ**—नाम, **बोद्धव्वा**—जानने चाहिए, **भते !**—हे भगवन् !, **जइ ण**—यदि, **०**—यह बिन्दु श्रमण भगवान महावीर ने सप्तम वर्ग के" इस अर्थ का वोधक है।, **तेरस**—तेरह, **अज्झयणा**—अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किये हैं तो, **भते !**—हे भगवन् !, **समणेण**—श्रमण-तपस्वी, **जाव**—यावत् भगवान महावीर ने, **पढमस्स अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का, **के**—क्या, **अट्ठे**—अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय मे, **जम्बू !**—हे जम्बू !, **तेण कालेण**—उस काल तथा, **तेण समएण**—उस समय, **रायगिहे**—राजगृह नाम का, **णयरे**—नगर था, **गुणसिलए**—गुणशिलक नाम का, **चेइए**—चैत्य—बाग था, **सेणिए**—श्रेणिक राजा था, **वण्णग्रो**—राजा की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित राजगुण-सम्पदा के समान समझ लेना, **तस्स ण**—उस, **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की, **नदा नाम**—नन्दा नाम की, **देवी**—रानी, **होत्था**—थी, **वण्णग्रो**—रानी की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-गुण-सम्पदा के समान जान लेना, **सामी**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी, **समोसढे**—पधारे, **परिसा**—नगरनिवासी जनता, **णिग्गता**—भगवान के दर्शनार्थ नगर से निकली, **तए ण**—उस के अनन्तर, **सा नन्दा देवी**—वह नन्दा देवी, **इमीसे कहाए**—इस वृत्तान्त को, **लद्धट्ठा समाणी**—जान कर, **हट्ठ तुट्ठा**—हृष्ट—प्रसन्न एव तुष्ट—सन्तुष्ट हुई, **कोडुबिय पुरिसे**—कौटुम्बिक पुरुषो—सेवक पुरुषो को, **सद्दावेइ**—बुलाती है, **सद्दावित्ता**—बुला कर, **जाण**—धार्मिक यान रथ लाने की आज्ञा देती है, **जहा**—जिस प्रकार, **पउमावई**—कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि की सेवा मे गई थी उसी प्रकार, **जाव**—यावत्—भगवान महावीर के चरणो मे उपस्थित हुई, उपदेश सुना, वैराग्य हो गया, अन्त मे दीक्षित हो गई, **एक्कारस्स**—ग्यारह, **अगाइ**

अग-शास्त्रो का, **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके, **वीस**—बीस, **वासाइ**—वर्षों की, **परियाओ**—दीक्षा का पालन किया, **जाव**—यावत्—उसने, **सिद्धा**—सिद्ध गति को प्राप्त कर लिया, **एव**—इसी प्रकार, **तेरस वि**—तेरह ही, **देवीओ**—देवियो को जीवनियाँ, **नदागमेण**—नन्दा देवी के समान, **णयव्वाओ**—जाननी चाहियें, **निक्खेवओ**—निक्षेपक—उपसहार की कल्पना कर लेनी चाहिये।

मूलार्थ—छठें वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे— भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब आप यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सातवे वर्ग मे जो कुछ कहा है उसको सुनाने की कृपा करें।

आर्य जम्बू स्वामी की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे— जम्बू! मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड-सूत्र के सातवे वर्ग मे १३ अध्ययन बताए हैं, उनके नाम ये है—

१	नदा	२	नदावती	३	नदोत्तरा
४	नन्द श्रेणिका	५	मरुता	६	सुमरुता
७	महामरुता	८	मरुत्देवी	९	भद्रा
१०	सुभद्रा	११	सुजाता	१२	सुमनातिका
१३	भूतदत्ता				

आर्य सुधर्मा स्वामी फिर कहने लगे—जम्बू! नन्दा आदि १३ अध्ययनो मे नन्दा देवी आदि १३ राजरानियो के जीवन का उल्लेख किया गया है। ये १३ ही महाराजा श्रेणिक की रानिया थी।

अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे पुन निवेदन करने लगे— 'भगवन्! यदि श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के नन्दा, नन्दावती आदि तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी पुन बोले— जम्बू! उस काल तथा उस समय मे राजगृह नामक नगर था, उसके बाहिर गुण-शिलक नाम का उद्यान था। नगर-नरेश का नाम श्रेणिक था, राजा की गुण-सम्पदा

औपपातिक सूत्र मे वर्णित राज-सम्पदा के समान थी। इनके नन्दा नाम की रानी थी वह सम्पूर्ण लक्षणो से युक्त और अत्यन्त सुन्दरी थी, इसकी गुण-सम्पदा भी औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी गुण-सम्पदा के समान थी।

एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी राजगृह नगर मे पधारे। नगर निवासी लोग भगवान के दर्शनार्थ नगर से निकले और भगवान की सेवा मे उपस्थित हुए। भगवान के पधारने का समाचार पाकर नदा देवी बडी प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुई। उसने सेवक पुरुषो को बुलाकर धार्मिक रथ तैयार करने का आदेश दिया। प्रस्तुत सूत्र के पचम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित पद्मावती की भाति वह भी भगवान के पास पहुची। वन्दन नमस्कार किया, धर्म-कथा सुनी, वैराग्य हो गया और पद्मावती की तरह ही वह दीक्षित हो गई। ग्यारह अगो का अध्ययन किया, बीस वर्षों तक सयम की पालना की, अन्त मे सलेखना द्वारा सिद्ध पद उपलब्ध किया।

नदवती आदि अन्य १२ राजरानियो की जीवनी नन्दा देवी की भाति ही समझ लेनी चाहिए।

व्याख्या— इस सूत्र मे सातवें वर्ग के सभी अध्ययनो का वर्णन किया गया है। ये अध्ययन तेरह हैं। जिस अध्ययन मे जिस सन्नारी के जीवन का उल्लेख है, उसी के नाम पर उस अध्ययन का नाम रखा गया है। जैसे पहले अध्ययन मे नदा देवी की जीवनी वर्णित है तो इस प्रथम अध्ययन का 'नन्दा' यह नाम रख दिया गया है। यही पद्धति आगे के सभी अध्ययनो मे अपनाई गई है। इन अध्ययनो मे वर्णित नन्दादेवी आदि सभी देविया राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की रानिया थी। इन सभी ने श्रमण भगवान महावीर के पास दीक्षित होकर घोर तप करके, निर्वाण-पद पाया था। इनमे नन्दा देवी अपने युग के परम मेधावी श्रेणिक नरेश के प्रधान मत्री श्रीअभयकुमार की माता थी। यह एक परम धर्मात्मा तथा धनाढ्य सेठ को पुत्री थी, इन्होने बडे त्याग वैराग्य के साथ दीक्षा लेकर अपने जीवन का कल्याण किया था। इसी प्रकार नन्दावती आदि देवियो ने त्याग एव वैराग्यमय कठोर साधना द्वारा अजर-अमर सिद्ध-बुद्ध पद उपलब्ध किया।

प्रस्तुत वर्ग के परिशीलन से यह प्रमाणित हो जाता है कि पुरुषो की भाति स्त्री वर्ग मे भी पुरुषार्थ के द्वारा निर्वाण-पद को प्राप्त करने की योग्यता अवस्थित है। आत्म-कल्याण की भावना से प्रेरित हुई इन देवियो ने सयम मार्ग मे प्रवृत्ति करके निर्वाण पद को प्राप्त करते हुए नारी जाति के सन्मुख जो उज्जवल आदर्श उपस्थित किया है, इसका निकट के इतिहास मे उदाहरण मिलना बडा कठिन है।

"सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवग्रो" का ग्रर्थ है— सप्तम वर्ग का उत्क्षेपक । उत्क्षेपक प्रारभ-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा मे प्रारभ-वाक्य इस प्रकार है—

जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण ग्रन्तगडदसाण छट्ठस्स वग्गस्स ग्रयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स ण भते ! वग्गस्स समणेण जाव सपत्तेण के ग्रट्ठे पण्णत्ते ?

ग्रर्थात्— भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने ग्रन्तगड सूत्र के छठे वर्ग का यह ग्रर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें वर्ग का क्या ग्रर्थ प्रतिपादन किया है ?

"जाव तेरस ग्रज्झयणा" यहा पठित जाव पद **एव खलु जम्बू ! समणेण जाव सपत्तेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रन्तगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स"** इन पदो का बोधक है। ग्रर्थ स्पष्ट ही है।

सप्तम ग्रध्ययन के पचम ग्रध्ययन का नाम **"मरुया"** है, परन्तु ग्रागमोदय समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्तकृद्दशाग सूत्र मे "मरुया" के स्थान पर- **महया** ऐसा पाठ ग्राता है । महती देवी ।

"भते ! तेरस०" यहा दिया गया बिदु—**समणेण जाव सपत्तेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स"** इस पाठ का ससूचक है। ग्रथ स्पष्ट ही है। **"राया वण्णग्रो"**—यहा का तथा **देवी होत्था, वण्णग्रो"** यहा का **वण्णग्रो** पद ग्रौपपातिक सूत्र मे वर्णित राजा की गुण-सम्पदा का बोधक है। सूत्रकार ने इन पदो से श्रेणिक राजा तथा नन्दा देवी के शारीरिक वैभव ग्रौर राज्य-वैभव की महानता तथा इन के विशाल प्रभाव को ग्रभिव्यक्त किया है।

"जाण जहा पउमावई"— यहा प्रयुक्त यान शब्द धार्मिक रथ का बोधक है सूत्रकार कहते है कि **जहा**—जिस प्रकार द्वारिकाधीश कृष्णवासुदेव की पट्टरानी पद्मावती धार्मिक रथ पर बैठ कर भगवान ग्ररिष्टनेमि के चरणो में पहुची, उसने भगवान का धर्मोपदेश सुना, उसे धर्म पर श्रद्धान ग्राया, उसने कृष्णवासुदेव से दीक्षित होने की ग्राज्ञा प्राप्त की। कृष्ण वासुदेव ने बडे समारोह के साथ दीक्षा-कार्य सम्पन्न किया, भगवान ग्ररिष्टनेमि ने दीक्षित करके यक्षिणी ग्रार्या को उसे सभाल दिया । ग्रपनी गुरुणी की देख-रेख मे पद्मावती जैसे सयम का पालन करने लगी, पाँच समितियो, तीन गुप्तियो की ग्राराधना करने लगी, वैसे ही महारानी नन्दा एक धार्मिक रथ पर बैठकर भगवान महावीर की सेवा मे पहुची, भगवान का धर्मोपदेश सुना धर्म पर श्रद्धान हुग्रा, महाराजा श्रेणिक ने दीक्षा-कार्य समारोह के साथ सम्पन्न किया । भगवान महावीर ने उसे स्वय दीक्षित करके एक सुयोग्य साध्वी को सौप दिया। ग्रपनी गुरुणी की देख-रेख मे महासती नन्दा सयम का पालन, पाच समितियों तथा तीन गुप्तियो की ग्राराधना करती है, गुप्त, जितेन्द्रिय बन कर ब्रह्मचय महाव्रत की उपासना करती है । पद्मावती ग्रौर नन्दा इन महासतियो की इसी जीवनगत समानतो को ग्रभिव्यक्त करने के लिये सूत्रकार ने **"जहा पउमावती जाव** ये पद दिए हैं ।

पर एक स्थान पर लिखा है कि महाराजा श्रेणिक की मृत्यु के अनन्तर नदा आदि १३ राजरानियो ने दीक्षा अगीकार की थी, परन्तु प्रस्तुत सूत्र-पाठ के आधार पर यह कथन सत्य प्रतीत नही होता, प्रस्तुत सूत्र मे— "सेणिए राया" ऐसा स्पष्ट लिखा है ऐसी दशा मे श्रेणिक राजा की मृत्यु के अनन्तर ये कथन कैसे सत्य हो सकता है ? "**परियाओ जाव सिद्धा**" यहा का जाव पद गुरुजनो से आज्ञा लेकर किसी पर्वत पर जाना, वहा सलेखना द्वारा आत्मशुद्धि करना, आमरण अनशन करके पार्थिव शरीर को छोडना आदि निर्वाणपद प्राप्त करने से पूर्व की सभी क्रियाओ का ससूचक है । ये क्रियाए अन्य स्थानो पर वर्णित हैं, अत सूत्रकार ने उन का जाव पद से सकेत कर दिया है ।

"**निक्खेवओ**"— निक्षेपक का अर्थ है—उपसहार-वाक्य—समाप्ति-वाक्य । शास्त्रीय भाषा मे उपसहार इस प्रकार है—

'**एवं खलु जबू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते**,' इस का अर्थ है— हे जबू! इस प्रकार यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के सातवें वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ।

।। सप्तम वर्ग समाप्त ।।
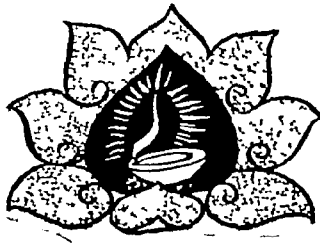
आठवां वर्ग

सप्तम वर्ग के अनन्तर अष्टम वर्ग का स्थान है, अत अब सूत्रकार अष्टम वर्ग का आरभ करते हुए कहते हैं —

मूल— जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अन्तगड-दसाण सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, भते ! अतगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स समणेण जाव सम्पत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते। एव खलु जम्बू समणेण जाव सम्पत्तेण अन्तगड दसाण अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

कालो, सुकाली, महाकाली कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा।
वीरकण्हा, य बोद्धव्वा रामकण्हा तहेव च।
पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी, महासेणकण्हा च।

जइ ण भते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएणं चपा णाम णयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ ण चपाए णयरीए कोणिए राया। वण्णओ। तत्थ णं चपाए णयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया कालो नाम देवी होत्था, वण्णओ। जहा नंदा जाव सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ० जाव अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तए ण सा कालो अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी—इच्छामि ण अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलि तव उवसपज्जित्ताण विहरित्तए ? अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह। तए ण सा काली अज्जा अज्ज-चदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं उवसपज्जित्ताण विहरइ, तजहा।

छाया— यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां सप्तमस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्त, अष्टमस्य भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशाना श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थ प्रज्ञप्त ?

एव खलु जबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यागस्य अन्तकृद्दशानामष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—

काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा ।

वीरकृष्णा च बोधव्या, रामकृष्णा तथैव च ।

पितृसेनकृष्णा, नवमी, दशमी महासेनकृष्णा च ।

यदि भदन्त ! अष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेण यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थ प्रज्ञप्त ?

एव खलु जबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत् पूर्णभद्र चैत्यम् । तत्र चम्पाया नगर्या कोणिको राजा, वर्णक । तत्र चम्पाया नगर्या श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कोणिकस्य राज्ञ क्षुल्ल-माता काली नाम देव्यासीत् । वर्णक । यथा नन्दा यावत् सामायिकादीनि एकादशागान्यधीते । बहुभिश्चतुर्थ० यावदात्मान भावयन्ती विहरति ।

तत सा काली आर्या, अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्य चन्दना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य एवमवदत्-इच्छामि हे आर्या ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलि तप उपसपद्य विहर्तुम् ? यथा-सुख देवानुप्रिये ! मा प्रतिबध कुरुष्व। तत. सा काल्यार्या आर्यचन्दनयाऽभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलितप कर्म उपसपद्य विहरति । तद्यथा—

पदार्थ—**भते !**—हे भगवन् !, **जइ ण**—यदि, **जाव सपत्तेण**—मोक्ष सम्पदा सम्प्राप्त, **समणेण**—श्रमण भगवान महावीर ने, **अट्ठमस्स-अगस्स**—अष्टम अग, **अतगडदसाण**—अन्तकृद् दशाग सूत्र के, **सत्तमस्स वग्गस्स**—सातवें वर्ग का, **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **भते !**—हे भगवन् !, **अतगडदसाण**—अन्तकृद्दशांग सूत्र के, **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवे वर्ग का, **समणेण जाव सपत्तेण**—यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने, **के अट्ठे पण्णत्ते**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

जबू !—हे जम्बू ! **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **समणेण जाव सपत्तेणं**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने, **अट्ठमस्स अगस्स**—आठवें अग के, **अतगडदसाण**—अन्त-कृद्दशांग सूत्र के, **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवे वर्ग के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन प्रति-पादन किये है, **तजहा**—जैसे कि—

काली—काली देवी, **सुकाली**—सुकाली देवी, **महाकाली**—महाकाली देवी, **कण्हा**—कृष्णा देवी, **सुकण्हा**—सुकृष्णादेवी, **महाकण्हा**—महाकृष्णा देवी, **य**—और, **वीरकण्हा**—वीरकृष्णा देवी, **बोद्धव्वा**—जाननी चाहिए, **य**—पुन, **तहेव**—उसी प्रकार, **रामकण्हा**—रामकृष्णा देवी, **नवमी**—नौवी, **पिउसेणकण्हा**—पितृसेनकृष्णा देवी, **य**—और, **दसमी**—दसवी, **महासेणकण्हा**—महासेन कृष्णा देवी है ।

भते !—हे भगवन् ! **जइ ण**—यदि, **अट्ठमस्य वग्गस्स**—आठवे वर्ग के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन प्रतिपादन किये है, **भते** ! **पढमस्स अज्झयणस्स**—हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का, **समणेण जाव सपत्तेण**—मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है।

जबू !—हे जम्बू !, **एव**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही, **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल तथा उस समय, **चपा णाम णयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, नगरी के बाहिर, **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्णभद्र नामक, चैत्य—उद्यान था, **तत्थ ण**—वहा, **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी मे, **कोणिए राया**—कूणिक राजा, **वण्णओ**—राजा के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित राजवैभव के समान जानना चाहिए, **तत्थ ण**—वहा, **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी मे, **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की, **भज्जा**—भार्या (धमपत्नी), **कोणियस्स रण्णो**—कोणिक राजा की, **चुल्लमाउया**—क्षुल्लमाता—छोटी माता, **काली नाम देवी होत्था**—काली नामक रानी थी, **वण्णओ**—रानी के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-गुण-वैभव के समान जानना चाहिये, **जहा**—जिस प्रकार, नदा—नदा देवी का वर्णन किया है, उसी प्रकार, **जाव**—यावत् भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षित होकर, **सामाइयमाइयाइ**—सामायिकादि है जिन मे ऐसे, **एक्कारस अगाइ**—ग्यारह अगो का, **अहिज्जइ**—अध्ययन करती है, **बहूहिं-चउत्थ**—अनेक (चतुर्थ) उपवास, **जाव**-यावत्—बेले, तेले आदि से, **अप्पाण भावेमाणी विहरइ**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

तए ण सा काली अज्जा—उसके बाद वह काली आर्या—साध्वी, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य समय, **जेणेव अज्जचदणा**—जहा पर चन्दनबाला नामक आर्या थी, **तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी**—वहाँ आ गई और आकर इस प्रकार कहने लगी—

अज्जाओ !—हे आर्या जी !, **तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणा**—आप श्री द्वारा आज्ञा देने पर, **इच्छामि ण**—मैं चाहती हू कि, **रयणावलि तव**—रत्नावली नामक तप को, **उवसपज्जित्ताण विहरित्तए**—धारण करके विहरण करू, **देवाणुप्पिया ! अहासुह**—हे भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो, **मा पडिबध करेह**—प्रतिबन्ध (प्रमाद) मत करो।

तए ण—उस के अनन्तर, **सा काली अज्जचदणाए**—वह काली आर्या आर्य-चन्दनबाला द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त कर लेने पर, **रयणावलि तवोकम्म**—रत्नावली नामक तप को, **उवसपज्जित्ताण**—धारण करके, **विहरइ**—विचरने लगी, **तजहा**—जैसे कि।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्र के सप्तम वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य-जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि हे भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अतगडसूत्र के सातवे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया,

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—

काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा ।

वीरकृष्णा च बोधव्या, रामकृष्णा तथैव च ।

पितृसेनकृष्णा, नवमी, दशमी महासेनकृष्णा च ।

यदि भदन्त ! अष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेण यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थं प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत् पूर्णभद्र चैत्यम् । तत्र चम्पाया नगर्या कोणिको राजा, वर्णकः । तत्र चम्पाया नगर्या श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कोणिकस्य राज्ञः क्षुल्ल-माता काली नाम देव्यासीत् । वर्णकः । यथा नन्दा यावत् सामायिकादीनि एकादशागान्यधीते । बहुभिश्चतुर्थ० यावदात्मानं भावयन्ती विहरति ।

ततः सा काली आर्या, अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्य चन्दना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य एवमवदत्–इच्छामि हे आर्या ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलिं तपः उपसपद्य विहर्तुम् ? यथा-सुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबंधं कुरुष्व । ततः सा काल्यार्या आर्यचन्दनयाऽभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलितपःकर्म उपसपद्य विहरति । तद्यथा—

पदार्थ—भंते !—हे भगवन् !, जइ णं—यदि, जाव संपत्तेण—मोक्ष सम्पदा सम्प्राप्त, समणेण—श्रमण भगवान महावीर ने, अट्ठमस्स-अंगस्स—अष्टम अंग, अंतगडदसाणं—अन्तकृद् दशांग सूत्र के, सत्तमस्स वग्गस्स—सातवें वर्ग का, अयमट्ठे पण्णत्ते—यह अर्थ प्रतिपादन किया है, भंते !—हे भगवन् !, अंतगडदसाणं—अन्तकृद्दशांग सूत्र के, अट्ठमस्स वग्गस्स—आठवें वर्ग का, समणेणं जाव संपत्तेण—यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने, के अट्ठे पण्णत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

जंबू ! —हे जम्बू ! एवं—इस प्रकार, खलु—निश्चयार्थक है, समणेणं जाव संपत्तेणं—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने, अट्ठमस्स अंगस्स—आठवें अंग के, अंतगडदसाणं—अन्त-कृद्दशांग सूत्र के, अट्ठमस्स वग्गस्स—आठवें वर्ग के, दस अज्झयणा पण्णत्ता—दस अध्ययन प्रति-पादन किये हैं, तंजहा—जैसे कि—

काली—काली देवी, सुकाली—सुकाली देवी, महाकाली—महाकाली देवी, कण्हा—कृष्णा देवी, सुकण्हा—सुकृष्णादेवी, महाकण्हा—महाकृष्णा देवी, य—और, वीरकण्हा—वीरकृष्णा देवी, बोद्धव्वा—जाननी चाहिए, य—पुनः, तहेव—उसी प्रकार, रामकण्हा—राम-कृष्णा देवी, नवमी—नौवी, पिउसेणकण्हा—पितृसेनकृष्णा देवी, य—और, दसमी—दसवीं, महासेणकण्हा—महासेन कृष्णा देवी है ।

भते !—हे भगवन् ! **जइ ण**—यदि, **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवे वर्ग के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, **भते ! पढमस्स अज्झयणस्स**—हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का, **समणेण जाव सपत्तेण**—मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है।

जबू !—हे जम्बू !, **एव**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही, **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल तथा उस समय, **चपा णाम णयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, नगरी के बाहिर, **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्णभद्र नामक, चैत्य—उद्यान था, **तत्थ ण**—वहा, **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी मे, **कोणिए राया**—कूणिक राजा, **वण्णओ**—राजा के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित राजवैभव के समान जानना चाहिए, **तत्थ ण**—वहा, **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी मे, **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की, **भज्जा**—भार्या (धर्मपत्नी), **कोणियस्स रण्णो**—कोणिक राजा की, **चुल्लमाउया**—क्षुल्लमाता—छोटी माता, **काली नाम देवी होत्था**—काली नामक रानी थी, **वण्णओ**—रानी के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित नारी-गुण-वैभव के समान जानना चाहिये, **जहा**—जिस प्रकार, **नदा**—नदा देवी का वर्णन किया है, उसी प्रकार, **जाव**—यावत् भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षित होकर, **सामाइयमाइयाइ**—सामायिकादि है जिन मे ऐसे, **एक्कारस अगाइ**—ग्यारह अगो का, **अहिज्जइ**—अध्ययन करती है, **बहूहिं-चउत्थ**—अनेक (चतुर्थ) उपवास, **जाव**-यावत्—बेले, तेले आदि से, **अप्पाण भावेमाणी विहरइ**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

तए ण सा काली अज्जा—उसके बाद वह काली आर्या—साध्वी, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य समय, **जेणेव अज्जचदणा**—जहा पर चन्दनबाला नामक आर्या थी, **तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी**—वहाँ आ गई और आकर इस प्रकार कहने लगी—

अज्जाओ !—हे आर्या जी !, **तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणा**—आप श्री द्वारा आज्ञा देने पर, **इच्छामि ण**—मैं चाहती हू कि, **रयणावलिं तव**—रत्नावली नामक तप को, **उवसपज्जित्ताण विहरित्तए**—धारण करके विहरण करू, **देवाणुप्पिया ! अहासुह**—हे भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो, **मा पडिबध करेह**—प्रतिवन्ध (प्रमाद) मत करो।

तए ण—उस के अनन्तर, **सा काली अज्जचदणाए**—वह काली आर्या आर्य-चन्दनबाला द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त कर लेने पर, **रयणावलि तवोकम्म**—रत्नावली नामक तप को, **उवसपज्जित्ताण**—धारण करके, **विहरइ**—विचरने लगी, **तजहा**—जैसे कि।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्र के सप्तम वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य-जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि हे भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अतगडसूत्र के सातवें वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया।

है तो भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के आठवे वर्ग का क्या अर्थ बताया है ?

हे जबू ! इस प्रकार यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं। उनके नाम इस प्रकार है—

१ काली २. सुकाली ३ महाकाली ४ कृष्णा ५ सुकृष्णा ६ महाकृष्णा ७ वीरकृष्णा ८ रामकृष्णा ९ पितृसेनकृष्णा १० महासेनकृष्णा।

अपने प्रश्न का उत्तर पाकर आर्य जबू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पुन निवेदन करने लगे कि हे भगवन्! यदि आठवे वर्ग के दस अध्ययन कहे गए है तो भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जबू अनगार का यह प्रश्न सुनकर आर्य सुधर्मास्वामी कहने लगे—कि हे जबू! उस काल तथा उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। नगरी के बाहिर पूर्णभद्र नामक उद्यान था, वहा चम्पा नगरी मे कोणिक राजा राज्य किया करता था। राजा के राज्य-वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र मे वर्णित राज्य-वैभव के समान समझना चाहिए।

चम्पा नगरी के श्रेणिक राजा की रानी महाराजा श्रेणिक की लघुमाता काली देवी थी। रानी की गुण-सम्पदा औपपातिकसूत्र मे वर्णित नारी-गुण-सम्पदा के समान जाननी चाहिये। काली देवी नदा देवी की तरह भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हुई। सामायिक (आचाराग) आदि ग्यारह अगो का इस ने अध्ययन किया, अनेको व्रत बेले तेले यावत् तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विहरण करने लगी।

एक दिन काली आर्या महासती आर्या चंदना के पास आई और उनसे निवेदन करने लगी कि आर्या जी! यदि आप आज्ञा दे तो मैं रत्नावली तप करना चाहती हू? आर्या काली की यह बात सुन कर महासती चदना कहने लगी—भद्रे! जैसे तुम्हारी आत्मा को शाति हो, परन्तु ऐसे शुभ कार्य मे प्रमाद नही करना चाहिये। इस प्रकार की महा-

सती आर्यचन्दना से आज्ञा प्राप्त हो जाने पर आर्या काली ने रत्नावली तप की आराधना आरम्भ कर दी । रत्नावली तप का स्वरूप इस प्रकार है।

व्याख्या— इस सूत्र में आठवें वर्ग के दश अध्ययनो का नाम निर्देश किया गया है। जिस अध्ययन मे जिस महासती के जीवन का उल्लेख है, उसी के नाम पर अध्ययन का नाम रखा गया है । दसो अध्ययनो मे जिन रानियो का वर्णन किया गया है वे सब महाराजा श्रेणिक की रानिया थी, इन दसो को कैसे वैराग्य हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर श्री निरयावलिका सूत्र मे उपलब्ध होता है। वहा लिखा है—

एक बार मगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी चम्पा नगरी के बाहिर पूर्णभद्र नामक उद्यान में विराजमान थे। भगवान महावीर के चरणो में काली आदि दसो देवियां उपस्थित हुईं। विधिपूर्वक वन्दन करने के अनन्तर समय देखकर उन्होने भगवान से निवेदन किया—

भगवन् ! हमारे पुत्र युद्ध मे गए हुए हैं, क्या हम उन को सकुशल लौटते हुए देख सकेंगी ?

काली आदि देवियो के प्रश्न सुनकर इसका समाधान करते हुए भगवान बोले 'देवियो ! तुम्हारी यह कामना पूर्ण नही हो सकेगी। तुम्हारे दसो पुत्र युद्ध मे काम आ चुके हैं। महाराजा चेटक के द्वारा उनका प्राणान्त कर दिया गया है । इस लिये तुम उन को नही देख सकोगी।'

अपने पुत्रो के प्राणान्त की दु खद घटना सुनकर दसो देवियो को मारणान्तिक वेदना हुई। वे पुत्र वियोग-जन्य दु ख से विलाप एव रुदन करने लगी, परन्तु भगवान महावीर के ज्ञानोपदेश के प्रकाश ने उनके मोहान्धकार को समाप्त कर दिया। परिणाम स्वरूप वे सब की सब ससार से विरक्त होकर भगवान महावीर के पास दीक्षित हो गईं। अहिंसा सयम और तप के द्वारा कर्म मल दूर करके अपनी आत्मा को शुद्ध करती हुईं वे अन्त मे निर्वाण-पद प्राप्त कर गईं। इन दसो के पवित्र नामो की तालिका मूलार्थ मे लिखी जा चुकी है। इन मे पहली देवी का नाम काली है। प्रस्तुत सूत्र में काली देवी के जीवन का ही परिचय कराया गया है।

कालीदेवी राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्नी थी और चम्पानरेश महाराजा कोणिक की लघुमाता थी। इन्होने एक बार मगलमय विश्ववन्द्य श्रमण भगवान महावीर के मगल उपदेश को सुना। उपदेश क्या था— मानो इन के मोहान्धकार को दूर करने के लिये एक प्रकाश-स्तभ था। मोह के बन्धन तोडकर वह भगवान के चरणों मे साध्वी बन गई। साध्वी बन कर इसने शास्त्रो के गभीर अध्ययन के साथ-साथ तप की भी आराधना की, बेले तेले आदि करके तपस्या भगवती से अपनी आत्मा को भावित किया। एक दिन यह महासती आर्या चदना के पास जा कर निवेदन करने लगी—मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा दे तो मैं रत्नावली तप का आराधन करू ? गुरुणी श्री ने अपनी विनीत शिष्या के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। गुरुणी श्री की ओर से स्वीकृति मिलते ही आर्या काली ने रत्नावली तप आरभ कर दिया।

समणेण जाव सपत्तेणं— यहा पठित **जाव** पद **'भगवया महावीरेण आइगरेण'**— आदि पदो का ससूचक है। जिनका अर्थ अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है।

"चपाए णयरीए कोणिए राया"— का अर्थ है— चम्पा नगरी मे कोणिक राजा राज्य करता था। शास्त्रो का परिशीलन करने से पता चलता है कि महाराजा श्रेणिक की राजधानी राजगृह थी, परन्तु इनका प्राणान्त हो जाने पर इन के पुत्र महाराजा कोणिक ने अपनी मुख्य राजधानी चम्पानगरी बनाई थी। चपा नगरी की समृद्धि एव सौन्दर्य का वर्णन औपपातिक सूत्र मे विस्तार पूर्वक किया गया है। काली महाकाली आदि दसो रानियो की दीक्षा इसी नगर के समीपवर्ती पूर्णभद्र नामक चैत्य मे सम्पन्न हुई थी।

"राया वण्णओ"—यहा पठित **"वण्णओ"** यह पद औपपातिक सूत्र मे वर्णित राज्य-सबन्धी वैभव का तथा "नारी सम्बन्धी वैभव" का सूचक है। जिस प्रकार औपपातिक सूत्र मे राजा तथा रानी के शारीरिक गुणो एव अन्य पुण्य प्रकृति आदि का वर्णन किया गया है उसी प्रकार का वर्णन यहा भी समझ लेना चाहिए। इसी बात की सूचना के लिये सूत्रकार ने **"वण्णओ"** इस पद का प्रयोग किया है। प्रस्तुत सूत्र की तथा औपपातिक सूत्र की चम्पा नगरी एक ही है। अत दोनो पाठो मे समानता का होना स्वाभाविक है।

"कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया"—**कोणिकस्य राज्ञ क्षुल्लमाता, लघुमाता**—का अर्थ है—नरेश की लघुमाता। चुल्ल देशीय भाषा का शब्द है। प्रस्तुत मे इसका अर्थ छोटी है। चुल्लमाता का अर्थ है छोटी माता अर्थात् सौतेली मा। चम्पा नरेश कोणिक की माता का नाम चेलना था। चेलना महाराजा श्रेणिक की सब से बडी रानी थी। अत काली महाकाली आदि सब
छोटी सपत्निया होने से कोणिक नरेश की छोटी माताए थी। **के समान**

"जहा नदा जाव सामाइयमाइयाइ"—का अर्थ है जिस प्रकार राजगृह न॰
नन्दा भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हुई थी उसी प्रकार काली **लघुमाता**
हुई थी, उसने सामायिकादि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। सामायिकादि के
सूत्र का बोधक है। काली देवी की दीक्षा आदि का वर्णन नदा देवी के समान जा
का सकेत करके सूत्रकार ने इस विषय को सक्षिप्त कर दिया है। नदा आदि देवियो का वर्णन पीछे किया जा चुका है। इन्ही के समान काली देवी आदि का वर्णन होने से सूत्रकार ने **"जहा नदा"** मात्र कह दिया है तथा **"जाव"** पद नदा देवी की तरह काली देवी का भगवान महावीर के चरणो मे वन्दनार्थ जाना, उपदेश सुनना, वैराग्यधारण कर के उनके पास दीक्षित होना आदि बातो का ससूचक है।

"चउत्थ जाव अप्पाण" यहा पठित "जाव" पद **छट्ठ-अट्ठम-दसमदुवालसेहिं-मासद्ध-मास-खमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं"** इन पदो का ससूचक है। इन का अर्थ है—बेले-तेले-चोले-पचौले, पन्द्रह-पन्द्रह, महीने-महीने तक की विविध तपस्या के द्वारा।

"**अज्जचदणा अज्जा**"— यहा पर अज्ज शब्द का दो वार प्रयोग किया गया है प्रथम "**आर्या**" शब्द साध्वी का ससूचक है और दूसरा "**अज्ज**" शब्द चन्दना के साथ जुडा हुआ है उसी के साथ मिल कर **आर्यचन्दना** शब्द निष्पन्न होता है। यहा का आर्या शब्द महामती चन्दनबाला के विशिष्ट आर्यत्व का ससूचक है।

"**रयणावलि**"—का अर्थ वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—**रयणावलि त्ति, रत्नावली आभरणविशेष, रत्नावलीतप रत्नावली। यथाहि रत्नावली उभयत आदी सूक्ष्म-स्थूल-स्थूलतर-विभाग-काहलिकाख्य-सौवर्णावयवद्वययुक्ता भवति, पुनर्मध्यदेशे स्थूलविशिष्टमण्यलकृता च भवति, एव यत्तप पट्टादावुपदर्श्यमानमिममाकार धारयति तद्ररत्नावलीत्युच्यते**—अर्थात् रत्नावली एक आभूषण विशेष होता है। उसकी रचना के समान जिस तप का आराधन किया जाये उसको रत्नावली तप कहते हैं, जैसे रत्नावली भूषण दोनो ओर से आरम्भ मे सूक्ष्म फिर स्थूल, फिर उस से अधिक स्थूल मध्य में विशेष स्थूल मणियो से युक्त होता है, वैसे ही जो तप रत्नावली की तरह आरभ मे स्वल्प फिर अधिक, फिर विशेष अधिक होता चला जाता है उसी तप को रत्नावली तप कहते हैं। जिस प्रकार रत्नावली भूषण से शरीर की शोभा बढती है उसी प्रकार यह रत्नावली तप आत्मा को विभूषित करता है। रत्नावली तप मे पाच वर्ष दो महीने अट्ठाईस दिन लगते हैं। ये चार वार मे समाप्त होता है। एक परिपाटी मे एक वर्ष तीन मास बाईस दिन लगते हैं। इसी रत्नावली तप की आराधना काली देवी ने की थी।

शास्त्रीय भाषा मे इस तप का जो स्वरूप है अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठ छट्ठाइ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चोद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्तो बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउ-वीसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छब्बीसइम करेइ, करित्ता**

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्ती-सइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वका-मगुणिय पारेइ, पारित्ता चोत्तीस छट्ठाइ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, चोत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउवीसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बावीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठछट्ठाइ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एव खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेण सवच्छरेण तिहिं मासेहिं वावीसाए अ अहोरत्तेहिं अहासुत्त जाव आराहिया भवइ।

छाया—चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुण पारयति, पारयित्वा अष्टषष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयत्वा चतुर्दश करोति,

कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्षष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितम करोति, कृत्वा सर्वमकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टषष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वणकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति एव खलु एषा रत्नावल्यास्तप कर्मण प्रथमा परिपाटी एकेन सवत्सरेण त्रिभिर्मासै द्वाविंशत्यहोरात्रैयथासूत्र यावद् सिद्धा भवति ।

पदार्थ— **चउत्थ**—चतुर्थ—एक उपवास, **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकाम-गुणिय**—सर्व प्रकार के दूध आदि रस पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छट्ठ**—दो उपवास (बेला), **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकाम-गुणिय**—सर्व प्रकार के दूध आदि रस पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तेला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**--सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठ छट्ठाइ**—आठ बेले लगातार (दो-दो व्रत), **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउत्थ**—एक उपवास (चतुर्थ), **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सव प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छट्ठ करेइ**—बेला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्व-**

कामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तेला करती है, (तीन उपवास), **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **दसम करेइ**—चौला—चार उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **दुवालसम करेइ**—पचौला (पाच व्रत) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चौद्दसम करेइ**—छौला उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **सोलसम करेइ**—सात उसवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठाइसम करेइ**—आठ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **वीसइम करेइ**—नौ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **बावीसइम-करेइ**—दस उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउवीसइम करेइ**—११ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगिुणय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—करके, **छव्वीसइम** करेइ—१२ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—करके, **अट्ठावीसइम करेइ**—१३ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **तीसइम करेइ**—१४ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **बत्तीसइम करेइ**—१५ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चोत्तीसइम करेइ**—१६ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—करके, **चोत्तीस-छट्ठाइ-करेइ**—३४ वेले करती है, **करित्ता** करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चोत्तीसइम करेइ**—१६ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **बत्तीसइम करेइ**—१५ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **तीस करेइ**—१४ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठावीसइम करेइ**—१३ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छव्वीसइम करेइ**—१२ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है,

पारित्ता—पारणा करके, **चउवीसइम करेइ**—११ उपवास करती है, **करित्ता** करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **बावीसइम करेइ**—१० उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **वीसइम करेइ**—नौ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठारसम करेइ**—आठ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **सोलसम करेइ**—सात उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चोद्दसम करेइ**—छे उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करतो है, **पारित्ता**—पारणा करके, **बारसम करेइ**—५ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्कामवगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **करित्ता**—करके, **दसम करेइ**—चार उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तीन उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छट्ठ करेइ**—दो उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउत्थ करेइ**— १ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करतो है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठ-छट्ठाइ करेइ**—आठ वेले करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तीन उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छट्ठ करेइ**—दो उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउत्थ करेइ**—१ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चयार्थक है, **एसा**—यह (जिस का वर्णन ऊपर किया गया है), **रयणावलीए** — रत्नावली **तवो कम्मस्स**—तप की, **पढमा परिवाडी**—पहली परिपाटी है जो, **एगेण सवच्छरेण**—एक वर्ष, **तिहिं, मासेहिं, य,**—३ मास और, **बावीसाए, अहोरत्तेहिं,**—२२ दिनो मे, **अहासुत्त**—यथासूत्र—सूत्र के अनुसार, **जाव**—यावत्, **आराहिया**—आराधित,- सम्पन्न, **भवइ**—होती है।

मूलार्थ— आर्या काली देवी ने जिस ढग से तप का आराधन किया है उसकी रूपरेखा इस प्रकार है—

एक उपवास किया, इसके पारणे मे मनोवाछित दूध, घृत आदि सब रसो

का सेवन किया, इसी प्रकार एक बेला, एक तेला, आठ बेले, एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार उपवास, पाच, छ, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह उपवास किये। इन सब के पारणे मे यथेच्छ सब रसो का सेवन किया। ३४ बेले किये फिर १६ उपवास किये, इसी प्रकार १५, १४, १३, १२, ११ १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ उपवास किया। तदनन्तर आठ बेले किये फिर एक तेला किया, एक बेला किया अन्त मे एक उपवास किया इसके पारणे मे पहले की भाति यथेष्ट दूध, तैलादि रसो का सेवन किया।

ऊपर की पक्तियो मे जिस प्रकार तपस्या की रूपरेखा का परिचय कराया गया है। यह रत्नावली तप की पहली लडी है। सूत्र के अनुसार इसकी आराधना एक वर्ष तीन मास २२ दिनो मे सम्पन्न होती है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी की विधि का वर्णन किया गया है। इसमे एक उपवास से लेकर क्रमश सोलह उपवास करने पडते है और पारणे के दिन अपनी इच्छा के अनुसार साधुवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए दूध-घृत-तेलादि सब पदार्थो का ग्रहण किया जा सकता है। सोलह उपवासो के अनन्तर चौतीस बेले किए जाते है, तदनन्तर क्रम से एक उपवास से से लेकर सोलह तक बढाए जाते हैं, ठोक इसी प्रकार सोलह से पन्द्रह फिर इस के व्युत्क्रम से एक उपवास तक जाना पडता है। इस के पश्चात् आठ बेले, उसके बाद एक तेला, एक बेला और उसके बाद एक उपवास करना पडता है। इस प्रकार यह रत्नावली तप एक वर्ष तीन मास और बाईस दिनो मे पूर्ण होता है।

"चउत्थ"—चतुर्थम्—यह चतुर्थ शब्द उपवास का बोधक है। षष्ठ दो उपवासो को कहते है। इस प्रकार एक मास के यदि तीस दिन हो तो एक मास के तप मे बासठ भोजनो का परित्याग करना पडता है। एक मास के तप को **बे-सट्ठि** कह सकते हैं।

"सव्वकामगुणिय"—सर्वे ते काम गुणा—अभिलाष-विषयीभूता दधिदुग्धघृततैलमधुरस-लक्षणा रसास्ते सजाता यत्र तत् सर्वकामगुणितम्—सर्वरसोपेतमित्यर्थ भोजनमिति गम्यते—अर्थात् सर्वकामगुणित यह विशेषण है और भोजन शब्द का अध्याहार करके उसे विशेष्य बनाया जाता है। जिस भोजन मे अपनी अभिलाषा के अनुसार दधि, दूध-घृत-तैलादि का सेवन किया जाये उस भोजन को सर्वकामगुणित भोजन कहते हैं और ऐसे भोजन से महासती काली देवी अपने उपवासो का पारणा किया करती थी।

"पढमा परिवाडी"—का अर्थ है पहली लडी। रत्नावली तप के चार भाग है। एक भाग को परिपाटी कहते हैं। प्रस्तुत मे रत्नावली तप की जो रूपरेखा वर्णित की है वह रत्नावली [illegible]

पहली परिपाटी है। इस परिपाटी को पूर्ण करने मे जो समय लगता है सूत्रकार ने उसका —"**एगेण सवच्छरेण तिहि मासेहि बावीसाए य अहोरत्तेहि**"—इन शब्दो से निर्देश कर दिया है। रत्नावली तप की शेष परिपाटियो का वर्णन अगले सूत्रो मे किया जानेवाला है।

रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी को वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने एक यत्र के रूप मे उपस्थित करने का बुद्धि-शुद्ध प्रयत्न किया है। वह यत्र वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—

तत्र चतुर्थमेकेनोपवासेन, षष्ठ द्वाभ्याम, अष्टम त्रिभि ततोऽष्टौ षष्ठानि, तानि च स्थापनाया चत्वारि-चत्वारि कृत्वा पक्तिद्वयेन स्थाप्यन्ते, अथवा पक्तिमात्रेण नवकोष्ठकान् कृत्वा मध्यकोष्ठे शून्य विधाय शेषेस्वष्टषष्ठानि कोष्ठानि रचनीयानि, ततश्चतुस्त्रिशत्तमपर्यन्त, चतुस्त्रिशत्तम च षोडशभिरुपवासै ततो रत्नावलीमध्यभागकल्पनाय चतुस्त्रिशत् षष्ठानि, एतेषा स्थूलमणितया कल्पितत्वात्, एतानि चोत्तरधर्मेण द्वे च त्रीणि चत्वारि पञ्च षट्, पञ्चचत्वारिंशत् द्वे च स्थापनीयानि। अथवा अष्टाभि षड्भिश्च रेखाभि पञ्चत्रिंशत् कोष्ठका विधाय मध्ये शून्य कृत्वा शेषेषु चतुस्त्रिशत् षष्ठानि स्थापनीयानीति। एव चतुस्त्रिशत्तमादीनि चतुर्थान्तानि, पुनोऽप्यष्ट च षष्ठानि, स्थापना त्वेषा पूर्ववत्। पुनरप्यष्टम-षष्ठ-चतुर्थानीति, प्रथमाया परिपाट्या सर्वकामगुणित पारयति।

इस का अर्थ इस प्रकार है—

वृत्तिकार कहते हैं कि रत्नावली तप की स्थापना करते समय सर्व प्रथम एक उपवास फिर दो, फिर तीन, फिर आठ बेले रखो, आठ बेलो को चार चार बनाकर दो पक्तियो में रख लो या तीन पक्तियाँ बनाकर नौ कोठे बनाओ, मध्य के एक कोष्ठक मे शून्य रहने दो शेष आठ कोष्ठको मे आठ बेले भर दो। फिर एक व्रत से लेकर सोलह उपवासो को क्रमश रखते चले जाओ। यह सब कुछ करने के अनन्तर रत्नावली तप का मध्य भाग बनाओ उसमे चौंतीस बेले रखो इसे रत्नावली भूषण को स्थूल मणि समझो पैंतीस कोठे बनाकर मध्यका कोठा खाली छोडकर शेष चौंतीस कोठो मे चौंतीस बेले भर दो, फिर सोलह मे लेकर एक उपवास को क्रमश रखते चले जाओ फिर पहले की तरह आठ बेले रखो फिर तेला बेला और एक उपवास रखो। इस प्रकार रत्नावली तप की पहली परिपाटी का यन्त्र बन जाता है। वास्तविक स्वरूप आगे पृष्ठ पर देखिए।

उक्त स्थापना-यन्त्र मे रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी का सम्यक्तया परिचय प्राप्त हो जाता है। इस प्रथम परिपाटी में तपस्या के दिन ३८४, पारणे के दिन ८८, सब मिलाकर १५ मास २२ दिन होते हैं। आगे की तीन परिपाटियो के भी एकत्रित कर लिये जायें तो चारो परिपाटियो के अनुष्ठान मे पाच वर्ष दो मास अठाईस दिन लगते हैं। ध्यान रहे कि यह सख्या वर्ष ३६० दिन का और मास ३० दिन का मानकर ठीक बैठती है। महामती श्री काली देवी ने इन्ही चारो परिपाटियो की आराधना करके रत्नावली तप का परिपालन किया था।

"**अहासुत्त जाव आराहिया**"—यहा पठित **जाव** पद अन्य स्थान पर पढे गए अवशिष्ट पाठ का ससूचक है—
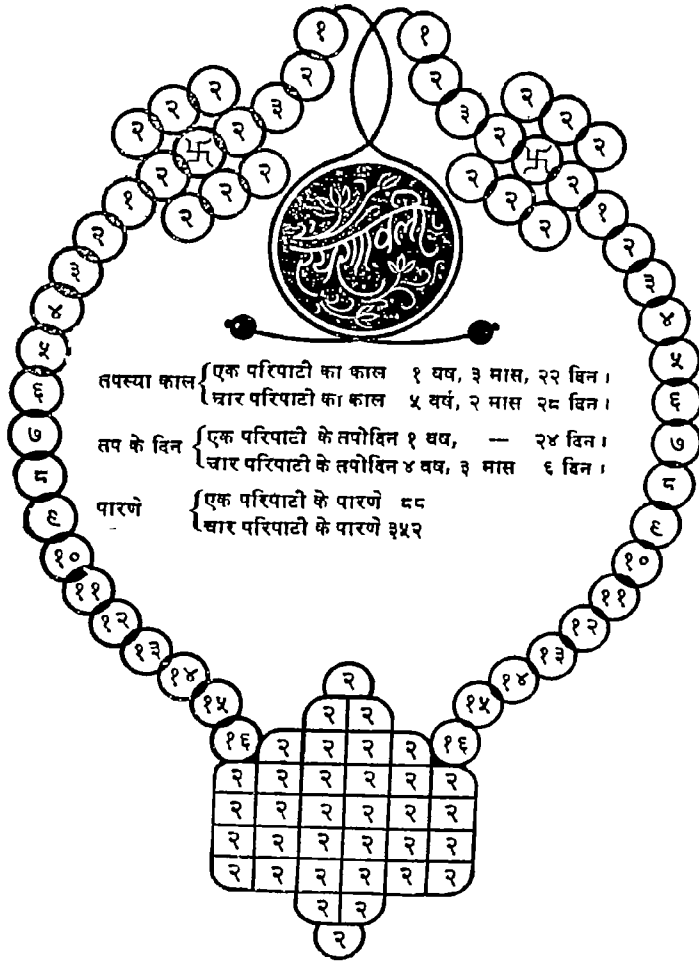
रत्नावली तप
का स्थापना-यन्त्र

प्रस्तुत सूत्र मे रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी का परिचय कराया गया है। अब सूत्रकार अगली परिपाटी का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तयाणतर च ण दोच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करित्ता विगइ-वज्ज पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता विगइवज्ज पारेइ, पारित्ता एव जहा पढमाए वि णवर सव्वपारणए विगइवज्ज पारेइ, जाव आराहिया भवइ। तयाणतर च ण**

तच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करित्ता अलेवाड पारेइ, सेस तहेव, एव चउत्था परिवाडी, नवरं सव्वपारणए आयबिल पारेइ, सेस त चेव।

पढमम्मि सव्वकामपारणयं विइयए विगइवज्ज ।
तइयमि अलेवाड, आयबिलओ चउत्थम्मि ॥

तए ण सा काली अज्जा रयणावली तवोकम्म पर्चाहि सवच्छरेहिं दोहिं य मासेहिं, अट्ठावीसाए य दिवसेहि अहासुत्तं जाव आराहेत्ता, जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचदण वदेइ णमसइ, वदित्ता, नमसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

छाया—तदनन्तर च द्वितीयायां परिपाट्या चतुर्थं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा एव यथा प्रथमायामपि, नवर सर्वपारणाया विकृतिवर्जं पारयति यावद् आराधिता भवति। तदानन्तर तृतीयाया परिपाट्या चतुर्थं करोति, कृत्वा अलेपकृत पारयति, शेष तथैव, एव चतुर्थापि परिपाटी, नवर सर्वपारणके आचाम्ल पारयति, शेष तच्चैव—

प्रथमाया सर्वकामपारणक, द्वितीयाया विकृतिवर्जम् ।
तृतीयामलेपकृतम् आचाम्ल च चतुर्थ्याम् ॥

तत सा काली आर्या रत्नावली तप कर्म पञ्चभि सवत्सरैर्द्वाभ्या च मासाभ्याम् अष्टाविंशतिभिश्च दिवसै यथासूत्र यावदाराध्य यत्रैव आर्यचदना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य आर्या चन्दना वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा बहुभिश्चतुर्थ-षष्ठा-ष्टम-दशम-द्वादशभिस्तप कर्मभिरात्मानं भावयन्ती विहरति।

पदार्थ—च—और, तयाणतर—उस के अनन्तर, ण—वाक्य सौन्दयार्थ है, दोच्चाए—दूसरी, परिवाडीए—परिपाटी मे, चउत्थ करेइ—एक उपवास करती है करित्ता—करके, विगइवज्ज—विकृति-वर्ज (जिस मे विकृति दूध-घी-तेल-दधि-मीठे को छोड दिया जाये) भोजन से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, छट्ठ—दो उपवास, करेइ—करती है, करित्ता—करके, विगइवज्ज—विकृतिवर्ज भोजन के द्वारा, पारेइ—पारणा करती है पारित्ता—करके, एव—इस प्रकार, जहा—जैसे, पढमाए वि—प्रथम परिपाटी मे तेले आदि किए गए थे उसी भाति इस मे भी किए गए, णवर—इतना अन्तर है, सव्वपारणए—सब व्रतो के पारणे मे, विगइवज्ज—विकृति रहित भोजन के द्वारा, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, जाव—यावत् यह परिपाटी एक वर्ष तीन मास और बाईस दिन मे, आराहिया भवइ—आराधित होती है सम्पन्न होती है, तयाणतर च—और उस के अनन्तर, तच्चाए परिवाडीए—तीसरी परिपाटी मे, चउत्थ करेइ—१ उपवास करती है, करित्ता—करके, अलेवाड—अलेपकृत-जिस भोजन मे घी आदि का लेप भी न हो, उस भोजन से, पारेइ—पारणा करती है, सेस तहेव—शेष वर्णन उसी प्रकार समझ लेना अर्थात् व्रत के बाद वेला किया तेला किया, आदि सभी तप प्रथम परिपाटी के समान जानने चाहिए, एव—इसी

प्रकार, **चउत्था**—चौथी, **परिवाडी**—परिपाटी भी समझ लेनी चाहिए, **नवर**—अन्तर केवल इतना है, **सव्वपारणाए**—सब व्रतो के पारणे मे, **आयबिल पारेइ**—आयम्बिल तप द्वारा पारणा करती है, **सेस**—शेष वर्णन (चारो परिपाटियो के आपसी अन्तर को गाथा से वर्णन करते है), **त चेव**—प्रथम परिपाटी की तरह जनना, **पढमम्मि**—प्रथम परिपाटी मे, **सव्वकाम पारणय**—यथेच्छ दूध आदि सब पदार्थों से पारणा किया जाता है, **विइयए**—द्वितीय परिपाटी मे, **विगइवज्ज**—दूध आदि को छोड कर पारणा किया जाता है, **तइयमि**—तीसरी परिपाटी मे, **अले·वाड**—घृतादि का जिसके साथ लेप रहा हो उस भोजन को छोडकर पारणा किया जाता है, **चउत्थम्मि**—चौथी परिपाटी मे, **आयबिलओ**—आयबिल तप का पारणा किया जाता है, **तए ण**—उसके बाद, **सा काली अज्जा**—वह काली देवी साध्वी, **रयणावली तवोकम्म**—रत्नावली तप की, **पचहि**—पाच, **सवच्छरेहि**—वर्षो, **य दोहि**—और दो, **मासेहि, य**—मास और, **अट्ठावीसाए दिवसेहि**—अठाईस दिनो मे, **अहासुत्त**—सूत्र निर्दिष्ट विधि के अनुसार, **जाव**—यावत् **आराहेत्ता**—आराधना करके, **जेणेव**—जहा पर, **अज्जचदणा**—आर्या चन्दना नामक साध्वी थी, **तेणेव**—वहां पर, **उवागया**—आई, **उवागच्छित्ता**—आकर, **अज्जचदण**—आर्या महासती चन्दनबाला महासती को, **वदइ**—वन्दना करती है, **णमसइ**—नमस्कार करती है, **वदित्ता**—वन्दनाकर के, **णमसित्ता**—नमस्कार करके, **बहूहि**—अनेक, **चउत्थ**—एक उपवास, **छट्ठट्ठम**—षष्ठ-दो उपवास, **अष्टम**—तीन उपवास, **दसम**—चार उपवास, **दुवालसेहि-तवोकम्मेहि**—पाच उपवास रूप तपस्या से, **अप्पाण भावेमाणी**—अपनी आत्मा को भावित करती हुई, **विहरइ**—विचरण करने लगी।

मूलार्थ—महासती काली देवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी सम्पन्न कर लेने के अनन्तर इस तप की दूसरी परिपाटी आरभ की। इसमे सब से पहले एक उपवास किया और उसका पारणा किया। फिर बेला किया, पारणा करके तेला किया, फिर आठ बेलें किए, फिर पारणा करके उपवास किया, बेला, तेला किया इसी प्रकार १६ उपवास किए। फिर ३४ बेले किए, पारणा करने के अनन्तर फिर १६ उपवास किए, फिर १५ किए, फिर चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छह, पाच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। फिर पारणा करके आठ बेले किए, पारणा कर के फिर तेला, बेला और एक उपवास किया। सभी पारणो मे दूध आदि पदार्थों का प्रयोग छोड दिया। इस तरह महासती काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी की सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधना की।

दूसरी परिपाटी की आराधना करने के अनन्तर आर्या काली देवी ने रत्नावली तप की तीसरी परिपाटी का आराधन करना आरभ किया। प्रथम परिपाटी की तरह सर्व

प्रथम उपवास किया, फिर उसका पारणा किया, इस पारणे मे घृतादि का लेप भी उस ने छोड दिया। उपवास के पारणे के अनन्तर आगे की तपस्या प्रथम परिपाटी के समान ही समझनी चाहिए। सभी पारणो मे घृतादि के लेप का सर्वथा परित्याग कर दिया। रत्नावली तप की तीसरी परिपाटी की आराधना के पश्चात् आर्या काली देवी ने चौथी परिपाटी की आराधना आरभ की। इस परिपाटी की तपस्या का समस्त विवरण प्रथम परिपाटी की तपस्या के समान है। अन्तर केवल इतना है कि इस चतुर्थ परिपाटी मे तप का पारणा आयबिल तप से किया गया। शेष वर्णन एक जैसा ही है।

इस प्रकार रत्नावली तप चार परिपाटियो मे सम्पूर्ण होता है। इन मे जो अन्तर है वह केवल पारणे मे गृहीत वस्तु का है। प्रथम परिपाटी के पारणे मे यथेष्ट दूध-घी आदि सब पदार्थों का सेवन किया जाता है। दूसरी परिपाटी मे व्रतो के पारणे मे दूध आदि विगयो का प्रयोग छोड दिया जाता है। तृतीय परिपाटी मे व्रतो के पारणे मे घृतादि विगयो के लेप का भी परित्याग होता है तथा चौथी परिपाटी मे व्रतो का पारणा आयंबिल तप से किया जाता है।

महासती काली देवी ने पाच वर्ष दो मास अट्ठाईस दिनो मे जब रत्नावली तप का आराधन कर लिया तब वह महासती आर्या चन्दना (चन्दनबाला) जी के पास आई, उनको वदन नमस्कार करने के अनन्तर अनेको व्रत-बेले-तेले-चौले तथा पचौलो की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे रत्नावली तप की दूसरी-तीसरी और चौथी परिपाटी का वर्णन किया गया है। इन चारो परिपाटियो मे उपवासो की सख्या और उन के क्रम मे तो किसी प्रकार का भेद नही, किंतु प्रत्येक परिपाटी मे पारणे का भेद है। प्रथम परिपाटी मे पारणे के दिन दुग्धादि विकृतियो का ग्रहण किया जाता है, दूसरी मे उनका परित्याग कर दिया जाता है और दूध-घृत आदि विकृतियो से रहित पदार्थों से पारणा किया जाता है। तीसरी परिपाटी मे घृतादि के लेप का भी त्याग कर दिया जाता है। इसके पारणे मे घृतादि से चुपडी हुई रोटी भी नही ली जाती, तथा चतुर्थ परिपाटी मे आयबिल से पारणा किया जाता है। यह तप पाच वर्ष दो मास और २८ दिनो मे सम्पूर्ण होता है।

"विगइवज्ज"—का अर्थ है—विकृति से रहित। विकार-जनक दूध-घृत आदि पदार्थों को विकृति कहते हैं। विकृतिवर्ज, यह भोजन का विशेषण है। जिस भोजन मे विकार उत्पन्न करने-वाले घृत मिठाई आदि पदार्थों का सेवन न किया जाये उसे विकृतिवर्ज भोजन कहा जाता है। चम्पानरेश

महाराजा कौणिक की लघुमाता महासती श्री काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी का आराधन करते समय पारणे के दिन विकृति-रहित भोजन किया था।

"सव्वपारणए"—का अर्थ है—सब व्रतो के पारणे मे। महासती काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी की आराधना करते समय जितने व्रत किए थे उन सब के पारणे मे विकृति रहित भोजन ग्रहण किया था। पारणा शब्द के साथ सर्व शब्द का सयोजन का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि "कुछ एक व्रतो के पारणे मे" यह न समझ कर "सब व्रतो के पारणे" मे यह समझना चाहिए।

"पारेइ जाव आराहिया"—यहा का जाव पद अन्य स्थानो पर पढे गए अवशिष्ट सूत्राश को ग्रहण करने की ओर सकेत करता है।

"अलेवाड पारेइ"— अलेपकृत पारयति, विकृतिर्लेपरहित पारयति, पारणके-विकृतेर्लेपमात्रमपि वर्जयतीत्यर्थ—अर्थात् जिस भोजन मे विकृति का लेप भी नही है, जो भोजन घृत से चुपडा हुआ भी नही है, रूखा है। उस भोजन को **अलेपकृत** कहते है। सचित्र अर्द्धमागधी-कोषकार **अलेवाड** शब्द का अर्थ करते हुए लिखते हैं—अलेपकृत—जिससे पात्र लिप्त न हो, ऐसी वस्तु चना आदि।

"आयबिल"—यह प्राकृत भाषा का शब्द है। सस्कृत मे इसके **आचाम्ल,** आचामाम्ल तथा आयामाम्ल, ये तीन रूप बनते है। आयबिल व्रत मे दिन मे एक बार भोजन करना होता है। यह भोजन नीरस होता है। घृत-दूध-दधि-तेल-गुड-शक्कर मिष्ठान्न और नमक आदि से युक्त किसी भी प्रकार का स्वादिष्ट भोजन इस व्रत मे ग्रहण नही किया जाता। चावल उडद या सत्तु आदि पदार्थो मे से किसी एक पदार्थ का इस मे सेवन करना पडता है। आजकल भुने हुए चने खाकर और प्रासुक पानी पीकर आयबिल तप करने की परम्परा प्रचलित है।

श्री काली देवी ने रत्नावली तप की चतुर्थ परिपाटी के व्रतो का पारणा आयबिल से किया। आयबिल स्वय एक तप है। महासती काली देवी की तप-साधना बडी विलक्षण थी। इसे साधनागत उग्रता की चरम सीमा ही समझना चाहिए कि वे एक कठोर तप का पारणा भी एक कठोर तप से किया करती थी। धन्य है तपस्विनी महासती काली देवी जिस ने सुखमय वातावरण मे जन्म लेकर भी रत्नावली जैसे विशाल एव कठोर तप की आराधना सहर्ष एव विना किसी उदासीनता से सम्पन्न की।

"पर्चाहि सवच्छरेहि, दोहि य मासेहि अट्ठावीसाए य दिवसेहि"—का अर्थ है— पाच वर्ष दो मास २८ दिन। रत्नावली तप की चार परिपाटिया हैं। एक परिपाटी को सम्पन्न करने मे—एक वर्ष तीन मास, बाईस दिन लगते हैं। इन को चार से गुणा करने से पाच वर्ष दो मास अट्ठाईस दिन हो जाते हैं, इसीलिये सूत्रकार ने **"पर्चाहि सवच्छरेहि** ये पद दिए हैं।

रत्नावली तप की सम्पूर्ण आराधना के अनन्तर उग्र तपस्विनी साध्वी श्री काली देवी महासती श्री आर्या आर्यचदना की सेवा मे रह कर तपस्यामय जीवन व्यतीत करने लगी। इस के अनन्तर क्या हुआ? उसका वर्णन सूत्रकार करते है—

मूल—तए ण सा काली अज्जा तेण ओरालेण, जाव धमणिसतया जाया यावि होत्था। से जहा इगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा, तवेण तेएण। तवतेयसिरीए अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

तए ण तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए जहा खदयस्स चिता जाव अत्थि उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कार, परक्कमे, सद्धा, धिइ, सवेगे वा ताव मे सेय कल्ल जाव जलते अज्जचदण अज्ज आपुच्छित्ता अज्जचदणाय अज्जाए अब्भणुण्णाए समाणीए सलेहणा झूसणा झूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए काल अणवकखमाणीए विहरेत्तए त्तिकट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचदण अज्ज वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—

छाया—तत सा काली आर्या तेनोदारेण यावद् धमनिसतता जाता चाप्यभवत्। अथ यथा अगारशकटी वा यावत् सुहुतहुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्ना तपसा तेजसा तपस्तेज श्रिया अतीव उपशोभमाना तिष्ठति।

ततस्तस्या काल्या आर्याया अन्यदा कदाचित् पूवरात्रापररात्रकाले अयमाध्यत्मिको यथा स्कन्दकस्य चिन्ता यावद् अस्ति उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम श्रद्धा धृति सवेगस्तावन्मे श्रेय कल्ये यावज्ज्वलति आर्यचन्दनामार्यामापृच्छ्य आर्याचन्दनया आर्यया अभ्यनुज्ञाताया सत्या सलेखना-जोषणा-जुष्टाया भक्तपानप्रत्याख्याताया कालमनवकाङ्क्षन्त्या विहर्तुम्, इति कृत्वा एव सप्रेक्षते, सप्रेक्ष्य कल्ये यत्रैवार्यचन्दनाऽऽर्या तत्रैवोपगच्छति, उपागत्य आर्यचन्दनामार्या वदते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवमवदत्—

पदार्थ—त एण—उसके अनन्तर, **सा काली अज्जा**—वह आर्या काली देवी, **तेण ओरालेण**—उस उदार—उग्र, **जाव**—यावत्—कठोर तप की आराधना के कारण, **धमणिसतया**—धमनीसतत, जिसकी धमनिया—नाडिया प्रत्यक्ष दिखाई दे रही हो या जो पिंजर मात्र हो, **जाया यावि होत्था**—ही हो गई थी, **से**—अथ—वाक्य रचना के लिये प्रयुक्त किया गया है, **जहा**—जिस प्रकार, **इगालसगडी**—कोयलो से भरी गाडी होती है, **वा**—उसी तरह दिखाई देती है, अर्थात् जिस प्रकार कोयले से भरी गाडी चलने पर आवाज देती है ठीक उसी प्रकार काली साध्वी के शरीर की हड्डिया उठते-बैठते, चलते-फिरते कड-कड की आवाज देती थी। अत्यधिक दुबली हो गई, **जाव**—यावत्, **भासरासिपलिच्छन्ना**—राख के ढेर से ढकी हुई, **सुहुयहुयासणे इव**—जिसमे, अच्छी तरह होम किया गया है, ऐसी अग्नि की तरह, **तवेण**—तप से, **तेएण**— तेज के प्रभावसे, **तवतेयसिरीए**—तप तथा तेज से जन्य शोभा से, **अईव**—अत्यधिक, **उवसोभेमाणी चिट्ठइ**—सुशोभित हो रही थी, **तएण**—उसके अनन्तर, **तीसे कालीए अज्जाए**—उस काली देवी आर्या महासती को, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य, समय,

पुव्वरत्तावरतकाले—मध्य रात्रि के समय, **अयमज्झत्थिए**—यह आध्यात्मिक—विचार उत्पन्न हुआ, **जहा**—जिस प्रकार, **खदयस्स**—स्कन्दक मुनि जी के मन मे विचार उत्पन्न हुआ था, उसी प्रकार आर्या काली देवी के मन मे उत्पन्न हुआ, **जाव**—यावत्—विचार करने लगी कि मेरे शरीर मे जब तक, **अत्थि**—है, **उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए**—उत्थान (खडा होना) कर्म-क्रिया, बल, वीर्य, शक्ति, **पुरिसक्कारपरक्कमे**—पुरुषकार और पराक्रम-उद्योग, **सद्धा-धिइ**—श्रद्धाधृति, अथवा धैर्य, **सवेगे वा**—अथवा मोक्ष की अभिलाषा, विषयो से निवृत्ति, वैराग्य है, मुझे चाहिए कि, **कल्ल**—अगले दिन, **जाव**—यावत्, **जलते**—सूर्योदय होने पर, **अज्जचदण अज्ज**—आर्या चन्दना (चन्दन बाला) आर्या महासती को, **आपुच्छित्ता**—पूछ कर, **अज्जचदणाए-अज्जाए**—आर्यचन्दना महासती से, **अब्भणुण्णाए समाणीए**—आज्ञा प्राप्त कर लेने पर, **सलेखना**—सलेखना (एक अनुष्ठान विशेष की), **झूसणा झूसियाए**—सेवन से सेवित, **भत्तपाणपडियाइक्खियाए**—अन्न तथा जल का परित्याग करती हुई, **काल अणवकखमाणीए**—मृत्यु की अभिलाषा न करती हुई, **विहरेत्तए**—विचरण करना चाहती हूँ, **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर, **एव सपेहेइ**—इस प्रकार विचार करती है, **सपेहित्ता**—विचार करके, **कल्ल, जेणेव**—अगले दिन, जहा पर, **अज्जचदणा अज्जा**—आर्या चन्दना महासती थी, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा पर आती है, **उवागच्छित्ता**—वहाँ आकर के, **अज्जचदण**—आर्या चन्दना साध्वी को, **वदइ णमसइ**—वन्दना नमस्कार करती है, **वदित्ता णमसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एव वयासी**—इस प्रकार निवेदन करने लगी ।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह काली आर्या उक्त उग्र तप से बहुत दुर्बल हो गई, उसकी नाडिया दिखाई देने लगी, उसका शरीर केवल अस्थियो का पिंजर बन गया । जिस प्रकार कोयलो से भरी गाडी चलने पर शब्द करती है ठीक उसी प्रकार उठते-बैठते उसकी अस्थिया शब्द करने लगी । वह भस्म से आच्छादित (ढकी हुई) हवन की अग्नि के समान तप-तेज की शोभा से अत्यन्त सुन्दर लग रही थी ।

एक बार अर्धरात्रि के समय उस काली देवी आर्या को एक विचार आया वह भगवती सूत्र मे वर्णित स्कन्दक मुनि की तरह चिन्तन करने लगी कि मेरा शरीर तपस्या के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया है तथापि अभी मेरे मे उत्थान (खडा होना) कर्म (कार्य करना),बल(शक्ति),वीर्य (सामर्थ्य), पुरुषकार(उद्योग),पराक्रम(कार्य-चेतना), श्रद्धा (आस्था), धृति (धैर्य) और सवेग (वैराग्य—मोक्षप्राप्ति की कामना) विद्यमान है, इसलिये मुझे उचित है कि मैं अगले दिन सूर्योदय होते ही आर्या चदना महासती से आज्ञा प्राप्त करके सलेखना (एक अनुष्ठान विशेष, जिस मे तप द्वारा क्रोध-मानादि कषायो का विनाश किया जाता है) की आराधना के साथ अन्न-जल का परित्याग कर

दू और मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई जीवन व्यतीत करू । ऐसा विचार करने के अनन्तर प्रात काल होने पर वह आर्या चन्दना साध्वी के पास आती है, उनको वदन नमस्कार करती है, करने के पश्चात् उनसे निवेदन करने लगी ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने महासती उग्र तपस्विनी श्रीकाली देवी की तपश्चर्या से उसके शरीर पर पडनेवाले प्रभाव का और अपनी गुरुणी महासती चदनवाला से पूछकर सलेखनादि के लिये उसके मन मे जो त्याग-वैराग्य प्रधान शुभ विचार उत्पन्न हुए उनका परिचय कराया गया है ।

महासती कालीदेवी के तपस्या-प्रधान जीवन का परिशीलन करने से पता चलता है कि परम साध्य निर्वाण पद की साधना के लिये शारीरिक मोह का परित्याग करना होता है । जहा शरीर का मोह है, वहा अध्यात्म-साधना कभी भी सम्पन्न नही हो सकती, क्योकि शरीर का ममत्व छोडे बिना तपस्या की आराधना असभव है । तपस्या की आराधना किये विना मोक्षोपलब्धि असभव है और मोक्ष-प्राप्ति के विना निर्वाणपद की प्राप्ति का प्रश्न ही उपस्थित नही होता, अत मोक्षकामी साधक को शारीरिक ममत्व से किनारा करना ही पडता है, प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित कालीदेवी का तपस्वी-जीवन इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है ।

सूत्रकार कहते हैं कि रत्नावली तप की उग्र एव कठोर साधना से महासती काली देवी का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, उसमे मास और रक्त की बहुत कमी हो गई थी । उसकी धमनिया और नाडिया दिखाई देने लगी थी, वह सूख कर हड्डियो का केवल पिंजर बन गई थी । उठते-बैठते चलते फिरते उसकी हड्डियो से 'कड कड' की आवाज आने लग गई थी, जैसे सूखे काष्ठ, सूखे पत्रो या सूखे कोयलों से भरी गाडी चलने पर खडखड की आवाज देती है ठीक वैसे ही उठने-बैठने पर महासती कालीदेवी की अस्थिया कडकड करने लग गई थी ।

रत्नावली तप की आराधना से भले ही महासती कालीदेवी का शरीर दुर्बल हो गया था तथापि उसकी दुर्बलता का इन पर कोई प्रभाव न था, वे शारीरिक चिन्ता से कभी व्याकुल नही हुई । इन्होने शारीरिक क्षीणता के कारण कभी चिन्ता अनुभव नही की, प्रत्युत स्वस्थ व्यक्ति की भाति सदा प्रसन्न-मुख रहा करती थीं । दुर्बल शरीर से भी जितनी साधना सम्पन्न हो सकती थी उसके लिये सदा सतर्क रहती थी । शरीरमोह तो इन्होने कभी किया ही नही था ।

उनके मुख पर आत्मिक तेज चमक उठा था, उनकी आध्यात्मिक शक्ति निखर उठी थी । जैसे भस्म से आच्छादित होने पर अग्नि बाहिर से शान्त दिखाई देती है, परन्तु भस्म के भीतर उसका तेज सुरक्षित रहता है । इसी प्रकार उनका शरीर रक्त-मास सूख जाने से निस्तेज एव निर्बल दिखाई देता था, परन्तु उनकी अन्तरात्मा अहिंसा सत्यादि के प्रकाश से प्रकाशमय हो रही थी ।

"ओरालेण जाव धमणिसतया" तथा **इगालसगडो वा जाव सुहुयहुयासणे"** यहा पठित **जाव** पदो से सूत्रकार ने—**पयत्तेण पग्गहिएण कल्लाणेण सिवेण धण्णेण मगलेण सस्सिरीएण उदग्गेण उत्तमेण**

उदारेण तवोकम्मेणं सुक्का, भुक्खा निम्मसा, अट्ठिचम्मावणद्धा किडिकिडियभूया किसा धमणिसतया जाया यावि होत्था। जीवजीवेण गच्छइ जीवजीवेण चिट्ठति, भास भासतोति गिलाइ, भास भासिस्सामीत्ति गिलाति, से जहा नामए कट्ठ सगडियाइ पत्तस,गडियाइ वा, इगालसगडियाइ वा, उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्द गच्छति, ससद्द चिट्ठति, एवमेव कालीवि अज्जा ससद्द गच्छति, ससद्द चिट्ठति, उवचिया तवेण अवचिया मससोणिएण।

इन पदो को अध्याहृत करने का निर्देश करता है। यह पाठ व्याख्या-प्रज्ञप्ति, भगवती सूत्र तथा ज्ञाताधर्मकथाङ्ग मे वर्णित है। इस अवशिष्ट पाठ का सक्षिप्त सार इतना ही है कि तपस्या से अत्यन्त कृष वह काली आर्या अपनी समस्त आवश्यक क्रियाओ को आत्मबल से ही सम्पन्न किया करती थी, क्योकि उनका शरीर अस्थिपजर मात्र रह गया था।

"धमणिसतया"—नाडी व्याप्ता अर्थात् जो नाडियो से आवृत हो उसे "धमणि-सतता" कहते हैं। काली देवी का शरीर तपस्या के कारण इतना रक्त तथा मास से हीन हो गया था कि उसकी नाडिया स्पष्ट दिखाई देने लगी थी।

"इगाल सगडी"—*अंगारशकटी, अगारा --कोयला "इति हिन्दी भाषायाम्, तं भृता शकटी गन्त्री अगार शकटी तद्वत्—अर्थात् कोयलो से भरी हुई गाडी 'अगार शकटी' कही जाती है। जैसे कोयलो की गाडी चलते समय किट्-किट् शब्द करती है उसी प्रकार आर्याकाली देवी जब चलती थी तो उसकी हड्डिया किट्-किट् करती थी।

"सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा--सुहुतहुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्ना-सा काली आर्या भस्मसमूहान्तर्हितो घृतादि-तर्पित-वह्निरिव तपसा तेजसा अतीव उपशोभमाना तिष्ठति—अर्थात् सुहुतहुताशन यह विशेष्य है और भस्मराशिप्रतिछन्ना यह विशेषण है। जो भस्म के समूह से ढकी हुई हो उसे 'भस्मराशि प्रतिछन्न' कहते हैं। हुताशन का अर्थ अग्नि है जो विशेष्य हैं और सुहुत का अर्थ है अच्छी तरह हवन किया हुआ इस तरह अर्थ विचारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुहुत-हुताशन शब्द घृत आदि की आहुतियो से सवृद्ध अग्नि का बोधक है।

"तवेण तेएण, तवतेयसिरीए"—तपसा, तेजसा, तपस्तेज श्रिया। यहा पर सूत्रकार ने तीन बातो की ओर सकेत किया है—तप, तेज, तप एव तेज की शोभा। सूत्रकार कहते हैं, कि काली देवी आर्या तप से जनित शक्ति के प्रभाव से, तेज के प्रभाव से तथा तप और तेज इन दोनो की सम्मिलित शोभा से सुशोभित हो रही थी।

"पुव्वरत्तावरत्तकाले" पूर्वरात्रापररात्रकाले। इस शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं पूर्व रात्रि और अपर रात्रि का मध्य भाग—मध्य रात्रि और रात्रि का अतिम भाग—पिछली रात। सूत्रकार कहते है कि आर्या काली को मध्य रात्रि के समय एक विचार आया। मध्य रात्रि का समय बड़ा

---

* यथा अगारशकटिका, शुष्कपत्रशकटिका, एरण्डकाष्ठशकटिका गमनकाले किट्किट् शब्द करोति, तथैव अस्या काल्या आर्याया शरीरम् उत्थानादिक्रियायामस्थिसघर्षवशात् किट्-किट् शब्द करोति।

(वृत्तिकार—पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज)

शान्त होता है और समाधि के लिये अत्यन्त उपयोगी माना गया है। योगी-जन प्राय इसी समय ध्यान किया करते हैं। **"जहा खदयस्स चिता जाव"**—इन पदो का भाव यह है कि भगवती सूत्र मे वर्णित स्कन्दक मुनि को मध्य रात्रि के समय जसे विचार उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार आर्या काली देवी के हृदय मे भी विचार उत्पन्न हुआ। उन्होने यह अनुभव किया कि तपस्या की आराधना के कारण अब मैं बहुत दुर्बल हो गई हू, तथापि अभी मैं समर्थ हू, उठने-बैठने की मेरे मे क्षमता है, अत अब क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषायो से मुक्त होकर अन्न-जल को त्याग कर सर्वदा समाधि मे रहना ही श्रेयस्कर है।

"उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए"—इन सभी पदो का अर्थ मूलार्थ मे दे दिया गया है। वैसे बल, वीर्य, पुरुषकार और पुरुषार्थ ये सब शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं। **"सद्धा धिई सवेगे"** इन शब्दो के प्रयुक्त करने का उद्देश्य इतना ही प्रतीत होता है कि आर्या काली देवी ने बढती हुई शारीरिक दुर्बलता को देख कर विचार किया कि अब तक मेरा श्रद्धान ठीक है, धैर्य भी ठीक है तथा मेरे मन मे मोक्ष-प्राप्ति की कामना भी प्रबल है, भविष्य मे क्या हो ? यह कौन जानता है, अत अब मुझे इस समय का लाभ उठाना चाहिये। सलेखना के द्वारा आत्मा को शुद्ध बनाकर तप की आराधना मे समय व्यतीत करना चाहिये।

"सलेहणा-झूसणा झूसियाए, भत्तपाण-पडियाइक्खियाए"—सलेखना-जोषणाजुष्टाया भक्तपान-प्रत्याख्याता" यहा पठित सलेखना शब्द दो अर्थो का बोधक है—शरीर, कषाय आदि का शोषण और अनशन व्रत से शरीर त्याग का अनुष्ठान। जोषणा का अर्थ है आराधना और जुष्ट का अर्थ है आराधित। सलेखना की आराधना करने-वाली नारी **'सलेखना जोषणा-जुष्टा'** और जिस ने अन्न तथा जल का प्रत्याख्यान कर दिया है उसे **'प्रत्याख्यात-भक्त-पाना'** कहा जाता है।

आर्या काली देवी को अर्ध रात्रि के समय जो विचार उत्पन्न हुआ उसे क्रियात्मक रूप देने के लिये उसने अपनी गुरुणी महासती जी के चरणो मे निवेदन करने का जो सकल्प किया है यह उसको विनीतता का ही प्रतीक है। साधक को कोई भी कार्य करना हो तो उसे सर्व प्रथम अपने गुरुदेव से पूछना चाहिए क्योकि गुरुजन अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आज्ञा देने मे उचित और अनुचित का जितना भली भाति विचार कर सकते हैं, उतना शिष्य नही, क्योकि वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध होने से गुरुदेव सूक्ष्म दृष्टि से जो गम्भीर चिन्तन कर सकते है वह शिष्य की क्षमता से बाहिर होती हैं।

उदाहरणार्थ— शिष्य की ओर से यदि गुरुजन से आमरण अनशन के लिये निवेदन किया जाए तो दीर्घदर्शी तथा अनुभवी गुरुदेव सर्वप्रथम अपने ज्ञान-प्रकाश मे यह देखेंगे कि आज्ञा माँगनेवाले शिष्य का आयुकर्म कितना शेष है ? यदि स्वल्प है तो वे आज्ञा दे डालेंगे, यदि आयु अधिक है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, को आगे रखकर अपना निर्णय देंगे। इस तरह गुरुजनो से पूछ कर कार्य करने से लाभ ही लाभ है।

आर्या काली देवी ने महासती आर्या चन्दना की सेवा मे उपस्थित हो कर क्या निवेदन किया तथा उन्होने उत्तर मे उसे क्या कहा ? आदि प्रश्नो का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणीए सलेहणा जाव विहरित्ताए ? अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह । तओ काली अज्जा अज्ज-चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा-झूसणा-झूसिया जाव विहरइ । सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ अट्ठसवच्छराइं सामण्णपरियाग पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाण झूसेत्ताए सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव चरिमुस्सासनीसासेहिं सिद्धा । निक्खेवो ।**

छाया—**इच्छामि हे आर्या ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती सलेखना यावत् विहर्तुम् । यथासुख देवानुप्रिये ! मा प्रतिबध कुरु । तत काली आर्या आर्यचन्दनया अभ्यनुज्ञाता सती सलेखना-जोषणा-जुष्टा यावद् विहरति । सा काली आर्या आर्यचन्दनाया अन्तिके सामायिकादीनि एकादश अगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णान् अष्टसवत्सरान् श्रामण्यपर्याय पालयित्वा मासिक्या सलेखनया आत्मान जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनया छित्वा यदर्थाय क्रियते नग्नभाव यावच्चरमोच्छ्वासनि.श्वासै सिद्धा । निक्षेप ।**

पदार्थ—**अज्जाओ !**—हे आर्ये !, **इच्छामि ण**—मेरी इच्छा है। **तुब्भेहिं**—आप की, **अब्भणुण्णाए समाणीए**—आज्ञा हो जाने पर, **सलेहणा**—सलेखना (अनशन से शरीर त्याग का अनुष्ठान, सथारा), **जाव**—यावत् अन्नजल का परित्याग करके, मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई। **विहरित्तए**—विहरण करू, **देवाणुप्पिया !**—हे भद्रे ! **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो, परन्तु, **पडिबध**—प्रतिबन्ध—प्रमाद, **मा करेह**—मत करो, **तओ**—उस के अनन्तर, **काली अज्जा**—आर्या काली देवी, **अज्ज चदणाए**—आर्या चन्दना (चदन बाला) के द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त हो जाने पर, **सलेहणा—झूषणा-झूसि**—सलेखना (सथारा) की आराधना करके, **जाव**—अन्न जल के परित्याग के साथ मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई, **विहरति**—समय व्यतीत करने लगी, **सा**—वह, **काली अज्जा**—आर्या काली देवी, **अज्ज चदणाए**—आर्या चन्दना के, **अतिए**—पास **सामाइयमाइयाइ**—सामायिक (आचाराग सूत्र) है आदि मे जिनके ऐसे, **एक्कारस अगाइ**—ग्यारह अगो का, **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके, **बहुपडि-पुण्णाइ**—बहु प्रतिपूर्ण—पूरे, **अट्ठसवच्छराइ**—आठ वर्ष, **सामण्ण-परियाग**—साधु वृत्ति, **पाउणित्ता**—पाल कर, **मासियाए**—एक मास की, **सलेहणाए**—सलेखना (सथारे) से, **अप्पाण**—अपनी आत्मा को, **झूसेत्ता**—आराधित करके, **अणसणाए**—अनशन (उपवास) के द्वारा —अर्थात्

सलेखना से अपनी आत्मा को मोक्षमार्ग के अनुकूल बना कर, **सट्ठिभत्ताइ**—साठ भोजन, **छेदेत्ता**—छोड कर, **जस्सट्ठाए**—जिस उद्देश्य के लिये, **नग्गभाव**—नग्नभाव—साधु जीवन अगीकार किया था, **जाव**—यावत् उसकी सिद्धि करके, **चरिमुस्सास नीसासेहि**—अन्तिम श्वास के साथ ही, **सिद्धा**—सिद्ध हो गई, **निक्खेवो**—अध्ययन के निक्षेप उपसहार-वाक्य अर्थात् समाप्ति-वाक्य की कल्पना कर लेना।

मूलार्थ—आर्या काली देवी अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दना से निवेदन करने लगी कि आर्ये ! यदि आप आज्ञा दे तो मेरी इच्छा है कि सलेखना (आमरण अनशन) की आराधना द्वारा अन्न जल का परित्याग करके मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई, अपने जीवन को व्यतीत करू।

आर्या काली देवी की विनीत प्रार्थना सुनकर महासती आर्य चन्दना ने कहा—भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो, पर शुभ कार्यो मे प्रमाद नही करना चाहिए।

महासती आर्या चन्दना की ओर से आज्ञा मिल जाने के अनन्तर आर्या काली देवी ने सलेखना (सथारा) अगीकार करके अन्न-जल का परित्याग कर दिया और मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

आर्या काली ने महासती आर्या चन्दना के पास सामायिक (आचाराग) आदि ग्यारह अग शास्त्रो का अध्ययन किया। पूरे आठ वर्ष तक सयम का पालन किया, एक मास की सलेखना से अपने को मोक्षमार्ग के अनुकूल बनाया। अनशन के द्वारा साठ भोजनो का परित्याग करके जिस उद्देश्य के लिये साध्वी बनी थी उस उद्देश्य को अर्थात् सिद्ध-पद को अतिम श्वासोच्छ्वास के साथ प्राप्त कर लिया।

अतगड सूत्र के अष्टम वर्ग का प्रथम अध्ययन सुनाकर आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे—कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अतगड सूत्रीय अष्टम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि आर्या काली देवी ने मध्य रात्रि के समय आमरण अनशन करके अन्न पानी के परित्याग कर देने का जो सकल्प किया था, उसी सकल्प को अपनी गुरुणी चन्दनबाला के चरणो मे निवेदन किया और उसको क्रियात्मक रूप देने के लिये आज्ञा प्राप्त

करने की इच्छा प्रकट की। परम कृपालु गुरुणीश्री ने आर्या काली को स्वीकृति प्रदान करते हुए कहा कि हे भद्रे ! तुम्हारा विचार बहुत श्रेष्ठ है, परम साध्य निर्वाणपद की साधना ऐसे आध्यात्मिक अनुष्ठानो से ही सम्पन्न हो सकती है, परन्तु ऐसे पवित्र अनुष्ठानो की आराधना मे विलब नही करना चाहिये। ऐसे काम तो प्रमाद छोडकर शीघ्र सम्पन्न कर देने चाहिये। महासती आर्या चन्दना की स्वीकृति मिलते ही आर्या काली ने सलेखना—सथारे का अनुष्ठान आरभ कर दिया, अन्न-जल का परित्याग करके वह आत्मचिन्तन मे सलग्न हो गई। यह सब कुछ करने पर भी वह मृत्यु से कभी भयभीत नही हुई और न ही मृत्यु की कभी आकाक्षा की।

आर्या काली ने ११ अगो का अध्ययन किया, आठ वर्षों तक सयम साधना की, एक मास का सथारा किया, ६० भोजनो का त्याग करके उसने अपनी आत्मा को मोक्ष-मार्ग के अनुकूल बनाया जिस उद्देश्य के लिये उसने मोहमाया के बधन तोड कर साधुवृत्ति अगीकार की थी, अहिंसा सयम तप की कलमषहारिणी पवित्र त्रिवेणी मे गोते लगा कर उस उद्देश्य को पूर्ण बनाया और अत मे सिद्ध गति मे जा विराजमान हुई।

"सलेहणा जाव विहरत्तए" यहा पठित **जाव** पद **झूसणा-झूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए काल अणवकखमाणीए"** इन पदो का ससूचक है। इनका अर्थ गत सूत्र मे किया जा चुका है। तथा **"झूसिया जाव विहरइ"** यहा का **जाव** पद **"भत्त-पाण-पडियाइक्खिया काल अणवकखमाणी"** इन पदो का बोधक है। अर्थ पहले की तरह जान लेना। **"सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ"**—का अर्थ है सामायिक आदि ग्यारह अग-शास्त्र। आर्या काली देवी ने अपनी गुरुणी महासती चन्दन बाला से ग्यारह अग शास्त्रो का अध्ययन किया। ग्यारह अगो मे पहला अग-शास्त्र आचाराग सूत्र है। आचाराग सूत्र को सामायिक भी कहते हैं, इसीलिये प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने सामायिक शब्द का प्रयोग किया है।

आर्या काली ने अपनी गुरुणी से ग्यारह अग-शास्त्रो का अध्ययन किया, इस कथन से यह बात भली प्रकार प्रमाणित हो जाती है कि जिस प्रकार साधु को अग शास्त्र पढने का अधिकार है उसी प्रकार साध्वी को भी है। साध्विया भी साधुओ की तरह अग शास्त्र पढ सकती हैं। इसके अतिरिक्त काली देवी की जीवनी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि परमकल्याण रूप निर्वाणपद की प्राप्ति मे साधु और साध्वी दोनो को समानाधिकार है।

व्यवहार सूत्र के दसवें उद्देश्यक मे साधु-साध्वी के पाठ्य क्रम का वर्णन किया गया है। वहा लिखा है कि दस वर्ष की दीक्षावाला साधु व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र पढ सकता है, इससे पहले का नही, परन्तु यहा पर आठ वर्ष की सयम पर्याय मे ग्यारह अगो के अध्ययन का निर्देश है। काली देवी की दीक्षा आठ वर्ष की थी उसने ग्यारह अग पढे। ऐसी दशा मे यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि व्यवहार सूत्रानुसार काली देवी ने अग-शास्त्र पढने की अधिकारिणी न होते हुए भी अग-शास्त्रो का अध्ययन क्यो किया ?

उत्तर मे निवेदन है कि स्थानाग भगवती आदि सूत्रो मे पाच व्यवहार वतलाए गए हैं। मोक्ष-अभिलाषी आत्माओ की प्रवृत्ति और निवृत्ति एव तत्कारणक ज्ञान विशेष को व्यवहार कहते हैं। ये पाच है, वे इस प्रकार हैं—

१ **"आगमव्यवहार"**—केवल ज्ञान, मन पर्यवज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दश पूर्व और नव पूर्व का अध्ययन आगम कहलाता है। आगम से प्रवर्तित प्रवृत्ति एव निवृत्ति रूप व्यवहार को आगम-व्यवहार कहते है।

२ **श्रुतव्यवहार**—आचार प्रकल्पादि ज्ञानश्रुत है, इससे किया जानेवाला व्यवहार श्रुत व्यवहार है। नव-दश और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुतरूप है, परन्तु अतीन्द्रिय अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशयवाला है, अत वह आगम रूप माना गया है।

३ **आज्ञा-व्यवहार**—दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे रह हो और शरीर क्षीण हो जाने से वह विहार मे असमर्थ हो उनमे से किसी एक को प्रायश्चित्त आने पर वह मुनि योग्य गीतार्थ शिष्य के अभाव मे मति और धारणा मे अकुशल अगीतार्थ शिष्य को आगम की साकेतिक गूढ भाषा मे अपने अतिचार-दोष कहकर या लिखकर उसे अन्य गीताथ मुनि के पास भेजता है और उस के द्वारा आलोचना करता है। गूढ भाषा मे कही हुई आलोचना सुनकर वे गीतार्थ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-सहनन, धैर्य और बलादि का विचार कर स्वय वहा आते हैं, अथवा योग्य गीताथ शिष्य को समझा कर भेजते हैं। यदि वैसे शिष्य का भी उनके पास योग न हो तो आलोचना का सदेश लानेवाले के द्वारा ही गूढ अर्थ में अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते है तो यह आज्ञा-व्यवहार है।

४ **धारणा-व्यवहार**—किसी गीतार्थ सविज्ञ मुनि ने द्रव्य-क्षेत्र-काल एव भाव की अपेक्षा जिस अपराध मे जो प्रायश्चित्त दिया है उसकी धारणा से वैसे अपराध मे प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा व्यवहार है।

५ **जीत-व्यवहार**—द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पुरुष प्रतिसेवना का और सहनन, धृति आदि की हानि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत-व्यवहार है।

व्यवहार सूत्र मे जो दश वर्ष के दीक्षित मुनि को सूत्र पढाने का विधान किया गया है यह प्राय श्चित्त सूत्र-व्यवहार को लेकर लिखा गया है। आगम व्यवहार को लेकर चलनेवाले महापुरुषो पर यह विधान लागू नही होता। आगम व्यवहारी जो करते है उसे उचित ही माना जाता है उनके किसी व्यवहार मे अनौचित्य के लिये कोई स्थान नही होता।

काली देवी के सम्बन्ध मे आठ वर्षो की दीक्षा-पयार्य मे अग-शास्त्र पढने का उल्लेख मिलता है, परन्तु धन्य अनगार के सम्बन्ध मे तो लिखा है कि उन्होने नौ मास की दीक्षा पयार्य मे अग-शास्त्र पढे। इस से स्पष्ट है कि आगम-व्यवहार के सामने सूत्र-व्यवहार नगण्य है। इसी दृष्टि से व्याख्या प्रज्ञप्ति स्थानाग और व्यवहार सूत्र मे लिखा है—**आगम बलिया समणा निग्गथा।**

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि— व्यवहार सूत्र के अनुसार "दशवर्षीय दीक्षित साधु को अग पढाए जाते हैं", पर यह विधान आगम-व्यवहारवाले मुनियो पर लागू नही होता।

आर्या काली देवी का शरीर जब अस्थिपजर मात्र शेष रह गया तब उसके द्वारा अग शास्त्रो का अध्ययन कुछ विचारणीय सा ही प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त, इस अध्ययन के आरम्भ मे अगशास्त्रो के अध्ययन का उल्लेख किया जा चुका है, फिर दूसरी बार अगशास्त्र के अध्ययन के उल्लेख का क्या उद्देश्य है? उत्तर मे निवेदन है कि शास्त्र मे स्वाध्याय के पाच प्रकार लिखे गए हैं, इनमे एक प्रकार परिवर्तना है। परिवर्तना का अर्थ है— पठित शास्त्र की पुनरावृत्ति करना। महासती काली ने पूर्व तो अग शास्त्रो का अध्ययन किया था, परन्तु तप साधना काल मे वह महासती चन्दनबाला की सेवा मे उनकी विशेष रूप से परिवर्तना कर रही थी। इसी परिवर्तना को सूत्रकार ने उक्त पाठ से ससूचित किया है। रही दुर्बलता की बात, इस के सम्बन्ध मे इतना ही निवेदन है कि जहा शास्त्र-स्वाध्याय की सच्ची लगन हो, वहा शरीरगत दुर्बलता का कोई महत्त्व नही रहता।

"मासियाए सलेहणाए अप्पाण भूसेत्ता सट्ठिभत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता—" का अर्थ है आर्या काली देवी को सलेखना एक मास चली, एक मास की सलेखना से उसने अपनी आत्मा को—**भूसेत्ता**—मोक्ष मार्ग के अनुकूल बनाकर अपनी आत्मा का कल्याण किया। महीने मे उसने ६० भोजनो का परित्याग किया। ६० भोजनो के उल्लेख का अर्थ—महीना २९ दिन का था।

"निक्खेवओ"—का अर्थ है—निक्षेप। निक्षेप उपसहार या समाप्ति-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा मे उपसहार-वाक्य इस प्रकार है—**एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण जाव-सपत्तेण छट्ठमस्स अगस्स अन्तगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् हे जबू! मोक्ष सम्प्राप्त-श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अग अन्तकृद्दशाङ्ग के आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन मे आर्या काली देवी का वर्णन किया गया है। यह राजगृह नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी तथा चम्पानरेश कूणिक की लघुमाता थी। यौवन अवस्था मे त्याग और वैराग्य की भावना के साथ इन्होने भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षा अगीकार की थी। जिस निष्ठा के साथ ये दीक्षित हुई थी, अन्त तक इन्होने उस निष्ठा को बनाये रखा। उसने रत्नावली जैसे विशाल तप की आराधना करके नारी-जगत के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया कि यदि किसी बहन को आभूषण धारण करने की लालसा हो तो उसे तप के आभूषण पहिनने चाहिए। इससे शृगार का शृगार होगा और साथ मे जीवन का उद्धार भी हो जायेगा।

॥ प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

द्वितीय अध्ययन

अब सूत्रकार दूसरे अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल— उक्खेवओ। एवं खलु जबू! तेण कालेण तेणं समएणं चपा नामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ ण सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नाम देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खता जाव बहूहि चउत्थ जाव अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तए ण सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचदणा अज्जा जाव इच्छामि ण अज्जाओ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणी कणगावलि तवो-कम्म उवसपज्जित्ताण विहरित्तए। एव जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवर तिसु ठाणेसु अट्ठमाइ करेइ जहा रयणावलीए छट्ठाइ, एक्काए परिवाडीए सवच्छरो पचमासा बारस दिवसा सेस तहेव। नव वासा परियाओ जाव सिद्धा।

छाया—उत्क्षेप! एव खलु जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी। पूर्णभद्र चैत्यम्। कूणिको राजा, तत्र श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञ क्षुल्लमाता सुकाली नाम देवी आसीत्। यथा काली तथा सुकाल्यपि निष्क्रान्ता, यावद् बहुभिश्चतुर्थ यावद् आत्मान भावयन्ती विहरति।

तत सा सुकाली आर्या अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्यचदना आर्या यावदिच्छामि आर्ये! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती कनकावली तप कर्म उपसपद्य विहर्तुम्। एव यथा रत्नावली तथा कनकावल्यपि नवर त्रिषु स्थानेषु अष्टमानि करोति, यथा रत्नावल्या षष्ठानि एकस्या परि-पाट्यां सवत्सर पचमासा द्वादश दिवसा शेषस्तथैव, नव वर्षाणि पर्यायो यावत् सिद्धा।

पदार्थ—**उक्खेवो**—इस द्वितीय अध्ययन का उत्क्षेप—प्रस्तावना—वाक्यकल्पित कर लेना। **एव—खलु, जम्बू!** इस प्रकार। निश्चयार्थिक है। हे जम्बू! **तेण कालेण तेण समएण**—उस काल तथा उस समय, **चपा नाम णयरी**—चम्पा नामक नगरी थी, **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्णभद्र नामक चैत्य-उद्यान था। **कोणिए राया**—कोणिक राजा, **तत्थ ण**—वहा पर, **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की, **भज्जा**—धर्मपत्नी, **कोणियस्स रण्णो**—कोणिक राजा की, **चुल्लमाउया**—लघु माता, **सुकाली नाम देवी होत्था**—सुकाली नाम की देवी थी, **जहा काली, तहा**

सुकाली वि—जिस प्रकार काली देवी उसी प्रकार सुकाली देवी भी, **णिक्खता**—दीक्षित हुई, **जाव**-यावत्—उस देवी ने, **बहूहिं**—अनेक, **चउत्थ**—चतुर्थ (उपवास), **जाव**-यावत् —बेले-तेले, चौले आदि तप के द्वारा, **अप्पाण भावेमाणी**—अपनी आत्मा को भावित करती हुई, **विहरइ**—विचरण करने लगी।

तए ण—उस के अनन्तर, **सा सुकाली अज्जा**—वह आर्या सुकाली देवी, **अण्णया कयाइ**—किसी अन्य समय, **जेणेव**—जहा पर, **प्रज्जाचदणा**—आर्य चन्दना (चन्दनबाला), **अज्जा**—आर्या थी, वहाँ पर आई, **जाव**-यावत्—उस को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगी **अज्जाओ**!—हे आर्ये, **तुब्भेहिं**—आप के द्वारा, **अभणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **कणगावली तवोकम्म**—कनकावली नामक तप कर्मरूप अनुष्ठान को, **उवसपज्जित्ताण**—धारण करके, **विहरित्तए**—विहरण करना, **इच्छामि**—चाहती हू, **एव जहा**—इस प्रकार जैसे, **रयणावली**—रत्नावली तप है, **तहा कणगावली वि**—वैसे कनकावली तप भी है, **णवर**—अन्तर केवल इतना है, **जहा**—जिस रत्नावली तपसे काली देवी ने, **तिसु ठाणेसु**—तीनो स्थानो पर, **छट्ठाइ**—बेले किए थे वैसे इस तप मे बेले न करके देवी सुकाली, **अट्ठमाइ**—तेले, **करेइ**—करती है (कनकावली तप की), **एक्काए परिवाडीए**—एक परिपाटी मे, **सवच्छरो**—एक वर्ष, **पच मासा**—पाच मास, **बारस दिवसा**—१२ दिन लगे, **सेस तहेव**—शेष वर्णन काली देवी की तरह जानना, **नव**—नौ, **वासा परियाओ**—वर्ष दीक्षा पाली, **जाव**-यावत्—सब कर्मों का क्षय करके, **सिद्धा**—सिद्ध बन गई।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्र के आठवे वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि—हे भगवन्! मोक्ष सम्प्राप्त भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्रीय अष्टम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है वह सुनाने की कृपा करे।

आर्य जबू अनगार की विनती सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी आठवे वर्ग के द्वितीय अध्ययन का अर्थ सुनाते हुए कहने लगे कि हे जम्बू! उस काल तथा उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। उस के बाहिर पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था, महाराजा कौणिक राज्य किया करते थे। वहा पर महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा कौणिक राजा की लघुमाता सुकाली नाम की देवी थी। जिस प्रकार काली देवी दीक्षित हो गई थी उसी प्रकार सुकाली देवी भी दीक्षित हो गई। सुकाली देवी ने श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर आचाराग आदि ग्यारह अग पढे और व्रत बेले, तेले एव चौले आदि तपस्याओ के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई वह विचरण करने लगी।

एक दिन सुकाली देवी महासती आर्या चदना के चरणो मे उपस्थित हुई, वह वदन नमस्कार करने के अनन्तर उनसे निवेदन करने लगी कि 'हे आर्ये ! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मेरी इच्छा है कि मैं कनकावली तप की आराधना करू। आर्या सुकाली देवी की विनती सुनकर चन्दनबाला बोली— भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो शुभ कार्य मे प्रमाद मत करो ।

महासती आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर लेने पर आर्यासुकाली देवी ने कनकावली तप का अनुष्ठान आरभ कर दिया । कनकावली का आराधन भी रत्नावली तप की तरह किया जाता है, अन्तर इतना है कि रत्नावली तप के तीन ठिकानो मे आठ बेले किए जाते हैं, परन्तु कनकावली तप के तीनो ठिकानो मे सुकाली देवी ने आठ तेले किए । कनकावली तप की चार परिपाटिया होती हैं । प्रथम परिपाटी मे एक वर्ष पाच मास १२ दिन लगते है । शेष समस्त वर्णन रत्नावली तप के समान जानना चाहिये । आर्या सुकाली ने नौ वर्ष दीक्षा का पालन किया और अन्त मे जन्म-मरण समाप्त करके सिद्ध हो गई ।

व्याख्या—प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन मे महासती सुकाली देवी के जीवन का वर्णन किया गया है । यह चम्पा नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी । इनका पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था, उसीके वियोग में यह भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गई थी । दीक्षित हो जाने के अनन्तर इन्होने ग्यारह अगो का अध्ययन किया । शास्त्रीय ज्ञानालोक से आलोकित हो जाने के साथ-साथ इन्होने तपस्या का भी आराधन किया,व्रत बेले,तेले, चौले आदि द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध बनाया । कनकावली तप की आराधना द्वारा इन्होने अपने जीवन को तपोमय बना डाला । अन्त मे नौ वर्षो की सयम-साधना निर्विघ्न सम्पन्न करके ये मुक्ति-धाम मे जा विराजी ।

"उक्खेवओ"—का अर्थ हैं—उत्क्षेप । उत्क्षेप प्रस्तावना या आरभ-वाक्य को कहते हैं । शास्त्रीय भाषा मे प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना इस प्रकार है—

जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अट्ठमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? इस पाठ का भावार्थ मूलार्थ मे लिखा जा चुका है।

"चुल्लमाउया"—शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ३९२ पर लिखा जा चुका है । "**जहा काली तहा सुकाली वि निक्खता—यथा काली तथा सुकाल्यपिनिष्क्रान्ता, कालीवत् सुकाली देव्यपि परिव्रजिता**—अर्थात् काली देवी ने जिस प्रकार ससार की मोह-माया को ठुकरा कर दीक्षा अगीकार की थी, ठीक उसी प्रकार सुकाली देवी ने भी दीक्षा ग्रहण कर साधुत्व का पालन किया ।

"निक्खता जाव बहूहिं"—यहां पठित जाव पद दीक्षित होने के अनन्तर आर्या सुकाली देवी ने आचाराग सूत्र आदि ग्यारह अग पढे, इन भावो का परिचायक है।

"चउत्थ जाव अप्पाण"—यहां पठित जाव छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं" इस पाठ का बोधक है। इसका अर्थ पीछे पृष्ठ पर लिखा जा चुका है।

कनकावली स्थापना-यन्त्र

"अज्जा जाव इच्छामि"—यहा पठित जाव पद तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी" इन पदो का परिचायक है, अर्थ स्पष्ट ही है।

"कणगावलीतवोकम्म"—का अर्थ है — कनकावली नामक तप। सुवर्णमय मणिरूप आभरण विशेष का नाम कनकावली है। जैसे सुर्वणमय मणियो का हार बहुमूल्य होता है,तथा आभूपण रूप होने से शरीर की शोभा का सवर्धक होता है। वैसे ही कनकावली तप आचरण मे कठिनतर होता है तथा आत्मा मे विशुद्धि और निर्मलता का सम्पादन करता हुआ अन्त करण को सुशोभित करने की महान सामर्थ्य रखता है। कनकावली तप और रत्नावली तप मे इतना ही भेद है कि रत्नावली मे जहा आठ बेले तथा ३४ बेले किये जाते हैं वहा कनकावली तप मे आठ तेले और ३४ तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर हैं, पारणे मे भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी मे एक वर्ष पाँच मास १२ दिन लगते हैं, इस प्रकार चारो परिपाटियो के ५ वर्ष ९ मास और १८ दिन होते हैं। कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा पूर्वप्रदर्शित यत्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है।

"जहा रयणावली तहा कनकावली वि—यथा रत्नावली तथा कनकावली अपि, रत्नावली तप सदृश कनकावली तपोऽपि विज्ञेयम्—अर्थात् जिस प्रकार रत्नावली तप का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कनकावली तप का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। जैसे रत्नावली की प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध आदि सब विगयो का सेवन किया जाता है वैसे हो कनकावली की प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध आदि का ग्रहण होता है। इसी प्रकार अगली परिपाटियो के पारणे के सम्बन्ध मे भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

रत्नावली और कनकावली दोनो मे जो अन्तर है उस को सूत्रकार ने **"णवर तिसु ठाणेसु अट्ठमाइ करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइ"** इन पदो से अभिव्यक्त कर दिया है। इनका अर्थ है—रत्नावली तप के तीन स्थानो में बेले किये जाते हैं, परन्तु कनकावली तप के तीन स्थानो मे तेले करने होते हैं। रत्नावली तप मे एक स्थान पर आठ बेले, दूसरे पर ३४ बेले तथा तीसरे स्थान पर फिर आठ बेले किये जाते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि इन्ही तीन स्थानो पर कनकावली तप मे ८ तेले ३४ तेले तथा फिर आठ तेले करने पडते हैं। यही दोनो मे अन्तर है।

"एक्काए परिवाडीए सवच्छरो पच मासा बारस दिवसा"—का अर्थ है—कनकावली तप की प्रथम परिपाटी मे एक वर्ष ५ मास और १२ दिन लगते हैं।* यहा इस वात का ध्यान रखना चाहिये कि यह दिनो की सख्या वर्ष के ३६० तथा मास के ३० दिन मान कर ठीक बैठती है, अन्यथा नही।

"सेस तहेव"—का अर्थ है—शेष वर्णन आर्या काली देवी के समान जानना चाहिये। रत्नावली तप की आराधना करने के अनन्तर आर्या काली देवी ने मध्यरात्रि मे धर्म-जागरण करते समय सलेखना की आराधना करके अन्न जल के परित्याग के साथ जीवन व्यतीत करने का जैसे सकल्प किया था वैसे ही आर्या सुकाली देवी ने कनकावली तप की आराधना करने के अनन्तर एक दिन मध्यरात्रि मे सलेखना की आराधना द्वारा अन्न-जल का परित्याग करके जीवन का शेष काल व्यतीत करने का निश्चय किया।

---

*श्रद्धेय पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज अपने अन्तगडसूत्र मे कनकावली तप की प्रथम परिपाटी के एक वर्ष ५ मास अठारह दिन मानते हैं। **"एक्काए परिवाडीए सवच्छरो पच मासा, अट्ठारस्स दिवसा"**—समझ नही सके कि यह किस आधार पर लिखा गया है ?

"जाव सिद्धा"—यहा पठित जाव पद—निर्वाण पद प्राप्त करने से पूर्व आर्या सुकाली ने अपनी आत्मा को मोक्ष-मार्ग के अनुकूल बनाया। अनशन करके अमुक सख्या मे भोजन छोडे, अत जिस ध्येय को लेकर साधु जीवन अगीकार किया था उसमे पूर्ण सफलता प्राप्त की और अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ सम्पूर्ण कर्म क्षय करके निष्कर्मता प्राप्त की—आदि भावो का परिचायक है।

प्रस्तुत द्वितीयाध्ययन मे वर्णित सुकाली देवी के जीवन का परिशीलन करने से यह भली भाति प्रमाणित हो जाता है कि आत्म-शुद्धि का मुख्य साधन तप है। यद्यपि शास्त्रकारो ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारो को मोक्ष का साधन माना है, तथापि व्यवहार पक्ष मे तप को ही विशेष स्थान दिया गया है, इसीलिये इसे चारित्र के अन्तर्भूत न करते हुए इसका पृथक् उल्लेख किया गया है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

अन्तगड सूत्र के आठवे वर्ग के दूसरे अध्ययन के अनन्तर तीसरा अध्ययन आता है, अत अब सूत्रकार तीसरे अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—एव महाकाली वि, नवर खुड्डाग सीहनिक्कीलिय तवोकम्म उवसपज्जित्ताण विहरइ, तजहा—चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दशम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चोद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ,

करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा।

छाया—एव महाकाल्यपि, नवर क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप कर्म उपसपद्य विहरति। तथा—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा, द्वादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा शोडशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा शोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा शोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वमकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा छट्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति पारयित्वा चतुर्थ करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा तथैव चतस्र· परिपाट्य, एकस्या परिपाट्या षण्मासा सप्त च दिवसा, चतसृणा द्वे वर्षे अष्टाविंशति· दिवसा, यावत् सिद्धा।

पदार्थ—**एव**—इस प्रकार, जिस प्रकार काली देवी का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार, **महाकाली वि**—महाकाली देवी का भी समझना चाहिए, **णवर**—केवल अन्तर इतना है कि काली देवी ने, **खुड्डाग**—क्षुल्लक-छोटा, **सीहनिक्कीलिय**—सिंहनिष्क्रीडित—एक प्रकार का तप, जिसमे सिंह गमन की तरह चढते-उतरते उपवासो की परिपाटी होती है, **तवोकम्म उवसपज्जित्ताण**—तप को धारण करके, **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ है, **विहरइ**—विहरण किया करती थी, **तजहा**—जैसे कि, **चउत्थ**—चतुर्थ—उपवास, **करेइ,**—करती है, **करित्ता**—करके,

सव्वकामगुणिल—सर्व प्रकार के इष्ट पदार्थों पारणा करती है, से—पारेइ। **छट्ठ करेइ**—वेला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के इच्छित पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउत्थ करेइ**—चतुर्थ—(उपवास) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय पारेइ**—सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तेला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सव प्रकार के इच्छित रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **छट्ठ करेइ**—वेला करती है, वेला **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **दसम करेइ**—दशम—लगातार चार व्रत करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के विगयो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठम करेइ**—तेला करती है, **करित्ता**—पारणा करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—करके, **दुवालसम करेइ**—पचौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **दशम**—दशम (लगातार चार उपवास) चौला **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउद्दसम करेइ**—छौला (लगागार ६ उपवास) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **बारसम करेइ**—पचौला (लगातार ५ व्रत) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के विगयो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **सोलसम करेइ**—सतौला (लगातार ७उपवास) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चउद्दसम करेइ**—छौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठारसम करेइ**—अट्ठाई (आठ उपवास) करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के विगय-पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके **सोलसम करेइ**—सतौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **वीसइम करेइ**— नौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठारसम करेइ**—आठ करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **वीसइम करेइ**—९ नौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के पदार्थों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **सोलसम करेइ**—सातोला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **अट्ठारसम करेइ**—आठ करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **चोद्दसम करेइ**—छ उपवास करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकार के रसो से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—करके, **सोलसम करेइ**—सात करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणिय**—सर्व प्रकारके रसो से, **पारेइ**

—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके बारसम करेइ—पाच करती है, करित्ता—करके, सव्व-कामगुणिय—सर्वप्रकार के रसोसे, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, चउद्दसम करेइ—६ करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, अट्ठम करेइ—अट्ठाई (आठ) करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, दसम करेइ—चार (चौला) करती है, करेत्ता—करके, सव्वकामगुणिय पारेइ—सर्व विगयो से पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके बारसम करेइ—पाच करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, अट्ठम करेइ—तेला करती, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, दसम करेइ—चार करती है, करेत्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, छट्ठ करेइ—वेला करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, अट्ठ म करेइ—तेला करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, चउत्थ करेइ—चतुर्थ (१ उपवास) करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके, छट्ठ करेइ—वेला करती है, करित्ता—करके, सव्वकाम-गुणिय—सर्वप्रकार के रसोसे, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणाकरके, चउत्थ करेइ—चतुर्थ (१) करती है, करित्ता—करके, सव्वकामगुणिय—सर्व प्रकार के रसो से, पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—पारणा करके, तहेव—वैसे ही अर्थात् एक परिपाटी की तरह बाकी की, चत्तारि परिवाडीओ—चार परिपाटिया भी समझ लेनी चाहिए, एक्काए परिवाडीए—एक परिपाटी मे, छम्मासा य सत्त दिवसा—६ मास और सात दिन लगते हैं, चउण्ह य—और चारो परिपाटियो मे, दो वारिसा, अट्ठावीसा दिवसा—दो वर्ष २८ दिन लगते हैं, जाव—यावत् सलेखना की आराधना करके, सिद्धा—वह सिद्ध हो गई।

मूलार्थ - जिस प्रकार इस आठवे वर्ग के दूसरे अध्ययन मे महासती श्रीसुकालीदेवी की जीवनचर्या का वर्णन किया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत तृतीय अध्ययन मे महाकाली देवी के त्याग, वैराग्य एव सयम प्रधान जीवन को समझ लेना चाहिये। दोनो मे अन्तर केवल तपस्या की आराधना का है, महासती सुकाली ने कनकावली तप की आराधना की थी, परन्तु महासती महाकाली ने "क्षुल्लकसिंह निष्क्रीडित" तप की आराधना की है। इस तप मे सिंह की क्रीडा की तरह चढते-उतरते उपवासो की परिपाटी होती है। इस तप के क्षुल्लक (छोटा) और महालय ये दो भेद है। महाकाली आर्या ने 'क्षुल्लक सिंह निष्क्रीडित' तप सम्पन्न किया था, इसे 'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' भी कहते है। इसकी आराधना इस प्रकार है—

सर्व प्रथम उपवास किया, पारणा करके वेला किया, फिर पारणा करके उपवास किया, फिर तेला किया, इसी प्रकार बेला, चौला, तेला, पचौला, चौला, छह,पाच,सात, छह,आठ,सात, नौ,आठ,नौ,सात,आठ,छह,सात,पाच,छह,चौला, पचौला,तेला,चौला, बेला, तेला, उपवास, वेला और उपवास किया। इन सभी उपवासो के पारणे मे महाकाली आर्या ने दूध, घी आदि सभी इष्ट पदार्थो का सेवन किया। यह 'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' की एक परिपाटी का स्वरूप है। दूसरी, तीसरी तथा चौथी परिपाटी की भी इसी तरह कल्पना कर लेनी चाहिए। प्रथम परिपाटी मे छ महीने, सात दिन लगते है, तथा चारो परिपाटियो मे २ वर्ष २८ दिन लगते है।

'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' की आराधना करने के अनन्तर महासती महाकाली आर्या ने फुटकर अन्य अनेको तपस्याए की। सुकाली आर्या की भाति मध्यरात्रि मे सलेखना की आराधना का सकल्प किया और आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर उसे कार्यान्वित किया। अन्त मे अन्तिम श्वासोच्छ्वास मे मुक्ति-धाम में जा विराजी।

व्याख्या—प्रस्तुत तृतीय अध्ययन मे महासती महाकाली देवी के जीवन का उल्लेख किया गया है। यह भी चम्पानरेश महाराज कोणिक की लघुमाता तथा राजगृह नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी। इनका पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था, उसके वियोग ने इनके हृदय मे वैराग्य उत्पन्न कर दिया था, फलत यह भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षित हो गई थी। इन्होंने आचाराङ्गादि ग्यारह अगो का अध्ययन किया तथा छोटे-बडे अनेको तप किए। इनका सब से वडा तप 'लघुसिंह-निष्क्रीडित तप' था। प्रस्तुत सूत्र में इस तप की रूप-रेखा पर ही प्रकाश डाला गया है।

महासती महाकाली का सयमी जीवन गत अध्ययन मे वर्णित महासती सुकाली के समान है, इस बात की सूचना सूत्रकार ने **"एव महाकाली वि"** इन शब्दो से करदी है। इन दोनो महासतियो के जीवन मे जो अतर है उसे सूत्रकार ने **"णवर खुड्डाग सीहनिक्कीलिय तवोकम्म"** इन शब्दो से ससूचित किया है। सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि महासती सुकाली तथा महासती महाकाली के जीवन मे केवल तप का अन्तर है। सुकाली ने कनकावली तप किया और महाकाली ने 'क्षुल्लक सिंह निष्क्रीडित तप' का आराधन किया था।

"खुड्डाग सीहनिक्कीलिय"—की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरि लिखते है—
"खुड्डाग सीहनिक्कीलिय"—त्ति वक्ष्यमाणमहदपेक्षया क्षुल्लक—ह्रस्व सिंहस्य निष्क्रीडित—विहृत गमनमित्यर्थ सिंहनिष्क्रीडित तदिव यत्तपस्तत्सिंहनिष्क्रीडितमुच्यते, सिंहो हि गच्छन् गत्वा अतिक्रान्त-देशमवलोकयति, एव यत्र तपसि अतिक्रान्त तपोविशेष पुन पुनरासेव्याग्रेतन तत्तत् प्रकरोति-तत्सिंहनिष्क्रीडितमिति—अर्थात् जिस प्रकार गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त माग को

पीछे लौटकर फिर देखता है, उसी प्रकार जिस तप मे अतिक्रमण किए हुए उपवास के दिनो को फिर से सेवन करके आगे बढा जाए, उसको 'सिह निष्क्रीडित तप' कहते हैं। इस तप का क्रम सिह-गमन के समान है। जैसे क्रीडा करता हुआ सिह गमन करते-करते आगे चलकर फिर पीछे को लौटता है, उसी प्रकार इस तप की पद्धति है।
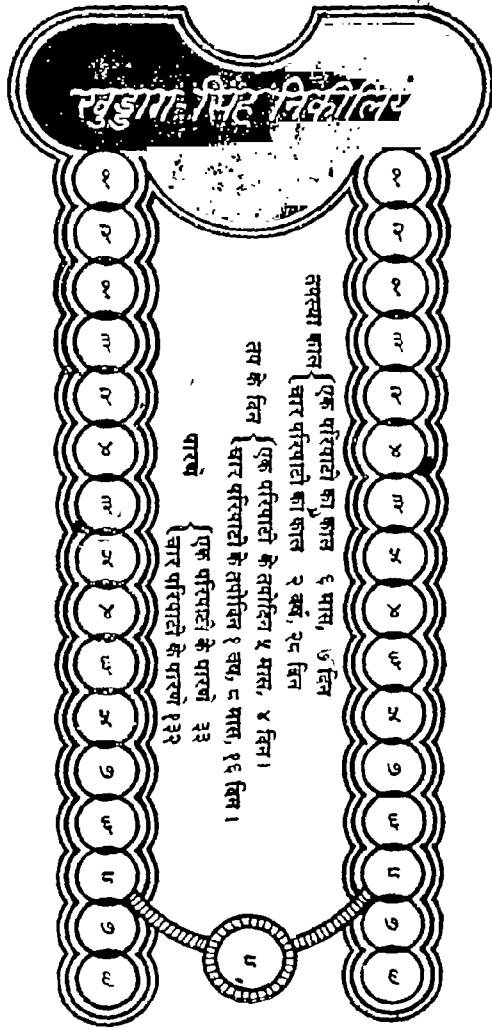
सिह-निष्क्रीडित तप दो प्रकार का होता है, एक "लघु सिह निष्क्रीडित" और दूसरा "महासिह निष्क्रीडित"। प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित महासती काली ने 'लघुसिह निष्क्रीडित तप' की आराधना की थी, इसकी रूपरेखा का परिचय पदार्थ और मूलार्थ मे कराया जा चुका है। इस तप की भी चार परिपाटिया होती हैं। एक परिपाटी में ५ महीने चार दिन लगते हैं। तथा तेतीस दिन पारणे मे जाते हैं, इस तरह पहली परिपाटी ६ महीने ७ दिन मे सम्पन्न होती है, चारो परिपाटियो मे ४ वर्ष २८ दिन होते हैं। (स्थापना-यन्त्र सामने है)

लघुसिहनिष्क्रीडित तप मे जितने दिन व्यतीत होते है उनका स्थापना यत्र बनाते हुए वृत्ति कार अभयदेवसूरि ने बडा सुन्दर विवरण दिया है। वह इस प्रकार है—

इह च एक द्वयादय उपवासाश्चतुर्थषष्ठादिशब्दवाच्या, एतस्य च रचनैव भवति एकादयो नवान्ता क्रमेण स्थाप्यन्ते पुनरपि प्रत्यागत्य नवादय एकान्तास्ततश्च द्वयाद्यन्त नवान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादयोऽष्टान्ता स्थाप्यन्ते, ततो नवाद्येकान्तप्रत्यागतपक्त्या अष्टादीना द्वयानामादौ सप्तादय एकान्ता स्थाप्यन्ते इति। स्थापना चेय—।१।२।१।३।२।४।३।५।४।६।५।७।६।
८।७।९।८।९।७।८।६।७।५।६।४।५।३।४।२।३।।१।२।१। दिन सख्या

चैवम् । इह द्वे नवकसकलने तत एका ४५ । पुन ४५ अन्त्या चाष्टसकलना ३६ अपरा च सप्त सकलना २८ तथा पारणकानि ३३ । तदेव सर्वसख्या १८७ । एते चैव षण्मासा सप्तदिनाधिका भवन्ति । एतेषु च चतुर्गुणितेषु द्वे वर्षे अष्टाविंशति दिनाधिके भवत ।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने जो कुछ लिखा है, उसका सार पूर्व प्रदर्शित लघुसिंह निष्क्रीडित तप के स्थापना-यत्र के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है।

"सव्वकामगुणिय—" इस पद की व्याख्या पीछे पृष्ठ ३९८ पर कर दी जा चुकी है। जैसे कालीदेवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध-घृतादि सभी पदार्थों का ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे मे इन रसो को छोड दिया, तीसरी परिपाटी मे लेपमात्र का भी त्याग कर दिया तथा चतुर्थ परिपाटी मे उपवासो का पारणा भी आयबिलो से किया, वैसे ही महाकाली देवी ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप मे प्रथम परिपाटी में विगयों का ग्रहण करना, दूसरी मे त्याग, तीसरी मे लेपमात्र का भी त्याग, चौथी में उपवासो का पारणा आयबिल तप से किया। तीनो महासतियो के पारणे मे गृहीत वस्तुए एक समान ही थी।

"जाव सिद्धा"—यहा पठित जाव पद निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व और रत्नावली तप की सम्पूर्ण आराधना के अनन्तर वही कुछ महासती महाकाली ने किया जो महासती सुकाली देवी ने किया था इन भावो का ससूचक है।

इस तीसरे अध्ययन मे महासती महाकाली की जीवनी वर्णित हुई है। इसका परिशीलन करने से पता चलता है कि तप की आराधना यदि दृढता एव शुद्ध भावना से की जाए तो वह जीवन का कल्याण कर देती है। तप के आगे किसी लिग का कोई प्रश्न नही है। चाहे स्त्री-पुरुष कोई भी हो जो भी कुठाली मे जीवन-स्वर्ण को ढाल लेता है तप उसीके सब मल नष्ट करके उसे सर्वथा निर्मल बना देता है। महासती चदनबाला, महासती काली, महासती सुकाली और महासती महाकाली आदि अनेको नारिया तप की आराधना करके ससार-सागर से पार हो गई तथा गजसुकुमाल, अर्जुनमाली अतिमुक्त कुमार आदि अनेको पुरुष हो गए हैं जिन्होने तप की शरण स्वीकार करके परम निर्वाण-पद को प्राप्त कर लिया।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन

अब सूत्रकार चतुर्थ अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—एवं कण्हा वि, णवर महालय सीहनिक्कीलियं तवोकम्म, जहेव खुड्डागं। णवरं चोत्तीसइम जाव नेयव्वं। तहेव ऊसारेयव्वं। एक्काए वरिस छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता। सेसं जहा कालीए, जाव सिद्धा।

छाया—एव कृष्णाऽपि नवर, महत् सिंहनिष्क्रीडित तप कर्म, यथैव क्षुल्लक, नवर चतुस्त्रिशद्यावन्नेतव्यम्। तथैव उत्सारयितव्यम्। एकस्या. (परिपाट्या. काल) वर्ष, षण्मासा अष्टादश च दिवसा चतसृणां परिपाटीनां काल षड् वर्षाणि द्वौ मासौ द्वादश च अहोरात्राणि। शेष यथा काल्या यावत् सिद्धा।

पदार्थ—एव—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार काली देवी की जीवनी है, उसी प्रकार, कण्हा वि—कृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए, णवर—विशेष इतना है कि कृष्णा देवी ने, महालय सीहनिक्कीलियतवोकम्म—महा सिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की, जहेव—जिस प्रकार, खुड्डाग—क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप किया गया है उसी प्रकार 'महा सिंहनिष्क्रीडित तप' की आराधना की गई, णवर—इतना अन्तर है कि, चोत्तीसइम—१६ उपवास, जाव—यावत्—पर्यन्त, नेयव्व—कहना चाहिए अर्थात् लघु सिंहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर नव तक करते हैं, परन्तु महा सिंहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर १६ तक किया जाता है, तहेव—उसी प्रकार अर्थात् १६ तक आगे बढे थे, उसी प्रकार, ऊसारेयव्व—पीछे लौटना चाहिए अर्थात् १६ से १५ आदि उपवास करने पडते है, एक्काए—महा सिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी का काल इस प्रकार है, वरिस छम्मासा—एक वर्ष छ महीने, अट्ठारस दिवसा—१८ दिन लगते हैं, चउण्हं—चारो परिपाटियो का काल इस प्रकार है, छ वरिसा दो मासा य बारस अहोरत्ता—६ वर्ष दो मास १२ दिन लगते है, सेस—शेष वर्णन, जहा—जिस प्रकार, कालीए—काली देवी का है उसी प्रकार कृष्णा देवी का समझना चाहिए, जाव—यावत् कृष्णा देवी ने सलेखना की आराधना करके, सिद्धा—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—जिस प्रकार महाकाली देवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार कृष्णा देवी के जीवन का वर्णन भी समझ लेना। अन्तर केवल इतना है कि महाकाली ने "लघु सिंहनिष्क्रीडित तप" की आराधना की थी और कृष्णा देवी ने "महा सिंहनिष्क्रीडित तप" की आराधना की है। लघु सिंहनिष्क्रीडित तप और महा सिंह-

निष्क्रीडित तप मे इतना भेद है कि लघु मे एक उपवास से लेकर नौ तक आगे बढते है, परन्तु महासिंहनिष्क्रीडित मे एक उपवास से चालू करके सोलह व्रतो तक किए जाते है फिर सोलह से पीछे आना पडता है, सोलह के अनन्तर पन्द्रह, इस प्रकार क्रमश नीचे उतरना होता है। महा सिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी का काल एक वर्ष छ मास और १८ दिन है। चारो परिपाटियो का समय छ वर्ष दो मास और १२ दिन होते हैं। यही तप महासती कृष्णा जी ने किया। श्री कृष्णा जी की जीवनी महासती काली देवी के समान जाननी चाहिए। अन्त मे कृष्णादेवी आर्या काली की तरह कर्म-क्षय करके सिद्ध बन गई।

व्याख्या—प्रस्तुत चतुर्थाध्ययन मे कृष्णा देवी के सयमी जीवन का उल्लेख किया गया है। ये राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की पत्नी एव चम्पानरेश महाराजा कोणिक की छोटी माता थी। इन का पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था, पुत्र-वियोग ने इन का मन ससार से विरक्त कर दिया। इन्होने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षा अगीकार की। महासती चदनबाला के नेतृत्व मे आचारांगादि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। व्रत, बेले, तेले आदि अनेकविध तप किये, एक दिन इन्होने महासती चन्दनबाला के चरणो मे महासिंहनिष्क्रीडित तप करने की इच्छा प्रकट करते हुए उन से आज्ञा प्रदान करने के लिये निवेदन किया। "जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो" ऐसा स्वीकृतिपूर्ण उत्तर पाकर कृष्णा आर्या ने 'महासिंहनिष्क्रीडित तप' आरभ कर दिया। सर्वप्रथम इन्होने उपवास किया, पारणा करके फिर बेला किया, पारणा करके उपवास किया, इसी प्रकार तेला, बेला, चौला, तेला, पचौला, चौला, छह, पाच, सात, छह, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह,

बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पाच, छे, चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला और फिर पारणा करके उपवास किया । इस प्रकार महासिंहनिष्क्रीडित तप की यह प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है ।

"एव कण्हावि"—का अर्थ है—इसी प्रकार कृष्णादेवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए। गत तृतीय अध्ययन मे महासती महाकाली के जीवन का परिचय कराया गया है। सूत्रकार कहते हैं, कि जिस प्रकार महाकाली आर्या के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णादेवी के जीवन की कल्पना करलेनी चाहिए। महाकाली की तरह कृष्णा को वैराग्य हुआ, भगवान महावीर के पास दीक्षित हुई, ग्यारह अग पढे, महासती चन्दनबाला से महासिंहनिष्क्रीडित तप नामक तप का आराधन करने के लिये आज्ञा की याचना की, आदि सभी घटनाए दोनो महासतियो की एक समान हैं। इसी समानता को सूत्रकार ने **"एवं कण्हा वि"** इन शब्दो से अभिव्यक्त किया है।

महासती महाकाली और महासती कृष्णा के सयमी जीवन मे जो अन्तर है, उसको **"णवर"** इस पद से व्यक्त किया गया है। **णवर** का अर्थ है—इतना अन्तर है । अन्तर की रूपरेखा को अभिव्यक्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

"महालय सीहणिक्कीलिय तवो कम्म जहेव खुड्डाग, णवर चोत्तीसइम जाव णेयव्व, तहेव ऊसारेयव्व"— एवा महत् सिंहनिष्क्रीडित तप कर्म करोति, यथैव क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तथैवेवमपि बोध्यम् । णवर—अय विशेष । चतुस्त्रिंश यावन्नेतव्यम्, तथैव उत्सारयितव्यम्, पश्चादनुपूर्व्याऽवतारयितव्यम् । अत्र महासिंहनिष्क्रीडिते तप कर्मणि चतुर्थादारम्य क्रमेण चतुस्त्रिंश यावद् गन्तव्यम्, पुनः पश्चादनुपूर्व्या ततश्चतुर्थ आगत्य पारणीयमिति भावः अर्थात् महासती महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की थी, परन्तु महासती कृष्णा ने 'महासिंहनिष्क्रीडित' तप का आराधन किया। सिंहनिष्क्रीडित शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ४२५ पर किया जा चुका है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। प्रस्तुत मे महत् का प्रसग है। कृष्णा महासती ने यही तप किया था। लघु और महद् दोनो मे इतना ही अन्तर है कि लघु मे एक उपवास से आरम करके ९ उपवासो तक बढते चले जाते हैं, जबकि महद् मे एक से आरभ करके १६ तक बढते हैं, जैसे १६ तक क्रमश बढते चले जाते हैं, उसी क्रम से पीछे हटते-हटते, नीचे उतरते-उतरते एक उपवास तक आ जाते हैं।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि के शब्दो मे महासिंहनिष्क्रीडित तप की व्रतसख्या इस प्रकार है—

"एव महासिंहनिष्क्रीडितमपि, णवरमेकादयः षोडशान्ता षोडशादयश्चैकान्ता स्थाप्यन्ते, ततश्च द्व्यादीनां षोडशान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादय पञ्चदशान्ता षोडशादिषु, त्वेकान्तेषु पञ्चदशादीनां द्व्यान्तानामादौ प्रत्येक चतुर्दशादय एकान्ता स्थाप्यन्ते, दिनमान त्वेवम्—इह षोडश-सकलनद्वय १३६ पञ्चदशसकलना १०५ पारणकानि ६१ सर्वाग ५५८ अर्थात् यह लघुसिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही है, परन्तु इस की व्रतसख्या एक से ले कर १६ तक जाती है। इस की प्रथम परिपाटी मे १ वर्ष ६ मास

और ८१ दिन लगते हैं। विशेष जानकारी महासिंहनिष्क्रीडित तप के यत्र से प्राप्त की जा सकती है

एक्काए—एकस्या परिपाट्या काल"—का अर्थ है—महासिंहनिष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी का काल। तथा—**चउण्ह चतसृणा परिपाटीना काल**" का अर्थ है—उक्त तप की चारो परिपाटियो का काल।

"**सेस जहा कालीए जाव सिद्धा**"—का अर्थ है—महासती कृष्णा देवी के जीवन का शेष वृत्तान्त महासती काली के समान जानना। प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध आदि सभी पदार्थों का यथेच्छ सेवन, दूसरी परिपाटी मे विगयो का परित्याग, तीसरी मे लेप का भी त्याग,चौथी परिपाटी मे आयबिल तप से पारणा किया। महासिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना समाप्त कर लेने पर महासती चदनबाला द्वारा आज्ञा प्राप्त करना, अन्नजल का परित्याग करना सलेखना की आराधना करना, अन्त मे सिद्ध पद प्राप्त करना, ये सब बातें महासती काली के समान ही समझनी चाहिये। यही समानता सूत्रकार ने "**सेस जहा कालीए जाव सिद्धा**"—इन पदो से अभिव्यक्त की है।

अध्ययन के उत्क्षेप—उपसहार की कल्पना पहले अध्ययनो की भाति कर लेनी चाहिये।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पाच, छे, चोला, पचोला, तेला, चोला, बेला, तेला, उपवास, बेला और फिर पारणा करके उपवास किया । इस प्रकार महासिंहनिष्क्रीडित तप की यह प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है ।

"एव कण्हावि"—का अर्थ है—इसी प्रकार कृष्णादेवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए। गत तृतीय अध्ययन मे महासती महाकाली के जीवन का परिचय कराया गया है। सूत्रकार कहते है, कि जिस प्रकार महाकाली आर्या के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णादेवी के जीवन की कल्पना करलेनी चाहिए। महाकाली की तरह कृष्णा को वैराग्य हुआ, भगवान महावीर के पास दीक्षित हुई, ग्यारह अग पढे, महासती चन्दनबाला से महासिंहनिष्क्रीडित तप नामक तप का आराधन करने के लिये आज्ञा की याचना की, आदि सभी घटनाए दोनो महासतियो की एक समान हैं। इसी समानता को सूत्रकार ने "एव कण्हा वि" इन शब्दो से अभिव्यक्त किया है।

महासती महाकाली और महासती कृष्णा के सयमी जीवन मे जो अन्तर है, उसको **"णवर"** इस पद से व्यक्त किया गया है। **णवर** का अर्थ है—इतना अन्तर है । अन्तर को रूपरेखा को अभिव्यक्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

"महालय सीहणिक्कीलिय तवो कम्म जहेव खुड्डाग, णवरं चोत्तीसइम जाव णेयव्व, तहेव ऊसारेयव्व"— एषा महत् सिंहनिष्क्रीडित तप·कर्म करोति, यथैव क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तथैवेवमपि बोध्यम् । णवर—अय विशेष । चतुस्त्रिंश यावन्नेतव्यम्, तथैव उत्सारयितव्यम्, पश्चादनुपूर्व्याऽवतारयितव्यम् । अत्र महासिंहनिष्क्रीडिते तप कर्मणि चतुर्थादारभ्य क्रमेण चतुस्त्रिंश यावद् गन्तव्यम्, पुन· पश्चादनुपूर्व्या ततश्चतुर्थ आगत्य पारणीयमिति भाव अर्थात् महासती महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की थी, परन्तु महासती कृष्णा ने 'महासिंहनिष्क्रीडित' तप का आराधन किया। सिंहनिष्क्रीडित शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ४२५ पर किया जा चुका है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। प्रस्तुत मे महत् का प्रसग है। कृष्णा महासती ने यही तप किया था। लघु और महद् दोनो मे इतना ही अन्तर है कि लघु मे एक उपवास से आरभ करके ९ उपवासो तक बढते चले जाते हैं, जबकि महद् मे एक से आरभ करके १६ तक बढते हैं, जैसे १६ तक क्रमश बढते चले जाते हैं, उसी क्रम से पीछे हटते-हटते, नीचे उतरते-उतरते एक उपवास तक आ जाते हैं।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि के शब्दो मे महासिंहनिष्क्रीडित तप की व्रतसख्या इस प्रकार है—

"एव महासिंहनिष्क्रीडितमपि, णवरमेकादय षोडशान्ता. षोडशादयश्चैकान्ता स्थाप्यन्ते, ततश्च द्व्यादीना षोडशान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादय पञ्चदशान्ता षोडशादिषु, त्वेकान्तेषु पञ्चदशादीनां द्व्यान्तानामादौ प्रत्येक चतुर्दशादय एकान्ता स्थाप्यन्ते, दिनमान त्वेवम्—इह षोडश-सकलनद्वयं १३६ पञ्चदशसकलना १०५ पारणकानि ६१ सर्वाग ५५८ अर्थात् यह लघुसिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही है, परन्तु इस की व्रतसख्या एक से ले कर १६ तक जाती है। इस की प्रथम परिपाटी में १ वर्ष ६ मास

और ८१ दिन लगते हैं। विशेष जानकारी महासिंहनिष्क्रीडित तप के यन्त्र से प्राप्त की जा सकती है

एक्काए—एकस्या परिपाट्या काल"—का अर्थ है—महासिंहनिष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी का काल। तथा—**चउण्ह चतसृणा परिपाटीना काल**" का अर्थ है—उक्त तप की चारो परिपाटियों का काल।

"सेस जहा कालीए जाव सिद्धा"—का अर्थ है—महासती कृष्णा देवी के जीवन का शेष वृत्तान्त महासती काली के समान जानना। प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध आदि सभी पदार्थों का यथेच्छ सेवन, दूसरी परिपाटी मे विगयो का परित्याग, तीसरी मे लेप का भी त्याग, चौथी परिपाटी मे आयबिल तप से पारणा किया। महासिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना समाप्त कर लेने पर महासती चदनबाला द्वारा आज्ञा प्राप्त करना, अन्नजल का परित्याग करना सलेखना की आराधना करना, अन्त मे सिद्ध पद प्राप्त करना, ये सब बातें महासती काली के समान ही समझनी चाहिये। यही समानता सूत्रकार ने **"सेस जहा कालीए जाव सिद्धा"**—इन पदो से अभिव्यक्त की है।

अध्ययन के उत्क्षेप—उपसहार की कल्पना पहले अध्ययनो की भाति कर लेनी चाहिये।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पाच, छे, चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला और फिर पारणा करके उपवास किया । इस प्रकार महासिंहनिष्क्रीडित तप की यह प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है ।

"एव कण्हावि"—का अर्थ है—इसी प्रकार कृष्णादेवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए। गत तृतीय अध्ययन मे महासती महाकाली के जीवन का परिचय कराया गया है। सूत्रकार कहते हैं, कि जिस प्रकार महाकाली आर्या के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णादेवी के जीवन की कल्पना करलेनी चाहिए। महाकाली की तरह कृष्णा को वैराग्य हुआ, भगवान महावीर के पास दीक्षित हुई, ग्यारह अग पढे, महासती चन्दनबाला से महासिंहनिष्क्रीडित तप नामक तप का आराधन करने के लिये आज्ञा की याचना की, आदि सभी घटनाए दोनो महासतियो की एक समान हैं। इसी समानता को सूत्रकार ने "एव कण्हा वि" इन शब्दो से अभिव्यक्त किया है।

महासती महाकाली और महासती कृष्णा के सयमी जीवन मे जो अन्तर है, उसको "णवर" इस पद से व्यक्त किया गया है। **णवर** का अर्थ है—इतना अन्तर है । अन्तर की रूपरेखा को अभिव्यक्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

"महालय सीहणिक्कीलिय तवो कम्म जहेव खुड्डाग, णवर चोत्तीसइम जाव णेयव्व, तहेव ऊसारेयव्व"— एषा महत् सिंहनिष्क्रीडित तप कर्म करोति, यथैव क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तथैवेवमपि बोध्यम् । णवर—अय विशेष । चतुस्त्रिंश यावन्नेतव्यम्, तथैव उत्सारयितव्यम्, पश्चादनुपूर्व्याऽवतारयितव्यम् । अत्र महासिंहनिष्क्रीडिते तप कर्मणि चतुर्थादारभ्य क्रमेण चतुस्त्रिंश यावद् गन्तव्यम्, पुन पश्चादनुपूर्व्या ततश्चतुर्थ आगत्य पारणीयमिति भाव अर्थात् महासती महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की थी, परन्तु महासती कृष्णा ने 'महासिंहनिष्क्रीडित' तप का आराधन किया। सिंहनिष्क्रीडित शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ४२५ पर किया जा चुका है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। प्रस्तुत मे महत् का प्रसग है। कृष्णा महासती ने यही तप किया था। लघु और महद् दोनो मे इतना ही अन्तर है कि लघु मे एक उपवास से आरभ करके ९ उपवासो तक बढते चले जाते हैं, जबकि महद् मे एक से आरभ करके १६ तक बढते हैं, जैसे १६ तक क्रमश बढते चले जाते हैं, उसी क्रम से पीछे हटते-हटते, नीचे उतरते-उतरते एक उपवास तक आ जाते हैं।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि के शब्दो मे महासिंहनिष्क्रीडित तप की व्रतसख्या इस प्रकार है—

"एव महासिंहनिष्क्रीडितमपि, णवरमेकादय षोडशान्ता षोडशादयश्चैकान्ता स्थाप्यन्ते, ततश्च द्व्यादीना षोडशान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादय पञ्चदशान्ता षोडशादिषु, त्वेकान्तेषु पञ्चदशादीनां द्व्यान्तानामादौ प्रत्येक चतुर्दशादय एकान्ता स्थाप्यन्ते, दिनमान त्वेवम्—इह षोडश-सकलनद्वय १३६ पञ्चदशसकलना १०५ पारणकानि ६१ सर्वाग ५५८ अर्थात् यह लघुसिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही है, परन्तु इस की व्रतसख्या एक से ले कर १६ तक जाती है। इस की प्रथम परिपाटी मे १ वर्ष ६ मास

दो-दो दत्तिया, **दो-दो पाणगस्स**—पानी की दो-दो दत्तिया, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **तच्चे सत्तए** तीसरे सप्ताह मे, **तिण्णि भोयणस्स**—तीन-तीन दत्ति भोजन की, **तिण्णि पाणगस्स**—तीन तीन पानी की, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **चउत्थे**—चौथे सप्ताह मे चार-चार दत्ति पानी और भोजन की, **पचमे**—पाचवें सप्ताह मे पाच-पाच भोजन और पानी की दत्ति, **छट्ठे छ**—छठे सप्ताह मे छ-छ भोजन पानी की दत्ति, **सत्तमे**—सातवे सप्ताह में सात-सात भोजन पानी की दत्ति, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **सत्तसत्तमिया**—सातवी सप्तमिका नामक, **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा की, **एगूणपण्णाए**—एकोनपचाशत, एक-कम पचास, **राइदिएहिं**—दिन रातो से, **य**—और, **एगेण छन्नउएण—भिक्खासएण**—एक सौ छियानवें भिक्षाओ से, **अहासुत्त**—सूत्रानुसार, **जाव**—यावत्, सातवी सप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा की, **आराहेत्ता**—आराधना करके, **जेणेव अज्जचदणा**—जहा पर आर्यचन्दना नामक महासती, **अज्जा**—आर्या थी, **तेणेव, उवागया**—वहा पर आई, **अज्जचदण अज्ज**—आर्य चन्दनाआर्या को, **वदइ, णमसइ**—वन्दना नमस्कार करती है, **वदित्ता, णमसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करके, **एवं**—इस प्रकार, **वयासी**—निवेदन करने लगी, **अज्जाओ**—हे आर्ये, **तुब्भेहिं**—आप से, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अट्ठट्ठमिय**—अष्ट अष्टमिका नामक (जिस में आठ सप्ताह लगें), **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा को, **उवसपज्जित्ताण विहरित्तए**—धारण करके, विचरण करना, **इच्छामि**—चाहती हू' **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ है, **देवाणुप्पिए** !—हे देवानुप्रिये। (चन्दना आर्या ने प्रत्युत्तर दिया), **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **मा पडिबध करेह**—शुभकार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मूलार्थ—जिस प्रकार महासती कृष्णादेवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सुकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिये। इसमे इतना अन्तर है कि सुकृष्णा ने सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना की थी। सप्त-सप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति (जो भिक्षा मे एक बार दान दिया गया हो) भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह मे दो दत्तिए पानी की और दो दत्तिए भोजन की ग्रहण की जाती है और तीसरे सप्ताह मे तीन-तीन दत्तिए, चौथे सप्ताह मे चार-चार दत्तिए, पाचवे सप्ताह मे पाच-पाँच दत्तिए, छठे सप्ताह मे छ-छ दत्तिए, सातवे सप्ताह मे सात-सात दत्तिए भोजन और पानी की ग्रहण की जाती हैं।

इस प्रकार इस सप्तसप्तमिका नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना मे ४९ दिन रात लगते हैं और इस मे १९६ भिक्षाए ग्रहण की जाती है। महासती सुकृष्णा सूत्रोक्त

पंचम अध्ययन

इस के अनन्तर पाचवे अध्ययन का स्थान आता है, अत अब सूत्रकार पञ्चम अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—एव सुकण्हा वि, णवर सत्तसत्तमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ एक्केक्क पाणगस्स। दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणगस्स पडिगाहेइ, तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स, तिण्णि पाणगस्स। चउत्थे चउ, पचमे पच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए, सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ सत्त पाणगस्स। एव खलु सत्तसत्तमिय भिक्खुपडिम एगूणपण्णासाए राइदिएहिं एगेण य छन्नउएण भिक्खासएण अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागया, अज्जचंदण अज्ज वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि ण अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताण विहरित्तए। अहासुह देवाणुप्पिए!, मा पडिबध करेह।

छाया—एव सुकृष्णाऽपि। णवर सप्तसप्तमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसपद्य विहरति। प्रथमे सप्तके एकैका भोजनस्य दत्ति प्रतिगृह्लाति, एकैकां पानकस्य। द्वितीये सप्तके द्वे-द्वे भोजनस्य द्वे द्वे पानकस्य (दत्ती) प्रतिगृह्लाति। तृतीये सप्तके तिस्रो भोजनस्य, तिस्र पानकस्य, चतुर्थे चतस्र। पञ्चमे पञ्च। षष्ठे षट्। सप्तमे सप्तके सप्त दत्तय भोजनस्य गृह्लाति। सप्त पानकस्य। एव खलु सप्त सप्तमिका भिक्षुप्रतिमामेकोनपञ्चाशद्भि· रात्रिन्दिवै एकेन च षण्णवत्यधिकेन भिक्षाशतेन यथासूत्र यावदाराध्य यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैवोपागता आर्यचन्दनामार्या वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्—

इच्छामि खलु हे आर्या! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमामुपसपद्य विहर्तुम? यथासुख, देवानुप्रिये! मा प्रतिबध कुरु।

पदार्थ—एव—इसी प्रकार, जिस प्रकार कृष्णा आर्या का जीवन वर्णन किया है, उसी प्रकार **सुकण्हा वि**—सुकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन भी जानना, नवर—इतना अन्तर है कि, **सत्तसत्तमिय**—सप्तसप्तमिका (जिस मे सात सप्ताह लगे), **भिक्खुपडिम**—भिक्षुप्रतिमा (भिक्षु की प्रतिज्ञा-विशेष) को, **उवसपज्जित्ताण विहरइ**—धारण करके विहरण करती है, **पढमे सत्तए**—पहले सप्तक (सप्ताह) मे, **भोयणस्य**—भोजन की, **एक्केक्क**—एक-एक, **दत्ति**—दत्ति (जिस मे एक बार दान दिया जाये वह, या अविच्छिन्न-रूप से जितनी भिक्षा दी जाए वह,) को, **पाणगस्स**—पानी की, **गिण्हइ**—ग्रहण करती है, **दोच्चे सत्तए**—दूसरे सप्ताह मे, **भोयणस्स**—भोजन की

दो-दो दत्तिया, **दो-दो पाणगस्स**—पानी की दो-दो दत्तिया, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **तच्चे सत्तए** तीसरे सप्ताह मे, **तिण्णि भोयणस्स**—तीन-तीन दत्ति भोजन की, **तिण्णि पाणगस्स**—तीन तीन पानी की, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **चउत्थे**—चौथे सप्ताह मे चार-चार दत्ति पानी और भोजन की, **पचमे**—पाचवें सप्ताह मे पाच-पाच भोजन और पानी की दत्ति, **छट्ठे छ**—छठे सप्ताह मे छ-छ भोजन पानी की दत्ति, **सत्तमे**—सातवें सप्ताह में सात-सात भोजन पानी की दत्ति, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **सत्तसत्तमिया**—सातवी सप्तमिका नामक, **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा की, **एगूणपण्णाए**—एकोनपचाशत, एक-कम पचास, **राइदिएहि**—दिन रातो से, **य**—और, **एगेण छन्नउएण—भिक्खासएण**—एक सौ छियानवे भिक्षाओ से, **अहासुत्त**—सूत्रानुसार, **जाव**—यावत्, सातवी सप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा की, **आराहेत्ता**—आराधना करके, **जेणेव अज्जचदणा**—जहा पर आर्यचन्दना नामक महासती, **अज्जा**—आर्या थी; **तेणेव, उवागया**—वहा पर आई, **अज्जचदण अज्ज**—आर्य चन्दनाआर्या को, **वंदइ, णमसइ**—वन्दना नमस्कार करती है, **वदित्ता, णमसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करके, **एव**—इस प्रकार, **वयासी**—निवेदन करने लगी, **अज्जाओ**—हे आर्ये, **तुब्भेहि**—आप से, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अट्ठट्ठमिय**—अष्ट अष्टमिका नामक (जिस मे आठ सप्ताह लगे), **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा को, **उवसपज्जित्ताण विहरित्तए**—धारण करके, विचरण करना, **इच्छामि**—चाहती हू', **ण**—वाक्य सौन्दर्यार्थ है, **देवाणुप्पिए!**—हे देवानुप्रिये। (चन्दना आर्या ने प्रत्युत्तर दिया), **अहासुह**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, **मा पडिबध करेह**—शुभकार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मूलार्थ—जिस प्रकार महासती कृष्णादेवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सुकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिये। इसमे इतना अन्तर है कि सुकृष्णा ने सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना की थी। सप्त-सप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति (जो भिक्षा मे एक बार दान दिया गया हो) भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह मे दो दत्तिए पानी की और दो दत्तिए भोजन की ग्रहण की जाती हैं और तीसरे सप्ताह मे तीन-तीन दत्तिए, चौथे सप्ताह मे चार-चार दत्तिए, पाचवें सप्ताह मे पाच-पाँच दत्तिए, छठे सप्ताह मे छ-छ दत्तिए, सातवे सप्ताह मे सात-सात दत्तिए भोजन और पानी की ग्रहण की जाती हैं।

इस प्रकार इस सप्तसप्तमिका नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना में ४९ दिन रात लगते हैं और इस मे १९६ भिक्षाए ग्रहण की जाती है। महासती सुकृष्णा सूत्रोक्त

विधि के अनुसार सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती आर्य चदना (चन्दनबाला) के पास आती है। महासती को वदन एव नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करती है—

हे आर्ये ! यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करे तो मैं अष्टअष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना करना चाहती हू। आर्या सुकृष्णा की इस विनती को सुन कर आर्या आर्यचन्दना कहने लगी—'भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, किन्तु एक बात का ध्यान रखो—शुभ कार्य मे प्रमाद करना उचित नही।'

व्याख्या—प्रस्तुत पाचवें अध्ययन मे सुकृष्णा देवी के जीवन का परिचय दिया गया है। यह भी काली, सुकाली, महाकाली की तरह राजगृह-नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी चम्पानरेश कोणिक की छोटी माता थी। इनका भी पुत्र युद्ध मे मारा गया था, पुत्र-वियोग ने इनके मनको ससार से उपराम कर दिया, इन्होंने मगलमय श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षा ग्रहण कर ली। महासती आर्या चन्दना की देख-रेख मे इन्होने ग्यारह अग पढे। व्रत वेले आदि अनेकविध तपस्याए की। एक बार इन्होने महासती आर्या चन्दना से निवेदन किया कि "श्रद्धेय गुरुणी जी ! मै सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करना चाहती हू।'

जैनाचार्यों ने भिक्षु की १२ प्रतिमाओ का विधान किया है। प्रतिमा प्रतिज्ञा-विशेष को कहते हैं। इस तरह साधु के प्रतिज्ञा-विशेष या अभिग्रह विशेष को भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। एक मास से लेकर सात मास तक सात प्रतिमाए होती है, आठवी, नववी और दसवी ये तीनो प्रतिमाए सात-सात दिनों की होती हैं। ग्यारहवी एक दिन रात की और बारहवी भिक्षुप्रतिमा केवल एक रात्रि की होती है। प्रतिमाधारी साधक अपनी शारीरिक ममता को तथा शारीरिक महत्त्व को छोड देता है। दीनता प्रकट न करके देव-तिर्यञ्च-मनुष्य सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करता है। अज्ञातकुल से गोचरी करता है। गृहस्थ के घर मनुष्य-पशु-श्रमण-ब्राह्मण और भिखारी आदि भिक्षार्थ खडे हो तो 'दान मे अन्तराय न पड जाये' इस विचार से उनके घर नही जाता है। प्रथम प्रतिमा के धारक साधक एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेते हैं।

साधु या साध्वी के पात्र मे दाता द्वारा दिये जानेवाले अन्न और पानी की जब तक धारा अखण्डित बनी रहे तब तक जो आहार पानी पड जाता है उसका नाम एक दत्ति है, धारा टूट जाने के अनन्तर जो आहार-पानी पात्र मे पडता है, वह पहली दत्ति के अन्तर्गत नही होता, वह उससे बाहिर समझा जाता हैं।

प्रथम प्रतिमा का समय एक मास होता है। इसी तरह दूसरी, तीसरी, चौथी, पाचवी, छठी, सातवी इन प्रतिमाओ मे क्रमश दो तीन चार पाच छ और सात पानी की तथा सात भोजन की दत्तिया ग्रहण की जाती हैं। प्रत्येक प्रतिमा का समय एक मास है। केवल दत्तियोकी वृद्धि के कारण ही ये क्रमश द्वैमासिकी, त्रैमासिकी, चतुर्थमासिकी पचमासिकी षण्मासिकी, और सप्तमासिकी कही जाती हैं। आठवी प्रतिमा का समय एक दिन-रात है। इस मे एकान्तर चौविहार उपवास किया जाता है।

इस मे आहार-पानी की दत्ति की मर्यादा नही होती। नवमी तथा दसवी प्रतिमा का समय भी सात दिन-रात का है। नवमी मे चौविहार बेले-बेले पारणा किया जाता है। दसवी प्रतिमा मे तेले-तेले, पारणा करना पडता है। ग्याहवी प्रतिमा का समय एक रात है। चौविहार बेला करके इसका आराधन किया जाता है। बारहवी प्रतिमा का समय एक रात है, इसका आरम्भ चौविहार तेले से किया जाता है। यह नगर के बाहिर श्मशान आदि एकान्त स्थान पर करनी होती है।

अन्तगडसूत्रीय अष्टमवर्ग के प्रस्तुत पाँचवें अध्ययन मे वर्णित महासती सुकृष्णा के जीवन का परिशीलन करने से मालूम होता है कि इन्होने आर्या चन्दना से सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन करने के लिये आज्ञा की जो याचना की है इसका उक्त बारह प्रतिमाओ से कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि सातवी भिक्षुप्रतिमा का समय एक मास है और इसमे सात दत्तियें भोजन की और सात दत्तिए पानी की ग्रहण की जाती है, परन्तु इस प्रतिमा के विधान के साथ प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा का कोई मेल नही है। इसका समय ४९ दिन रात्रि का है। यह सात सप्ताहो मे पूर्ण होती है (७×७=४९) प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है दूसरे मे दो-दो, तीसरे मे तीन-तीन, चौथे-पाचवे-छट्ठे सातवे मे एक-एक की वृद्धि क्रमश करते हुए सातवे तक सात-सात दत्तिए अन्न-पानी की ग्रहण की जाती हैं। इस सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा मे समस्त दत्तियो की सख्या १९६ होती है अत इस भिक्षु प्रतिमा का उक्त बारह भिक्षुप्रतिमाओ के साथ कोई सम्बन्ध नही है।

कहा जा चुका है कि आर्या सुकृष्णा ने आर्या चन्दना से सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा के आराधनार्थ आज्ञा देने के लिये निवेदन किया था। अपनी विनीत शिष्या आर्या सुकृष्णा की विनती सुनकर आर्या चन्दना ने सहर्ष स्वीकृति देते हुए कहा "भद्रे! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, परन्तु शुभ कार्य मे प्रमाद मत करो।" आज्ञा मिलते ही आर्या सुकृष्णा ने सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन करना आरभ कर दिया।

सूत्रकार ने सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा की रूप रेखा का निर्देश करते हुए कहा है कि इस को सात सप्ताहो में बाटा जाता है। प्रथम सप्तक मे अन्न जल की एक-एक दत्ति दूसरे मे दो-दो, तीसरे मे तीन-तीन, चौथे मे
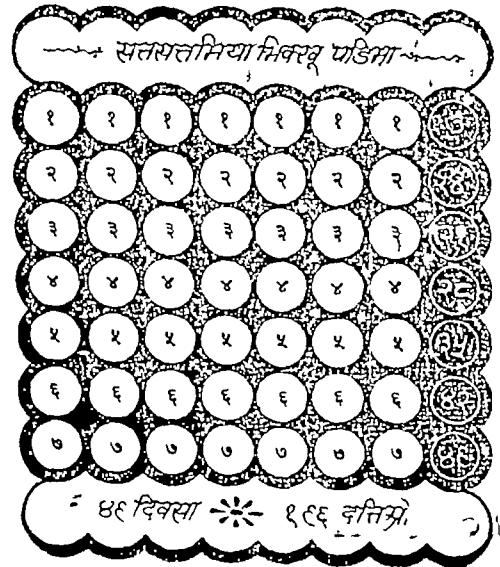
चार-चार पांचवे मे पाच-पाच छठे मे छः-छ और सातवें सप्तक मे अन्न जल की सात-सात दत्तियो का सेवन किया जाता है, पूर्व प्रदर्शित सप्तसप्तमिका यत्र से इसे भली भांति समझा जा सकता है।

सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की सम्यग् आराधना के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने अपनी गुरुणी श्रद्धेय आर्या चन्दना जी की सेवा मे उपस्थित होकर वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करने के बाद हाथ जोड कर निवेदन करने लगी कि "हे पूज्य गुरुणी जी ! अगर आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं अब "अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करना चाहती हू।

अपनी विनीत तथा आज्ञाकारिणी शिष्या की विनती सुनकर आर्या चन्दना ने कहा—"हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, मगर शुभकार्यों मे विलम्ब नही होना चाहिए।

"एं वसुकण्हा वि"—का अर्थ है—इसी प्रकार सुकृष्णा का जीवन वर्णन भी समझ लेगा। जिस प्रकार पीछे काली, महाकाली आदि महासतियो की दीक्षा, विद्या-प्राप्ति आदि का उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार सुकृष्णा का भी जान लेना चाहिए। इनमे जो अन्तर है सूत्रकार ने **"णवर सत्तसत्तमिय भिक्खुपडिम"**—आदि पदो द्वारा उसका भी निर्देश कर दिया है। सूत्रकार कहते हैं कि अन्तर केवल इतना है कि सुकृष्णा देवी ने सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था। सप्तसप्तमिका का अर्थ है—जिस मे सात सप्ताह लगें। भिक्षु प्रतिमा का अर्थ है—प्रतिज्ञा-विशेष।

"एगेण य छन्नउएणं भिक्खासएण"—**एकेन च षण्णवत्यधिकेन भिक्षाशतेन**—का अर्थ है—१९६ भिक्षाएं। **"अहासुत्त जाव आराहेत्ता'**— यहा पठित जाव पद अन्य स्थान पर पढ़े अवशिष्ट सूत्रपाठ का ससूचक है।

"अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिम"—का अर्थ है—अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा। यह भिक्षु की एक प्रतिज्ञा-विशेष है। इस प्रतिज्ञा-विशेष मे प्रथम अष्टक के प्रत्येक दिन अन्न-जल की एक एक दत्ति ग्रहण की जाती है। दूसरे अष्टक के प्रत्येक दिन अन्न-जल की दो-दो दत्तियें ग्रहण की जाती हैं। इसी प्रकार आठवें अष्टक मे अन्न-जल की आठ-आठ दत्तियो का ग्रहण होता है।

प्रस्तुत सूत्र में कहा जा चुका है कि सुकृष्णा आर्या ने अष्टअष्टमिका भिक्षु प्रतिमा का आराधन करने के लिये अपनी गुरुणी महासती चदना से आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण सा सुकण्हा अज्जा अज्जचदणाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठ-अट्ठमिय भिक्खुपडिमं उवसपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिग्गाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स दत्ति जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्ति पडिग्गाहेइ, अट्ठट्ठ पाणगस्स।

एव खलु अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्त जाव आराहित्ता नवनवमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताण विहरइ ।

छाया—तत सा सुकृष्णा आर्या चदनया अभ्यनुज्ञाता सती अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा-मुपसम्पाद्य विहरति । प्रथमेऽष्टके एकैका भोजनस्य दत्ति प्रतिगृह्णाति, एकैका पानकस्य दत्ति यावद-ष्टमेऽष्टके अष्टौ-अष्टौ भोजनस्य दत्ती प्रतिगृह्णाति, अष्टौ-अष्टौ पानकस्य (दत्ती स्वीकरोति) ।

एव खलु अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चतुष्षष्टिभि रात्रिदिवसै द्वाभ्या भिक्षाष्टकाभ्यामा-राध्य नव-नवमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति ।

पदार्थ—**तएण**—उस के अनन्तर, **सा सुकण्हा**—वह सुकृष्णा, **अज्जा**—आर्या साध्वी, **अज्जचदणाए**—आर्या चन्दना के द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अट्ठअट्ठ-मिय**—अष्ट-अष्टमिका नामक (जिसकी आराधना मे आठ अठ वारे लगें), **भिक्खुपडिम**—भिक्षु-प्रतिमा—प्रतिज्ञा विशेष को, **उवसपज्जित्ताण विहरइ**—धारण करके विचरण करने लगी, **पढमे अट्ठए**—प्रथम अष्टक अर्थात् आठ दिनो के समय में, **एक्केक्क भोयणस्स**—एक-एक भोजन की, **दत्ति**—दत्ति अर्थात् भोजन की अखण्डित धारा को, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **एक्केक्क पाणगस्स** एक-एक पानी की, **दत्ति**—दात को ग्रहण करती है, **जाव**—यावत्—दूसरे मे दो दो, तीसरे मे तीन-तीन, चौथे मे चार-चार, पाचवे मे पाच-पाँच, छट्ठे मे छ-छ सातवें में सात-सात अन्न-पानी की दत्तिया ग्रहण कीं, **अट्ठमे अट्ठए**—आठवें अष्टक में, **अट्ठट्ठ भोयणस्स**—आठ-आठ भोजन की, **दत्ति**—दत्तियो को, **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है, **अट्ठट्ठ पाणगस्स**—आठ दत्तिया पानी की भी ग्रहण करती है ।

एव खलु—इस प्रकार, निश्चय ही, **अट्ठट्ठमिय**—अष्ट-अष्टमिका नामक, **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा को, **चउसट्ठीए**—६४, **राइदिएहिं**—दिन रातो मे, **दोहिं अट्ठासीएहिं भिक्खा-सएहिं**—दो सौ अट्ठासी भिक्षाओं का, **अहासुत्त**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार, **जाव**—यावत्, **आराहेत्ता**—आराधन करके, **नवनवमिय**—नवनवमिका (जिसकी आराधना मे नव नवक ६ दिनो का समूह है), **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा—प्रतिज्ञा विशेष—तपोविशेष को, **उवसपज्जित्ताण विहरइ**—धारण करके विचरण करने लगी ।

मूलार्थ—महासती आर्या चदना से आज्ञा प्राप्त होने पर आर्या सुकृष्णा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षु प्रतिमा को धारण कर के समय व्यतीत करने लगी । अष्ट अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनो मे महासती सुकृष्णा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की, दूसरे अष्टक मे अन्न-पानी की दो-दो दत्ति ली । इसी प्रकार क्रम से

तीसरे मे तीन-तीन चौथे मे चार-चार, पाचवे मे पाच-पाच, छट्ठे मे छ-छ, सातवे मे सात-सात और आठवे मे आठ-आठ अन्न-जल की दत्तिया ग्रहण की। इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना मे ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाए ग्रहण की गई। इस भिक्षु-प्रतिमा की सूत्रोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने नवनवमिका नामक भिक्षु-प्रतिमका आराधन आरम्भ कर दिया।

व्याख्या—महासती सुकृष्णा ने जिस प्रकार सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था, उसी प्रकार उन्होने अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया। सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा मे दत्तियो की सख्या १९६ थी और अष्टअष्टमिका मे दत्तियो की सख्या २८८ है। पहली मे ४९ और दूसरी मे ६४ दिन लगते है। इन प्रतिमाओ का आराधन साधारण कार्य नही है। विशिष्ट उत्साही तथा धैर्यवान् व्यक्ति ही इनका आराधन कर सकता है, परन्तु जो इस तपोमार्ग मे प्रवृत्त हो जाता है, वह निश्चय ही शुद्ध होकर परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने मे सफल हो जाता है।

अट्ठअट्ठमिया भिक्खू-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	८
२	२	२	२	२	२	२	२	१६
३	३	३	३	३	३	३	३	२४
४	४	४	४	४	४	४	४	३२
५	५	५	५	५	५	५	५	४०
६	६	६	६	६	६	६	६	४८
७	७	७	७	७	७	७	७	५६
८	८	८	८	८	८	८	८	६४

६४ दिवसा ❀ २८८ दत्तिओ

"अट्ठ-अट्ठमिय भिक्खुपडिम"—का अर्थ है—अष्टअष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा। भिक्षु को जिस प्रतिमा—प्रतिज्ञा-विशेष या तपोविशेष मे आठ-अष्टक अर्थात् अठवारे लगें उसे अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमा मे कितने दिन लगते हैं? इसमे कितनी दत्तिया ग्रहण की जाती हैं? इन सब प्रश्नो का समाधान अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा के ऊपर प्रदर्शित यत्र द्वारा स्पष्टतया जाना जा सकता है।

महासती सुकृष्णा ने नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन आरभ कर दिया। परन्तु यहा प्रश्न उपस्थित होता है कि नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा क्या है? इसकी क्या रूप रेखा है? अब सूत्रकार इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं—

मूल—पढमे नवए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्क पाणगस्स, जाव नवमे नवए नवदत्ति भोयणस्स पडिगाहेइ, नव पाणगस्स। एव खलु नवनवमियं भिक्खुपडिम एकासीइ राइदिएहि चउहि पचोत्तरेहि भिक्खासएहि अहासुत्त जाव आराहित्ता दसदसमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताण विहरइ।

पढमे दसए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्क पाणगस्स जाव दसमे-दसए दस-दस भोयणस्स, दस-दस-पाणगस्स। एव खलु एय दसदसमिय भिक्खुपडिम एक्केण राइंदियसएण, अद्धछट्ठेहि भिक्खासएहि अहासुत्त जाव आराहेइ, आराहित्ता बहूहि चउत्थ जाव मासद्धमासविविहतवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणी विहरइ। तए ण सा कण्हा अज्जा तेण ओरालेण जाव सिद्धा। निक्खेवओ।

छाया—पढमे नवके एकैकां भोजनस्य दत्ति प्रतिगृह्णाति, एकैका पानकस्य, यावद् नवमे नवके नवदत्ती भोजनस्य प्रतिगृह्णाति नव पानकस्य। एव खलु नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा एकाशीतिभि रात्रिन्दिवै, चतुर्भि पञ्चोत्तरै भिक्षाशतै, यथा सूत्र यावदाराध्य दशदशमिका भिक्षुप्रतिमामुपसपद्य विहरति।

प्रथमे दशके एकैकां भोजनस्य दत्ति प्रतिगृह्णाति, एकैका पानकस्य, यावद् दशमे दशके दश दश भोजनस्य, दश-दश पानकस्य। एव खलु एता दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एकेन रात्रिन्दिवशतेन। अर्धषष्ठै भिक्षाशतै यथासूत्र यावदाराधयति, आराध्य चतुर्थ यावद् मासार्द्धमासविविधतप कर्मभि आत्मान भावयन्ती विहरति। तत सा सुकृष्णा आर्या तेनोदारेण यावत् सिद्धा। निक्षेप।

पदार्थ—पढमे—पहले, नवए—नवक (नौ दिनो के समय) मे, एक्केक्क—एक-एक, भोयणस्य—भोजन अर्थात् अन्न की, दत्ति—दत्ति—भोजन की अखण्डित धारा को, पडिगाहेइ—ग्रहण करती है, एक्केक्क—एक-एक, पाणगस्स—पानी की दत्ति ग्रहण करती है' जाव—यावत्, नवमे—नौवें, नवए—नवक में, नव—नौ, दत्ति—दत्तिए, भोयणस्स—भोजन की, पडिगाहेइ—ग्रहण करती है और, नवनव—नौ नौ, पाणगस्स—पानी की दत्तियें ग्रहण करती है, एव—इस प्रकार, खलु—निश्चय ही, नवनवमिय भिक्खुपडिम—नव नवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा, एकासीइ—इक्कासी, राइदिएहि—दिन रातो मे सम्पन्न होती है, चउहि पचोत्तरेहि—पांच ऊपर चार, भिक्खासएहि—सौ भिक्षाओ के द्वारा, अहासुत्त—सूत्रोक्त विधि के अनुसार जाव—यावत्, आराहित्ता—आराधना करके, दसदसमिय—दशदशमिका (जिस की आराधना मे दस दशको का समय लगता है), भिक्खुपडिम—भिक्षु-प्रतिमा को, उवसपज्जित्ता ण—धारण करके, विहरइ—विचरण करने लगी।

पढमे—प्रथम, दसए—दशक मे; एक्केक्क—एक-एक; भोयणस्स—भोजन की, दत्ति—दत्ति; पडिगाहेइ—ग्रहण करती है, एक्केक्क—एक-एक, पाणगस्स—पानी की दत्ति ग्रहण

करती है, **जाव**—यावत्, **दसमे**—दसवे, वसए—दशक मे, **दस-दस**—दस दस दत्तिये, **भोयणस्स** भोजन की और, **दस-दस**—दस-दस दत्तिये, **पाणगस्स**—पानी की ग्रहण करती है, **एव**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय ही, **एय**—इस, **दसदसमिय**—दशदशमिका, **भिक्खुपडिम**—भिक्षु प्रतिमा को, **एक्केण राइदियसएण**—एक सौ रात्रि दिनो मे आराधित करती है तथा, **अद्धछट्ठेहिं**—साढे पाच, **भिक्खासएहिं**—सौ भिक्षाओ के द्वारा, **अहासुत्त**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार, **जाव**—यावत् दश दशमिका, भिक्षुप्रतिमा की, **आराहेइ**—आराधना करती है, **आराहित्ता**—आराधना करके, **बहूहिं**—अनेक, **चउत्थ**—चतुर्थ-उपवास, **जाव**—यावत् बेले तेले तथा, **मासद्धमास**—१५ दिनो का उपवास, एक महीने का उपवास, **विविहतवोकम्मेहिं**—अनेक प्रकार के तपो द्वारा, **अप्पाण**—अपनी आत्मा को, **भावेमाणी**—भावित करती हुई—तपोमय बनाती हुई, **विहरइ**—विहरण करने लगी—समय बिताने लगी, **तए ण**—उसके अनन्तर, **सा सुकण्हा**—वह सुकृष्णा, **अज्जा** आर्या साध्वी, **तेण**—उस, **ओरालेणं**—प्रधान, **जाव**—यावत् तपस्या से अत्यधिक दुर्बल हो गई अतिम समय मे सलेखना आदि द्वारा कर्मों का नाश करके, **सिद्धा**—सिद्ध बन गई, **निक्खेवओ**—पचम अध्ययन के निक्षेप—समाप्ति-वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिए।

मूलार्थ—नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करती हुई महासती सुकृष्णा ने प्रथम नौ दिनो मे प्रतिदिन एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार आगे क्रमश एक-एक दत्ति बढाते हुए नौवे नवक मे अन्न जल की नौ-नौ दत्तियें ग्रहण की। इस प्रकार यह नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिनो मे पूर्ण हुई। इसमे भिक्षाओ की सख्या ४०५ तथा दिनो की सख्या ८१ बनती है। सूत्रोक्त विधि के अनुसार नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने दशदशमिका (जिसकी आराधना मे दश दशक समय लगे) नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना आरभ कर दी।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करते समय महासती सुकृष्णा प्रथम दशक मे एक-एकदत्ति भोजन और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण करती है, इसी प्रकार एक-एक दत्ति बढाते हुए दसवें दशक मे दस-दस दत्तिए भोजन की स्वीकार करती है। दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा मे एक सौ रात्रि दिन लग जाते हैं। इसमे साढे पाच सौ (५५०) भिक्षाए और ११ सौ दत्तिए ग्रहण करनी होती है। सूत्रोक्त विधि के अनुसार दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने व्रत, बेला, तेला, चौला, पचौला छे, सात, आठ से लेकर १५ तथा महीने तक की तपस्या के अतिरिक्त अन्य अनेकविध तपो से अपनी आत्मा को भावित किया। इस कठिन तपके

कारण आर्या सुकृष्णा अत्यधिक दुर्बल हो गई। एक दिन उसने विचार किया कि मेरा शरीर दुर्बल हो गया है, अब इसमे विशेष शक्ति नही रही है, अत मुझे सलेखना की आराधना से अन्न-जल के त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। सुकृष्णाने आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर सथारा किया, सम्पूर्ण कर्मो का नाश करके मोक्षगति को प्राप्त किया।

पञ्चम अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अतगड सूत्र के अष्टमवर्गीय पञ्चम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस • ४०५ दत्तिओ

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्रमे नवनवमिका तथा दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा की रूप-रेखाका वर्णन किया गया है। नवनवमिका को नौ विभागो मे विभक्त करके प्रत्येक नवक मे क्रमश एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की वढा दी जाती है। इस पद्धति से नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना मे ८१ दिन लग जाते है, चार सौ पाँच भिक्षायें ग्रहण की जाती हैं, नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा का स्थापना-यन्त्र ऊपर प्रदर्शित किया गया है—
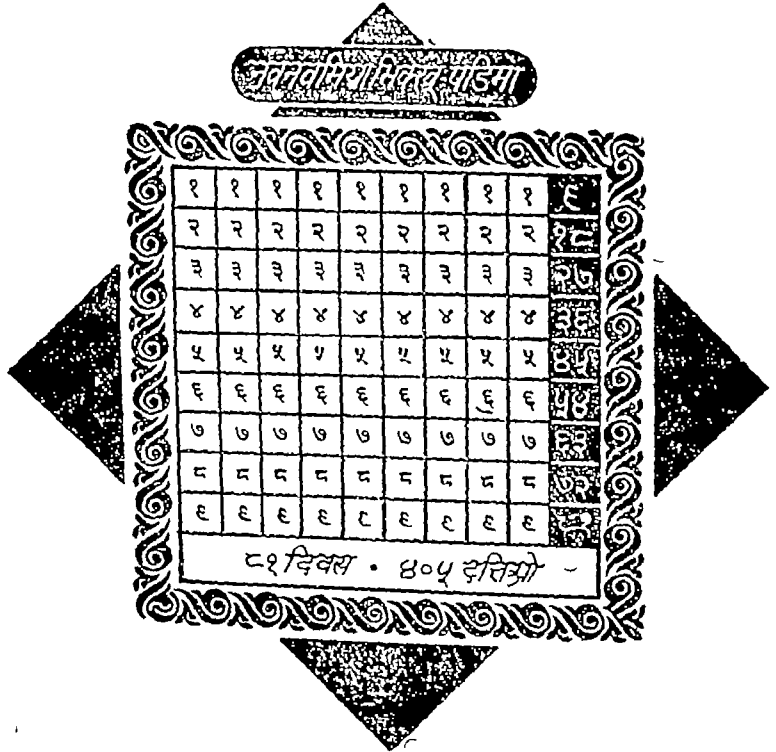
दश दशमिका भिक्षु-प्रतिमा का अर्थ है—जिस प्रतिज्ञा विशेप मे दश दशक (दस दिनो का समुदाय) लगे। इस तप की आराधना मे १०० दिन लगते हैं ५५० भिक्षायें ग्रहण की जाती हैं और

११ सौ दत्तियें ली जाती है। इस तप का स्थापना-यन्त्र नीचे प्रदर्शित किया गया है—

दसदसमिया भिक्खू पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवसा : ५५० दत्तिओ

दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा के प्रथम दशक मे एक दत्ति अन्न की और एक-दत्ति पानी की, इसी प्रकार आगे बढते-बढते दशम दशक मे दस दत्तियें अन्न की और दस दत्तियें पानी की ग्रहण की जाती हैं।

यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि एक ही दत्ति से इच्छित आहार प्राप्त हो जाए तो फिर अन्य दत्तियो का आहार ग्रहण करना आवश्यक है या नही ? एक या दो दत्तियो मे पर्याप्त आहार मिल जाने पर क्या अन्य दत्तिया छोडी जा सकती हैं ? उत्तर मे निवेदन है कि सर्व प्रथम तो सप्तसप्तमिका, अष्ट-अष्टमिका आदि भिक्षु-प्रतिमाओ का आराधन करने-वाला साधक ऐसी समुचित पद्धति से आहार ग्रहण करने का प्रयत्न करेगा कि जिससे उसकी मर्यादित दत्तियें भी पूर्ण हो जायें और उसे पर्याप्त आहार भी प्राप्त हो जाए, परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि कभी एक ही दत्ति मे आहार की पूर्ति हो जाए तो उस दशा मे उसे अन्य दत्तिए ग्रहण करने की आवश्यकता नही है, क्योकि इस से त्याग को और अधिक पोषण मिलता है, जो साधक की आत्म-शुद्धि मे सहायक ही बनता है। सूत्रकार ने दत्तियो की जो मर्यादा निश्चित की है उसका अभिप्राय यह है कि दस दत्तियो के स्थान पर ११ या १२ दत्तिया ग्रहण नही की जा सकती। उस की स्वल्पता के लिये कोई निषेध नही है।

सप्तसप्तमिका, अष्ट-अष्टमिका, नवनवमिका तथा दश-दशमिका भिक्षुप्रतिमा इन चारो प्रतिमाओ का भली भाति आराधन करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा बहुत अधिक दुर्बल हो गई। उस का मास और रक्त सूख गया, वह पिंजर मात्र रह गई। अत्यधिक दुर्बल हो जाने पर भी वह तपस्तेज से अत्यधिक सुशोभित हो रही थी।

एक वार मध्यरात्रि मे उसे विचार आया कि तपस्या के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तथापि अभी मेरे मे जो शक्ति विद्यमान है उससे लाभ उठाना चाहिये, अत प्रात काल महा-सती आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर मुझे अन्न-जल का सर्वथा परित्याग करके सलेखना की आराधना मे लग जाना चाहिये।

प्रात काल होते ही उसने अपना विचार आर्या आर्यचन्दना की सेवा मे निवेदन किया। आर्या आर्य चन्दना की ओर से स्वीकृति मिलने पर उसने मध्यरात्रि मे उठे अपने विचार को कार्यान्वित कर दिया, अन्न-जल का परित्याग करके वह सलेखना की आराधना मे लग गई। अन्तमे एक दिन सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके उसने सिद्ध-गति को प्राप्त कर लिया। इन सब भावो को ससूचित करने के लिये सूत्रकार ने **"त एण सा सुकण्हा अज्जा तेण ओरालेण जाव सिद्धा"** इन पदो का प्रयोग किया है।

"अहासुत्त जाव आराहिया"—यहा पठित जाव पद अन्य सूत्रो मे वर्णित अवशिष्ट आगम-पाठ का ससूचक है।

"पाणगस्स जाव नवमे नवए" तथा **पाणगस्स जाव दसमे दसए"**—इन स्थानो पर जाव पद का अभिप्राय यह है कि सप्तसप्तमिका मे जिस पद्धति का आश्रय लिया गया था उसी पद्धति का यहा भी आश्रय लिया गया।

"चउत्थ जाव मासद्ध"—यहा का जाव पद **छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहि** इस पाठ का बोधक है।

निक्खेवओ का अर्थ है—उपसहार-वाक्य। शास्त्रीय भाषा मे उपसहार वाक्य इस प्रकार है—

एव खलु जम्बू! समणेण भगवया जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स पचमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते—अर्थ स्पष्ट है।

तप अग्नि है, इसे आत्ममन्दिर मे प्रज्वलित करने से कर्म-मल जल जाता है। परिणामस्वरूप तपोऽनुष्ठान से विशुद्ध बना आत्मा सहज ही मे परम-साध्य निर्वाणपद को प्राप्त कर लेता है। तपकी इसी पावन उपादेयता को महासती तपस्विनी सुकृष्णा जी के तपस्वी जीवन के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

॥ पचम अध्ययन समाप्त ॥

छठा अध्ययन

अब सूत्रकार छठे अध्ययन का आरभ करते हुए कहते हैं—

मूल—एव महाकण्हा वि, णवर खुड्डाग सव्वओभद्द पडिम उवसंपज्जित्ता ण विहरइ। तजहा—चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता, चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता, सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ।

एव खलु खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढम परिवाडि तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्त जाव आराहेत्ता, दोच्चाए परिवाडिए चउत्थ करेइ, करित्ता विगइवज्ज पारेइ, पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडियो, पारणा तहेव। चउण्ह कालो सवच्छरो मासो दस य दिवसा, सेस तहेव जाव सिद्धा।

छाया—एव महाकृष्णाऽपि, णवर क्षुल्लका सर्वतोभद्रा प्रतिमामुपसम्पद्य विहरति। तद्यथा—चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति,

पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति ।

एव खलु क्षुल्लका सर्वतोभद्रस्य तप कर्मण प्रथमा परिपाटी त्रिभिर्मासै दशभिर्दिवसै यथासूत्र यावदाराध्य द्वितीयस्या परिपाट्या चतुर्थ करोति, कृत्वा विकृतिवर्ज पारयति, पारयित्वा यथा रत्नावल्या तथा अत्रापि चतस्र परिपाट्य, पारणा तथैव, चतसृणां काल सवत्सरो मासो दश च दिवसा, शेष तहेव यावत्सिद्धा । निक्षेप ।

पदार्थ—**एव**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार सुकृष्णादेवी का वर्णन किया गया है उसी प्रकार, **महाकण्हा वि**—महाकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए, **णवर**—इतना अन्तर है कि महाकृष्णादेवी ने, **खुड्डाग**—छोटी, **सव्वओभद्द**—सर्वतोभद्र (गणना करने पर जिसके अक सर्वप्रकार से भद्र अर्थात् समान हो) नामक, **पडिम**—प्रतिमा—तपोविशेष को, **उवसपज्जित्ता ण विहरइ**—धारण करके, विचरने लगी, **त जहा**—जैसे कि, **चउत्थ करेइ**—उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है । **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—तेला करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्व-**

कामगुणिय पारेइ—पचौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पचौला करके व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्वप्रकार के विगयो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचोला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास किया करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्वप्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **पारित्ता सव्वकाम गुणिय पारेइ**—चौला करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है। **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—व्रत करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—व्रत करके सभी रसो से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है।

एव खलु—इस प्रकार, **खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स**—क्षुल्लक सर्वतोभद्र नामक तप की, **पढम परिवाडि**—पहली परिपाटी के, **तिहिं मासेहिं**—तीन मास और, **दसहिं दिवसेहिं**—दस दिनो मे, **अहासुत्त**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार, **जाव**—यावत्, **आराहेत्ता**—आराधित करके, **दोच्चाए-परिवाडीए**—दूसरी परिपाटी मे, **चउत्थ करेइ**—उपवास करती है, **करित्ता विगइवज्ज पारेइ**—उपवास करके दूध आदि विकार-जनक पदार्थो को छोडकर अन्य खाद्य पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके, **जहा**—जिस प्रकार, **रयणावलिए**—रत्नवाली तप मे पारणो का वर्णन किया गया है, **तहा**—उसी प्रकार, **एत्थ वि**—यहा क्षुल्लक सर्वतोभद्र तप में भी, **चत्तारि परिवाडीओ**—

चारो परिपाटियो मे पारणे आदि बताए गए हैं, तहेव—जैसे ही, पारणा—पारणो का वर्णन क्षुल्लक सर्वतोभद्र मे समझ लेना चाहिये, चउण्ह कालो—चारो परिपाटियो का समय, सवच्छरो—एक वर्ष, मासो—एक मास, य—और, दस दिवसा—दस दिन होता है, सेस—महासती महाकृष्णादेवी के जीवन का शेष वर्णन, तहेव—काली-महाकाली आदि देवियो के समान ही समझ लेना चाहिये, जाव—यावत्—यह, सिद्धा—सिद्ध-पद को प्राप्त हुई। निक्खेवओ—उपसहार-वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये।

मूलार्थ—जिस प्रकार कालो आदि महासतियो के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार महासती महाकृष्णा का भी समझ लेना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि इस महासती ने लघु-सर्वतोभद्र तप का आराधन किया था, इस तप की रूप-रेखा इस प्रकार है—

उपवास,	बेला,	तेला,	चौला,	पचौला
तेला,	चौला,	पचौला,	उपवास,	बेला,
पचौला,	उपवास,	बेला,	तेला,	चौला,
बेला,	तेला,	चौला,	पचौला,	उपवास,
चौला,	पचौला,	उपवास,	बेला,	तेला।

अर्थात्—महासती महाकृष्णा ने सर्व प्रथम उपवास किया, पारणा किया फिर बेला किया, फिर पारणा किया, फिर तेला किया, इसी प्रकार फिर पारणा करके चौला किया, इसी पद्धति से आगे भी समझ लेना चाहिये। इन व्रतो के पारणो मे दूध-घृत आदि सभी इष्ट विगयो का प्रयोग किया गया, इस प्रकार तीन मास दस दिन मे यह 'लघु सर्वतोभद्र तप' की प्रथम परिपाटी सम्पन्न की।

सूत्रोक्त विधि के अनुसार लघुसर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी की आराधना करने के अनन्तर महासती महाकृष्णा ने इस तप की दूसरी परिपाटी आरम्भ की। इस दूसरी परिपाटी के पारणो मे दूध आदि किसी विकृति-पदार्थ का सेवन नहीं किया गया।

जिस प्रकार रत्नावली तप की चार परिपाटिया बताई गई थी, उसी प्रकार 'लघु सर्वतोभद्र' तप की भी चार परिपाटिया समझनी चाहिये। पारणे भी पहले की तरह ही किये जाते है। इस तप की चारो परिपाटियो का काल एक वर्ष, एक मास तथा दस दिन है। शेष जीवन-वृत्तान्त पहले जैसा समझना चाहिये। अन्त मे महासती महाकृष्णा ने सिद्ध पद उपलब्ध कर लिया।

प्रस्तुत छठे अध्ययन के समाप्त हो जाने पर आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि 'हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड के आठवे वर्ग के छठे अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत छठे अध्ययन मे महासती महाकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया गया है, यह राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पा नरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था, उसके असह्य वियोग ने इनके हृदय को ससार की मोह-माया से विरक्त कर दिया था। अनित्य भावना से भावित हो कर एक दिन यह भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर साध्वी बन गई। महासती आर्या चन्दना से इन्होने आचारांग आदि ग्यारह अग पढे। व्रत, बेला आदि अनेकविध तप किया। लघुसर्वतोभद्र इनका बहुत प्रिय तप था, इसीलिये सूत्रकार ने विशेष रूप से इसका निर्देश किया है। लघुसर्वतोभद्र तप की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

खुड्डया
सव्वंतोभद्द-पडिमा

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

तपदिन ७५ पारणे २५

"खुड्डिय सव्वओभद्द पडिम" त्ति क्षुद्रिका महत्यपेक्षया सर्वत सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च भद्रा—समसख्येति सर्वतोभद्रा। तथाहि—एकादीनां पञ्चान्तानामङ्काना सर्वतो भावात् पञ्चदश पञ्चदश सर्वत्र तस्या जायन्ते इति। स्थापनोपाय-गाथा—

एगाइ पचते ठविउ मज्झ तु आइमणुपति।
सेसो कमसो ठविउ जाणह, लहु सव्वओभद्द ॥१॥

तपोदिनानीह पञ्चसप्तति, पारणकदिनानि तु पचविंशतिरिति, सर्वाणि दिनानि शतमेकस्यां परिपाट्यां, चतसृषु त्वेतदेव चतुर्गुणम्।

अर्थात्—क्षुद्र शब्द यहा पर महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का होता है, एक महद् और लघु। यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुद्र शब्द का प्रयोग किया गया

है। गणना करने पर जिसके अक सम अर्थात् वरावर हो, विषम न हो, जिधर से भी गणना की जाए उधर से ही समान हो, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इसमे एक से लेकर पाँच अक दिये जाते हैं, चारो ओर जिधर से चाहे गिन ले सभी ओर १५ ही सख्या मिलती है। एक से पाच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी सख्या होने से ही इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है, एक जैसी सख्या कैसे बनती है? यह ऊपर दिये गये चित्र से स्पष्ट हो जाता है।

क्षुद्रसर्वतोभद्र तपके इस यत्र मे इसकी प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है, इस प्रथम परिपाटी मे तीन मास दस दिन अर्थात् १०० दिन लगते हैं। इनमे ७५ दिन तपस्या के और २५ दिन पारणो के होते हैं।

जैसे प्रस्तुत आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन मे रत्नावली तप का वर्णन किया गया था, वैसा ही वर्णन इस तप का है। रत्नावली तप की तरह इस तप की चार परिपाटिया होती हैं, उसीकी तरह इसकी प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध-घृत आदि इष्ट पदार्थों का सेवन किया जाता है, दूसरी परिपाटी के पारणे मे दूध, घृत आदि सभी विगय पदार्थों का परित्याग कर दिया जाता है। तीसरी परिपाटी के पारणे मे दूध-घृत आदि सभी विगयो का लेप मात्र भी छोड दिया जाता है, इसके अनन्तर चौथी परिपाटी के पारणे मे आयम्बिल तप किया जाता है।

लघुसर्वतोभद्र की चारो परिपाटियोका काल एक वर्ष, एक मास, दस दिन है, इस काल मे इस तप की चारो परिपाटिया सम्पन्न हो जाती हैं।

"एव महकण्हा वि"—का अर्थ है—इस प्रकार महाकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिये। जिस प्रकार प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में काली देवी की जीवनी का उल्लेख किया गया है, बिल्कुल उसी के समान महाकृष्णा देवी की जीवनी की कल्पना कर लेनी चाहिये।

"सव्वकामगुणिय" का अर्थ पृष्ठ ३९८ पर किया गया है।

"विगइवज्ज" का अर्थ है—विकृति से रहित। विकृति विगय को कहते हैं। श्री स्थानाग सूत्र मे विगय के ९ प्रकार वताए गए हैं—दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड, मधु, मद्य और मास।

ये पदार्थ शरीर-पोषक होने के कारण इन्द्रियो को उत्तेजित करते हैं, मन मे विकार पैदा करते हैं, अत इनको विकृति या विगय कहते है। इन मे मद्य और मास अभक्ष्य होने से सर्वथा त्याज्य हैं, मधु और नवनीत ये दोनों विशेष स्थिति मे ही लिये जा सकते हैं, सदैव नही। दूध, घृतादि का भी यथाशक्ति एक या एक से अधिक के रूप मे प्रतिदिन त्याग करते रहना चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित महासती महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों का ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे मे दूध आदि विगयो का भी परित्याग कर दिया। विगयो के इस परित्याग को ही सूत्रकार ने **"विगइवज्ज"** इस पद से अभिव्यक्त किया है।

तीसरी परिपाटी के पारणे मे विगय का लेप भी छोड दिया तथा चतुर्थ परिपाटी के पारणे मे

आयंबिल तप का आराधन किया। इसी बात को सूत्रकार ने "जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ" ये पद प्रयुक्त किये हैं।

"सेस तहेव जाव सिद्धा"—का अर्थ है शेष वर्णन वैसा ही जानना, निर्वाण पद प्राप्त करने से पूर्व महासती काली की जो जीवनी है, वह सब की सब महासती कृष्णा की जीवनी समझ लेनी चाहिये। इसी समानता को सूचित करने के लिये सूत्रकार ने "सेस तहेव" इन पदों का प्रयोग किया है।

"निक्खेवओ-निक्षेपः"—का अर्थ है—उपसंहार-वाक्य जो शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है—

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। अर्थ स्पष्ट है।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवां अध्ययन

अब सूत्रकार सातवें अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—एव वीरकण्हा वि, णवर महालय सव्वओभद्द तवोकम्मं उवसपज्जित्ता णं विहरइ । तजहा—चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पढमा लया ।

दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम

आयविल तप का आराधन किया। इसी बात को सूत्रकार ने "**जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ**" ये पद प्रयुक्त किये हैं।

"सेस तहेव जाव सिद्धा"—का अर्थ है शेष वर्णन वैसा ही जानना, निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व महासती काली की जो जीवनी है, वह सब की सब महासती कृष्णा की जीवनी समझ लेनी चाहिये। इसी समानता को ससूचित करने के लिये सूत्रकार ने "सेस तहेव" इन पदो का प्रयोग किया है।

"**निक्खेवओ-निक्षेप.**"—का अर्थ है—उपसहार-वाक्य जो शास्त्रीय भाषा मे इस प्रकार है—

एव खलु जम्बू ! **समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।** अर्थ स्पष्ट है।

॥ **छठा अध्ययन समाप्त** ॥

सातवां अध्ययन

अब सूत्रकार सातवें अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एव वीरकण्हा वि, णवर महालय सव्वग्रोभद्द तवोकम्मं उवसपज्जित्ता णं विहरइ । तजहा—चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता ग्रट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पढमा लया ।

दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता ग्रट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, बीया लया ।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता ग्रट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्द-सम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, तइया लया ।

ग्रट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, चउत्थी लया ।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ, पंचमी लया।

छट्ठं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवाल-समं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, छट्ठी लया।

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, सत्तमी लया।

एक्काए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा, चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा, सेसं तहेव जाव सिद्धा।

छाया—एवं वीर कृष्णाऽपि, णवरं महत् सर्वतोभद्रं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, प्रथमा लता।

दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सवकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, द्वितीया लता।

षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, तृतीया लता।

अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति. पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, चतुर्थी लता।

चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पञ्चमी लता।

षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, षष्ठी लता।

द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित्त पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, सप्तमी लता।

एकस्या (परिपाट्या) काल —अष्टमासा पञ्च च दिवसा। चतसृणा (परिपाटीना काल) द्वे वर्षे, अष्ट मासा विंशति दिवसा। शेष तथैव यावत्सिद्धा।

पदार्थ—एव—इसी प्रकार जैसे महाकृष्णा देवी का वर्णन किया गया है, वीरकण्हा वि—वीर कृष्णा देवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए, णवर—अन्तर यह है कि, महालय सव्वओ-भद्द तवो-कम्म—महासर्वतोभद्र नामक तप को, उवसपज्जित्ताण—धारण करके, विहरइ—विचरण करती है, त जहा—जैसे कि, महासर्वतो भद्र की रूपरेखा इस प्रकार है, चउत्थ

करेइ—चतुर्थ अर्थात् उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके लगातार दो उपवास (बेला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि इष्ट विगयो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम रेइ**—पारणा करके अष्टम (तेला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके दशम अर्थात् लगातार चार उपवास करती है, **करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ**—चौला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवाल-सम करेइ**—पारणा करके पचौला लगातार पाच उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छोला (लगातार छ उपवास) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करतो है। **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके लगातार सात उपवास करती है। **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पढमा लया**—यह इस तप का प्रथम प्रकार है।

दसम करेइ—दशम अर्थात् चार उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके लगातार पांच उपवास (पचौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके लगातार छे उपवास (छौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके निरन्तर सात उपवास (सतौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सभी दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **परित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **बीया लया**—यह इस तप का दूसरा प्रकार है।

सोलसम करेइ—सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके एक उपवास (चतुर्थ) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ** चौला करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके

पाच उपवास (पचौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके लगातार छ उपवास (छौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **तइया लया**, यह तीसरी लता अर्थात् प्रकार है।

अट्ठम करेइ—तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगणिय पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास (सतौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **चउत्थी लया**—यह चौथी लता अर्थात् तप का प्रकार है।

चउद्दसम करेइ—छे व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छे व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सात व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पचमी लया**—यह पाचवी लता अर्थात् उपवास-क्रम है।

छट्ठ करेइ—बेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पादर्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट

पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके लगातार छ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छ उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है । **छट्ठी लया**—यह छटी लता अर्थात् उपवास आदि की व्यवस्था है ।

दुवालसम करेइ—पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके निरन्तर छ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सात उपवास करके सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके वेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—वेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है । **सत्तमी लया**—सातवी लता अर्थात् उपवास-विधि है ।

एक्काए—एक परिपाटी का, **कालो**—काल समय, **अट्ठमास**—आम महीने, **य**—और, **पच दिवसा**—पाच दिन हैं, **चउण्ह**—चारो परिपाटियो का समय, **दो वासा**—दो वर्ष, **अट्ठमासा**—आठ महोने, **बीस दिवसा**—बीस दिन है, **सेस**—शेप वर्णन, **तहेव**—वैसे ही । जैसे महाकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया गया है, वैसे इस महासती का भी समझ लेना चाहिए, **जाव**—यावत् आठो कर्मों का क्षय कर के, यह, **सिद्धा**—सिद्ध वन गई ।

मूलार्थ--अन्तगड सूत्र के आठवे वर्ग का छठा अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जम्बू स्वामी कहने लगे कि "भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे अध्ययन का जो अर्थ वताया है, वह मैंने सुन लिया है, अब आप अन्तगड सूत्र के आठवे वर्ग के सातवे अध्ययन को सुनाने की कृपा करे ।" जम्बू को विनती सुन कर आर्य सुधर्मा कहने लगे—

जम्बू ! अन्तगड सूत्र के सातवे अध्ययन मे वीरकृष्णा देवी की जीवनी वर्णित की गई है। यह जीवनी महासती महाकृष्णा देवी के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि इन्होने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया था। महासर्वतोभद्र तप मे सात लताए हैं, जिन की रूपरेखा इस प्रकार है–

पहली लता—उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, छ व्रत, सात व्रत।

दूसरी लता——चौला, पचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला।

तीसरी लता—सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला, पचौला, छ व्रत।

चौथी लता—तेला, चौला, पचौला, छ व्रत, सात व्रत, एक व्रत, बेला।

पाचवी लता— छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला, पचौला।

छठी लता—बेला, तेला, चौला, पचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत।

सातवी लता—पचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला।

इन सब व्रतो के पारणे मे दूध घृत आदि सभी इष्ट विगयो का सेवन किया गया था। इन सात लताओ को मिलाकर एक परिपाटी बनती है। एक परिपाटी मे आठ महीने और पाच दिन लगते है। चार परिपाटियो का समय दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन होते है।

महासती वीरकृष्णा देवी का शेष जीवन महासती महाकृष्णा के समान जान लेना चाहिए। वह अन्त मे आठ कर्मो का क्षय करके सिद्ध पद उपलब्ध कर लेती है।

व्याख्या—प्रस्तुत सातवें अध्ययन में महासती वीरकृष्णा की जीवनी का उल्लेख किया गया है, वीरकृष्णा राजगृह नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पानरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र युद्ध मे मारा गया था, पुत्र-वियोग-जन्य दु,ख ने इनको ससार की विषादान्त मोह-माया से उपराम कर दिया था, परिणाम स्वरूप यह श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे दीक्षित हो गई थी। महासती आर्या चन्दना से इन्होने आचाराग आदि ११ अग पढे। इनका अधिक झुकाव तपस्या की आराधना की ओर था। व्रत, वेले, तेले आदि अनेकविध तप करने के अतिरिक्त इन्होने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया। प्रस्तुत सूत्र मे इसी तप की रूपरेखा का परिचय कराया गया है।

सर्वतोभद्र तप की अर्थ-विचारणा पीछे पृष्ठ ४४८ पर की जा चुकी है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। लघु सर्वतोभद्र तप का परिचय इसी वर्ग के छठे अध्ययन में कराया जा चुका है। महद्

सर्वतोभद्र तप की रूप-रेखा का परिचय प्रस्तुत सूत्र मे कराया जा रहा है । इस मे सात लताए होती हैं, प्रत्येक लता मे व्रतो आदि का निर्देश मूलार्थ मे कर दिया गया है ।

महद् सर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी मे तप के दिन १९६ होते हैं पारणे के दिन ४९, इस प्रकार एक परिपाटी के कुल दिन २४५ होते हैं। इनको चार गुणा करने पर चारो परिपाटियो के ९८० दिन होते हैं।

महासर्वतोभद्र तप के सम्बन्ध मे वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—**"एव महासर्वतोभद्राऽपि, नवरमेकादय सप्तान्ता उपवासास्तस्यां, स्थापनोपायगाथा—**

एगाती सत्तते ठविउ मज्झ तु आइमणुयति ।
सेसो कमसो ठविउ जाण महासव्वओभद्द ॥ १ ॥

इह षण्णवत्युत्तरशततपोदिनाना एकोनपञ्चाशच्च पारणकदिनानि । ततोऽस्या द्वे शते पञ्चचत्वारिंशदधिके दिनाना भवत । इत्येवमेकस्या परिपाट्या चतसृषु त्वेतदेव चतुर्गुणमिति ।

इस पाठ का भावार्थ ऊपर की पक्तियो मे लिखा जा चुका है।

महासर्वतोभद्र का जो यत्र सामने प्रदर्शित किया गया है, इसमे गणना करने पर चारो ओर से अको की समान ही सख्या होती है । एक ओर गिनो तो २८, दूसरी, तीसरी ओर चौथी ओर से गिनें तो २८ ही सख्या बनती है । इसी समान सख्या के कारण इस को सर्वतोभद्र सज्ञा दी गई है । यह प्रतिमा सर्व प्रकार से भद्र—कल्याण करनेवाली है ।

"एव वीरकण्हा वि" का अर्थ है—इसी प्रकार वीरकृष्णा भी । भाव यह है कि जिस प्रकार पिछले अध्ययन मे महाकृष्णा के जीवन का उल्लेख किया गया है उसी प्रकार वीरकृष्णा की जीवन सम्बन्धी घटनाओ को भी समझ लेना चाहिये । दोनो महासतियो की जीवनगत घटनाए एव आध्यात्मिक आचरण एक जैसे हैं । जहा अन्तर है, उसे भी सूत्रकार ने स्पष्ट कर दिया है । महासती महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र का और महासती वीरकृष्णा ने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया था, इसके बिना दोनो के आध्यात्मिक जीवन-वृत्तो मे कोई अन्तर नही है ।

प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध, घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया गया । दूसरी परिपाटी के पारणे मे घृत आदि विगयो का परित्याग कर दिया गया । तीसरी परिपाटी के पारणे मे

विगयो का लेपमात्र भी छोड दिया गया, चौथी परिपाटी के पारणे मे आयंबिल तप का आराधन किया गया।

"सेस तहेव जाव सिद्धा" का अर्थ है महासती वीरकृष्णा का शेष जीवन महासती महाकृष्णा के समान जानना चाहिये। महासर्वतोभद्र तप की आराधना के अनन्तर अर्द्धरात्रि के समय अन्न-जल का त्याग करके सलेखना—आमरण अनशन करना, अन्त मे समस्त कर्मों का क्षय करके जन्म-मरण से रहित हो जानाआदि सभी बाते पूर्व वर्णित महासतियो के जीवन के तुल्य ही समझ लेनी चाहिये। निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व की सभी घटनाओ के वर्णक पाठ को सूत्रकार ने जाव पद से अभिव्यक्त किया है।

सप्तम अध्ययन का उपसहार-वाक्या शास्त्रीय भाषा मे इस प्रकार है "**एव खलु जम्बू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तगडसूत्र के आठवें वर्ग के सातवे अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है

॥ सातवा अध्ययन समाप्त ॥

आठवां अध्ययन

अब सूत्रकार छठे अध्ययन का आरभ करते हुए कहते हैं—

मूल—एव रामकण्हा वि, णवर भद्दोत्तरपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ। तंजहा—

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्व कामगुणिय पारेइ, पढमा लया।

सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, बीया लया।

वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, तइया लया।

चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता, दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, चउत्थी लया।

अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेई, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पचमी लया।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा, चउण्ह् कालो दो वरिसा, दो मासा वीस य दिवसा, सेस तहेव जहा काली जाव सिद्धा।

छाया—एव रामकृष्णाऽपि, नवर भद्रोत्तरप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति। तद्यथा-द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, प्रथमा लता।

षोडश करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, द्वितीया लता।

विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, तृतीया लता।

चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति,पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, चतुर्थी लता।

अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्व-कामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चउद्दसम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति पचमी लता।

एकस्या (परिपाट्या) काल षण्मासा विंशतिदिवसा, चतसृणा कालो द्वे वर्षे, द्वौ मासौ, विंशतिदिवसा। शेष तथैव यथा काली यावत्सिद्धा।

पदार्थ—**एव**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती वीर कृष्णादेवी की जीवनी का वर्णन किया गया है उसी प्रकार, **रामकण्हा वि**—रामकृष्णा देवी की जीवनी की कल्पना कर लेनी चाहिए, **णवर**—केवल इतना अन्तर है कि यह, **भद्दोत्तरपडिम**—भद्रोत्तर नामक प्रतिज्ञा-विशेष को, **उवसपज्जित्ता ण**—धारण करके, **विहरइ**—विहरण करती है, **त जहा**—जैसे कि, **दुवालसम करेइ**—पचोला (लगातर पाच उपवास) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सर्व-प्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छोला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छोला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है। **पारित्ता**

सोलसम करेइ—पारणा करके सतौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसम करेइ**—पारणा करके आठ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—आठ उपवास करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता वीसइम करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—नौ उपवास करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पढमा लया**—यह प्रथम लता अर्थात् व्रत-विधान है।

सोलसम करेइ—सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसम करेइ**—पारणा करके आठ व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—अठाई करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता वीसइम करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—नौ व्रत करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सर्वप्रकार के विगयो से पारणा करती है, **बीया लया**—यह दूसरी लता अर्थात् व्रत-विधि है।

वीइसम करेइ—नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—नौ उपवास करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पाच उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पाच उपवास करके सर्वप्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सतौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसम करेइ**—पारणा करके आठ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकाम गुणिय पारेइ**—अठाई करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, **तइया लया**—यह तीसरी व्रत-विधि है।

चउद्दसम करेइ—छः व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसम करेइ**—पारणा करके आठ उपवास (अठाई) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—आठ उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता बीसइम करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—नौ उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **चउत्थी लया**—यह चौथी व्रत-परम्परा है।

अट्ठारसम करेइ—आठ व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—व्रत करके सर्वप्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता वीसइम करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—नौ उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता दुवालसम**

करेइ—पारणा करके पचौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छौला करके सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतोला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पचमी लया**—यह पाचवा व्रत विधान है, **एक्काए** इस तप की एक परिपाटी का, **कालो**—समय है, **छम्मासा**—छ महीने, **वीस य दिवसा**—वीस दिन होते है, **चउण्ह कालो**—चारो परिपाटियो का काल, **दो वरिसा**—दो वर्ष, **दो मासा**—दो महीने, **य**—और **वीस दिवसा**—बीस दिनहै, **सेस**—शेष वर्णन, **तहेव**—वैसा ही जान लेना अर्थात् जिस तरह काली आदि महासतियो के पारणे का वर्णन दिया गया है, उसी तरह रामकृष्णा देवी के पारणो का वर्णन भी जान लेना चाहिये, **जहा**—जिस प्रकार, **काली**—महासती काली देवी, **जाव**—यावत्—तप सयम की आराधना के द्वारा, **सिद्धा**—सिद्ध बन गई, वैसे यह भी सिद्ध हो गई।

मूलम्—आर्य जम्बू अनगर आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के सातवें वर्ग के आठवें अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, वह मैंने सुन लिया है, भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? अब यह बतलाने की कृपा करे। आर्य जम्बू अनगार की इस विनति को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! आठवे वर्ग के आठवें अध्ययन मे महासती रामकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया किया गया है। महासती रामकृष्णा का जीवन प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित महासती काली देवी के जीवन के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि काली देवी ने रत्नावली तप का आराधन किया था और इन्होने "भद्रोत्तरप्रतिमा" नामक तप का। भद्रोत्तर प्रतिमा तप मे पाच लताए है। उनकी रूपरेखा इस प्रकार है–

प्रथमलता —पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नौ उपवास।
द्वितीयलता—सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास पाच उपवास, छ उपवास ।
तृतीय लता—नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास सात उपवास, आठ उपवास।
चतुर्थलता —छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास, पाँच उपवास।
पचमलता —आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास।

इन उपवासो के पारणे मे दूध, घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया

गया। इन पाच लताओ को मिलाकर एक परिपाटी बनती है। एक परिपाटी मे छ मास और बीस दिन लगते है। चार परिपाटियो का समय दो वर्ष दो महीने और बीस दिन है। महासती रामकृष्णा का शेष जीवन महासती काली के समान जान लेना चाहिए। महासती काली की तरह दूसरी परिपाटी के पारणो मे दूध आदि विगयो का परित्याग कर दिया गया। तीसरी मे विगयो का लेप भी छोड दिया और चौथी परिपाटी का पारणा आयम्बिल तप से किया गया। इसके अतिरिक्त महासती काली की तरह सखना की आराधना कर के अन्त मे सिद्ध-पद प्राप्त किया।

व्याख्या—प्रस्तुत आठवें अध्ययन मे महासती रामकृष्णा की जीवनी वर्णित की गई है। यह भी राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी और चम्पा-नरेश महाराज कोणिक की लघुमाता थी। इनका पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था। पुत्र-वियोग-जन्य अन्तर्वेदना ने इनके मान को ससार के ऐश्वर्य से उदासीन बना दिया था। सामारिक आमोदप्रमोद से इनका कोई लगाव नही रहा। परिणामस्वरूप यह विश्ववन्द्य मगलमूर्ति भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गई। महासती आर्या चन्दना से इन्होने आचाराग आदि ग्यारह अग पढे। व्रत, वेले, तेले आदि अनेक-विध तप किये। तपो मे **"भद्रोत्तर प्रतिमा"** तप इनका विशेप प्रिय तप था। प्रस्तुत सूत्र मे इसी तप की व्याख्या की गई है—इसकी रूपरेखा का परिचय कराया गया है।

भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ है—उत्तर—प्रधान, भद्र—कल्याण की प्रदाता। यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने से भद्रोत्तर प्रतिमा कही जाती है। यह पाच उपवास से आरम्भ होकर नौ उपवास तक जाती है। आरम्भ पाँच से और समाप्ति नौ उपवासो से होती है। इसकी चार परिपाटिया हैं। प्रत्येक परिपाटी मे पाच लताए हैं। एक परिपाटी मे छ मास बीस दिन लगते हैं और दो वर्ष, दो मास और बीस दिनो का समय चार परिपाटियो की पूर्ति मे अपेक्षित रहता है। इसकी प्रथम परिपाटी मे १७५ दिन उपवास के २५ दिन पारणो के होते हैं। सब मिलाकर ६ मास बीस दिन हो जाते हैं। इसका स्थापना यत्र सामने प्रदर्शित है—

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

भद्रोत्तर प्रतिमा के सम्बन्ध मे वृत्तिकार आचार्य अभयदेवसूरि लिखते हैं—**भद्रोत्तर-प्रतिमाया स्थापनोपायगाथेय—**
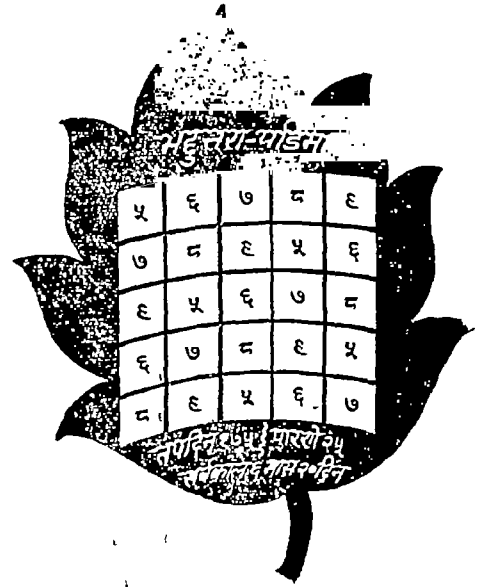
पचादी य नवते ठविउ मज्झ तु आदिमणुयति ।
सेसो कमसो ठविउ जाण भद्दोत्तर खुड्ड ॥ १ ॥

इह पञ्चसप्तत्यधिक शत तपोदिनानां पञ्चविंशतिस्तु पारणदिनानि, एव शतद्वय दिनानामेकस्यां परिपाट्यां भवति, तच्चतुष्टये त्वेतदेव चतुर्गुणमिति । अर्थ स्पष्ट ही है ।

"एव रामकण्हा वि" का अर्थ है—इसी प्रकार रामकृष्णा का जीवन भी है । प्रस्तुत आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन मे महासती कालीदेवी के जीवन का वर्णन किया गया है । सूत्रकार पाठको को सावधान करते हुए कहते है कि जिस प्रकार कालीदेवी के जीवन मे उसके वैराग्य, दीक्षा-ग्रहण आदि का उल्लेख किया गया है, ठीक उसी प्रकार महासती रामकृष्णा के वैराग्य तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के सम्बन्ध मे समझ लेना चाहिये । इन दोनो महासतियो के जीवन मे "णवर भद्दोत्तर पडिम" इतना अन्तर बताया गया है कि महासती काली ने रत्नावली तप का आराधन किया था, परन्तु इसने भद्रोत्तर प्रतिमा की पालना की थी ।

"सव्वकामगुणिय" का अर्थ पीछे पृष्ठ ३८८ पर किया जा चुका है । भद्रोत्तर प्रतिमा की प्रथम परिपाटी के ५ भेद हैं । इसीलिये इस की ५ लताए बमाई गई हैं । "एक्काए" का अर्थ है प्रथम परिपाटी का तथा चउण्ह पद चार परिपाटियो का बोधक है ।

"सेस तहेव" का अर्थ है—भद्रोत्तर-प्रतिमा की दूसरी परिपाटी के पारणो मे रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी के समान दूध आदि विगयो का परित्याग कर किया गया, तीसरी के पारणे मे विगयो का लेपमात्र भी छोड दिया तथा चौथी का पारणा आयम्बिल तप से किया गया ।

"जहा काली जाव सिद्धा" का अभिप्राय है जिस प्रकार महासती काली के अर्द्ध रात्रि के समय धर्म-जागरण करते समय अन्न-जल का परित्याग करके सलेखना की आराधना का निश्चय किया और निश्चयानुसार आचरण करके सिद्ध-पद प्राप्त किया था, इसी प्रकार महासती रामकृष्णा ने भी अर्द्धरात्रि के समय अन्न-जल के त्याग के साथ सलेखना की आराधना का निश्चय किया, तदनुसार आचरण करके इन्होने सिद्ध-पद प्राप्त किया । इसी बात को सूत्रकार ने "जहा काली जाव सिद्धा" इन पदो से ससूचित किया है ।

॥ आठवा अध्ययन समाप्त ॥

नवम अध्ययन

अब सूत्रकार नवम अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एव पिउसेणकण्हा वि, णवर मुत्तावलि तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसम करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसम करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउवीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता छव्वीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ, पारित्ता तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्तीसइम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता बत्तीसइम करेइ

करित्ता, एव तहेव ओसारेइ जाव चउत्थ करेइ, चउत्थ करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा, पनरस य दिवसा। चउण्ह् तिण्णि वरिसा, दस य मासा। सेस जाव सिद्धा।

छाया—एव पितृसेनकृष्णाऽपि नवर मुक्तावली तप कर्म उपसपद्य विहरति। तद्यथा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकाम गुणित पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सवकामगुणित पारयति, पारयित्वा षोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितम करो-ति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणित पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तम-करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति एव तथैव अवतारयति यावत् चतुर्थ कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति। एकस्या (परिपाट्या) काल एकादश मासा पञ्चदश च दिवसा, चतसृणा (परिपाटीना काल) त्रीणि वर्षाणि दश च मासा, शेष यावत् सिद्धा।

पदार्थ—एव—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती राम कृष्णादेवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार, पिउसेणकण्हा वि—पितृसेनकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिए। णवर—इतना अन्तर है कि महासती पितृसेनकृष्णा ने, मुत्तावलि तवोकम्म—मुक्तावली नाम का एक तप, उपसपज्जित्ता—धारण करके, ण—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है, विहरइ—विचरण करती है, तजहा—जैसे कि, चउत्थ करेइ—चतुर्थ अर्थात् एक उपवास करती है, करित्ता सव्वकामगुणिय

पारेइ—उपवास करके सर्व प्रकार के दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठ करेइ**—पारणा करके लगातार दो उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठम करेइ**—पारणा करके लगातार तीन उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—तेला करके सभी दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता दसम करेइ**—पारणा करके चोला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—चोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता बुवालसम करेइ**—पारणा करके पचोला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पचोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसम करेइ**—पारणा करके छोला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—छोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता सोलसम करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है, **करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ**—सतोला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसम करेइ**—पारणा करके अठाही (आठ उपवास) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—अठाही करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता वीसइम करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता बावीसइम करेइ**—पारणा करके दस उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—दस उपवास करके दूध आदि रसो से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउवीसइम करेइ**—पारणा करके ग्यारह उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—ग्यारह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छव्वीसइम करेइ**—पारणा करके बारह उपवास करती है, **पारित्ता**

सव्वकामगुणिय पारेइ—बारह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठावीसइम करेइ**—पारणा करके तेरह उपवास करती है, **करित्ता सव्वकमगुणिय पारेइ**—तेरह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता तीसइम करेइ**—पारणा करके १४ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—१४ उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है। **करित्ता सव्वकामगुणिय करेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता बत्तीसइम करेइ**—पारणा करके १५ उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—१५ उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चोत्तीसइम करेइ**—पारणा करके १६ व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय करेइ**—१६ व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके सभी रसों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके पुन उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है, **करित्ता**—करके, **एव**—इसी प्रकार, **तहेव**—वैसे ही, अर्थात् जैसे १ व्रत से ऊपर चढते-चढते १६ तक आए हैं, वैसे ही १६ से, **ओसारेइ**—पीछे लौटती है, जिस क्रम से आगे बढती है, उसी क्रम से नीचे उतरी, **जाव**—यावत् १६ व्रतो का पारणा करके एक उपवास किया फिर १५ उपवास किए, इसी तरह पीछे हटते-हटते अन्त मे, **चउत्थ**—एक उपवास, **करेइ**—करती है, **चउत्थ करित्ता**—उपवास करके **सव्वकामगुणिय पारेइ**—दूध घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, **एक्काई**—एक परिपाटी का, **कालो**—काल—समय है, **एक्कारस**—११, **मासा**—महीने, **य**—और, **पनरस**—पन्द्रह, **दिवसा**—दिन, **चउण्हं**—चारो परिपाटियो का काल है, **तिण्णि वरिसा**—तीन वर्ष, **य**—और **दसमासा**—दस महीने, **सेसे**—महासती पितृसेनकृष्णा का शेष तपस्या-प्रधान जीवन, **तहेव**—वैसे ही है, अर्थात् महासती काली देवी के समान है, **जाव**—यावत् सलेखना की आराधना कर इन्होने, **सिद्धा**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्र के अष्टमवर्गीय आठवे अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी, अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा जी से निवेदन करने लगे कि भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तगड सूत्र के अष्टमवर्गीय अष्टम अध्ययन का जो अर्थ बताया है इसका श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन्! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड के आठवे वर्ग के नौवे

अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, अब वह सुनाने की कृपा करे । आर्य जम्बू अनगारकी । विनति सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्रीय इस अष्टम वर्ग के नवम अध्ययन मे महासती पितृसेन-कृष्णा के आध्यात्मिक जीवन का उल्लेख किया है । इनका जीवन भी पीछे वर्णित महासती काली देवी के जीवन के समान समझ लेना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि उन्होने रत्नावली तप की आराधना की थी, परन्तु इन्होने मुक्तावली तप का आराधन किया था । मुक्तावली तप की रूप-रेखा इस प्रकार है,—एक उपवास, दो उपवास एक उपवास, तीन उपवास, एक उपवास, चार उपवास, एक उपवास इसी क्रम से बढते-बढते १६ उपवास करती है और तदनन्तर क्रमश नीचे उतरती है । सोलह उपवास, एक उपवास, पन्द्रह उपवास, एक उपवास, चौदह उपवास, इसी पद्धति से नीचे आते-आते अन्त मे एक उपवास करती है । यही मुक्तावली तप का स्वरूप है । यह मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी है । इस प्रथम परिपाटी मे कुल उपवासो के पारणे मे दूध-घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया जाता है। इस प्रथम परिपाटी की आराधना मे ग्यारह महीने पन्द्रह दिन लगते है। मुक्तावली तप की चारो परिपाटियो का काल तीन वर्ष दस महीने है ।

महासती पितृसेन कृष्णा का शेष तपस्या-प्रधान जीवन प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित महासती काली देवी के तुल्य समझना चाहिए। अन्त मे इन्होने समस्त कर्मों का क्षय करके सिद्ध-पद प्राप्त किया ।

नवम अध्ययन के उत्क्षेप-उपसहार की कल्पना पिछले अध्ययनो मे वर्णित उत्क्षेप की भाति कर लेनी चाहिये ।

व्याख्या—प्रस्तुत अध्ययन मे महासती पितृसेनकृष्णा के तपस्या-प्रधान जीवन का परिचय कराया गया है। यह राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पानरेश महाराज कोणिक की लघु माता थी । इनका भी पुत्र युद्ध मे मारा गया था। पुत्र-वियोग जन्य असह्य वेदना ने इनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया, इनका हृदय ससार के आमोद-प्रमोद से उपराम हो गया । त्याग-वैराग्य की तीव्र भावनाओ के कारण यह श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गई ।

महासती आर्य चन्दना की सेवा मे रहकर इन्होने आचाराग आदि ग्यारह अग पढे।

विद्याध्ययन के साथ-साथ यह उग्र तपस्याए भी किया करती थी। व्रत, वेले, तेले, आदि इन्होने ने अनेकविध तप किये । इनके तपो मे मुक्तावली तप का विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत सूत्र मे इसी तप की रूप-रेखा का परिचय कराया गया है।

मुक्तावली शब्द का अर्थ है—मोतियो का हार। जिस प्रकार मोतियो का हार वनाते समय उस मोतियो की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप मे उपवासो की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते है। इस तप मे एक से ले कर सोलह तक उपवास करने का विधान है और एक-एक उपवास अन्तर मे किया जाता है । उदाहरणार्थ एक उपवास के अनतर पारणा, फिर दो उपवास, फिर पारणा, फिर एक उपवास, फिर पारणा, फिर तीन उपवास, पारणे के अनन्तर फिर एक उपवास, पारणे के पश्चात् चार उपवास फिर पारणा करके एक उपवास, इसी क्रम से सोलह उपवास तक चले जाते हैं। सोलह उपवासो के अनन्तर फिर वापिस लौटना होता है । वापिस लौटने का क्रम पहले जैसा है। सोलह उपवासो के अनन्तर पारणा किया जाता है, फिर एक उपवास का पारणा करके पन्द्रह उपवास, फिर पारणा, फिर एक उपवास, पारणे के पश्चात् चौदह उपवास, फिर पारणा करके एक उपवास किया जाता है, इसी क्रम से पीछे हटते-हटते अन्त मे एक उपवास पर आना होता है। यह मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी का स्वरूप है। इस पहली परिपाटी मे ग्यारह मास और पन्द्रह दिनो का समय लगता है और चार परिपाटियो को सम्पन्न करने मे तीन वर्ष दस मास अपेक्षित हैं। प्रस्तुत अध्ययन मे महासती पितृसेनकृष्णा ने इसी मुक्तावली तप की चारो परिपाटियो की आराधना की थी, इसी तप के अनुष्ठान से कर्म-मल को नष्ट करके इन्होने आत्म-विशुद्धि द्वारा परम कल्याण रूप सिद्ध-पद को प्राप्त किया था ।

मुक्तावली तप की रूप-रेखा का परिचय कराते हुए वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—

मुक्तावली सुज्ञातैव, नवर, तस्या चतुर्थं तत षष्ठादीनि चतुस्त्रिशत्तमपर्यन्तानि चतुर्थभक्तान्तरितानि ततश्चतुर्थ तत प्रत्यावृत्य द्वात्रिंशत्तमादीनि षष्ठान्तानि चतुर्थभक्तान्तरितानि ततश्चतुर्थं च करोति, एव चेय तपसि इयत्प्रमाणा षोडश-सकलनाविना १३६ पञ्चदश-सकलनया च १२० चतुर्थानि २८, पारणकानि ५९ एषा च मीलनेन मासा ११ दिनानि १३, भवन्ति, सूत्रे तु दिनानि १५ दृश्यन्ते, तत्तु नावगम्यते इति।

अर्थात् प्रथम चतुर्थ भक्त कर के दो उपवास से आरम्भ कर के सोलह तक उपवास करके और प्रत्येक पारण के अनन्तर चतुर्थभक्त करना होता है, इसी प्रकार प्रत्यावृत्ति मे चतुर्थभक्त कर के पन्द्रह उपवास से लेकर दो उपवास तक उतरते जाना है और प्रत्येक पारणे मे चतुर्थ भक्त (उपवास) करना पडता है। इस प्रकार एक परिपाटी मे चतुर्थभक्तो—उपवासो और पारणो की कुल सख्या को मिलाने से ग्यारह मास तथा तेरह दिन होते हैं, परन्तु सूत्रकार ने मल

पाठ मे समस्त सख्या ग्यारह मास पन्द्रह दिन लिखी है। ये दो दिन अधिक कैसे बढ गए ? यह समझ मे नही आता।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी के दिनो की सख्या जो ग्यारह मास तेरह दिन लिखी है, यह ठीक जचती है। सूत्रकार ने ग्यारह मास पन्द्रह दिन यह लिखकर जो दो दिन अधिक बताए हैं, ये सगत नही बैठते। मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी मे तपस्या के दिन दो सौ पचासी और पारणो के दिन अट्ठावन बनते हैं। सबको

मुक्तावली तप का स्थापना-यन्त्र

मिलाकर तीन सौ तेंतालीस दिन होते हैं। इन दिनो के ग्यारह मास तेरह दिन बनते हैं। सभव है सूत्र सकलन करते समय भ्रान्ति-वश 'तेरस' के स्थान पर 'पनरस' लिखा गया हो।

मुक्तावली तप के लिये कितने दिन अपेक्षित हैं, इस प्रश्न का समाधान ४७२ पृष्ठ पर प्रदर्शित मुक्तावली तप के स्थापना यत्र से भली भाति हो जाएगा ।

"एव पिउसेणकण्हावि" का अर्थ है—इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिए। सूत्रकार के कहने का उद्देश्य यह है कि प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे जिस प्रकार काली देवी के वैराग्य, दीक्षा-ग्रहण, आचाराग आदि ग्यारह अङ्गो के अध्ययन के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है, वही वर्णन महासती पितृसेनकृष्णा के सम्बन्ध मे भी समझ लेना चाहिए।

"णवर"—इस अव्ययपद का अर्थ है इतना विशेष है। पिछले प्रकरण मे महासती काली देवी का जो वर्णन कर आये हैं, उसमे तथा पितृसेनकृष्णा के जीवन मे इतनी भिन्नता है कि इसने **"मुत्तावली तवोकम्म"** मुक्तावली तप किया था।

"एव तहेव ओसारेइ जाव चउत्थ करेइ"—इन पदो का भाव यह है कि जिस प्रकार महासती पितृसेनकृष्णा एक से आरम्भ करके सोलह तक उपवास करती है, उसी प्रकार वह सोलह से पीछे जाती हुई अर्थात् सोलह उपवास करके फिर उपवास करती है, और पारणा करके फिर पन्द्रह उपवास करती है, इसी क्रम से वह अन्त मे एक उपवास करके मुक्तावली तप की साधना सम्पन्न करती है।

"एक्काए"— यह शब्द प्रथम परिपाटी का और **"चउण्ह"** यह शब्द चारो परिपाटियो का बोधक है।

नवम अध्ययन का निक्षेप—उपसहार-वाक्य शास्त्रीय भाषा मे इस प्रकार है—**एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अन्तगडदसाण अट्ठमस्स वगस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् नवम अध्ययन का अर्थ सुनाने के अनन्तर महामहिम आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार को कहने लगे—

जम्बू! यावत्-मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें वर्ग के नवम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥

दशम अध्ययन

अब सूत्रकार दशम अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एव महासेणकण्हा वि, णवर आयंबिलवड्ढमाण तवोकम्म उवसपज्जित्ता णं विहरइ। तजहा—आयबिल करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता वे आयबिलाइ करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता तिण्णि आयबिलाइ करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता चत्तारि आयबिलाइ करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइ करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता छ आयबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ, करित्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयबिलाइ वड्ढति, चउत्थतरियाइ जाव आयबिलसय करेइ, करित्ता चउत्थ करेइ।

तए ण सा महासेनकण्हा अज्जा आयबिलवड्ढमाण तवोकम्मं चउद्दसहिं वासेहिं तिहिं य मासेहि वीसेहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्त जाव सम्मं काएण फासेइ जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचदण अज्जं वदइ णमंसइ, वदित्ता णमसित्ता बहूहिं चउत्थेहि जाव भावेमाणी विहरइ।

छाया—एव महाकृष्णाऽपि नवरम्, आचाम्लवर्द्धमानं तप कर्म उपसपद्य विहरति। तद्यथा—आचाम्ल करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा द्वे आचाम्ले करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा त्रीणि आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा चत्वारि आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति कृत्वा पच आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा षडाचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा एकोत्तरया वृद्धया आचाम्लानि वर्द्धन्ते, चतुर्थान्तरितानि यावद् आचाम्ल-शत करोति, कृत्वा चतुर्थ करोति।

तत सा महासेनकृष्णा आर्या आचाम्लवर्द्धमान तप कर्म चतुर्दशभिर्वर्षं त्रिभिर्मासै विंशतिभिश्चाहोरात्रै यथासूत्र यावत् सम्यक् कायेन स्पृशति, यावदाराध्य यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य आर्यचदनामार्या वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा बहुभिश्चतुर्थै यावद् भावयन्ती विहरति।

पदार्थ—**एव**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती काली देवी का जीवन वर्णित किया है उसी प्रकार, **महासेणकण्हावि**—महासती महासेनकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए, **णवर**—दोनो महासतियो के जीवन मे इतना अन्तर है, कि उन्होने, **आयबिलवड्ढमाण—**

आयबिल वर्धमान नामक, **तवोकम्म**—तप को, **उवसपज्जित्ता**—धारण करके, **ण**—यह अव्ययपद वाक्य सौंदर्य के लिये है, **विहरइ**—विहरण करती है, **त जहा**—जैसे कि, **आयबिल**—आचाम्ल—आयबिल (अमल) तप को, **करेइ**—करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—अमल करके उपवास करती है, **करित्ता बे आयबिलाइ करेइ**—उपवास करके दो आयबिल करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—दो आयबिल करके उपवास करती है, **करित्ता तिण्णि आयबिलाइ करेइ**—उपवास करके तीन अमल करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—तीन अमल करके उपवास करती है, **करित्ता चत्तारि आयबिलाइ करेइ**—उपवास करके चार अमल करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—४ अमल करके उपवास करती है, **करित्ता पच आयबिलाइ करेइ**—उपवास करके पाच अमल करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—५ अमल करके उपवास करती है, **करित्ता छ आयबिलाइ करेइ**—उपवास करके ६ आयबिल करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—६ आयबिल करके उपवास करती है, **करित्ता एकोत्तरियाए**—उपवास करके उतरोत्तर एक-एक की, **बुड्ढोए**—वृद्धि करके, **आयबिलाइ**—अमल, **वड्ढति**—बढ जाते हैं, ये समस्त अमल, **चउत्थतरियाइ**—एक एक चतुर्थ उपवास के अन्तर के साथ किए जाते हैं अर्थात् पहले अमल, उसके अनतर उपवास, करके अमल, इसी पद्धति से अमल तपस्या सपन्न की जाती है, **जाव**—यावत् सात अमल, एक उपवास, फिर आठ अमल एक उपवास, फिर नौ अमल इसी प्रकार आगे बढते बढते हुए **आयबिलसय**—सौ अमल, **करेइ**—करती है, **करित्ता चउत्थ करेइ**—सौ अमल करके उपवास करती है, **त एण**—उसके अनन्तर, **सा महासेणकण्हा**—वह महासेन कृष्णा, **अज्जा**—आर्या, साध्वी, **आयबिलवड्ढमाण**—आयबिल वर्धमान, **तवोकम्म**—तप, **चउद्दसहि वासेहि**—१४ वर्षों, **य**—और, **तिहि मासेहि**—तीन महीने, **बीसेहि अहोरत्तेहि**—बीस दिन रात्रियो मे, **अहासुत्त**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार, **जाव**—यावत्, **सम्म काएण**—सम्यग् रूप से शरीर द्वारा, **फासेइ**—स्पर्श करती है, **जाव**—यावत्, **आराहेत्ता**—तप की आराधना करके, **जेणेव अज्जचदणा**—जहां आय चन्दना, **अज्जा**—आर्या थी, **तेणेव उवागच्छइ**—वहा आती है, **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **अज्जचदण अज्ज**—आर्या आर्यचन्दना को, **वदइ, णमसइ**—वदन नमस्कार करती है, **वदित्ता, णमसित्ता**—वदन नमस्कार करके, **बहूहि**—अनेक, **चउत्थेहि**—उपवासो, **जाव**—यावत् तपस्याओ से अपनी आत्मा को, **भावेमाणी**—भावित करती हुई, **विहरइ**—विहरण करती है।

मूलार्थ—प्रस्तुत वर्ग के नवम अध्ययन मे जिस प्रकार महासती पितृसेन-कृष्णा की जीवनी का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार महासेन-कृष्णा की जीवनी भी समझनी चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि महासती महासेनकृष्णा ने आयबिल वर्धमान नामक तप का आराधन किया था। आयबिल-वर्धमान तप की रूप-रेखा इस प्रकार है—

सर्व प्रथम आयबिल—अमल किया, फिर एक उपवास किया, तदनन्तर दो आय-बिल किए, फिर एक उपवास किया, इसी प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते तीन आयबिल एक

उपवास, चार आयबिल एक उपवास, पाच अमल एक उपवास, फिर छ अमल किए और एक उपवास किया। इसी पद्धति से आगे-आगे एक-एक अमल बढाते-बढाते और मध्य मे एक-एक उपवास करते हुए अन्त मे सौ अमल करती है। इस के पश्चात् एक उपवास करती है।

उसके अनन्तर वह महासती महासेनकृष्णा आयबिल वर्धमान तप की चौदह वर्ष, तीन महीने और बीस दिन रात्रियो तक सूत्रोक्त विधि के अनुसार यावत् काय द्वारा सम्यग् रूप से आराधना करके जहाँ महासती आर्य चन्दना थी वहाँ आकर उनको वन्दन एव नमस्कार करती है। इसके पश्चात् अनेक उपवास, बेले आदि तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र के आठवे वर्ग के नौवे अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव मगलमूर्ति वन्दनीय आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणो मे सविनय निवेदन करने लगे—भगवन्! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्गीय नवम अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है उस का श्रवण मैंने कर लिया है। गुरुदेव! अब मेरी इच्छा है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्रीय अष्टम वर्ग के दशम अध्ययन का जो अर्थ बतलाया है उसे सुनाने की कृपा करे।

अपने सुविनीत शिष्य आर्य जम्बू अनगार की जिज्ञासा भरी उक्त प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्गीय दसवें अध्ययन मे महासती महासेनकृष्णा के जीवन का उल्लेख किया है। यह भी राजगृह नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी और चम्पा नरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र भी युद्ध मे मारा गया था। उसके असह्य दु ख को यह सहन न कर सकी। इन्हे सारा ससार असार दिखाई देने लगा। ससार की यही असारता एक दिन इनके वैराग्य का कारण बनी। इन्होंने ससार के बन्धनो को तोडकर भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षा ग्रहण करने का दृढ सकल्प धारण किया। अन्त मे एक दिन अवसर देखकर यह भगवान के चरणो मे दीक्षित हो गई। इन्होने अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दना (महासती चन्दन बाला) से आचाराग आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया और व्रत-वेले, तेले आदि अनेकविध तपस्याय की। इनकी तपस्या में आयबिल-वर्द्धमान तप का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

"आयबिलवर्धमान" यह एक प्रकार का तप है। इसका अर्थ है, जिस में आयबिल तप को बढाया जाता है, वह तप। इस तप की आराधना मे १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते है। इसमे एक से लेकर क्रमशः सौ तक अमल करने का विधान है और प्रत्येक अमल के बाद एक उपवास करना होता

है। गणना करने पर ग्रमल के दिन ५०५० बनते हैं। इनको ३६० से भाग देने पर १४ वर्ष १० दिन हो जाते हैं। इनमे व्रतो के १०० (३ मास १० दिन) सम्मिलित करने पर १४ वर्ष ३ महीने २० दिन बनते हैं।

पिछले तपो का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपो को जो दिन-सख्या लिखी है, उसमे तपस्या के दिन ग्रौर पारणे के दिन इस प्रकार सभी दिन सकलित किए जाते हैं। यदि उसी पद्धति का प्रस्तुत ग्रायबिल-वर्धमान तप की दिन सख्या मे ग्राश्रयण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि महासती महासेन कृष्णा ने लगातार १४ वर्ष ३ मास ग्रौर २० दिन तक तपस्या की, इसमे पारणे का कोई दिन नही ग्राता। इसके दो कारण हैं—प्रथम तो सूत्रकार जैसे पीछे पारणे का निर्देश करते चले ग्रा रहे हैं, वैसे यहा पर सूत्रकार ने निर्देश नही किया, दूसरे यदि पारणे के सब दिन भी साथ मे सम्मिलित कर दिए जाए तो ग्रायम्बिल-वर्धमान तप की दिन सख्या १४ वर्ष ३ मास २० दिन न रह कर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है। ग्रत यही समझना ठीक है, कि महासती महाकृष्णा ने १४ वर्ष ३ महीने २० दिन तक ही तपस्या की। मध्य मे उन्होने कोई पारणा नही किया। ग्रायबिल वर्धमान तप का स्थापना-यन्त्र इस प्रकार है—

आयम्बिल-वर्धमान स्थापना-यन्त्र

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

ग्रायबिल वर्धमान तप की व्याख्या करते हुए ग्रर्ध-मागधी कोषकार शतावधानी श्री रत्न-चन्द्र जी महाराज लिखते हैं—

"चौदह वर्ष, तीन मास और २० दिन तक होनेवाला तप जिसमे कि एक आयबिल के पारणे के बाद एक उपवास करके उसके बाद दो आयबिल किए जाते है। फिर एक उपवास, तीन आयबिल इसी प्रकार बढातेबढाते १०० आयबिल तक किए जाते है।

इस रीति से १४ वर्ष, तीन मास, २० दिन मे यह तप पूर्ण होता है [पृष्ठ ६३, भाग २]।

सूत्रोक्त विधि के अनुसार आयबिल वर्धमान तप की आराधना करने के अनन्तर महासती महासेनकृष्णा अपनी आराध्य गुरुणी महासती आर्यचन्दना की सेवा मे उपस्थित होती है, वन्दन और नमस्कार करने के अनन्तर उन्हीके सानिध्य मे, उपवास, वेले, तेले आदि अनेकविध तप की आराधना करती हुई सयम तप की भावनाओ से भावित होकर जीवन व्यतीत करती है।

"एव महाकण्हा वि"—एव महाकृष्णाऽपि, यथा काल्यादयो निष्क्रान्तास्तथैवेयमपि, का अर्थ है—जिस प्रकार अष्टमाग अन्तगडसूत्र के अष्टमवर्ग के प्रथम अध्ययन मे महासती काली के दीक्षा ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार महासती महाकृष्णा के दीक्षा-ग्रहण आदि का समस्त घटनाचक्र समझ लेना चाहिए।

"आयबिलवड्ढमाण"—आचाम्ल वर्द्धमान यस्मिन् तप कर्मणि तद् आचाम्लवर्धमानम्, अर्थात् जिस तप मे आयबिल तप की वृद्धि हो उसे आयबिल-वर्धमान कहते है। इसमे एक से १०० तक अमल किए जाते हैं। अमलो की सम्वृद्धि होने के कारण ही इसे आयबिल-वर्द्धमान कहा गया है।

"एकोत्तरेयाए वुड्ढीए" का अर्थ है—एकोत्तरिक वृद्धि से। अर्थात् उत्तरोत्तर—आगे-आगे एक-एक अमल की सम्वृद्धि करने से।

"चउत्थतरियाइ"—चतुर्थान्तरितानि—का अर्थ है जिनके अन्तर मध्य मे चतुर्थ उपवास हो। आगे-पीछे अमल तपस्या हो और मध्य मे जहा उपवास हो उसे चतुर्थान्तरित कहते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि आयबिल वर्धमान तप के अनतर महासती महासेनकृष्णा तप सयम के साथ अपनी आत्मा को भावित करती हुई विहरण करने लगी। इसके पश्चात् क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए ण महासेणकण्हा अज्जा तेण ओरालेण जाव उवसोभेमाणी २ चिट्ठइ २। तए ण तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-काले चिन्ता, जहा खदयस्स जाव अज्जचदण अज्ज आपुच्छइ जाव सलेहणा। काल अणवकखमाणी बिहरइ।

तए ण सा महासेणकण्हा अज्जा अज्ज-चदणाए अज्जाए अतिए सामाइमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ सत्तरस वासाइ परियाय पालइत्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेत्ता, सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता, जस्स-

ट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठ आराहेइ, चरिम-उस्सास-णीसासेहिं सिद्धा बुद्धा।

अट्ठ य वासा आदी, एकोत्तरियाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणिय भज्जाण णायव्वो ॥

छाया—तत सा महासेनकृष्णा आर्या तेनोदारेण यावद् उपशोभमाना उपशोभमाना तिष्ठति। ततस्तस्या महासेनकृष्णाया आर्याया अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकाले चिन्ता यथा स्कन्दकस्य यावदार्यचन्दनामार्य्यामापृच्छति, यावत् सलेखना, कालमनवकाङ्क्षन्ती विहरति।

तत सा महासेनकृष्णाऽऽर्या आर्यचन्दनाया आर्याया अन्तिके सामायिकादीनि एकादश अगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णानि सप्तदश वर्षाणि पर्याय पालयित्वा, मासिक्या सलेखनयाऽऽत्मान जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा यस्यार्थाय क्रियते यावत्तमर्थमाराधयति, चरमोच्छ्वासनिःश्वासै सिद्धा बुद्धा।

अष्ट वर्षाणि आदिरेकोत्तरिया यावत् सप्तदश।
एष खलु पर्याय, श्रेणिकभार्याणा ज्ञातव्य ॥

पदार्थ—तए—उसके अनन्तर, ण—यह अव्ययपद वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है, सा महासेणकण्हा—वह महासेनकृष्णा, अज्जा—आर्या—साध्वी, तेण—उस (जिसका वर्णन पूर्व कर चुके हैं), ओरालेण—उदार—प्रधान तप से, जाव—यावत् उसके तेज के कारण उवसोभेमाणी २—अत्यन्त शोभायमान दिखाई दे रही थी, तए ण—उसके अनन्तर, तीसे—उस, महासेणकण्हाए—महासेन कृष्णा, अज्जाए—आर्या को, अण्णया कयाइ—किसी अन्य समय एक बार, पुव्वरत्तावरत्तकाले—पिछली रात्रि मे, जहा—जिस प्रकार, खदयस्स—स्कंदक कुमार मुनि ने चिन्तन किया था, उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा ने, चिन्ता—चिन्तन किया, जाव—यावत् चिन्तन करने के अनन्तर वह, अज्ज—आर्या, अज्जचदण—आर्य चन्दना-महासती चन्दनवाला को, आपुच्छइ—पूछती है, जाव—यावत् उसने, सलेहणा—सलेखना—आमरण अनशन आरभ कर दिया और, काल—मृत्यु की, अणवकखमाणी—आकाक्षा न करती हुई, विहरइ—समय व्यतीत करने लगी, तए ण—उसके अनन्तर, सा महासेणकण्हा—वह महासेनकृष्णा, अज्जा—आर्या, अज्जचदणाए—आर्य चन्दना के, अतिए—पास, सामाइयाइ—सामायिक-आचाराग सूत्र आदि, एक्कारस—ग्यारह, अगाइ—अग शास्त्रो को, अहिज्जित्ता—पढ करके, बहुपडिपुण्णाइ—परिपूर्ण, सत्तरस—सत्रह, वासाइ—वर्षों तक, परियाय—पर्याय-साधु वृत्ति का, पालइत्ता—पालन करके, मासियाए—मासिक, एक महीने की, सलेहणाए—सलेखना (आमरण अनशन) से अप्पाण—अपनी आत्मा को, झूसेत्ता—आसेवित करके—अपनी आत्मा को मोक्ष के अनुकूल बना कर, अणसणाए—अनशन (उपवास) द्वारा, छेदेत्ता—छोड कर, जस्सट्ठाए—जिस प्रयोजन के लिये, कीरइ—ग्रहण किया था, जाव—यावत्-नग्नभाव—साधु जीवन, तमट्ठ—उस प्रयोजन की, आराहेइ—आराधना करती है, उसे सिद्ध कर लेती है,

चरिम—अन्तिम, उस्सासणिसासेहिं—श्वासोच्छ्वास—सांसो से, सिद्धा—सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है, बुद्धा—बोध—केवल ज्ञान मे रमण करती है, (प्रस्तुत वर्ग मे वर्णित दसो देवियो के दीक्षा पर्याय का वर्णन करते है) आर्या—आदि महासती काली देवी की दीक्षा-पर्याय अट्ठ वासा—आठ वर्षों की थी, य—यह अव्ययपद पाद पूर्ति के लिये प्रयोग मे लाया गया है, (इससे आगे को शेष नौ महासतियो की दीक्षा पर्याय), एगोत्तरियाए—उत्तरोत्तर—आगे-आगे एक-एक की वृद्धि करके दसवी महासती की दीक्षा पर्याय, जाव—यावत्, सत्तरस—सतरह वर्ष की समझनी चाहिए अर्थात् दूसरी महासती की नौ वर्ष, तीसरी की दस, चौथी की ग्यारह, पाचवी की बारह, छठी की तेरह, सातवी की चौदह, आठवी की पन्द्रह, नौवी की सोलह और दसवी महासती की सत्रह वर्षों की दीक्षा पर्याय है, सेणियभज्जाण—महाराजा श्रेणिक की भार्याओ धर्म-पत्नियो की, एसो—यह, खलु—यह अव्ययपद निश्चयार्थक है, परियाओ—दीक्षा पर्याय-दीक्षा की पर्याय—अवस्था, णायव्वो—जाननी चाहिये।

मूलार्थ—महासती महासेनकृष्णा अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दनाके सान्निध्य मे रह कर व्रत, बेला, तेला आदि अनेकविध तप के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई समय व्यतीत करती है। इस कठोर तप के कारण इनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया, तथापि तपोजन्य आन्तरिक तेज के कारण वह अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रही थी।

एक बार महासती महासेनकृष्णा पिछली रात्रि को धर्म-जागरण करती हुईविचार करने लगी कि मेरा शरीर तपस्या से अत्यन्त दुर्बल हो गया है, तथापि इसमे अभी कुछ बल शेष है, अत मुझे चाहिए कि महासती आर्य चन्दना से आज्ञा लेकर सलेखना की आराधना करू, आमरण अनशन आरभ करदू। भगवती सूत्र के द्वितीय शतक के उद्देशक प्रथम मे जिस प्रकार मुनिवर स्कन्दक ने चिन्तन किया था, ठीक उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा ने सथारा करने का विचार किया। अन्त मे महासती आर्य-चन्दना से आज्ञा लेकर अपने विचार के अनुसार आमरण अनशन अगीकार करके मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

आमरण अनशन अगीकार करने के अनन्तर महासती आर्यचन्दना के पास सामायिक (आचाराग सूत्र) आदि ग्यारह अग शास्त्रो का अध्ययन किया। इस तरह परिपूर्ण सत्तरश वर्षो तक सयम साधना की आराधना करने के अनन्तर एक महीने की सलेखना (सथारा) के द्वारा अपनी आत्मा को परिमार्जित करके उपवासो द्वारा ६०

भोजन छोडकर जिस उद्देश्य के लिये इन्होने साधु-जीवन अगीकार किया था । उसे परिपूर्ण कर लिया और अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ सिद्ध एव बुद्ध पद प्राप्त कर लिया ।

प्रस्तुत आठवे वर्ग मे काली आदि दस महासतियो के जीवन वर्णित हुए है। ये दसो महाराजा श्रेणिक की भार्याए थी। इन सबकी दीक्षापर्याय इस प्रकार है—

१	काली देवी	आठ वर्ष	२	सुकाली देवी	नव वर्ष
३	महाकाली देवी	दस वर्ष	४	कृष्णा देवी	ग्यारह वर्ष
५	सुकृष्णा देवी	बारह वर्ष	६	महाकृष्णा देवी	तेरह वर्ष
७	वीरकृष्णा देवी	चौदह वर्ष	८	रामकृष्णा देवी	पन्द्रह वर्ष
९	पितृसेनकृष्णादेवी	सोलह वर्ष	१०	महासेनकृष्णादेवी	सत्रह वर्ष

व्याख्या—आयबिल-वर्धमान नामक तप की रूपरेखा का परिचय पिछले सूत्र मे करवाया जा चुका है। चौदह वर्ष लगातार अमल-तपस्या करनी साथ मे उपवास करना बडा कठिन कार्य है। ऐसा घोरातिघोर तप कोई बहुत बडा साहसी, सहिष्णु, बली और गभीर व्यक्ति ही कर सकता है। महासती महासेन कृष्णा ऐसी ही साहसशीला व्यक्तियो में से एक थी । इन्हे तो साहस और सहिष्णुता एव सबलता की अनुपम निधि ही समझना चाहिए। सूत्रकार कहते हैं कि आयबिल वर्धमान तप की आराधना तथा व्रत, बेले आदि अनेकविध तपस्याओ की परिपालना के कारण महासती महासेनकृष्णा बडी दुबली हो गई थी। उनका शरीर मांस और रक्त से रहित हो गया था, इनके शरीर की धमनिया—नाडिया प्रत्यक्ष दिखाई देने लग गई थी। वह सूख कर हड्डियो का केवल पजर बन रही थी । उठते-बैठते, चलते-फिरते उसकी हड्डियो से कड-कड की ध्वनि उठने लगी थी। इतना कुछ हो जाने पर भी उनकी तपस्यागत रुचि मे न्यूनता नही आ पाई थी । आयबिल वर्धमान तप की आराधना के अनन्तर वे अपनी गुरुणी महासती चन्दनबाला की सेवा मे पधारी और वहाँ रह कर भी इन्होने तप से विश्राम नही किया। सूत्रकार कहते हैं कि से वहा पर भी व्रत, बेले, तेले से लेकर महीने तक और अन्य अनेकविध तप करती रही। यह इनकी तप-प्रियता का एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

यह सत्य है कि आयबिल-वर्धमान तप तथा अन्य अनेकविध तप का आराधन करने के कारण महासती महासेनकृष्णा अत्यन्त दुर्बल हो गई थी, उसे उठने-बैठने में भी कष्टानुभूति होती थी, तथापि तपस्या भगवती की सम्यग् आराधना के कारण उनका आत्मिक तेज अत्यन्त बढ गया था। उनके आत्मिक तेज की प्रकर्षता को अभिव्यक्त करने के लिये स्वय सूत्रकार को "तवेण तेएण तवतेए सिरीए अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ" यह शब्द कहने पडे।

एक वार पिछली रात मे महासेनकृष्णा धर्म-जागरण कर रही थी। उस समय इनको विचार आया कि यह ठीक है कि तपस्या भगवती की आराधना के कारण मेरा शरीर अत्यत कृश अर्थात् दुर्वल हो गया है, फिर भी मेरे शरीर मे कुछ न कुछ शक्ति विद्यमान है। मुझे इससे लाभ उठाना चाहिए, मुझे चाहिए कि कल मैं अपनी आदरास्पद गुरुणी महासती चन्दनवाला के चरणो मे उपस्थित होकर उनकी आज्ञा से अन्न-जल का त्याग करके सलेखना (सथारे—आमरण अनशन) की आराधना करू। यह विचार करने के अनन्तर जव सूर्योदय हुआ तव महासती महासेनकृष्णा रात्रि के आए हुए विचार को अपनी गुरुणी महासती चन्दना की सेवा मे निवेदन करके उसके लिये उनसे आज्ञा प्राप्त करती है। आज्ञा प्राप्त होने पर इन्होने अन्न-जल का परित्याग करके सलेखना की आराधना आरम्भ की। सलेखना की आराधना करते हुए इन्होने मृत्यु की कभी आकाक्षा नही की अथवा यू कहे कि सलेखना-काल मे इनका मन कभी डावाडोल नही हुआ। वे सर्वथा स्वस्थ रही और आत्मसमाधि मे ही लगे रही।

महासती महासेनकृष्णा की दीक्षापर्याय सत्रह वर्ष की थी। सत्रह वर्षों तक इन्होने अहिंसा सयम तथा तप की त्रिवेणी मे जी भर कर गोते लगाए, जन्म-जन्मान्तरो के कर्म-मल से लिप्त आत्मा को बिल्कुल विशुद्ध बना लिया। एक महीने की सलेखना से मोक्ष के अनुकूल कर लिया। एक महीने का इनको सथारा आया। इसमे इन्होने साठ भोजन छोडे। इस प्रकार परम साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने के लिये जिस उद्देश्य को लेकर इन्होने ससार की मोहमाया से किनारा कर साधु-जीवन अगीकार किया था, उस को सफल वनाकर जीवन के अतिम श्वासोच्छ्वास के साथ सिद्ध-गति प्राप्त कर ली और अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध और सर्व दु ख प्रहीण आदि पदो से विभूषित हो गई।

"**ओरालेण जाव उवसोभेमाणी**"—यहा पठित **जाव** पद प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित—**धमणिसतया जाया यावि होत्था, से जहा इगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव**" इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ पृष्ठ ४०८ पर लिखा जा चुका है।

"**पुव्वरत्तावरत्तकाले**"—**पूर्वरात्रापररात्रकाले—रात्र पश्चिमे भागे**, अर्थात् रात्रि के पिछले भाग को 'पूर्वरात्रापररात्रकाल' कहते हैं। अर्धमागधी कोषकार इस शब्द का अर्थ—मध्यरात्रि करते हैं।

"**चिन्ता जहा खदयस्स जाव**"—का अर्थ है, जिस प्रकार स्कन्धक मुनि के मन मे विचार उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा के हृदय मे विचार उत्पन्न हुआ। महामहिम स्कधक का वर्णन भगवती सूत्र के दूसरे शतकके पहले उद्देशक मे किया गया है। स्कधकमुनि का निर्देश करके सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि तपस्या से अत्यन्त दुर्बल होने पर जैसे स्कन्धक मुनि के हृदय मे अन्नजल का परित्याग करके सलेखना की आराधना का विचार उत्पन्न हुआ था, वैसे ही विचार महासती महासेनकृष्णा के मानस मे प्रकट हुए। यहा पठित **जाव** पद स्कन्धक मुनि से सम्बन्धित

पाठ की ओर सकेत कर रहा है ।

"आपुच्छइ जाव सलेहणा"—यहा पठित जाव पद **आपुच्छित्ता अज्जचदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए,** आदि पदो का समूचक है ।

"काल अणवकखमाणी विहरइ"—का अर्थ है—काल की आकाक्षा न करती हुई विहरण करती है। सूत्रकार ने यह पद देकर यह ध्वनित किया है, कि महासती महासेनकृष्णा अत्यन्त दुबल होने पर भी कभी डावाडोल नही हुई, उसके मन मे कभी ग्लानि नही आई। भगवती तपस्या के प्रति इसकी जो निष्ठा थी— आस्था थी उसमे कोई अन्तर नही आने पाया। वह कभी दु खी नही हुई और दु खी होकर उसने कभी नही सोचा, कि इस कष्टमय जीवन से मरना अच्छा है। इन्ही भावो को सूत्रकार ने काल **'अणवकखमाणी'** इन पदो से ससूचित किया है।

"सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता"—इन पदो का अर्थ स्पष्ट है। प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे महासती काली देवी के जीवन मे अग-शास्त्रो के दो वार पढने का उल्लेख है। उसीके अनुसार इस दगम अध्ययन मे दो वार अग शास्त्र पढने की वात देखने को मिल रही है ।

"मासियाए सलेहणाए णीसासेहि सिद्धा" इन पदो का अर्थ प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है।

अट्ठ य वासा आदी' यहा पठित आदि शब्द प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित महासती कालीदेवी का वाचक है, कालीदेवी ने आठ वर्षों तक दोक्षा-पर्याय का पालन किया था। **"एकोत्तरियाए जाव सत्तरस"** का अर्थ है—क्रमश उत्तरोत्तर आगे-आगे एक एक महासती की दोक्षा-पर्याय मे एक-एक वष की वृद्धि कर लेनी चाहिए। दीक्षा-पर्याय-पालन की तालिका इस प्रकार है—

सख्या	नाम	दोक्षा पर्याय	सख्या	नाम	दीक्षा पर्याय
१	काली देवी	८	६	महाकृष्णा देवी	१३
२	सुकाली देवी	९	७	वीरकृष्णा देवी	१४
३	महाकाली देवी	१०	८	रामकृष्णा देवी	१५
४	कृष्णा देवी	११	९	पितृसेनकृष्णा देवी	१६
५	सुकृष्णा देवी	१२	१०	महासेनकृष्णा देवी	१७

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित महासती महासेन कृष्णा ने सत्रह वर्षो तक सयम-साधना सपन्न की ।

'परियाओ' यह शब्द दीक्षा काल का वोधक है। तथा **'सेणियभज्जाण'—श्रेणिकभार्याणाम्"** यह पद देकर यह प्रकट किया गया है कि प्रस्तुत वग मे वर्णित काली देवी, सुकाली देवी आदि दसो महासतिया राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्निया थी ।

प्रस्तुत दशम अध्ययन की समाप्ति के साथ अन्तगड सूत्र का आठवा वर्ग समाप्त हो जाता

एक बार पिछली रात मे महासेनकृष्णा धर्म-जागरण कर रही थी। उस समय इनको विचार आया कि यह ठीक है कि तपस्या भगवती की आराधना के कारण मेरा शरीर अत्यत कृश अर्थात् दुर्बल हो गया है, फिर भी मेरे शरीर मे कुछ न कुछ शक्ति विद्यमान है। मुझे इससे लाभ उठाना चाहिए, मुझे चाहिए कि कल मैं अपनी आदरास्पद गुरुणी महामती चन्दनबाला के चरणो मे उपस्थित होकर उनकी आज्ञा से अन्न-जल का त्याग करके सलेखना (सथारे—आमरण अनशन) की आराधना करू। यह विचार करने के अनन्तर जब सूर्योदय हुआ तब महासती महासेनकृष्णा रात्रि के आए हुए विचार को अपनी गुरुणी महासती चन्दना की सेवा मे निवेदन करके उसके लिये उनसे आज्ञा प्राप्त करती है। आज्ञा प्राप्त होने पर इन्होने अन्न-जल का परित्याग करके सलेखना की आराधना आरम्भ की। सलेखना की आराधना करते हुए इन्होने मृत्यु की कभी आकाक्षा नही की अथवा यू कहे कि सलेखना-काल मे इनका मन कभी डावाडोल नही हुआ। वे सर्वथा स्वस्थ रही और आत्मसमाधि मे ही लगे रही।

महासती महासेनकृष्णा की दीक्षापर्याय सत्रह वर्ष की थी। सत्रह वर्षो तक इन्होने अहिंसा सयम तथा तप की त्रिवेणी मे जी भर कर गोते लगाए, जन्म-जन्मान्तरो के कर्म-मल से लिप्त आत्मा को बिल्कुल विशुद्ध बना लिया। एक महीने की सलेखना से मोक्ष के अनुकूल कर लिया। एक महीने का इनको सथारा आया। इसमे इन्होने साठ भोजन छोडे। इस प्रकार परम साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने के लिये जिस उद्देश्य को लेकर इन्होने ससार की मोहमाया से किनारा कर साधु-जीवन अगीकार किया था, उस को सफल बनाकर जीवन के अतिम श्वासोच्छ्वास के साथ सिद्ध-गति प्राप्त कर ली और अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध और सर्व दु ख प्रहीण आदि पदो से विभूषित हो गई।

"ओरालेण जाव उवसोभेमाणी"—यहा पठित **जाव** पद प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वर्णित—**धमणिसतया जाया यावि होत्था, से जहा इगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव"** इन पदो का बोधक है। इनका अर्थ पृष्ठ ४०८ पर लिखा जा चुका है।

"पुव्वरत्तावरत्तकाले"—पूर्वरात्रापररात्रकाले—रात्र पश्चिमे भागे, अर्थात् रात्रि के पिछले भाग को 'पूर्वरात्रापररात्रकाल' कहते हैं। अर्धमागधी कोषकार इस शब्द का अर्थ—मध्यरात्रि करते हैं।

"चिन्ता जहा खदयस्स जाव"—का अर्थ है, जिस प्रकार स्कन्धक मुनि के मन मे विचार उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा के हृदय मे विचार उत्पन्न हुआ। महामहिम स्कधक का वर्णन भगवती सूत्र के दूसरे शतकके पहले उद्देशक मे किया गया है। स्कधकमुनि का निर्देश करके सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि तपस्या से अत्यन्त दुर्बल होने पर जैसे स्कन्धक मुनि के हृदय मे अन्नजल का परित्याग करके सलेखना की आराधना का विचार उत्पन्न हुआ था, वैसे ही विचार महासती महासेनकृष्णा के मानस मे प्रकट हुए। यहा पठित **जाव** पद स्कन्धक मुनि से सम्बन्धित

है। अन्तगड-सूत्र के सभी वर्गों मे, तथा वर्गों के सभी अध्ययनो मे भगवती तपस्या के विलक्षण चमत्कारो तथा परम साध्य निर्वाण-पद प्राप्त करवाने की उसकी क्षमता का निर्देश किया गया है। महासती काली देवी आदि सभी महासतियो ने जिस कार्य की सिद्धि के लिये सयम अगीकार किया था, उसमे सफलता करवानेवाला एक मात्र उनका तपोमय जीवन था। उसीके प्रभाव से उन्होने सर्व प्रकार के कर्ममल को भस्मसात् करके परम कल्याणरूप निर्वाण पद को प्राप्त किया।

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

उपसहार

सूत्रकार ने जैसे प्रत्येक अध्ययन की प्रस्तावना और उसका उपसहार करते हुए उत्क्षेप और निक्षेप इन दो पदो का उल्लेख करके प्रत्येक अध्ययन के आरभ और समाप्ति का बोध कराया है, उसी क्रम के अनुसार श्री अन्तगड सूत्र का उपसहार करते हुए, तथा सूत्र मे वर्णित वर्गों और अध्ययनो का सक्षिप्त परिचय कराते हुए सूत्रकार समाप्ति-सूचक पदो का उल्लेख करते हैं—

मूल—एव खलु जम्बू ! समणेण भगवया महावीरेणं आइगरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्य अगस्स अंतगडदसाण अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि।

अतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो, अट्ठ वग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति, तत्थ पढम-बितिय-वग्गे दस-दस उद्देसगा, तइय-वग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थ पचम-वग्गे दस-दस उद्देसगा, छट्ठ-वग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठम वग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाण।

छाया—एव खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामयमर्थ प्रज्ञप्त इति ब्रवीमि।

अन्तकृद्दशानामगस्य एक श्रुतस्कन्ध, अष्ट वर्गा अष्टसु चैव दिवसेषु उद्दिश्यन्ते, तत्र प्रथम-द्वितीय वर्गे दश-दश उद्देशका, तृतीयवर्गे त्रयोदश उद्देशका, चतुर्थ-पचम-वर्गे दश-दश उद्देशका, षष्ठ वर्गे षोडश उद्देशका सप्तमवर्गे त्रयोदश उद्देशका, अष्टमवर्गे दश उद्देशका, शेष यथा ज्ञाताधर्मकथानाम्।

पदार्थ—एव—इस प्रकार, खलु—यह अव्यय पद निश्चय अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है, जंबू—हे जम्बू !, आइगरेण—आदिकर—धर्म-तीर्थ के आरभकर्ता, जाव—यावत्, सपत्तेण—मोक्ष-सम्प्राप्त, समणेणं—श्रमण-तपस्वी, भगवया—भगवान, महावीरेण—महावीर स्वामी ने, अट्ठमस्स—आठवें, अंगस्स—अग-शास्त्र, अतगडदसाण—अन्तकृद्दशाग सत्र का, अयमट्ठे—

यह अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है (श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू !), **त्ति**—इस प्रकार, **बेमि**—मैं कहता हू, **अन्तगडदसाण**—अन्तगडसूत्र, **अगस्स**—आठवें अग का, **एगो**—एक, **सुयक्खधो**—श्रुत-स्कध है, **अट्ठ**—आठ, **वग्गा**—वर्ग हैं, **अट्ठसु चेव दिवसेसु**—आठ ही दिनो मे, **उद्दिसिज्जन्ति**—उपदेश होता है, **तत्थ**—उनमे, **पढम**—पहले और, **वितिय-वग्गे**—दूसरे वर्ग मे, **दस दस**—दस दस, **उद्देसगा**—उद्देशक हैं, **तइय-वग्गे**—तीसरे वर्ग मे, **तेरस उद्देसगा**—तेरह उद्देशक हैं, **चउत्थ**—चौथे और, **पचम-वग्गे**—पाचवे वर्ग मे, **दस दस**—दस-दस, **उद्देसगा**—उद्देशक हैं, **छट्ठ-वग्गे**—छटे वर्ग मे, **सोलस**—सोलह, **उद्देसगा**—उद्देशक हैं, **सत्तम वग्गे**—सातवें वर्ग मे, **तेरस उद्देसगा**—तेरह उद्देशक हैं, **अट्ठम-वग्गे**—आठवे वर्ग मे, **दस उद्देसगा**—दस उद्देशक हैं, **सेस**—शेष वर्णन, **जहा**—जिस प्रकार, **नायधम्मकहाण**—ज्ञाता धर्मकथा के समान जानना चाहिए ।

मूलार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय से, धर्म के आदि सस्थापक यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त—श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अग अतगड सूत्र का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादन किया है । "इस प्रकार मैं कहता हू ।

अन्तकृद्दशाग सूत्र का एक श्रुतस्कध है । इसमे आठ वर्ग हैं । इनका आठ दिनो मे उपदेश किया जाता है । प्रथम तथा द्वितीय वर्ग मे दस-दस अध्ययन है । इसो प्रकार तीसरे वर्ग मे तेरह, चौथे मे दस पाचवे मे दस, छठे मे सोलह, सातवें मे तेरह, आठवे वर्ग मे दस अध्ययन हैं । जिस बात की प्रस्तुत सूत्र मे व्याख्या नही की गई, उसे श्री ज्ञाताधर्मकथङ्ग सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

व्याख्या—अन्तगड सूत्र के आठवें वर्ग मे वर्णित अध्ययनो का अर्थ सुनाने के अनन्तर मगल-मय आर्य सुधर्मा स्वामी अपने सुविनीत, आज्ञाकारी, शास्त्रस्वाध्याय-रसिक एव प्रिय शिष्य आर्य जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—कि हे जम्बू ! अहिंसा, सयम तथा तप रूप धर्म के आदि प्रवक्ता यावत् मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र का यह अर्थ बताया है । अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग से लेकर आठवें वर्ग तक जिन-जिन राजकुमारो, राजाओ, श्रावको तथा श्राविकाओ की जीवनियो का प्रतिपादन किया गया है, वे सब जीवनिया स्वय भगवान महावीर ने बताई हैं। उनसे सुनी हुई बातें मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर रहा हू । इसमे मेरा अपना कुछ नही है।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बू अनगार के सन्मुख अन्तगड सूत्र का मूलकर्त्ता भगवान महावीर स्वामी को जो उद्घोषित किया है, इससे प्रस्तुत सूत्र की प्रामाणिकता मे किसी भी प्रकार के सदेह के लिये कोई अवकाश नहीं रह जाता । इस कथन से दो बातें प्रमाणित होती हैं—

१ अर्थ रूप से सूत्र की रचना करनेवाले स्वय-तीर्थंकर भगवान हैं ।

२ भगवान की वाणी को सूत्र रूप से व्यवस्थित करनेवाले गणधर महाराज हैं।

अन्तगड सूत्र अगशास्त्रो मे आठवा अगशास्त्र है और इसका एक श्रुतस्कन्ध है। श्रुत आगम या शास्त्र को और स्कध उस शास्त्र के बडे खण्ड या विभाग को कहते हैं। इस विशाल विभाग के छोटे विभाग को वर्ग और वर्ग के एक छोटे भाग को अध्ययन या उद्देशक कहा जाता है। अध्ययन और उद्देशक ये दोनो समानार्थक शब्द हैं। यही कारण है, कि सूत्रकार वर्गो की व्याख्या मे अध्ययन शब्द का प्रयोग करते है और प्रस्तुत उपसहार-सूत्र मे उन्होने उद्देशक शब्द का प्रयोग किया है।

अन्तगड सूत्र का एक श्रुतस्कध है जिसमे आठ वर्ग हैं। किस वर्ग मे कितने अध्ययन है? इस प्रश्न का सूत्रकार ने स्वय समाधान कर दिया है। सूत्रकार के कथनानुसार वर्ग गत अध्ययनो की तालिका इस प्रकार है—

वर्ग सख्या	अध्ययन सख्या	लिग	वर्ग सख्या	अध्ययन सख्या	लिग
पहला	दस	पुरुष	पाँचवा	दस	स्त्री
दूसरा	दस*	पुरुष	छठा	सोलह	पुरुष
तीसरा	तेरह	पुरुष	सातवा	तेरह	स्त्री
चौथा	दस	पुरुष	आठवा	दस	स्त्री

आठ वर्गों मे वर्णित सभी अध्ययनों का सकलन करने पर इनको सख्या ९२ होती है। इन मे ५९ पुरुष और ३३ नारिया है। तप सयम की कठोर साधना द्वारा इन सभी ने परमसाध्य निर्वाण-पद प्राप्त किया था। आठ वर्गो मे वर्णित इन अध्ययनो का वाचन आठ दिनो मे करना होता है। आठ वर्गों की क्रमश आठ दिनो मे एक-एक वाचना होनी चाहिए या इस से अधिक? यह व्याख्याता की अपनी सुविधा की बात है। यदि सभी वर्ग एक समान होते तब तो एक-एक वर्ग का एक-एक दिनमे उपदेश होना सभव है, परन्तु कोई वर्ग छोटा है, तो कोई वर्ग बडा है। ऐसी दशामे एक वर्ग का एक दिन मे ही व्याख्यान होना असम्भव है। इसीलिये सूत्रकार ने यहा सामान्य रूप से कह दिया है कि आठ दिनो मे इन आठ वर्गों का उपदेश समाप्त हो जाना चाहिए। एक दिन मे एक वर्ग का पढना ही आवश्यक है ऐसा कोई सकेत सूत्रकार ने नही किया। सभव है इसीलिये आजकल जैन-जगत् मे महापर्व पर्युषण मे अन्तगडसूत्र के पठन-पाठन की परम्परा पाई जाती है। सात पर्युषण पर्व के और आठवा दिन महापर्व सम्वत्सरी का। इस प्रकार इन आठ दिनो मे साधु-साध्वी श्रावक और श्राविका द्वारा श्री अन्तगड सूत्र का वाचन होता है।

"आइगरेण जाव सपत्तेण" यहा पठित जाव पद से विवक्षित पदो का निर्देश पीछे पृष्ठ १३ पर कर दिया गया है। **'त्ति बेमि'** का अर्थ है—इस प्रकार मैं कहता हू। इन पदो से आर्य सुधर्मा स्वामी यह ध्वनित करना चाहते हैं, कि मैंने जो कुछ कहा है, वह सब श्रमण भगवान महावीर का प्रतिपादन किया हुआ है।

"उद्दिसिज्जति"—उद्दिश्यन्ते—उपदिश्यन्ते" का अर्थ है—कहे जाते है, उपदिष्ट किए जाते हैं।

*आजकल द्वितीय वर्ग मे आठ अध्ययन सप्राप्त होते हैं।

"सेस जहा नायधम्मकहाण—शेष सक्षिप्तोक्तिवशादवशिष्ट नगरादिवर्णनादारभ्य बोधिलाभान्तक्रियादि सर्व सविस्तर ज्ञाताधर्मकथावद् विज्ञेयम्—का अर्थ है अन्तगड सूत्र मे नगर, नगर-नरेश, उद्यान आदि से लेकर बोधिलाभ तथा अन्त-क्रिया (मोक्ष) आदि का जो सक्षेप मे वर्णन किया गया है, उस सबका विस्तृत वर्णन श्री ज्ञाताधर्मकथाग शास्त्र के समान जानना चाहिए।

नन्दी सूत्र आदि सूत्रो मे वर्णित श्री उपासकदशाग आदि सूत्रो के परिचय मे श्रुत ग्रहण के अनन्तर उपधान तप का वर्णन किया गया है। उपधान तप का अर्थ है—जिस तप के द्वारा सूत्र आदि की शीघ्र उपस्थिति हो। तप निर्जरा का सम्पादक होने से ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय तथा क्षयोपशम का कारण बनता है। इससे सूत्रादि का शीघ्र बोध हो जाता है तथा साथ मे सूत्राध्ययन निर्विघ्नता से पूर्ण हो जाता है, अथवा अग तथा उपाग सिद्धान्तो के पढने के लिये आयबिल, उपवास और निर्विकृति आदि लक्षणवाला तप विशेष उपधान तप कहलाता है। इस अर्थ की पोषक मान्यता आज भी प्रत्येक सूत्राध्ययन के साथ-साथ या अन्त मे आयबिल तपस्या के रूप मे पाई जाती है। यह ठीक है कि वर्तमान मे उपलब्ध आगमो मे किस सूत्राध्ययन मे कितना आयबिल आदि तप होना चाहिए इस सम्बन्ध मे कोई निर्देश नही मिलता, तथापि इनमे उपधान तप के वर्णन से पूर्वोक्त मान्यता की प्रामाणिकता निर्विवाद सिद्ध हो जाती है। आगमो के अध्ययन के समय आयबिल तप की गुरुपरम्परा के अनुसार जो मान्यता आज उपलब्ध एव प्रचलित है, उसकी तालिका इस प्रकार है—

११ अग सूत्र—

आचाराग सूत्र	४० आयबिल,	सूत्रकृताग सूत्र	३० आयबिल,
स्थानाग सूत्र	१८ ,,	समवायाग सूत्र	३ ,,
भगवती सूत्र	१८६ ,,	ज्ञाताधर्मकथाग	३३ ,,
उपासकदशाग	१४ ,,	अन्तकृद्दशाग	१२ ,,
अनुत्तरोपपातिकदशा	७ ,,	प्रश्न व्याकरण	५ ,,
विपाक सूत्र	२४ ,,		

१२ उपांग सूत्र—

औपपातिक सूत्र	३ आयबिल,	प्रज्ञापना	३ ,,
जीवाभिगम	३ ,,	निरयावलिका	७ ,,
जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	३० ,,	पुष्पिका	७ ,,
कल्पावतसिका	७ ,,	वृष्णिदशा	७ ,,
पुष्पचूला	७ आयबिल,	सूर्य-प्रज्ञप्ति	३ आयबिल,
चन्द्र-प्रज्ञप्ति	३ ,,	राजप्रश्नीय	३ आयबिल,

४ मूल सूत्र—

दशवैकालिक सूत्र	१५ आयबिल,	नन्दी सूत्र	२ आयबिल
उत्तराध्ययन सूत्र	२९ आयबिल,	अनुयोग द्वार	२९ आयबिल

४—छेद सूत्र—

निशीथ सूत्र	१० आयविल	वृहत्कल्प सूत्र	२० आयविल,
व्यवहार सूत्र	२० आयविल	दशाश्रुतस्कध	२० आयविल,

११ अग, १२ उपाग, ४ मूल, और ४ छेद, ये ३१ सूत्र होते हैं। आवश्यक ३२ वा सूत्र है। इस सूत्र के ६ आयविल होते हैं। प्रस्तुत मे अन्तगड सूत्र का प्रसग है, अत अन्तगड सूत्र के अध्ययन आदि करनेवाले महानुभावो के लिये गुरु-परम्परा के अनुसार आज की उपलब्ध धारणा के अनुसार १२ आयबिलो का अनुष्ठान अपेक्षित रहता है।

अन्तगड सूत्र के आठ वर्गों मे वर्णित अध्ययनो का अध्ययन करने से सहृदय पाठको को अनेकानेक कल्याणकारी अमूल्य शिक्षाए प्राप्त होती हैं। इन शिक्षाओ से जीवन आदर्श बन सकता है और मानव निर्वाणपद को प्राप्त करने मे समर्थ हो सकता है। कुछ शिक्षाए प्रस्तुत हैं—

१ कल्याणाभिलाषी साधक मे धैर्य और दृढ निश्चय मगलमय, वन्दनीय मुनिराज गजसुकुमार के समान होना चाहिए।

२ सहनशीलता एव सहिष्णुता मुनिवर अर्जुनमाली जैसी होनी चाहिए।

३ राजगृह के मान्य प्रसिद्ध धनपति सेठ सुदर्शन की तरह धर्म पर आस्था रखनी चाहिये।

४ जीवन की वास्तविकता का दिग्दर्शन मुनिवर अतिमुक्तकुमार से प्राप्त करना चाहिए।

५ त्याग क्या है ? तपस्या कैसे की जाती है ? आदि प्रश्नो का समाधान कृष्णवासुदेव की पद्मावती आदि तथा महाराजा श्रेणिक की काली देवी आदि पट्टरानियो के जीवन से प्राप्त करें।

इस सूत्र से जो अन्य शिक्षाए प्राप्त होती हैं, उनका यथा स्थान उल्लेख हो चुका है और अब यही निवेदन करना है कि हमे इस शास्त्र के स्वाध्याय-प्रकाश मे मानव-जन्म को सफल एव कृतकृत्य बनाने का सत्प्रयास करना चाहिये, अशुभ कर्मों के आचरण से सदा पराड्मुख रह कर अहिंसा, सत्य आदि शुभ अनुष्ठानो को आराधना मे सदा उद्यत रहना चाहिये। अन्त मे हम अपने सहृदय पाठको से विपाक सूत्र के वृत्तिकार पूज्य अभयदेव सूरि के वचनो मे अपने हार्द को अभिव्यक्त करते हुए विदा लेते हैं।

*** इहानुयोगे यदयुक्तमुक्तम्, तद्धीधना प्राक् परिशोधयन्तु।**
नोपेक्षण युक्तिमदत्र येन, जिनागमे भक्तिपरायणानाम्॥

॥ श्री अन्तगडसूत्र समाप्त ॥

* आचार्य-प्रवर अभयदेवसूरि कहते हैं—कि मेरी इस व्याख्या मे जो युक्तिविकल कहा गया है, जैनागमों के भक्तिरसिक मेधावी पुरुष उसका शीघ्र ही सशोधन कर लें, क्योंकि व्याख्यागत युक्तिविहीन स्थलो की उपेक्षा उचित नहीं है।